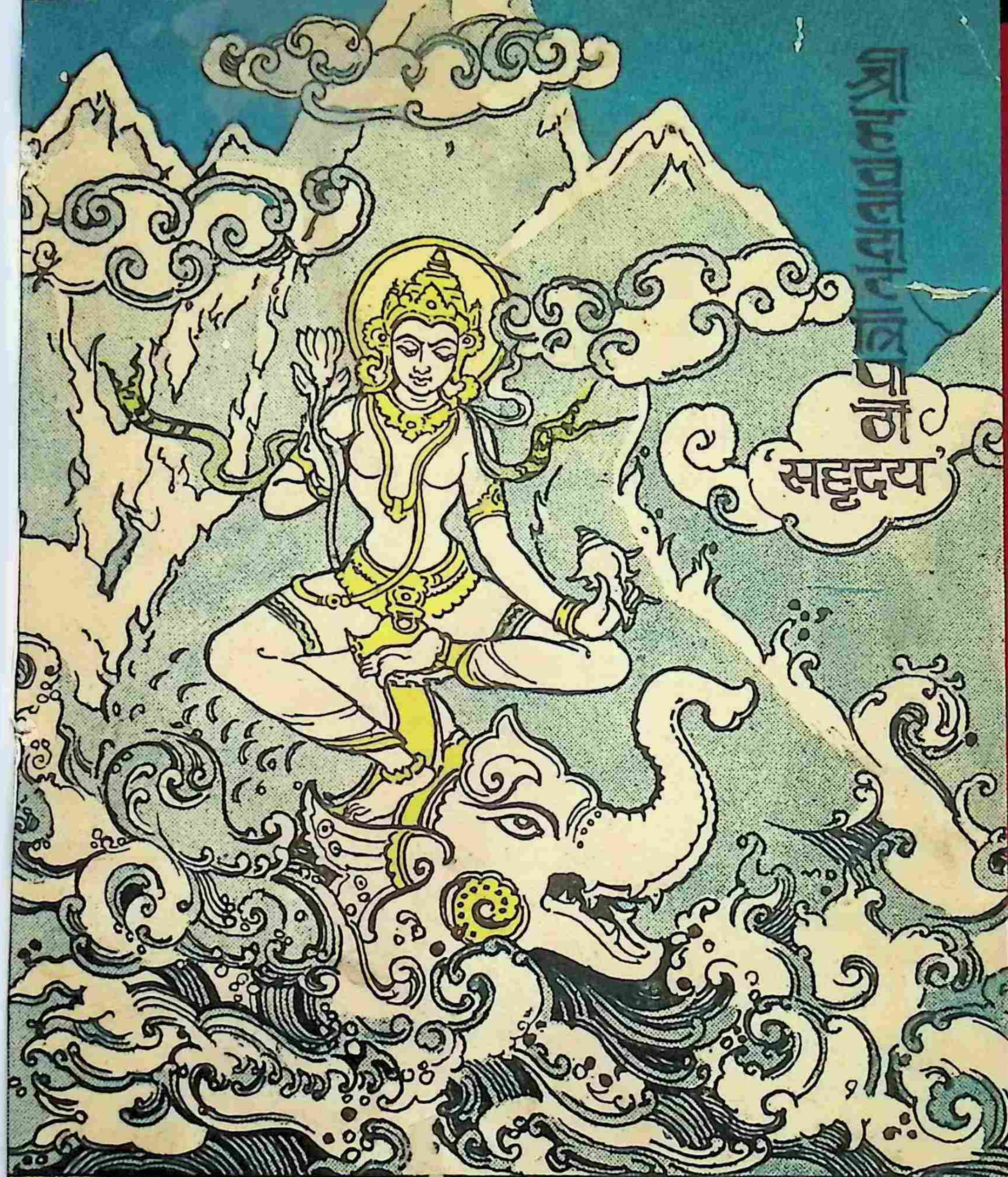


बिहार की नदियाँ

(ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण)

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना

विद्वद्वरेण्य

श्रीमान् डॉ० दिल्ली रमण रेग्मीजी

को

सादर सप्रेम भेंट

रेवल दत्त त्रिपाठी 'सहृदय'

१५।२।७८

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत सरकार (शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी-ग्रंथ-अकादमी द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या : १५८

प्रथम संस्करण : मई, १९७७
२०००

मूल्य : २२·००

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
कदमकुआँ, पटना ८००००३

मुद्रक
रामनरेश सिंह
बाल्मीकि प्रेस
पटना-४

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकलन के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत सरकार विभिन्न राज्य सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केन्द्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदी-भाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य सरकारों द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वियन **बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी** के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, जिससे भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ 'बिहार की नदियाँ' **श्री हवलदार त्रिपाठी** 'सहृदय' की मौलिक कृति है, जो भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के शतप्रतिशत अनुदान से बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। यह ग्रंथ विद्यार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण होगा, ऐसा विश्वास है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना,
दिनांक मई ७७

प्रकाशकीय

प्रस्तुत ग्रंथ में बिहार की और विशेष रूप से उत्तर बिहार की नदियों का लेखक ने विस्तृत वर्णन किया है। उत्तर बिहार में भारत की महत्त्वपूर्ण और विस्तृत नदी गंगा का व्यापक प्रसार है तथा बिहार और उसके तटवर्ती प्रदेशों से निकली नदियाँ भी बिहार की धरती को सींचती हुई गंगा में ही अपने को समर्पित करती हैं। इस कारण गंगा का अधिक वर्णन स्वाभाविक है।

इस ग्रंथ में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक-सर्वेक्षण को दृष्टि में रखा गया है। इसलिए एक प्रकार से नदी-मातृका बिहार का ऐतिहासिक भूगोल भी प्रस्तुत ग्रंथ में आ गया है। ग्रंथ अपने आप में महत्त्वपूर्ण है।

रमाशंकर चौबे
निदेशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,
पटना

पटना
मई, १९७७

अत्यावश्यक दो शब्द

देवऋण, ऋषिऋण और पितृ-ऋण की तरह प्रत्येक मनुष्य पर मातृभूमि का ऋण भी है। अतः प्रत्येक मानव का धर्म है कि मातृभूमि के ऋण से मुक्ति पाने के निमित्त यथा-साध्य प्रयास करे। हमारा वह श्रम शारीरिक हो या बौद्धिक—दोनों समान हैं। इनमें से कोई एक दूसरे से छोटा नहीं है।

हमारी मातृभूमि का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। प्रत्येक व्यक्ति चाहकर भी ऐसा सामर्थ्य नहीं रखता कि वह समस्त मातृभूमि की शारीरिक या बौद्धिक सेवा कर सके। जिनमें सम्पूर्ण राष्ट्र की सेवा करने की क्षमता है, वे अवश्य ही अवतारी पुरुष हैं। किन्तु, मातृभूमि का एक-एक अंग भी उसका ही स्वरूप है और एक-एक अंग की नैष्ठिक सेवा उसकी ही सेवा है। यदि कोई किसान अपने खेत में श्रम करता है और अन्न उत्पादन करता है, तो वह समस्त राष्ट्रभूमि की सेवा करता है। इसी दृष्टि से मैंने **बौद्धधर्म और बिहार** नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमें बिहार प्रदेश में घटनेवाली बौद्धधर्म-संबंधी ढाई हजार वर्षों की ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक तथा स्थानीय घटनाओं की चर्चा करके 'बिहार' के महत्त्व के माध्यम से भारतभूमि की महिमा बतलाई गई है। फिर उसी दृष्टिकोण से **बिहार की नदियाँ : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण** नामक इस पुस्तक को भी आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमें अपने प्रदेश की **गंगा** नदी तथा **उत्तर बिहार की नदियों** के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन का विशद प्रयास किया गया है। हम जिस माता पृथ्वी पर बसते हैं और जिसकी छाती से अन्न, पानी, ओषधि, रासायनिक द्रव्य एवं धातुएँ प्राप्त करते हैं, उस माता पृथ्वी के निर्माण में हमारी मातामही सरिताओं का यथेष्ट योगदान है। अतः ये नदियाँ हमारी आदि माताएँ हैं, जिनके गौरव का आख्यान मानव की आत्मा, मन तथा शरीर को पवित्र करता है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी में देश की नदियों का समुचित अध्ययन प्रस्तुत करनेवाली एक भी पुस्तक मुझे देखने को नहीं मिली। जो एक-दो पुस्तकें उपलब्ध भी हैं, वे अत्यंत ही साधारण कोटि की तथा राष्ट्रभाषा के गौरव के अनुरूप नहीं हैं। इन्हीं में से एक पुस्तक स्वर्गीय व्रजरत्न दास (काशी) की **भारत की नदियाँ** है। स्वर्गीय श्री दयाशंकर दुबे (प्रयाग) ने भी 'गंगा' और उसके प्रवाह मार्ग पर अवस्थित कुछ नगरों का वर्णन किया है, पर उनसे भी किसी प्रकार की उल्लेखनीय सहायता मुझे नहीं मिल सकी। चूंकि देश की सभी बड़ी नदियों का सर्वांगपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करने में साधन, श्रम और ज्ञान—इन तीनों दृष्टियों से मैं असमर्थ था, अतः मैंने अपने शोध-सर्वेक्षण का विषय केवल अपने प्रदेश की नदियों को ही बनाया। प्रदेश की नदियों के सम्बन्ध में भी श्री ललितेश्वर प्रसाद मल्लिक की पुस्तक **'कोसी'** को छोड़ दूसरी कोई पुस्तक हिन्दी में प्राप्त नहीं है। मल्लिक की यह पुस्तक

भी इसलिए लिखी गई है कि 'कोसी' की भयंकर बाढ़ से किस प्रकार पूर्णिया तथा सहरसा जिलों की रक्षा की जाय। अतः उसमें भी कोसी का न तो सांगोपांग भौगोलिक अध्ययन हुआ है और न पौराणिक तथा ऐतिहासिक ही। हाँ, सन् १८१०-११ ई० में किया गया फ्रांसिस बुकानन का कार्य महत्त्व का है। बुकानन ने बिहार प्रदेश के पूर्णिया, भागलपुर, पटना-गया तथा शाहाबाद जिलों की नदियों का भौगोलिक सर्वेक्षण अँगरेजी भाषा में प्रस्तुत किया था। किन्तु वे भी एक तो सम्पूर्ण बिहार की नदियों का सर्वेक्षण नहीं कर सके, और जिनका किया भी, उनका ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पौराणिक पक्ष शून्य रहा। अतः राष्ट्रभाषा हिन्दी में एतद्विषयक अभावग्रस्त साहित्य की पूर्त्ति के निमित्त प्रदेश की समस्त नदियों के धारा-मार्गों एवं तट-प्रदेशों का सर्वांगपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करने का दुस्साहस मैंने पुस्तक के तीन खण्डों में किया है।

पुस्तक का नाम मैंने **'नदियों की धार और कछार में बिहार'** रखा था, जिसमें **बिहार** शब्द श्लेषात्मक था। किन्तु, पुस्तक के प्रकाशक 'बिहार-हिन्दी-ग्रंथ-अकादमी' के तत्कालीन निदेशक डॉ० शिवनन्दनप्रसाद को यह नाम शोध-ग्रंथ के अनुरूप न लगकर औपन्यासिक लगा, अतः मुझे पुस्तक का नाम बदलना पड़ा। पूरी पुस्तक तीन खंडों में समाप्त है, जो लगभग १५०० पृष्ठों की है। प्रस्तुत प्रथम खंड में बिहार की गंगा नदी तथा उत्तर बिहार की नदियों का आद्यन्त सर्वेक्षण है, जो आपके हाथों में उपस्थित है। दूसरे खण्ड में दक्षिण बिहार (रोहतास से संतालपरगना तक) की नदियों के उद्‌गमों, धारा-मार्गों एवं तट-प्रदेशों का तथा तीसरे खंड में छोटानागपुर के आरण्यक एवं पर्वतीय स्रोत-जालों का सर्वविध पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया गया है। खंडों में विभक्त करने का सुझाव अकादमी के भूतपूर्व निदेशक डॉ० भगवतीशरण मिश्र जी का ही था, जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

प्रस्तुत खंड में भी दो परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में प्रमुख नदी **गंगा** है, जो बिहार की रीढ़ बनकर इसे दो भागों में विभक्त करती है। गंगा के प्रारंभिक और पौराणिक परिचय के पश्चात् 'भोजपुर' के 'चौसा' नगर से आरंभ करके 'राजमहल' के आगे 'गुमानी' नदी के संगम तक के धारामार्गों, तटों, तटीय नगरों और नदी-संगमों का अध्ययन है। दूसरे परिच्छेद में 'सरयू' से आरंभ करके 'महानंदा-दाउक' तक की वे तमाम नदियाँ हैं, जो देवतात्मा हिमालय की अधित्यकाओं से निकल कर उत्तर बिहार की भूमि में जाल-सी बिछ जाती हैं और गंगा के वाम पार्श्व को समृद्ध करती हैं। इस परिच्छेद में नदियों के सुरम्य और अगम्य उद्‌गम-प्रदेशों के प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं पौराणिक विवरणों के साथ उनके प्राचीन-नवीन प्रवाहपथों तथा तटों का सर्वेक्षण है।

पूरी पुस्तक के लिखने के क्रम में मेरा १० वर्षों से भी अधिक का एक लम्बा समय लगा है; क्योंकि सामग्री संचयन के निमित्त मुझे प्राचीन भारतीय वाङ्‌मय का निरंतर और गहन विलोड़न करना पड़ा। बिहार की नदियों के सम्बन्ध में मुझे कहीं एक या दो

निश्चित ग्रंथों में साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका, अतः प्राचीन साहित्य के महार्णव से, बड़े धैर्य और परिश्रम के साथ एक-एक दाने को चुनना पड़ा और तब कहीं यह हार में पिरो सका। मुझे उन पुराणों और अन्य ग्रंथों का भी आद्यन्त अध्ययन करना पड़ा, जिनमें मेरे काम की कुछ भी सामग्री नहीं मिल सकी। इनके अतिरिक्त इन नदियों के भौगोलिक अध्ययन के लिए मुझे समय-समय पर इनके तटीय भागों में बार-बार लंबी, व्ययसाध्य एवं कष्टसाध्य यात्राएँ भी करनी पड़ीं तथा विभिन्न प्रकाशन-संस्थाओं के विविध प्रकार के प्राकृतिक एवं प्रामाणिक मानचित्रों का भी सहारा लेना पड़ा है। इसके अतिरिक्त तत्-तत् नदी-प्रदेशों में बसनेवाले अनेक व्यक्तियों से इतिहास, किंवदन्तियों तथा ग्रामों के संबंध में सलाह और सुझाव लेने पड़े हैं। एक बात और कह दूँ कि यह पुस्तक मेरा केवल शोध-ग्रंथ नहीं है, बल्कि मेरी एक सर्जनात्मक कृति भी है।

पुस्तक की पाण्डुलिपि जब मैंने तैयार की थी, तब बिहार प्रदेश ४ प्रमण्डलों और १७ मंडलों (जिलों) में विभक्त था; किन्तु पुस्तक का प्रकाशन होते-होते यह प्रदेश ७ प्रमंडलों और ३१ मंडलों में विभक्त हो गया। पूरी पुस्तक प्राचीन मंडलों के मानचित्रों के आधार पर लिखी गई है, अतः पाठक उन पुराने १७ मंडलों के सीमा-निर्धारण के अनुसार ही इसका अध्ययन करना चाहेंगे।

अंत में विनम्रतापूर्वक कह दूं कि यह काम बहुत विशाल और एक व्यक्ति के वश का नहीं है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य को तो कोई बड़ी संस्था ही सामूहिक रूप में कर सकती थी। फिर भी मैंने अपने तईं इसे पूरी निष्ठा और वर्षों के परिश्रम के साथ सम्पन्न किया है। पुस्तक की उपयोगिता के क्रम में मैंने इस बात पर भी ध्यान रखा है कि विश्वविद्यालयों के उच्चवर्गीय विद्यार्थियों तथा शोध-छात्रों के ज्ञानार्जन में भी यह पूर्ण सहायक सिद्ध हो और उनके अध्ययन तथा मनन की वस्तु बन सके। इन संपूर्ण कार्यों में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, यह तो ऐसे विषयों के पारखी विद्वान् ही बतला सकेंगे।

पुनश्च :

पुस्तक की सांस्कृतिक सामग्री एकत्र करने में मैंने बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के संपन्न पुस्तकालय का पूरा उपयोग किया है, अतः परिषद् के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ। परिषद् के क्षेत्रीय अनुसंधान-पदाधिकारी श्री राधावल्लभ शर्मा का तो मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अनेक बाधाओं के रहते भी अपने विभाग के दुर्लभ ग्रंथों तथा मानचित्रों के अध्ययन-मनन की यथेष्ट सुविधा मुझे दे रखी थी। इनके सहज स्नेह और सहयोग के बिना मेरा सारा उद्योग कभी सफल नहीं हो सकता था। इसी प्रकार विद्यावयोवृद्ध अपने परमादरणीय एवं परिषद् के प्रकाशन-पदाधिकारी पं० श्रुतिदेवशास्त्री के प्रति मैं किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन करूँ? इतना ही कहूँगा कि उनके चतुर्दिक् ज्ञान-साहाय्य के बिना मेरा यह यज्ञ कदापि पूर्ण नहीं हो सकता था। मेरे लेखन-कार्य में जब-जब और जहाँ-जहाँ गुत्थियाँ पड़ीं, उन्होंने तुरत सुलझा कर मेरी लेखनी को आगे बढ़ाया है। अतः इन दोनों

मित्रों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। साथ ही देश के गण्यमान कलाकार अपने अनन्य मित्र पद्मश्री उपेन्द्र महारथी के प्रति भी हार्दिक आभार प्रदर्शित करता हूँ, जिन्होंने अपनी अमूल्य तूलिका से आवरण को रूपायित कर ग्रन्थ का गौरव बढ़ाया है। पुनः मैं 'बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी' के तत्कालीन अध्यक्ष और निदेशक स्व० डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु एवं डॉ० शिवनन्दन प्रसाद जी का भी कृतज्ञ हूँ, जिनके अभावग्रस्त और श्रमसाध्य साहित्य-रचना के प्रति सातिशय अनुराग के कारण ने, बड़े आग्रह के साथ, इस ग्रंथ को लिखवाया और प्रकाशन के निमित्त स्वीकृत किया। अकादमी के भूतपूर्व निदेशक और ललित साहित्य के सृजक डॉ० भगवती शरण मिश्र को भी धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ, जिनकी परिमार्जित अभिरुचि के विना इस रूप में यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकती थी।

हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'

भाद्र-पूर्णिमा
विक्रमाब्द, २०३३ : खिृष्टाब्द १९७६

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

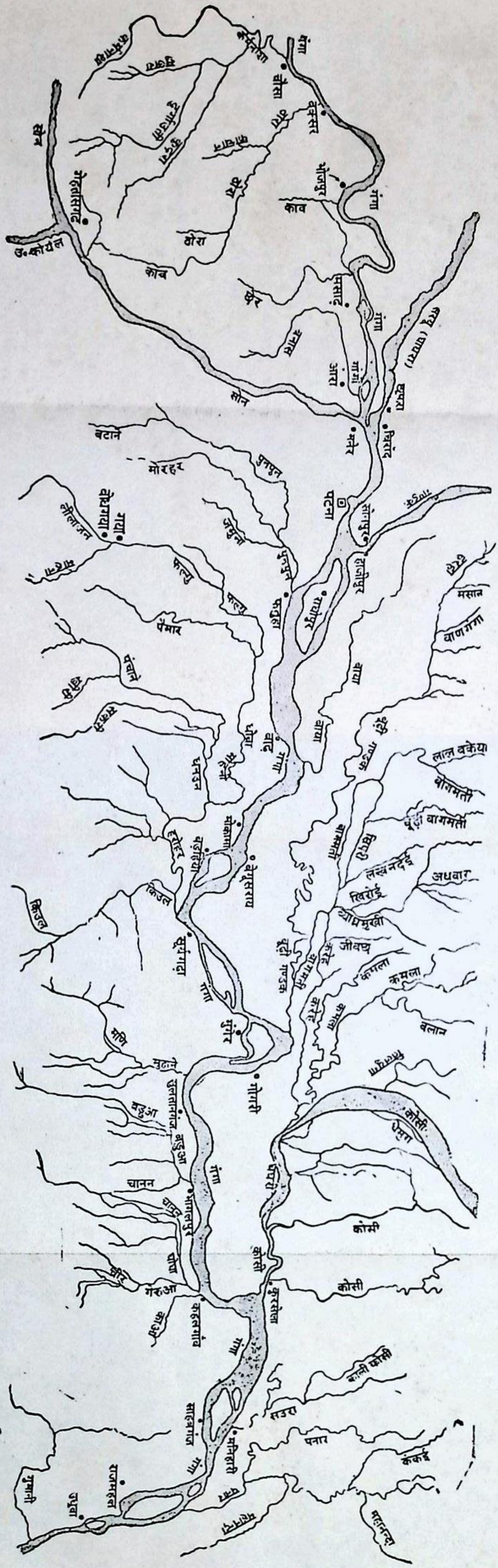
उत्तर बिहार और उसकी नदियाँ

बिहार की नदियाँ :

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण

प्रथम परिच्छेद

गंगा



गंगा
चौसा
बक्सर
भोजपुर
काव
सोन
उ. कोयल
कोव
धोरा
आरा
छपरा
सोन
बटाने
मोरहर
पुनपुन
पटना
मनेर
दिघवारा
गंडक
सोनपुर
हाजीपुर
बोधगया
गया
नीलाजन
फल्गु
पुनपुन
फतुहा
पंचाने
पैमार
बाया
मसान
बाणगंगा
लाल बकेया
बागमती
बूढ़ी बागमती
लखनदेई
अधवार
खिरोई
व्याघ्रमुखी
जीवछ
कमला
बलान
बेगूसराय
मोकामा
बड़हिया
हरोहर
किउल
सूर्यगढ़ा
बूढ़ी गंडक
मुंगेर
गोगरी
मान
सुल्तानगंज
बडुआ
चानन
भागलपुर
कोसी
घोघा
गेरुआ
कहलगाँव
कुरसेला
काली कोसी
सउरा
पनार
कंकई
महानन्दा
मनिहारी
साहबगंज
राजमहल
उधवा
गुमानी

गंगा

भौतिकी राष्ट्रों की माताएँ नदियाँ हैं और पर्वत पिता। पिता निश्चेष्ट, निर्बंध और चितामुक्त निर्द्वंद्व पुरुष है। नदियाँ सचेष्ट, गतिशक्ति-मुक्तिदात्री एवं रसवती सरस्वती हैं। शून्य में स्वच्छंद विचरण करनेवाले मेघ जब क्षितिज की शय्या पर हलचल मचाकर रिक्त हो जाते हैं, तब माता पृथ्वी उस तेजोदीप्त जीवन-पुष्प को अपनी सरितंतुओं के द्वारा धारण करती है।[1] ये सरिताएँ ही पृथ्वी में प्रजनन की गति तथा शक्ति भरती हैं। माता पृथ्वी के शरीर में शिराओं का काम ये सरिताएँ ही करती हैं, जिससे रसमयी धरित्री पर जड-जंगम की सृष्टि निरंतर उभरती, चलती तथा मिटती रहती है। किंतु, इन हजारों मातृ-सरिताओं में माता 'गंगा' की गरिमा कुछ और है, जो वस्तुतः अनिर्बचनीय है। संसार की बड़ी-से-बड़ी नदियाँ गंगा की गुणगरिमा की प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकती हैं, इसीलिए गंगा इस पुण्यभूमि 'आर्यावर्त्त' की सबसे पुण्यवती एवं धुरिकीर्त्तनीय नदी मानी गई है। गंगा का थोड़ा-सा गौरव आप इसी बात से समझ सकते हैं कि आजतक ऋषियों, कवियों, लोकगायकों तथा लेखकों ने गंगा-विषयक जितना साहित्य लिखा है, उतना संसार के किसी भी साहित्य में एक नदी के संबंध में, नहीं लिखा जा सका है और न आगे ही लिखा जा सकेगा।

गंगा-तत्त्व :

गंगा का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ होता है—**गां पृथ्वीं गच्छतीति गङ्गा**। अर्थात्, जो स्वर्ग से सीधे पृथ्वी पर आये, वह गंगा है।[2] फिर, इसकी दूसरी व्युत्पत्ति है—**गं अव्ययं (स्वर्गं) गमयतीति गङ्गा**। यानी. जो स्वर्ग की ओर ले जाय, वह 'गंगा' है। अर्थ स्पष्ट है कि गंगा सीधे स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरती है और पृथ्वी से जीवों को स्वर्ग भी ले जाती है। इस प्रकार, स्वर्ग और धरित्री की अविच्छिन्न सोपान-धारा बनने का सौभाग्य गंगा के अतिरिक्त संसार की किसी भी दूसरी नदी को प्राप्त नहीं है। काव्य-द्रष्टा महाकवि कालिदास ने गंगा के इस रहस्य को समझकर ही ये पंक्तियाँ लिखीं :

जह्नोः कन्यां सगर-तनय-स्वर्ग-सोपानपङ्क्तिम्।[3]

स्वर्गारोहण-निःश्रेणिर्मोक्षमार्गाधिदेवता।[4]

त्रयताप-विनाशिनी गंगा नदी स्वर्ग और पृथ्वी की अविच्छिन्न सोपान-पंक्ति है, इस रहस्य को वही ठीक से समझ सकेगा, जिसे वैदिक विज्ञान में आस्था है और जिसने वैदिक

---

१. सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्। —रघुवंश, २।७४।

२. बाराहपुराण, अध्या० ८२।

३. मेघदूत, पूर्व, ५४।

४. कुमारसंभव, १०।२९।

विज्ञान के आधार पर सृष्टि के तत्वों को जानने तथा समझने का प्रयास किया है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' के अनुसार, मौलिक जल के चार भेद हैं, जिनके नाम हैं—अंभ, मरीचि, भर तथा आप इसमें 'अंभ' संपूर्ण द्युलोक में परिव्याप्त है और यह शुद्ध मौलिक तत्त्व है। 'अंभ' का ही दूसरा पर्याय 'अप्' है। इसी अंभ-पारावार में सूर्य-बिंब तैरता रहता है। सूर्य के प्रचंड ताप से स्रवित होकर जो अंभोंऽश अंतरिक्ष में फैला है, उसे 'मरीचि' कहते हैं। सूर्य की दिगंतप्रसारी समग्र किरणें 'मरीचि' से व्याप्त रहती हैं। मरीचि से उत्पन्न जल का नाम 'मारीचि' है और इस मारीचि-महासमुद्र में चंद्रमा-रूपी गरुड अपना पर तौलता रहता है।[१] जो जल मेघों के द्वारा बनता है और पृथ्वी पर बरसकर नदियों, झीलों तथा समुद्रों को प्राप्त होता है, उसे 'भर' कहते हैं। यही 'भर'-तत्त्व ऑक्सीजन और हाइड्रोजन से बना होता है और यही जब पृथ्वी के भीतर से प्राप्त होता है, तब 'आप' कहलाता है।[२] इस 'आप' की मूल तन्मात्रा 'अप्' है।

पुराणों में कहा गया है कि ध्रुव-रूपी शैल-शिखर से जो जल सुमेरु के ऊपर गिरता है, उसी का नाम 'गंगा' है। हमारे ब्रह्मांड की परिधि ध्रुव तक मानी गई है। यह ब्रह्मांड भी एक कल्पित परिधि है। हमारे सूर्य का प्रकाश जितनी परिधि में फैला होता है, उतनी परिधि को ब्रह्मांड कहा जाता है। अनंत अंतरिक्ष में संख्यातीत सूर्य बतलाये गये हैं और जितने सूर्य हैं, उतने ही ब्रह्मांड कहे गये हैं। इन सारे ब्रह्मांडों में 'अंभ' प्रकाश की तरह व्याप्त है। महाब्रह्मांड में एक सूर्य के प्रकाश की विकिरण-सीमा दूसरे सूर्य के प्रकाश की विकिरण-सीमा को छूती है। दोनों सूर्यों की विकिरण-सीमाओं के संघर्ष से 'अप्'-तत्त्व घनीभूत होता है और उससे संतत जो तत्त्व स्रवित होता है, वही 'गंगा'-तत्त्व' कहलाता है। इसलिए, पुराणों में गंगा को 'अपर ब्रह्मांड की जलधारा' कहा गया है। यह तो सभी जानते हैं कि वामन भगवान् के चरण-विक्षेप करने पर उनके नखाग्र से ब्रह्मांड का ऊपरी गोल टूट गया, जिससे अंभ की धारा फूट पड़ी और वह शिव के जटाजूट में गिरी, जो गंगा कहलाई। गंगा के इस रहस्य को महामहोपाध्याय प० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है :

"आधिदैविक भाव में प्रातःकालीन सूर्य ही 'वामन' कहा जाता है। उसके नख (किरण) के अग्रभाग ने जहाँ विवर बनाया, वहीं से यह जलधारा गिरती है। सप्तर्षि-प्रदेश ही 'विष्णुपद' कहा जाता है, अतः उस प्रदेश-स्थित गंगा का नाम 'विष्णुपदी है। अष्टमूर्त्ति भगवान् शंकर का केश-कलाप ही आकाश है, जिससे शंकर का एक नाम 'व्योमकेश' है। व्योम में व्याप्त रहने के कारण यह गंगा 'हर-जटाजूट-वासिनी' कहलाती है।

१. चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि, न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दति, विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी।—ऋक्-सं० १।१०५।१।

२. स इमान् लोकानसृजत—अम्भोमरीचिर्मर आपः। अदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठा, अन्तरिक्षं मरीचयः, पृथिवी मरः या अधस्तात् ता आपः।—ऐतरेय ब्राह्मण, १।१।१।

वैज्ञानिक लोग जानते हैं कि तत्त्वों का परिवर्त्तन एक दिन में नहीं हुआ करता। सैकड़ों-हजारों वर्षों में एक तत्त्व प्रकृति के नियमानुसार दूसरे रूप में परिवर्त्तित होता है। अतएव, अप् भी अपनी सूक्ष्म अवस्था में हजारों वर्षों तक रहकर जल के रूप में आता है। अतः, पुराणों में हजारों वर्षों तक गंगा का 'विष्णुपद' तथा 'शिव-जटा' में रहना लिखा हुआ है।"[१]

इस प्रकार, गंगा का जल सीधे द्युलोक (सूर्यलोक) से अंतरिक्ष में आता है और वहाँ चंद्रमा को सोम रूप में परिवर्त्तित करता हुआ सुमेरु के गह्वर में निरंतर चूता रहता है। गंगा का यह अप्-तत्त्व इसीलिए अन्य नदियों के जल से भिन्न होता है। सुमेरु-प्रदेश में जब यह अप् (अंभ) गिरता है, तब घनीभूत तुषार में परिणत हो जाता है। पश्चात् इसका कुछ अंश वाष्प बनकर फिर उसी द्युलोक में जा पहुँचता है और कुछ मारीचि-रूप में अंतरिक्ष में फैला रहता है तथा कुछ पिघलकर पृथ्वी पर बहता है, इसलिए 'गंगा' को 'त्रिपथगा' कहा जाता है। पौराणिक ग्रंथों के अनुसार, पहली ऊर्ध्वगामी धारा है, दूसरी मर्त्यलोकवाली धारा और तीसरी पाताल-प्रवेशिनी धारा है। इस प्रकार, गंगा का जल सीधे द्युलोक से सुमेरु के गह्वर में आता है तथा पुनः हिमालय के माध्यम से भारतभूमि में बहता है और तब सागर तक पहुँचकर पाताल में प्रवेश करता है। समुद्र में गंगा जब प्रवेश करती है, तब तुरत ही समुद्र के जल में विलीन नहीं हो जाती है; बल्कि उसके भीतर में प्रवेश करके बहुत दूर तक धारा बनती हुई वहती है। सूर्यतनया 'यमुना' और विष्णुपदी गंगा को छोड़कर दूसरी कोई ऐसी नदी नहीं है, जिसे सीधे अंभोरूप जल प्राप्त होता है। इसीलिए, हमारे शास्त्रों में गंगा-यमुना की अमित महिमा गाई गई है और इसी आधार पर ही गंगा, पृथ्वी एवं स्वर्ग की सोपान-धारा बतलाई गई है।

गंगा का प्राचीन साहित्य :

भारतीय गंगा नदी की प्राचीनता, प्रधानता एवं महत्ता इसी से प्रमाणित है कि ऋग्वेद[२] ने अपने 'नदीसूक्त' में जिन मुख्य नदियों का स्मरण किया है, उनमें गंगा का आवाहन सर्वप्रथम है। पुनः उसी ऋग्वेद ने **उरुः कक्षोन गाङ्ग्य.**[३] वाक्य का व्यवहार कर गंगा के तटों की भी महिमा प्रतिपादित कर दी है। गंगा और यमुना-तटीय प्रदेशों में दौष्यंति 'भरत' ने अपनी विजयों के उपलक्ष्य में जो यज्ञ किये थे, उनकी गाथा 'शतपथ-ब्राह्मण'[४] तथा 'ऐतरेयब्राह्मण'[५] गाते हैं। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने गंगा की उत्पत्ति

१ वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पृ० १११-११२।

२. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्या मरुद्वृधे, वितस्तया-र्जीकीये शृणुत्वा सुषोमया।—ऋग्वेद, १०।७५।५-६।

३. तत्रैव, ६।४५।३१।

४. शतपथब्राह्मण, १३।५।४।११—१३।

५. ऐतरेयब्राह्मण, ३९।९।

की कथा अपने एक ही श्लोक में कही है, जिससे पूर्वकथित हमारे विचार की परिपुष्टि होती है :

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती ।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूनिर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित् पावनी नः पुनातु ।।

महर्षि वाल्मीकि के विचार से सहमति प्रकट करते हुए व्यास ने भी 'महाभारत' में कहा है कि "ध्रुव-रूपी शैल-शिखर से भागीरथी गंगा की धारा बड़े वेग से पहले चंद्रमा के ह्रद को प्लावित करती है। यह धारा दूध के समान श्वेत है। यह विश्व में व्याप्त है और इसकी उपमा नहीं है। यह भयंकर शब्द करनेवाली है। पवित्रता की पराकाष्ठा से युक्त पुण्यवती है। वह अंतरिक्ष में समुद्र के सदृश एक महाह्रद का निर्माण करती है। अनेक पर्वत भी जिसे धारण करने में समर्थ नहीं है, उस धारा को भगवान् शिव एक लाख वर्षों तक अपने शिर पर धारण करते हैं।"[१]

गंगा की धारा सीधे स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आती है, इसका प्रतिपादन 'विष्णु-पुराण' भी करता है। इसके अनुसार, विष्णु के वामपद के अंगूठे के नख से ज्योतिःस्रोत-रूप में गंगा विनिर्गत होती है, जिसे ध्रुव-प्रदेश सर्वदा भक्तिपूर्वक धारण करता है। उस गंगा की ऊर्मियों से भरे जटा-जाल में प्राणायाम-संलग्न सप्तर्षि स्थिर हैं।[२] यहाँ 'प्राणायाम-परायण' शब्द से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सप्तर्षि-मण्डल में जो गंगा-तत्त्व वर्त्तमान है, वह ऑक्सीजन-रूप में लहराता रहता है। फिर, गंगा-तत्त्व की उत्पत्ति के संबंध में बहुत ही स्पष्ट प्रतिपादन 'श्रीमद्भागवतपुराण' भी करता है। वह कहता है कि साक्षात् भगवान् त्रिविक्रम के वाम अंगुष्ठ के नख से ऊर्ध्वाण्ड कटाह का भेदन हुआ, जिससे उस विवर के भीतर में प्रविष्ट जो बाहरी जलधारा है. वह भगवान् के पद-पंकज की

---

१. तस्य शैलस्य शिखरात् क्षीरधारा नरेश्वर ।
विश्वरूपाऽपरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ।।
पुण्यापुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा ।
प्लवन्तीव प्रवेगेण ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ।।
तया ह्युत्पादितः पुण्यः स ह्रदः सागरोपमः ।
तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि ।।
शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव महेश्वरः ।।
—महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय ६, श्लोक २८—३१ ।

२. वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतविनिर्गताम् ।
विष्णोः विभर्त्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः ।।
ततः सप्तर्षयो यस्याः प्राणायामपरायणाः ।
तिष्ठन्ति वीचिमालाभिः सह्यमानजटाजले ।।
—विष्णुपुराण, अंश २, अ० ८, श्लो० १०९-११० ।

अरुणिमा में रँगकर बाहर निकली। फिर, पद (चरणों) के स्पर्श से वह धवल हो गई और 'भगवत्पदी' कहलाई। बहुत समय बाद, अर्थात् एक सहस्र युग के पश्चात् अंतरिक्ष के मस्तक पर उतरी। अंतरिक्ष का वही मस्तक 'विष्णुपद' कहलाता है। जहाँ वीरव्रत औत्तानपादि ने उसे अपने शिर पर धारण किया। इसके पश्चात् गंगा ब्रह्मसदन में गिरी। वहाँ वह चार भागों में विभक्त हो गई, जिनके नाम सीता, अलकनन्दा, चक्षु: और भद्रा पड़े। इनमें अलकनंदा दक्षिण दिशा में बही और ब्रह्मसदन से चलकर बहुत-से गिरिकूटों का अतिक्रमण करती हेमकूट पर आई तथा वहाँ से वह अत्यंत वेगवती बनती, भारतवर्ष की भूमि में बहती, दक्षिण दिशा मे स्थित समुद्र में प्रवेश कर गई। इस गंगा में स्नान के निमित्त आये पुरुष पद-पद पर अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञों के दुर्लभ फल प्राप्त करते हैं।[१]

इस प्रकार, गंगा की उत्पत्ति के पश्चात् अनेक ग्रन्थों ने इसकी महिमा का गान किया है। महाभारत के 'वनपर्व' के अध्याय ८५ में तथा अनुशासनपर्व के अध्याय २६ में एवं अन्य कई स्थानों में त्रिभुवनतारिणी गंगा नदी का जैसा बखान किया गया है, उससे पता चलता है कि महाभारत के रचनाकाल तक इसकी अलौकिकता तथा अद्भुत शक्ति की पहचान भारतीय ऋषियों और कवियों को हो गई थी। वनपर्व में कहा गया है कि सैकड़ों दुष्कर्म करनेवाला पापी पुरुष यदि गंगा जल में मज्जन करता है, तो उसके दुरित उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं, जिस प्रकार सूखी लकड़ी आग से जलकर भस्म हो जाती है :

> यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गङ्गाभिषेचनम्।
> सर्वं तत् तस्य गङ्गाम्भो दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥
>
> —महा, वन०, अध्या० २५, श्लो० ८९।

यहाँ महाभारतकार ने गंगाजल नहीं कहा है, बल्कि 'गंगांभ' शब्द का प्रयोग किया है, जिससे स्पष्ट है कि गंगा का जल साक्षात् अंभोरूप में ही विद्यमान रहता है। फिर, महाभारत के उसी स्थान पर कहा गया है कि गंगा उन पापिष्ठों को पवित्र कर देती है, जो उसके नाम का स्मरण करते हैं और दर्शन करनेवाले प्राणियों का वह सौभाग्य-वर्द्धन करती है। गंगा के जल में स्नान करने से या उसके जल का पान करने से मनुष्यों की सात पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। महाभारत के भीष्मपर्व के एक अंश 'भगवद्गीता'

---

१. तत्रभगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाह-विवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमला पदोपस्पर्शनामला साक्षात् भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार। यत्तद् विष्णुपदमाहुः। यत्र... वीरव्रत औत्तानपादिः शिरसा बिभर्ति।..... ततो ब्रह्मसदने निपतति। तत्र चतुर्धा भिद्यमाना सीतालकनन्दा चक्षुर्भद्रा .. तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटानि अतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति। यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति।—श्रीमद्भागवत, स्क० ५, अध्या० १७।१-९।

में कृष्ण कहते हैं—**स्रोतसामस्मि जाह्नवी** ।[१] इसी प्रकार, 'वाल्मीकीयरामायण' के बालकांड के ३५वें सर्ग से ही गंगा की उत्पत्ति और उसकी महिमा का वर्णन विशद रूप में ऋषि विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को सिद्धाश्रम से जनकपुर जाते समय सुनाया है। इसके बाद अयोध्याकाण्ड के उस स्थल पर भी गंगा की महिमा गाई गई है, जहां राम अपने अनुज और पत्नी के साथ गंगा पार कर रहे हैं। 'मनुस्मृति' की दृष्टि में भी गंगा इतनी पवित्र नदी थी कि साक्ष्य के लिए साक्षियों को 'गंगा' और 'कुरुक्षेत्र'—इन तीर्थों की शपथ लेनी पड़ती थी। उनसे गवाही देने के पहले कहलवाया जाता था : **तेन चेदविवादास्ते मा गङ्गा मा कुरुङ्गमः** ।[२]

हमारे पुराण-ग्रंथों में तो और भी अधिक गंगा की महत्ता प्रतिपादित की गई है और इस प्रकार प्रायः सभी पुराण गंगा के अमित गुण गाते हैं। 'विष्णुपुराण' का एक उद्धरण पहले दिया गया है।[३] उसके अतिरिक्त, अन्य दो अध्यायों में भी गंगा का विशद वर्णन है। यहां कहा गया है कि कोई व्यक्ति यदि एक सौ योजन की दूरी से भी 'गंगा-गंगा' ऐसा नाम उच्चारण करता है, तो उसके तीन पूर्वजन्मों के किये गये पाप-कर्म विनष्ट हो जाते हैं :

गङ्गागङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि ।
स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम् ॥

इतना ही नहीं, संसार का कोई प्राणी यदि गंगा का नाम सुन लेता है, उसकी इच्छा करता है, उसे देखता है, उसके जल का स्पर्श करता है, पीता अथवा स्नान करता है या प्रतिदिन उसके नाम का स्मरण करता है, तो गंगा उसे पाप से रहित कर देती है :

श्रुताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टा पीतावगाहिता ।
या पावयति भूतानि कीर्त्तिता च दिने दिने ॥

'भविष्यपुराण' भी इसी तरह गंगा की संस्तुति कर अपनी वाणी को पवित्र करता है :

दर्शनात्स्पर्शनात् पानात् तथा गङ्गेति कीर्त्तनात् ।
स्मरणादेव गङ्गायाः सद्यः पापैः प्रमुच्यते ॥

'कूर्मपुराण' का कहना है कि स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथ्वी में स्थित जिन साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का बखान 'वायुपुराण'[४] करता है, उन सभी तीर्थों के पुण्य और गुण अकेले 'गंगा' में है।[५] फिर, 'पद्मपुराण' कहता है कि स्वर्ग और मोक्ष को देनेवाली तथा सभी

---

१. भगवद्गीता, अध्या० १०, श्लो० ३१ ।
२. मनुस्मृति, अध्या० ८, श्लो० ९२ ।
३ विष्णुपुराण, २।८।१२०-१२१ ।
४. किन्तु 'नारदीयमहापुराण' 'ब्रह्माण्डपुराण' को वायु द्वारा प्रोक्त मानता है ।
५. तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥ —कूर्म० १।३९।८ ।

प्रकार के सुखों और सौभाग्यों का वर्द्धन करनेवाली गंगा स्वयं जब इस भूतल पर विद्यमान है, तब बहुव्ययी यज्ञ तथा शरीर को तपानेवाले तप—ये सब व्यर्थ हैं।

किं यज्ञैर्बहुवित्ताढ्यैः किं तपोभिः सुदुष्करैः।
स्वर्गमोक्षप्रदा गङ्गा सुखसौभाग्यपूजिता॥

—पद्म०, ५।६०।३९।

ठीक इसी प्रकार, गगा की महिमा 'नारदीयमहापुराण' भी गाता है। वह कहता है कि यदि कोई गंगा की कछार में बसता है, तो उसके लिए अष्टांग योग, तप और यज्ञ ये सब व्यर्थ हैं; क्योंकि इन सबसे श्रेष्ठ फलदायक गंगा-क्षेत्र का निवास है :

किमष्टाङ्गयोगेन किं तपोभिः किमध्वरैः।
वास एव हि गङ्गायां सर्वतोऽपि विशिष्यते॥

—नार०, उत्तरखंड, ३८।३८।

'पद्मपुराण' के कथनानुसार, विष्णु के पद-नख से प्रस्यूत होकर गंगांभ पृथिवी पर मानवों को, पाताल-लोक में नागों को तथा स्वर्ग-लोक में देवताओं को, अर्थात् त्रिभुवनवासियों को तार देता है, इसीलिए माँ गंगा 'त्रिपथगा' कहलाती हैं।[१] वह फिर आगे कहता है कि जिस प्रकार अग्नि रुई के अंबार को और सूखे तृणों के ढेर को क्षण-भर में भस्म कर देती है, उसी प्रकार 'गंगांभ' अपने स्पर्श-मात्र से मनुष्य के पापों का दहन कर देता है।[२] इस प्रकार, गंगा के प्रवाह, तट और क्षेत्र की गुणावली के संबंध में पुराणों ने अपने सैकड़ों पृष्ठ रँगे हैं, जिनका उल्लेख इस अति साधारण पुस्तक में असंभव है। यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि 'स्कंदपुराण' के काशीखंड और केदारखंड; नारदीयपुराण के उत्तरार्द्ध, अध्याय ३८ से ४५ तक तथा पुनः ५१वाँ अध्याय; श्रीमद्भागवत, स्कंध ९, अध्याय ९; देवीभागवतपुराण, स्कंध ९, अध्याय ४; मार्कंडेयपुराण, अध्याय ५५; वामनपुराण, अध्या० ३४; वाराहपुराण, अध्या० ७१; पद्मपुराण, आदि-खंड, अध्या० ३३ से ३७ तक, फिर सृष्टिखंड का अध्या० ६० एवं पातालखंड का अध्या० ५; मत्स्यपुराण, अध्याय १०४, ११३, १२१ और १८० से १८५ तक; अग्निपुराण, अध्या० ११०; ब्रह्माण्डपुराण के उपोद्घातपाद ३, अध्या० ५६ तथा ८२; कालिकापुराण, अध्या० ४९; ब्रह्मपुराण, अध्या० ४९, ५३, १०१ और १०५; विष्णुपुराण, अंश २, अध्या० ८; ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, अध्या० ६, १०, ११ और १८ आदि अनेक स्थलों में प्रचुर गंगा-साहित्य उपलब्ध है तथा इनमें उसकी अमित महिमा का वर्णन प्राप्त है। इन सबका उल्लेख यहाँ कठिन है और हमारे प्रतिपाद्य विषय से भिन्न है। इनके अतिरिक्त महाकवि कालिदास के अनेक पद्य[३], पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' तथा विगत हजारों वर्षों से देशी-

१. पद्मपुराण, सृष्टिखंड, ६४। ५३
२. तत्रैव, ६४। ७
३. कुमारसंभव के १०वें सर्ग में गंगा की महिमा का विशेष रूप से वर्णन कालिदास ने किया है।

विदेशी भाषाओं में व्यवहृत गंगा-संबंधी साहित्य आज प्राप्त हैं। हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं तथा लोकगीतों में गंगा-संबंधी जो अपार साहित्य प्राप्त है, उसका लेखा लेना तो वृहस्पति के लिए भी कठिन है। इस प्रकार, इन सबका अध्ययन तथा विवेचन एक बड़े ग्रंथ का स्वतंत्र विषय है।

ऐसी देवदुर्लभ सुर-सरिता एवं महिमावती माँ गंगा के तटीय तीर्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण तथा पुण्यतीर्थ हरद्वार, प्रयाग, काशी और गंगासागर-संगम माने गये हैं। किंतु, मत्स्य, कूर्म और पद्मपुराणों में हरद्वार, प्रयाग और गंगा-सागर ये तीन ही तीर्थ अधिक पुण्यवान् बतलाये गये हैं।[१] 'स्कंदपुराण' के केदारखंड के अध्या० २९ में गंगा के एक सहस्र नामों का स्मरण-कीर्त्तन किया गया है। यहाँ कहा गया है कि 'गंगासहस्रनाम' का पाठ करनेवाला यदि पुत्रार्थी है, तो वह भगीरथ के समान प्रतापी पुत्र प्राप्त करेगा और यदि वह विद्यार्थी है, तो उसे वाचस्पति के सदृश वाक्-सिद्धि मिलेगी :

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भगीरथसमं द्रुतम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां वाचस्पतिसमो भवेत् ॥

'नारदीयपुराण' ने गंगा-स्थल को तीन भागों में विभक्त किया है, जो गंगागर्भ, गंगातीर और गंगाक्षेत्र कहलाते हैं। गंगागर्भ उसे कहा जाता है, जहाँतक भाद्रपद की कृष्णा चतुर्दशी को गंगा का जल पहुँचता है, अर्थात् वर्षाऋतु में जहाँतक गंगा की बाढ़ चली जाती है, वहाँ तक गंगागर्भ कहलाता है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि किसी भी नदी की बाढ़ का पानी वहीं तक जाता है, जहाँ कभी उस नदी की धारा बहती थी। इस गंगागर्भ की सीमा से १५० हाथ (२२५ फुट) की दूरी तक के भूमिभाग को गंगातट कहा गया है और इस तट-प्रदेश से दो कोस की दूरी तक की भूमि-भाग को गंगाक्षेत्र माना जाता है।[२] 'नारदीयपुराण' उक्त गंगागर्भ और गंगातीर में निवास करने से लोगों को वर्जित करता है। वह गंगाक्षेत्र में ही वसने का विधान करता है।[३] प्रस्तुत पुस्तक में बिहार-प्रदेश में बहनेवाली गगानदी के गर्भ, तट-प्रदेश तथा क्षेत्र—इन तीनों गांगेयों का विशेषतया सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से भी पर्यवेक्षण करना ही लेखक का अभीष्ट विषय है।

---

१. सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥ मत्स्य०, १०।६।६४।

२. भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम्।
तावद्गर्भं बिजानीयात्तदूर्ध्वं तीरमुच्यते ॥
सार्द्धहस्तशतं यावगद्र्भस्तीरं ततः परम्।
—नारदीयपुराण, उत्तरखंड, अध्याय ४३, श्लो० ११७-११८।

३. तीराद् गव्यूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यते।
तीरे त्यक्त्वा वसेत् क्षेत्रे तीरे वासो न चेष्यते॥
एकयोजनबिस्तीर्णा क्षेत्रसीमा तटद्वयात्।।—तत्रैव, श्लो० ११९-१२०।

गंगावतरण :

गंगा के अवतरण की पौराणिक और मनोरंजक कहानी से ज्ञात होता है कि घोर तपस्या करके अपने पितरों (सगर-पुत्रों) को तारने के लिए राजा भगीरथ ब्रह्मलोक में व्याप्त, विष्णु (सूर्य) के पाद (किरणों)·पद्मोदक से उद्भूत एवं व्यामकेश-जटा-अटा-वासिनी गंगा[१] को पृथ्वी पर उतार ले आये। भगीरथ द्वारा ले आने के कारण बहुत लोगों का कहना है कि भगीरथ के पूर्व गंगा का पूर्वी और उत्तरी भूमिभाग (उत्तरप्रदेश के कुछ जिले, उत्तरबिहार और बंगाल-प्रदेश) नहीं बन पाया था। इन स्थानों में उस समय के पूर्व समुद्र लहराता था और विंध्य की नदियाँ उस समुद्र के दक्षिणी किनारे तथा हिमालय की नदियाँ उसके उत्तरी तट में गिरती थीं। भगीरथ के पूर्वजों में कुछ तो हिमालयीय पठारों में और कुछ विंध्य के पठारों में बसते थे। बात बिलकुल ठीक भी लगती है। हिमालय की दक्षिणवाहिनी नदियों तथा विंध्य की उत्तरवाहिनी नदियों द्वारा बहाई गई मिट्टियों एवं पथरीले धूलिकणों से ही उक्त भूमि-भागों का निर्माण हुआ है। किंतु, पूर्वी बंगाल (वर्त्तमान में पूर्वी पाकिस्तान) के भूमि·निर्माण में गंगा के साथ ब्रह्मपुत्र नद का भी श्रेय है। हम जब मनोयोगपूर्वक पुराणों के सृष्टिखंड का मनन-चिंतन करते हैं, तब हमें स्पष्ट पता चलता है कि भारतवर्ष की अत्यंतातीत कथाओं का आधार हिमालय का उत्तरी भूमिभाग (मेरुप्रदेश) तथा विंध्याद्रि का भू-क्षेत्र ही रहा है। राजा 'बलि' के जिस यज्ञ में 'त्रिविक्रम वामन' भगवान् के छल करने की कहानी है, उस दैत्यराज 'बलि' का निवासस्थान विंध्य के सानु-प्रदेश में ही हम देखते हैं।[२] उस पुरातन काल में इक्ष्वाकुवंशियों का राज्य या तो विंध्याटवी के भू-भाग में और कुछ मेरु के उत्तर-दक्षिण के भू-भागों में फैला हुआ था।[३]

भगीरथ जब गंगा को लाने के निमित्त तपस्या करने के लिए प्रयाण करते हैं, तब सर्वप्रथम गोदावरी के तीर पर स्थित भृगु-आश्रम में जाते हैं।[४] यह प्रयाण अयोध्या से हिमालय-प्रदेश में जाने का क्रम नहीं हो सकता। जिन पुराणों में भगीरथ के पूर्व उनके पूर्वजों का अयोध्या में निवास बतलाया गया है, वे अंश बाद में लिखे मालूम पड़ते हैं।

---

१. विष्णुपादोदकोद्भूता ब्रह्मलोकादुपागता।
त्रिभिः स्रोतोभिरश्रान्तं पुनाना भुवनत्रयम्।।
महेश्वरजटाजूटवासिनी पापनाशिनी।
सागरान्वयनिर्माणकारिणी धर्मचारिणी।।

—कुमारसंभव, सर्ग १०, श्लो० ३०-३१।

२. स्कंदपुराण, केदारखंड १६, अ० ११, श्लो० ३८ से ४१; वाल्मीकीय रामायण, बालकांड, सर्ग २६, श्लो० ३ से ६; हरिवंशपुराण, भविष्यपर्व, अध्याय ५८ और विष्णुपर्व, अध्या० ११६ देखिए।

३. पद्मपुराण, सृष्टिखंड, अध्या० ८, श्लो० १३१ से १३३ तक।

४. नारदीयपुराण, गंगोत्पत्ति-प्रसंग, अध्याय ६, श्लो० २५।

गंगा का प्रवाह-मार्ग :

अपनी अत्युग्र तपस्या से भगवान् शंकर को प्रसन्न करके उनके जटा-जाल से माँ गंगा का उद्धार जब भगीरथ ने किया, तब गंगा को आगे बढ़ने में हिमालय-शृंखला ने व्यवधान डाला। पुनः भगीरथ को कठिन तपस्या करनी पड़ी, जिससे इंद्र प्रसन्न हुए और उन्होंने भगीरथ की सहायता करने के लिए अपने ऐरावत को भेजा। ऐरावत ने अपने वज्रदंतों से हिम-पर्वत के तीन स्थानों पर भेदन किया—**तेन भित्त्वा नगं वीर्यात् त्रिभिर्दन्तैः कृतं बिलम्।**[1] इसका तात्पर्य है कि हिमालय में जब गंगा की धारा आई, तब बर्फानी धारा होने के कारण तथा हिमालय के अति निम्नोन्नत पठार के कारण वह हिमालयीय शिलाओं को तोड़कर बह नहीं सकी, तब 'ऐरावत' नामक मेघ ने इतना पानी बरसाया कि उसके वेग के साहाय्य से गंगा की धारा ने तीन स्थानों पर हिमालय के शिला-गह्वरों को फोड़ डाला। ऐरावत का मानी होता है—**इरावान् समुद्रः तत्र भवः ऐरावतः।** अर्थात्, समुद्र के बाष्प से बने मेघ का नाम ऐरावत है, जो इंद्र का गज माना गया है। इस प्रकार, तीन विवरों से निकलकर त्रैलोक्यतारिणी त्रिपथगा गंगा बड़े वेग से उछलती-उफनती सगर-पुत्रों को तारने सागर की ओर चली। गंगा किस-किस भूमि-भाग को पवित्र करती एवं शस्य-शाद्वल-संपन्न बनाती सागर तक पहुँची, इसका निर्देश भौगोलिक स्थिति के अनुसार कई पुराणों ने किया है। गंगोत्तरी से आरंभ करके दक्षिणोदधि तक के गंगा-मार्ग का उल्लेख 'वायुपुराण'[2] इस प्रकार करता है : सर्वप्रथम गंधर्वप्रदेश, किन्नर, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, उरग, कलापग्राम, पारद, सीगण, खस, किरात, पुलिंद, कुरु, भरत, पांचाल, काशी, मात्स्य,[3] मगध, अंग, ब्रह्मोत्तर (सुह्मोत्तर), वंग और ताम्रलिप्ति—

१. पद्मपुराण, सृष्टिखंड, अध्याय ६४, श्लो० ११२।

२. गन्धर्वान् किन्नरान्यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्।
कलापग्रामकाँश्चैव पारदान् सीगणान् खसान्॥
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् सभरतानपि।
पाञ्चालकाशिमात्स्यांश्च मगधाङ्गांस्तथैव च॥
ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च।
एताञ्जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभान्॥
ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥

—वायुपुराण, अध्या० ४७, श्लो० ४७—५०।

३. गोमती-गंगा-संगम से आरंभ करके कर्मनाशा-संगम तक भारतवर्ष में एक दूसरा मात्स्य राज्य था, जिसकी राजधानी गंगा के दाहिने किनारे 'वैराँट' नामक गंगातटीय स्थान आज भी उसका स्मृतिचिह्न है। गाजीपुर का 'मतसा' गाँव (गंगा के दाहिने किनारे का) इसी मात्स्य का स्मरण कराता है; जो बाढ़ के कारण इधर-उधर होता रहा है। भीम द्वारा पूर्व-दिग्विजय में जिस मात्स्य की चर्चा है (दे० सभापर्व, ३०।८), वह यही जनपद है। जयपुरवाले मत्स्य की विजय तो 'सहदेव' ने की थी।—दे० सभापर्व, अध्या० ३१० श्लो०२।

इतने जनपदों से गुजरती गंगा नदी विंध्य से प्रतिहत होकर दक्षिणोदधि में प्रवेश कर जाती है।

उपर्युक्त प्रदेशों से होकर गंगा के गुजरने पर भी प्रवाह-पथ की दूरी की दृष्टि से गंगा का प्रवाह-मार्ग सिंधु के तथा ब्रह्मपुत्र के प्रवाह-मार्ग से छोटा है,[1] फिर भी महत्ता और पवित्रता की दृष्टि से गंगा का स्थान इन दोनों से श्रेष्ठ है। इसका रहस्य यह है कि गंगा का जल सीधे ध्रुव प्रदेश से आता है तथा भारत को विस्तृत करने, इसकी भूमि को शस्य-संपन्न बनाने एवं वैभवपूर्ण करने में गंगा नदी ने जैसा योगदान किया है, वैसा न तो सिंधु ने या न ब्रह्मपुत्र ने ही। इस दृष्टि से विचारने पर गंगा के समक्ष भारतवर्ष की किसी भी दूसरी नदी का महत्त्व नगण्य है। इसीलिए, भारत के बड़े-बड़े नगरों का प्रादुर्भाव गंगा के तटों में हुआ एवं भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं राजनीति को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने का सर्वाधिक गौरव गंगा और उसके तटों को ही प्राप्त हुआ।

गंगा के उद्गम-स्थान (गंगोत्री) की ऊँचाई समुद्र-तल से १३,८०० से भी कुछ ऊपर है। अपने उद्भव-स्थान से गंगा-सागर तीर्थ तक का, गंगा का प्रवाह-पथ १६८० मील (२६८८ कि० मी०) लंबा है, जो पूर्वकथित प्रदेशों के भूमिभाग से गुजरता है। अपने उद्भव-स्थान पर गंगा की पेटी केवल २७ फुट चौड़ी है और गहराई मात्र एक हाथ, यानी डेढ़ फुट। हमारे बिहार-प्रदेश में प्रवेश करने के पहले गंगा को समृद्ध करनेवाली प्रसिद्ध नदियों में जाह्नवी, विष्णुगंगा, पिंडर, मंदाकिनी, अलकनंदा, रामगंगा, सई, यमुना, टोंस (तमसा), गोमती और इनकी अनेक सहायक निर्झरिणियाँ मुख्य हैं। इनमें अंतिम पाँच को छोड़कर शेष पहलेवाली पाँच नदियाँ तो गंगा ही मानी जाती हैं। श्रीमद्भागवत (स्कंध ५, अध्याय१७) तो अलकनंदा को ही गंगा का मुख्य धार कहता है। इसके मानी हैं कि ये सभी बिंदुसरोवर से प्रकट होती हैं, जहाँ गंगोत्रीवाली धार का भी उद्भव है। अतः, ये सभी गंगा के समान अपने जल में पवित्रता तथा गुण रखती हैं।

गंगोत्री से हरद्वार तक गंगा की लंबाई १५० मील (२४० कि० मी०) और यमुना-संगम, प्रयाग तक इसका प्रवाह-लंब ६७० मील (१०७२ कि० मी०) है। इस प्रकार, गंगा प्रयाग से पूर्वाभिमुख होकर विंध्याचल तक आती है और तत्पश्चात् उत्तरवाहिनी बनकर काशी होते 'गोमती' नदी को ग्रहण कर फिर पूर्ववाहिनी होकर बिहार-प्रदेश में प्रवेश करती है। बिहार-प्रदेश से जैसे ही यह बाहर निकलती है, वैसे ही दो धाराओं में विभक्त हो जाती है। दक्षिणवाहिनी धारा का नाम भागीरथी और पूर्ववाहिनी का नाम 'पद्मा' हो जाता है। पुराणों में जिस धारा-मार्ग का उल्लेख मिलता है और जिसकी चर्चा यहाँ पहले की गई है, वह भागीरथी का प्रवाह-मार्ग है। यही धारा ताम्रलिप्ति में पहुँचकर दक्षिणोदधि में प्रवेश करती है और पुराणों के अनुसार यही प्राचीन है। किंतु,

१. गंगा का प्रवाह-मार्ग २६८८ कि०मी०, सिंधु का ३१५७ कि० मी० और ब्रह्मपुत्र का २८८० किलोमीटर है।

आधुनिक विशेषज्ञ 'पद्मा-प्रवाह' को ही प्राचीन प्रवाह मानते हैं, जो 'पावना' और ग्वालंदों होकर पूर्व की ओर बहती है तथा ब्रह्मपुत्र के प्रवाह से मिलकर सागर में संगम करती है। नारदीयपुराण 'पावना' को 'प्रद्यु म्नतीर्थ' तथा 'ग्वालंदों' को दक्षप्रयागतीर्थ कहता है।[१] ग्वालन्दों के पास ही ब्रह्मपुत्र की एक उपधारा 'यमुना' नदी 'पद्मा' से मिलती है। यह संयुक्त धारा जब आगे जाती है, तब 'मेघना' नामक नदी के संगम करने से संपूर्ण प्रवाह का ही नाम 'मेघना' हो जाता है। इस प्रकार, यह 'पद्मा' का प्रवाह 'मेघना' नाम से पूर्व बंगाल के 'नोआखाली' स्थान के पास वंगोपसागर में समाहित होता है।

वास्तविकता तो यह है कि संपूर्ण वंग-प्रदेश (पूर्व बंगाल के साथ) गंगा के डेल्टा में बसा है। गंगा-सागर से चटगाँव तक २७० मील (४३२ कि० मी०) की भूमि में गंगा-डेल्टा का विस्तार है, जिसमें गंगा का जल नौ उपधाराओं में, छिन्न-भिन्न होकर समुद्र में गिरता है। गंगा के समस्त डेल्टा-क्षेत्र का विस्तार ३,९१,१०० वर्गमील (६,२५,७६० कि० मी०) में है। बिहार-प्रदेश से बाहर होते ही जहाँ गगा नदी दो धाराओं में बँटती है, वहीं पहले प्राचीन युग में समुद्र था, ऐसा वैज्ञानिकों का मत है। पौराणिक आधार से भी इस मत की पुष्टि होती है; 'क्योंकि' कपिला-आश्रम को भारत के पूर्व-उत्तर कोण में बतलाया गया है, जहाँ सगर-पुत्र जलकर भस्म हो गये थे।[२] भागलपुर के जिस मंदार (मंदर) पर्वत से समुद्र के मंथन होने की कहानी कही जाती है, इससे भी प्रमाणित होता है, राजमहल के पूर्व में वंगोपसागर किसी युग में लहराता था। समुद्र-मंथन के बाद अमृत-पान तथा लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए देव-दानवों का जो संग्राम हुआ. वह राजमहल तथा सकरीगली के पास ही हुआ होगा।

गंगा का जल हरद्वार में ७००० घनफुट, वाराणसी में १९००० घनफुट, राजमहल में १,८०,००० घनफुट प्रतिक्षण प्रवाहित होता है। किंतु, वर्षाऋतु में, राजमहल में, यह

---

१. 'पद्मा' के प्रवाह-तट पर ही क्षत्रियों ने ब्रह्मर्षिता प्राप्त की थी। इसी के तट पर 'प्रद्युम्न-तीर्थ है और उसके आगे 'पद्मा' के तट पर दक्षप्रयागतीर्थ है, जहाँ यमुना ने पद्मा से संगम किया है। क्षत्रियों के द्वारा ब्रह्मर्षिता प्राप्त करने के कारण ही इस क्षेत्र का नाम 'ब्रह्मोत्तर' पड़ा था :

यत्र ब्रह्मर्षितां लेभे क्षत्रियास्तीर्थसेवया।
प्रद्युम्नतीर्थं तपसा ख्यातं यत्र स्मरो हरेः॥
प्रद्युम्ननामा पुत्रोऽभूत् परं तत्र महोदयम्।
ततो दक्षप्रयागं तु गङ्गातो यमुनां गता॥

—बृहन्नारदीयपुराण, गंगामाहात्म्य, अध्याय ६।

२. 'कपिलाश्रम' देश के उत्तर-पूर्व दिशा में था, इसका उल्लेख 'श्रीमद्भागवतपुराण' इस प्रकार करता है :

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके।
एष वाजिहयश्चोर आस्ते मीलितलोचनः॥

—स्कंध ९, अध्याय ८, श्लो० १०।

जल प्रतिक्षण २,०७,००० घनफुट तक बहता है। प्रयाग से वाराणसी तक प्रति कोस गंगा का प्रवाह-पथ एक फुट नीचा होता गया है। वाराणसी से कहलगाँव (भागलपुर जिला) तक प्रति कोस १० इंच और कहलगांव से कलकत्ता तक प्रति कोस ८ इंच प्रवाह-मार्ग नीचे की ओर ढलता गया है। किंतु, कलकत्ता से गंगासागर तक यह ढलाव केवल ४ से २ इंच तक रहता है। 'वृहन्नारदीयपुराण' ने गंगातट के जिन तीर्थों का, ऊपर से ढलते हुए प्रवाह-पथ के क्रमानुसार, उल्लेख किया है, उनके नाम हैं[1]—गंगाद्वार, कुशावर्त्त, कनखल, सौकर, ब्रह्मातीर्थ, कुब्जतीर्थ, कापिलतीर्थ, प्रयाग, विंध्याचल, काशी, वेणीराज्य (ददरी), गांडव, रामतीर्थ, सोमतीर्थ, चंपक, कलशतीर्थ, जह्नुह्लद, अदितितीर्थ, शिलोच्चयतीर्थ, इंद्राणीतीर्थ, स्नातकतीर्थ, प्रद्युम्नतीर्थ और दक्षप्रयागतीर्थ। इनमें ९ तीर्थ बिहार-प्रदेश में गंगातट पर हैं, किंतु गोमती-संगम के मार्कण्डेयतीर्थ[2] और तथाकथित सिद्धाश्रम (बक्सर) की चर्चा नहीं है।

पूर्ववर्णित गंगा के निर्देशित धारा-पथ के अनुसार मगध, अंग और ब्रह्मोत्तर के कुछ भाग बिहार-प्रदेश में हैं। आश्चर्य है कि आधुनिक मिथिला की समवयस्क भूमि वंग का नाम तो गंगा के प्रवाह-पथ पर उल्लिखित है; किंतु मिथिला के किसी जनपद का नाम इस निर्देश में नहीं मिलता। इससे तो यही पता लगता है कि 'वायुपुराण' के द्वारा निर्देशित मार्ग के रचनाकाल में मिथिला की सीमा गंगा तक नहीं आती थी।

त्रिभुवनतारिणी सुर-सरिता गंगा की विपुल मर्यादा का जो गौरव और गांभीर्य विहार-प्रांत में आँखों को आप्यायित करता है, वह न तो उत्तरप्रदेश में, न ही बंगाल की भूमि में। चौंसा से आरंभ करके राजमहल (संतालपरगना जिला) तक गंगा का विस्तृत पाट और जलराशि—ये दोनों समुद्र से प्रतिद्वंद्विता करते हैं। बिहार-प्रदेश के गंगा-प्रवाह और उसके तटों का स्वर्गानंद तभी कोई ले सकता है, जब वह कभी चौंसा से राजमहल तक अथवा उलटी धारा में राजमहल से चौंसा तक पानी के जहाज या नाव से गंगवार पर यात्रा करे। इतनी दूरी की गगा के रेतीले मैदानों में जहाँ ग्रीष्म का सूर्य दिन में आग उगलता है, वहीं संध्या में शीतल और मीठी बयार मन में गुदगुदी उठाती है और सारी रात रसिया चाँद गंगा के आँगन में सुधा की रसधार बरसाकर सितार बजाता रहता है। उसकी चाँदनी घाँघरों की लहरियाँ उड़ाती हुई धाराधार गिरोहों में चंचल लहरों पर नाचती है और कछार के पादप-पुंज मदमस्त होकर झूमते नजर आते हैं। कहीं गंगा की उद्वेलित ऊर्मियों पर छोटी-छोटी तरियों की डाँड़ों को मछुओं की भुजाएँ तोलती हैं, तो कहीं पालों के सहारे बड़ी नावें तरंगों पर तीर की भाँति उड़ती फिरती हैं। जगह-जगह तट-प्रदेशों में ग्रामीण अंचलों के नर-नारियों का झुंड सुरसरि-मज्जन का तत्काल पुण्यफल भोगता हुआ

१. वृहन्नारदीयपुराण, उत्तरखंड, अध्याय ४०, श्लोक २८ से ५४ तक।

२. महाभारत, वनपर्व, अध्याय ८४।

दीख पड़ता है, तो कहीं कगारों के देवालयों से उठे घड़ियालों, डमरुओं, मादलों एवं झाल-ढोलकों की तरंगायित स्वरों से सारा गंगांचल मुखरित होता हुआ मन को तृप्त करता रहता है। फिर, चक्रवाकों, सारसों, जलकुक्कुटों, टिट्टिभों, बलाका-पंक्तियों तथा विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे पक्षिसमूहों के विविध राव-विरावों से भरे ऊर्मि-उद्वेलित तट-प्रदेश और पुलिन-पटल दर्शकों की संपूर्ण इंद्रियों को बरबस अभिभूत कर लेते हैं। यदि कोई वास्तविक अर्थ में बिहार को देखना और जानना चाहता है, तो एक बार चौसा से 'राजमहल' तक गंगा का विहार नौका से अवश्य करे।

बिहार में गंगा की दूरी और सहायक नदियाँ :

गंगानदी संपूर्ण भारत में प्रमुख नदी तो है ही, यह बिहार-प्रदेश की भी सबसे बड़ी और पवित्र नदी है। इस प्रदेश की भूमि में जितनी भी नदियाँ बहती हैं, उन सबमें सर्वाधिक लंबा प्रवाह-मार्ग गंगा का ही है। चौसा (शाहाबाद) से राजमहल (संताल-परगना) और वहाँ से आगे 'गुमानी' नदी के संगम तक गंगा का प्रवाह-पथ ३४५ मील (५५२ कि० मी०) में है। गंगा जब सर्वप्रथम बिहार-प्रदेश की सीमा को छूती है, तब बिहार और उत्तरप्रदेश के बलिया जिले की ४५ मील तक सीमा बनकर चलती है। फिर, जब केवल बिहार के बीच भाग से हटने लगती है, तब बिहार और बंगाल के साथ ४० मील तक सीमारेखा बनकर गुजरती है। बीच के शेष २६० मील (४१६ कि० मी०) तक तो माता गंगा बिलकुल बिहार की भूमि में ही अपने प्रभूत और पवित्र जल को फैलाती है एवं इसकी भूमि को शस्य-शाद्वलों से सज्जित करती हुई बहती है। महत्ता और मर्यादा की दृष्टि से बिहार की सबसे बड़ी नदी गंगा इसलिए भी है कि छोटानागपुर की दामोदर, सुवर्णरेखा, शंख और दक्षिण कोयल तथा संतालपरगना की मयूराक्षी तथा अजय और पूर्णिया की महानंदा को छोड़कर उत्तर बिहार तथा दक्षिण बिहार की समस्त नदियों के अपार जल-भांडार को बिहार की भूमि में ही यह समेट लेती है। बिहार के बाहर हो जाने पर तो गंगा महानंदा, मयूराक्षी, अजय एवं दामोदर को भी आत्मसात् कर लेती है। अतः, बिहार प्रदेश की सिर्फ तीन ही नदियाँ—सुवर्णरेखा, शंख और दक्षिण कोयल—इसके उदर से बच निकलती हैं। इसके मानी हुए कि बिहार-प्रदेश के १७ जिलों में से केवल दो ही जिलों (रांची के दक्षिण-पश्चिम का भाग तथा सिंहभूमि, का जल गंगा-गर्भ से बाहर रह पाता है, शेष १५ जिलों की अथाह जलराशि अकेले गंगा पी जाती है। इसके अतिरिक्त, गंगा की धारा मुक्ताहार की तरह बिछकर बिहार के ठीक हृदय-प्रदेश से प्रवाहित होती है तथा उत्तर बिहार और दक्षिण बिहार को दो भागों में सज्जित सीमंत की तरह विभक्त करती है। इस प्रकार, उत्तर बिहार की सरयू, गंडकी, वाया, बूढ़ी गंडक, वाग्वती, व्याघ्रमुखी, कमला, जीवछ, बलान, तिलयुगा, धेमुरा, कोसी, पनार, कंकई, महानंदा आदि तथा दक्षिण बिहार की कर्मनाशा, काव, सोन, पुनपुन, मोरहर, फल्गु,

पंचाने, सकरी, हरोहर, किऊल, मान, बड़ुआ, चानन, गेड़ुआ, भेन, कोआ, गुमानी आदि नदियाँ बिहार-प्रदेश की इंच-इंच भूमि की अपरिमित जलराशि को समेटकर गंगा-गर्भ को भरती हैं। सच पूछिए, तो इस प्रदेश में फैली सारी नदियाँ बिहार की रक्तवाहिनी शिराएँ हैं; जिनमें सुषुम्णा नाड़ी गंगा है। इस गंगा से बिहार का मेरुदंड सबल और सशक्त बना रहता है तथा मस्तिष्क सर्वदा उर्वर एवं क्रियाशील। अतः, माता गंगा बिहार-प्रदेश की आत्मा, प्राण और शृंगार इन त्रिविध रूपों से इस प्रदेश के तापत्रय को मिटाती है तथा अपने 'त्रिस्रोतसा' नाम को सार्थक करती है।

बिहार-प्रदेश की गंगा का सर्वविध मूल्यांकन तभी समुचित होगा, जब बतलाया जायगा कि गंगा ने अपने तट के किन जनपदों, नगरों, तीर्थों एवं भूमिभागों को प्रसादान्वित करते हुए धन्य बनाया है। 'पद्मपुराण' के अनुसार, वे जनपद, पशु, पक्षी, कीट, संपूर्ण स्थावर तथा जंगम धन्य हैं, जो गंगा के तीर पर स्थित हैं।[१] इस दृष्टि से बिहार-प्रदेश में स्थित समस्त गांगेय प्रदेश का सविध पर्यवेक्षण ही गंगा के महत्त्व को कुछ प्रदर्शित कर सकता है। गंगा के ही तटों पर भारत की सभ्यता और संस्कृति का चरम विकास हुआ है, जो समस्त भारत के अतिरिक्त सुदूर पूर्वदेशों में भी फैला है। इसी के किनारे बड़े-बड़े नगरों तथा राज्यों का उदयास्त हुआ है तथा इसी के तटों में भारतीय इतिहास ने अपनी आँखमिचौनी का खेल किया है। अतः, बिहार-प्रदेश की गंगा का उदात्त और अन्यतम परिचय उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में ही देखा, समझा तथा आँका जाना चाहिए। इसलिए, बिहार-प्रदेश में गंगा की धार और कछार की सैर आवश्यक है।

शाहाबाद की भूमि में गंगा की धार और कछार :

काशी की उत्तरवाहिनी गंगा जब गोमती के तीव्र वेग के धक्के से पूर्वदिग्वाहिनी बनकर आगे बढ़ती है, तब बिहार के शाहाबाद जिले के सर्वप्रथम चौंसा ग्राम को पहुँचती है। चौंसा बक्सर से छह मील पश्चिम में स्थित है और कर्मनाशा-गंगा के संगम के पूर्वभाग में बसा है। यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक और पौराणिक स्थान है। चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' का 'चाङ्-चुङ्'-प्रदेश चौंसा के इर्द-गिर्द में ही फ़ैला हुआ था और गंगा के दोनों तटों पर स्थित था। 'आनंदरामायण' के अनुसार, चौंसा में च्यवन ऋषि का आश्रम था और यह च्यवनाश्रम कहलाता था।[२] एक ऋषि का कई स्थानों में ठहरना

---

१. धन्या जनपदा ये च पशवः कीटपक्षिणः।
स्थावरा जङ्गमाश्चान्ये गङ्गातीरसमाश्रिताः॥
—पद्मपुराण, सृष्टिखंड, अध्या० ६४, श्लो० ७०।

२. ययावाकाशमार्गेण गङ्गाया दक्षिणे तटे।
कर्मनाशां नदीं दृष्ट्वा च्यवनस्याश्रमं ययौ॥
—आ० रा०, यात्राकांड. सर्ग ६, श्लो० ६१।

और वहाँ आश्रम बनाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बाणभट्ट के अनुसार, प्रसिद्ध च्यवनाश्रम, सोन नदी के पूर्वी भाग में था। चौंसा की प्राचीनता तथा इसके प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान होने का प्रमाण वहाँ की जमीन से प्राप्त और पटना-संग्रहालय में सुरक्षित अनेक मिट्टी के खिलौने तथा प्रस्तर-मूर्त्तियाँ हैं। ये सारे अवशेष मौर्य, शुंग, कुषाण तथा गुप्तकाल के हैं, जिनसे चौंसा की ऐतिहासिकता की क्रमबद्ध परंपरा प्राप्त हो जाती है। इसी चौंसा में मुगल-साम्राज्य के पिता बाबर का नौ-बेड़ा गाजीपुर से रवाना होकर सन् १५२९ ई० के १ अप्रैल को कर्मनाशा-संगम पर पहुँचा था। इस संगम पर गंगा की धारा में बाबरी बेड़ा तीन दिनों तक अपना पड़ाव डाले रहा और यहीं बाबर ने अपने शरीर के फोड़ों का इलाज करवाया था। यहीं रहकर उसने अपनी घुड़सवार सेना के साथ कर्मनाशा के ऊपरी हिस्सों का स्वयं जाकर निरीक्षण-परीक्षण किया था, जो सैन्य-संचालन की दृष्टि से कभी वक्त पर काम देता। मोहम्मद जमान मिर्जा, खुरासान के बादशाह बदी-उज्-जमान मिर्जा का पुत्र था, जो बाबर का दामाद था। बाबर की पुत्री 'मासूमा बेगम' इससे ब्याही गई थी। उसी जमान मिर्जा का नौ-बेड़ा, जो पीछे से आ रहा था, इसी चौंसा में आकर बाबरी बेड़ा से मिला। बाबर जब यहीं ठहरा था, तब उसकी सेना आगे बढ़ने के लिए ठोरा-संगम के दलदल को घास, सूखी लकड़ी और मिट्टी से पाट रही थी। इस प्रकार, बाबर और उसका नौ-बेड़ा तीन दिनों तक चौंसा की गंगा-धार पर जमा रहा।

फिर, इसी चौंसा में हुमायूँ और शेरशाह का निर्णायक युद्ध सन् १५३९ ई० में, हुआ था, जब हुमायूँ अपनी सेना के साथ गंगा के प्रवाह से ही गौड देश से पश्चिम की ओर लौट रहा था। चौंसा में हुमायूँ के आठ हजार सैनिक मारे गये थे और वह स्वयं घायल होकर घोड़े के साथ गंगा में कूद गया था। जब वह डूबने लगा, तब चौंसा के ही एक भिश्ती की मदद से वह गंगा पार कर सका और उसकी जान बच सकी। इस युद्ध में शेरशाह ने हुमायूँ की वह दुर्गति की, जिसका विवरण इतिहास का एक स्मरणीय रोमांचक अध्याय है। हुमायूँ के महल की और सेनानायकों की सैकड़ों बेगमें और बच्चे या तो गंगा में डूबकर मर गये थे या लापता हो गये थे। कुछ युवतियों को तो शेरशाह की सेना ने पकड़ लिया था, जिनमें अधिकांश लौटा दी गई थीं। सच पूछा जाय, तो शेरशाह के माथे पर दिल्ली का ताज पहनाने का श्रेय इसी चौंसा ग्राम को है, जहाँ गंगा में कर्मनाशा नदी का भव्य संगम होता है।

उक्त घटना के बाद पटना और हाजीपुर के गंगा-गंडक-संगम पर जब मुगल-सेना दाउद खाँ से लड़ रही थी, तब बादशाह अकबर आगरा से अपने नौ-बेड़े के साथ यमुना और गंगा के प्रवाह-पथ से चला था और उसका एक पड़ाव चौंसा की गंगा में पड़ा था। उसके नौ-बेड़े का लंगर जब यहाँ की गंगा में डाला गया था, तभी उसे सूचना मिली कि

सिन्ध के भक्खर का किला उसकी सेना ने जीत लिया। इस खुशी में अकबर ने चौंसा की गंगा में ही धूमधाम से जशन मनाया था। इसी चौंसा के कर्मनाशा-संगम पर 'अरब बहादुर' नामक मुस्लिम-सरदार ने अकबर के उन हाथियों को छीनकर अपने कब्जे में कर लिया था, जिन्हें 'मुजफ्फर खाँ' तोहफे में बंगाल से आगरा भेज रहा था।[1] इसी चौंसा का रहनेवाला 'काजी रजा' नामक विद्वान् था, जिसने भोजपुर के प्रसिद्ध शासक राजा नारायणमल्ल का पद्यमय जीवन-चरित्र 'रज्म-ए-नारायणी' नाम से लिखा था। नारायणमल्ल का शासन सन् १६०५ से १६२२ ई० तक भोजपुर में था। इस काल के पश्चात् जब शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) अपने पिता का बागी बनकर उत्कल और बंगाल होते चौंसा आया, तब जहाँगीर का प्रतिनिधि-शासक 'जहाँगीर कुली खाँ'[2] जौनपुर छोड़कर इलाहाबाद भाग गया। इस घटना के बहुत समय बाद सन् १७६४ ई० में अँगरेजों से लड़नेवाली अवध के नवाब 'शुजाउद्दौला' की सेना जब बक्सर की लड़ाई में हारकर पीछे की ओर भागी, तब चौंसा में ही कर्मनाशा के दलदल में फँसकर[3] कुछ तो स्वयं मर गई और हजारों नौजवान अँगरेजों की गोलियों से भून डाले गये।

चौंसा की गंगा में मिलनेवाली 'कर्मनाशा' नदी रोहतास किले से कुछ दूर नैऋत्य कोण में स्थित और कैमूर-पर्वतमाला की अधित्यका में बसे 'सारोदाग' ग्राम के दक्षिण से प्रवाहित होती है। कैमूर पर्वत पुराण-प्रसिद्ध ऋक्ष-श्रेणी का एक टुकड़ा है। कर्मनाशा यहाँ से निकलकर उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर तथा वाराणसी जिले के पूर्वी भाग से बहती फिर शाहाबाद की भूमि में प्रवेश करती है। इसके बाद यह 'दुर्गावती' और 'कुदरा' नामक नदियों का जल लेकर उत्तरप्रदेश तथा बिहार-प्रदेश की सीमा बनती चौंसा पहुँचती है और यहीं यह गंगा के गर्भ में समाहित होती है। पुराणों में कर्मनाशा को 'करतोया' तथा 'करमोदा' के नाम से अभिहित किया गया है। इसी चौंसा में भारत का एक प्राचीन मार्ग गंगा को पार करता था और वह गाजीपुर पहुँचता था। वहाँ से फिर वह मार्ग दो भागों में चलता था। एक गंगा के वाम पार्श्व के किनारे-किनारे काशी जाता था और दूसरा पश्चिम-उत्तर कोण में चलता हुआ अयोध्या होकर तक्षशिला पहुँचता था। मगध के राजगृह से तक्षशिला जाने का यही सबसे छोटा और सीधा मार्ग था।

---

१. अरब बहादुर पहले मुगल-सेना का एक विख्यात सरदार था, जिसे 'सहसराम' की जागीर बखशीश में मिली थी। बाद में यह मुगलों का विद्रोही बन गया और इसने भोजपुर के उज्जैन-राजपूत दलपति शाही से मिलकर भोजपुर के इलाके में बगावत का झंडा खड़ा किया था।

२ खड़गपुर (मुंगेर) के राजा संग्रामसिंह को मारनेवाला 'जहाँगीर कुली खाँ', इस व्यक्ति से भिन्न था। इसका वास्तविक नाम 'शमशुद्दीन मिर्जा जरफी' था और इसके पिता का नाम 'खान आजम मिर्जा अजीज कोका' था।

३. कुछ ऐतिहासिकों के अनुसार यह सेना 'ठोरा' नदी के दलदल में फँसी थी।

चौसा में 'कर्मनाशा' के जलौघ से गंगा ईशानकोणवाहिनी बनकर 'बक्सर' आती है और उत्तरप्रदेश के बलिया नगर से पूरब भृगुक्षेत्र (ददरी मेले के क्षेत्र) तक इसी कोण में धारामुख किये बहती है। बक्सर पहुँचने के पहले ही उसके नैऋत्य कोण में शाहाबाद की 'कात्र' नदी का जल समेटकर 'ठोरा' नदी गंगा में गिरती है। इसी 'ठोरा-संगम' के दाहिने भाग में बक्सर का सेंट्रल जेल है। जेल के क्षेत्र में 'वामन भगवान्' का मंदिर है, जहाँ 'वामन-द्वादशी' का मेला लगता है। इसी सेंट्रल जेल के एक 'सेल' में इन पंक्तियों के लेखक ने स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के कारण प्रसिद्ध क्रांतिकारी योगेंद्र शुक्ल, रामानंद तिवारी, सूर्यनारायण सिंह, अमीर सिंह आदि के साथ सुरक्षा-बंदी के रूप में कारावास का दंड सन् १९४५ ई० में भोगा था।

जेल के ईशान कोण में गंगा के दाहिने तट पर 'चरित्रवन' है, जिसके संबंध में कहा जाता है कि इसी वन में विश्वामित्र ऋषि का सिद्धाश्रम था। यहीं उनसे राम और लक्ष्मण ने शस्त्र और शास्त्र की विद्या प्राप्त की थी। इसी वन के गंगातट पर ऋषि की यज्ञस्थली थी, जिसकी रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र अयोध्या से ले आये थे। यहाँ की गंगा के रामरेखाघाट के संबंध में किंवदंती है कि सिद्धाश्रम में रहते हुए राम-लक्ष्मण यहीं स्नान करते थे। घाट पर स्थित 'गौरी-शंकर-मंदिर' के शिवलिंग की प्रतिष्ठा राम ने स्वयं अपने हाथों की थी। यहाँ एक 'ताड़का नाला' है, जो चरित्रवन के पूर्वभाग से बहता हुआ बक्सर-नहर को पार करता है और बक्सर किले के दक्षिण आता है, जहाँ फिर पूर्व की ओर मुड़कर 'कोइरपुरवा' महल्ले के पश्चिम से होते हुए उत्तर की ओर मुड़ता है और बक्सर के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के पूर्वी भाग से होकर रामरेखाघाट के पूरब गंगा में गिरता है। इसके संबंध में किंवदंती है कि ताड़का के शव को घसीटकर राम ने गंगा में प्रवाहित किया था, उसी के चिह्न-स्वरूप नाला बन गया था। इस नाले को बहते मैंने सन् १९३२ ई० तक देखा था; पर इधर तीस-चालीस वर्षों में लुप्त-सा हो गया है। सिद्धाश्रम पहले 'वामनाश्रम' था, जहाँ राजा 'बलि' का यज्ञ हुआ था। बक्सर को सिद्धाश्रम सिद्ध करने के लिए ही जेल-क्षेत्र में वामन-मंदिर भी बना था। इसी लोक-प्रचलित वाद के कारण बक्सर का पाँच कोस का क्षेत्र 'पंचक्रोशी' कहा जाता है, जिसकी यात्रा तीर्थयात्री करते हैं। इसी पंचक्रोशी में गंगा के दाहिने तट पर 'अहिरौली' गाँव बसा है, जहाँ अहल्योद्धारवाली कथा के आधार पर इसे ही 'अहल्यास्थान' माना जाता है। इस बात की पुष्टि गोस्वामी तुलसीदास तक ने भी की है।[१] सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि संत तुलसीदास से भी पहले दरभंगा जिले में स्थित 'गौतमाश्रम' और 'अहल्यास्थान' के पार्श्ववर्त्ती 'बिसफी' ग्राम-निवासी महाकवि विद्यापति ने भी अपनी 'भूपरिक्रमण' नामक पुस्तक में बक्सर के 'अहिरौली' ग्राम को ही अहल्योद्धारवाला स्थान माना है। किंतु, इन सारी बातों में

१ अहल्योद्धार के पश्चात् राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र को गंगा-तट पर पहुँचने का उल्लेख 'रामचरितमानस' में आता है।

ऐतिहासिक और पौराणिक तथ्य शून्य-सा है। 'सिद्धाश्रम' और 'अहल्याश्रम' के ठीक-ठीक भौगोलिक ज्ञान के लिए अति प्रामाणिक ग्रंथ 'वाल्मीकीय रामायण' के बालकांड का समुचित अध्ययन आवश्यक है।[1]

वस्तुतः, 'बक्सर' में 'वेदशिरा' ऋषि का आश्रम था और इसका नाम 'वेदगर्भ' था। वेद की ऋचाओं के द्रष्टा यहाँ के ऋषि थे। गंगा के 'रामरेखाघाट' और 'गौरी-शंकर-मंदिर' के पूर्व-दक्षिण भाग में, जहाँ 'ताड़का नाला' का मुहाना है, वहीं एक 'अघसर' नामक जलाशय पूर्वकाल में था, जो अब नहीं रहा। कहानी है कि वेदशिरा ऋषि दुर्वासा ऋषि को डराने के लिए एक दिन बाघ-रूप धारण कर दहाड़ने लगे। दुर्वासा ऋषि ने अपने योगबल से 'वेदशिरा' की करतूत जान ली और तुरत शाप दे दिया कि 'जा, तू व्याघ्र ही हो जा।' वेदशिरा को दूसरे ऋषियों ने बतलाया कि 'अघसर' जलाशय में स्नान करने पर तुम्हें इस शाप से मुक्ति मिल सकती है। फिर, व्याघ्ररूप वेदशिरा को इसी 'अघसर' में स्नान करने से मुक्ति मिली। इसी 'अघसर' के कारण यहाँ का

---

१. 'वाल्मीकीय रामायण' बालकांड, सर्ग २८ और सर्ग २९ से पता चलता है कि सिद्धाश्रम पहाड़ की तलहटी में था और वह पहले बामनाश्रम कहलाता था। इस स्थान पर बलि का यज्ञ हुआ था, जहाँ वामन ने बलि का क्षरण किया था। फिर, ताड़का का वध सिद्धाश्रम में पहुँचने के पहले मार्ग में ही हुआ था। फिर, बालकांड के ३१वें सर्ग के १६वें श्लोक से ज्ञात होता है कि जनकपुर जाने के लिए सिद्धाश्रम से उत्तर दिशा में चलना पड़ता था। फिर, १९वें श्लोक से पता लगता है कि चलने पर मार्ग में शोणनद मिलता था और उसके बाद गंगा मिलती थी। पुनः ३५वें सर्ग के छठे श्लोक से पता चलता है कि शोण पार करने पर राम-लक्ष्मण आधा दिन चले, तब गंगा मिली। गंगा पार करने पर वे लोग वैशाली गये और वहाँ से जब जनकपुर के लिए चले, तब रास्ते में उन्हें अहल्याश्रम और गौतमाश्रम मिले थे, जहाँ से वे पूर्व-उत्तर कोण में चलकर जनकपुर पहुँचे थे।

यहाँ यदि बक्सर को सिद्धाश्रम माना जाय, तो बक्सर में तथा उसके आसपास में पहाड़ कहाँ है? फिर, सिद्धाश्रम पहुँचने के पहले रास्ते में ही ताड़का के मारे जाने का उल्लेख है। वर्त्तमान समय का ताड़का वधस्थल बक्सर के क्षेत्र में ही है। बक्सर यदि सिद्धाश्रम है, तब तो राम ने सिद्धाश्रम में पहुँचकर ताड़का को मारा, जिसे मार्ग में नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, यदि बक्सर (सिद्धाश्रम) से उत्तर दिशा में चला जाय, तो शोणनद उसे कहाँ मिलेगा और फिर उसे गंगा कहाँ मिलेगी? अतः, बक्सर में सिद्धाश्रम की कल्पना और सिद्धाश्रम को सिद्ध करने के संदर्भ में उल्लिखित स्थान १०वीं ११वीं शती के जान पड़ते हैं, जबकि वास्तविक 'सिद्धाश्रम' का पता लोग भूल बैठे थे। जब 'अहिरौली' में अहल्यास्थान की प्रतिष्ठा की जा सकती है और तुलसीदास तथा विद्यापति भी जिसे मान सकते हैं, तब बक्सर को सिद्धाश्रम कह देना भी आसान था। वस्तुतः, 'सिद्धाश्रम' बक्सर में नहीं, 'सहसराम' में था। सिद्धाश्रम का ही अपभ्रंश 'सहसराम' है।—देखिए 'डॉ० दुःखन राम-अभिनन्दन-ग्रंथ' में लेखक का 'राम और सहसराम' नामक निबंध।

रामरेखाघाट इतना बड़ा तीर्थ हुआ। तभी से इस सरोवर का नाम 'व्याघ्रसर' हुआ। वही व्याघ्रसर कालक्रम से अपभ्रष्ट या विकसित होकर 'बक्सर' बना। इस कथा की संपुष्टि 'मत्स्यपुराण' की इस पंक्ति से होती है : **तीर्थो वेदशिरो नाम तत्रैवौघवती नदी।**[1] इससे तो स्पष्ट है कि जिस नाले को 'ताड़का नाला' कहा जाता है, वह वस्तुतः 'ओघवती' नामक नदी थी। 'आनंदरामायण' के अनुसार 'बक्सर' का इतना माहात्म्य इसलिए हुआ कि अपने तीर्थयात्रा-प्रसंग में राम यहाँ आये थे और जिस घाट पर उन्होंने स्नान किया, वही 'रामरेखाघाट' कहलाया। किंतु, 'आनंदरामायण' की बात बहुत प्रामाणिक इसलिए नहीं मानी जा सकती कि इसकी रचना १७वीं शती में सम्राट् अकबर के काल में हुई है।

किंतु, मेरा खयाल है कि 'बक्सर' की प्रसिद्धि इसलिए हुई कि 'सिद्धाश्रम' जाते समय राम-लक्ष्मण ने यहीं गंगा को पार किया था और तब सरयू आधुनिक 'तमसा' नदी के प्रवाह से, बलिया के थोड़ा पश्चिम ही, गंगा में संगम करती थी। बक्सर में ही गंगा पार कर राम-लक्ष्मण यक्षिणी भवानी के मंदिर होते सिद्धाश्रम (सहसराम) गये। राम ने जहाँ गंगा पार किया, वहीं रामरेखाघाट के नाम से तीर्थ बना। बक्सर की प्रसिद्धि के लिए दूसरी और सर्वाधिक विश्वसनीय बात यह है कि यहाँ बौद्धों का बहुत बड़ा तीर्थ था। कुछ विद्वान् तो बक्सर को ही 'वेठदीप' मानते हैं। चरित्रवन के 'रामचौतरा' का ऊँचा टीला, जो अब बहुत नष्ट हो गया, बौद्धों का चैत्य था। एक वन में था। उसी 'चैत्यवन' का ही अपभ्रष्ट या विकसित नाम 'चरित्रवन' है। इस चैत्य को भी सम्राट् अशोक ने ही बनवाया होगा और इस चैत्यवन में बहुतेरे बौद्धमठ थे। यही कारण है कि इस स्थान पर मौर्यकाल की ईंटें और बहुत-से खिलौने मिले हैं और अब भी मिलते हैं। यहाँ के अनेक खिलौने पटना-संग्रहालय में आज भी सुरक्षित हैं, जो मौर्य-कालीन हैं। यहाँ गंगा के ढहते कगार में संडास के बहुतेरे चिह्न मिलते हैं, जो पटना की गंगा के कगार में भी दीख पड़ते हैं। इन संडासों को लोग विश्वामित्र के यज्ञकुंड बतलाते हैं। कुषाण-राजा वीम कदफीस द्वितीय वासुदेव के समय के २०० ताँबे के सिक्के बक्सर में एक साथ मिले थे। इससे प्रमाणित होता है कि 'चरित्रवन' में मौर्यकालीन कोई प्राचीन नगर था, जिसके संबंध में आजतक किसी ने कुछ अन्वेषण-गवेषण नहीं किया।

चरित्रवन और बक्सर-किला—दोनों के मध्य सोन-नहर गंगा में गिरती है। परिखावर्त्तित किले का वास्तविक इतिहास मुझे नहीं मिल सका; पर यह राजपूत-काल का बना मालूम पड़ता है। सन् १८४२ ई० तक अँगरेजी-सेना की छावनी इस किले में थी। रामरेखाघाट के दक्षिण और किले के पूर्वी मैदान में बक्सर का मेला लगता है। यह मैदान पूर्वकाल में सेना का पड़ाव था। इस क़िला-क्षेत्र में भी बहुतेरे मिट्टी के खिलौने मिले हैं और ये भी पटना-संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार, अभी गंगातटीय बक्सर का प्राचीन इतिहास अंधकार में छिपा है, जो प्रकाश डालनेवाले पुरातात्त्विकों

१. मत्स्यपुराण, अध्या० २२, श्लो० ७१।

को ढूँढ़ रहा है। इतना तो निश्चित है कि यह न तो वामनाश्रम था और न सिद्धाश्रम; किंतु कोई प्राचीन और ऐतिहासिक नगर अवश्य था, जहाँ बौद्ध स्तूप वर्त्तमान था और जिसके उत्थान में गंगा नदी का बहुत बड़ा साहाय्य था।

भारत में मुगल-साम्राज्य का अधिष्ठाता शाहंशाह बाबर सन् १५२९ ई० के ४ अप्रैल, सोमवार को चौंसा से बक्सर आया। उसके नौ-बेड़े ने बक्सर के सामने उजियार-घाट की गंगा में अपना लंगर डाला था। बाबर इसके एक वर्ष पूर्व भी बक्सर आया था और सेना को गंगा में उतरने तथा तट पर चढ़ने के लिए 'रामरेखाघाट' पर मिट्टी की सीढ़ियाँ उसने बनवाई थीं। इस बार जब वह यहाँ आया, तब देखा कि उनमें से ऊपरी भाग की दो ही सीढ़ियाँ सुरक्षित हैं, शेष नष्ट हो गई हैं। एक वर्ष पूर्व के बक्सर-प्रवास में उसने गंगा को तैरकर पार किया था और उसके कुछ सैनिक घोड़ों और ऊँटों पर सवार होकर गंगा के पार उतरे थे।

सन् १५२९ ई० के ४ अप्रैल को जब बाबर का नौ-बेड़ा उजियारघाट की गंगा में पहुँचा, तब उधर उसकी पदाति-सेना बक्सर-किले के मैदान में पहुँचकर अपने खेमे गाड़ चुकी थी। शाम को बाबर स्वयं अपनी सेना का निरीक्षण करने रामरेखाघाट के मैदान में आया और उसने यहाँ अपनी सेना के पहलवानों की कुश्तियाँ देखीं।

बक्सर की गंगा में ही अपने नौ-बड़े पर बाबर ने गौड के शासक नसरत शाह तथा अफगानों की संयुक्त सेना, जो गंडक के घाटों पर खड़ी थी, से लड़ने के लिए अपनी योजना तैयार की। नसरत शाह का सेना-संचालक महमूद खाँ उस समय हाजीपुर में अपना पड़ाव डाले हुए था। बाबर ने अपनी योजना के अनुसार, सन् १५२९ ई० के ७ अप्रैल को अपनी कुछ शर्त्तों के साथ महमूद खाँ के पास भेजने के लिए 'तरदी मोहम्मद' को चुना और उसके अधीन दो हजार तुर्क सैनिकों को सुपुर्द कर दिया। तरदी मोहम्मद, 'मोहम्मद अली जंग' का पुत्र था। उसने दूसरी टुकड़ी के साथ अपने दामाद 'मोहम्मद जमान मिर्जा' को उसी दिन बिहारशरीफ के लिए भेजा। जमान मिर्जा की सेना जब बक्सर के तट पर नावों से उतरने लगी, तब बाबर स्वयं अपने बेड़े के ऊपरी भाग में खड़े होकर सेना का प्रयाण देखता और उसे उत्साहित करता रहा था।

इसके पश्चात् 'अरब बहादुर' नामक मुस्लिम-सरदार ने बक्सर के रामरेखाघाट पर सन् १५६७ ई० में 'राय पुरुषोत्तम' को तलवार से मार डाला था। राय पुरुषोत्तम अकबर की सेना के लिए वहाँ रहकर रंगरूटों की भरती कर रहा था। जब वह पूजा पर बैठा था, तभी वह मारा गया। भोजपुर के दलपति नामक उज्जैन-क्षत्रिय ने अकबरी शासन के खिलाफ विद्रोह किया था और अरब बहादुर दलपति का सहायक था। इस घटना के बहुत काल बाद 'मीरकासिम' और अवध के नवाब 'शुजाउद्दौला' की सम्मिलित सेना के साथ अंगरेजों का युद्ध बक्सर में हुआ था। यह युद्ध सन् १७६४ ई० में हुआ था और इसी युद्ध से शुजाउद्दौला की भागती हुई सेना का संहार कर्मनाशा के दलदल में हुआ था। इस भीषण युद्ध में अँगरेजी-सेना के जो मुख्य अधिकारी मारे गये थे, उनका स्मारक बक्सर से

एक मील पूरब के खेतों में, अँगरेजों ने बनवाया है। स्मारक से ज्ञात होता है कि यह युद्ध इसी स्थान पर हुआ था। स्मारक अब धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है।

रामरेखाघाट पर गंगा में पीपों का पुल है, जो उत्तरप्रदेश और बिहार की भोजपुरी-संस्कृति को परस्पर जोड़ता है। वर्षा ऋतु में पीपों का पुल तोड़ दिया जाता है। इसी स्थान पर गंगा में कंक्रीट के पुल बनाने की योजना के अनुसार पुल का निर्माण-कार्य चल रहा है।

बक्सर के बाद वलिया (उत्तरप्रदेश) नगर से भी कुछ दूर पूर्व तक गंगा नदी ईशान कोण की ओर मुँह करके बहती है। 'ददरी' मेले से यह अग्निकोणवाहिनी बनकर 'निमेज' गाँव के उत्तर में आती है। किंतु, इसके पहले गंगा नदी सरयू के धारा-प्रवाह के प्रचंड वेग का धक्का खाकर दक्षिण दिशा में घूम जाती थी और भोजपुर के गढ़ से टकराती थी। ददरी मेले के पश्चिम ही प्राचीन समय में 'सरयू' गंगा से संगम करती थी और उस समय यह 'तमसा' के प्रवाह से बहकर आती थी। इसी संगम पर, महाकवि कालिदास के अनुसार, राम के पितामह 'अज' ने प्रायोपवेशन करके अपना प्राण-विसर्जन किया था।[१] इन्हीं दोनों नदियों के संगम-क्षेत्र में अयोध्या से चलकर विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण ने एक रात्रि का वास किया था[२] तथा इसी संगम के पश्चिम बक्सर में गंगा पार किया था। वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड के २३वें सर्ग के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सरयू-संगम पर वे लोग, 'अनंग' नामक 'विषय' (भू-प्रदेश) से होते हुए आये थे, जहाँ उन्हें 'कामाश्रम' मिला था। कामाश्रम में ही भगवान् शंकर ने कामदेव को भस्म किया था, जहाँ से वह अपनी प्रत्यंचा पर कुसुम-बाण चढ़ा कर भगवान् शंकर को उद्वेलित कर रहा था। तमसा के तट-प्रदेश में स्थित 'कारों' नामक स्थान ही 'कामाश्रम' है।[३] कारों में 'कामेश्वरनाथ' महादेव का एक प्रसिद्ध और प्राचीन मंदिर भी अवस्थित है।

महाकवि विद्यापति के अनुसार, गंगा-सरयू के संगम पर ही 'भृगु-आश्रम' था।[४] भृगु-आश्रम की स्थापना की कथा 'वराहपुराण' में मिलती है। उसके अनुसार, भृगु ऋषि को विष्णु भगवान् की छाती में लात मारने से जो पाप लगा, वह कई तीर्थों में स्नान करने पर भी धुल नहीं सका। ऋषि को चिंतित देखकर अन्य ऋषियों ने उन्हें एक सूखी डाल दी और कहा कि जिस तीर्थ में गाड़ने से यह डाल हरी-भरी हो जाय, उसी तीर्थ के वास से आपका कलुष धुल सकता है। भृगुजी समस्त तीर्थों में घूमने लगे; पर वह सूखी डाल कहीं हरी नहीं हो सकी। किंतु, जब वे सरयू-गंगा-संगम पर पहुँचे, तब वह सूखी डाल गाड़ते

---

१. तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोः
देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः।—रघुवंश, ८।९५।

२. इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शने।
पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम्॥—वाल्मी०, बाल०, २३।१६।

३. तपोभूमि (श्रीरामगोपाल मिश्र), पृ० ७३।

४. भार्गवमुनेश्च सुस्थानं सर्वलोकविमुक्तिदम्।—भूपरिक्रमण, पत्र ३८।

ही हरी हो गई। अतः, अति पवित्र तीर्थ जानकर उन्होंने अपना स्थायी आश्रम यहीं बना लिया। इसीलिए, यह क्षेत्र 'भृगु-आश्रम' कहलाता है। 'भृगु-आश्रम' का ही भोजपुरी-अपभ्रंश 'भगरासन' है, जो व्यक्तियों की कोलाहलपूर्ण भारी भीड़ का बोधक है। इसका तात्पर्य 'भृगु-आश्रम' (ददरी)-क्षेत्र के मेले की बहुत बड़ी भीड़ से है।

सरयू-गंगा-संगम के इस 'भृगु-आश्रम' में पहले अनेक ऋषि-मुनियों का वास था। 'नारदीयमहापुराण' से पता चलता है कि यह संगम 'वेणी-राज्यतीर्थ' कहलाता है।[१] इस संगम पर स्नान करने से पाँच अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। विद्यापति के कथनानुसार, संगम-क्षेत्र के 'ताजपुर' ग्राम में 'त्रिविक्रम वामन' ने अवतार लिया था।[२] इस संगम पर 'दानक' नामक ग्राम था,[३] जो सरयू के प्रवाह से उनके समय में ही ध्वस्त हो गया था। इसी 'दानक' ग्राम में शुक्राचार्य की एक आँख मारी गई थी। विद्यापति के अनुसार, 'बलिया' में ही राजा 'वलि' रहता था। चंपारन जिले के 'वज्रसार' नामक राजा ने गंगा-सरयू-संगम पर ज्ञान प्राप्त किया था। इसका 'दर्दुर' और 'त्रिकोण-क्षेत्र' भी नाम था।[४] इस तरह की अनेक किंवदंतियों का उल्लेख महाकवि 'विद्यापति' ने अपने 'भूपरिक्रमण' नामक पुस्तक में किया है।

इस क्षेत्र के एक नाम 'दर्दुर' से ज्ञात होता है कि यहाँ कभी 'दर्दुर' नामक ऋषि का वास भी था। इसी दर्दुर नाम के कारण यह 'ददरी' कहलाया। किंतु, 'ददरी' नाम का विवेचन 'आनंदरामायण' में भिन्न है और इसे 'दद्री' कहा गया है। इसके अनुसार, तीर्थयात्रा-प्रसंग में सीता और लक्ष्मण के साथ जब राम यहाँ आये, तब यहाँ सरयू की धारा समाप्त हो गई थी। इससे ऋषि लोग इसे आवास-योग्य न मानकर इस स्थान को छोड़कर चले गये थे। ऐसे पुण्यस्थल की ऐसी दुर्दशा देखकर राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने अपने बाण से धारा का दरण किया, जिससे फिर यहाँ सरयू की धारा आई। इसीलिए, इस क्षेत्र का नाम 'दद्री' पड़ा।[५] उपर्युक्त बातों से इतना तो स्पष्ट पता चलता है कि जिस काल में 'आनंदरामायण' (सम्राट् अकबर के काल में) लिखा गया, उस समय ददरी में सरयू का मुख्य संगम नहीं था; पर १५वीं शती के आरंभ में वर्त्तमान विद्यापति के समय तक यहाँ सरयू का संगम-क्षेत्र था।[६] इसी प्रकार, महाकवि बाणभट्ट के

---

१. वेणोराज्यं ततस्तीर्थं सरयूर्यत्र गङ्गया।
सुपुण्यया महापुण्या स्वसा स्वस्रेव सङ्गता ॥ – नारदीयपुराण, उत्तरखंड, अ० ४१।१८।

२. त्रिविक्रममूर्त्तिश्च यत्रैव गृहीतो येन विष्णुना। —भूपरिक्रमण, पत्र ३८।

३. सरयूगङ्गयोः सङ्गे दानकग्रामः पुरास्थितः।—तत्रैव, पत्र ३८।

४. त्रिकोणक्षेत्रं केचिच्च गायन्ति दर्दुरे नृप—तत्रैव, पत्र ३८।

५. आनंदरामायण, यात्राकांड, सर्ग ४, श्लो० ६५—६७।

६. गङ्गाया उत्तरे पारे दर्दुर-क्षेत्रं जगाम ह।
वलिग्रामश्च तत्रैव सरयूसङ्गमान्तिके ॥—भूपरिक्रमण, पत्र ३८।

समय में छपरा के पास गंगा में केवल 'राप्ती' का संगम था और उस काल तक 'राप्ती' स्वतंत्र रूप से अकेले 'बरहज' से बहकर छपरा तक आती थी। 'मनियर' गाँव उस समय घाघरा के किनारे नहीं था, बल्कि अजिरवती (राप्ती) के किनारे था।[१]

बलिया और ददरी में सरयू नदी के प्रबल प्रवाह के आघात से ही गंगा यहाँ दक्षिणवाहिनी बन जाती थी। यहाँ गंगा की धारा का ध्यान से निरीक्षण करने पर ऐसा लगता है कि जैसे रूठकर भागती हुई अपनी बड़ी बहन गंगा को 'सरयू' ने धकिया कर 'भोजपुर' नगर के आँगन में ठेल दिया है, जहाँ 'भोजपुर' नगर दोनों भुजाओं से गंगा को अपनी गोद में भरना चाहता है। किंतु, गरीयसी गंगा अपना स्पर्श देकर 'भोजपुर' को कृतकृत्य करती पूर्व की ओर बढ़ जाती थी और राजपुर, ब्रह्मपुर, शाहपुर आदि गाँवों को अपने कगार पर छूती तथा निहारती मसाढ़ (महासाल) पहुँच जाती थी। फिर, मसाढ़ से पूर्व बढ़कर 'आरा' नगर को अपने तट पर पवित्र करती 'मनेर' नगरी का सौभाग्यवर्द्धन करती थी। किंतु, आज स्वयं 'सरयू' रूठकर अपनी पुरानी चाल छोड़ चुकी है और वह अब राप्ती से मिलकर 'छपरा' के दक्षिण गंगा से संगम करती है। स्वभावतः गंगा ने भी अपना धारा-मार्ग बदल दिया, जिससे भोजपुर नगर का गौरव भी मिट गया। अब गंगा नदी अपने उपर्युक्त प्रवाह-पथ को बदलकर सीधे पूर्व की ओर बहती हुई मिहिरौली, धाबी, नौरंग, माधोपुर, नैनीजोर, बहोरनपुर, सोहसा, सलेमपुर, कुदरिया, सिनहाघाट, नेकनाम टोला, एकौना, बिसुनपुर, बबुरा और तब बिनगाँवाँ के पास पहुँचकर शाहाबाद जिले को छोड़ देती है। अहिरौली और मिहिरौली—ये दोनों गाँव कन्नौज के 'मिहिरभोज' का स्मरण कराते हैं, जिसने ११वीं शती में, उज्जैन-राजपूतों से पहले, शाहाबाद के क्षेत्र में अपना राजशासन स्थापित किया था। इस बात की अधिक संभावना है कि भोजपुर का गढ़ इसी मिहिरभोज का था।

'अहिरौली' के संबंध में 'भविष्यपुराण' से प्राप्त एक संकेत से ज्ञात होता है कि 'वसुमान' नामक भोजराज ने मिहिरौली के पास ही अपनी एक 'आभीरी' पत्नी के नाम पर अहिरौली को बसाया। इसका नाम 'व्रतपा' था और यह बक्सर' की रहनेवाली थी अथवा आभीरों की वस्ती 'अहिरौली' की थी। इससे राजा के दो पुत्र हुए, जिनके नाम थे देशराज और वत्सराज। इन दोनों भाइयों ने मगध के कुछ भागों को भी जीता था, जिससे ये राजाओं की कोटि में आ गये। बनारस का एक मुसलमान 'वीरण' था, जो अपने विशाल शरीर तथा भीम पराक्रम के कारण 'तालन' कहलाता था। किंतु, इस तालन को भी देशराज और वत्सराज ने परास्त किया था। तदनंतर, वीरण ने इन

---

१. अन्यस्मिन् दिवसे स्कन्धावारमुपमणिपुरं अन्वजिरवतिकृतसन्निवेशं समाससाद।
—हर्षचरित, द्वितीयोच्छ्वास।

दोनों भाइयों से मित्रता कर ली । बाद में ये तीनों वीर काशीश्वर राजा जयचंद्र की सेना में रहने लगे ।[१]

उपर्युक्त उल्लेख से पता चलता है कि 'वसुमान' बक्सर के पास का था बक्सर का सामंत था । इसके पुत्रों ने 'मगध' के भाग भी जीते थे । यह समय जयचंद्र का है, जिसकी राजधानी काशी में थी । वसुमान और व्रतपा का संबंध अहिरौली से अवश्य जान पड़ता है, जो बक्सर में ही है । इसीलिए, 'अहिरौली' का संबंध अहल्या से जोड़ना खयाली पुलाव-भर है । यही काल है, जब भोजपुर और बक्सर में राजपूतों का दबदबा जमा था और इसी समय के सौ-पचास वर्ष आगे-पीछे 'बक्सर' में सिद्धाश्रम को लाकर स्थापित किया गया । 'भविष्यपुराण' वाली बात को मनगढ़ंत कहकर टाला भी नहीं जा सकता ; क्योंकि सारन जिले के 'दिघवा-दुबौली' में मिले महेंद्रपाल देव के ताम्रशासन से पता चलता है कि महेंद्रपालदेव इसी वंश का था और 'वत्सराज' की पाँचवीं पीढ़ी में था । भिन्नता सिर्फ इतनी ही है कि अभिलेख वसुमान् के स्थान पर 'देवशक्ति' का और 'व्रतपा' के स्थान पर 'भूमिका देवी' का नामोल्लेख करता है । 'व्रतपा' नाम तो व्रत करने के कारण कल्पित जान पड़ता है । वंशक्रम इस प्रकार है—देवशक्ति, वत्सराज, नागभट्ट, रामभद्र, भोजदेव और महेंद्रपालदेव । इस वंश का राज्य भोजपुर, बलिया

---

१. आभीरी बाक्सरे ग्रामे व्रतपा नाम विश्रुता ।।२२।।
नवदुर्गाव्रतं श्रेष्ठं नववर्षञ्चकार ह ।
प्रसन्ना चण्डिका प्राह वरं वरय शोभने ।।२३।।
साह तां यदि मे मातर्वरो देयस्त्वयेश्वरि ।
रामकृष्णसमौ बालौ भवेयातां ममान्वये ।।२४।।
तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत ।
वसुमान्नाम नृपतिस्तस्या रूपेण मोहितः ।।२५।।
उद्वाह्य धर्मतो भूयः स्वगेहे तामवासयत ।
तस्यां जातौ नृपात् पुत्रौ देशराजस्तु वद्वरः ।।२६।।
अवार्यौ वत्सराजश्च शतहस्तिसमो बले ।
जित्वा तौ मागधान् देशान् राज्यवन्तौ बभूवतुः ।।२७।।
शतघ्नः स्मृतो म्लेच्छः शूरो वनरसाधिपः ।
तत्र पुत्रो भीमसेनांशो वीरणोऽभ च्छिवाज्ञया ।।२८।।
तालवृक्ष प्रमाणेन चोर्ध्ववेगो हि तस्य वै ।
तालनो नाम विख्यातः शतपत्नेन वै कृतः ।।२९।।
ताभ्यां नृपाभ्यां तत् युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
युद्धेन हीनतां प्राप्तस्तालनो बलवत्तरः ।।३०।।
तदा मैत्री कृता ताभ्यां तालनेन समन्विता ।
जयचन्द्रपरीक्षार्थे त्रयशूराः समाययुः ।।३१।।
—भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, तृतीय खंड, अध्याय ४, श्लोक २२—३१

और सारन जिले में था, यह स्पष्ट पता चलता है, अतः भविष्यपुराण की कथा प्रामाणिक है। विद्यापति ने भी 'भूपरिक्रमण' में भोजपुर के वसुमान् राजा का उल्लेख किया है।

यह पहले कहा गया है कि बिनगाँवाँ ग्राम के पास गंगा नदी शाहाबाद को छोड़कर पटना जिले की उत्तरी सीमा में प्रवेश करती है। बिनगाँवां के पास ही शोणभद्र नद गंगा में गिरता है। यह चंद्राचल पर्वत से प्रवाहित होकर आता है। भोजपुर गाँव से शोण-संगम तक गंगा का प्रवाह-मार्ग ४५ मील तक का है। इस ४५ मील लंबे और १० मील चौड़े भूमिभाग में गंगा और सरयू की मिट्टी पड़ी है, जिसके निर्माण की आयु १५०० वर्षों से अधिक की नहीं है। यह सारा भूमिभाग शाहाबाद जिले का 'हेंठार' कहलाता है। 'हेंठार' का अर्थ है—निम्नस्थ भूमि-क्षेत्र। यह ठेठ भोजपुरी-क्षेत्र है। इस क्षेत्र के भोजपुरी जवान देश के विभिन्न भागों में तथा पूर्वी एशिया एवं मॉरिशस और अफ्रिका में बिखरे हुए हैं। भोजपुरी-भाषा को सुदूर भागों में फैलाने का श्रेय इन्हीं लोगों का है। इस हेंठार के सारे गाँव सातवीं शती के पश्चात् ही और विशेष करके राजपूत-शासनकाल में बसे हैं। यों तो, संपूर्ण बिहार-प्रदेश के गंग-बरार के नौजवान अपनी चौड़ी छातियों, परिपुष्ट भुजाओं, वृषभ-स्कन्धों तथा आकर्षक डीलडौल के लिए भारत में विख्यात हैं; पर विशेष रूप से हेंठार का गंगबरार-क्षेत्र निठट्ठु सैनिकों का क्षेत्र प्राचीन काल से ही रहा है। यहाँ के अधिकांश युवक 'लाठी की ही रोटी' खाते हैं और 'तसलवा तोर कि मोर' कहावत के लिए प्रसिद्ध हैं। यह भूमि-भाग गेहूँ, चना, तेलहन, मकई और बाजरे की उपज के लिए बड़ा ही उर्वर माना जाता है।

गंगा के इस नये तट पर इतिहास और संस्कृति का अभी कोई बड़ा निर्माण-कार्य नहीं हो सका है। किंतु, नैनीजोर की गंगा ने बाबरी बेड़े की हलचल झेली और देखी है। बक्सर से चलकर बादशाह बाबर के नौ-बेड़े का दूसरा पड़ाव यहीं पड़ा था, जिसके सामने गंगा के उस पार 'हलदीघाट' है। बाबर यहाँ की गंगा की धार में छह दिनों तक रुका रहा और बंगाली सेना के साथ होनेवाली लड़ाई की योजना तैयार करता रहा। यहीं से इसने अपने घुड़सवारों के साथ स्वयं भोजपुर और बिहिया के क्षेत्र में भ्रमण करके निरीक्षण किया था। नैनीजोर की गंगा में जब बाबर की नौ-सेना की कतार लगाई गई, तब वह गंगा के पाट में अँट नहीं सकी। दक्षिणी धार से उत्तर हलदीघाट तक सीकड़ों में जकड़ कर नौकाएँ पाट दी गई थीं, जिससे सेना-संचार के लिए मजबूत पुल बन गया था। इसी नौ-सेतु के ऊपर से सेना के हाथी, घोड़े, बड़ी-बड़ी तोपें, बैलगाड़ियाँ, ऊँट और खच्चर गंगा के उस पार ले जाये गये थे।

बाबर ने यहीं अपने नौ-बेड़े पर फौजी सरदारों की मजलिस की थी, और अपनी चार प्यारी नौकाओं का उसी मजलिस में नया नामकरण किया था। राणा साँगा के साथ हुए युद्ध के पहले आगरा में बननेवाली बाबरी नौका का नाम उसने 'आसाइश'

रखा। एक दूसरी नाव, जिसे बड़े शौक और श्रृंगार के साथ बनवाकर 'आराइश खाँ' ने बाबर को सवारी के लिए दिया था, उसका नाम उसी की स्मृति के लिए 'आराइश' रखा गया। तीसरी नौका, जो बड़ी ही खूबसूरत थी और जिसे 'कड़ा' के सुलतान जलालुद्दीन ने भेंट में बाबर को दिया था, उसका नाम 'गुंजाइश' रखा। चौथी नाव उन सबमें छोटी थी, पर उसकी रफ्तार सबसे तेज थी। उसका नाम 'फरमाइश' रखा गया।

बाबर ने अपने उसी पड़ाव पर सुना कि हाजीपुर के सूबेदार 'मखदूम-ए-आलम' के अधीन बंगाली सेना गंडक के चौबीस घाटों को रोक कर खड़ी है और युद्ध की प्रतीक्षा कर रही है। समाचार सुनकर बाबर ने जिस मोहम्मद जमान मिर्जा को विहारशरीफ जाने के लिए बक्सर से रवाना किया था, उसे अपने नये फरमान के द्वारा आगे बढ़ने से रुकवा दिया। जैसा पहले कहा गया है, नैनीजोर और 'हलदी' की गंगा में जो नावों का पुल बना था, माँझी के आसपास जब युद्ध आरंभ हुआ, तब इसी पुल के सहारे बाबरी सेना के हाथी, घोड़े, ऊँट, तोपें और खच्चर पार किये गये।

शिवपुर-दियारे की गंगा में सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम के अवसर पर एक घटना और घटी थी। जगदीशपुर (शाहाबाद) के बाबू कुँवरसिंह ने जब आजमगढ़ में अंगरेजों से युद्ध किया, तब वे वहाँ से पूरब हट गये और पुनः जगदीशपुर पहुँचने की योजना बनाने लगे। अँगरेजी-सेना तमाम सरयू और गंगा के घाटों को रोककर खड़ी थी, जिससे कुँवरसिंह न तो सरयू पार कर सारन जिले में पहुँच सकें और न ही गंगा पार कर जगदीशपुर जा सकें। अँगरेजी-सेना की ऐसी सतर्कता के बावजूद वे शिवपुर-दियारे के पास गंगा पार करने में समर्थ हो गये। गंगा पार करने में उन्हें 'मनियर' गाँव के राजपूतों ने बड़ी सहायता की थी। कुँवरसिंह की सेना गंगा लाँघ गई थी; पर जब उनकी नाव गंगा पार कर रही थी, तभी उनकी एक बाँह में दुश्मन की गोली लग गई। बाबू कुँवरसिंह ने तुरत वहीं अपनी उस बाँह को अपनी ही तलवार से काटकर गंगा को अर्पित कर दिया था। उस घायल अवस्था में ही वे गंगा पार हुए और बेरोक जगदीशपुर पहुँच गये।

शिवपुर और नैनीजोर के बाद गंगा के इस नवीन प्रवाह-मार्ग पर उल्लेखनीय स्थान 'सिनहाघाट' है। घाघरा के मुहाने पर जब बंगाली सेना आकर खड़ी हो गई, तब बाबर का खेमा 'आरा' नगर में आकर लगा। उधर जब हलदी में नावों के पुल से बाबर की सेना पार कर गई और युद्ध आरंभ हो गया, तब बाबर भी इसी 'सिनहाघाट' में गंगा पार कर 'घाघरा' के डेल्टा में जा धमका। बंगाली सेना के दाहिने बाजू पर बादशाह बाबर का बेटा 'अस्करी' अपनी बड़ी सेना के साथ हमला कर रहा था, बायें बाजू में मुहम्मद मुस्तफा खाँ की सेना बंदूक से गोलियाँ दाग रही थी और सम्मुख भाग से बाबर की देख-रेख में अलीकुली खाँ तोपों से आग उगलवा रहा था।

सिनहाघाट में, अँगरेजों के शासनकाल में पानी के जहाज रुकने का स्टेशन था। कुँवरसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके भाई अमरसिंह अँगरेजी-सलतनत को नाकों चने चबवा रहे थे, तब उन्हें सर करने के लिए आजमगढ़ से ई० लुगार्ड नामक

सेनापति आरा भेजा गया। वह सन् १८५८ ई० की ४ मई को इसी सिनहाघाट में गंगा पार हुआ। सिनहा में मकर-संक्रान्ति के अवसर एक वार्षिक मेला लगता है, जहाँ भोजपुरी युवकों और युवतियों की उमंग देखते ही बनती है।

इस नये प्रवाह-पथ के अतिरिक्त गंगा का प्राचीन प्रवाह-पथ (भोजपुर नगर से चलनेवाला तट) अपने गौरवमय इतिहास के लिए ऐसा विख्यात रहा है कि जिसके उल्लेख के विना गंगा की वास्तविक गरिमा का बोध हो ही नहीं सकता। यह पहले ही कहा गया है कि बलिया जिले के ददरी-क्षेत्र में सरयू के प्रचंड प्रवाह-वेग से आहत होकर गंगा की धारा सीधे दक्षिण मुड़ती थी और भोजपुर नगर से टकराती थी। भोजपुर नगर और उसका गढ़ 'धारा' नगरी के राजा 'भोज' का बसाया माना जाता है।[१] किंवदन्ती के अनुसार, यह नगर कोसों में बसा था। इसके संबंध में 'बावन गली तिरपन बजार, दिया जले छप्पन हजार' की लोकोक्ति प्रसिद्ध है। इसकी आबादी ५६ हजार घरों की थी। यहाँ राजा भोज के बनवाये मंदिर, महल, रंगस्थल, सरोवर एवं विक्रमादित्य के नवरत्नों के सभा-मंडप बने थे। भोज के सिंहासन में यहाँ बत्तीस पुत्तलिकाएँ और अनेक घंटियाँ लगी थीं। फिर, मुगलों के शासनकाल में प्रतापसिंह नामक उज्जैन-राजपूत राजा ने भोजपुर-क्षेत्र में बगावत का झंडा खड़ा किया था, जिसे सर करने के लिए बिहार का मुगल-सेनाध्यक्ष 'अब्दुल्ला खाँ फिरोज जंग' एक बहुत बड़ी सेना के साथ भोजपुर पहुँचा था। उस समय प्रताप उज्जैन अपनी सुरक्षा की व्यवस्था 'भोजपुर' के किले में ही करके छह मास तक फिरोज जंग की सेना के साथ लोहा लेता रहा। आज उस भोजपुर का वह गौरव नष्ट हो गया है; क्योंकि गंगा ने ही अपना मुँह भोजपुर से मोड़ लिया है। आज भी भोजपुर अनाज की एक बड़ी मंडी है और गंगातटीय राजा भोज के किले का खँडकर अपने गौरव की एक-एक कहानी स्मरण कराकर दर्शकों को रुला देता है।

इसी भोजपुर नगर के नाम पर समस्त प्रदेश का नाम 'भोजपुर' पड़ा है। इस प्रदेश के निवासी और भाषा—दोनों इसी के नाम से संबद्ध होकर 'भोजपुरी' कहलाते हैं। भोजपुरी-भाषा का क्षेत्र उत्तरप्रदेश के ९ जिलों में तथा बिहार के चार जिलों में तो घने रूप में है, यों भी यह और भी कई जिलों में फैला है। इतने बड़े क्षेत्र का आजतक कोई भोजपुरी-प्रदेश न बन सका, यह कम आश्चर्य का विषय नहीं है।

भोजपुर के बाद गंगा के पुराने तट पर प्रसिद्ध स्थान 'ब्रह्मपुर' का शिव-मंदिर है। यहाँ वर्ष में दो वार शिवरात्रि के अवसर पर मवेशियों का बहुत बड़ा मेला लगता है। इस मेले के घोड़े बड़े प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मपुर, कांट तथा रघुनाथपुर गाँव संत तुलसीदास को बड़े प्रिय थे, जिससे वे अक्सर यहाँ आया करते थे।

यहाँ से गंगा जब पूरब बढ़ती है, तब इसके प्राचीन तट के ऊपर का उल्लेखनीय गाँव 'मसाढ़' मिलता है, जो प्रागैतिहासिक काल का गाँव माना जाता है। वाल्मीकीय

१. किंतु, 'बिहारः एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन' पुस्तक में श्रीजयचंद्र विद्यालंकार ने इसे 'मिहिर-भोज' का बसाया माना है।

रामायण के बालकांड में जिस कारूश और मलद-जनपद की चर्चा है, उस कारूश का स्मृतिचिह्न 'कारीसाथ' और 'मलद' का स्मृतिचिह्न महासाल (मसाढ़) गाँव आजतक सँजोए हुए हैं। वृत्रासुर के वध से इंद्र को जो ब्रह्महत्या का पाप लग गया था, वह मसाढ़ की गंगा में ही स्नान करने से घुला था।[1] इस भूमि ने ही इंद्र के शरीर का मल और कारूश (कलुष) को दूर किया और उसी मल तथा कारूश के नाम पर गंगा के प्राचीन तट पर 'मसाढ़' और 'कारीसाथ' गाँव बसे थे। अतः, ये दोनों गाँव अत्यंत प्राचीन और पुराण-प्रसिद्ध हैं। इसी 'मसाढ़' में सातवीं शती में चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' भ्रमण करते हुए आया था। उसने अपने यात्रा-वृत्तांत में लिखा है कि 'मो-हो-सो-लो' (महासाल) गंगा के किनारे स्थित है और वैदिक धर्म तथा ब्राह्मणों का यहाँ बहुत प्रभाव है। यहाँ उस समय बौद्धधर्म के प्रति लोगों की आस्था उसने नहीं देखी। मसाढ़ गंगा के किनारे था, इसका एक प्रमाण इस क्षेत्र की **'गंगा का नहान'** और 'तिरोजपुर के **पेठिया**' इस लोकोक्ति में भी है। 'तिरोजपुर' गाँव 'मसाढ़' के पास है, जहाँ पहले बाजार लगता था। गंगास्नान के लिए आये लोग तिरोजपुर का बाजार भी कर लेते थे। इस 'मसाढ़' से पश्चिम की ओर 'कारीसाथ' गाँव है, जो वाल्मीकीय रामायण का 'कारूश' है। इन दोनों स्थानों में पीछे चलकर बौद्ध और जैनधर्म का भी प्रचार हुआ।

मसाढ़ की ऐतिहासिकता और प्राचीनता के प्रमाणस्वरूप यहाँ से प्राप्त पुरातात्त्विक मूर्त्तियाँ और अन्य वस्तुएँ हैं। इन्हीं में से 'मसाढ़' से प्राप्त यक्ष और विष्णु की विशालकाय मूर्त्तियाँ हैं। ये मूर्त्तियाँ सर्वप्रथम वहाँ से उठाकर 'आरा' के महाराजा-आहाते में लाई गई थीं। पुनः वहाँ से विष्णु-मूर्त्ति तो पटना-संग्रहालय में आई, जो संग्रहालय के मैदान में आज भी पड़ी है; पर यक्षवाली मूर्त्ति कलकत्ता के संग्रहालय में ले जाई गई। मसाढ़ से प्राप्त मौर्यकालीन एक सिंहशीर्ष पटना-संग्रहालय में है, जो अपनी कलापूर्ण भंगिमा और निर्धूमिल अमित ओप के कारण दर्शकों का ध्यान हठात् आकृष्ट करता है। यह सिंहशीर्ष अशोक द्वारा मसाढ़ में स्थापित स्तंभ-शीर्ष का टुकड़ा है। इस प्रकार के प्रमाणों से ज्ञात होता है कि 'मसाढ़' का वास्तविक इतिहास भी आजतक उद्घाटित नहीं हो सका है, जिससे यहाँ के संबंध में अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हो गई हैं। उदाहरण के लिए, यह बाणासुर का निवास-स्थान था। इसी बाणासुर की कन्या 'उषा' के महल में कृष्ण-पुत्र 'अनिरुद्ध' छिपाकर रखे गये थे। जिस सरोवर में 'उषा' स्नान करती थी, वह स्थान आज भी 'उषासरोवर' कहा जाता है। यह स्थान पूर्वी रेलवे के कारीसाथ स्टेशन के अति निकट है, किंतु इधर २० वर्षों के भीतर यह बिलकुल सतह के बराबर होकर कृषि-कार्य के योग्य खेत बन गया है। कारीसाथ, मसाढ़ और नवादा—आसपास के ये तीनों ग्राम बहुत प्राचीन हैं और तीनों की भूमि में पुरातात्त्विक सामग्री की भरमार है। प्राप्त वस्तुओं में सबसे अधिक शिवलिंग और मिट्टी के खिलौने हैं।

---

१. इह भूम्यां मलं दत्त्वा दत्त्वा कारूशमेव च ।
शरीरजं महेन्द्रस्य ततो हर्षं प्रपेदिरे ॥—वाल्मीकीय रा०, बाल० २४।२० ।

बाद में चलकर यह मसाढ़ ग्राम जैनधर्म का भी तीर्थक्षेत्र बना। चौदहवीं शती के राजशेखर सूरि-कृत 'प्रबन्धकोश' के 'वप्पभट्टसूरि-प्रबन्ध' से ज्ञात होता है कि कान्यकुब्ज देश के 'आम' नामक राजा का शरीरांत इसी 'मसाढ़' में हुआ था। शरीरांत होने की अग्रिम सूचना उसे राजगृह में मिली थी।[1] यह यशोवर्मा का पुत्र था। जब यह गंगा-मार्ग से कन्नौज के लिए यात्रा कर रहा था, तब इसे मसाढ़ के पास ही पानी से धूम निकलता दिखाई पड़ा था। वहाँ इसने अपने अनशन के द्वारा विक्रम-संवत् ८९० (सन् ८३३ ई०) में प्राण-त्याग किया था।[2] इससे पता चलता है कि ९वीं शती में ही मसाढ़ जैनतीर्थ बन गया था। यहाँ के जैनमंदिर में आठ जैनमूर्त्तियाँ वर्त्तमान हैं। इनमें ७ मूर्त्तियों पर ६५० वर्ष पूर्व के अभिलेख उत्कीर्ण हैं। एक अभिलेख तो सन् १३८६ ई० का है, जो 'आम' राजा की कथा लिखनेवाले राजशेखर सूरि के जीवन के तुरत बाद का है। इस मूर्त्ति को मारवाड़ के किसी राठौरवंशी जैन ने स्थापित किया था। इस प्रकार, १४वीं शती तक मसाढ़ को जैनों के पवित्र तीर्थ के रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। आठवीं मूर्त्ति १९वीं शती में सन् १८१९ ई० में स्थापित की गई है। यह पार्श्वनाथ की मूर्त्ति है। इसपर भी अभिलेख उत्कीर्ण है, जिसमें लिखा है—"आराम (आरा) नगर के बाबू शंकरलाल ने इसकी प्रतिष्ठा कराई, जो अँगरेजों के राज्य में बसते हैं।"

सन् १८५७ ई० में आरा नगर के युद्ध के बाद बाबू कुँवरसिंह की सेना के साथ मसाढ़ के पास स्थित 'बीबीगंज' में अँगरेजों का युद्ध हुआ था। फिर, कारीसाथ की रेलवे-लाइन के किनारे इन दोनों सेनाओं में संगीनों, भालों और तलवारों की गुत्थमगुत्थ लड़ाई हुई थी। मसाढ़ से पूर्व की ओर बढ़कर गंगा नदी पहले अपने दाहिने तट पर 'आरा' नगर को देखती हुई बहती थी। गंगा की इस प्राचीन धारा का नाम आज भी 'गांगी' है। इस गांगी में आज भी 'बनास' (वर्णाशा) नदी का पानी बहता है। बनास नदी सहसराम की पूर्वी-दक्षिणी पहाड़ी से निकलनेवाली 'काव' नदी का पहले कभी अग्रभाग थी, जो मसाढ़ के पास ही गंगा में गिरती थी। किंतु, आजकल वह 'काव' नदी 'ठोरा' नामक नाले से मिलकर बक्सर के जेल के पास गंगा में गिरती है, जो मसाढ़वाले संगमस्थान से लगभग ३० मील पश्चिम पहुँच गई है। गंगा के किनारे स्थित 'आरा' नगर में भगवान् बुद्ध के समय 'अग्गलाव' नामक चैत्य था, जहाँ 'आलवक' नामक यक्ष रहता था।[3] भगवान् बुद्ध इस चैत्य में गये थे। उस समय इस क्षेत्र का नाम 'आलवी' था, जिसे

---

१. गङ्गान्तर्मागधे तीर्थे नावाऽवतरतः सतः।
मकाराद्यक्षरग्रामोपकण्ठे मृत्युरस्ति ते ॥—बप्पभट्टसूरिप्रबंध, १२६, पृ० ४१।

२. सह सूरिणा नावाऽऽरूढो गङ्गासरित्तीरे तीर्थं मागधं गतः। तत्र जले धूमं दृष्टवान्। ....अनशनग्रहणात्। समाधिस्थः श्रीविक्रमकालात् अष्टशतवर्षेसु नवत्यधिकेषु व्यतीते भाद्रपदे शुक्लपञ्चम्यां पञ्चपरमेष्ठिनः स्मरन् राजा दिवमध्यष्ठात्।
—तत्रैव, गाथा १३२, पृ० ४३।

३. सुत्तनिपात्त, आलवकसुत्त।

'ह्वेनत्सांग' ने 'आलवी' (आटवी) लिखा है।[1] इस 'अग्गलाव' नामक चैत्य में बुद्ध ने 'हत्थक आलवक' नामक यक्ष का मान-मर्दन किया था और उसे अपनी शरण में लिया था। इसीलिए, 'आरा' में जो स्तूप था, उसका नाम 'शरण-स्तूप' था। इस स्तूप की चर्चा ह्वेनत्सांग ने की है और कहा है कि 'मो-हो-सो-लो' (मसाढ़) से यह स्तूप ६ मील पूर्व में था। इसी शरण-स्तूप के टीले पर आरा-कलक्टरी का भवन खड़ा है।

आरा नगर शाहाबाद जिले का प्रधान नगर है, जो संभवतः 'आलवी' और 'आलवक यक्ष' के नाम पर है। आलवक के 'आल' शब्द पर 'आरा' और 'वक' शब्द पर 'बकरी' नामक दो ग्राम बसे हैं। यह संपूर्ण शाहाबाद जिला 'भोजपुर' कहलाता है। आरा नगर के संबंध में 'बुकानन' ने अपनी शाहाबाद-रिपोर्ट में इस किंवदंती का उल्लेख किया है कि 'महाभारत' की 'एकचक्रापुरी' नामक नगरी यही 'आरा' है और इसी पुरी के पास 'बकरी' नामक गाँव में भीम ने 'वक' नामक राक्षस को मारा था। किंतु, इस दंतकथा का महाभारत में प्राप्त एकचक्रापुरी के भौगोलिक विवरण से कोई तालमेल नहीं बैठता। उस एकचक्रापुरी को कानपुर से ऊपर कहीं गंगा की तलहटी में ढूँढ़ना चाहिए। निश्चय ही, यह किंवदंती 'आलवक' यक्ष, जिसे बुद्ध ने परास्त किया था, की कहानी के आधार पर ही खड़ी की गई है।

आरा नगर के 'सिद्धनाथ महादेव' और 'अरण्यदेवी'—बहुत प्रसिद्ध तथा प्राचीन हैं। अरण्यदेवी का मंदिर निश्चय ही किसी अति प्राचीन मंदिर के भग्न स्थान पर खड़ा किया गया है। इस क्षेत्र की भूमि से पता चलता है कि यहाँ भी कोई बौद्धस्तूप कभी था। इस नगर के प्राचीन इतिहास का यथार्थ रहस्य अभी खुल नहीं पाया है। अतः, इसका अनुसंधान अपेक्षित है। यह प्राचीन गंगा के कगार पर और शोणभद्र के मुखद्वार पर अवस्थित है। पाटलिपुत्र का पूर्वी प्रवेश-द्वार जिस तरह 'फतुहा' है, उसी तरह इसका पश्चिमी प्रवेश-द्वार 'आरा' है, जो शोण पार करने के पहले, फाटक का काम करता था। पतंजलि के काल में यह 'वाहिक' ग्राम कहलाता था। यह जिस प्रकार पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़नेवाले प्रधान मार्ग पर अवस्थित है, उसी प्रकार दक्षिण से शोणतट पकड़कर हिमालय की ओर जानेवाले मार्ग पर भी खड़ा है। शोण-प्रवाह का यही मार्ग लंका और कैलास-मानसरोवर को जोड़ता था। एक मार्ग कलिंग में बहनेवाली महानदी के कछार से उत्तर सुरगुजा-क्षेत्र से होता हुआ शोण का तट पकड़ता था और दूसरा

१. इस क्षेत्र का नाम 'आलवी' था, इसका 'आलवी-विषय' के रूप में उल्लेख जीवितगुप्त (द्वितीय) के 'देववरुणार्क' वाले अभिलेख में मिलता है। देववरुणार्क शाहाबाद जिले का 'देवचंदा' नामक गाँव है। अभिलेख की पंक्तियाँ हैं :

"परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरः श्रीजीवितगुप्तदेवकुशली नगरभुक्तौ वालवी-विषयैक वा वोपद्रविक (क्षा)न्त शयातिवारुणिका ग्रामगोष्ठनकुलतलवाटक... ....आदि।"

आलवी' के संबंध में लेखक का 'आलवी और उसका प्रदेश' नामक शोध-निबंध बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक 'परिषद्-पत्रिका' (वर्ष ६, अंक ३) में देखिए।

राउरकेला से 'शंख' नदी का किनारा पकड़कर, राँची जिले के पश्चिमी भाग से होकर पालामऊ में 'उत्तर कोयल' के किनारे से शोणतट पर आता था। अगस्त्य ऋषि शोण के तट से ही विंध्य को झुकाते हुए दक्षिण पहुँचे थे और लंका का रावण इसी शोणतट से गंगा पार कर गंडक के किनारे से कैलास तक पहुँचता था। इन सारे तथ्यों के कारण आरा नगर का प्राचीन इतिहास आजतक रहस्य बना हुआ है।

बिहार-प्रदेश की विजय के लिए मुगल-बादशाह बाबर जब गंगा के प्रवाह-पथ से पूर्व की ओर बढ़ रहा था, तब वह बड़ी सेना के साथ सन् १५२९ ई० के १७ अप्रैल को 'आरा' नगर में आया। जब वह 'आरा' में पड़ाव डाले हुए था, तभी उसे ज्ञात हुआ कि अफगानों और बंगालियों की सम्मिलित सेना सरयू के किनारे (माँझी के पास) आ गई है। बाबर अपनी सेना के साथ आरा नगर के रमना मैदान में, जो फिलहाल जजी कचहरी और कलक्टरी के दक्षिण में है, खेमा गिराये हुए था। बाबर यहीं से नीलकमल के फूलों को देखने एक झील के पास गया था, जो 'आरा' नगर के पूर्व-दक्षिण दिशा में थी। वहीं उसे जब मालूम हुआ कि यहाँ से सोन नदी नजदीक ही बहती है, तब वह अपने घुड़सवारों के साथ सोन के तट पर गया। वहाँ उसे बतलाया गया कि सोन के उस पार दाहिनी ओर 'मनेर' गाँव में 'शेख शर्फुद्दीन मनेरी' के पिता फकीर 'याहिया खाँ' की पवित्र कब्र है। बाबर अपने घुड़सवारों के साथ सोन के बायें तट से छह मील उत्तर चलकर सोन नदी को पार कर मनेर पहुँचा था। इससे पता चलता है कि वह कोइलवर के पास सोन के किनारे आया था। उस दिन बाबर ने कुल मिलाकर ६० मील की घुड़सवारी की थी और चार घड़ी रात बीतते-बीतते आरा की अपनी छावनी में वह वापस लौटा था।

आरा के खेमे में ही बाबर ने बंगाली सेना से युद्ध के लिए अपनी सेना को तीन भागों में बाँटने की योजना तैयार की थी। उसने अपने बंदूकची सैनिकों को 'मुहम्मद मुस्तफा' के अधीन 'मनेर' के सामने 'हलदी छपरा' के दियारे में रवाना किया था और उस्ताद अली कुली के तत्त्वावधान में, सरयू-गंगा के मुहाने पर, तोपों की पाँत खड़ी कराई थी। सेना का तीसरा मोर्चा, जो सबसे बड़ा था और जिसमें गजसेना और अश्वसेना भी सम्मिलित थी, 'अस्करी' के अधीन था और यह नैनीजोर के सामने 'हलदी' में नौसेतु से गंगा पार करके घाघरा के दाहिने किनारे पर डट गया था। अस्करी की सेना के संबंध में बाबर ने ऐसी योजना बनाई कि बड़ी फुरती से सारी सेना घाघरा के किनारे पहुँचे और तहाँ कई भागों में बँटकर घाघरा पार करे तथा इस तरह हमला करे, जिससे यह प्रतीत हो कि सारी सेना युद्ध में उलझी हुई है। योजना के अनुसार, जब युद्ध आरंभ हो गया, तब बाबर ने सन् १५२९ ई० की ३ मई को 'आरा' से चलकर प्रायः सरयू के मुहाने पर गंगा को पार किया। संभवतः, बाबर भी सिनहाघाट में ही गंगा पार हुआ। बाबर स्वयं अपनी तोपची सेना के पीछे दोआब में ठहरा था। इस अवसर पर १६ दिनों तक आरा में बाबर रहा। इसके बाद सैकड़ों वर्षों तक आरा में ऐसी कोई बड़ी घटना नहीं घटी।

किंतु, सन् १८५७ ई० में जब देश में स्वतंत्रता-संग्राम छिड़ा, तब जगदीशपुर-निवासी बाबू कुँवरसिंह के साथ अँगरेजों का प्रथम युद्ध इसी आरा नगर में हुआ। आरा का 'बाबू बाजार' महल्ला बाबू कुँवरसिंह के नाम पर ही है। आरा का जिला-जेल कुँवर-सिंह के घोड़ों का अस्तबल था। यह युद्ध आरा नगर के बाहर ईशान कोण में स्थित एक बागीचे में हुआ था। अँगरेजी-सेना का इस युद्ध में पूरा सफाया हो गया और सेना का कैप्टन डनवर' भी यहीं मारा गया था। नगर के तथा बाहर के जो छिटपुट अँगरेज बच गये थे, उन्होंने एक कोठी में एकत्र होकर शरण ली थी और वहीं अपनी सुरक्षा की सुदृढ व्यवस्था भी की थी। तीन दिनों तक ये अँगरेज बड़ी मुश्किल से भूखे-प्यासे रहकर बहादुरी से लड़ते रहे और अपनी जान बचाते रहे। इसी मौके पर अँगरेजी-सेना का एक जहाज गंगा के प्रवाह-पथ से कलकत्ता से पश्चिम की ओर कानपुर जा रहा था। उसे सूचना दी गई कि वह जहाज रोककर आरा के घिरे अँगरेजों की जान बचाये और पहले कुँवरसिंह से निबटे। इस सेना का कैप्टन 'आयर' नामक अँगरेज था। यह 'सिनहाघाट' में ही जहाज रोककर आरा पहुँचा और इसने घिरे हुए अँगरेजों की जान बचाई। जिस कोठी में अँगरेज घिरे हुए थे, वह अब एक ऐतिहासिक स्मारक बन गया है और 'आरा हाउस' के नाम से ख्यात हो गया है। आरा के युद्ध में मारे गये अँगरेज-अफसरों के नाम एक पत्थर पर खुदवाकर उसे आरा-कचहरी के दक्षिणवाले मैदान में, एक पक्के चबूतरे में जड़ दिया गया था। किंतु, अब यह स्मारक धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है। बिहार-सरकार इन ऐतिहासिक स्मारकों की दयनीय दशा पर जरा भी तरस नहीं खाती!

आरा-नगर से १० मील उत्तर-पूर्व भाग में 'बड़हरा' गाँव है। इसी बड़हरा के निवासी पं० रामदेव त्रिपाठी थे, जो दर्शन और व्याकरण-शास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। इसके पूर्व 'एकौना' नामक गाँव कई हिस्सों में बँटकर गंगा के तट पर फैला है। इन्हीं दोनों गाँवों के सामने, गंगा के बायें किनारे, घाघरा (सरयू) आजकल गंगा में गिरती है। इसी 'एकौना' ग्राम के हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीकलक्टर सिंह 'केसरी' हैं। बड़हरा के सामने ही उस पार और सरयू-संगम के बायें भाग में सारन जिले का प्रधान नगर 'छपरा' बसा है। छपरा नगर के दक्षिण भाग में सरयू नदी वायव्य कोण से बहती हुई आती है और पूर्व की ओर मुड़कर 'छपरा' को घेरती हुई गंगा को भरती है। यह वही 'सरयू' है, जो मानसरोवर का पानी ग्रहण करनेवाले 'राक्षसताल' के दक्षिण भाग से प्रवाहित होती है और नेपाल-राज्य की भूमि से बहकर उत्तरप्रदेश के बहराइच जिले में घुसती है। नेपाल-राज्य में इसका नाम 'कर्णाली' है। बहराइच और बाराबंकी-सीमा पर 'बहरामघाट' में अपने दाहिने पार्श्व में जब यह 'शारदा' नदी का जल पी लेती है, तब घाघरा और सरयू दोनों नामों से अभिहित होने लगती है। इसी के तट पर अयोध्या नगरी है। पहले यह बलिया के दक्षिण गंगा में संगम करती था और अब आजमगढ़ और गोरखपुर जिले की सीमा बनाती बरहज आती है और राप्ती को आत्मसात् कर छपरा के दक्षिण गंगा में समाहित होती है। भगवान् बुद्ध के समय में, वैशाली के क्षेत्र में

एक चापाल-चैत्य था। बहुत संभव है कि उसी 'चापाल' का मिटता-घिसता नाम 'छपरा' हो। उस क्षेत्र में, इसके नाम पर कई स्थानों के नाम 'छपरा' हो गये हैं।

यह पहले कहा गया है कि गौड के शासक नसरत शाह की सेना के साथ जब बाबर का युद्ध हुआ, तब बाबर संगम-क्षेत्र में रुका था। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् बाबर ने 'कुंडीह' नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। यह कुंडीह शायद 'कउनरू' गाँव है, जो माँझी रेलवे-स्टेशन के अग्निकोण और सैदपुर के पश्चिम में स्थित है। 'बाबरनामा'[1], के पृ० ४९६ पर जिस 'चौपरा-चतुर्मख' का उल्लेख हैं, वह चौपरा, छपरा नहीं हो सकता; क्योंकि बाबर ने 'कुंडीह' से चलकर दो दिन बीच में पड़ाव किया, तब चौपरा पहुँचा था, जहाँ उसे भयंकर आँधी-पानी का सामना करना पड़ा था और जिसमें उसके खेमे उड़ गये थे और उसकी डायरी के बहुत से पन्ने भींगकर नष्ट हो गये थे। बाबर वहाँ सारी रात जागता रहा और आग पर डायरी के भींगे पन्ने सुखाता रहा। १४वीं शती के प्रारंभ में लिखित 'विविधतीर्थंकल्प' की २०वीं कथा से इतना तो स्पष्ट पता चलता है कि उस काल तक 'छपरा' नाम का आज का जैसा नगर नहीं बन सका था। वहाँ का 'रतनपुरा' महल्ला ही उस समय प्रसिद्ध था और वह 'रत्नवाहपुर' कहलाता था। छपरा के धर्मनाथजी का मंदिर उस समय तक प्रतिष्ठित हो चुका था। इसके अतिरिक्त 'हाजी इलियास' के विरुद्ध जब फिरोजशाह तुगलक ने चढ़ाई की, तब वह पाटलिपुत्र में गंडक के संगम के पास बाढ़ के कारण गंगा नहीं पार कर सका। रातोंरात दौड़ते हुए उसने आरा के सामने गगा को पार किया, और तब हाजीपुर की ओर आया। वहाँ भी संगम के अतिरिक्त छपरा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। घाघरा के किनारे माँझी के पास अकबर की सेना और उजबेकों का युद्ध हुआ था, जिसमें अकबर की सेना हार गई थी, उसमें भी कहीं 'छपरा' नगर का उल्लेख नहीं पाया जाता। अतः, स्पष्ट है कि छपरा को नगर या शहर का रूप मुस्लिम-शासन के अंतिम काल में प्राप्त हुआ।

छपरा नगर का सबसे पहला संकेत 'टेवर्नियर' के यात्रा-वृत्तांत में मिलता है। वह लिखता है कि 'चौपर' में हालैंड की एक कंपनी ने शोरा का गोदाम खोला था, जहाँ से शोरा साफ करके हुगली भेजा जाता था और वहाँ से फिर विदेश को जाता था। बाद में अँगरेजों ने यहाँ शोरे की एक फैक्टरी खोली थी, जिसे सन् १७७१ ई० में विरोधियों ने लूट लिया था और फैक्टरी में आग लगा दी थी। इससे तो यही लगता है कि बिहार में विदेशियों के आगमन के पश्चात् ही छपरा को एक नगर का रूप मिला।

फिर, छपरा नगर की चर्चा सन् १७५७ ई० में प्राप्त होती है। पलासी के युद्ध में जब नवाब सिराजुद्दौला हार गया, तब उसका फ्रांसीसी सहायक 'मिस्टर लॉ' गंगा-मार्ग से भागता छपरा आ पहुँचा। उसका पीछा गंगा-प्रवाह से ही 'ईयर कूट' नामक अँगरेज

---

१ बाबरनामा (हिंदी अनुवाद), प्रकाशक, आदर्श हिंदी-पुस्तकालय, ४६३, मालवीयनगर, इलाहाबाद, दिसबर, १९६८ ई०।

कमांडर कर रहा था, वह भी छपरा आ पहुँचा था। इसी प्रकार, सन् १७६३ ई० में 'मीरकासिम' ने जब पटना-फैक्टरी के एजेंट 'एलिस' को भगाकर 'पटना' पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया, तब 'एलिस' सदल-बल छपरा की ओर भागा, किंतु मीरकासिम के सेनापति 'समरू' ने अत्यंत तेज गति से भागती हुई एलिस की टोली को माँझी में जा पकड़ा, और वहाँ बिना विश्राम किये, उसे घेरकर हाँकते हुए 'छपरा' लाया। उसके बाद गंगा से नाव द्वारा सभी बंदी पटना लाये गये और मौत के घाट उतार दिये गये। मीरकासिम को ध्वस्त करने के बाद सन् १७६४ ई० में छपरा पर अँगरेजों का पूरी तरह अधिकार हो गया। इसी विजय-अभियान में अँगरेजों की सेना की एक टुकड़ी छपरा से जब गाजीपुर जा रही थी, तब उस टोली के देशी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और टोली के जितने अँगरेज-अफसर थे, उन्हें कैद कर लिया। किंतु, दयावश उन्होंने दूसरे ही दिन उन सभी अफसरों को छोड़ भी दिया। वे अफसर आगे न बढ़कर 'छपरा' लौट आये। उन्होंने मेजर हेक्टर मुनरो को, जो पटना में था, एक गुप्त संदेश द्वारा माँझी की घटना लिख भेजी। मुनरो ने तुरंत पटना से एक दूसरी सेना छपरा भेजी, जिसने वहाँ पहुँचकर सभी देशी सैनिकों को कैद कर लिया। उन विद्रोही सैनिकों में से अगुआई करनेवाले २४ व्यक्तियों को फाँसी की सजा दी गई। इनमें से २० व्यक्ति तो गंगा के वामपार्श्व में स्थित इस 'छपरा' में ही फाँसी पर लटका दिये गये, शेष चार को गंगा के दाहिने किनारे लाकर 'मनेर' में फाँसी दे दी गई।

इन सारी घटनाओं के पश्चात्, सन् १७६६ ई० में लार्ड क्लाइव, शुजाउद्दौला, बादशाह शाह आलम का वजीर मुनीरुद्दौला तथा बनारस का राजा बलवंतसिंह, गंगा के प्रवाह-पथ से आकर, इसी छपरा नगर में एक जगह मिले थे। इन सबके बीच एक संधि हुई, जिसके अनुसार एक साथ मिलकर मराठों के आक्रमण को रोकने का निर्णय इन्होंने किया। सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम के अवसर पर भी कुँवरसिंह से लोहा लेने के लिए छपरा में अँगरेजों की एक सुरक्षित सेना पड़ी थी, जो घाघरा के विभिन्न घाटों पर स्थित अपने सैनिकों की निगरानी तथा अन्य व्यवस्था करती थी।

गंगा-सरयू के संगम पर स्थित इस छपरा नगर में 'धर्मनाथजी' का एक अति प्राचीन और प्रसिद्ध शिवलिंग है। यहाँवालों का कहना है कि यह पहले 'रत्नेश्वर-मंदिर' कहलाता था, जिसका निर्माण 'रतनसेन' नामक राजा ने किया था। इसी 'रतनसेन' राजा के नाम पर 'छपरा' का प्रसिद्ध मुहल्ला 'रतनपुरा' है। यहाँ 'रतनसेन' राजा का गढ़ था। इस किंवदंती में बहुत अधिक तथ्य है। इसका एक ऐतिहासिक प्रमाण मुझे १४वीं शती के प्रारंभ में लिखित 'विविधतीर्थकल्प' नामक पुस्तक में मिला है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ देना प्रासंगिक होगा :

"अस्तीहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारतवर्षे कोशलेषु जनपदे नानाजातीयोच्चैस्तरशाखिशाखा-बहलदलकुसुमफलच्छन्नताच्छादितघर्मघृणिकरगहनवनमण्डितं शीतलविमलबहलजल

निर्झरघर्घरनदबन्धुरं रत्नवाहं नाम पुरम्। तत्रचेक्ष्वाककुलप्रदीपः......श्रीभानुनरेन्द्रवेश्मनि सुव्रता देवी कुक्षौ तनयतयाऽवततार।........तस्मिन्नेव च पुरे जननयनजनितशैत्यं श्रीधर्मनाथचैत्यं नागकुमारदेवाधिष्ठितं कालेन निर्वृत्तम्।......तत्र च तथैव नागमूर्त्तिपरिवारिता श्रीधर्मनाथप्रतिमाऽद्यापि सम्यक् दृष्टियात्रिकजनैरनेकविधिप्रभावप्रभावना-पुरस्सरं पूज्यते। अद्यापि च परसमयिनो 'धर्मराज' इति व्यपदिश्य कदाचिद् वर्षति वर्षासु जलधरे क्षीरघटसहस्रं भगवन्तं स्नपयन्ति, सम्पद्यते च तत्क्षणाद्विशिष्टा मेघवृष्टिः। कन्दर्पा शासनदेवी किन्नरश्च शासनयक्षः श्रीधर्मनाथपादपद्मसेवाहेवाकचञ्चरीकाणामनर्थ-प्रतिघातमर्थप्राप्तिं चात्र सूत्रयतीति।''[१]

उक्त पुस्तक के लेखक जिनप्रभसूरि ने महादेव धर्मनाथजी के संबंध में एक पुरानी दंतकथा का उल्लेख किया है। दंतकथा में कहा गया है कि रत्नवाहपुर में एक पुराना चैत्य था। उस चैत्य के पास एक कुम्हार रहता था, जो बरतन बनाकर जीविका चलाता था। उसे एक लड़का था, जो पिता के काम में सहायता नहीं करता था। उसके साथ एक नागकुमार मनुष्य-बालक बनकर चैत्य के पास खेलता था। घरेलू कार्य में सहयोग नहीं देने के कारण कुम्हार ने अपने लड़के को पीटा और दूसरे दिन से उसे खेलने जाने से रोक दिया। कुम्हार के लड़के का खेल बंद हो गया। एक दिन नागकुमार से उस लड़के की भेंट हुई। नागकुमार ने पूछा कि अब तुम खेलने क्यों नहीं आते? इस पर कुम्हार के लड़के ने अपने पिता की गरीबी कही और कहा जीविका के लिए मुझे घर में काम करना पड़ता है, जिससे मेरा खेलना बंद हो गया है। नागकुमार को अपने मित्र के प्रति दया आ गई। उसने कहा कि कल तुम खेलने आओ और साथ में एक 'खनती' लेते आओ। खेल के बाद जब मैं जमीन पर लोट जाऊँगा, तब मैं साँप हो जाऊँगा। तुम मेरे विवर में प्रवेश करने के पहले उस 'खनती' से मेरी चार अंगुल पूँछ काट लेना। वह पूँछ सोने की गुल्ली बन जायगी, जिससे तुम्हारा पिता सुखी हो जायगा। कुम्हार के लड़के ने वैसा ही किया और सोने की गुल्ली ले जाकर अपने पिता को दिया। पिता ने उस स्वर्ण-गुल्ली की बात पूछी, तो उस लड़के ने सारी सच्ची कहानी सुना दी। कुम्हार ने सोचा, यदि उस साँप को मैं मार दूँ, तो बहुत ज्यादा सुवर्ण मुझे मिल जायगा। वह अपने लड़के को साथ लेकर चैत्य के पास गया। लड़के ने अपने पिता को विवर दिखला दिया। कुम्हार ने चैत्य को खोद डाला, जिससे नागकुमार निकला। नागकुमार उस कुम्हार की दुष्टता और कृतघ्नता को जानकर क्रुद्ध हो गया और उसने पिता-पुत्र दोनों को डँस लिया, जिससे दोनों की मृत्यु हो गई।

आगे जिनप्रभसूरि कहते हैं कि उसी चैत्य-स्थल में उस नागकुमार को देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। आज भी नागमूर्त्ति से परिवेष्टित 'धर्मनाथजी' की प्रतिमा

---

१. विविधतीर्थकल्प (२०, रत्नवाहपुरकल्प), पृ० ३३; प्रकाशक, सिंघी जैनपीठ, शांतिनिकेतन, बंगाल, विक्रमाब्द १९९१।

देखी जाती है। अकाल पड़ने पर एक सहस्र घट क्षीर से यदि कोई धर्मनाथजी को स्नान कराता है, तो विना बादल के ही घोर वृष्टि हो जाती है। वहाँ कंदर्पा देवी और किन्नर नामक दो यक्षमूर्त्तियाँ हैं, जो धर्मनाथजी के भक्तों को वैभव प्रदान करती हैं।

उक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि १४वीं शती में 'छपरा' नामक नगर नहीं बन सका था और रतनपुरा (रत्नवाहपुर) नामक एक पुराना गाँव ही प्रसिद्ध स्थान था। यह घाघरा नदी के तट पर स्थित था। यहाँ एक प्राचीन भग्न चैत्य था। रत्नवाहपुर कोसल-प्रदेश में था[1] जहाँ धर्मनाथ महादेव का लिंग सर्प-परिवेष्टित था। सोनेवाली कहानी बहुत सटीक है, जिसके स्मारक-स्वरूप धर्मनाथ शिवलिंग के मस्तक पर आजतक सोने का पत्तर मढ़ा हुआ है। यह मंदिर उसी भग्न स्तूपवाले स्थान पर बना है। संभवतः, यही स्तूप 'चापाल-चैत्य' होगा।

छपरा की पुरानी इमारतों में नगर के पश्चिमी भाग में एक सराय है। इसी में आजकल 'राजेन्द्र-महाविद्यालय' है। पहले इसी इमारत में समय-समय पर फ्रांसीसी, डच, पोर्त्तुगीज तथा अँगरेजी शोरे की फैक्टरियाँ कायम थीं। बहुत संभावना है कि टेवर्नियर द्वारा वर्णित शोरा-फैक्टरी इसी इमारत में थी। यही छपरा शहर सारन जिले का प्रमुख नगर है, जो सरयू-गंगा-संगम पर बसा है।

सरयू नदी गंगा में जहाँ मिलती है, उसके वाम पार्श्व में 'चिराँद' नामक स्थान है। लगभग इसी के सामने गंगा नदी के दाहिने भाग में शोण महानद भी अपार जल-भांडार लिए प्रवेश करता है। गंगा की विशाल मर्यादा इसी सरयू और शोण-संगम से आरंभ होती है, जहाँ से मीलों तक रेत और पानी ही दृष्टिगोचर होता है। पहले कहा गया है कि आजकल का यह सरयू-संगम पुराकाल में लगभग ४० मील पश्चिम 'बलिया' के सामने था।

छपरा नगर से छह मील पूरब तथा संगम के उत्तर भाग में 'चिराँद' ग्राम है। पहले जब यहाँ सरयू-संगम नहीं था और राप्ती नदी माँझी के दक्षिण और छपरा के पश्चिम-दक्षिण कोण में ही गंगा से मिल जाती थी, तब चिराँद बिलकुल गंगा के वाम तट पर स्थित था। ह्वेनत्सांग ने आलवी-प्रदेश से चिराँद के सामने ही गंगा पार किया था। आजकल गंगा नदी चिराँद से बहुत दक्षिण हट गई है। चिराँद में जहाँ पहले किला था, उसी की भग्नभूमि पर पुराने चार मंदिर वर्त्तमान हैं। किले की वास्तविक कहानी आजतक अज्ञात है। किले के पास की दो पुष्करणियों के नाम 'जीवछ' और 'ब्रह्मकुण्ड' हैं। कार्त्तिक-पूर्णिमा को अब भी यहाँ मेला लगता है। यहाँ की दंतकथा

१. सारन जिला 'कोसल' में था, उसका प्रमाण तो 'दिघवा-दुबौली' से प्राप्त ताम्रपत्र में भी मिलता है, जिसे श्रावस्ती-भुक्ति में बतलाया गया है—'परमभगवतीभक्तो महाराज-श्रीमहेन्द्रपालदेवः। ओं स्वस्ति श्रीमहोदयसमयाभितानेकगोहस्त्यश्वरथपतिसम्पन्न स्कन्धावारात् परमवैष्णवो....श्रावस्तीभुक्तौ श्रावस्तीमण्डलापाति वालभिकाविषय सम्बन्ध-पानीयकग्रामसमुपगता....'' आदि।

४६६

के अनुसार, भग्नावशेष टीला महाभारत-कालीन मयूरध्वज राजा के गढ़ का अवशेष है। यहाँ की मस्जिद के दरवाजे के अभिलेख में बंगाल के शासक (सन् १४९३ से १५१९ ई०) हुसेनशाह का नाम अंकित है। इसमे स्पष्ट है कि हुसेनशाह ने ही किसी मंदिर के अवशेष से इस मस्जिद का निर्माण कराया था। 'चिराँद' का खँड़हर इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि कभी यह कोई अच्छा नगर था और गंगा के किनारे होने के कारण इसका अपना विशिष्ट महत्त्व था। यहाँ बहुत-सी बौद्धमूर्त्तियाँ प्राप्त हुई हैं, अतः यह निश्चित ही कोई बौद्धधर्माधिष्ठित स्थान था। चिराँद के कुछ लोगों का कहना है कि यहाँ चेरो-जाति के राजा का गढ़ था और चिराँद का नाम उस समय 'चेरो-मंडप' था। संभव है, किसी प्राचीन नगर के अवशेष पर 'चेरो'-जाति के राजा ने भी बाद में अपना गढ़ बनाया हो; क्योंकि इस इलाके के 'माँझी' में भी चेरो का गढ़ था।

सन् १९६३ से १९६५ ई० तक में प्रथम बार चिराँद-गढ़ की थोड़ी-सी खुदाई हुई थी। उस खुदाई में गुप्तयुग के कुछ मृण्मय खिलौने और कुछ मिट्टी के उस प्रकार के बरतन मिले थे, जिस प्रकार के राजस्थान और मध्यप्रदेश की खुदाई में भी मिल चुके थे। साथ ही, उस समय मठों की दीवारों के जो अवशेष मिले, उनसे पता चला कि ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व और दो सौ वर्ष बाद तक के काल में यहाँ बौद्धों ने पाँच बार कालक्रम से मठों का निर्माण किया है। इन सारे अवशेषों की परख से ऐसी संभावना दीख पड़ी कि गंगा के इस तट में ऐसी प्राचीन पुरातात्त्विक सामग्री मिल सकती है, जो इतिहास की दृष्टि से दुर्लभ प्रमाणित होगी। इसी उत्साहवर्द्धक संभावनाओं के कारण फिर यहाँ सन् १९६९ ई० में खुदाई कराई गई।

चिराँद की इस बार की खुदाई ने प्रमाणित कर दिया है कि भारत के गंगातटीय पूर्वभाग का मानव-इतिहास उतना ही गौरवमय तथा प्राचीन है, जितना पश्चिमी भारत तथा सिंधु की घाटी का। इस बार की खुदाई में यहाँ उत्तर पाषाण-युग तथा ताम्रयुग के महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये अवशेष ईसा के दो हजार वर्ष पूर्व से आरंभ करके बंगाल के पालवंशीय राजाओं के काल तक के स्थिर किये गये हैं। इन अवशेषों में मिट्टी के कलईदार बरतन, हड्डियों के हथियार, छिदे हुए सूर्यकांत मणि के मनके, स्वफेनाश्म के बने कर्णफूल, स्फटिक मणि के लॉकेट, सोने-चाँदी के विभिन्न प्रकार के आभूषण, हड्डी की बनी सूइयाँ, तीर की नोकें आदि मुख्य हैं। इनमें ईसा-पूर्व की जितनी वस्तुएँ मिली हैं, वे उत्तर पाषाण-युग की हैं तथा उनका काल ईसा से २००० वर्ष पूर्व से १५०० वर्ष के मध्य का है। कुछ चीजें ऐसी भी हैं, जो ताम्रयुग एवं काली मिट्टी के बरतन-युग की मानी गई हैं और उनका काल ईसा के १५०० वर्ष पूर्व से ६०० वर्ष पूर्व के बीच का है। इनके अतिरिक्त, पाल-राजाओं के समय की बनी एक ऐसी त्रिमूर्त्ति मिली है, जिसकी दूसरी आकृति आजतक कहीं नहीं प्राप्त हुई है। त्रिमूर्त्ति के मध्य में शिव हैं और दोनों भाग में स्त्री-मूर्त्तियाँ उकेरी गई हैं। चिराँद की इस खुदाई में कलचुरि-वंशीय गांगेयदेव

की बहुतेरी स्वर्णमुद्राएँ भी मिली हैं, जो उस वंश के राजा 'कर्ण' के शासन-प्रभाव का प्रमाण देती हैं, जिस कर्ण ने पालों को परास्त किया था। इस बार यहाँ कुषाण और शुंग-कालीन अवशेष भी मिले हैं। फिर, नंदी की एक मूर्त्ति, ताँबे के ८८ सिक्के, पीतल के कंगन, चाँदी-सोने की मुद्रिकाएँ तथा अन्य प्रकार की स्वर्ण-मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं। पालयुगीन शतरंज की ऐसी मुहरें मिली हैं, जो मिट्टी की बनी हैं और पकाई हुई हैं। इससे यह भ्रांति तो निश्चय ही दूर हो गई कि शतरंज खेल मुगल-बादशाहों की देन है। किंतु, आश्चर्य का विषय यह है कि ईसा के २००० वर्ष पूर्व से आरंभ करके ईसा-पश्चात् ९वीं शती तक की वस्तुएँ मिलीं; किंतु इस लंबे समय के मध्य में पड़नेवाले गुप्त-राजाओं के काल की कोई सामग्री हाथ नहीं लगी। इसके मानी हैं कि इस बार जिस स्थान की खुदाई की गई, वह स्थान पूरे गुप्तकाल में लोगों से अछूता और उपेक्षित रहा। इस प्रकार, गंगा के तट पर स्थित इस 'चिराँद' स्थान का अपना गौरवमय इतिहास स्पष्ट है, जिसका और अधिक अनुसंधान होना चाहिए।

उक्त 'चिराँद' से पूर्व की ओर बहनेवाली गंगा नदी के वाम भाग में ही 'आमी' नामक स्थान है, जिसे 'अंबिकास्थान' भी कहा जाता है। गंगा की प्राचीन धारा आमी-मंदिर से सटकर पूर्व की ओर बहती थी। इसी के पूरब दिघवारा (दीर्घवाह) में कभी 'मही' (गंडकी) नदी गंगा से संगम करती थी। मही के इस प्राचीन संगम से बहुत नजदीक पश्चिम में 'आमी' है। यहाँ का भवानी-मंदिर एक प्राचीन मंदिर है और इस मंदिर में अधिष्ठित 'देवी' की बड़ी प्रतिष्ठा है। एक दंतकथा के अनुसार, दक्ष प्रजापति का यज्ञ यहाँ हुआ था और सती ने यहीं यज्ञकुंड में कूदकर अपनी आहुति दे दी थी। इसके पश्चात् राजा सुरथ ने अपनी राजधानी यहाँ स्थापित की थी। किंतु, इन बातों का पौराणिक अथवा ऐतिहासिक प्रमाण कुछ भी नहीं है। फिर भी, जिस विस्तृत ऊँचे स्थान पर देवी का मंदिर है, वह कोई निश्चित ही बहुत प्राचीन स्थान है और किसी बौद्ध चैत्य का भग्नावशेष है। क्योंकि, अब भी यहाँ मौर्यकालीन ईंटों के टुकड़े मिलते हैं। शुंगकालीन मिट्टी के खिलौने और मिट्टी के तत्कालीन बरतन भी प्राप्त हुए हैं। आज भी यदा-कदा ऐसी प्राचीन वस्तुएँ यहाँ प्राप्त हो जाती हैं। यहाँ चैत्र शुक्ल-रामनवमी को बहुत बड़ा मेला लगता है और देवी-भक्त, विंध्याचल की तरह, दुर्गास्तोत्र का पाठ करने एकत्र होते हैं।

पूर्वोक्त सरयू-संगम, छपरा नगर, 'चिराँद' और 'आमी'—ये सब स्थान गंगा के बायें तट पर, उत्तर बिहार के क्षेत्र में, अवस्थित हैं। चिराँद के सामने गंगा के पार्श्व में एवं दक्षिण बिहार की सीमा में 'शोण' नद का संगम है। शोण-संगम के क्षेत्र में उसके दाहिने किनारे तथा 'आमी' के सामने 'मनेर' है, जो पटना जिले के पश्चिमी-उत्तरी कोण की सीमा पर स्थित है। किंतु 'मनेर' के संबंध में कुछ लिखने के पहले थोड़ा 'शोण-संगम' पर प्रकाश डालना उचित होगा।

पहले लिखा गया है कि शोणनद शाहाबाद जिले के 'बिनगाँवाँ' के पास उसके पूर्वभाग में गंगा से संगम करता है। भारत की बड़ी-बड़ी नदियों में शोण की गणना है और यह नदी नहीं, नद कहलाता है। फिर भी, पता नहीं क्यों, पुराणों में इस पितामह-पुत्र शोण को उचित स्थान नहीं दिया गया है। शोण की ही नहीं, छोटानागपुर पठार की सारी नदियों की उपेक्षा पुराणों में हुई है। इससे तो यही प्रतीत होता है कि हमारे पौराणिकों ने जहाँ हिमालय-जैसे बीहड़ क्षेत्र की इंच-इंच भूमि को छान डाला था, वहाँ छोटानागपुर की भूमि उनके लिए दुर्गम रही अथवा अनार्यों का वास होने के कारण इस भूमि-भाग की उन्होंने उपेक्षा की। बौद्ध साहित्य में भी बिहार की छोटी-छोटी नदियों की चर्चा भरी पड़ी है; किंतु आश्चर्य है कि संपूर्ण बौद्धसाहित्य में 'शोणनद' का कहीं नाम तक भी नहीं है, जब कि मगध और सारनाथ के बीच में ही यह प्रवाहित है। किंतु, वाल्मीकि, महाभारतकार व्यास, कालिदास आदि ने बड़ी श्रद्धा के साथ 'शोण' का स्मरण किया है और कालिदास ने तो शोण-संगम को ही उपमान बनाकर 'अज' की सेना का प्राबल्य आँका है—**प्रत्यग्रहीत् पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरङ्गः।**[१] महाकवि बाणभट्ट ने तो अपने प्रथम वय के चौदह वर्ष शोण के ही पुलिन-पटलों पर उछलते-खेलते तथा उसका स्वच्छ-शिशिर-सुधामय जल पीते व्यतीत किये थे। पुनः वह गिरती उम्र में शोण के पवित्र जल से तर्पण एवं सन्ध्या-वंदन करता रहा था। शोण का स्मरण उसने बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति के साथ अपने 'हर्षचरित' नामक ग्रंथ के प्रथम उच्छ्वास में किया है।[२]

शोण 'अमरकंटक' पर्वत से प्रवाहित होकर रीवाँ-राज्य को पार करता मिर्जापुर जिले में आता है और तब शाहाबाद (बिहार) की भूमि में पूर्वाभिमुख होकर प्रवेश करता है। यह 'कैमूर' पहाड़ी को परिखावर्त्तित रूप से पार करता, 'रोहतास' किले को अपने तट पर देखता उत्तर की ओर मुड़ता है। इसके बाद यह अकबरपुर, तिलौथू, डेहरी ऑनसोन, नासरीगंज-दाउदनगर, सहार-अरवल, कोइलवर-बिहटा होते तथा अपने दायें भाग में मनेर का स्पर्श करते 'बिनगाँवाँ' तथा 'हलदी छपरा' के बीच गंगा के गर्भ में समाहित हो जाता है। इसी शोण-संगम के आस-पास ८वीं शती में कन्नौज के राजा यशोवर्मन् ने उत्तरकालीन गुप्तवंशी राजा देवगुप्त को युद्ध में मार डाला था। फिर, इसी शोण-संगम के पार्श्व में सन् १५५४ ई० में, बादशाह अकबर की सेना के साथ 'दाउद खाँ' का युद्ध हुआ था, जिसमें अकबर की सेना का नेतृत्व टोडरमल और मुनीब खाँ ने किया था। किंतु, इसके बहुत पहले शोण का संगम 'दानापुर' के पूरब होता था। आधुनिक शोण-संगम के बाद गंगानदी शाहाबाद की भूमि छोड़कर पटना जिले में प्रवेश करती है और पटना तथा सारन जिले के क्षेत्र को दोनों ओर बाँटती है।

---

१. रघुवंश, सर्ग ७, श्लो० ३६।

२. शोण का विस्तृत विवरण इस पुस्तक के तीसरे परिच्छेद में देखिए।

पटना जिले में :

'मनेर' (पटना जिला) के निकट पश्चिम और 'बिनगाँवाँ' (शाहाबाद) के पास पूरब—वर्त्तमान शोण-संगम है। संगम के दियारे में ही 'हलदी छपरा' नामक गाँव बसा है। कोइलवर के रेलवे पुल के उत्तर से ही शोण दो धाराओं में बँटता है और बीच के टापू में 'सुरौंधा' नामक गाँव को अपनी गोदी में थपथपाता पुनः परस्पर मिल जाता है। किंतु, पूर्वी धार का पुराना प्रवाह 'मनेर' के उत्तर भाग से पूर्व मुड़ता हुआ, मनेर-पटना-सड़क के किनारे-किनारे पूर्व की ओर चलता, दानापुर आकर उससे पूर्व गंगा में गिरता है। यह प्राचीन प्रवाह है। आज भी वर्षाकाल में यह प्रवाहित रहता है। किंतु अब शोण की यह पूर्वी धार मृतप्राय हो गई है; क्योंकि यह अपने अलगाव के स्थान पर ही बेशुमार बालू से भर गई है और काश के जंगल इसकी छाती को कसते जा रहे हैं। कोइलवर-पुल के उत्तर दो धाराओं में शोण बँटता है, जिनमें से उपर्युक्त वर्णन पूर्वी धार का है; पर पश्चिमी बाँह अब मुख्य प्रवाह-पथ बनकर 'बिनगाँवाँ' से सटे पूरब में गंगा को भरती है।

शोणनद 'रोहतास' किले के सामने से आरंभ करके 'सहार-अरवल' तक गया और शाहाबाद जिलों की सीमा-रेखा बनता है तथा इसके बाद पटना-शाहाबाद का सीमा-निर्धारक होकर गंगा-संगम तक आता है। शोण-संगम के दाहिने भाग (पूर्व) तथा गंगा के दाहिने भाग (दक्षिण) का यह 'मनेर' अत्यंत प्रागैतिहासिक स्थान है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व शोणनद 'मनेर' के पूर्वी भाग से बहता दानापुर के पूर्व गंगा से मिलता था और अब इसके पश्चिम आकर अपना संगम-क्षेत्र बनाता है। कभी किसी काल में 'मनेर' को तबाह-बरबाद करने में न तो शोण ने या न गंगा ने ही भाग लिया है। महाभारत के वनपर्व के ९६वें अध्याय में, अगस्त्य ऋषि के कथा-प्रसंग में, 'इल्वल' और 'वातापि' की राजधानी गंगा-तट पर 'मणिमती' कही गई है। 'अगस्त्याश्रम' शाहाबाद जिले में कहीं था; क्योंकि जब 'विश्वामित्र' ऋषि राम-लक्ष्मण को लेकर गंगा पार कर गये, तब राम के प्रश्न पूछने पर ऋषि ने कहा : **देशमुत्सादयत्येनं अगस्त्याचरितम्भुवम्** (वाल्मीकीय रा०, बाल का०, २५।१४), अर्थात् अगस्त्य ऋषि द्वारा आचरित इस भूमि को ताडका तबाह-बरबाद कर रही है। गंगातट की वह 'मणिमती' नगरी, जो इल्वल की राजधानी थी, निश्चय ही यह 'मनेर' है। इसका परिवर्त्तित नाम-रूप 'मनियर' हुआ था, जिसका उल्लेख काशीश्वर गोविंदचंद्र के ताम्रपत्र में मिलता है। फिर, १५वीं शती में जब महाकवि विद्यापति यहाँ आये, तब उन्होंने इसका नाम 'मणिहारी' लिखा। इस प्रकार, 'इल्वल' राजनगरी मणिमती ने 'मनियर', 'मनिहारी' और आज 'मनेर' नाम धारण कर लिया है।

'मनेर' में स्थित 'याहिया' फकीर के मकबरे के द्वार पर एक गजमूर्त्ति पर आक्रमण किये हुए सिंह की खड़ी मूर्त्ति यह सिद्ध करती है कि यह मौर्यकालीन मूर्त्ति है और 'मनेर'

अत्यंत प्राचीन कोई बौद्ध तीर्थस्थान है। यह मूर्त्ति बौद्ध के द्रोण-स्तूप के सामने अशोक ने खड़ी करवाई होगी; क्योंकि 'ह्वेनत्सांग' लिखता है कि गंगा-पार के 'नारायण-स्तूप' से द्रोण-स्तूप पूर्व-दक्षिण कोण में स्थित है। नारायण-स्तूप छपरा जिले के 'चिराँद' में या उसके आसपास में था, यह निश्चित है। उसी द्रोण-स्तूप पर कालक्रम से मंदिर बने और मंदिरों के स्थान पर 'याहिया' की कब्र बनी। दरगाह की भूमि में प्राप्त मौर्य-कालीन ईंटें भी हमारे कथन की पुष्टि करती हैं। शाक्यसिंह (भगवान् बुद्ध) के प्रतीक सिंह की मूर्त्ति को लोग आज 'मकदुमशाह का दुलदुल' (घोड़ा) कहकर पूजते हैं। हिंदू-पंडितों का कहना है कि 'याहिया' का मकबरा 'कात्यायनी' नामक देवी के मंदिर के भग्नावशेष पर बनाया गया है, जिसकी आराधना त्रिमुनियों (पाणिनि, पतंजलि और कात्यायन) में अन्यतम वार्त्तिककार कात्यायन ने की थी। कात्यायन इसी 'मनेर' के रहनेवाले थे। किन्तु, कात्यायनी एवं कात्यायन का उल्लेख मनेर के प्रसंग में अभीतक मुझे कहीं मिला नहीं है। बल्कि, मेरा खयाल है कि 'मत्स्यपुराण' के १३वें अध्याय में शोण-संगम पर 'सुभद्रा' नामक देवी का उल्लेख है, वह देवी कात्यायनी नहीं, बल्कि मनेर की सुभद्रा हैं : **सुभद्रा शोणसङ्गमे**। जो हो, इस शोण-संगम पर बसे होने के कारण 'मनेर' का बहुत ही प्राचीन महत्त्व और गौरवमय इतिहास है, जिसकी कड़ी आजतक मिलती आ रही है।

कान्यकुब्जाधिपति गोविंदचंद्र का, जिसका शासन-केंद्र काशी में था, लिखा एक ताम्रपत्र 'मनेर' में मिला था। यह ताम्रपत्र विक्रम-संवत् ११८३, ज्येष्ठ कृष्ण ११, दिन रविवार को (सन् ११२६ ई०) लिखा गया था। ताम्रपत्र में 'मनेर' का नाम 'मनियर' मिलता है, जहाँ गोविंदचंद्र के अधिकारी निवास करते थे। गोविंदचंद्र ने गंगा में स्नान करके तथा प्रचुर पायस से हवन करके 'मणियर' पत्तला के 'गुणादेसह पड़ली ग्राम' के गणेश्वर शर्मा नामक ब्राह्मण के लिए दान दिया था। गणेश्वर के पिता का नाम 'ठक्कुर देडभ' तथा पितामह का नाम 'ठक्कुर शित्र' था। ताम्रपत्र में उल्लिखित जो 'तुरुष्कदंड' लगता था,[१] उसकी आय भी दान में दी गई थी। इससे प्रमाणित होता है कि उसी काल में इधर कुछ मुसलमान आ गये थे, जिनपर धार्मिक 'कर' गोविंदचंद्र ने लगाया था। तुरुष्कदंड का उल्लेख गोविंदचंद्र के मुँगेरवाले अभिलेख में भी मिलता है, जो वैशाख अक्षय तृतीया, संवत् १२०२ को (सन् ११४५ ई०) लिखा गया था। यह ठाकुर श्रीधर को दिया जानेवाला दानपत्र था। लगता है, मुहम्मद गोरी के आक्रमण के बहुत पहले ही पंचमांगी के रूप में मुसलमान बिहार-प्रदेश तक फैलते चले आये थे।

---

१ "......विविधविद्याविचारवाचस्पतिः श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवो विजयी मणियरे पत्तलायो गुणादेसहपड़लीग्रामनिवासिनो निखिलजानपदानुगतान् ..... अधिकारिपुरुषानाज्ञापयति.... यथोपरिलिखितग्राम......त्रयशीत्यधिकैकादशशतसंवत्सरे ज्येष्ठे मासि कृष्णपक्षैकादश्यां रविदिने ......श्रीगणेश्वरशर्मणे ब्राह्मणाय ......तुरुष्कदण्डप्रभृति सर्वादायानाज्ञाविधेयी भूयो दास्यथेति।"

'मनेर' की, याहिया फकीर की मजार, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, मुस्लिम-जनता के बीच बड़ी प्रसिद्ध, पवित्र और प्राचीन है। इस मजार पर सिजदा करने बादशाह सिकंदर लोदी और बाबर—दोनों अपने-अपने समय में आये थे। 'शेख याहिया' की मृत्यु सन् १२९० ई० में इसी स्थान पर हुई थी। मनेर का परगना 'फकीर याहिया' को मुस्लिम-शासकों की ओर से लखराज में मिला था। शेख याहिया के पहले ही 'मनेर' में 'मोमिन आरिफ' नामक फकीर रहता था, जो बिहार-प्रदेश में मुस्लिम-धर्म का सर्वप्रथम प्रचारक धर्मनेता था।[१]

सन् ११९९ ई० में 'इख्तियार-इब्न-बिन-बख्तियार खिलजी' ने जब चुनार में अपना अड्डा कायम करके शोणतट तक का भाग अधीन में कर लिया, तब उसने अगले पड़ाव का दूसरा अड्डा गंगा-शोण-संगम पर स्थित इसी 'मनेर' में बनाया। इसी 'मनेर' से वह अपने घुड़सवारों के साथ 'उदंतपुर' (बिहारशरीफ) तक धावा मारा, और बौद्ध विहारों को तबाह-बरबाद कर डाला। यह पहले कहा गया है कि सन् १५२९ ई० के २६ अप्रैल को 'शेख शर्फुद्दीन मनेरी' के पिता 'याहिया' की कब्र की परिक्रमा करने बादशाह बाबर आरा से चलकर 'मनेर' आया था। कब्र के पास उस समय भी आम के खूब घने बागीचे थे, जहाँ बाबर बैठकर अपनी थकान मिटाता रहा और शाम होने के पहले ही शोण नद पार कर गया। इन घटनाओं के पश्चात् जब बिहार में 'शेरशाह' का सूर्य उगने लगा, तब पश्चिम से आनेवाली हुमायूँ की सेना और पूर्व से पश्चिम की ओर चलनेवाली गौड के शासक 'सुलतान महमूद' की सेना का मिलन इसी 'मनेर' में हुआ था। दोनों की सम्मिलित सेना 'शेरशाह' के तीव्र प्रकाश को अपने बल से ढकना चाहती थी। हुमायूँ के साथ उस समय मनेर में उसके सरदार 'बर्री बरलास' और 'खानखाना यूसुफ खैल' भी मौजूद थे। उधर महमूद सुलतान के साथ उसका पुत्र 'मजीद बेग' भी मनेर पहुँचा था। बात यह हुई कि शेरशाह ने जब चुनार का किला हड़प लिया और वहाँ अपने पुत्र 'कुतुब खाँ' को अध्यक्ष नियत कर दिया, तब हुमायूँ आगरा से चला। जबतक हुमायूँ चुनार पहुँचकर उसे दखल करने में लगा, तबतक शेरशाह गौड की ओर झपटा और 'महमूद' को घेरकर उससे मनमानी कर वसूल लिया। शेरशाह को सर करने अब हुमायूँ गौड़ की ओर चला और उधर से महमूद, हुमायूँ से सहायता लेने पश्चिम की ओर दौड़ा। इसी क्रम में दोनों मनेर पहुँचकर मिले थे।

मनेर की छोटी दरगाह, जिसमें 'मकदुमशाह' नामक फकीर की कब्र है, १७वीं शती में जहाँगीर के शासनकाल में बिहार के सूबेदार इब्राहीम खाँ ने बनवाई थी। इस दरगाह की छत के निचले भागों, झरोखों और चौखटों में फूल-पत्तियों की जो कारीगरी है, वह उत्तर भारत की वास्तुकला का एक अनोखा नमूना है। इसी दरगाह में सूबेदार इब्राहीम खाँ भी पीछे चलकर दफनाया गया। यह मकदुमशाह का प्रिय शिष्य था।

१. बिहार थ्रू दि एजेज, पृ० ३८३।

इख्तियार खिलजी की सैनिक छावनी होने के कारण ही 'मनेर' बिहार-प्रदेश में सर्वप्रथम मुस्लिम-धर्म का अड्डा बना था और यहाँ मोमिन आरिफ तथा शेख याहिया जैसे धर्मनेता पैदा हुए थे। मनेर का 'शिव-मंदिर भी बहुत प्राचीन धर्मतीर्थ है, जहाँ शिवरात्रि को नर-नारियों का मेला लगता है। इन सारी घटनाओं के बहुत काल बाद सन् १७६१ ई० की ग्रीष्म ऋतु में हसुआ (गया) के पठान कामगार खाँ की मदद से शाह आलम ने जब पटना पर दूसरी बार चढ़ाई की, तब कैप्टन नाक्स की सेना से वह पुनः हार गया। 'शाह आलम' सारी बरसात इसी 'मनेर' में छिपकर पनाह लेता रहा।

पन्द्रहवीं शती के आरंभ-काल में वर्त्तमान, मिथिला के महाकवि विद्यापति अपनी तीर्थयात्रा के क्रम में मनेर आये थे। उन्होंने इसकी चर्चा अपनी 'भूपरिक्रमण' नामक पुस्तिका में की है और लिखा है कि 'मनिहारी से पाटलिपुत्र के बीचवाले भू-क्षेत्र को नारसिंह क्षेत्र कहा जाता है। यह क्षेत्र गंगा नदी के फेन से निर्मित है तथा इस क्षेत्र के निवासी अत्यंत उग्र स्वभाव के तथा निर्दय हैं। इस क्षेत्र में उत्तम प्रकार के अन्न पैदा नहीं होते। यहाँ शोण-गंगा-संगम पर नृसिंहतीर्थ है और इस क्षेत्र में २०० मुख्य ग्राम बसे हैं तथा यह तेरह योजन में विस्तृत है।'[१]

विद्यापति के इस कथन पर विचार करने से पता चलता है कि आजकल जहाँ शोण संगम है, प्रायः वह उस समय भी वहीं था। 'मनेर' का नाम उस समय 'मनिहारी' था। मनेर से पाटलिपुत्र तक दियारा-क्षेत्र बन गया था और गाँव बस गये थे। आजकल की तरह उस समय इस क्षेत्र में गेहूँ और चने की खेती नहीं होती थी; पर साँवाँ, कोदो, मड़ुआ, बाजरा, मक्का आदि कदन्न ही उपजते थे। यहाँ उस समय लुटेरों का पूर्ण प्राबल्य था। किंतु, सबसे बड़ी बात का जो पता चलता है, वह यह कि आजकल जहाँ शेख याहिया का कब्रगाह है, वहाँ नृसिह-मंदिर या इस नाम का कोई तीर्थ था। हाथी पर आक्रमण करती हुई जिस मूर्त्ति को आज भी हम देखते हैं, इस रहस्य को उस समय भी तत्कालीन हिंदू-समाज ने नहीं समझा था, और यहाँ इसे देखकर नृसिंह-मंदिर कभी कायम कर दिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। जिस प्रकार मुस्लिम-समुदाय ने इस सिंह-मूर्त्ति को 'मकदुमशाह का दुलदुल' मानकर, मजार के सामने खड़ा किया है, उसी प्रकार

१. मणिहारिसन्निधाने नृसिंहतीर्थं जगाम ह।
त्रिकालज्ञो मुनिवरः प्रोवाच हलिनं प्रति॥
पाद्मकल्पे नृसिंहदेवः प्रकटं प्राप्तवान् पुरा।
शोण-गङ्गा-सङ्गमे च माघे मासि च यो नरः॥
उषसि स्नानञ्च कृतवान् पापं देहात् विमुच्यते।
नृसिंहनखारभूमिश्च त्रयोदशयोजनान्विता॥
कारुष-पाटलीपुरयोः मध्यवर्त्तिनी या भूमिर्महिपाल अत्युग्रा चातिनिर्दया प्रायो हि फेनसम्भवा न शुद्धशस्यविवर्जिता द्विशतग्राममुख्यादिनृसिंहभूमिर्विश्रुता।

—भूपरिक्रमण, पत्रक २९।

हिंदू-समाज ने इसे भगवान् नृसिंह की मूर्त्ति मानकर मनेर को 'नृसिंहतीर्थ' कहा और संपूर्ण क्षेत्र को 'नारसिंह क्षेत्र' मानने लगा। यद्यपि विद्यापति के समय में यहाँ कोई 'नृसिंहदेव' का मंदिर नहीं था; पर आज की सिंहमूर्त्ति उस समय भी थी और यह क्षेत्र नृसिंहतीर्थ के रूप में हिंदू-समाज में माना जाता था। जैसा पहले कहा गया, गज-रूपी अन्य धर्मों पर शाक्यसिंह (बुद्ध) के धर्म-रूपी सिंह के आक्रमण का रहस्य नहीं समझने के कारण ही ब्राह्मणधर्मावलंबी पंडितों ने मनेर की भूमि को नृसिंहतीर्थ माना, जिसका उल्लेख विद्यापति ने किया। इस प्रकार, शोण-संगम पर स्थित मनेर का बहुत ही उज्ज्वल प्राचीन इतिहास गंगा के महत्त्व को प्रतिपादित करता है।

मनेर के पूरब जब गंगा बढ़ती है, तब वह एक बहुत बड़ा दियारा-क्षेत्र बनाती हुई दानापुर पहुँचती है। मनेर और दानापुर को मिलानेवाली पक्की सड़क भारत की प्रथम प्राचीन सड़कों में है, जिसके उत्तर भाग से सटे शोण की प्राचीन धारा बहती है। इस सड़क पर ब्यापुर, शेरपुर और शाहपुर गाँव भी बहुत प्राचीन स्थान हैं। शेरपुर और दानापुर के मध्य विश्वामित्र ऋषि के साथ राम और लक्ष्मण ने गंगा को पार किया था, जहाँ से उन्होंने 'वैशाली' नगरी को देखा था।[१] गंडक उस समय 'दिघवारा' में गंगा से संगम करती थी, इसलिए राम ने वहीं गंगा पार किया, जिससे वे लोग गंडक के पूर्वी किनारे आ सके होंगे और गंडक के पूर्वी किनारे से ही वैशाली गये होंगे।

मनेर और दानापुर के बीच का दियारा-क्षेत्र, जिसे विद्यापति ने 'फेनसंभूत' कहा है, मगध के पटना जिले में पड़ता है। किंतु, आश्चर्य है कि इस दियारे के लोगों के रहन-सहन तथा भाषा पर मागधी का कुछ भी प्रभाव नहीं है। संपूर्ण दियारे में भोजपुरी-भाषा बोली जाती है, जिसमें यादवों की संख्या अधिक है।

दानापुर से दक्षिण 'खगौल' में पूर्वी रेलवे का बड़ा जंक्शन है, जो 'दानापुर जंक्शन' के नाम से ही प्रसिद्ध है। दानापुर शहर के पश्चिम में अँगरेजी-शासनकाल से ही सेना की बड़ी छावनी है। सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम के अवसर पर यहाँ के भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया था और पूरी सेना शस्त्रास्त्रों से लैस होकर कुँवरसिंह के नेतृत्व में चली गई थी। सन् १८५७ ई० के पहले, सन् १८४५ ई० में ही इस छावनी में, 'नेउरा' (पटना जिला) के निवासी 'राहत अली' के नेतृत्व में, अँगरेजों से लोहा लेने के लिए एक योजना बनी थी, जिसमें दानापुर की सेना-छावनी के जमादार पीर बक्श, मीर बकर खाँ, मीर अब्दुल्ला बरकत उल्ला, दुर्गाप्रसाद पंडित और भीखम खाँ जमादार सम्मिलित थे।

---

१. उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यर्षिगणं तदा।
गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम्॥
—बाल्मीकीय रामायण, १।४५।९।

दानापुर के पूरब गंगा के दाहिने तट पर 'दीघा' मिलता है, जहाँ शोण का प्राचीन संगम था। संगम-स्थल पर बहुत बड़ा ह्रद होने के कारण ही इस स्थल का नाम दीर्घा (दीघा) पड़ा था। इस संगम-स्थान के ऊपर (दक्षिण) में ही 'महापद्मनंद' के शासनकाल में शोण की धारा पूर्व की ओर मोड़ी गई थी[१] और पुनपुन नदी की धारा से मिलाकर पाटलिपुत्र के दक्षिणी जल्ला-क्षेत्र (खाई) में गिराई गई थी, किंतु आज शोण-संगम दीघा से १५ मील पश्चिम में चला गया है। इसी दीघा के सामने गंगा के बायें किनारे 'दिघवारा' नामक स्थान है, जिसका प्राचीन नाम 'दीर्घवाह' अथवा 'दीर्घाद्वार' था। दीर्घाद्वार का तात्पर्य है—गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित 'दीर्घा' (दीघा) आने का द्वार। आज गंडकी का जो संगम सोनपुर तथा हाजीपुर के मध्य से प्रवाहित होकर इन दोनों के अग्निकोण में, पाटलिपुत्र के रानीघाट मुहल्ले के सामने गंगा में होता है, वह भगवान् बुद्ध के समय तथा गुप्तकाल तक दिघवारा में था। पहले कहा गया है कि यहीं राम-लक्ष्मण जनकपुर जाने के लिए गंगा पार हुए थे। गंगा, शोण और गंडकी—इन तीन नदियों का संगम होने से यह स्थान 'त्रैधारेश्वर' तीर्थ कहलाता था। यहाँ संगम करनेवाली 'गंडकी नदी' अपने मुहाने के क्षेत्र में 'मही' नदी कहलाती थी। हिमालय और विदेह से जो माल नावों पर लदकर 'मगध' के लिए आते थे, उनकी नावें दिघवारा में ही आकर गंगा में प्रवेश करती थीं। अक्सर वैशाली के लिच्छवि उस माल की पूरी चुंगी यहीं वसूल लेते थे तथा कभी-कभी मगध जानेवाले माल को लूट भी लेते थे, जिससे मगध का सम्राट् अजातशत्रु तंग आ गया था। इन्हीं लूट-पाटों से बचाव के लिए उसने पाटलिग्राम में एक सैनिक-शिविर स्थापित किया और गंगा के घाटों में अपने सिपाहियों का पहरा बैठाया था। पाटलिपुत्र का नंदिवर्द्धन सम्राट् जब वैशाली से पाटलिपुत्र लौट रहा था, तब इसी 'दीर्घवाह' में किसी ने चुपके से उसकी हत्या कर दी थी। दिघवारा में संगम करनेवाली 'मही' नदी की बहुत अधिक चर्चा पालि-साहित्य में मिलती है। मही के तटों में भगवान् बुद्ध के तथा उनके अनुचरों के चरित्र उभरे-संवरे हैं। 'मही' की विशेष चर्चा द्वितीय परिच्छेद में की जायगी।

'दीघा' से पूरब में बढ़कर पतितपावनी गंगा संसार-प्रसिद्ध नगरी 'पाटलिपुत्र' को गौरवान्वित करती है। पाटलिपुत्र गंगा के दाहिने तट पर, गंगा-प्रवाह का अनुसरण करता पश्चिम से पूर्व की ओर चादर की तरह तनता गया है। इस महानगर के प्राचीन गौरव का उल्लेख करना इस पुस्तक में संभव नहीं है। सिर्फ इतना ही जान लीजिए कि मगध-साम्राज्य का यह धुरी-नगर जिस प्रकार बौद्ध-धर्मचक्र को संचालित करनेवाला शक्ति-केंद्र था, उसी प्रकार परम भागवत धर्म के ध्वजदंड को उठाये रखनेवाला साक्षात् विष्णुधाम था, जिसके पादपद्मों को स्वयं 'विष्णुपदी' अहर्निश प्रक्षालित करती रहती थी। यह पाटलिपुत्र सारस्वतों का बृहस्पति-नगर, राजनीतिज्ञों का शुक्र-नगर, सूर्य-चंद्र

१. शोण-संगम की प्राचीन धाराओं का विवेचन तृतीय परिच्छेद में किया जायगा।

जैसे प्रतापी रिपु-राजाओं का राहु-नगर, भू-जीवियों का मंगल-नगर, शिल्पियों का विश्वकर्मा-नगर, संगीतज्ञों का गंधर्व-नगर, वैभवशालियों का कुबेर-नगर तथा कला-विलासियों का साक्षात् मन्मथ-नगर था। महाकवि 'दंडी' ने लिखा है कि यह पुष्पपुर नगरी संसार की महानगरियों की कसौटी थी। इसकी रथ्याओं या गलियों में हीरे तथा जवाहरात इस तरह बिछे रहते थे कि उनकी किरणों से उन सँकरी गलियों का अंधकार दूर किया जाता था। इसकी कीर्त्ति तुषार, कुमुद और काश-कुसुमों को भी लजा देती थी। 'विविधतीर्थकल्प' नामक ग्रंथ में जिनप्रभसूरि ने भी जो कुछ लिखा है, वह निश्चय ही उनके द्वारा सुनी गई तथा कहीं से पढ़ी हुई बात थी, जिससे पाटलिपुत्र के वैभव पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने लिखा है कि पाटलिपुत्र में ऐसे-ऐसे धनवान् बसते थे, जो एक हजार योजन में पड़े हस्तिपाद गढ़ों को एक-एक सहस्र सुवर्ण से भर सकते थे। एक-एक सेठ के घर में उतनी सुवर्णमुद्राएँ भरी रहती थीं, जितनी संख्या में एक आढक तिल बोने के बाद उनसे उगे और अच्छी तरह फूले-फले पौधों से तिल पैदा हो सकते हैं। यहाँ की कुल गायें एक दिन में इतना दूध देती थीं, जिनसे निकाले गये मक्खन का बाँध बनाया जाय, तो वर्षाकालीन किसी गिरि-नदी का प्रवाह उसे तोड़कर बहा नहीं सके। पाटलिपुत्र के किशोरों के कंधे तक लटके बाल जो नित्य कटते थे, उन बालों के गुच्छों से संपूर्ण पाटलिपुत्र के परकोटे घेरे जा सकते थे। यहाँ के कुछ किसानों के घरों में दो प्रकार के ऐसे धान्य-रत्न थे, जिनमें एक से तो भिन्न-भिन्न जाति के धान्य-बीज पैदा किये जाते थे और दूसरे से 'गर्दभिका' नामक धान का पौधा उपजता था, जिसकी बालियाँ बार-बार पाँगी जाती थीं और डंठलों से पुनः-पुनः नई बालियाँ उगती थीं।[1] ऐसा था, यह स्वर्ण-शस्य-संपन्न पाटलिपुत्रनगर!

वस्तुतः, तत्कालीन समस्त भारत का गौरवमय इतिहास पाटलिपुत्र का इतिहास है। वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, कौटिल्य, नेमिनाथ, मोग्गलिपुत्त तिष्य, कात्यायन, पतंजलि, मिनांदर का गुरु नागसेन, कालिदास, अश्वघोष, वात्स्यायन, आर्यभट्ट, वराह-मिहिर, वसुबंधु आदि जैसे सारस्वत व्यक्तित्व इसी पाटलिपुत्र की देन हैं। यहाँ के शिशुनागवंशी सम्राट् नंदिवर्द्धन ने बौद्धों की दूसरी 'संगीति' वैशाली में कराई थी। महापद्मनंद संपूर्ण उत्तर भारत का ऐसा सम्राट् था, जिसका विरुद ही 'सर्वक्षत्रांतक' हो गया था। चंद्रगुप्त मौर्य का तो क्या कहना, जिसके यहाँ ग्रीक राजा पानी भरते थे। फिर,

---

१. आढ्यास्तु तत्रैवंविधा वसन्ति स्म, ये योजनसहस्रगमने यानि गजपदानि भवेयुस्तानि प्रत्येकं स्वर्णसहस्रेण पूरयितुमीशते। अन्ये च तिलानामाढके उप्ते प्ररूढे, सुफलिते यावन्तस्तिलाः स्युस्तावन्ति हेमसहस्राणि बिभ्रति गृहे। अपरे च धनागमप्रवहद्गिरिनदीवारिपूरस्यैक-दिनोत्पन्नेन गवां नवनीतेन संबरं विरचय्य पयोरयं स्खलयितुमलम्। अन्यतमे चैकाहजात-जातधनवकिशोराणां समुद्धृतैः स्कन्धकेशैः पाटलिपुत्रं समन्ताद्वेष्टयितुमचेष्टन्त। इतरे च शालिरत्नद्वयं वेश्मनि बिभाबरांबभूवुस्तत्रैकशालिभिन्नभिन्नशालिबीजप्रसूतिमान्, अन्यश्च गर्दभिकाशालिर्यो लूनलूनः पुनः पुनः फलति।—विविधतीर्थकल्प, पृ० ७०।

अशोक, पुष्यमित्र, द्वितीय चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि के प्रताप-पुंज की कहानी कौन नहीं जानता ! इस संबंध में अधिक कुछ नहीं कहकर इतना ही निवेदन करूँगा कि आप स्वयं एक बार अजातशत्रु, उदायी, दर्शक, नंदिवर्द्धन, सर्वक्षत्रांतक महापद्मनंद, नवनंद, मौर्य, शुंग, काण्व, गुप्त, मौखरि एवं पालवंशी सम्राटों के पराक्रम-पुंज का स्मरण कर लीजिए और पाटलिपुत्र के ढाई हजार वर्षों के जाज्वल्यमान इतिहास पर एक बार दृष्टिपात कर जाइए, तब निश्चय ही, इस नगर का अतीत गौरव आपको आइने की तरह झलकने लग जायगा। इन युगों में पाटलिपुत्र की पताका स्वर्ग में उड़ती थी। उसका प्रबल प्रताप सूर्य की तरह दहकता था और कीर्त्ति-कौमुदी दिग्दिगंत तक बिछी हुई थी।

भगवान् बुद्ध के समय पाटलिपुत्र का नाम 'पाटलिग्राम' था और यह एक साधारण गंगातटीय ग्राम था। वज्जियों से तंग आकर मगधसम्राट् अजातशत्रु ने पहले-पहल यहाँ एक सैनिक-शिविर का निर्माण कराया। इसके बाद अजातशत्रु के पुत्र उदायी ने इसका एक नगर के रूप में विस्तार किया।[१] इसकी पुष्टि बौद्धग्रंथों के अतिरिक्त जैनग्रंथ 'विविधतीर्थकल्प' के 'पाटलिपुत्रनगर कल्प' की निम्नलिखित पंक्तियों से भी होती है :

तत्राङ्कित प्रदेशे पुरमचीकरन्नृपः। तच्च पाटला नाम्ना पाटलिपुत्रं पत्तनमासीत्। असमकुसुमबहुलतया च कुसुमपुरमित्यपि रूढम्। तन्मध्ये नेमिचैत्यं राज्ञाऽकारि। तत्र पुरे गजाश्वरथशालाप्रासादसौधप्राकारगोपुरपण्यशालासत्राकारपौषधागाररम्ये चिरं राज्यं जैनधर्मं चापालयदुदायिनरेन्द्रः।

उक्त कल्प में कहा गया है कि अजातशत्रु के देहावसान के पश्चात् उदायी को पितावाला महल काट खाने लगा। अतः, उदायी ने मंत्रियों की राय से तथा नैमित्तिकों के विचार से गंगातटीय पाटलिग्राम में अपनी राजधानी लाने का विचार किया। क्योंकि, नैमित्तिकों ने यहाँ देखा था कि एक पाटलिवृक्ष पर 'चाष' पक्षी बैठा है और उसकी खुली चोंच में पतिंगे अपने-आप गिरकर उसका आहार बन रहे हैं। यह देख नैमित्तिकों ने कहा कि यहाँ राजधानी बनने पर राज्यलक्ष्मी स्वतः राजा की अंकशायिनी बनेगी। इसीलिए, उस पाटलिवृक्ष के चारों ओर सूत लगाया गया, जहाँतक सियार की बोली की आवाज पहुँचती थी। इतने क्षेत्र में नगर बसाया गया, जिसके मध्य में उदायी ने 'नेमिनाथ' जैन तीर्थंकर का चैत्य बनवाया था।[२] उपर्युक्त पंक्तियों से यह भी पता चलता है

१. गङ्गातीरे स राजर्षिः दक्षिणे ..... ।
स्थापयेन्नगरं रम्यं पुष्पराजजनाकुलम् ॥
तेऽथ पुष्पपुरे रम्ये नगरे पाटलीसुते।
पञ्चवर्षसहस्राणि स्थास्यन्ते नात्र संशयः ॥—गर्गसंहिता।

२. तदत्र पाटलिद्रोःप्रभावाच्चाषनिमित्ताच्च नगरं निवेश्यताम्, आशिवाशब्दं च सूत्रं दीयताम्। ततो राज्ञाऽऽदिष्टा नैमित्तिकाः पाटलीं पूर्वतः कृत्वा पश्चिमाम्, तत उत्तराम्, ततः पुनः पूर्वां ततो दक्षिणां शिवाशब्दावधि गत्वा सूत्रमपातयन्। एवं चतुरस्रः पुरस्य सन्निवेशो बभूव। —विविधतीर्थकल्प, पृ० ६८।

कि उदायी ने यहाँ गज-अश्व-रथ-शाला, प्रासाद, सौध, चहारदीवारी, प्रवेश-द्वार, बाजार, यज्ञशाला तथा पौषधागार का निर्माण कराकर इसे नगर का रूप दिया था। पाटलिपुत्र का नाम—पुष्पपुर, कुसुमपुर, पत्तन और श्रीनगर भी था। नागर संस्कृति और नागरी-लिपि इसी नगर (पाटलिपुत्र) की देन हैं। मुगल-सम्राटों की गिरती अवस्था में इसका एक नाम 'अजीमाबाद' भी पड़ा था। औरंगजेब के पोते 'अजीम उश्शान' ने जब सन् १६९७ ई० में विहार का सूबेदार बनकर पटना में अपना निवास स्थिर किया, तब उसने अपने नाम पर ही इसका नाम 'अजीमाबाद' रख दिया था।

चंद्रगुप्त मौर्य के समय 'सेल्यूकस' का दूत 'मेगास्थनीज' पटना भेजा गया था। उसने लिखा है कि "पाटलिपुत्र २१$\frac{1}{2}$ वर्गमील में बसा है। इस नगर के चारों ओर लकड़ी के परकोटे खड़े हैं और इन परकोटों में ६८ दरवाजे और ५७० बुर्ज बने हुए हैं। संपूर्ण नगर का प्रबंध ३० व्यक्तियों की मंत्रिपरिषद् करती है। पाटलिपुत्र के समक्ष रोम और एथेंस की हैसियत आधे से भी कम है।"

पाटलिपुत्र नगर की विशेषता के संबंध में जिनप्रभसूरि लिखते हैं कि पाटलिपुत्र में मूलदेव नामक एक ऐसा व्यक्ति हुआ था, जो संसार की सभी कलाओं में पारंगत था। यहाँ का 'अचल' नामक सेठ अपने वैभव के लिए संपूर्ण जंबूद्वीप में ख्यात था। यहाँ की देवदत्ता नाम की गणिका जंबूद्वीप की गणिकाओं की रत्नमालिका थी। कोशा और उसकी पुत्री उपकोशा भी अपने रूप, यौवन, वैभव और गुण के लिए परम प्रसिद्ध थी। पाटलिपुत्र में ही कौभीषणि गोत्र का उमास्वाति नामक वाचक था, जिसने पाँच सौ प्रकरणों से युक्त 'तत्त्वार्थाधिगम' नामक संस्कृत-ग्रंथ का निर्माण किया था। यहाँ शास्त्र-निर्णय के लिए वाद-विवाद के ८४ सभास्थल थे, जहाँ नित्य विद्वानों की गोष्ठी जमती थी। पाटलिपुत्र में धर्मदत्त, जितशत्रु और मेघघोष नामक नृपतियों और उनके वंशजों का आधिपत्य था। सम्राट् नंद ने ही यहाँ पाँच पहाड़ियाँ बनवाई थीं, जिनमें ९९ करोड़ मुद्राएँ रखवाई गई थीं। इस कहानी को सुनकर लखनौती के सुलतान गयासुद्दीन तुगलक ने कोष के लोभ से पहाड़ियों को खुदवा डाला था। यहाँ जैनधर्म के भद्रबाहु, महागिरि, सुहस्ति, वज्रस्वामी, प्रातिपदाचार्य आदि ऋषियों ने विहार किया था। चंपा के राजा दधिवाहन की पत्नी 'अभया' का सहज प्रेमी 'सुदर्शन' सेठ चंपा से निष्कासित होने पर भी विषादहीन रहकर पाटलिपुत्र में धर्म का आचरण करता था। यहाँ स्थूलभद्र स्वामी ने चातुर्मास्य व्यतीत किया था। स्थूलभद्रस्वामी कोशा गणिका की चित्रशाला में विलासपूर्ण चित्रों को देखते-समझते तथा वहाँ रहते हुए भी विकारग्रस्त नहीं हुए थे; किंतु उन्हीं की देखादेखी और उनका स्पर्धी 'सिंहगुहावासी' नाम का मुनि अंत में कोशा का चरण-सेवक बन गया था।'[१]

पाटलिपुत्र के संबंध में उपर्युक्त तथ्य नये हैं, अतः यहाँ उद्धृत किया गया है। यों, पाटलिपुत्र की गौरव-गाथाएँ इतनी विस्तृत हैं कि उनका समग्र रूप में उल्लेख यहाँ संभव

१. विविधतीर्थकल्प, पाटलिपुत्रनगरकल्प, पृ० ६९।

नहीं है। पाटलिपुत्र का अन्वेषण, उत्खनन तथा उसके साहित्य का विवेचन अभी तक सम्यक् रूप से नहीं हो पाया है, जो निश्चय ही दुर्भाग्य का विषय है। तो, ऐसा पाटलिपुत्र नगर संपूर्णतया माता गंगा नदी की देन है, जिसके भरोसे यह शत्रुओं से अजेय तथा व्यापार-वाणिज्य एवं सेना-संचार का बड़ा भारी केंद्र बना हुआ था। गंगा नदी के प्राकृतिक तथा कृत्रिम—दोनों रूपों से पाटलिपुत्र को आवेष्टित किया गया था, इसीलिए यह नगर शत्रुओं के लिए पूर्ण अगम्य था। पटना के उत्तर, एक सिरे से दूसरे सिरे तक गंगा का प्रखर तथा सुविस्तृत प्रवाह चलता था। नगर के दक्षिण अत्यंत विस्तृत खाई खुदवाई गई थी, जिसमें पुनपुन, सोन और गंगा—तीनों नदियों का पानी भरा रहता था। सुगांगेय प्रासाद के दक्षिणी सिरे पर लगनेवाली एक उपशाखा-परिखा भी खुदवाई गई थी, जिससे नौका द्वारा प्रासाद से चलकर गंगा में प्रवेश किया जा सकता था। यह परिखा बड़ी परिखा से भी जुड़ी हुई थी। शोण नद जब दीघा में गंगा से संगम करता था, तब उस संगम के दक्षिण भाग से ही शोण की धारा पूर्व में मोड़ी गई थी। एक प्रणाली गंगा से भी दक्षिण ले जाई गई थी, जो आधुनिक बाँसघाट (दुजरा महल्ला के पूर्व) से दक्षिण चलती थी और मंदिरी महल्ले से होते मीठापुर महल्ले में पहुँचकर बड़ी खाई से मिलती थी। फिर, मीठापुर महल्ले से दूसरी उपशाखा-परिखा पहले उत्तर-पूर्व कोण में चलती पटना जंक्शन, करबिगहिया तथा कदमकुँआ महल्ले में आती थी और यहाँ से पूर्व की ओर बढ़ती, राजेन्द्रनगर होते तथा वर्त्तमान गंदे नाले से सटते, बहादुरपुर गाँव के उत्तर से ही पूर्व की ओर जाकर सुगांगेय प्रासाद के दक्षिणी द्वार के पास जाती थी और इससे थोड़ा पूर्व जाकर समाप्त हो जाती थी। सुगांगेय प्रासाद वर्त्तमान त्रिपौलिया महल्ले से आरंभ करके आलमगंज की पुरानी पुलिस-चौकी तक (पश्चिम से पूर्व की ओर) तथा उत्तर में गंगा-प्रवाह से आरंभ करके दक्षिण में त्रिपौलिया से पच्छिम दरवाजा जानेवाली निचली सड़क तक विस्तृत था। इसी जगह यह छोटी परिखा थोड़ा पूरब जाकर समाप्त होती थी। इस प्रकार, सुगांगेय प्रासाद से गंगा में उतरने की, उत्तर और दक्षिण दोनों ओर से, सुविधा थी। मौर्य 'बहसतिमित्र' के राज्यकाल में कलिंगाधिपति खारवेल ने इसी छोटी परिखा में सेतु लगवाकर सुगांगेय प्रासाद में अपने हाथियों को भिड़ा दिया था। इन दोनों परिखाओं के मध्य जो ऊँची और लंबी जमीन थी, उसी पर 'बाइ पास' सड़क गुलजारबाग तक जाती है और इसी जमीन पर कंकड़बाग, कुम्हरार आदि बस्तियाँ हैं। प्राचीन जमाने में इसी भूमि में कुक्कुटाराम तथा अशोकाराम नामक बौद्धविहार बने थे। पाटलिपुत्र में गंगा और शोण की यही स्थिति थी, जिससे बहुतों ने भ्रमवश कहा कि शोण पहले फतुहा में गंगा से संगम करता था। इस प्रकार, पाटलिपुत्र नगर के चारों ओर गंगा-शोण तथा पुनपुन का अगाध जल भरा रहता था और पाटलिपुत्र का सम्राट् निष्कण्टक भाव से राज्य करता था।

पटना नगर के उत्तर भाग की लगभग तीन फर्लांग जमीन, जिसकी लंबाई प्रायः १० मील है, गंगा की धारा में चली गई है। पाटलिपुत्र और गंगा के घनिष्ठ संबंध का

थोड़ा परिचय यहाँ के कुछ घाट और महल्ले हमें बतलाते हैं। पटना का महेंद्रू महल्ला सम्राट् अशोक के पुत्र महेंद्र की याद दिलाता है। भिखनापहाड़ी महल्ले का टीला भिक्षु महेंद्र के भिक्षु-आश्रम का स्मारक है। गंगा-किनारे का रानीघाट अशोक की पुत्री संघमित्रा का वह दृश्य उपस्थित करता है, जहाँ नाव में बैठी संघमित्रा ने गर्दन-भर पानी में पैठे अपने पिता अशोक के हाथों से बोधिवृक्ष की शाखा को ग्रहण किया था और जहाँ से उसकी नौका ताम्रलिप्ति तथा सिंहल के लिए रवाना हुई थी। गायघाट (गौतमघाट) में भगवान् बुद्ध ने पाटलिग्राम के 'अवसथागार' से चलकर वैशाली जाने के लिए गंगा पार किया था और वर्षकार तथा सुनीथ (अजातशत्रु के मंत्री)—दोनों घाट तक भगवान् बुद्ध को पहुँचाने गये थे। इसके आगे महावीरघाट की गंगा जैनों के २४वें तीर्थंकर भगवान् महावीर की अनेकान्तवादी अहिंसा का गीत अपनी लहरों से सुनाती है। कुम्हरार का स्थल अशोककालीन कुक्कुटाराम-विहार तथा अशोकाराम-विहार के स्मारक रूप में पुरातात्त्विकों को आजतक भरमाये हुए है। वस्तुतः, 'कुक्कुटाराम' शब्द का ही अपभ्रंश आज का 'कुम्हरार' शब्द है। कुम्हरार में खुदाई से जो मौर्यकालीन सभा-कक्ष मिला है, वह अशोकाराम-विहार का सभा-गृह है, जहाँ बौद्धों की तृतीय संगीति बैठी थी और मोग्गलिपुत्र तिष्य ने 'अभिधम्म' का नियमन किया था। इन्हीं विहारों में मिनांडर के गुरु नागसेन तथा चीनी यात्री फाहियान ने बौद्धधर्म की शिक्षा पाई थी। वहीं उसके उत्तर भाग के बुलंदीबाग में पाई गई लकड़ी की चहारदीवारी पाटलिपुत्र की नगर-व्यवस्था का परिचय पढ़ सुनाती है और बतलाती है कि पाटलिपुत्र नगर की दक्षिणी चहारदीवारी बुलंदीबाग तक थी और 'कुक्कुटाराम' नगर के बाहर में था। गुलजारबाग स्टेशन के निकट स्थित 'अगमकूप' की कहानी तो आजतक रहस्यमय ही रह गई है, जिसके संबंध में कहा जाता है कि अपने ९९ भाइयों को अशोक ने मरवाकर इसी में डाल दिया था।

इसी प्रकार, पाटलिपुत्र के 'किलाघाट' पर स्थित 'जालान-किला' उस शेरशाह पठान की याद कराता है, जिसके आक्रमण-आवेग की आँधी से मुगल-साम्राज्य सूखे पत्तों के ढेर की तरह हिंदुस्तान से उड़ गया था। इस किले को शेरशाह ने पाँच लाख मुद्राओं के व्यय से गंगा के तट पर बनवाया था। जहाँगीर के द्वितीय पुत्र 'परवेजशाह' ने सन् १६२६ ई० में पटना में जो मस्जिद बनवाई थी, वह 'पत्थर की मस्जिद' के नाम से पुकारी जाती है। यह पटना नगर के मुख्य सड़क पर स्थित है। कहीं मैंने पढ़ा है कि यह मस्जिद गोरखपुर के एक हिंदू-मंदिर के अवशेषों से बनवाई गई है। वे अवशेष मंदिर तोड़कर गंडक के प्रवाह से नाव द्वारा पटना लाये गये थे। फिर, सिक्खों के तेजस्वी महापुरुष गुरु गोविंदसिंह को अपनी गोद में जन्म देने का श्रेय भी इसी पाटलिपुत्र नगर को है, जिनका गुरुद्वारा संसार-भर के सिक्खों का परमपूज्य तीर्थ बना हुआ है। पटना की गंगा के किनारे अँगरेजी-सलतनत के कलंक-स्वरूप पर्वताकार 'गोलघर' सन् १७७० ई० के बिहार के उस अकाल का स्मारक है, जिसमें तत्कालीन बिहार-प्रदेश के अनगिनत लोग अन्न के बिना तड़प-तड़प कर मर गये थे। पटना की बड़ी

पटनदेवी और छोटी पटनदेवी का वास्तविक इतिहास निश्चय ही तेजोदीप्त है; पर दुःख है कि अभी तक इन देवी-मंदिरों पर पूर्ण प्रकाश किसी ने नहीं डाला। किंतु, 'विविधतीर्थकल्प' के उसी 'पाटलिपुत्रनगरकल्प' में वर्णित इतिहास से इतना संकेत मिलता है कि इस नगर के मध्य में मातृदेवताएँ स्थापित की गई थीं, जिनके प्रभाव से शत्रुओं द्वारा आक्रमण करने पर भी पाटलिपुत्र कभी विजित नहीं हो सका। यह मातृ-मंडल (मंदिर) एक बार 'चाणक्य के आदेश से तोड़ दिया गया था, जहाँ लोगों ने 'चंद्रगुप्त' और 'पर्वतक' को पकड़ा था : 'तस्यैव पुरस्य मध्ये स्वप्रभावातिशया मातृदेवता आसंस्तदनुभावात्तत्पुरं परैराग्रहवद्भिरपि न खलु ग्रहीतुमशाकि। चाणिक्यवचसोत्पाटिते पुनर्जनैर्मातृमण्डले गृहीतवन्तौ चन्द्रगुप्त-पर्वतकौ।' इससे प्रमाणित होता है कि यह चर्चा नगरदेवी पटनदेवी के संबंध में ही है, जो नगर की रक्षा करनेवाली मातृदेवता थी। अतः, पटनदेवी की स्थापना अत्यंत प्राचीन होनी चाहिए। जिनप्रभसूरि के थोड़े ही दिनों बाद महाकवि 'विद्यापति' हुए और उन्होंने तो स्पष्ट रूप से 'पटनदेवी' की चर्चा अपनी 'भूपरिक्रमण' नामक पुस्तिका में की है,[१] जब वे तीर्थयात्रा-क्रम में मनेर के बाद पटना आये थे। इस प्रकार, ये सारी बातें पाटलिपुत्र के इतिहास की केवल हल्की-सी धुँधली रेखाएँ हैं, पूरी तसवीर तो एक विशाल इतिहास-ग्रंथ की वस्तु है। पटना की गंगा नदी का थोड़ा-सा परिचय निम्नलिखित स्थानों और घाटों के मिटते इतिहास में भी छिपा है।

गंगा के दाहिने किनारे पश्चिम से पूरब की ओर चलनेवाले राजपथ से जब कोई पटना में प्रवेश करने लगेगा, तब सबसे पहले उसको 'सदाकत-आश्रम' मिलेगा। इसी आश्रम में कांग्रेस-कमिटी का प्रांतीय कार्यालय है। यह देशभक्त 'मजहरुल हक' साहब के दान से बना है। इसी आश्रम में भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ० राजेंद्र प्रसाद रहते थे और अंत में यहीं सन् १९६३ ई० की २८ फरवरी को उनका देहावसान भी हुआ। इससे पूरब बढ़ने पर 'दुजरा' नामक महल्ला आता है। पटना में पश्चिम की ओर से प्रवेश करने का यहाँ मुख्य द्वार था, जहाँ सम्राट् महापद्मनंद आदि राजाओं की ओर से चुंगी वसूल होती थी और प्रवेश करनेवालों की जाँच-पड़ताल की जाती थी। इसके निकट पूरब 'बाँसघाट' है, जहाँ बाँसों की बड़ी-बड़ी टाटियाँ गंगा की धारा में बहाकर लाई जाती हैं और निकालकर उनकी बिक्री की जाती है। इसीलिए, इसका नाम 'बाँसघाट' पड़ा है। इसी बाँसघाट में पटना का बड़ा श्मशानघाट भी है। इसी श्मशान घाट पर राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद, बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री डॉ० श्रीकृष्ण सिंह, वित्तमंत्री डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह, प्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य शिवपूजन सहाय, विख्यात कथाकार राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, प्रख्यात आलोचक आचार्य नलिनविलोचन शर्मा आदि महापुरुष महानिद्रा में सोये पड़े हैं। इसी बाँसघाट से

---

१. 'विविधतीर्थकल्प' के लेखक श्रीजिनप्रभसूरि गौडदेश के रहनेवाले जैन साधु थे, जो १३वीं शती के अंत में तथा १४वीं शती के मध्यकाल तक वर्त्तमान थे। इनके पश्चात् १४वीं शती के अंतिमकाल और १५वीं शती के पूर्वार्द्ध में महाकवि विद्यापति हुए थे।

महापद्मनंद के काल में गंगा से एक खाई दक्षिण ले जाई गई थी और मीठापुर तक ले जाकर पूर्व-उत्तर कोण में मोड़कर 'सुगांगेय प्रासाद' से लगाई गई थी। इसी के पूर्व गोलघर दीखता है और उसके पूरब 'महेंद्रू घाट' है, जहाँ से गंगा के उस पार जाने-आने के लिए यात्री-जहाज गंगा को मथता हुआ दिन-रात चलता है। इसी के पास बाँकीपुर में 'मुरादपुर' महल्ला है, जिसका नाम 'मिर्जा मुराद इल्तफात खाँ' के नाम पर पड़ा है। मिर्जा मुराद रुस्तम कंधारी का पुत्र था, जो पीछे फकीर बन गया था। यह औरंगजेब के शासनकाल में हुआ था। इसके पूर्व में एशिया का विख्यात सदर अस्पताल और उसके बाद 'खुदाबख्श खाँ' की लाइब्रेरी मिलती है। इस लाइब्रेरी में सुरक्षित अरबी और फारसी-साहित्य की बहुमूल्य हस्तलिखित पांडुलिपियाँ दुनिया की किसी भी लाइब्रेरी में सुलभ नहीं हैं। इस प्राचीन ग्रंथागार के बाद ही पटना-विश्वविद्यालय की इमारतें गंगातट पर खड़ी मिलती हैं। तत्पश्चात् क्रमशः महेंद्रू, रानीघाट, त्रिपोलिया, बबुआगंज, गायघाट, सचिवालय-मुद्रणालय[१], महावीर घाट, दीवान मुहल्ला[२], भित्तनघाट, खाजेकलाँ, राजा रामनारायण की कोठी, मिरचाईगली, झाऊगंज, किलाघाट आदि ऐसे स्थान हैं, जो पाटलिपुत्र की गंगा की अमित कहानी अपने पहलू में छिपाये हुए हैं। गंगा के तट पर अवस्थित पाटलिपुत्र के प्राचीन मंदिरों और मूर्त्तियों का प्रामाणिक पुरातात्त्विक अध्ययन-अनुसंधान अभी तक उपेक्षित ही पड़ा है।

उक्त 'बबुआगंज' की गंगा में एक नया इतिहास बनने जा रहा है, जिसका थोड़ा विवरण दे देना प्रासंगिक है। गंगा के ऊपर पटना में बननेवाला गंगा-पुल 'बबुआगंज' के ऊपर से ही उस पार उत्तर बिहार में जायगा। इस पुल की नींव भारत की वर्त्तमान प्रधानमंत्रिणी श्रीमती इंदिरा गांधी ने सन् १९७० ई० के १९ जून को अपने हाथों रखी है। यह पुल पटना नगर के बिलकुल मध्यभाग में उसी जगह बन रहा है, जहाँ गायघाट में भगवान् बुद्ध ने गंगा पार किया था। यहाँ गंगा का पाट २२,३०० फुट चौड़ा है। यहाँ बननेवाले पुल की लंबाई गंगा-गर्भ के ऊपर १८,३०० फुट होगी। यह पुल गंगा-गर्भ के बाहर दक्षिणी भाग में, ११,२०० फुट तथा गंगा के उत्तर २०,००० फुट लंबा रहेगा। इस प्रकार, पुल की कुल लंबाई ४९,५०० फुट होगी, अर्थात् १५ किलोमीटर। यह दक्षिण में गुलजारबाग तक और उत्तर में हाजीपुर-महनार-सड़क तक बनेगा। गंगा-गर्भ के बाहर दोनों ओर (दक्षिण और उत्तर) एक-एक मील की दूरी पर १० फुट चौड़ी सड़कें पुल पर चढ़ने के लिए बनाई जायेंगी। मुख्य पुल-सड़क की चौड़ाई २४ फुट ७½ इंच होगी। सड़क के दोनों किनारे पाँच-पाँच फुट चौड़ी पगडंडियाँ भी बनाई जायेंगी। कहा जाता है कि यह संसार का सबसे बड़ा पुल होगा। बबुआगंज की गंगा की धारा की ऊपरी सतह वर्षाकाल में समुद्रतल से १६६·८२ फुट और अन्य समय में १६०·८ फुट ऊँची रहती है।

---

१. इसी इमारत के एक प्रकोष्ठ में 'शाह आलम' का राज्याभिषेक हुआ था।

२. इस महल्ले में 'अजीम उश्शान' के समी दीवान बसते थे।

पुल के निर्माण का अनुमित व्यय २३,५०,००,००० रुपए कूता गया है।[१] भारत की प्रधान मंत्रिणी श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा किये गये स्थापन-समारोह के २ वर्ष, १ महीना और २ दिनों के बाद सन् १९७२ ई० की २१ जुलाई को बिहार-प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीकेदार पांडेय ने हाजीपुर के पास इस पुल के प्रथम पाये की नींव चाँदी की 'करनी' से कंक्रीट उठाकर डाली थी और उसी दिन से पुल के बनने का कार्य वस्तुतः प्रारंभ हुआ।

आजकल पटना सिटी के 'झाऊगंज' महल्ले में जहाँ चौक थाना है, वहाँ मुस्लिम-शासन के दुर्दिन में 'चेहल सतून' नामक इमारत थी। इसी जगह सिराजुद्दौला का पिता मारा गया था, जिसका नाम जैनुद्दीन अहमद उर्फ सूबेदार हयावत जंग था। यह बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ का भतीजा और दामाद भी था।[२] इसी 'चेहल सतून' स्थान पर 'फर्रुखसियर' और 'शाह आलम' भारत के बादशाह घोषित किये गये।[३] इसी 'चेहल सतून' में अलीवर्दी खाँ द्वारा सिराजुद्दौला भी बिहार का 'नायब नाजिम' घोषित हुआ था। इसी पटना सिटी में मीरकासिम ने उन तमाम अँगरेज-बंदियों को तलवार के घाट उतरवा दिया था, जिनकी कब्रें पश्चिम दरवाजे से पूरब, पटना सिटी-अस्पताल के पास, बनी हैं। इनमें से कुछ अँगरेज-पादरी भी थे, जो 'पादरी की हवेली' नामक महल्ले में रहते थे। आज भी यहाँ का गिरजाघर प्रसिद्ध है जहाँ पादरियों का गुरु 'एलिस' रहता था। यह भू-भाग सन् १६२० ई० में ही मुगल-सूबेदार 'मुकर्रज खाँ' ने पादरियों को दान में दे दिया था। बाद में ये ही पादरी मुगल-सलतनत के खिलाफ षड्यंत्र करने लगे थे। 'मीरजाफर' से अँगरेजों का जब युद्ध ठन गया, तब कामगार खाँ की मदद से शाह आलम ने पटना तथा इसके आसपास के क्षेत्रों में अँगरेजों पर बार-बार कई आक्रमण किये; पर उसे हर बार असफलता ही मिली। सन् १७६३ ई० के २५ जून को, मीरकासिम के सेनापति 'समरू' ने यहाँ के पादरियों को कत्ल करवाया, और जो भागे, उन्हें छपरा के पास माँझी में जा पकड़ा। पुनः सन् १७७२ ई० में इसी स्थान पर बिहार का सर्वप्रथम गिरजाघर बना, जो आज भी पटना की पुरानी इमारतों में प्रसिद्ध है। ये सारी घटनाएँ गंगा के दाहिने तट पर स्थित पटना में घटीं, जिनकी अनेक कहानियाँ गंगा के प्रवाह की सहायता से गढ़ी गईं।

यही है पाटलिपुत्र की अति संक्षिप्त कहानी। इस नगर के सामने जब हम गंगा के बायें तट पर चलते हैं, तब रानीघाट और गुलबीघाट (सुप्रसिद्ध दूसरा

---

१. यह विवरण जनकार्य-विभाग (बिहार), पटना द्वारा प्राप्त उस पत्रक के आधार पर दिया गया है, जिसे उसने पुल की नींव डालने के अवसर पर वितरित किया था।

२. जैनुद्दीन अहमद अपने श्वसुर नवाब अलीवर्दी खाँ का विरोधी हो गया था और उसके दरभंगावाले पठान शत्रुओं से मिलकर अपने श्वसुर से राज्य छीन लेना चाहता था। किन्तु, उन पठानों के द्वारा ही वह उक्त स्थान में सन् १७४६ ई० की १३ जनवरी को मारा गया।

३. किन्तु, 'जगतसेठ' के लेखक पारसनाथ सिंह के अनुसार 'फर्रुखसियर' अफजल खाँ के बाग में सम्राट् घोषित किया गया था।

श्मशानघाट) के सामने, गंडकी नदी को गंगा के उत्तरी तट पर संगम करते देखते हैं। यह संगम प्राचीन काल में दिघवारा (सारन) में था। किंतु, वर्त्तमान गंडकी की संगम-धारा हाजीपुर और सोनपुर के बीच से बहकर आती है। गंडकी की यह धारा कब प्रवाहित हुई और दिघवारा का संगम कब समाप्त हुआ, इसकी निश्चित अवधि नहीं है। किंतु, भगवान् बुद्ध के समय तो निश्चित रूप से दिघवारावाला ही संगम था और संगम-स्थान से उत्तर गंडकी 'मही' नदी के नाम से जानी जाती थी। प्राचीन काल में मल्लों और वज्जियों की भूमि की सीमा-रेखा 'मही' नदी ही थी। आजकल सारन और मुजफ्फरपुर जिले की सीमा बनकर गंडकी बहती है और सोनपुर, सारन जिले में तथा हाजीपुर, मुजफ्फरपुर जिले में स्थित है।

गंडकी की और दो मुख्य बड़ी धाराएँ (काली और त्रिशूली) तिब्बत की अधित्यका से प्रवाहित होकर नेपाल की सीमा में प्रवेश करती हैं और अनेक निर्झरिणियों का जल ग्रहण कर नारायणी तथा गंडकी के नाम से बिहार-प्रांत के पश्चिमोत्तर कोण में प्रवेश करती हैं। गंडकी नेपाल की भूमि को त्रिवेणी-क्षेत्र (भैंसालोटन) में छोड़ती है। यह बिहार तथा उत्तरप्रदेश की सीमा पर तथा बिहार के भीतर १७३ मील तक बहती हुई पटना के सामने गंगा में प्रवेश करती है। गरमी के दिनों में यह प्रतिक्षण १० हजार घनफुट पानी त्रिवेणी-क्षेत्र में बहाती है और वर्षा ऋतु में तो प्रतिक्षण ७ लाख घनफुट तक पानी गंगा में उड़ेलती है।

गंडकी का विशद साहित्य हमें 'ब्रह्मांडपुराण' के ४६वें अध्याय में, 'वराह-पुराण' के १४४ तथा १४५वें अध्याय में तथा 'स्कंदपुराण' एवं 'पद्मपुराण' के कार्त्तिक-माहात्म्य में प्राप्त होता है। गंडकी का विशद उल्लेख हम आगे द्वितीय परिच्छेद में करेंगे। संगम-क्षेत्र के पास सोनपुर मे जो हरिहर-क्षेत्र है, उसके संबंध में कहा गया है कि भगवान् विष्णु नंदी वृषभ के नेतृत्व में गौओं को हाँककर यहाँ लाये थे, अतः यह क्षेत्र 'हरि' और 'हर' दोनों के नाम पर 'हरिहर-क्षेत्र' कहलाया।[1] इसीलिए, यहाँ आजतक मवेशियों का मेला लगता है। इस संगम-क्षेत्र का नाम 'देवाट' भी है; क्योंकि यहाँ देवता लोग 'अटन' करते हैं। इस संगम का एक नाम हंसतीर्थ भी है, जहाँ दो कौए परस्पर लड़ते हुए संगम के जल में गिर गये थे और दोनों ने हंस का रूप ग्रहण कर लिया था।[2] 'नारदीयमहापुराण' के अनुसार, इस संगम-क्षेत्र का नाम 'गांडवतीर्थ' भी है। इसी गंडकी के संगम पर अकबर के सेनापति राजा टोडरमल तथा मुनीब खाँ के संयुक्त नेतृत्ववाली सेना से दाउद खाँ का युद्ध हुआ था। अकबर के सेनापतियों से शोण-संगम के आसपास के युद्ध में जब दाउद खाँ की सेना हार गई, तब दाउद खाँ ने अपना दूसरा मोर्चा हाजीपुर में ही बनाया। अकबर की सेना ने गंडकी के संगम से ही पार कर हाजीपुर को घेरा था और तब दाउद अपने सात हजार घुड़सवारों को युद्ध में लगाकर स्वयं गंगा

१. वराहपुराण, १४४।१६३।
२. तत्रैव, अ० १४४।

के रास्ते पूरब की ओर भाग गया था। इस युद्ध में गंडकी का संगम लाशों से पट गया था तथा संगम का जल रक्त से लाल हो गया था।

गंडकी का मुख्य संगम-प्रवाह पटना के रानीघाट के सामने ही है; किंतु इसकी एक दूसरी धारा अपनी तथा गंगा की धारा के बीच में दियारा-क्षेत्र बनाती है। गंडकी की यह धारा फतुहा (पटना से ६ मील पूरब) के सामने गंगा के बायें भाग में संगम करती है। दियारा-क्षेत्र का नाम 'राघोपुर दियारा' है। दिघवारा से 'राघोपुर दियारा' तक, गंगा के बायें तट-भाग में, यादवों की बड़ी घनी आबादी है। पटना नगर में खपनेवाली हजारों मन सब्जी और सैकड़ों मन दूध का आधे से अधिक बाजार राघोपुर का दियारा सँभालता है।

गंगा नदी पटना के सामने गंडकी (नारायणी) के भारी जल-भांडार को आत्मसात् करती हुई जब पूरब की ओर आगे बढ़ती है, तब अपने दाहिने किनारे 'फतुहा' को देखती है। यहीं पितरों को तारनेवाली नदी 'पुनपुन' दक्षिण दिशा से आकर गंगा के दाहिने पार्श्व में अपने को विसर्जित करती है। इसी 'पुनपुन' के जल से पिंडदान तथा तर्पण करने से पितरों का तरण होता है। मगध-क्षेत्र को हिंदू-धर्मशास्त्रों में अशुद्ध क्षेत्र माना गया है; किंतु इस क्षेत्र के गया नगर, राजगृह, च्यवनाश्रम तथा पुनःपुना (पुनपुन) नदी—ये चार अत्यंत पवित्र तीर्थ माने गये हैं :

मगधेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्।
च्यवनस्याश्रमं पुण्यं नदी पुण्या पुनःपुना॥

'महाभारत' की 'कुलंपुना'[१] नदी संभवतः पुनपुन ही है। यह गया जिले के दक्षिण-पश्चिम के कोण से प्रवाहित होती है और 'जम्होर' (गया) के पास पालामऊ जिले के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र से आनेवाली 'बटाने' नामक नदी को अंकसात् कर उत्तर की ओर बढ़ती है। यह गया जिले के 'देवकुंड' नामक तीर्थ को बायें तट की ओर छोड़कर पटना जिले की सीमा में घुसती है और पूरब दिशा की ओर अपना प्रवाह बनाती है। इसी दिशा में मुँह किये जब यह पटना-गया-रेलपथ के 'पुनपुन' नामक स्टेशन से और पूरब बढ़ती है, तब अकस्मात् उत्तर की ओर मुड़कर 'फतुहा' के पास गंगा में प्रवेश कर जाती है। पाटलिपुत्र के दक्षिणी भाग में 'महापद्मनंद' ने नगर की सुरक्षा के लिए जो विस्तृत झील खुदवाई थी, वह इसी पुनपुन नदी तथा गंगा एवं शोण के जल से भरी रहती थी। 'मेगास्थनीज' ने भी इस झील का वर्णन किया है। वह मौर्य चंद्रगुप्त के शासनकाल में पाटलिपुत्र आया था। बहुत-से इतिहासकारों का भ्रम था कि 'शोणनद' पाटलिपुत्र के पूरब फतुहा में जाकर गंगा से संगम करता था। पाटलिपुत्र में शोण, गंगा और पुनपुन की स्थिति क्या थी, इसपर पहले ही प्रकाश डाला गया है। 'महापद्मनंद' द्वारा खुदवाई गई उस बड़ी झील का अवशेष अबतक भी है, जिसे पटना के लोग 'बड़ा जल्ला' कहते हैं। सन् १९६७ ई०

---

१. महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय १६५, श्लो० २०।

में पुनपुन नदी की बाढ़ ने इसी जल्ले के द्वारा पटना नगर के दक्षिणी हिस्से में प्रवेश कर जल-प्लावन का दृश्य उपस्थित कर दिया था। एक छोटा जल्ला भी था, जो परिखा-रूप में 'सुगांगेय प्रासाद' से जाकर लगता था। इसी छोटी परिखा के द्वारा कलिंग के सम्राट् खारवेल ने अपनी हस्तिसेना को 'वहसतिमित्र' मौर्य के सुगांगेय प्रासाद की दीवार में भिड़ा दिया था तथा 'वहसतिमित्र' को अपने पैरों पर गिरवाया था।[1]

प्राचीन काल में 'पाटलिपुत्र' से दक्षिण गया आदि स्थानों को जाने के लिए जो मार्ग था, वह सीधे आजकल की तरह दक्षिण-दिग्गामी नहीं था। वह पाटलिपुत्र से पूरब की ओर चलकर पहले 'फतुहा' में आता था और तब दक्षिण मुड़कर 'गया' नगर को जाता था। ऐसा इसलिए होता था कि पटना के दक्षिण दुर्लंघ्य और विस्तृत कृत्रिम झील थी। इसी तरह राजगृह से जो यात्री गंगा के उत्तर मिथिला जाना चाहते थे, वे भी पटना न आकर पटना से पूरब 'बैकटपुर' अथवा 'फतुहा' में ही गंगा पार कर उत्तर की ओर चले जाते थे। चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' जब वैशाली से पटना आकर गया जाने लगा, तब वह पटना से पहले 'फतुहा' ही गया और वहाँ से दक्षिण होकर 'तेलहड़ा' आदि स्थानों से होते 'गया' नगर को पहुँचा। इसलिए, 'फतुहा' पाटलिपुत्र का पूर्वी फाटक था। इसी 'फतुहा' में पुनपुन-गंगा-संगम पर अपने को खुशरू बतलानेवाले 'कुतुब' नामक एक बागी का युद्ध सन् १६१२ ई० में 'अफजल खाँ' से हुआ था। अफजल खाँ बादशाह जहाँगीर द्वारा नियुक्त बिहार का सूबेदार था। जब वह पटना से दूर खड़गपुर हवेली (मुंगेर) में था, तब उसने सुना कि खुशरू ने भोजपुर के उज्जैन-राजपूतों से मिलकर पटना को दखल कर लिया है। वह अपनी सेना के साथ दौड़ता हुआ पटना के लिए चला। कुतुब की सेना ने फतुहा में जाकर उससे टक्कर ली, परन्तु वह अफजल खाँ की सेना से बुरी तरह पराजित हो गई। कुतुब भागकर पटना आया और किले में घुस गया। किंतु, अफजल की सेना ने किला जीतकर जब खुशरू को पकड़ा, तब पता चला कि यह खुशरू नहीं, कुतुब नामक कोई धूर्त्त है। अफजल ने उसे वहीं मरवा दिया। इस घटना के बहुत दिनों बाद, सन् १७६१ ई० में 'हसुआ' नगर के कामगार खाँ, दिलेर खाँ और कादिर दाद की सहायता से शाह आलम ने मीरकासिम तथा अंगरेजों की सम्मिलित सेना से इसी 'फतुहा' में लोहा लिया था, जिसमें मीरजाफर का साला 'अमीन खाँ' मारा गया था। इस युद्ध में राजा रामनारायण, कैप्टेन काकरेन तथा 'बारवल' भी सख्त घायल हो गये थे। इस युद्ध के फलस्वरूप, 'शाह आलम' का अधिकार कुछ दिनों के लिए पटना पर हो गया था, किंतु जब कादिर दाद मारा गया, तब पटना 'शाह आलम' के हाथ से निकल गया और वह बर्दवान की ओर खिसक गया।

---

१. "बारसभे च वसे....सह वितासयति उत्तरापथ राजानो ...म (त) गधान च विपुलं भयं जनेतो हथसेना सुगांगेय पाययति म (ग) ध (') च राजानं बहसतिमितं पादे बंदापयति।"
—खारबेल का हाथीगुम्फा लेख।

फतुहा के आगे पूरब में गंगा के दाहिने किनारे 'बैकटपुर' गाँव स्थित है। बैकटपुर भी प्राचीन गाँव है, जिसका उल्लेख 'नारदीयमहापुराण' में मिलता है। यह पुराण 'बैकटपुर' को 'रामतीर्थ' कहता है और गांडवतीर्थ के पश्चात् गंगा के तट पर इसी का नाम लेता है : **रामतीर्थं ततः पुण्यं वैकुण्ठं यत्र सन्निधो।** बैकटपुर में शिवजी का प्रसिद्ध मंदिर है, जहाँ श्रावण मास में तथा शिवरात्रि के अवसर पर गंगा-स्नान एवं शिव-दर्शन के निमित्त तीर्थयात्रियों का बहुत बड़ा मेला लगता है। बैकटपुर बादशाह अकबर के प्रसिद्ध सेनापति मानसिंह का प्रिय स्थान रहा है। कई बार उसने इसे अपनी पूर्वीय यात्रा का शिविर बनाया था। यहाँ के शिवमंदिर का उद्धार तथा परिवर्द्धन मानसिंह ने ही किया था, जो आजतक वर्त्तमान है। मानसिंह की माता का देहांत भी इसी बैकटपुर में हुआ था और यहीं मानसिंह ने अपनी माँ का श्राद्ध भी किया था। 'वैशाली की नगरवधू' नामक उपन्यास की नायिका 'अंबपाली' और उसके नायक 'बिंबिसार' का मिलन इसी वैकुंठपुर में उपन्यास-लेखक ने कराया है। 'रानीसराय' के 'कालादियारा' क्षेत्र में अलीवर्दी खाँ ने जब दरभंगावाले पठानों के विद्रोह का पूरी तरह शमन कर दिया, तब उसने अपनी सेना के साथ पश्चिम बढ़कर इसी 'बैकटपुर' में विश्राम-शिविर लगवाया था। आज भी बैकटपुर की गंगा के किनारे खड़ा होने पर उसकी पावनता और महनीय विशालता मन और नयन को अभिभूत कर लेती है।

बैकटपुर के बाद गंगा के दाहिने किनारे उल्लेखनीय स्थान बख्तियारपुर है। सन् १२०० ई० के आसपास मुस्लिम-शासन की नींव बिहार और बंगाल में जिस व्यक्ति ने दी, उसका नाम 'इख्तियार खिलजी' था। यह महमूद गोरी के सिपहसालार कुतबुद्दीन के अनेक सैनिक सरदारों में एक और बख्तियार खिलजी का पुत्र था। इसलिए, इसका पूरा नाम 'इख्तियार-इब्न-बिन-बख्तियार खिलजी' था। इसी ने कुतुबुद्दीन की आज्ञा लेकर अपने थोड़े-से लुटेरे और नृशंस घुड़सवारों के साथ चुनारगढ़ से बंगाल एवं आसाम तक के प्रदेशों को खूब लूटा, नर-संहार किया तथा अनगिनत गाँवों को जलाकर राख कर दिया था। इसी इख्तियार खिलजी ने नालंदा तथा उदंतपुर (बिहारशरीफ) के पुस्तकालयों को जलाया था तथा बौद्ध भिक्षुओं के मुंडों का अंबार लगा दिया था। इख्तियार खिलजी का एक सैनिक-शिविर 'बख्तियारपुर' में भी पड़ा था और उसी के पिता के नाम पर उस स्थान का नाम 'बख्तियारपुर' रखा गया था। यह 'बख्तियारपुर' पूर्वी रेलवे का एक छोटा जंक्शन है, जहाँ से रेलगाड़ी 'राजगृह' को जाती है। पटना से गंगा के किनारे-किनारे पूर्व दिशा की ओर जानेवाला राजमार्ग जब इसी बख्तियारपुर में पहुँचता है, तब दक्षिण की ओर मुड़कर बिहारशरीफ, राजगृह अथवा नवादा, कोडरमा होते हजारीबाग एवं राँची जाता है। बख्तियारपुर से सीधे पूर्व की ओर का मार्ग बाढ़, मोकामा, मुंगेर तथा भागलपुर को चला जाता है। मोकामा में इस मार्ग की एक शाखा गंगा-पुल (राजेन्द्र-सेतु) पार कर उत्तर बिहार के दरभंगा नगर को और दूसरी पूर्णिया होते हुए असम को जाती है।

बख्तियारपुर से आध मील पूर्व में राजमार्ग के दक्षिण रेलवे-लाइन है, और रेलवे-लाइन के सटे दक्षिण में 'रानीसराय' नामक ऐतिहासिक गाँव गंगा के दाहिने किनारे बसा है। इसके उत्तर में 'कालादियारा' नामक क्षेत्र है, जो गंगा की बाढ़ की ढाव-मिट्टी से बना है। 'रानीसराय' के इसी दियारा-क्षेत्र में सन् १७४८ ई० में मुर्शिदाबाद के नवाब अलीवर्दी खाँ का भीषण संग्राम दरभंगा के विद्रोही पठानों से हुआ था। पठान विद्रोहियों ने छल से अलीवर्दी के भतीजे को, जो उसका दामाद भी था, पटना में मार डाला था और पटना को अपने अधीन भी कर लिया था। जैसा पहले कहा गया है, अलीवर्दी के उस दामाद का नाम जैनुद्दीन अहमद उर्फ हयावत जंग था और इसी का बेटा 'सिराजुद्दौला' था। जैनुद्दीन उन दिनों अलीवर्दी की ओर से बिहार का सूबेदार था और पटना में रहता था। इसने अपने श्वसुर के खिलाफ षड्यंत्र किया और चाहा कि दरभंगावाले विद्रोही पठानों को मिलाकर अपने श्वसुर का तख्ता उलट दूँ। इसने उन विद्रोहियों को निमंत्रण देकर पटना बुलाया, जिससे वे बड़ी तादाद में बेरोक-टोक पटना आ गये। बातचीत करने के बहाने विद्रोहियों ने जैनुद्दीन को 'चेहल सतून' की इमारत में मार डाला। उस समय भोजपुर (शाहाबाद) के राजपूतों ने भी इन विद्रोहियों का साथ दिया था और ४० हजार सैनिक इनके झंडे के नीचे आ गये थे। कई महीनों तक इनका कब्जा पटना पर बना रहा। उधर जब अलीवर्दी को यह समाचार मिला, तब वह मराठों से निबटना छोड़कर पटना की ओर चला। इधर विद्रोहियों ने भी आगे बढ़कर उससे लोहा बजाना उचित समझा और दोनों सेनाओं की मुठभेड़ इसी 'रानीसराय' के पास हुई। प्रथम दिन के कुछ घंटों के घोर युद्ध में ही सभी विद्रोही सेनापति मार डाले गये और तब नेता-विहीन विद्रोही सेना भाग खड़ी हुई। बूढ़े अलीवर्दी खाँ को अपनी इस विजय से बड़ी प्रसन्नता हुई थी। इसी के बाद उसने बैकटपुर में आकर अपना विश्राम-शिविर लगाया था। बहुत-से इतिहासकारों ने 'रानीसराय' को बाढ़ के पास बतलाया है, वस्तुतः यह बख्तियार-पुर के पास है और बाढ़ से तो कई मील पश्चिम में है। इसी के सामने गंगा के उस पार 'शाहपुर पटोरी' नामक स्थान है, जो अनाज तथा तंबाकू की बहुत बड़ी मंडी है। अलीवर्दी की एक सेना ने रातोंरात गंगा के रास्ते से चलकर विद्रोही पठान-सेना के पीछे पहुँच-कर उसे घेर लिया था।

बख्तियारपुर और रानीसराय से गंगा नदी जब और पूरब बढ़ती है, तब इसके दाहिने तट पर पटना जिले का उपनगर 'बाढ़' मिलता है। पटना जिला चार अनुमंडलों में बँटा है, जिनमें एक 'बाढ़' है। यह जिले के पूर्वी भाग का शासन-केंद्र है और पूर्वी रेलवे का एक प्रमुख रेलवे-स्टेशन भी। मुस्लिम-शासन के प्रथम और द्वितीय प्रहरों में यह गंगा के किनारे का प्रमुख स्थान रहा है। शत्रुओं की रुकावट के लिए पहले यहाँ एक स्थायी सैनिक-शिविर था। कुछ लोगों का कहना है कि यह स्थान सैनिक-द्वार का 'बाड़' (अर्गला) था, इसीलिए इसका नाम 'बाढ़' पड़ा। उसी 'बाड़' का अपभ्रंश 'बाढ़' है। इस विचार के विपरीत, कुछ लोगों का तर्क है कि गया और पटना जिले की सभी नदियों

का पानी एकत्र होकर इसी स्थान पर झील के रूप में परिणत होता था और तब गंगा में गिरता था। इसीलिए इसका नाम 'बाढ़' पड़ा था।

सन् १४९४ ई० में दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी का युद्ध बंगाल के सुलतान और अपने पुत्र हुसेनशाह के साथ इसी 'बाढ़' नामक स्थान में हुआ था। हुसेनशाह जब हार गया, तब दोनों के बीच एक संधि हुई और बंगाल के शासन का भार 'हुसेनशाह' के ही जिम्मे छोड़कर सिकंदर लोदी लौट गया। उस समय दोनों के शासन की सीमा 'बाढ़' नगर ही माना गया था। इस घटना के सैंकड़ों वर्ष बाद सन् १७६३ ई० में 'मीरकासिम' जब 'उधुवा नाला' और मुंगेर के 'डकरा नाला' की लड़ाई में अँगरेजी-सेना से हार गया, तब उसने एक मोर्चा इसी 'बाढ़' में लिया था। यहाँ भी जब अँगरेजी-सेना ने इसे घेरा, तब भागते समय अँगरेजों के मददगार महावतराय जगतसेठ तथा स्वरूपचंद नामक सेठ को उसने मरवा डाला। मीरकासिम ने दोनों सेठों को पहले ही बंदी बना लिया था और इन्हें अपने साथ लिये हुए भाग रहा था।

'बाढ़' नगर में पहले मुस्लिम-आबादी खूब घनी थी। यहाँ बड़े-बड़े मुस्लिम-फकीर तथा प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं। बाढ़ की गंगा के किनारे-किनारे टूटी-फूटी प्राचीन कब्रों की कतारें बिछी हुई मिलती हैं। पहले बाढ़ का चमेली-तेल बड़ा विख्यात था और इत्र बनाने का भी यहाँ अच्छा कारबार था। आजकल यह 'मावे के लड्डू' के लिए प्रसिद्ध है।

इस 'बाढ़' नगर के आगे गंगा के किनारे प्रसिद्ध स्थान 'मोकामा' है; किंतु इन दोनों स्थानों के बीच 'पुंडारक' और 'शिवनार' नामक स्थान भी उल्लेखनीय हैं। 'पुंडारक' का शुद्ध नाम 'पुण्यार्क' है। यहाँ शिव और सूर्य के प्राचीन मंदिर हैं, जहाँ कार्त्तिक शुक्ल षष्ठी तथा चैत्र शुक्ल षष्ठी को व्रतार्थियों की भीड़ जमा होती है। सूर्यव्रत करनेवाले यहाँ गंगा में स्नान कर सूर्यदेव का पूजन करते हैं। मगध में सूर्यव्रत का बहुत प्रचार तथा माहात्म्य है और शुद्धता तथा कठोर उपवास के कारण यह व्रत कष्टसाध्य माना जाता है। शाहाबाद जिले का 'देववरुणार्क' और 'देवमार्कंडेय'; गया जिले का 'देव उमगा' तथा 'मघुसरवा'; नवादा थाने का 'हँड़िया' ग्राम; पटना जिले का उलार और बड़गाँव (नालंदा); फल्गु नदी की एक शाखा के किनारे 'औंगारी' तथा यह 'पुण्यार्क'—इन नौ स्थानों में आज भी सूर्यदेव के मंदिर हैं और छठ व्रत के दिन यहाँ मेला लगता है। किंतु, इनमें पुंडारक (पुण्यार्क) ही एक ऐसा स्थान है, जो गंगातट पर है और तैर्थिक लोग गंगा में स्नान करके पवित्र गंगाजल से सूर्य को अर्घ्य देते हैं। पूर्व की ओर बहती हुई गंगा इसी 'पुंडारक' में पहुँचकर अग्निकोण-वाहिनी हो जाती है। इस मार्ग-परिवर्त्तन का कारण यह है कि चंपारन और मुजफ्फरपुर जिले के वैशाली के पास से बहकर आनेवाली 'बाया' नदी पहले 'पुण्यार्क' के सामने गंगा में प्रवेश करती थी। आज की 'बाया' प्राचीन काल की बड़ी और पुराण-प्रसिद्ध नदी 'विशाला' का खँड़हर है। अब बाया 'सिमरियाघाट' के पास गंगा में संगम करती है। प्रमाणस्वरूप आज भी 'चमथा' गाँव के दक्षिण 'सोता' (धार) के द्वारा गंगा और बाया

का पारस्परिक संबंध बना हुआ है। यह सोता (धार) ठीक 'पुण्यार्क' के सामने गंगा के वाम पार्श्व में है। किंतु, बाया नदी की धार के धक्के से गंगा का विशाल प्रवाह अग्निकोण-वाहिनी हो जाय, ऐसी शक्ति 'बाया' के प्रवाह में नहीं दीखती। अतः, यह निश्चित है कि प्राचीन 'विशाला' के समान यह बूढ़ी गंडक भी अपने प्राचीन प्रवाह-पथ 'जमुआरी' नदी की धार से आकर अपना विशाल जल-भांडार 'चमथा' के पास गंगा में डालती थी। बूढ़ी गंडक की यह प्राचीन धारा मुजफ्फरपुर के पहले ही 'केदने' नदी की धार पकड़कर 'तीथी' और 'ताजपुर' के पश्चिम में ही 'नोन' नदी से मिलकर तथा 'जमुआरी' नाम धारण कर विद्यापतिनगर (बाजितपुर) स्टेशन आकर, गंगा के दक्षिण भाग में स्थित 'पुण्यार्क' के सामने, गंगा की बाईं कोख में प्रवेश करती थी।[1] इसी के प्रबल प्रवाह के धक्के से आहत होकर गंगा नदी पुण्यार्क से अग्निकोण-वाहिनी हो जाती थी और आज भी इसी स्थिति में बनी हुई है। यही कारण है कि चमथा से तीन मील दूर अग्निकोण में तथा 'रतुल्लाहपुर' गाँव के दक्षिण गंगा ने दियारा बनाया है, जैसे अन्य सभी संगम स्थलों पर बनाती है। रतुल्लाहपुर के दक्षिण गंगा दो भागों में बँटती है। उत्तरी भाग की धार के बरसाती पानी से बचने के लिए सन् १९५५ ई० में तेघड़ा से महम्मदपुर तक मिट्टी का बाँध खड़ा किया गया है। गंगा का यह पानी 'बाया' नदी से मिलकर बहुत दूर तक फैल जाता था। जैसे-जैसे 'जमुआरी' के मुहाने पर मिट्टी भरती गई है तथा रेल की लाइन आदि से रुकावट होती गई है, 'जमुआरी' पूर्व की ओर हटती गई है एवं गंडकी भी पूर्व की ओर अपनी धारा बदलती गई है।

'पुंडारक' से गंगा की धारा जब आगे अग्निकोण में बढ़ती है, तब मोकामा से पहले ही इसके दाहिने तट पर 'शिवनार' नामक एक प्राचीन ग्राम मिलता है। यहाँ आज भी एक प्राचीन शिवमंदिर है, जहाँ शिवरात्रि के अवसर पर शिवभक्तों का भारी मेला लगता है और वे गंगा-स्नान कर शिवलिंग पर गंगाजल चढ़ाते हैं। यह शिवनार 'नारदीय-महापुराण' का शायद 'सोमतीर्थ' है।[2] इसी स्थान पर नकुल मुनि ने भगवान् शंकर की निष्ठापूर्वक आराधना करके शिव के गणों में अपना स्थान प्राप्त कर लिया था :

---

१. केदने और जमुआरी—दोनों बूढ़ी गंडकी की उपधाराएँ हैं। बहुत प्राचीन काल में 'केदने' के मार्ग से बूढ़ी गंडक बहती थी और तीथी ग्राम के पास जमुआरी के धारा-मार्ग से 'चमथा' के पास गंगा में गिरती थी। बूढ़ी गंडक की अति प्राचीन 'केदने' धार मुजफ्फरपुर के पश्चिम 'मोतीपुर' रेलवे स्टेशन के पास से रेलवे-लाइन के किनारे-किनारे काँटी स्टेशन तक आती थी। इसके पश्चात् मैनपुर, चैनपुर आदि गांवों से होते हुए तुर्की तथा मुजफ्फरपुर स्टेशनों के मध्य 'मघौल' गाँव के पास हाजीपुर-मुजफ्फरपुर रेल-लाइन को पार करती थी। इसके बाद 'शाहपुर जुनेद' तथा 'वरियारपुर कंध' आकर पातेपुर पहुँचती थी। यहाँ से दक्षिण-पूर्व में बढ़कर जमुआरी-धार के द्वारा गंगा में मिलती थी। इसका विशद विवरण द्वितीय परिच्छेद में देखिए।

२. 'नारदीयपुराण' का 'सोमतीर्थ' गंगा के तट पर है—पर यह 'शिवनार' में है, या 'सिमरिया-घाट' में या 'साम्हो' में, यह निश्चय मैं अभी तक नहीं कर पा रहा हूँ। पर, जहाँतक मैंने अनुमान लगाया है, सोमतीर्थ का श्रेय 'शिवनार' को ही मिलना चाहिए।

सोमतीर्थं ततः पुण्यं यत्रासौ नकुलो मुनिः ।
समभ्यर्च्य शिवं ध्यायन् गणतां तु समाययौ ।।

—नार० पु०, उत्तर खं०, ४१।४२।

'नारदीयमहापुराण' रामतीर्थ (बैकटपुर) के बाद गंगा के किनारे 'सोमतीर्थ' का ही स्मरण करता है, अतः इसे 'शिवनार' में होने की अधिक संभावना है ।

महाभारत के वनपर्व (८४।११९) में भी एक 'सोमपद' तीर्थ की चर्चा आई है, जहाँ तीर्थ-यात्राक्रम में युधिष्ठिर गये हुए थे :

अथ सोमपदं गच्छेत् ब्रह्मचारी समाहितः ।
माहेश्वरपदे स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत् ।।

किंतु, नारदीयपुराण 'सोमतीर्थ' कहता है और महाभारत 'सोमपद' । महाभारत के प्रसंग से ज्ञात होता है कि 'सोमपद' तीर्थ गंगा के उत्तर में कहीं था । अतः, 'महाभारत' का 'सोमपद' सोमेश्वर की पहाड़ी है और 'पद' शब्द भी स्पष्ट करता है कि यह किसी पर्वत की तलहटी में था । किंतु, नारदीयपुराण तो 'सोमतीर्थ' को गंगा के तट पर ही स्थित बतलाता है । 'शिवनार' के सामने 'बाया' तथा बूढ़ी 'गंडकी' का संगम था, और प्राचीन काल में दक्षिण से धोबा (मोहने) का संगम होता था । अतः, यहाँ कोई प्राचीन तीर्थ अवश्य होना चाहिए ।

'शिवनार' के बाद गंगा के पूर्व-दक्षिण कोण में बढ़ने पर इसके किनारे प्रसिद्ध ग्राम 'मोकामा' मिलता है । मुसलमानों के शासनकाल में सेना का एक 'मुकाम' यहाँ भी होता था, अतः इसका नाम 'मोकामा' पड़ा । यहाँ पहले पूर्वी रेलवे का जंक्शन था और 'मोकामाघाट' तथा 'मोकामा जंक्शन' नामक दो रेलवे स्टेशन थे । किंतु, गंगा में पुल बन जाने से मोकामाघाट स्टेशन टूट गया और जंक्शन का भी रुतबा घट गया । 'मोकामा-घाट' से उस पार जाने के लिए पहले पानी का जहाज गंगा में चलता था । यह जहाज उस पार 'सिमरियाघाट' जाता था और वहाँ से 'मोकामाघाट' लौटता था । किंतु, अब मोकामा से एक मील पूरब गंगा में 'राजेन्द्र पुल' बन गया है, जिससे रेलगाड़ियाँ और मोटरें आसानी से गंगा पारकर बरौनी जंक्शन पहुँच जाती हैं । इसी मोकामाघाट पर सन् १९०९ ई० में प्रसिद्ध क्रांतिकारी खुदीराम बोस का अन्यतम सहयोगी प्रफुल्लचन्द चाकी पुलिस की पकड़ में आने से पूर्व ही अपने-आपको गोली मारकर शहीद हो गया था । वह मुजफ्फरपुर में बम-विस्फोट कर समस्तीपुर होते हुए गंगा पार चला आया था और मोकामाघाट में कलकत्ता जानेवाली रेलगाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था ।

मोकामा में एक 'परशुराम-स्थान' है, जो भृगुवंशी 'परशुराम' के नाम पर बतलाया जाता है । मैं समझता हूँ, यह परशुराम-स्थान मोकामा-निवासियों के किसी पूर्वज 'परशुराम' नामक व्यक्ति का स्मारक स्थान है । क्योंकि, यहाँ 'मोकामा' जिस स्थान पर बसा है, वहाँ पहले दक्षिण की नदियों का गंगा से संगम होता था और बिलकुल झील-क्षेत्र था ।

मोकामा के सामने गंगा के बायें भाग में 'सिमरियाघाट' है, जहाँ कार्त्तिक और माघ के महीने में उत्तर बिहार के हजारों गंगा-भक्त झोपड़ी बनाकर या किराये में लेकर पूरे महीने-भर गंगातट का सेवन करते हैं। सिमरियाघाट में मकर-संक्रांति के अवसर पर गंगा-स्नानार्थियों का बहुत बड़ा मेला लगता है। यहीं आजकल उत्तर बिहार की 'बाया' नदी गंगा में संगम करती है। आजकल 'बाया' नदी चंपारन जिले के केसरिया थाने से प्रवाहित होती है और वैशाली के पास से गुजरती हुई दरभंगा जिले के दक्षिणी भाग के 'मोहिउद्दीननगर' के पास पहुँचती है। वहाँ से दक्षिण-पूर्व कोण में चलकर जब मुँगेर जिले में घुसती है, तब दक्षिण दिशा में मुड़कर 'सिमरियाघाट' गाँव के पास गंगा में समा जाती है। वर्षाकाल में तो गंगा नदी 'बाया' के जल को मुहम्मदपुर गाँव के पास ही ग्रहण कर लेती है। यही 'सिमरियाघाट' नामक गाँव हिंदी के प्रसिद्ध कवि डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्मस्थान है।

सिमरियाघाट से कुछ दूर पूर्वोत्तर कोण में बरौनी है; किंतु अब यह सारा क्षेत्र सघन आबादी से ऐसा जुड़ गया है कि दोनों को अलग कहना व्यर्थ है। यहाँ के तमाम क्षेत्र में उद्योग-धंधे तथा दूकानें फैलती जा रही हैं। बरौनी भारत का एक प्रसिद्ध उद्योग-क्षेत्र बन गया है और उत्तर-पूर्व रेलवे का प्रसिद्ध जंक्शन हो गया है। अब हावड़ा तथा दिल्ली से भी सीधे रेलगाड़ियाँ बरौनी पहुँचती हैं। दिल्ली से उत्तर-पूर्व-सीमान्त (उर्वशीयम्) तक जो राष्ट्रीय महापथ बिछा है, वह मोकामा में ही राजेन्द्र-पुल पार कर बरौनी से गुजरता है। इस राष्ट्रीय महापथ के निर्माण की योजना केन्द्रीय सरकार ने सन् १९४८ ई० में ही स्वीकृत की थी; पर गंगा-सेतु का निर्माण सन् १९५३ ई० के २ सितंबर को आरम्भ हुआ था। राजेन्द्र-पुल की लंबाई ६००० फुट है तथा इसके ऊपर से दौड़नेवाले रेल-पथ एवं मोटर-पथ की चौड़ाई २४ फुट। गर्मी के दिनों में गंगा-प्रवाह के जल-तल से १७५ फुट की गहराईवाले कुँओं में गंगा-सेतु के १५ पायों की नींव डाली गई है। राजेन्द्र पुल के द्वारा गंगा नदी अपना जो जल बहाती है, उसके लिए १४ मेहराबदार द्वार बनाये गये हैं। इन द्वारों में प्रत्येक का विवर-मुख १०५ फुट चौड़ा है। बरसात के मौसम में जब उबलता-उछलता मटमैला पानी प्रत्येक विवर-द्वार से पूर्व की ओर निकलता है, तब मानों संपूर्ण पृथ्वी पिघलकर बहती हुई-सी दिखाई देती है। गंगा का यह राजेन्द्र पुल दोमंजिला है। निचली मंजिल से रेलगाड़ियाँ दौड़ती हैं और ऊपर की मंजिल को बस, कार, ट्रक आदि विभिन्न परिवहन रौंदते हैं। ऊपरी मंजिल के दोनों किनारों में ६-६ फुट की पगडंडियाँ भी बनी हैं, जिनसे पैदल चलनेवाले लोग गुजरते हैं। देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के नाम पर इसका नाम 'राजेन्द्र-सेतु' रखा गया है। पुल का उद्घाटन भारत-गणतंत्र के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सन् १९५९ ई० की १ मई को किया था। इसके निर्माण में साढ़े छह वर्षों का समय लगा था।

गंगा के बायें किनारे इसी जगह बरौनी में तेल-शोधक कारखाना है, जहाँ मिट्टी का कच्चा तेल, असम के डिगबोई-क्षेत्र से, भूगर्भस्थित लोहे के एक इंच मोटे

चदरे के बने, दो फुट व्यासवाले नलों द्वारा, साढ़े सात सौ मील की दूरी से प्रवाहित होकर अबाध गति से निरन्तर आता रहता है। डिगबोई से बरौनी तक नलों के बिछाने तथा इनके निर्माण में ४४ करोड़ रुपये व्यय हुए हैं। बरौनी का तेल-शोधक कारखाना चार सौ एकड़ में विस्तृत है। कारखाने का निर्माण ३० करोड़ की अधिकृत पूँजी से 'इंडिया रिफायनरी लिमिटेड कंपनी' ने किया है। इस कारखाने के कई अंग हैं, जिनमें ईंधन-युनिट टैंक, तेलविभाजक, अग्निशामक कुंड, आपातिक कुंड, यांत्रिक कारखाना, तेल-बेल्डिंग-यंत्र, तेल-संग्रहालय कुंड आदि मुख्य हैं। यह सन् १९६४ ई० में बनकर तैयार हुआ था। कारखाने की तेल-उत्पादन-क्षमता प्रतिवर्ष २० लाख टन की है, जो बढ़कर ३० लाख टन तक जायगी। सन् १९६८ ई० के आरंभ में इसी तेलशोधक कारखाने से पेट्रोल का कुछ हिस्सा बहकर गंगा में चला गया था, जिससे मुँगेर की गंगा के प्रवाह में कई दिनों तक आग लगी हुई थी। पानी में आग लगाना बड़ा कठिन है; पर यहाँ तो गंगा में ही आग लग गई थी! सन् १९६० ई० में बरौनी-क्षेत्र में 'विद्युत्-उत्पादन-केन्द्र' की भी स्थापना की गई है, जिसमें ९०० डिग्री फॉरेनहाइट गर्मी देनेवाले बॉयलर लगाये गये हैं। इसमें १ लाख ५० हजार किलोवाटवाले दो टर्बो-अल्टरनेटर भी संयोजित हैं। इस विद्युत्-उत्पादन-केन्द्र की क्षमता १४५ मेगावाट है, जिससे समस्त उत्तर बिहार को प्रकाशित किया जा सकता है। इसके निर्माण में १६ करोड़ रुपये का व्यय हुआ है। इनके अतिरिक्त भी सरकारी-गैरसरकारी बहुत-से उद्योग-धंधों के केन्द्र बरौनी में हैं, जिनमें एक 'राजकीय दुग्धशाला' अतिप्रसिद्ध है। अपने इन महत्त्वों के कारण बरौनी भारत का नया राष्ट्रीय तीर्थस्थल बन गया है।

उपर्युक्त बरौनी का क्षेत्र गंगा के बायें किनारे उत्तर में है; पर गंगा के दाहिने किनारे-स्थित जिस मोकामा की चर्चा पहले की गई है, उसके दक्षिण में स्थित झील (टाल)-क्षेत्र समस्त बिहार में प्रसिद्ध है। मोकामा की इस झील में दक्षिण बिहार की फल्गु, पैमार, धाधर, तिलैया, धनर्जे, खुरी, सकरी, सेवी (सोएवा), टाटी, रतेया, कौड़िहारी, बघेल, नाटा, सोम आदि नदियों का पर्वतीय जल, गया-पटना जिले की लाखों एकड़ भूमि को सिंचित करता हुआ पहुँचता है। वर्षा ऋतु में यह झील पटना जिले के मोकामा से मुँगेर जिले के 'बड़हिया' तक के दक्षिणी भू-भाग को समुद्र के रूप में परिणत कर देती है। इस झील में हजारीबाग तथा गया जिले के लगभग १०० मील लम्बे पहाड़ी क्षेत्र का वर्षाकालीन जल आकर भरता है। यह जल-भांडार झील से 'हरोहर' नदी का रूप ग्रहण कर मुँगेर जिले के सूर्यगढ़ा नामक ऐतिहासिक ग्राम के क्षेत्र में किऊल नदी से संगम करता है। फिर, किऊल नदी इस भारी जल-भांडार को ग्रहण कर सूर्यगढ़ा के पास अपार जल-समूह गंगा नदी में उड़ेल देती है।

प्राचीन काल में गया तथा हजारीबाग की उक्त नदियों का जल 'किऊल' नदी में नहीं पहुँचता था; बल्कि 'मोकामा' के पास ही गंगा के गर्भ में प्रवेश कर जाता था।

मोकामा की झील इतनी बड़ी थी कि इसके मुहाने की धारा में हाथी भी वह जाते थे, इसीलिए मुहाने पर के गाँव का नाम 'हथिदह' है। पूर्वी रेलवे-लाइन के बिछाने के लिए जब इस झील में रेल-लाइन का बाँध बाँधा गया, तब इसका पानी पूरे तौर पर हरोहर होकर बहने लगा। मोकामा की झील के गंगा से संगम होने के कारण ही प्राचीन काल में यहाँ अंग तथा मगध की सीमा लगती थी। रेलवे-लाइन बनने के पहले मुस्लिम-शासनकाल में इस झील से आठ नहरें निकाली गई थीं, जिनसे झील का पानी गंगा में बहाया जाता था। सम्राट् बिंबिसार के समय मगध और अंगराज्यों की सेनाओं का युद्ध इसी सीमा-क्षेत्र में हुआ था। अपनी भारी पराजय के कारण ही अंगराज ने इसी झील की नहर में डूबकर आत्महत्या कर ली, जिससे अंग की स्वाधीनता सदा के लिए समाप्त हो गई।

मुंगेर जिले में :

'मोकामा' और 'हथिदह' ग्रामों को प्रक्षालित करने के बाद अमृतवाहिनी गंगा, पटना जिले की सीमा को छोड़ता मुंगेर की भूमि में प्रवेश करती है और मौजें मारती जैतपुर, सिहिया बरारी, सैदपुर आदि गाँवों को निहारती सूर्यगढ़ा से जा टकराती है। ये सभी गाँव गंगा की हिमालयीय मिट्टी की देन हैं, जिनके कण-कण में देवत्व की महिमा भरी है। इस क्षेत्र के जन-जन के तन-मन में शक्ति की बिजली प्रवाहित है और खेत की परतों पर ऋद्धि-सिद्धियाँ भरी और बिखरी हुई हैं। बिहार में मुंगेर एक ऐसा जिला है, जो गंगा के दोनों भागों में फैला हुआ है और गंगा नदी जिले के मध्य भाग से मेरुदंड की तरह तनकर प्रवाहित है।

मुंगेर जिले में प्रवेश कर 'सूर्यगढ़ा' तक गुजरनेवाली गंगा आजकल उपर्युक्त गाँवों से कहीं सटकर और कहीं हटकर अपना प्रवाह-पथ बनाती है। किंतु, इसकी पुरानी और दूसरी धारा 'हथिदह' के बाद ही सीधे अग्निकोण में दौड़ती हुई 'बड़हिया' ग्राम तक आती है। बड़हिया के बाद खुटहा, गंगासागर, मालपुर, रजौना आदि गाँवों के उत्तर-उत्तर ही 'सूर्यगढ़ा' पहुँच जाती है। यही प्रवाह-मार्ग गंगा का प्राचीन पथ है, जो अवशेष के रूप में आज भी वर्षा ऋतु में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार, यहाँ गंगा की दो धाराएँ—आकाशगंगा और मंदाकिनी की तरह अथवा सावित्री और गायत्री की तरह सूर्यगढ़ा पहुँचकर एकीभूत हो जाती हैं। इसलिए, सूर्यगढ़ा की गंगा के प्रवाह में सूर्य-रश्मियों के संपूर्ण तत्त्व और गुण मिल सकते हैं। इन दोनों पवित्र धाराओं के मध्य का दियारा-क्षेत्र सप्तर्षि-मंडल से चूकर गंगा में गिर जानेवाला स्वर्ग-खंड-सा पुण्य-क्षेत्र है। इस गंग-बरार में जो गाँव बसे हैं, वे बरसात के जल-प्रलय में 'वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम्' की तरह नौकाओं में तिरते-फिरते हैं। ये सभी गाँव न तो गंगा के तट पर हैं या न दियारे में; बल्कि गंगा की लहरों पर डोलते-फिरते हैं।

व्योमकेशप्रिया त्रिभुवनमाता गंगा के गर्भ में आजतक कितने गाँव विलीन हुए, उसकी वात्सल्य-भरी गोद में कितने गाँव आबाद हुए, उसने अपने मायके हिमालय-प्रदेश से

कितनी मिट्टी और कितना अमृतरस बहाकर पृथ्वी के आँचल में ला उड़ेला, सप्तर्षि-मंडल और अंतरिक्ष के आँगन से कितना अमृतरस आयत्त किया, कितनी भगिनी नदियों का पानी पिया एवं कितना जल और कितना ओषधिरस अपनी ससुराल वरुण-वेश्म में ले जाकर भरा, इसका हिसाब न तो उस बूढ़े चित्रगुप्त के पास है या न स्वयं सरस्वती ही इसका लेखा-जोखा प्रस्तुत कर सकती हैं। ऐसी त्रैलोक्यतारिणी एवं समस्तसृष्टि-पोषिणी माता गंगा की दाहिनी धारा (छाड़न) के किनारे बिहार-प्रदेश का प्रसिद्ध ग्राम 'बड़हिया' बसा हुआ है। इसी 'बड़हिया' के पार्श्व में 'इंदुपुर' गाँव स्थित है। आज ये दोनों गाँव इस प्रकार हिल-मिल गये हैं कि दोनों का अलग-अलग अस्तित्व बतलाना कठिन है। यह 'बड़हिया' विभिन्न प्रकार के अन्न, तंबाकू, सरसों तथा मिरचाई की बड़ी मंडी है, जहाँ व्यापार करने के लिए राजस्थान-प्रदेश से आकर अनेक मारवाड़ी-बन्धु बस गये हैं।

लोगों का कहना है कि 'बड़हिया' में पहले 'बढ़ई' जाति के लोगों की प्रधानता थी, इसीलिए इसका नाम 'बढ़ई' या बड़हिया' पड़ा। मुस्लिम-शासनकाल में यहाँ भूमिहार ब्राह्मण गंगा के उत्तरी क्षेत्र से आकर बसे। अँगरेजी-शासनकाल में 'वारेन हेस्टिंग्स' अक्सर 'बड़हिया' में अपना पड़ाव डालता था। कहा जाता है कि 'वारेन हेस्टिंग्स' की कोई प्रेमिका 'बड़हिया' में रहती थी, जिससे इस ग्राम पर उसकी विशेष कृपा थी। उसी काल में 'वारेन हेस्टिंग्स' की कृपा से 'बड़हिया' का विकास हुआ था। आजकल तो 'बड़हिया' के सभी ऊँचे व्यापारी मारवाड़ी जाति के हैं। बड़हिया का 'भवानी-स्थान' प्रसिद्ध देवी-स्थान है। प्रखर समाजवादी नेता श्रीकपिलदेव सिंह इसी 'बड़हिया' के निवासी हैं।

'बड़हिया' से आरंभ करके 'सूर्यगढ़ा' तक का गंगा-किनारा बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक क्षेत्र है। इस क्षेत्र में यदि उचित अन्वेषण तथा अनुसंधान का कार्य हो, तो भारतीय इतिहास में कुछ नये पन्ने जुड़ जायँ। इस क्षेत्र के प्रतापपुर, गंगासागर, बालगूदर, रजौना, लखीसराय, जयपुर, रामचंद्रपुर, सूर्यगढ़ा आदि प्राचीन तथा ऐतिहासिक गाँव हैं। यहाँ का संपूर्ण क्षेत्र गुप्त-सम्राटों तथा पाल-राजाओं के शासनकाल में 'श्रीनगर-भुक्ति' (पाटलिपुत्र) के 'क्रिमिला'-विषय (जिले) में पड़ता था[१] और बौद्ध-धर्म का मुख्य क्षेत्र था। इस क्षेत्र में अनेक बौद्ध मूर्त्तियाँ तथा पालकालीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं। डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार ने अपनी 'स्टडीज इन द ज्योग्रफी ऑव एँशियेंट ऐंड मेडियेवल इंडिया'[२] नामक पुस्तक में 'बालगूदर' गाँव को ही 'क्रिमिला' कहा है। किंतु, क्रिमिला कभी 'बालगूदर' नहीं हो सकता, वह तो 'किऊल' नामक गाँव ही है। लखीसराय का ही दक्षिणी हिस्सा 'किऊल' है, जिसे अन्य स्थान के लोग नहीं जानते हैं। जिस प्रकार डॉ० सरकार को 'बालगूदर' के जमींदारों के यहाँ प्राप्त मूर्त्तियों पर 'क्रिमिला'-

१. देवपाल का मुंगेर-ताम्रपत्र, जो पाल-शासनवर्ष ३३ में लिखा गया :
"....श्रीनगरभुक्तौ क्रिमिलाविषयान्तःपातिस्वसम्बन्धविच्छिन्नतलोपेतमेषिकग्रामे समुपगतान् सर्वान् .... ।"

२. प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, बाराणसी।

विषय के अभिलेख प्राप्त हुए हैं, उसी प्रकार लखीसराय में भी (मुंगेर के देवपालवाले अभिलेख में भी) 'क्रिमिलाविषय'-उल्लिखित अभिलेख मिले हैं।[१] बालगूदरवाली मूर्त्तियाँ अन्य स्थानों से लाई गई भी हो सकती हैं अथवा स्वयं 'बालगूदर' क्रिमिला-विषय के भीतर था, अतः स्वभावतः वहाँ की मूर्त्तियों पर 'क्रिमिला'-विषय का उल्लेख होना स्वाभाविक है। इससे यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि 'बालगूदर' स्थान ही 'क्रिमिला है।

'किऊल' गाँव क्रिमिला है, यह तो नाम से ही सिद्ध है। इस स्थान का 'क्रिमिला' नाम पड़ने का सबसे बड़ा कारण था कि यह 'कृमिकाला'[२] नदी के तट पर था, जिसे पुराणों में 'कृमि'[३] तथा 'क्रतु'[४] कहा गया है। इसी कृमिकाला, कृमि अथवा क्रतु का नाम आज 'किऊल' नदी है। 'कृमि' के तट पर बसने के कारण नगर का नाम 'क्रिमिला' पड़ा और कृमि नदी जब 'किऊल' कहलाने लगी, तब 'क्रिमिला' नगर का नाम भी 'किऊल' हो गया। रात्रिकाल में आज जब 'लखीसराय' तथा 'किऊल' में बिजली के बल्वों का प्रकाश जगमगाता है, तब किऊल नदी के पूर्वी तट से या नदी के ऊपर बने रेलवे-पुल से पश्चिम दिशा में दृष्टिपात करने पर गंगा-तटस्थ 'काशी' का पावन दृश्य आँखों के सामने लहराने लगता है। काशी में जिस प्रकार गंगा दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है, उसी प्रकार यहाँ 'किऊल' नदी दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित है। 'ब्रह्माण्डपुराण' के अनुसार तो 'क्रिमिला' नगर को 'कृमि' राजा ने बसाया था, जिससे इसका नाम 'क्रिमिला' पड़ा। कृमि ऐलवंशी 'उशीनर' का पुत्र था, जो 'कृमी' नामक रानी से उत्पन्न हुआ था। उशीनर की पाँच पत्नियाँ थीं, जिनका नाम 'नृगा', 'कृमि', 'नवा', 'दर्वा' तथा दृषद्वती था। माता के नाम पर ही पुत्र का नाम 'कृमि' रखा गया था। इसी 'कृमि' ने 'क्रिमिला' नगर को बसाया और इस प्रदेश का शासक बना।[५] उशीनर की उक्त पाँचों पत्नियों में

१ 'क्रिमिलाविषये कबालग्रामे विषयमहत्तमा नरस्वामिनः।'
—नालन्दा-म्युजियम की मृत्तिका-मुद्रा।

२. उदान (मेघियवग्ग), ४, १ तथा 'अंगुत्तरनिकाय' (आनन्दचरित), १।४।१।

३. ब्रह्माण्डपुराण, उपोद्घातपाद ३, अध्याय ७४, श्लोक १८ से २१।

४. सनेरुआ शुक्तिमिती मङ्कुती त्रिदिवा क्रतुः।
- ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वभाग, अनुषंगपाद, १६।३१।

५. उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ।।१७।।
नृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी तु दृषद्वती।
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ।।१८।।
तपस्यतः सुमहतो जाता वृद्धस्य धार्मिकाः।
नृगायास्तु नृगः पुत्रो नवाया नव एव तु ।।१९।।
कृम्याः कृमिस्तु दर्वायाः सुव्रतो नाम धार्मिकः।
दृषद्वतीसुतश्चापि शिबिरौशीनरो द्विजाः।।२०।।
शिबेः शिबपुरं ख्यातं यौधेयं तु नृगस्य च।
नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिलापुरी।।२१।।
—ब्रह्माण्डपुराण, उपोद्घातपाद ३, अध्याय ७४, श्लो० १७ से २१

क्रमि और दृषद्वती ये दो नदियाँ हैं। इससे स्पष्ट है कि इनके तटों पर ऐलवंशियों ने प्रथम-प्रथम राज्य स्थापित किया और ये नदियाँ उशीनर की पत्नी-रूप में तथा उसके पुत्रों के लिए माता-रूप में मानी गईं। अतः, 'किऊल' का क्षेत्र भारत के प्राचीन-से-प्राचीनतम जनपदों में एक है। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही सुसंस्कृत क्षेत्र था, इसीलिए भगवान् बुद्ध ने इस भूमि के चप्पे-चप्पे में भ्रमण किया था।

मुस्लिम-शासनकाल की बनी मकदुमशाह की दरगाह लखीसराय में ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ बंगाल के सुलतान रुकनुद्दीन का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ था, जो सन् १२९७ ई० में लिखा गया था। फिर, सन् १७६० ई० में अँगरेजी-सेना के 'मेजर कैलोड' तथा मीरजाफर के पुत्र 'मीरन' ने अवध के नवाब 'शाह आलम' को जब लखीसराय में घेरा, तब 'शाह आलम' यहाँ से 'किऊल' नदी का ही किनारा पकड़कर मलेपुर, बतिया, चकाई, देवघर आदि स्थानों से होता बंगाल की ओर सरक गया था। आज की स्थिति में लखीसराय का 'बालिका-विद्यालय' एक उत्तम शिक्षा-संस्थान है। लखीसराय के आधुनिक व्यापार-मंडल पर मारवाड़ी-जाति का ही ऐकाधिपत्य है।

किऊल और लखीसराय के पश्चिम में 'हरोहर' और 'किऊल' नदियों के प्रवाह के मध्य में तथा पटना-मुंगेर-मार्ग के सटे दक्षिण में 'रजौना' गाँव है। कहा जाता है कि पालवंश के अंतिम राजा 'इंद्रद्युम्न' की राजधानी यहाँ थी। इंद्रद्युम्न की पटरानी गढ़ की पुष्करिणी में स्वर्णकमल के पत्ते पर बैठकर नित्य स्नान करती थी और कमल-पत्र रानी का भार वहन ही नहीं करता था, बल्कि शिला-फलक की तरह निश्चल एवं स्थिर रहता था।[1] एक दिन रानी के आरूढ होते ही कमल-पत्र हिल उठा। रानी ने राजा से निवेदन किया कि राज्य पर विपत्ति आनेवाली है, अतः इस नगर को छोड़कर अन्यत्र चलना चाहिए। कहते हैं, राजा 'इंद्रद्युम्न' रजौना से राजधानी हटाकर मुंगेर जिले के दक्षिणी भाग में ले गया, और वहाँ अपने निवास-स्थान का नाम 'इंद्रपुर' रखा, जो आज 'इंदपै' नाम से प्रसिद्ध है। यह किवदंती बतलाती है कि इख्तियारुद्दीन खिलजी के आक्रमण की बात सुनकर 'इंद्रद्युम्न' रजौना से भागा और फिर 'इंदपै' जाकर बसा। इख्तियार ने ही सन् १२०० ई० में रजौना को तहस-नहस किया और यहाँ के मंदिरों को ध्वस्त किया। रजौना में अशोककालीन भग्न स्तूप का अवशेष आज भी प्राप्त है। यहाँ से बौद्धधर्म की अनेक मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ से प्राप्त गुप्तकालीन स्तंभावशेष कलकत्ता-संग्रहालय में सुरक्षित है।[2] भग्न स्तंभ पर अर्जुन के तप, शंकर द्वारा अपने जटाजूट में गंगा का धारण आदि दृश्य उत्कीर्ण हैं। गणेश के साथ कार्त्तिकेय की मूर्त्ति भी उकेरी

---

१. यदि इस किंबदंती में कुछ तथ्य है, तब तो यही कहना पड़ता है कि रानी के स्नान के लिए कमलपत्र के आकार की स्वर्ण-चौकी बनी थी।

२. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑब इंडिया, सन् १९११-१२ ई०, पृ० १६१।

गई है। सातवीं शती में चीनी यात्री ह्वेनत्सांग 'हिरण्यपर्वत' की बुद्ध-मूर्त्ति के गले में माल्यार्पण करके 'रजौना' को भी देखने आया था। यहाँ हिंदू-मंदिरों के भी अवशेष बहुत हैं, अतः पाल-काल में रजौना का एक विशिष्ट स्थान था, जिसका गौरव उस काल से बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था। रजौना पुरातत्त्वविदों के अध्ययन-उत्खनन के लिए एक उपयुक्त स्थान है।

यह पहले कहा गया है कि बड़हिया से सूर्यगढ़ा तक गंगा दो भागों में बँटकर अपने बीच भाग में एक बृहत् दियारा-क्षेत्र बनाती है। इनमें से दाहिनी और दक्षिणी धारा प्राचीन धारा है, जिसके किनारे 'बड़हिया' बसा हुआ है। यह धारा अब बाढ़ के समय में ही दृष्टिगोचर होती है. अन्य दिनों में प्रायः सूखी रहती है। गंगा की मुख्य धारा आज बहुत दूर उत्तर जाकर पूर्व की ओर बहती है। इन दोनों धाराओं के मध्यभाग के गंग-बरार में जैतपुर, सिहिया-बरारी, पथुआ, सैदपुर आदि गाँव बसे हैं, जहाँ की जमीन में गंगानदी सोना उगलती है।

इस प्रकार, 'पुंडारक' से ही पूर्व-दक्षिण कोण में चलती हुई पापौघहारिणी माँ गंगा 'सूर्यगढ़ा' पहुँचती है। यह लखीसराय से लगभग १० मील उत्तर-पूर्व कोण में गंगा के दाहिने किनारे 'किऊल नदी' के संगम पर बसा है। वर्त्तमान समय में गंगा की धारा यहाँ से उत्तर की ओर दूर चली गई है; किंतु वर्षाकाल में गंगा अपने इस पूर्व परिचित नगर को नहीं भूलती है। सावन में जब सूर्यगढ़ा तक गंगा का पानी फैल जाता है, तब यहाँ नर-नारियों का एक बड़ा मेला कई दिनों तक लगता है। सूर्यगढ़ा के अति प्राचीन इतिहास का विशेष पता तो नहीं चलता; पर इतना तो अवश्य ज्ञात है कि यहाँ पहले कोई शिवतीर्थ था। किंतु, मुंगेर के गजेटियर में उल्लेख मिलता है कि परवर्त्ती काल में यहाँ 'सूर्यमल' नामक किसी राजा ने अपना निवास स्थिर किया था, जिससे इसका नाम 'सूर्य-पुर' पड़ा और यही 'सूर्यपुर' पीछे चलकर 'सूर्यगढ़ा' बना। यहाँ प्राचीन काल की बहुत-सी मूर्त्तियाँ आदि अवशेष भी मिले थे। आज भी सूर्यगढ़ा का 'शिवमंदिर' बहुत ही प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र माना जाता है और शिवरात्रि के अवसर पर तथा श्रावण मास में तीर्थिकों का भारी जमघट होता है।

सूर्यगढ़ा का पौराणिक और ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए भी निश्चित है कि यह 'किऊल' नदी के संगम पर बसा है। गंगा में जहाँ-जहाँ नदियों का संगम-क्षेत्र है, वहाँ-वहाँ प्राचीन काल में तीर्थ-क्षेत्र रहा है। नदियों के संगम पर सर्वत्र अच्छे नगर या उपनगर बसे हुए थे तथा प्राचीन काल में अक्सर ऐसे ही संगमों पर युद्ध के मोर्चे कायम किये जाते थे और युद्ध भी होते थे। युद्ध के लिए जब भारतीय सेना किसी दिशा में प्रयाण करती थी, तब उनका पड़ाव निश्चय ही नदियों के संगम पर बसे उपनगरों के पास पड़ता था; क्योंकि ऐसे स्थानों में उन्हें सुरक्षा के साथ ही सारी सुविधाएँ भी मिलती थीं। सूर्यगढ़ा

में इस प्रकार के कई मोर्चे कायम किये गये थे और युद्ध भी हुये थे, जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे।

सूर्यगढ़ा में गंगा से संगम करनेवाली 'किऊल' नदी मुँगेर, हजारीबाग और गया जिले के पर्वतीय अंचल का भारी जलौघ समेटकर गंगा के गर्भ में प्रवेश करती है। यह पहले कहा गया है कि 'गया' नगर से आरंभ करके पूर्व दिशा में हजारीबाग जिले के 'तिसरी' स्थान तक के पार्वत्य-प्रदेश का जल 'हरोहर' नदी आत्मसात् करती है और तब यह 'रजौना' के पास अपना सारा जल-भांडार 'किऊल' में डालती है। उधर 'किऊल' नदी स्वयं उक्त 'तिसरी' के पूर्व भाग की पर्वत-शृंखला के उत्तरी ढलान, जो 'चकाई' स्थान तक फैला हुआ है, का बेशुमार जल समेटती हुई तथा इनके अतिरिक्त मुँगेर जिले की बुनबुनी, बंदरवारी, बरनर, सुखनर. उइल, अंजन, नकटी, मोरवे आदि नदियों के जल-समूह को भी उदरस्थ करती हुई 'रजौना' पहुँचती है और तब 'हरोहर' को लेकर सूर्यगढ़ा के पास गंगा की गोद भरती है। यह भी पहले कहा गया है कि 'किऊल' का ही नाम 'क्रृमिकाला' 'क्रृमि' अथवा 'ऋतु' है। इसी क्रृमिकाला के पास के 'चालिय' नामक पर्वत पर भगवान् बुद्ध ने अपने तीन वर्षावास किये थे। सूर्यगढ़ा में 'किऊल' का संगम गंगा के प्रवाह को अपने प्रबल वेग से ठेलकर बिलकुल उत्तर की ओर घुमा देता है तथा गंगा की धारा को उत्तर की ओर दौड़ने के लिए मुँगेर-नगर तक बाध्य कर देता है। इसी सूर्यगढ़ा से गंगा उत्तरवाहिनी बनती है, जिससे इस स्थान का धार्मिक महत्त्व बढ़ जाता है।

अपने भौगोलिक वैशिष्ट्य के कारण यह 'सूर्यगढ़ा' भी इतिहास में अपने कुछ पृष्ठ जोड़ता है। सन् १५३४ ई० में शेरशाह की अनबन जब बंगाल के नवाब महमूदशाह से हुई, तब महमूद ने शेरशाह को सबक सिखाने के लिए इसी 'सूर्यगढ़ा' में आ घेरा। महमूदशाह, नसरतशाह के राज्य का उत्तराधिकारी था। नसरतशाह वही है, जिसकी सेना की टक्कर सरयू नदी के किनारे, माँझी के पास, बाबर से हुई थी। नसरत की सेना का संचालन मखदूम-ए-आलम कर रहा था। उसी नसरतशाह के नाबालिग लड़के को मारकर महमूद गौड का नवाब बन बैठा था। यह दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी का भाई था। किंतु सूर्यगढ़ा की इस मुठभेड़ में शेरशाह ने महमूद की बंगाली सेना का सुथना सरका दिया था। इसके बाद फिर सन् १५५७ ई० में सूर्यगढ़ा से चार मील पश्चिम, गंगा के किनारे, फतहपुर गाँव के पास मियाँ सुलेमान कर्रानी और शेरशाह के भतीजे आदिलशाह के बीच एक बहुत बड़ा युद्ध हुआ था। मियाँ सुलेमान कर्रानी, शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह (जलाल खाँ) द्वारा नियुक्त मुँगेर का सूबेदार था, जो मुँगेर के किले में ही रहता था। इस्लामशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके रोते-चिल्लाते छोटे-से बच्चे (शेरशाह के पौत्र) को धाई की गोद से छीनकर और उसे तलवार के घाट उतारकर आदिलशाह (शेरशाह का भतीजा) स्वयं बादशाह बन बैठा था, जबकि वही उसका रक्षक था। इसी समय उधर बंगाल में बगावत फैल गई थी, जिसे सर करने आदिलशाह गया था। वहाँ

उसे थोड़ी भी सफलता नहीं मिली, वल्कि उसे मुँह की खानी पड़ी, अतः अपनी बची सेना के साथ विहार को लौट पड़ा। लौटते समय वह इसी 'सूर्यगढ़ा' में जब पहुँचा, तब, इस्लामशाह के खैरख्वाह सूबेदार सुलेमान कर्रानी मुँगेर के किले से निकला और लपककर उसने 'फतहपुर' में उसे (आदिलशाह को) जा घेरा। थोड़ी देर के युद्ध के बाद ही कर्रानी ने स्वयं आदिलशाह को मार डाला और अपने स्वामी के रक्त का बदला पूरी तरह चुका दिया। इसी सुलेमान कर्रानी के द्वितीय पुत्र का नाम दाउद खाँ था, जो जीवन-भर अकबर के शासन से युद्धरत रहा।

यह पहले कहा गया है कि 'हरोहर' और 'किऊल' के सम्मिलित प्रवाह-वेग से गंगा नदी सूर्यगढ़ा से ही उत्तरवाहिनी हो जाती है और मुँगेर नगर तक उत्तरवाहिनी होकर ही बहती है। इस उत्तरवाहिनी गंगा की धारा का पुराणों में बहुत बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। गंगा नदी चुनार से गोमती-संगम तक उत्तरवाहिनी है, जिसके मध्य गंगातट पर शिवपुरी 'काशी' नगरी है। फिर, इसी सूर्यगढ़ा से मुँगेर नगर तक उत्तर-वाहिनी होती है। इसके पश्चात् कुछ थोड़ी दूर के लिए सुलतानगंज में तथा आगे 'कहलगाँव' से कोशी-संगम तक गंगा उत्तरवाहिनी होकर बहती है। इसलिए, सूर्यगढ़ा और मुँगेर की गंगा बड़ी ही पुण्यवती मानी गई है। सूर्यगढ़ा में खड़ा होकर साक्षात् आँखों से देखा जा सकता है कि यहाँ की गंगा कितनी विशाल और कितनी महिमामयी है। यहाँ की गंगा अपने दर्शकों को अपनी गरिमा से भाव-विभोर कर कल्पना-लोक में ले जाती है और थोड़ी देर के लिए विस्मय-विमुग्ध कर देती है।

'सूर्यगढ़ा' से आगे बढ़ती हुई सुरसरि गंगा अपने भारी जलौघ और रेतीले मैदान के साथ मुँगेर के किले के पास पहुँचते-पहुँचते प्रसिद्ध ऐतिहासिक 'डकरा नाला' को अपने गर्भ में समेटती है। 'डकरा नाला' अपने मूल स्रोत 'दूधपनियन' नदी और 'मोरवे' नदी के उद्गम-स्रोत के उत्तरी भाग से उत्तर दिशा में ही ढलता है। यह स्रोत 'धरहरा'-अंचल और सूर्यगढ़ा-अंचल की दक्षिणी सीमा-संधि से, इन दोनों अंचलों की सीमा-रेखा बनता, उत्तर में चलता है और 'अमरसोनी' पहुँचता है। इस स्रोत के दाहिने भाग में धरहरा-अंचल का ग्राम 'अमरसोनी' है, जिसके बायें भाग में सूर्यगढ़ा की पर्वतीय ग्राम 'चोरा' है। यहाँ से पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर 'खजुरिया' आता है और यहाँ से पश्चिमोत्तर कोण में दौड़कर 'अभयपुर' से 'धरहरा' जानेवाली सड़क को पारकर तुरत 'गोविंदपुर' के पास जमालपुर जानेवाली रेल-लाइन को भी पार कर जाता है। गोविंदपुर गाँव 'धरहरा' स्टेशन से पश्चिम में है और यहीं इस स्रोत के बायें भाग में सूर्यगढ़ा-अंचल का ग्राम 'बसौनी' वर्त्तमान है। इसके बाद 'डकरा नाला-स्रोत' मनगढ़ के पश्चिम में पहुँचकर विस्तृत झील-क्षेत्र में पूरब की ओर रवाना हो जाता है। 'धरहरा' के उत्तर में इस झील का दृश्य वर्षा ऋतु में देखने योग्य होता है। इसी झील-क्षेत्र में, पूर्वोत्तर

कोण में बढ़ता 'डकरा नाला' चार मील चलकर उत्तर दिशा में मुड़ता है और जमालपुर-अंचल की भूमि में प्रवेश करता है, जिसके बायें भाग में 'पढ़म' तथा दाहिने भाग में 'इंदरुख' नामक गाँव हैं। इंदरुख से डकरा नाला सीधे उत्तर में चलता है और मुँगेर नगर के पश्चिमी भाग में मुँगेर-पटना-सड़क को पार करके गंगा की गोद में गिर जाता है। इसी डकरा नाला पर कई ऐतिहासिक युद्ध हुए हैं, जिनका विवरण आगे दिया जायगा। इसके पश्चात् गंगा नदी पश्चिम से मुँगेर नगर को घेरती 'मुँगेर किले' की दीवार से जा टकराती है। मुँगेर किले के दक्षिण-पश्चिम वाले कोने पर स्थित प्राचीन बुर्ज पर खड़े होकर जब हम कभी विस्तृत और दूर तक बिछे रेतीले पुलिन-पटल को देखते हैं; तब लगता है कि पूर्व से पश्चिम की ओर जानेवाला सूर्य अपने रथ को हाँककर इसी मार्ग से ले जाता है। इस मार्ग पर मानों ग्रहों और असंख्य तारिकाओं को चूर-चूर करके देवताओं ने उनके चूरे बिछा दिये हैं तथा इनपर सूर्य-रश्मियों का गाढ़ा पिच भी चढ़ा दिया गया है। फिर, जब वर्षा ऋतु में हम उसी बुर्ज के ऊपर से गंगा के उमड़ते, उबलते और दौड़ते पांडुरित खरधार जलौघ को देखते हैं, तब लगता है—यहाँ समुद्र-मंथन हो रहा है और देवासुर-संग्राम के लिए देवताओं की अपार धारा-सेना जयकार करती और तट-प्रदेशों में ऊधम मचाती गंगा-मार्ग द्वारा उमड़ती आ रही है। सचमुच देव-सेनाओं का मार्ग यही गंगा-मार्ग है, जिसके द्वारा भगीरथ ने अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाया था।

'नारदीयपुराण' से पता चलता है कि मुँगेर कभी 'चंपकतीर्थ' के नाम से ख्यात था, जिसका माहात्म्य काशी के मणिकर्णिका घाट के समान पापनाशक था।[1] किंतु, 'महाभारत' के वनपर्व (८४।१३३) से ज्ञात होता है कि मुँगेर के सामने गंगा के पार एक बड़ा भारी जंगल था, जिसका विस्तार 'नेपाल' तक था। यह क्षेत्र 'चंपकारण्य' क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध था। 'शक्तिसंगमतंत्र' ने जिस 'विदेहभूमि' और 'तीरभुक्ति' की सीमा का निर्धारण किया था। इससे पता चलता है कि विदेहभूमि की सीमा पश्चिम में गंडकी-तट से पूरब में चंपारण्य-क्षेत्र के अंत तक थी।[2] 'शक्तिसंगमतंत्र' के इस 'चंपारण्य' का अर्थ आधुनिक चंपारन जिले की सीमा नहीं, बल्कि मुँगेर के सामने गंगा के पार, जहाँ कमला-बलान और कोशी का संगम है, नेपाल तक का क्षेत्र था। सच पूछा जाय, तो पूर्व में 'विदेहभूमि' की सीमा बराबर कोशी का तट रही है। कोशी जब-जब पूर्व की ओर बढ़ी, विदेह की सीमा विस्तृत होती गई और जब-जब पश्चिम की ओर आई, विदेह की सीमा सिकुड़ती गई है। यह सर्वविदित है कि मुँगेर प्राचीन 'चंपा'-राज्य में था और इसके सामने गंगा के उस पार की भूमि भी चंपा-राज्य के

---

१. चम्पकाख्यं पुण्यतीर्थं यद्गङ्गोत्तरवाहिनी।
मणिकर्णिकया तुल्यं महापातकनाशनम्॥ नारदीयमहापुराण, उत्तर खंड, ४१।४३।

२. गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यान्तकं शिवे।
विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्त्यभिधः स तु॥—शक्तिसंगमतंत्र, भाग ३,७।२७।

अधीन थी। यह भी ज्ञात है कि चंपाराज्य 'अंग'-देश कहलाता था। गंगा के उत्तर भाग की भूमि अंगराज्य के अधीन होने के कारण ही 'अंगुत्तराप' कहलाती थी। मगध-सम्राट् बिंबिसार ने जब अंगराज्य को जीत लिया, तब उसके अधीन 'अंगुत्तराप' भी आ गया था।[१] अतः, चंपा-राज्य में मुँगेर के होने के कारण यह 'चंपकतीर्थ' कहलाता था। चंपा का साम्राज्य नेपाल के चांगु नारायण महादेव (भातगाँव) तक था।

गंगातट का यह मुँगेर और नारदीयपुराण का चंपकतीर्थ भारत के अति प्राचीन नगरों में एक है। 'महाभारत' के सभापर्व (अध्या० ३०।३१) से ज्ञात होता है कि उस समय इसका नाम 'मोदागिरि' था और भीम ने पूर्व देशों के दिग्विजय-क्रम में इसे जीता था। इस 'मोदागिरि' का दूसरा नाम 'मुद्‌गगिरि' भी मिलता है। 'आनंद-रामायण' के यात्राकांड (अध्या० ७, श्लोक १२५) में मुँगेर को मुद्‌गल ऋषि का नवीन आश्रम कहा गया है, जो ऋषि प्राचीन सरयू-गंगा-संगम से यहाँ आये थे। उसमें आधुनिक 'सीताकुंड' को सीतातीर्थ कहा गया है। किंतु अकबर-कालीन 'आनंद-रामायण' का इतिहास किंवदंतियों का ही इतिहास कहा जाना चाहिए। मुँगेर-किले के 'कष्टहरणी घाट' की एक शिला पर उत्कीर्ण 'गुप्तगढ़' शब्द से पता चलता है कि कभी यह 'गुप्तगढ़' भी कहलाता था। कुछ लोग इस नाम का संबंध मौर्य चन्द्रगुप्त तक ले जाते हैं; मेरा खयाल है कि यह 'गुप्तगढ़' मुँगेर नगर का नाम नहीं, बल्कि किले का नाम था। किले और महल के मार्ग बहुत ही गोपनीय थे, अतः किला 'गुप्तगढ़' कहलाता था। किंतु मुँगेर-किले के कंपनीबाग में रखी हुई काले पत्थर की 'घड़ियालमुखी प्रणाली' कला की दृष्टि से गुप्त-राजाओं के काल के प्रस्तर-शिल्प का साक्ष्य प्रदान करती है, जिससे प्रमाणित होता है कि यहाँ गुप्त-राजाओं का महल था, जिसकी अट्टालिका में यह प्रणाली लगी हुई थी। कुछ लोग इसे पालकालीन कहते हैं; पर इसके उत्तम एवं अलंकारमय शिल्प में गुप्तकालीन कलाएँ स्पष्ट हैं।

किंवदंती है कि मुँगेर के पूर्व भाग में स्थित 'पीर पहाड़ी' पर मुद्‌गल ऋषि का आश्रम था। किंतु, 'आनंदरामायण' में जिस 'मुद्‌गल ऋषि' की चर्चा है, उसका तात्पर्य 'मुगल ऋषि' अथवा 'मुगल-राजाओं के ऋषि' से है। यानी, 'मुद्‌गल ऋषि' 'पीर' शब्द का ही 'संस्कृत' रूप है। यह पहाड़ी किसी ज्वालामुखी की देन है, जहाँ आज भी गर्मजल के स्रोत हैं। इस पहाड़ी को भगवान् बुद्ध ने अपनी चरण-धूलि से पवित्र किया था। चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' भी इस पहाड़ी पर आया था, ऐसा मुँगेर-गजेटियर में लिखा गया है। इसके पड़ोस के 'सीताकुंड' में निरंतर तप्त जल उद्वेलित होता रहता है, जहाँ तीर्थयात्री स्नान के लिए आते हैं। काशी के स्वर्गीय राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिंद' ने कुंडों को पक्का बनवा दिया है और एक छोटी-सी धर्मशाला भी यात्रियों

---

१ मज्झिमनिकाय, २।१।१४ तथा 'सुत्तनिपात' (सेलसुत्त), ३३।

की सुविधा के लिए बनवा दी है। मुंगेर नगर के पूर्वी भाग में यह 'सीताकुंड' है, किंतु नगर के पश्चिम में स्थित 'डकरा नाला' पर शेरशाह की एक मुठभेड़ 'हुमायूँ' के साथ हुई थी। शाहशुजा ने भी इसी डकरा नाला पर एक बार अपनी तोपें लगवाई थीं। किंतु इस नाले पर मीरकासिम और अंगरजों की सेनाओं का बड़ा भारी युद्ध हुआ था, जिसकी अनेक पुरानी और टूटी-फूटी कब्रें आज भी दृष्टिगोचर होती हैं।

मुंगेर में गंगा की पुरानी धारा के तट पर ही वहाँ का प्राचीन तीर्थ 'चंडी-स्थान' है। यह पहले औंधी नादनुमा छोटी पहाड़ी की कंदरा में था। अब उसपर कुछ ही वर्ष पहले मंदिर बन गया है। यहाँ की देवी बड़ी ही तेजस्विनी एवं जाग्रत् मानी जाती है, जहाँ भक्तों की भीड़ बराबर लगी रहती है। कहा जाता है कि इस स्थान पर राजा 'कर्ण' प्रतिदिन सवा मन सोना प्राप्त करता था और ब्राह्मणों को दान में दे देता था। सोना प्राप्त करने के लिए वह उस प्रस्तरमय नाद के खौलते तेल में अपने को डाल देता था। उसके इस आत्मदाह से देवी प्रसन्न होती थीं और उसे नित्य सवा मन सोना देती थीं। यह भी किंवदन्ती है कि किला-क्षेत्र में 'कर्णचौरा' नामक जो स्थान है, वहीं बैठकर राजा कर्ण ब्राह्मणों को सोना दान करता था। पता नहीं, इन किंवदन्तियों का आधार क्या है और वह राजा 'कर्ण' कौन था; क्योंकि 'महाभारत' के राजा कर्ण की राजधानी तो 'चंपा' (आधुनिक भागलपुर) में थी और यह मुंगेर (मोदागिरि) चंपा का एक उपनगर था। महाभारत के सभापर्व में भीम के दिग्विजय-प्रसंग में चंपा और मोदागिरि को अलग-अलग बतलाया गया है। यद्यपि अंगदेश अपने अस्तित्व-काल से ही स्वतंत्र था, तथापि भगवान् बुद्ध के प्रव्रज्या-ग्रहण करने के कुछ पहले ही मगध-सम्राट् बिंबिसार के द्वारा ऐसा पराजित हुआ कि आजतक फिर कभी स्वतंत्र सत्ता में नहीं आ सका।

गंगा नदी की उत्ताल तरंगें मुंगेर के जिस किले के प्राचीर से प्रतिक्षण टकराती हैं, उस किले के प्राथमिक अस्तित्व का इतिहास आज दुर्लभ हो गया है। किले के नैऋत्य कोण से ईशान (पूर्वोत्तर) कोण तक साँप के केंचुल की तरह गंगा नदी की स्वच्छ निर्मल धारा किले के पादमूल को लपेटकर बहती है और झिलमिलाती चाँदनी रात में अपने धारा-दर्पण में प्रतिच्छायित करके उसकी शोभा में चार चाँद लगा देती है। किले के उत्तर, पूर्व और दक्षिण भाग में ऊँची चहारदीवारी खड़ी है, जिनमें उत्तर की चहारदीवारी बाद में बनाई गई है। गहरी और चौड़ी खाई चहारदीवारियों को घेरती है, जिनमें निरंतर गंगा का सफेद पानी भरा रहता था। अर्थात्, किले के चारों ओर के पादमूल को गंगा-जल सर्वदा पखारता रहता था। किले की बनावट ऐसी है कि गंगा नदी परिधान-सी लिपटकर वर्षा, शीत और ग्रीष्मकाल में, शिशु की तरह किले की सतत रक्षा करती रहती थी। किंतु, आज न तो वह किला है और न उसका रक्षक वह राजा है। बेचारी अकेली गंगा किले के 'कष्टहरणी घाट' पर अपना सर धुनती रहती है। किले में 'कष्टहरणीघाट' और 'बबुआघाट'—ये दो प्रसिद्ध घाट बड़े पुराने हैं और आज

भी गंगा-भक्तों की भीड़ इन घाटों पर जमती है। किले में तीन प्रवेश-द्वार—उत्तर भाग, पूर्व भाग और दक्षिण भाग में बने हैं। 'गरुडपुराण' में जहाँ यमपुरी का वर्णन है, वहाँ इन्हीं दिशाओं में प्रवेश-द्वार का उल्लेख मिलता है। वहाँ भी यमपुरी में पश्चिम से प्रवेश करने का कोई द्वार नहीं है। लगता है, गरुडपुराण के लेखक ने यमपुरी के वर्णन का आधार 'मुँगेर' के किले की बनावट देखकर ही ग्रहण किया है। आजकल इस किले में ही मुँगेर की सारी सरकारी कचहरियाँ, विश्रामागार, जंगल-विभाग का कार्यालय, जिला-जेल, शिक्षा-विभाग के कार्यालय, सरकार के ऊँचे अफसरों के निवास-भवन आदि स्थित हैं। मुँगेर का बंदूक बनानेवाला कारखाना, जिसका आरंभ मीरकासिम ने कराया था, इसी किले के क्षेत्र में वर्त्तमान है।

मुँगेर के किले का आद्य इतिहास कोई नहीं बतलाता; पर पालराजा 'धर्मपाल' के शासनकाल से तो इसका इतिहास क्रमबद्ध रूप में मिल ही जाता है। इसलिए, कई इतिहासकार इसे धर्मपाल-द्वारा स्थापित मानते हैं। धर्मपाल के पुत्र देवपाल के, सन् ८४३ ई० में लिखित और मुँगेर में प्राप्त, ताम्रपत्र से पता चलता है कि उसने मुद्‌गगिरि (मुँगेर) में एक बड़ा भारी विजयोत्सव मनाया था। उस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए गंगा-पार के अनेक राजा सदल-बल आये थे। उत्सव के दिन सेना-संचार के कारण मुँगेर का आकाश धूलि-पटल से आच्छादित हो गया था। उस विजयोत्सव के अवसर पर मुँगेर की गंगा में एक विशाल नौका-सेतु का निर्माण देवपाल ने कराया था, जिसे बाद में स्थायी कर दिया गया था। उस नौ-सेतु से गंगोत्तर भाग के लाखों नर-नारी विजयोत्सव देखने मुँगेर आये थे।[१] इस बात की पुष्टि देवपाल के नालंदा-ताम्रपत्र (सन् ८४९ ई०) से और फिर नारायणपाल के भागलपुर-ताम्रपत्र (सन् ८७१ ई०) से भी होती है। ये सारे ताम्रपत्र मुँगेर के स्कंधावार (किले) से ही जारी किये गये थे। इससे प्रमाणित होता है कि पाल-राजाओं का मुख्य राजमहल यही मुँगेर का किला था। इसी पालवंश का अंतिम टिमटिमाता राजा इंद्रद्युम्न था, जिसका गढ़ मुँगेर जिले के ही 'रजौना' में था। जैसा पहले कहा गया, इसी इंद्रद्युम्न ने पीछे चलकर 'इंदपै' में अपना निवास बनाया था। मुँगेर का गंगातटीय किला पाल-राजाओं का मुख्य निवास तो था ही, शेरशाह के समय में इसकी रौनक बढ़ी थी। 'मीरकासिम' का तो यह सर्वस्व ही था।

१. "...स (देवपालः) खलु भागीरथी-पथप्रवर्त्तमाननानाविधनौ-वाटकसम्पादितसेतुबन्धनिहित-शैलशिखरश्रेणीविभ्रमानिरतिशयघनघनाघनघटाश्यामायमानवासरलक्ष्मीसमारब्धसन्ततजलद-समयसन्देहात्, उदीचानाकनरपतिप्राभृतीकृताप्रमेयहयवाहिनीखरखुरोत्खातधूलिधूसरित-दिगन्तरालात्, परमेश्वरसेवासमायाताशेषजम्बूद्वीपभूपालपादात् भरनमदवनेः श्रीमुद्‌गगिरि समावासितश्रीमज्जयस्कन्धावारात् परमसौगतपरमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीधर्म-पालदेवपादानुध्यातः परमसौगतः परमेश्वरपरमभट्टारको महाराजाधिराजः श्रीमान् देवपालदेव-कुशली ..।"

—सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शन्स ऑव बिहार : सम्पा० राधाकृष्ण चौधरी, पृ० ३६।

भारत में मुगल-राज्य की जड़ स्थिर करनेवाले व्यक्ति का नाम खानखाना यूसुफ खैल था, जो हुमायूँ का पुराना और अतिशय विश्वासी सेना सरदार भी था। 'यूसुफ खैल' इसी मुँगेर के किले में रहकर शेरशाह के विरुद्ध सेना को तैयार कर रहा था। यूसुफ खैल की गतिविधि का जब पता शेरशाह को चला, तब उसके बहादुर सेनापति 'खवास खाँ' सहसराम से झपटा और उसने यूसुफ खैल को रस्से में बँधवाकर शेरशाह के पास 'चुनार' भिजवा दिया तथा स्वयं मुँगेर के किले को अधिकार में ले लिया। यह वही 'यूसुफ खैल' था, जिसका वास्तविक नाम 'दिलावर खाँ' था और यही 'बाबर' को इब्राहीम खाँ के विरुद्ध भारत में बुलाकर लाया था। हुमायूँ के शासनकाल में भी यह एक ऊँचे पद पर था, जिससे उसने यूसुफ खैल को मुँगेर के किले का अध्यक्ष बना दिया था।

अकबर के शासनकाल (सन् १५८० ई०) में राजा टोडरमल भी मुँगेर के किले में डेरा डाले हुए थे। उसी समय पटना के पठानों ने विद्रोह कर दिया और टोडरमल को मुँगेर में जा घेरा। चार महीनों तक टोडरमल घेरे में पड़े रहे और कैदी का जीवन व्यतीत करते रहे। इसी प्रकार, अकबर का पिता 'हुमायूँ' जब गौड की जलवायु के प्रकोप में अपनी सेना का एक बहुत बड़ा हिस्सा गँवाकर पश्चिम की ओर लौटा, तब वह मुँगेर तक गंगा के बायें किनारे (उत्तर बिहार) के रास्ते से आया। मुँगेर के सामने पहुँचने पर उसके हुक्कामों ने निवेदन किया कि हुजूर, अफवाह है कि शेरशाह के भय के कारण आप गंगा के दाहिने किनारे का सीधा रास्ता छोड़कर बायें तट से आगरा लौट रहे हैं। अपने सैनिकों का मनोबल बनाये रखने के लिए हुमायूँ ने यहाँ गंगा को पार किया और किले में ठहरा। इन घटनाओं के बहुत समय बाद शाहजहाँ के पुत्रों में जब तख्त के लिए छीना-झपटी हुई, तब शाहशुजा अपने भाई दाराशिकोह से लड़ने पश्चिम की ओर रवाना हुआ। दाराशिकोह के पुत्र सुलेमान शिकोह के साथ बनारस के पास 'बहादुरपुर' में शाहशुजा की मुठभेड़ हुई। युद्ध में शाहशुजा की हार हुई और भागते हुए उसने मुँगेर के किले में आकर शरण ली। उधर सुलेमान शिकोह उसका पीछा करता 'सूर्यगढ़ा' आ धमका। इधर शाहशुजा 'डकरा नाला' पर तोपों की पंक्ति खड़ी करके मोर्चे पर डट गया। सुलेमान शिकोह सूर्यगढ़ा में रुककर शाहशुजा की सेना की गति-विधि देखने लगा और आक्रमण करने की नई दिशा पर विचार-विमर्श करने लगा। इसी बीच सुलेमान को खबर मिली कि सामूगढ़ की लड़ाई में मेरे पिता औरंगजेब से हार गये हैं और औरंगजेब की सेना उनका पीछा कर रही है। सुलेमान तुरत शाहशुजा से संधि करके आगरा की ओर दौड़ा और इधर शाहशुजा मुँगेर के किले से निकलकर अपने नौ-बेड़े के साथ गंगा-मार्ग से राजमहल चला गया। इसके पश्चात् सन् १६५९ ई० की जनवरी में औरंगजेब और शाहशुजा के बीच 'खजवा' नामक स्थान में लड़ाई हुई। यहाँ भी शाहशुजा हारा और फिर पूर्व की ओर भागता हुआ वह मुँगेर-किले की शरण में आया। उसने फिर 'डकरा नाला' पर अपने उसी पुराने युद्धकौशल को दिखलाया और मोर्चाबंदी करके

तोपें लगवाईं। पन्द्रह दिनों तक उसका वह मोर्चा अभेद्य बना रहा। किंतु, औरंगजेब का सेनापति 'मीरजुमला' बड़ा ही दिलेर और युद्धविद्या-विशारद था। उसने 'खड़गपुर हवेली' के राजा 'बहरोज' को मिलाकर अपनी सेना को दक्षिण की ओर पहाड़ियों में मोड़ दिया और पूर्व भाग से आकर मुँगेर-किले को घेर लिया। शाहशुजा अपने को विपत्ति में फँसा देखकर सन् १६५९ ई० के ६ मार्च को किले के गुप्त मार्ग से गंगा में उतर कर नाव पर सवार हुआ और रातोंरात राजमहल भाग गया।

इस प्रकार, मुँगेर की गंगा और उसके तट के किले ने क्या-क्या देखा है, इसके विराट् इतिहास का हिसाब किसी के पास नहीं है। किले ने अपने पहलू में क्या-क्या समेटकर रखा है, इसकी बहुत थोड़ी-सी जानकारी वर्त्तमान इतिहास को है। यों तो, मुँगेर के किला-क्षेत्र में जभी आप प्रवेश करेंगे, तभी आपके मन और मस्तिष्क पर एक अद्भुत गौरव का मद छा जायगा, एक असाधारण व्यक्तित्व अपने-आप उभरने लगेगा और आप अनजाने ही अनुभव करने लगेंगे कि इसके उत्तर-पूर्व कोने में अश्वसेनाओं और गजसेनाओं के बाड़े दीख रहे हैं, जहाँ एक हलचल-सी मची हुई है। इसके प्रासादों, प्रांगणों, द्वारों तथा बहिर्द्वारों पर राजदरबार के बड़े-छोटे अधिकारी अपने दायित्वों के प्रति अत्यंत अस्त-व्यस्त-जैसे हैं और इधर-उधर दौड़ रहे हैं। फिर, आपको रनिवास की ओर जाती हुई कोई डोली दीखने लगेगी और ऐसा मालूम पड़ेगा कि डोली में बारह कहार लगे हैं। उस डोली पर लाल मखमल का ओहार लगा है, जिसकी झालरों में हीरे-मोतियों के किमखाब झूल रहे हैं। डोली के आगे-आगे अपनी वर्दियों में लैस अश्वसेना के सवार चल रहे हैं, जिनके डर से राह चलते लोग जल्दी-जल्दी इधर-उधर भाग रहे हैं। निश्चय ही, औरंगजेब की लाड़ली बेटी 'जेबुन्निशा' इस डोली में जा रही है। आप किला-क्षेत्र में डर-डर कर और फूँक-फूँक कर अपना पैर रखिएगा; इसलिए कि शाम के झुटपुटे में या रात में चलनेवाली कोमलांगी कामिनी किशोरियों के महावर-लगे जवाकुसुम-सदृश लाल तलवों की छाप आपके पैरों से कहीं चिपक न जाय। किले की ऐसी-ऐसी जाने अनेक स्मृतियाँ और कहानियाँ आपकी भावनाओं में घिरने-तिरने लगेंगी। इस तरह, पाल-राजाओं का विजयोत्सव, उनका स्कंधावार, मुगलों की शान-बान, मानसिंह और टोडरमल का सेना-संभार, शेरशाह की व्यूह-मंत्रणा, जेबुन्निशा की शेरो-शायरी, मीरकासिम का अंतःपुर और उसका सेना-संचार आदि दृश्य आपके मन के भीतर तरंगों की भाँति हिलोरें मारने लगेंगे। मुँगेर की गंगा की गोद में बसा यह किला ताजमहल की तरह केवल 'मुमताज महल' की लाश का महल नहीं है; बल्कि राज्यों के उत्थान-पतन और गंगा का गौरव-महल है, जिसके बुर्जों के ऊपर से गंगोर्मि में खेलती चाँदनी की दूर तक की बहार देखते ही बनती है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी किले के नैर्ऋत्य कोणवाले बुर्ज पर बैठकर ऐसी ही कल्पनाओं और दृश्यों के मध्य कई चाँदनी रातों के मुग्ध-मधुर प्रहर बिताये हैं।

किले के दक्षिण द्वार के बाजू में 'शाह नफह' नामक पीर की मजार है, जो सन् १४९७ ई० में बनी थी। इसी मजार में मीरकासिम के चाँद-से सलोने और सुकुमार बच्चे

अपनी-अपनी कब्र में गहरी नींद सो रहे हैं। इसीलिए, यहाँ जो कोई भी आता है, जूता उतारकर पद-चापों को दाबे, धीरे-धीरे, बड़े अदब से आता है। मुँह बंद किये, सिजदा करता है और चुपचाप विना कुछ हरकत किये कदम-ब-कदम पीछे की ओर हटता चला जाता है। इस मजार के बायें भाग में 'दानियाल' ने 'अल्लाउद्दीन हुसेनशाह' के राज्यकाल, हिजरी ९०३ साल (सन् १४९७ ई०) में ही एक और मकबरा बनवाया था। किले के इसी दक्षिणी द्वार के बाहर गंगा के किनारे औरंगजेब की प्रथम संतान जेबुन्निशा के शिक्षक 'मुल्ला मुहम्मद सैयद' भी अपनी कब्र में टाँग पसारे खर्राटे भर रहे हैं। यह एक बहुत बड़े शायर थे। अब ये स्वयं गंगा की लहरों की शायरी बड़े चैन से सुनते रहते हैं। मीरकासिम के महल के टीले पर ही आज जिलाधीश की कोठी खड़ी है। आज भी इस किले में ऐसे भूमि-विवर हैं, जिसके मार्ग से कभी गंगा के उस पार जाया जाता था। ऐसे भूमि-विवरों में एक कष्टहरणी घाट की सुरंग है, ऐसा लोगों का कहना है। गंगा में सैनिकों के उतरने के लिए कई गुप्त मार्गों के चिह्न आज भी देखे जा सकते हैं। मुँगेर के इस ऐतिहासिक किले के इतने बड़े उत्कर्ष का एकमात्र कारण है गंगा नदी, जो किले को घेरती हुई बहती है। सन् १९३४ ई० के भयंकर भूकंप में सारा मुँगेर नगर ध्वस्त हो गया था। नगर की आधुनिक इमारतें नई हैं।

मुँगेर नगर के बाद गंगा नदी एकाएक अग्निकोणवाहिनी हो जाती है और मुँगेर जिले की पूर्वी सीमा तक अग्निकोण में ही बहती है। इस परिवर्त्तित प्रवाह का मुख्य कारण यह है कि जैसे ही गंगा मुँगेर नगर से आगे की ओर बढ़ती है, वैसे ही उसके वाम पार्श्व में 'जमुआरी' और 'बागमती' नदियों को समेटकर आनेवाली 'बूढ़ी गंडक' नामक नदी का भारी जलौघ गंगा की धारा को धकियाता है। यह बूढ़ी गंडक चंपारन जिले में 'सिकरौना' भी कहलाती ह, जिसमें हरहा, मसान, बाणगंगा, पंडई, उरई, घोरम, झरही, तेलावे, तियर, लालबेगी आदि अनेक नदियों का बेशुमार पानी आता है, यानी नेपाल के संपूर्ण सोमेश्वर पर्वतांचल का जल बूढ़ी गंडक में आता है। इसका प्रवाह-पथ चंपारन, मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों से होते और अग्निकोण में बहते उत्तरी मुँगेर जिले में प्रवेश कर अपने गंगा-संगम तक बहता है। इसकी अकेली सहायिका 'हरहा' नदी बीस निर्झरिणियों का जल ग्रहण करती है। फिर, 'बागमती' नदी समस्त काठमांडू-क्षेत्र का जल लेकर बिहार-प्रदेश में आती है। इसके बाद यह दरभंगा जिले के हायाघाट स्टेशन के नजदीक, दरभंगा नगर के पास से बहकर आनेवाली व्याघ्रमुखी (कमला की पुरानी धार) नदी को समेटती है। व्याघ्रमुखी भी 'अधवारा'-समूह की नदियों का जल 'रखौली' के पास ही ग्रहण करके दरभंगा होते हुए हायाघाट आती है। उपर्युक्त बागमती उक्त व्याघ्रमुखी के जलौघ को लेकर 'रोसड़ा' के पास बूढ़ी गंडक से संगम करती है। इस प्रकार, बूढ़ी गंडक विभिन्न धाराओं में बँटती और पुनः एकीभूत होती 'खगड़िया' नगर के पास पहुँचती है। सन् १९७१ ई० में इसकी बाढ़ से खगड़िया नगर पर भारी खतरा उपस्थित हो गया था, जो सेना की सहायता से बचाया गया।

खगड़िया आकर बूढ़ी गंडक दक्षिण की ओर मुड़ती है और तब 'गोगरी' (उत्तर मुँगेर) के दक्षिण में, गंगा के बायें किनारे संगम करती है। इस संगम-स्थल के सामने ही गंगा के दाहिने किनारे मुँगेर का 'पीर पहाड़ी' पर्वत है। उक्त 'गोगरी' का इलाका प्रत्येक वर्ष वर्षा ऋतु में जलाप्लावित हो जाता है। किसी काल में 'बागमती' नदी 'तिलजुगा' से मिलती थी। मुँगेर और भागलपुर के सामने गंगा के उत्तरी भाग में बराबर सर्वत्र जल भरा रहता था, इसीलिए यह भूमिभाग 'अंगुत्तराप' कहलाता था।

गंगा नदी मुँगेर नगर से आगे इस जिले की पूर्वी सीमा तक अग्निकोण में ही बहती है, यह पहले भी कहा गया है। जिले की सीमा पर गंगा के दाहिने भाग मे 'घोड़घट' गाँव के पूरब 'मान' नदी गंगा से मिलती है। इसे 'मइन' या 'मणि' नदी भी कहते हैं। यह खड़गपुर हवेली की प्रसिद्ध झील से प्रवाहित होती है और खड़गपुर से पूर्वोत्तर होकर जब आगे जाती है, तब इसमें 'बेइहरना' और 'सकरी' नामक नदियाँ मिल जाती हैं। खड़गपुर की झील में दूध पनियन, नरकोल और सिधवारी नामक पहाड़ी निर्झरणियों का जल आता है। ये सारी छोटी-छोटी सरिताएँ मुँगेर-पर्वत-शृंखला की पूर्वी ढलान से उक्त झील में गिरती हैं और इनके उद्गम-स्थल से तप्त जल के अनेक स्रोत निःसृत होते हैं। खड़गपुर-झील का निर्माण दरीनुमा दो पहाड़ियों का मुँह बाँध करके हुआ है। इसे सन् १८७७ ई० में दरभंगा-राज्य ने खेतों की सिंचाई के लिए बँधवाया था और नहरें निकलवाई थीं। सन् १९६३ ई० में झील का बाँध टूट गया था, जिससे प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया था। बाँध टूटने पर ताड़ जितनी ऊँचाई से बाढ़ उमड़ी थी और तीनमंजिले घर के ऊपर शरण लेनेवाले लोग भी बह गये थे! इस प्रलय से दर्जनों गाँव धुल-पुँछ गये थे। 'मान' नदी इसी झील की देन है, जो मुँगेर जिले की पूर्वी सीमा पर 'गंगा' से संगम करती है।

भागलपुर जिले में :

'मान' नदी को आत्मसात् करते ही माँ गंगा भागलपुर जिले की सीमा में प्रवेश करती है और सर्वप्रथम उल्लेखनीय स्थान 'सुलतानगंज' से मुलाकात करती है। मुँगेर जिले की तरह ही भागलपुर जिले की भी भाग्यशालिनी भूमि गंगा के दोनों भागों में बिछी है, जिसके बीच से गंगा की धार दौड़ती है। सुलतानगंज की गंगा की गोद में खिलौने जैसी एक पहाड़ी है, जिसपर 'अजगवीनाथ'(शिव) का मन्दिर है। किंवदंती है कि उसी पहाड़ी पर जह्नु ऋषि का आश्रम था। भगीरथ के रथ के पीछे दौड़ती गंगा प्रथम-प्रथम जब सुलतानगंज पहुँची, तब उस पहाड़ी पर स्थित जह्नु ऋषि के आश्रम को बहाकर ले-जाने पर तुल गई, जिससे जह्नु ऋषि क्रुद्ध हो गये और चुल्लू में उठाकर गंगा को पी गये। भगीरथ ने अपने उद्देश्य की पूर्त्ति में इस विघ्न को देखकर जह्नु ऋषि की अनेक विधियों से स्तुति और प्रार्थना की, फलतः जह्नु ने गंगा को अपने पेट से बाहर निकाल दिया। जह्नु ऋषि से प्रकट होने के कारण ही गंगा का एक नाम 'जाह्नवी' भी पड़ा है। किंतु, यह घटना सुलतानगंज में घटी, इसका अंतःसाक्ष्य कहीं नहीं प्राप्त होता।

बिहार की गंगा के तटीय तीर्थों में पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते हुए जिन तीर्थों की चर्चा 'नारदीयमहापुराण' करता है, उनमें 'चम्पक' तीर्थ के पश्चात् 'कलशतीर्थ' का नाम लेता है[1] और कहता है कि यहाँ अगस्त्य ऋषि का आश्रम था और उस पहाड़ी का नाम सोमद्वीप था। यहाँ अगस्त्य ऋषि ने शिव की अर्चना की थी और सोम ने भी यहीं शिव की अर्चा-पूजा की थी। शंकर ने सोम की उसी अर्चा-पूजा से प्रसन्न होकर चन्द्रमा को अपने शिर पर धारण किया। अतः, यह स्थान काशी की तरह पवित्र और आराधना के योग्य है। 'नारदीयपुराण' के इस कथन से सिद्ध है कि गंगा में स्थित 'अजगवीनाथ' की पहाड़ी ही 'कलशतीर्थ' है। यह पहाड़ी पहले गंगा के तट पर थी। अतः, उन दो-दो तीर्थों के प्रभाव से सुलतानगंज की गंगा काशी की गंगा की तरह पुण्यमयी बन गई है। यही कारण है कि प्रति वर्ष सैकड़ों मनुष्य उस 'कलशतीर्थ' से ही कलश में गंगाजल भरकर, काँवर पर ढोते हुए, पैदल चलकर वैद्यनाथधाम जाते हैं और वहाँ शिव पर कलशतीर्थ' का जल चढ़ाकर अक्षय पुण्य लूटते हैं। आज भी यहाँ माघ-पूर्णिमा को बड़ा भारी मेला लगता है, जहाँ हजारों नर-नारी गंगास्नान करके अजगवीनाथ का दर्शन-पूजन करते हैं। 'आनंदरामायण' के यात्राकांड से ज्ञात होता है कि सुलतानगंज का नाम पहले 'गंगापुरी' था और अजगवीनाथ उस समय 'विल्वेश्वर' कहलाते थे। भगवान् राम मुद्गल-आश्रम (मुंगेर) और सीतातीर्थ (सीताकुंड) से इसी गंगापुरी (सुलतानगंज) में आये थे, फिर यहाँ से वे वैद्यनाथधाम गये थे।[2]

सुलतानगंज कभी बौद्धों का भी तीर्थस्थान रहा है। अजगवीनाथ पहाड़ी पर जिस परिमाण में हिन्दू देव-देवियों की प्रस्तर-प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं, उसी परिमाण में बौद्ध प्रतिमाएँ भी मिली हैं। बौद्धों के पालिग्रंथ महावग्गो (६।५।१) से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध भद्दिया से अंगुत्तराप के 'आपण' निगम के लिए चले, तो उन्होंने इसी सुलतानगंज में गंगा को पार किया। क्योंकि, भद्दिया भागलपुर जिले का 'भितिया' गाँव[3] है, जो बेलहर

१. कलशाख्यं ततस्तीर्थं कलशादुत्थितो मुनिः।
अगस्त्य पूजयन् यत्र रुद्रं मुनिवरोऽभवत्॥
सोमद्वीपं महत्पुण्यं तीर्थं वाराणसीसमम्।
सोमो यत्रार्चयन्नीशं रुद्रेण शिरसा धृतः॥
—ना० महापुराण, उत्तर खण्ड, अध्या० ४०, श्लो० ४४-४५।

२. रामस्ततो विमानेन गतश्चोत्तरवाहिनीम्।
नाम्ना पुरी तथा गङ्गा यत्रास्ति परमार्थदा॥
पर्वतो यत्र गङ्गायामस्ति विल्वेश्वरोऽपि च।
ततः श्रीवैजनाथेशं नत्वा रावणनिमितम्॥
—आनन्दरा०, यात्राकाण्ड, सर्ग ६, श्लो० १२९-१३०।

३. 'भद्दिया' को मैंने पहले मुंगेर जिले के 'बटिया' स्थान को माना था, पर बटिया के निरीक्षण-परीक्षण के बाद मुझे अपना मत बदलना पड़ा।

से ७ मील पूरब और बाँका से १३ मील पश्चिम थोड़ा पश्चिमोत्तर कोण में हटकर है। यहाँ से आपण-निगम (सहरसा जिले का वनगाँव-महिषी) जाने के लिए सुलतानगंज अतिशय प्राचीन और महत्त्वपूर्ण घाट है। यहाँ तीसरी शती में लिखित गुप्तों का एक शिलालेख भी प्राप्त हुआ था। सुलतानगंज में ही ताँवे की एक अतिशय सुंदर बुद्ध-प्रतिमा मिली थी, जिसका अब चित्र ही भारत में रह गया है, मूल मूर्त्ति तो बरमिंघम (इंगलैंड) के संग्रहालय में चली गई है। सुलतानगंज में बौद्ध विहार और बुद्ध-स्तूप के ही भग्नावशेष पर बनैली के राजा का गढ़ बना है। किंवदंती इस भग्न टीले को कर्णगढ़ का अवशेष बतलाती है। सुलतानगंज के इस लंबे-चौड़े भग्नस्थान को देखकर ही पहले कुछ लोगों ने इसे विक्रमशिला-विश्वविद्यालय का भग्नावशेष समझा था। किन्तु, अब तो सर्वमान्य हो गया है कि प्राचीन विक्रमशिला-विश्वविद्यालय कहलगाँव से उत्तर और वटेश्वरस्थान से पूर्व में स्थित 'अंतीचक' गाँव के पास था। इसका विशेष विवेचन यथाक्रम आगे किया जायगा।

सुलतानगंज के बाद गंगा के दाहिने किनारे 'भागलपुर' नगर है, जिसका पश्चिमी हिस्सा चंपानगर है। अंगदेश की राजधानी इसी चंपानगरी में थी। गंगा नदी सुलतानगंज से चंपानगर तक दो धाराओं में बँटकर पहुँचती है और बीच में दियारा-क्षेत्र बनाती है। उस दियारे में जगनचक, बैकटपुर, मिरजापुर, सोनबरसा, फरीदपुर, मोहनपुर आदि गाँव अब बस गये हैं। यद्यपि उसकी दाहिनी धारा अकबरपुर से सटकर पूर्वोत्तर कोण में बहती थी, जो अब मृतप्राय हो गई है, तथापि वर्षाऋतु की बाढ़ में तो अब भी इससे जल-निःसरण होता ही है। सन् १९७१ ई० की बाढ़ में यह सारा दियारा जलाप्लावित हो गया था। सन् १९४२ ई० में अँगरेजी-सलतनत के विरुद्ध जो क्रान्ति हुई थी, उस समय सक्रिय क्रान्तिकारियों का एक दल गंगा के उस पार के दियारे में अपना मोकाम कायम किये हुए था। सोनबरसा के शस्त्रागार को लूट लेने के प्रयास में नित्यानंद सिंह नामक एक क्रान्तिकारी पुलिस की गोली से मारा गया था। क्रांतिकारियों की इस टोली का एक सदस्य होने के नाते इन पंक्तियों का लेखक भी सन् १९४४ ई० की एक गुप्त बैठक में सम्मिलित होने उस दियारा-क्षेत्र में आया था। मुंगेर और भागलपुर के क्रांतिकारियों में कुछ 'आर्म्स' को लेकर जो परस्पर जानलेवा विरोध हो गया था, उसी के निबटारे के लिए यह बैठक बुलाई गई थी। इस बैठक में बिहार के भूतपूर्व पुलिस-मंत्री श्रीरामानंद तिवारी ने भी भाग लिया था।

---

१ वाल्मीकीय रामायण के अनुसार, एक दूसरा 'अंग विषय' प्राचीन गंगा-सरयू-संगम (बलिया, उत्तरप्रदेश) के कुछ ऊपर में था। किन्तु, 'अंग विषय' ऐसा पाठ अशुद्ध है। रामायण की कुछ प्रतियों में 'अनंग विषय' भी पाठ मिलता है, जो शुद्ध है। यहीं शंकर ने अनंग (काम) का दहन किया था, इसलिए यह 'अनंग विषय' कहलाता था। यही 'कामाश्रम' था, जो आज 'कारों' (तपोभूमि, पृ० ७३) नाम से प्रसिद्ध है।

सुलतानगंज (प्राचीन गंगापुरी) से आगे बढ़ने पर गंगा नदी अपनी दाहिनी मुख्य धारा के किनारे तिलकपुर, भवनाथपुर और शिवराम गाँवों को निहारती भागलपुर नगर को पहुँचती है। जैसा पहले कहा गया, उसी भागलपुर नगर के पश्चिमी हिस्से का नाम चंपानगर है। यही चंपानगर भारत की प्राचीन 'चंपानगरी' है, जहाँ कभी प्राचीन 'अंग' देश की राजधानी थी। इसका नाम 'चंपावती' तथा 'मालिनी' भी था।[१] महाभारत-युद्ध का महारथी कर्ण इसी चंपा का शासक था, जिसके समान दाता आजतक संसार में नहीं जनमा। 'विष्णुपुराण' के अनुसार, अतिप्राचीन काल में 'अंग' नामक राजा ने उस प्रदेश के शासन को सुव्यवस्थित किया था। 'अंग' राजा बलि की पत्नी सुदेष्णा में 'दीर्घतमा' नामक एक अंधे ऋषि के नियोग से उत्पन्न हुआ था। उसी के वंश में 'रोमपाद' नामक राजा हुआ, जिसका दूसरा नाम 'चित्ररथ' भी था। रोमपाद अयोध्या के राजा 'अज' के पुत्र 'दशरथ' का मित्र था।[२] अंगराज रोमपाद के कोई संतान नहीं थी। अतः, उन्होंने दशरथ की पुत्री शांता को गोद ले लिया था।[३] और, शांता विधानतः उनकी पुत्री बन गई थी। आगे चलकर शांता का विवाह ऋष्यशृंग ऋषि से हुआ, जिसे रोमपाद की वेश्याएँ लुभाकर हिमालय-उपत्यका से चंपा में ले आई थीं। 'रोमपाद' के ही वंश में पृथुलाक्ष हुआ, जिसके पुत्र का नाम चंप था। यह 'चंप' बड़ा प्रतापी हुआ और उसीने अपने नाम पर 'चंपानगरी' बसाई।[४] फिर, उसी चंप की १२वीं पीढ़ी में 'अधिरथ' नामक राजा हुआ, जो 'सूत' कहलाता था। उसी अधिरथ ने कुंतीपुत्र कर्ण को गंगा के प्रवाह से निकालकर अपना पोष्यपुत्र बनाया था, जिससे 'कर्ण' अंगदेश का अधिपति बन गया था।

चंपानगरी गंगा के तट पर बसी थी, अतः भारत के तीर्थों में भी उसकी गणना होती थी और यहीं कहीं 'दंडार्पण' नामक तीर्थ भी था।[५] राजा रो (लो) मपाद और कर्ण की राजधानी होने के कारण 'जिनप्रभसूरि' ने अपने ग्रंथ 'विविधतीर्थकल्प' में चंपा का नाम 'लोमपादपू' और 'कर्णपू' भी लिखा है। उनके अनुसार, कौशिक ऋषि के आर्य शिष्य

---

१. (क) प्रीत्या ददौ स कर्णाय मालिनीं नगरीमथ। —महा० भा०, शान्तिपर्व, ५।६।
(ख) उत्तमतमनरनारीमुक्तामणिधोरणिप्रसवशुक्तिः।
नगरी विविधाद्भुतवस्तुशालिनी मालिनी जयति ॥—विविधतीर्थकल्प, पृ० ६६।

२. एतस्मिन्नेव काले तु सखा दशरथस्य वै।
लोमपाद इति ख्यातो ह्यङ्गानामीश्वरोऽभवत् ॥—महाभारत, वन, ११०।४१।

३. चित्ररथो रोमपादसंज्ञः। यस्य दशरथो मित्रं जज्ञे। यस्याजपुत्रो दशरथश्शान्तां नाम कन्यामनपत्यस्य दुहितृत्वे युयोज। —विष्णुपुराण, ४।१८।१६—१८।

४. पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव है।
चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनी भवत् ॥ - मत्स्यपु० ४८।९७।

५. ततश्चम्पां समासाद्य भागीरथ्यां कृतोदकः।
दण्डार्पणं समासाद्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥—पद्मपु०, स्वर्गखण्ड, ३८।७२।

'अंगर्षि' आर 'रुद्रक' थे, जिन्होंने यहाँ विधिपूर्वक बड़ा भारा यज्ञ किया था : अस्यां (नगर्यां) कौशिकार्यशिष्याङ्गर्षिरुद्रकाभ्याख्यानसंविधानकं सुजातप्रियंग्वादिसविधानकानि च जज्ञिरे।[1]

गंगातट की उस चंपानगरी के दक्षिण-पश्चिम भाग में 'गर्गरा' नामक पुष्करिणी थी, जहाँ अक्सर भगवान् बुद्ध आकर निवास करते थे। पुष्करिणी को किसी गर्गरा नामक रानी ने खुदवाया था। भगवान् बुद्ध के समय में चंपा का अधिपति 'शोणदंड' नामक ब्राह्मण था, जो मगध-सम्राट् बिंबिसार द्वारा अधिष्ठित अधिपति था। शोणदंड भगवान् बुद्ध को सम्मानित तो करता था; पर कभी झुककर या हाथ उठाकर बुद्ध को अभिवादन नहीं करता था। जब वह रथ पर चढ़कर कहीं जाता था और रास्ते में भगवान् बुद्ध उसे मिल जाते थे, तब वह केवल चाबुक उठा देता था और वही प्रणाम का बोधक होता था। फिर, जब वह परिषद् में बैठा होता और बुद्ध वहाँ पहुँचते, तब वह अपने माथे की पगड़ी उठा लेता और यही उसका प्रणाम-संकेत होता था। सम्राट् अशोक की माता ब्राह्मण-कन्या थी और वह चंपा की थी, जो संभवतः उसी शोणदंड के वंश की होगी। फिर महावग्गो (५।१) से पता चलता है कि उस चंपानगरी में 'शोणकोटिविंश' नाम का एक सेठ रहता था, जो २० करोड़ स्वर्णमुद्राओं का स्वामी था। उसके खजाने में ८० बैलगाड़ियाँ हिरण्यमुद्राएँ थीं और उसके द्वार पर ४९ गजराज झूमते थे। शोणकोटिविंश के पैरों के तलवे में भी रोम उगे हुए थे। कुछ काल बाद यह बौद्धभिक्षु हो गया और 'राजगृह' के 'सीतवन' में रहने लगा।

चंपानगरी जैन मुनियों का भी गढ़ थी। जैनधर्म के २४वें तीर्थंकर महावीर-स्वामी ने 'पृष्ठचंपा' के साथ तीन वर्षावास इस नगरी में व्यतीत किये थे।[2] जैनों के १२वें तीर्थंकर वासुपूज्य की जन्मभूमि चंपा ही थी और यहीं उन्होंने प्रव्रज्या, केवलज्ञान तथा निर्वाण भी प्राप्त किया था। यहाँ जैन ऋषि 'प्रभव' और 'स्वयंभव'[3] ने भी धर्मप्रचार किया था। 'दशवैकालिकसूत्र' का संकलन स्वयंभव ने चंपा में ही रहकर किया था। स्वयंभव के पुत्र का नाम 'मनक' था। राजगृह छोड़कर जब वह चंपा' आया, तब स्वयंभव ने उसे प्रव्रज्या दी। प्रव्रज्या के समय उसकी आयु केवल छह महीने ही शेष रह गई थी, अतः उसके अध्ययन के लिए उन्होंने 'दशवैकालिक' की रचना की थी।[4]

---

१. विविधतीर्थकल्प (चम्पापुरीकल्प), पृ० ६६।

२ अस्यां पृष्ठचम्पया सह श्रीवीरस्त्रीणि वर्षारात्रसमवसरणानि चक्रे।—विविधतीर्थकल्प, पृ० ६५।

३. अस्यां (चम्पायां) द्वादशमजिनेन्द्रस्य श्रीवासुपूज्यस्य त्रिभुवनजनपूज्यानि गर्भावतारजन्म प्रव्रज्याकेवलज्ञाननिर्वाणोपगमलक्षणानि पञ्चकल्याणकानि जज्ञिरे।—तत्रैव, पृ० ६५।

४. अस्यां (चम्पायां) विहरन् श्रीशय्यम्भवसूरिश्चतुर्दशपूर्वधरः स्वतनयं मनकाभिधानं राजगृहादागतं प्रव्राज्य तस्यायुः षण्मासावशेषं श्रुतज्ञानोपयोगेनाकलय्य तदध्ययनार्थं दशवैकालिकं पूर्वगतान्निर्व्यूढवान्।—तत्रैव, पृ० ६६।

विविधतीर्थकल्प के 'चंपापुरीकल्प' से ज्ञात होता है कि जैनों के १२वें तीर्थंकर वासुपूज्य के पुत्र का नाम 'मघव' था, जो उस समय 'चंपा' का अधिपति था। वासुपूज्य की पौत्री और 'मघव-नृपति' की पुत्री का नाम लक्ष्मी था। इसी लक्ष्मी की लड़की 'रोहिणी' ने स्वयंवर में 'अशोक' नामक राजा का वरण किया था, जिसने बाद में आठ पुत्र और चार पुत्रियों को जन्म दिया था। इस चंपा में अपने पिता बिंबिसार की मृत्यु से अत्यंत दुःखी होकर 'अजातशत्रु' कुछ काल के लिए राजगृह छोड़कर 'चंपा' चला आया था और यहीं से राजकाज सँभालता था। अजातशत्रु का एक नाम 'कुणिक' भी था और इसका एक तीसरा-नाम 'अशाकचंद' भी था।[1] इसी 'चंपा' के एक राजा का नाम दधिवाहन था, जिसकी पत्नी का नाम 'अभया' था। वहाँ के 'सुदर्शन', नामक सेठ से 'अभया' का प्रेम हो गया था। दधिवाहन को जब यह बात ज्ञात हुई, तब उसने 'सुदर्शन' को प्राणदंड की आज्ञा दे दी। कहानी में तो लिखा है कि जब सुदर्शन सूली पर ले जाया गया, तब शील-संपत्ति का ऐसा प्रभाव हुआ कि जल्लादों की तलवार फूलमाला बन गई। लगता है, सुदर्शन किसी तरह चंपा से भागकर पाटलिपुत्र आ गया और जैन बन गया। कालांतर में यह बड़ा प्रसिद्ध जैनमुनि हुआ और इसकी समाधि पर मंदिर का निर्माण हुआ। यह जैनों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है, जो गुलजारबाग स्टेशन के पास प्राचीन स्मारक के रूप में 'कमलदह' नाम से विख्यात है।

जिनप्रभसूरि ने अपनी उक्त पुस्तक में 'चंपा' के संबंध में बहुत-से नवीन तथ्य प्रकट किये हैं। उनमें से एक किंवदंती का भी उल्लेख किया है। चंपा में चार ऐसे प्रस्तर-निर्मित गोपुरद्वार थे, जो बहुत दिनों से बंद पड़े थे। चंपा की 'सुभद्रा' नामक सती स्त्री ने कुँए से चलनी में पानी भर-भर कर तीनों द्वारों को लगातार सींच-सींचकर खोल दिया और उसने एलान किया कि चौथे द्वार को यदि मेरी-जैसी कोई यहाँ सती स्त्री हो, तो सींचकर खोल दे। वह द्वार बंद ही रह गया और १४वीं शताब्दी तक बंद ही रहा। विक्रम-संवत् १३६० में लखनौती के सुलतान शमसुद्दीन अपने शंकरपुर किले में लगाने के लिए उस गोपुरद्वार को तुड़वा कर 'चंपा' से ले गया।[2] फिर, जिनप्रभसूरि के

१. अस्या एव परिसरे श्रीश्रेणिकसुनुरशोकचन्द्रो नरेन्द्रः कुणिकापराख्यः श्रीराजगृहं जनक-शोकाद्विहाय नवीनां चम्पामचीकरच्चारुचम्पकरोचिष्णुं राजधानीम्।—विविध तीर्थ कल्प, पृ० ६५।

२, अस्यां (चम्पायां) सुभद्रा महासती पाषाणमयविकटकपाटसम्पुटपिहितास्तिस्रः प्रतोलीः शीलमाहात्म्यादामसूत्रतन्तुवेष्टितेन तितउना कूपाज्जलमाकृष्य तेनाभिषिच्य सप्रभावन-मुदघाटयत्। एकां तु तुरीयां प्रतोलीमन्यापि या किल मत्सदृशा सुचरित्रा भवति तयेयमुद्-घाटनीयेति भणित्वा राजादिजनसमक्षं तथैव पिहितामेवास्थापयत्। सा च तद्दिनादारभ्य-चिरकालं तथैव दृष्टा जनतया। क्रमेण विमादित्यवर्षेषु षष्ट्यधिकत्रयोदशशतेष्वतिक्रान्तेषु लक्षणावतीहम्मीरश्रीसुरत्राणसमसदीनः शङ्करपुरदुर्गोपयोगिपाषाणग्रहणार्थं तां प्रतोलीं पातयित्वा कपाटसम्पुटमग्रहीत्।—तत्रैव, ६५।

समय तक यह बात प्रचलित थी कि यहाँ के अमुक-अमुक स्थान राजा कर्ण के हैं, दान-स्थान जिनमें से शृंगारचतुरिका (आधुनिक चौखंडी) आदि स्थान मुख्य माने जाते थे :

अस्यामेव पाण्डुकुलमण्डनो दानशौण्डेषु दृष्टान्तः श्रीकर्णनृपतिरशाद्राज्यश्रियम् । दृश्यन्ते चाद्यापि तानि तानि तदवदातस्थानानि शृङ्गारचतुरिकादीनि पुर्यामस्याम् ।

इस चंपापुरी में जैनधर्मावलंबी 'कामपाल' नामक सेठ था, जो १८ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं तथा १० करोड़ गौओं का स्वामी था। इसकी पत्नी का नाम 'भद्रा' था। फिर, वैभव में कुबेर को भी मात करनेवाला यहाँ कुमारनंदी नामक एक स्वर्णकार था, जो पहले राजगीर का श्रेष्ठी था। इसने चंपा में महावीरस्वामी की एक गोशीर्षचंदन की सुंदर प्रतिमा वनवाकर और उसे स्वर्णाभूषणों से अलंकृत करके स्थापित कराया था।

प्राचीन जैनागम 'औपपातिकसूत्र' में कहा गया है कि 'पुण्णभद्द' नामक एक देवमंदिर 'चंपा' में गंगा के तट पर स्थित था। मंदिर में विभिन्न प्रकार की छत्र-पाताकाएँ और घंटे टँगे हुए थे। देवमंदिर का ऊँचा चबूतरा गोमय से लीप-पोतकर सर्वदा स्वच्छ रखा जाता था। इस मंचनुमे चबूतरे पर चंदन-लगी पांचों अँगुलियों की छापें लगी होती थीं। वहाँ पूजा के लिए आये घड़ों तथा पुष्पमालाओं का अंबार लगा रहता था। मंदिर के द्वार पर गंगाजल से भरे घड़े रखे जाते थे। मंच का द्वार मेहराव-दार था और यह मंच एक चैत्यवन में था। देवगृह के मध्य में अशोक का एक वृक्ष था, जिसकी पूजा होती थी। इस वृक्ष के मूल में भी चबूतरा वना हुआ था, जो अठपहला और दर्पण की तरह स्वच्छ था। यह विविध प्रकार के पशु-पक्षियों तथा बेल-बूटों के चित्रों से अलंकृत था। यहाँ कोई देवमूर्त्ति नहीं थी। किंतु, इस पुण्यभद्र नामक चैत्य के संबंध में यह किंवदंती है कि जो कोई इस पर आठ डेग तक चढ़ जायगा, वह सिद्ध पुरुष हो जायगा : **अस्य पुण्यभद्रे चैत्ये श्रीवीरो व्याकरोत्—यो अष्टापदमारोहति स तद्भव एव सिद्ध्यति ।** (पृ० ६६)

बौद्ध जातकों के अनुसार चंपा नगरी ऊँचे प्राचीरों तथा परिखाओं से आवेष्टित थी। उस समय उत्तर भारत में जो छह प्रधान महानगर थे, उनमें चंपानगरी उल्लेख्य थी। यहाँ के व्यापारी पूर्व दिशा में समुद्र पार करके दूर-दूर तक व्यापार करते थे। यहीं का व्यापारी 'महाजनक' था, जिसकी नाव समुद्र में नष्ट हो गई और सभी साथी डूब मरे, तब भी वह सात दिनों तक उस सीमाहीन समुद्र में तैरता रह गया था। चंपा के ही व्यापारियों ने सुदूर इंडोचीन में जाकर अपने नगर की स्मृति में 'चंपा' नामक नगर बसाया था। उस समय सामुद्रिक व्यापार करनेवालों का भारी समूह इस 'चंपानगरी' में निवास करता था, जिनका नौ-बेड़ा निरंतर गंगा की लहरों पर या तो चलता रहता था या चंपा की गंगा में लंगर डाले खड़ा रहता था। इस प्रकार, अनेक कथा-कहानियों

तथा इतिवृत्तों से भरी यह चंपा नगरी थी, जिसके प्राचीर-रूप गले में गंगा की लहरों की भुजाएँ बराबर आवेष्टित रहती थीं।[१]

पाँचवीं शती के प्रारंभ में बौद्धतीर्थों का भ्रमण करता हुआ चीनी यात्री 'फाहियान' इस चंपानगर में भी आया था। उसने लिखा है कि चंपानगरी, पाटलिपुत्र से १८ योजन पूरब गंगा के दाहिने किनारे बसा है। फिर, सातवीं शती में दूसरा चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' जब 'चंपा' आया, तब वहाँ के प्रासाद नष्ट हो चुके थे। मठों के खँड़हरों में 'हीनयान' मत के ३०० बौद्धभिक्षु वास कर रहे थे। उसके कथन के अनुसार, उस समय चंपा-राज्य की परिधि सिमटकर सिर्फ ७० मील में बच गई थी, जिसमें केवल नगर की ही परिधि सात मील विस्तृत थी। भागलपुर के बरारी घाट के पश्चिम-स्थित 'कुप्पाघाट' की गुफाओं के संबंध में 'ह्वेनत्सांग' ने एक विचित्र किंवदंती का उल्लेख किया है। संस्कृत-साहित्य के कथाकार 'दंडी' ने अपने 'दशकुमारचरित' पुस्तक की कहानी का आधार इसी नगर को बनाया है। सभी कुमार विभिन्न स्थानों में भटकते हुए अंत में यहीं आकर गंगा के रेतीले स्थान पर मिले, जहाँ एक बड़ा वटवृक्ष था। ह्वेनत्सांग ने गुफा-द्वार पर अँटके हुए किसी चरवाहे को पत्थर-रूप में परिणत देखा था। उसके पूछने पर चंपा के लोगों ने बतलाया कि एक दिन इस चरवाहे की गायें इस गुफा में घुस गईं और उनके पीछे-पीछे चरवाहा भी गुफा-विवर में घुस गया। काफी दूर जाने पर उसे एक बागीचा मिला, जिसमें विचित्र फल लगे हुए थे। चरवाहा अपना लोभ संवरण न कर सका और फल तोड़कर लौट पड़ा। गुफा-द्वार पर एक राक्षस ने उसे रोककर फल छीन लेना चाहा कि चरवाहे ने फल को मुँह में डाल लिया। फल खाने से चरवाहे की सारी देह इतनी फूल उठी कि वह गुफा-द्वार में ही अँटक गया और पत्थर बन गया।

किंतु, आज इस 'कुप्पाघाट' में कहीं पत्थर की गुफाएँ नहीं हैं। मिट्टी के टीलों में भूमि-विवर अब भी यहाँ हैं। लोकश्रुति के अनुसार, गंगा के नीचे-नीचे उत्तर बिहार की ओर तथा गंगा के किनारे-किनारे मुँगेर की ओर जाने के लिए कुप्पाघाट की ये सुरंगें बनाई गई थीं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि कालक्रम से पत्थर की गुफाएँ भी परतों से ढक गई हैं। आजकल 'कुप्पाघाट' की इन्हीं मृत्तिका-गुफाओं में प्रसिद्ध संत 'मेंहीदास' ने अपना आश्रम बनाया है। इस घाट के पूरब 'बरारीघाट' में गंगा में जहाज चलता है, जो उस पार 'महादेवपुर घाट' जाता है। महादेवपुर घाट में पूर्वोत्तर रेलवे की गाड़ी यात्रियों को 'बिहपुर' तक ले जाकर उक्त रेलवे की मुख्य लाइन की गाड़ी पर आरूढ करा देती है।

---

१. नानाविषसंविधानकरत्नप्रकटनानाभृत्तनिधाननिर्यं पुरी। अस्याश्च प्राकारभित्ति प्रियसखीव प्रतिक्षणमालिङ्गति सर्वाङ्गपावनघनरसपूरितान्तरा सरिद्वरा प्रसृत्वर-वीचिभुजाभिः।—विविधतीर्थकल्प, पृ० ६६।

गंगा-प्रवाह के भागलपुर नगर पहुँचने के पहले और चंपानगर के पश्चिमी किनारे 'जमुनिया' नामक नदी गंगा से संगम करती है। वस्तुतः, यह कभी 'बड़ुआ' का संगम था। बाद में बड़ुआ और जमुनिया मिलकर यहाँ संगम करने लगी हैं। 'बड़ुआ' का प्राचीन नाम 'बहुला' था, जिसकी चर्चा 'महाभारत' (भीष्मपर्व, अध्या० ९, श्लो० २७) में मिलती है। भागलपुर जिले में 'बिहुला' की पूजा होती है तथा उसकी गाथा गाई जाती है, जिसका पर्व वर्षा ऋतु में ही मनाया जाता है। हमारा अनुमान है कि बिहुला-पर्व की गाथा इसी बहुला (बड़ुआ) नदी की गाथा है। यह 'बड़ुआ' नदी मुंगेर जिले के 'चकाई-सिमुलतल्ला' मार्ग के किनारे स्थित 'कर्णगढ़' और 'चरघरा' गाँवों के पड़ोस से चलती है और अनेक पहाड़ी स्रोतों को लेकर भागलपुर जिले के दक्षिण-पश्चिम भाग में हनुमना पहाड़ के पास, 'सुइयाथान' नामक गाँव के पास समतल भूमि पर उतरती है। इसी स्थान पर नदी में पक्का बाँध बनाकर एक भारी जल-भंडार का निर्माण हुआ है, जहाँ से भागलपुर और मुंगेर जिले के खेतों की सिंचाई के लिए नहरें निकाली गई हैं। निर्जन पहाड़ियों के मध्य एक बड़ी झील बन जाने के कारण इस बाँध का दृश्य बड़ा ही लुभावना है। इस सुरम्य स्थान से 'बड़ुआ' नदी उत्तर की ओर चलती है और साहेबगंज, मोहनपुर, सिलौटा आदि गाँवों के पास से गुजरती तारापुर के पूरब आती है। यहाँ यह छिन्न-भिन्न होकर कई धाराओं में बँट जाती है और ये धाराएँ करहरिया, दीनदयालपुर, रतनपुर, दौलतपुर, बाथू आदि स्थानों से होती हुई अन्हार, कटहरा, ऊँचा गाँव आदि बस्तियों के ताल में विलुप्त हो जाती है। जबसे 'बड़ुआ' में हनुमना-बाँध बाँधा गया है और नहरें निकाल दी गई हैं, तबसे बड़ुआ के निचले भाग में और भी पानी कम आने लगा है। किंतु, यह बड़ुआ किसी काल में 'चंपानगर' के सटे पश्चिम में गंगा में प्रवेश करती थी, जहाँ आजकल जमुनिया की धारा बहती है। यह 'जमुनिया' चानन नदी की एक उपधारा है, जो राजापुर और खंजरपुर में 'चानन' की मुख्य धारा से अलग होती है और तब मोहद्दीपुर, कनकैथी, बहादुरपुर आदि गाँवों के पास से होती 'नाथनगर' से सटे-सटे पश्चिम में आती है और उत्तर की ओर मुड़कर गंगा में प्रवेश करती है। जमुनिया के ऊपरी हिस्से का नाम 'अन्हरी' है।

चंपानगर का एक भाग 'नाथनगर' कहलाता है, जहाँ पुलिस का शैक्षणिक शिविर है। इसी चंपानगर में जैनधर्म के दिगंबर-संप्रदाय का एक मंदिर और धर्मशाला है। चंपानगर में वासुपुज्य मुनि का जन्म, ध्यान, ज्ञान और कुछ लोग निर्वाण भी मानते हैं। 'तिलोयपण्णत्ति' (अ० ४, गा० ११९६) से यह भी पता चलता है कि बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य ने अश्विनी नक्षत्र से युक्त, फाल्गुन कृष्ण-पंचमी के दिन, अपराह्ण काल में ६०१ मुनियों के साथ इसी चंपानगरी में निर्वाण प्राप्त किया था। किंतु, गुणभद्राचार्य के 'उत्तरपुराण' ग्रंथ के ५८वें पर्व से ज्ञात होता है कि वासुपूज्य का निर्वाण चंपादेश के मंदार पर्वत पर हुआ था। चंपानगर के इस जैनमंदिर में पाँच वेदियाँ है, जिनमें चार तो

चारों कोने पर हैं और एक मध्य में। मध्य वेदी में जो जैन प्रतिमाएँ उकेरी गई हैं, उनके आगे एक प्रस्तर-खंड है, जिसपर वासुपूज्य के चरण-चिह्न अंकित हैं और चरण चिह्नों के आगे ये पंक्तियाँ अंकित हैं :

स्वस्ति श्री जय श्रीमंगल संवत १६३८ शक: १५५९ मनुनामसंवत्सरे मार्गशिर शुक्ला २ शनौ शुभमुहूर्त्ते श्री मूलसंघ सरस्वतीगच्छबलात्कारगणे कुन्दकुन्दान्वये भट्टारक श्रीकुमुदचन्द्रस्तत्पट्टे भ० श्रीधर्मचन्द्रोपदेशात् जयपुरशुभस्थाने बघेरवाल ज्ञाति से० श्रीपासा सा० से० श्रीसुनोई तथा पुत्रस श्री ५ नामा श्री सजाई मतं चम्पा वासपूज्यस्य शिखरबद्ध-प्रासादकारण्यप्रविष्ठा व...विद्याभूषणै: प्रतिष्ठितं वर्द्धितां श्रीमत् धर्म्मं।

उक्त अभिलेख के यहाँ प्राप्त होने से अनुमान किया गया है कि इसी स्थान में वासुपूज्य ने जन्म, ध्यान और ज्ञान प्राप्त किया था।

चंपा के इस बड़े जिनालय के उत्तर-पश्चिम के कोने में वासुपूज्य की श्वेतपाषाण की प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९३२ की माघशुक्ल-दशमी तिथि को हुई थी। पूर्वोत्तर कोणवाली वेदी में मूलनायक वासुपूज्य की दूसरी प्रस्तर-प्रतिमा है और इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९३३ में हुई थी। इस वेदी में पार्श्वनाथस्वामी की भी दो पाषाण-प्रतिमाएँ जड़ी हुई हैं। इनमें से एक पर संवत् १५८५ और दूसरी पर संवत् १७४५ का एक-एक अभिलेख है। अग्निकोणवाली वेदी में भी संवत् १९३२ ई० की ही वासुपूज्य-प्रतिमा है, जिसके साथ खड्गासन में ऋषभदेव मुनि की भी एक प्रतिमा जड़ी हुई है। इस वेदी के मध्य में धर्मचक्र का भी एक चिह्न है, जिसके दोनों ओर दो हाथियों की प्रतिमाएँ भी उत्कीर्ण हैं। फिर, नैऋत्यकोणवाली वेदी में भी संवत् १९३२ की ही प्रतिष्ठित वासुपूज्य-प्रतिमा जटित है। किंतु, इसमें पार्श्वनाथ की प्रतिमा भी जड़ी गई है, जिसपर १५५४ संवत् अंकित है। मध्यवाली वेदी के ऊपर में चाँदी के सिंहासन पर साढ़े चार फीट ऊँची पीत वर्ण की पाषाण-प्रतिमा खड़ी है। इस मंदिर के आगे एक ३५ फीट ऊँचा और दूसरा ५५ फीट ऊँचा—दो पाषाण-स्तंभ भी खड़े हैं, जिनकी बनावट स्पष्ट रूप से मुगलकालीन है।

उक्त बड़े जिनालय से आध मील दूर चंपानाले (जमुनिया नदी) के संगम के पास श्वेतांबर-सम्प्रदाय का एक जैनमंदिर और धर्मशाला है। इस मंदिर के निचले कक्ष में श्वेतांबरी प्रतिमाएँ और ऊपरी खंड में दिगंबर मुनि आदिनाथ की मूर्त्ति स्थापित है। इस मंदिर में प्रतिष्ठित कई प्रतिमाएँ ऐसी हैं, जो चंपानाले में प्राप्त हुई थीं। इन प्रतिमाओं में एक १५१५ संवत् की श्वेतपाषाण-मूर्त्ति है। संवत् १८८१ में स्थापित दूसरी मूँगिया रंग की प्रस्तर-प्रतिमा पद्मासन में है, जिसे भट्टारक जगत्कीर्त्ति नामक व्यक्ति ने प्रतिष्ठित किया था। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त युगल चरण-पादुकाएँ भी हैं। श्वेतांबर-संप्रदाय के लोग स्वामी वासुपूज्य के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण—इन पंचकल्याणकों का क्षेत्र

इसी स्थान' को मानते हैं। दिगंबर-संप्रदायवाले बड़े जिनालय से निश्चय ही यह श्वेतांबर-संप्रदाय का जिनालय प्राचीन जान पड़ता है। मेरे जानते 'औपपातिकसूत्र' का 'पुण्णभद्द' नामक चैत्य का स्थान यही श्वेतांबर-संप्रदायवाला जिनालय है; क्योंकि 'पुण्णभद्द' चैत्य की स्थिति गंगा के तट पर कही गई है।

हुसेनशाह (१५वीं शती का अंतिम भाग और १६वीं शती का प्रारंभ) का लिखवाया अभिलेख भागलपुर के 'हजरत शाहबाज के मकबरे' के दरवाजे पर लगा है, जिससे पता चलता है कि १२ रज्जब, ९०७ हिजरी (२१ जनवरी, १५०२ ई०) में, हुसेनशाह के शासन काल में सेनापति यूसुफ-पुत्र मजलिस महमूद ने मस्जिद बनवाई थी। मौलाचक मुहल्ले की वर्त्तमान मस्जिद 'फर्रुखशियर' के शासनकाल में बनी थी। यहाँ के 'कोहिनबाग' महल्ले में बंगाल के नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह का अरबी-भाषा में लिखित प्रस्तर-अभिलेख (१९"×१४") मिला है, जिससे पता चलता है कि नासिरुद्दीन के राज्यकाल, सन् १४५० ई० में यहाँ एक सेतु का निर्माण हुआ था। अरबी-भाषा में ही लिखित 'चंपानगर' महल्ले की मस्जिद में दो पंक्तियों का एक और प्रस्तर-अभिलेख प्राप्त हुआ था, जो बंगाल के हब्शी सुलतान शमसुद्दीन मुजफ्फर शाह का लिखवाया हुआ था। उससे ज्ञात होता है कि 'शमसुद्दिनियाबुद्दीन अबुनसर मुजफ्फरशाह' ने १२ नवंबर, १४९१ ई० में यह मस्जिद बनवाई थी।

भागलपुर के 'बूढ़ानाथ महादेव' का अस्तित्व भी बहुत प्राचीन माना जाता है; पर इनके तिमिरावृत इतिहास पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ सका है। भागलपुर का सेंट्रल जेल भी गंगा के बिलकुल दक्षिणी किनारे 'बरारी घाट' के पास है। 'बक्सर' के जेल-जीवन के बाद इन पंक्तियों के लेखक ने स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के कारण भागलपुर सेंट्रल जेल में भी अपने जीवन के दस महीने बिताये थे। पुरानी चंपानगरी तथा वर्त्तमान भागलपुर का इतना महत्त्व इसीलिए हुआ कि गंगा के प्रवाह पर नौकाओं के द्वारा निरंतर आवागमन सुलभ था, जिससे वणिज्य-व्यापार में बहुत अधिक सुविधा बनी रहती थी। सम्प्रति, गंगा भागलपुर नगर से मानों रूठकर बहुत दूर उत्तर चली गई है। फलतः, उक्त नगर के लिए गंगा का शोभा-सान्निध्य सपना-सा हो गया है।

भागलपुर से पूरब गंगा के दाहिने किनारे पर ही 'सबौर' नामक गाँव है। वहाँ से भी गंगा अब बहुत दूर उत्तर हट गई है। किंतु, प्राचीन काल में गंगा सबौर से सटकर बहती थी, जिसका चिह्न 'मरगंगा' नामक घाट के रूप में आजतक बना हुआ है। वर्षा ऋतु में गंगा की बाढ़ तो आज भी सबौर तक फैलकर बहती है। सबौर में आजकल बिहार का एक प्रसिद्ध कृषि-महाविद्यालय है। प्रसिद्ध बौद्धभिक्षु 'शांतिरक्षित' यहीं के रहनेवाले थे, जो नालंदा से धर्मप्रचार के लिए 'तिब्बत' गये थे। इनके पश्चात् सन् ९८१ ई० में श्रीज्ञान दीपंकर अतिश का जन्म भी इसी 'सबौर' गाँव में हुआ था। 'अतिश', विक्रमशिला-विश्वविद्यालय (कहलगाँव से ९ मील उत्तर) में प्रधान प्राचार्य के पद पर प्रतिष्ठित थे।

ये अपनी वृद्धावस्था में धर्मप्रचारार्थ तिब्बत गये और मृत्यु-पर्यन्त वहाँ धर्म का कार्य करते रहे। 'अतिश' को तिब्बत ले जाने के लिए वहाँ के राजा ने विक्रमशिला-विश्वविद्यालय में एक शिष्टमंडल भेजा था, जो उन्हें बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ नेपाल के रास्ते तिब्बत ले गया था।

सबौर से ७ मील दूर पूर्वी रेलवे का घोघा स्टेशन है, जिसके उत्तर-पश्चिम कोण में 'चानन' नदी गंगा से मिलती है। चानन नदी पहले सबौर के पूरब में ही गंगा नदी से संगम करती थी, जो अब पूरब की ओर हटकर 'घोघा' से उत्तर गंगा में प्रवेश करता है। इस चानन नदी का भी आदिस्रोत मुँगेर जिले से ही प्रवाहित होता है। इसके मूल स्रोत के पास मुँगेर जिले के दक्षिणी पठार का 'बारो' गाँव और भागलपुर जिले के 'कटोरिया' थाने का 'बाँक' (बाँका नहीं) गाँव, पूर्वी रेलवे (किऊल-आसनसोल-रेलपथ) के आर-पार में बसे हैं। ये दोनों गाँव 'सिमुलतल्ला' और 'गरजोरा' नामक रेलवे स्टेशनों की समान दूरी पर बीच में स्थित हैं। यहीं से 'चानन नदी' की मुख्य धारा प्रथम-प्रथम प्रवाहित होती है। यह धारा मुँगेर जिले के 'करपा' और 'बारो' गाँवों से होती जब भागलपुर जिले में प्रवेश करती है, तब 'बाँक' गाँव से होते पूरब दिशा में बढ़ती है। इसके इसी पूर्वी प्रवाह-पथ में 'संताल परगना' के देवघर के उत्तरी भाग के कुछ छोटे स्रोत 'चानन' में आ गिरते हैं, जिनसे अधिकांश लोग यही जानते हैं कि 'चानन' का मूल उत्स 'देवघर' की उत्तरी पहाड़ियों में है। 'चानन' भागलपुर की सबसे बड़ी नदी है और इसके दक्षिणी क्षेत्र का बहुलांश जल-भांडार 'चानन' ग्रहण करती है। किंतु, यह जब जिले के 'बाँका' उपनगर से उत्तर बढ़ती है, तब बिलकुल छिन्न-भिन्न होने लगती है और 'अमरपुर' के पूरब-उत्तर कोण में स्थित जब 'जगदीशपुर' गाँव को पहुँचती है, तब तो बिलकुल ही छिन्न-भिन्न हो जाती है। यहाँ से इसकी दो पतली शाखाएँ अलग होकर पश्चिम-उत्तर कोण में 'नाढ़ा' और 'अन्हरी' नाम से चलती हैं और 'नाथनगर' के पश्चिम भाग से बहती और बड़ुआ के बरसाती जल को समेटती 'जमुनिया' नाम से गंगा में प्रवेश करती है। इस जमुनिया की चर्चा पहले ही जा चुकी है। 'चानन' की प्रधान धारा राजपुर से उत्तर चलकर भागलपुर नगर के दक्षिण में पहुँचती है, तब यह पूरब दिशा की ओर मुड़ कर चलने लगती है। इस यात्रा-पथ में यह 'कदवा' नदी को समेटती है और तब 'घोघा' स्टेशन के पश्चिम-उत्तर कोण में पहुँचकर एवं रेलपथ और मोटर-पथ को पार कर गंगा में समा जाती है। बहुत-से लोग अंगदेश की प्राचीन नदी 'चंपा' को नामसाम्य के कारण, 'चानन' समझते हैं, जो भ्रम ही है। वह 'चंपा' नदी तो अंग और मगध की सीमा पर थी और झीलवाली नदी थी। अतः, भागलपुर से पूरब में संगम करनेवाली 'चानन' नदी पुरानी 'चंपा' नहीं हो सकती। 'चंपा' के मुहाने पर बिंबिसार के साथ अंग के अधिपति 'दधिवाहन' का युद्ध हुआ था। बिंबिसार के समय अंग का अधिपति दधिवाहन था, इसका इतिवृत्त हमें 'विविधतीर्थकल्प' के 'चंपापुरीकल्प' में प्राप्त होता है।

'चानन' नदी को आत्मसात् करने के पश्चात् गंगा नदी उत्तर-पूर्व कोण की ओर मुँह करके चलती है और जब 'एकचारी' रेलवे स्टेशन के पश्चिम में ही रहती है, तभी 'परमानंदपुर' और 'पकरतल्ला' गाँवों के ईशान कोण (पूर्वोत्तर कोण) में 'गेड़ुआ' और 'भेन' नामक नदियाँ गंगा में प्रवेश करती हैं। सुखनिया, चीर, कझिया, सुंदर आदि छोटी-छोटी निर्झरिणियों के सम्मिलित प्रवाह से 'गेड़ुआ' नदी बनती है। इसी प्रकार उकई, सकरी और धिवरी—इन तीन सरिताओं के मिलन से 'चीर' नामक नदी अपना स्वरूप ग्रहण करती है। सकरी, धिवरी, कझिया और सुंदर ये चार नदियाँ 'संतालपरगना' जिले से प्रवाहित होती हैं। इन सारी सरिताओं के जल-प्रवाह का नाम 'गेड़ुआ' है, जो 'परमानंदपुर' और 'पकरतल्ला' के पास गंगा में गिरती है। जहाँ यह गंगा से मिलती है, वहीं इसके सटे पूरब में 'भेन' नामक नदी भी गंगा से संगम करती है। इस संगम को वहाँ के लोग 'त्रिमुहानी' या 'तिरमुहानी कहते हैं। 'भेन' नदा 'संतालपरगना' जिले के 'गोड्डा'-अनुमंडल के 'महगामा' गाँव के दक्षिण-पश्चिम भाग से चलती है और 'छोटकी नाकी' नामक गाँव के पास भागलपुर जिले में प्रवेश करती है और इसके बाद 'गंगा' में समाती हैं। इसी 'त्रिमुहानी'-संगम से गंगा उत्तरवाहिनी हो जाती है। यहाँ गंगा नदी के उत्तरवाहिनी होनेका मुख्य कारण यह है कि इसके आगे 'कहलगाँव' की पहाड़ियाँ गंगा के सीधे बहने में रुकावट डालती हैं। उत्तरवाहिनी होकर गंगा नदी जब कुछ ही दूर आगे बढ़ती है, तब 'कहलगाँव' नगर के सटे दक्षिण में फिर 'कोआ' नामक नदी को अपने में समेटती है। 'कोआ' नदी भी संतालपरगना जिले के उत्तरी क्षेत्र से प्रवाहित होती और पश्चिम दिशा में बहती हुई बढ़ती है। जब यह 'एकचारी' रेलवे स्टेशन के समीप पहुँचती है, तब एकाएक उत्तरवाहिनी बन जाती है। कोआ नदी भी 'धोल्ला' और 'लोहरा' इन दो सरिताओं के मिलने से बनती है। 'कोआ' को कवलित करके तापत्रयविनाशिनी गंगा नदी उत्तर की ओर दौड़ती हुई 'कहलगाँव' पहुँच जाती है।

पापौघहारिणी गंगा के तटीय तीर्थों एवं तटस्थ वाणिज्य-व्यापारवाले नगरों में 'कहलगाँव' का एक विशिष्ठ महत्त्व है। पूर्वकथित त्रिमुहानी के पास से ही, भागलपुर-कहलगाँव-राजपथ पर चलनेवाले यात्रियों को, कहलगाँव की पहाड़ियाँ अपने मनोरम दृश्यों से आकृष्ट करने लगती हैं। पर्वत के मस्तक पर स्थित महाविद्यालय का भवन दूर से ही स्वर्ग के महल-सा दिखाई पड़ता है। कहलगाँव का गंगा के गर्भ में पंक्तिबद्ध रूप में व्यवस्थित होकर, अलग-अलग तीन छोटी पहाड़ियाँ स्थित हैं। बरसात के दिनों में इन पर्वतों के कंधे से और अन्य दिनों में कटि-प्रदेश से गंगा की धारा निरंतर खेलती है। पर्वतों को धकियाता तरंग-कल्लोल दर्शकों के अंतर में सात्त्विक शक्ति की एक रहस्यमय विद्युत्-स्पंदन की अनुभूति जगाता है। इन तीन शिशु-शैलों के पाद-पद्मों में विष्णुपदी जाह्नवी जाने कब से लोट-पोट करती आ रही है और त्रिदेव के रूप में अहर्निश इनकी आराधना में लगी है। त्रिरूपा प्रकृति के अथवा ज्ञान, कर्म तथा भक्तियोग के समन्वय में

सृष्टितत्त्व की महाशक्ति का उद्दाम उद्वेग विशेषतया वर्षा ऋतु में, कहलगाँव की गंगा प्रकट करती है। इस स्थान में गंगा का नाम 'जह्नु-ह्रद' है और इसी पहाड़ी पर जह्नु ऋषि का आश्रम था, जहाँ जह्नु ऋषि चुल्लू में उठाकर गंगा को पी गये थे। यह पहले ही कहा गया है कि सुलतानगंज में 'जह्नु-आश्रम' नहीं था, बल्कि 'कहलगाँव' में था। कहलगाँव में जह्नु-आश्रम होने का संकेत हमें 'नारदीयमहापुराण' (उत्तरखण्ड, ४१।४६) के निम्नलिखित दो श्लोकों में स्पष्ट रूप से मिलता है :

विश्वामित्रस्य भगिनी गङ्गया यत्र सङ्गता।
तत्राप्लुतो नरो भूयात् वासवस्य प्रियोऽतिथिः ॥४६॥
जह्नुह्रदे महातीर्थे स्नातो मर्त्यो हि मोहिनि।
एकविंशतिकुल्यानां तारको भवति ध्रुवम् ॥४७॥

उक्त पुराण 'कलशतीर्थ' के बाद गंगा के पूर्व की ओर बढ़ने पर उसके तीर्थों में 'जह्नुह्रद' का ही नाम लेता है और कहता है कि विश्वामित्र की बहन (कौशिकी नदी) जहाँ गंगा से संगम करती है, वहाँ स्नान करने से मनुष्य इन्द्रपुरी को प्राप्त करता है और उस 'जह्नुह्रद' में स्नान करनेवाला अपनी इक्कीस पीढ़ी तक के पितरों को तार देता है। इन श्लोकों में 'ह्रद' शब्द सूचित करता है कि यह गंगा का वह स्थान है, जहाँ झील का दृश्य था और इसका स्पष्ट प्रतिपादन है कि वहाँ 'कौशिकी' के संगम करने से गंगा झील के रूप में फैली हुई थी। अतः, जह्नुह्रद या जह्नु-आश्रम कोसी के संगमस्थान पर था, न कि सुलतानगंज में। प्राचीन काल में कोसी का संगम 'कहलगाँव के' सामने ही था, जहाँ से यह आगे हटकर 'वटेश्वरस्थान' तक गया और आज तो कहलगांव से भी १० मील आगे चला गया है। 'नारदीयपुराण' के मत की पुष्टि 'स्कंदपुराण' के रेवाखंड की तीन पंक्तियों से भी होती है कि जह्नुतीर्थ 'कहलगाँव' में था। वहाँ कहा गया है कि भगीरथ की कठिन तपस्या और स्तुति से जब 'जह्नु ऋषि' संतुष्ट हुए, तब उन्होंने उत्तरवाहिनी गंगा का विसर्जन किया, जिससे 'गंगा' का नाम जाह्नवी' पड़ा :

तमेवाराधयामास तपसोग्रेण भारत।
ततस्तुष्टस्तु भगवान् मुमोचोत्तरवाहिनीम् ॥
ततःप्रभृति लोकेऽस्मिन् जाह्नवीति प्रकीर्त्तिता।

—स्कंदपु०, रेवाखं०, ९।१५-१६।

'सुलतानगंज' में भी गंगा कुछ दूर तक उत्तरवाहिनी है, किंतु 'जह्नु-आश्रम' वहाँ था, जहाँ गंगा दो योजन (१६ मील) की दूरी में उत्तर की ओर बहती है। यह बात ११वीं शती में रचित 'त्रिस्थलीसेतु' नामक ग्रंथ (पृ० १०१) में प्राप्त एक श्लोक से प्रमाणित होती है। इस श्लोक में कहा गया है कि 'जाह्नवी' गंगा दो योजन तक उदङ्मुखी है, अतः वह अतिशय पवित्र है :

पुण्या चोदङ्मुखी गङ्गा, प्राची चैव सरस्वती ।
उदङ्मुखी योजने द्वे गच्छते जाह्नवी नदी ।।

उदङ्मुखी 'जाह्नवी' का ऐसा वहाव कहलगाँव में ही प्राप्त है, सुलतानगंज में नहीं । भागलपुर जिले के कहलगाँव के पास गंगा नदी पूर्वी रेलवे के 'घोघा' स्टेशन के निकट गेड़ुआ-भेन-संगम से आरंभ करके 'जरलाहीघाट' और 'करहाघाट', अर्थात् कोसी-संगम तक, ठीक १६ मील की दूरी में उदङ्मुखी होकर बहती है । सुलतानगंज में इतनी दूरी तक गंगा न तो कभी उदङ्मुखी थी और न आज है । वहाँ तो गंगा की मुख्य तथा प्राचीन धारा वस्तुतः पूर्ववाहिनी ही है । अतः, इन सभी प्रमाणों से स्पष्ट है कि 'जह्नु-आश्रम' कहल-गाँव' की गंगा में स्थित पहाड़ी पर ही था । चूँकि यहाँ जह्नुतीर्थ था, इसीलिए वटेश्वर की पहाड़ी भी तीर्थस्थान बनी, साथ ही यह हिंदुओं और बौद्धों का भी महत्त्वपूर्ण तीर्थ घोषित हुई थी । वटेश्वर पहाड़ी के पूर्व में 'विक्रमशिला-विश्वविद्यालय' की स्थापना के परिवेश में जाह्नवी' की पवित्रता का भी खयाल किया गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं ।

चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' ने भागलपुर से २४ मील दूर पूरब में, गंगा नदी के दाहिने किनारे, जिस देवमंदिर को देखा था, उसे, दूरी के निर्देश के अनुसार, इसी 'कहलगाँव' में होना चाहिए । वंगाल का शासक महमूद शाह सन् १५३९ ई० में 'कहल-गाँव' में ही मरा था, जिसकी कब्र वहाँ की 'शाहकुमारी' पहाड़ी के उत्तर के पाश्ववर्त्तीबाग में आज भी देखी जा सकती है । यह वही गौडशासक महमूद है, जिसकी झड़पें शेरशाह सूरी से होती रहीं । शेरशाह ने इसी से ८३ लाख रुपये नजराने में वसूल किये थे । कहलगाँव में 'महमूद' स्वाभाविक मृत्यु से मरा; पर उसके दो पुत्रों को शेरशाह ने मरवा डाला था, जिनकी कब्रें महमूद की कब्र के पास ही बनी हैं । यह पहले कहा गया है कि हुमायूँ जब गौड की ओर बढ़ रहा था, तब महमूद सदल-बल उससे 'मनेर' में आकर मिला था । वह हुमायूँ को बंगाल की ओर जल्द पहुँचने के लिए प्रेरित कर स्वयं गौड की ओर शीघ्रता से बढ़ा । किंतु, कहलगाँव पहुँचने पर महमूद की मृत्यु हो गई । बाद, जब 'हुमायूँ' कहलगाँव पहुँचा, तब वह वहाँ चार दिनों तक रुककर उसके लिए मातम मनाता रहा ।

कहलगाँव के सबसे अधिक दर्शनीय स्थल हैं—'जह्नु-आश्रम' की तीन पहाड़ियाँ, जो गंगा की मुख्य धारा के बीच में स्थित हैं । इन पर्वत-शिशुओं के शिखर-प्रदेश से दृष्टिपात करने पर गंगा के जलस्तर से अंतरिक्ष के एकाकार होने का दृश्य जगत्स्रष्टा की विराट् महिमा का बोध कराता है । इन तीन गांगेय शैलों में दो शैलों को गंगा ने मिट्टी पाटकर परस्पर जोड़ दिया है । यह भी सुना कि कभी-कभी बीच की मिट्टी को गंगा बहा ले जाती है और जुड़े शैल आपस में अलग हो जाते हैं । ये तीनों शैल कहलगाँव के 'कालीघाट' के सामने हैं । यहाँ से नाव द्वारा इन पर्वतों पर यात्री पहुँचते हैं । कालीघाट से उत्तर 'राजघाट' है, जिसे 'महादेवघाट' भी कहा जाता है ।

दक्षिण-पश्चिम कोण में स्थित इस गंग-शैल पर आजकल एक पंजाबी साधु का आश्रम है। यहीं कोणार्क-सूर्यमंदिर के वास्तु की अनुकृति पर एक अनगढ़ और अधबना मंदिर भी है। लगता है, एक ऊँची चट्टान पर कोई शिल्पी इस मंदिर को रूपायित कर रहा था, जो अधूरा ही रह गया। मंदिर के बाहरी भाग का पूर्वी हिस्सा तैयार हो गया है; पर अन्य भाग अनिर्मित ही रह गये हैं। यह शिला-मंदिर दक्षिण मुँह का बन रहा था। इस पहाड़ी पर कभी एक मस्जिद भी थी, जो मुस्लिम-काल में मंदिर को तोड़कर उसी के अवशेषों से बनाई गई थी। इस पंजाबी साधु से पहले भी एक अन्य साधु का आश्रम इस पहाड़ी पर था। उन्होंने मंदिर-मस्जिद के झगड़े में कारावास की सजा भी भोगी थी। मुझे वहाँ यह भी बतलाया गया कि उस साधु के साथ एक बंदर भी था, जो उनका अतिशय विश्वस्त साथी या अनुचर था। साधु महाराज उस मंदिर-मस्जिदवाले झगड़े में जब भागलपुर के सेंट्रल जेल में सजा भुगत रहे थे, तब वह बंदर उस पहाड़ी पर पहरा देता था और यदा-कदा कहलगाँव स्टेशन में रेलगाड़ी की छत पर बैठकर भागलपुर पहुँचता और वहाँ के सेंट्रल जेल में जाकर साधु से भेंट कर आता था। कहलगांव की जनता उस बंदर को साक्षात् बजरंगबली का अवतार मानती थी और उसका सम्मान देवता की तरह होता था। वह जिधर चलता, लोग उसकी वंदना करते। उस साधु के निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् वर्त्तमान पंजाबी साधु ने इस पहाड़ी पर अपना आश्रम स्थिर किया है। इन्होंने उस मस्जिद के स्थान पर पुनः मंदिर का निर्माण करा दिया है, जिससे यह पर्वत अब हिंदुओं का तीर्थस्थान बन गया है।

गंगा-प्रवाह में स्थित उन तीनों पहाड़ियों में बीचवाली पहाड़ी पर स्वामी नरेश ब्रह्मचारी नामक एक वंगवासी संन्यासी का आश्रम है। आश्रम की वर्त्तमान स्थिति प्राचीन काल के ऋषि-आश्रम का स्वरूप प्रदर्शित करती है और जामुन, आम, कटहल, श्रीफल, निचुल, नीम आदि के हरे-भरे वृक्षों से वह आश्रम परम रमणीय बना रहता है। इस शैल-शिखर पर प्रतिष्ठित भव्य आश्रम और मंदिर तपस्साधना की दृष्टि से बड़े ही उपयुक्त हैं। गंगा-जल से सिक्त और पुनीत वायु इस आश्रम को तपस्वियों के लिए सुखद स्वर्गस्थली के रूप में परिणत करती रहती है। मंदिर से ऊपर पर्वत-शिखर की छोटी गुफा में विष्णु भगवान् की अष्टधातु-निर्मित एक मूर्त्ति स्थापित है, जिसकी नित्य पूजा-अर्चा होती है। इस गुफा-मूर्त्ति तक पहुँचने में दर्शनार्थियों को कठोर श्रम का सामना करना पड़ता है।

सबसे उत्तर भागवाली तीसरी पहाड़ी पर राजस्थान के कोई मारवाड़ी साधु रहते हैं। यह पूर्वोक्त दोनों पहाड़ियों से अधिक रमणीय और संपन्न है। इस पहाड़ी से पश्चिम और दक्षिण कोण में निहारने पर गंगा का अंचल सुदूर भाग तक विस्तृत नीले नभ के नीचे फैला दीखता है और संध्या का अरुणिम सूर्य लाल क्षितिज के साथ ही गंगा में गोता

लगाता है। इस पहाड़ी की दरारों की कंदराओं में कई कुटियाँ बनी हैं, जो ध्यान-धारणा के लिए अत्यंत ही अनुकूल हैं। आश्रम के चारों ओर अंगूर की लताएँ, अनार, आम, वेल, हेना, नीम आदि के वृक्ष बड़े व्यवस्थित और सुसज्जित ढंग से लगाये गये हैं। साधुओं के आश्रमों में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन-कार्य भी चलता है। इन्हीं तीन (पंजाबी, बंगाली और मारवाड़ी) पहाड़ियों में किसी एक पर जह्नु-आश्रम विद्यमान था।

कहलगाँव में इन तीन गांगेय पहाड़ियों के अतिरिक्त और भी दो पहाड़ियाँ हैं। प्रथम, नगर के मध्य में स्थित पहाड़ी पर आधुनिक विक्रमशिला-महाविद्यालय स्थापित है। महाविद्यालय का विशाल भवन किसी 'गांगुली' महोदय का है, जिन्होंने किसी अँगरेज से इसे खरीदा था। महाविद्यालय के अधिष्ठाता स्वामी श्रीअखंडानंदजी (मौनी बाबा) हैं। ये उत्तरप्रदेश के किसी स्थान के रहनेवाले हैं, और ऋषिकेश से वटेश्वर की पहाड़ी पर आये हैं। वटेश्वर स्थान में ये चौदह वर्षों तक विभिन्न साधनाओं में लगे रहे। उसके बाद स्थानीय लोगों के आग्रह पर कहलगाँव आकर इन्होंने उक्त महाविद्यालय की स्थापना की। इनका अखंड मौन व्रत पिछले १९ वर्षों से अबतक चल रहा है।

महाविद्यालय का भवन पुराना है, पर है आलीशान। इसके पिछले भाग में बौद्ध मूर्त्तियों के कुछ टूटे-फूटे अवशेष पड़े हैं। प्रस्तर-निर्मित प्राचीन स्तूप और चौखट के भग्नावशेष यहाँ हैं। ये सभी अवशेष तेलियागढ़ी से लाकर रखे गये हैं। महाविद्यालय से दक्षिण की ओर शहर की सड़क पर पहाड़ से उतरने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं; पर पूर्वी भाग का रास्ता स्वभावतः ढालुआँ और ऊबड़-खाबड़ है।

कहलगाँव के पूर्व में, उक्त अतिरिक्त दो पहाड़ियों में से दूसरी, 'शाहकुमारी' नामक पहाड़ी है, जिसके उत्तरी-पूर्वी पादमूल में लोकनिर्माण-विभाग का विश्रामागार बना हुआ है। विश्रामागार के सामने कहलगाँव की हाट लगती है। इसी हाट के उत्तर-पूर्व कोण में पेड़ों के बीच गौड के शासक महमूद शाह का मकबरा है, जिसके साथ उसके दो लड़कों की भी कब्रें हैं। यह हाट पुरानी कब्रों की भीड़ से भरी एक कब्रगाह में ही लगती है। हाट के पूर्व इन कब्रों से अलग, इमली के पेड़ के नीचे, एक अत्यंत जीर्ण कब्र है, जो अपने समय में आलीशान बनी होगी। निश्चय ही, यह किसी विशिष्ट व्यक्ति की कब्र मालूम पड़ती है। 'शाहकुमारी' पहाड़ी के नाम से अनुमान होता है कि इसका संबंध महमूद शाह की लड़की से है, जो या तो इसपर दफनाई गई हो या इसके किनारे कहीं रहती हो।

कहलगाँव के 'राजघाट' के पास, गंगा के तट पर, दुर्गास्थान है। यहाँ दुर्गा की कोई मूर्त्ति नहीं है, दुर्गा के प्रतिनिधि के रूप में केवल कलश स्थापित है। राजघाट और दुर्गास्थान--दोनों रासविहारी चौधरी नामक व्यक्ति के अधीन हैं। पहले चौधरी-परिवार बहुत वैभव-संपन्न था। किंवदंती है कि इसी चौधरी-परिवार की एक कन्या नित्य दुर्गा-पूजा के लिए उक्त स्थान में जाती थी। एक रात जब लड़की घर नहीं आई, तब

देखा गया कि दुर्गा के मुँह में उसका वस्त्र अँटका हुआ है और लड़की का कहीं पता नहीं है। लोगों का अनुमान है कि दुर्गा ने उसकी बलि ले ली। तब से दुर्गा की सवारी, रात में यदा-कदा, चौधरीजी के घर तक जाती है, जिसकी आवाज लोग सुनते हैं। उक्त रासविहारी चौधरी उसी चौधरी-परिवार के एक सदस्य हैं।

कहलगाँव से उत्तर-पूर्व कोण में 'भदेर' नामक पहाड़ी दीख पड़ती है, जिसे लोग 'भद्रगिरि' पहाड़ी कहते हैं। कहलगाँव के लोगों का कहना है कि उस 'भद्रगिरि' पर जैनों के २४वें तीर्थंकर स्वामी महावीर ने अपना वर्षावास किया था।

कहलगाँव से लगभग छह मील उत्तर बहने पर गंगा नदी को अपने दाहिने भाग में 'वटेश्वरनाथ' की पहाड़ी मिलती है। वटेश्वरनाथ की पहाड़ी से दो मील पूर्व आजकल के 'अंतीचक' गाँव के पास प्राचीन ऐतिहासिक 'विक्रमशिला-विश्वविद्यालय' था, जिसे गौड़ शासक धर्मपाल ने स्थापित किया था। उक्त विश्वविद्यालय की गौरव-गरिमा, विशालता और प्राचीनता का साक्ष्य आज भी उसके भग्नावशेष दे रहे हैं। इसी विश्वविद्यालय से 'श्रीज्ञान दीपंकर अतिश' के नेतृत्व में ३५ बौद्ध विद्वान् धर्म का प्रचार करने हिमालय को लाँघकर 'तिब्बत' गये थे। इस विश्वविद्यालय में उस समय ख्यातिलब्ध १०८ प्राध्यापक विद्यमान थे। इसके सभा-भवन में एक साथ ८,००० व्यक्ति बैठकर धर्म-प्रवचन सुनते थे। यहाँ वेद, वेदांत, उपवेद, हेतुविद्या, सांख्ययोग, मीमांसा, हीनयान, महायान तथा तंत्रयान की उच्च शिक्षा दी जाती थी। शिक्षार्थी-वर्ग को निःशुल्क भोजन, वस्त्र और शिक्षा उपलब्ध होती थी। वे सभी नित्य वटेश्वरस्थान जाकर त्रिपुरारि-शिरश्चारिणी गंगा में स्नान करके अपने शारीरिक और मानसिक मल से मुक्त होते थे।

'वटेश्वर पहाड़ी' को 'पत्थरघट्टा' भी कहा जाता है। इस पहाड़ी में प्रसिद्ध पाँच ऐतिहासिक गुफाएँ हैं, जिनमें प्रधान गुफा का नाम 'वटेश्वर गुफा' है। इस गुफा की भीतरी छत में पहले बेल-बूटे उकेरे गये थे, जिनके टूटे-फूटे चिह्न आजतक कहीं-कहीं दीख पड़ते हैं। गुफा का द्वार पश्चिम मुँह का है, फलतः जाह्नवी के पवित्र जल से सिक्त सरस समीर गुफा के अंतराल को निरंतर शीतल और पवित्र करता रहता है। इस गुफा के उद्‌घाटन के समय इसमें पीतल और चाँदी की बहुत-सी मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई थीं। इसी गुफा के ऊपरी भाग में, उत्तर किनारे, बलुआही पत्थर की कुछ मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं; जिनमें अनेक तो नष्ट हो गई हैं और जो बची हैं, वे भी धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं। मूर्त्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में उकेरी गई हैं, जिनके साथ वाहन के प्रतीक भेड़, कुत्ते, भैंस, हरिण या अन्य जीव-जंतु हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं इनका निरीक्षण सन् १९७० ई० की जनवरी में किया था और उस समय ९४ छोटी-बड़ी मूर्त्तियाँ अपनी जीर्णावस्था में बची हुई थीं। मूर्त्तियों की बनावट तथा इनके वाहन-प्रतीकों को देखकर कुछ लोगों का अनुमान है कि ये मूर्त्तियाँ ८४ बौद्धसिद्धों की थीं। इतिहास के विद्वानों का कहना है कि बंगाल के शासक बल्लालसेन ने यहाँ अपना शासन-केंद्र बनाया था और उसके एक प्रतिनिधि 'वढमित्र' ने 'आदि वटेश्वर' शिवलिंग की स्थापना की थी, जिससे इस स्थान का नाम

'वटेश्वर' हुआ। 'पद्मपुराण' के स्वर्गखंड (पाद ३, अध्या० ३८, श्लो०४७) से ज्ञात होता है कि इसका नाम 'वटेश्वरपुर' था और यहाँ 'केशव' की मूर्त्ति स्थापित थी :

वटेश्वरपुरं गत्वा अर्चयित्वा च केशवम्।
ईप्सितांल्लभते लोकान्नुपवासान्न संशयः॥

किंतु यह कहना कठिन है कि 'पद्मपुराण' के इस श्लोक की रचना कब हुई थी, बल्लालसेन के शासनकाल के पहले या बाद में ? किंतु, यह तो सर्वविदित है कि बल्लालसेन से कई सौ वर्ष पूर्व पालराजा धर्मपाल ने इस पवित्र स्थान के पास विक्रमशिला-विश्वविद्यालय स्थापित किया था और वटेश्वरनाथ में भी गुफाएँ और मूर्त्तियाँ स्थापित हो गई थीं। अतः, 'वटमित्र' ने किसी नवीन मंदिर का निर्माण कराया और वहाँ शिवलिंग स्थापित किया। 'पद्मपुराण' केशव की मूर्त्ति की चर्चा करता है, किसी शिवलिंग की नहीं; अतः यह रचना भी बल्लालसेन के पूर्व की ही संभव है।

आजकल 'वटेश्वरनाथ' का मंदिर यहाँ के प्रधान और प्राचीन गुफा से दक्षिण निकट में ही है। प्राचीन मंदिर के द्वार पर वंगाक्षर में उल्लेख है कि फसली सन् १२१७ (सन् १८१० ई०) में भवानीचरण के पुत्र श्रीकृष्णमित्र ने मंदिर का निर्माण कराया, जो हुगली जिले के 'चापता' ग्राम का रहनेवाला था। मंदिर साधारण तथा छोटा है और इसमें किसी प्राचीन मंदिर के अवशेष लगाये गये हैं। गंगा के दाहिने किनारे वटेश्वर पहाड़ी के पश्चमीय जानु-प्रदेश पर मंदिर खड़ा है, जो उत्तर रुख का है। मंदिर के द्वार के आगे, दाहिने भाग में विष्णु, गणेश, नागकन्या, चैत्यों के टुकड़े और बुद्ध के टूटे शीर्षभाग के प्राचीन अवशेष खड़े और लुढ़के हुए हैं। मंदिर के भीतर केवल शिवलिंग है, जिसपर गंगा-स्नानार्थियों के द्वारा गंगा-जल ढलता रहता है। मंदिर का द्वार संकीर्ण है, अत. झुककर प्रवेश करना पड़ता है। निश्चय ही, मंदिर की बनावट में गुफा की आकृति का खयाल रखा गया है। इस मंदिर के सामने इससे भी एक छोटा मंदिर है, जो दक्षिण मुँह का है और दोनों के द्वार आमने-सामने हैं। दक्षिण मुँहवाले इस छोटे मंदिर में तीन हाथ ऊँची एक सूर्य-मूर्त्ति स्थापित है। इसमें विष्णु की एक मूर्त्ति बुद्धासन में बैठी है और गौरी-शंकर की मूर्त्ति ललितासन में विराजित है, और भगवान् शंकर के हाथ की अंगुलियाँ गोरी की ठुड्डी का स्पर्श कर रही हैं।

आधुनिक वटेश्वर शिव के मंदिर का निरीक्षण करने से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह 'आदि वटेश्वर' का मंदिर नहीं है। पहाड़ी के नैऋत्यकोण में, गंगा के बिलकुल तट पर, नागा बाबा का एक आधुनिक तथा प्रशस्त मंदिर पूर्वाभिमुख बना है, जिसके दाहिने और पृष्ठभाग में गंगा की धारा प्रवाहित है। इस मंदिर के ठीक सामने एक प्राचीन और बड़ा वटवृक्ष है। यह वृक्ष एक अतिप्राचीन मंदिर की छाती तोड़कर खड़ा हो गया है। वृक्ष के पादमूल में प्राचीन मंदिर के चिह्न आजतक वर्त्तमान हैं और वटवृक्ष के तने के भीतर भी मंदिर की ईंटों के अवशेष देखे जाते हैं। वृक्ष जिस प्राचीन ऊँचे

अवशेष पर खड़ा है, वह मंदिर का 'जगमोहन' है। निरीक्षण से ज्ञात होता है कि मंदिर दक्षिण रुख का था और गंगा की धारा उसके सामने में बहती थी। फिलहाल, यहाँ गंगा की धारा ईशान (पूर्व-उत्तर) कोण में धँसकर फिर उत्तर की ओर बहती है। प्राचीन टूटे 'जगमोहन' के चारों तरफ टूटी-फूटी मूर्त्तियों के टुकड़े तथा पत्थर की चौखटें बिखरी पड़ी हैं। एक टूटा हुआ वृषभ तथा गुप्तकालीन कुछ ईंटें भी जमीन में धँसी हुई मिलती हैं। अतः, यह निश्चित-सा है कि वटेश्वर का प्राचीन मंदिर यहीं था।

इस प्राचीन स्थान से पूरब, एक सौ गज की दूरी पर भी कभी कोई प्राचीन मंदिर था। यहाँ भी किसी मंदिर के ही भग्नावशेष पर वटवृक्ष खड़ा है। यहाँ भी प्राचीन प्रस्तर की चौखटें और मूर्त्तियों के टूटे हिस्से पड़े हैं। लगता है, इन्हीं दोनों मंदिरों में किसी एक का उद्धार बल्लालसेन के प्रतिनिधि वटमित्र ने कराया था। श्रीकृष्ण मित्र वटमित्र का वंशज हो तो, कोई आश्चर्य नहीं; जिसने अपने पूर्वजों के तीर्थों की स्मृति में नया मंदिर बनवाया हो। इन सारी उपलब्धियों से स्पष्ट है कि गंगा-किनारे की यह वटेश्वर पहाड़ी निश्चय ही अतिशय पवित्र और प्राचीन तीर्थस्थान रही है। वटेश्वर-स्थान तथा विक्रमशिला-विश्वविद्यालय-विषयक पुरातत्त्व के अवशेषों के प्रस्तुत निरीक्षण-कार्य में प्रसिद्ध कलाशिल्पी एवं मेरे अभिन्न मित्र श्रीउपेन्द्र महारथी साथ दे रहे थे।

वटेश्वरनाथ महादेव-स्थान के उत्तर तथा 'सुखुनगर' गाँव से थोड़ा पश्चिम हटकर, उत्तर की दिशा में ही गंगा की एक प्राचीन धारा प्रवाहित है, जो 'दयालपुर' गाँव से पश्चिम ही अग्निकोण तथा पूर्व दिशा में चलकर 'बुद्धूचक' गाँव को आती है। यहाँ गंगा के मुड़ने का कारण यह था कि इसके सामने, गंगा के बायें भाग में, कोसी नदी गंगा से संगम करती थी, जिसकी धारा अब आगे बढ़ गई है। 'बुद्धूचक' वाली धारा यहाँ से अग्निकोण में चलकर दक्षिण की ओर मुड़ती थी तथा 'मोहनपुर-गउघट्टा' गाँव के पूरब आकर पुनः उत्तर मुड़ जाती थी। तत्पश्चात् पूरब और फिर अग्निकोण में बहकर 'पीरपैंती' के पास प्रधान धारा से मिल जाती थी। इस प्राचीन धारा को आजकल 'मरंगा-धार' कहते हैं, जिसका अर्थ है–मर-गंगा-धार, अर्थात् गंगा की मरी हुई धारा। पहले यही गंगा की मुख्य धारा थी। इन दोनों धाराओं के बीच दियारा-क्षेत्र है, जिसमें 'जरलाहीघाट' और 'करहाघाट' नामक गाँवों के पास गंगा के उस पार जाने का घाट है। ठीक इसी के सामने आजकल 'कोसी' का संगम है और यहीं तक गंगा नदी उत्तरवाहिनी है। पूर्णिया जिले के 'कुरसेला' स्थान को जानेवाले यात्री 'जरलाहीघाट' में गंगा को पार करते हैं और 'काढ़ागोला' जानेवाले 'करहा (कढ़ा) घाट' को गंगा को लाँघते हैं।

पहले कौशिकी (कोसी) नदी की चर्चा की गई है। यह कोसी नदी वटेश्वरनाथ पहाड़ी और शिवनारायणपुर रेलवे स्टेशन के सामने गंगा के बायें बाजू में संगम करती है तथा हिमालय की अनेक हिमनदियों का भारी जल-समूह अपने साथ लाती है। कई पुराणों और महाभारत (वनपर्व, अध्याय ८४) से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र ऋषि की बड़ी बहन 'सत्यवती' कौशिकी नदी के रूप में परिणत हो गई थी।

अपनी बड़ी बहन के प्रेम के कारण ऋषि विश्वामित्र 'कौशिकी' के तट पर ही आश्रम बनाकर तपस्या करते थे। 'पद्मपुराण' से पता चलता है कि कौशिकी-संगम के किंचित् ऊपर सभी पापों का प्रक्षालन करनेवाला 'भरताश्रम' तीर्थ था :

भरतस्याश्रमं गत्वा सर्वपापप्रमोचनम्।
कौशिकीं तत्र सेवेते महापातकनाशिनीम् ॥
—पद्म पु०, स्वर्गखंड ३, अध्या० ३८।४९

इसी कौशिकी के तटीय वन-प्रदेश से, जैसा पहले कहा गया है, 'ऋष्यश्रृंग' ऋषि को चंपा के अधिपति 'रोमपाद' की वेश्याएँ अपने मोहपाश में फँसाकर उन्हें नाव द्वारा चंपा ले आई थीं।

मुख्य 'कोसी' का उद्गम-स्थान तिब्बत में है। इस मुख्य स्रोत का नाम अरुण-कोसी है। यह एवरेस्ट चोटी को उत्तर और पूरब से घेरती हुई दक्षिण में मुड़कर नेपाल में आती है और जब नेपाल की दक्षिणी सीमा की ओर पहुँचने लगती है, तब कोसी की अन्य छह धाराएँ भी इसमें मिलती है। इसके बाद 'कौशिकी' अपने पूर्ण रूप में प्रकट होती है। कौशिकी नदी सात धाराओं से बनती है, अतः इसे 'सप्तकौशिकी' भी कहा जाता है। इसकी सातों धाराओं के नाम—सान, भोटिया, तंवा, दूध, लिक्षु, अरुण और तांवर हैं। 'सप्तकौशिकी' की धार जब हिमालय-अंचल के दक्षिणी भाग में पहुँचती है, तब इसके पूर्वी किनारे 'वराहक्षेत्र' तीर्थ मिलता है। 'महाभारत' के वनपर्व के ८४वें अध्याय में कौशिकी के इस क्षेत्र में कुमारधारा, अग्निधारा, ताम्रारुण, अरुणासंगम आदि तीर्थों की चर्चा मिलती है। इसी के किनारे विश्वामित्र-आश्रम के होने का भी उल्लेख है और 'वाल्मीकीय रामायण' के बालकांड से पता चलता है कि विश्वामित्र अपने इसी आश्रम से 'सिद्धाश्रम' (शाहाबाद जिला) गये थे। कौशिकी बिहार-प्रदेश की भूमि में ८५ मील तक वहकर गंगा से संगम करती है। बिहार में प्रवेश करते ही यह अपना भयानक स्वरूप प्रकट करती है और कई मीलों के दायरे में गाँवों को तबाह-बरबाद कर देती है। बिहार की यह 'शोकनदी' कही जाती है। इसकी तुलना चीन की भयावह नदी 'ह्वाँगहो' से की जाती है। कोसी की अनेक शाखाएँ फैली हुई हैं, जिनमें भेरही, सोनेह, धेमुरा, सुरसर, काली कोसी, सउरा आदि प्रसिद्ध हैं। सच पूछिए, तो इसकी धाराएँ गोपुच्छ के बालों की तरह सघन होकर बिहार में फैलती हैं। गौरीशंकर-शिखर तथा एवरेस्ट-शिखर के उत्तरी भाग के अनेक हिमनदों तथा वर्षा के जल को ग्रहण कर जब यह नेपाल में आती है, तब बागमती-उद्गम तथा भातगाँव से आरंभ करके नेपाल की पूर्वी सीमा तक के हिमकुंडों तथा वर्षाकालीन जल को आत्मसात् करती बिहार के सहरसा जिले में प्रविष्ट होती है। इसकी बरसाती बाढ़ का पानी विषैला माना गया है, जिससे फसलों की कौन कहे, बड़े-बड़े वृक्ष जल जाते हैं। दरभंगा जिले के कुशेश्वरस्थान से पूर्णिया नगर तक उसका प्रवाह-मार्ग है, जिसपर यह उच्छृंखलतापूर्वक इठलाती चलती है। किंतु, आजकल इसकी धारा नियंत्रित कर दी गई है, फलतः यह तिलयुगा, कमला, करेह आदि नदियों से मिलकर

'घघरी' के मार्ग से पूर्णिया जिले के काढ़ागोला स्टेशन के दक्षिण तथा वटेश्वर पहाड़ी के सामने, गंगा के बायें भाग में अपना जल-भांडार उड़ेलती है। कोसी के संगम पर एक बहुत बड़ा टापू बनता है, जो भागलपुर जिले के 'परिपैंती' से संतालपरगना जिले के साहबगंज तक फैला दीख पड़ता है। इसी दियारे में भवानीपुर घाट, गोविन्दपुर, बाकरपुर, बाबूपुर आदि कई गाँव बसे हैं और ये भागलपुर जिले की सीमा में हैं। किंतु, दियारे के मखमलपुर, लालबचनी, किसनप्रसाद वोगैरह, गंगाप्रसाद, बलुवा वोगैरह, हादीनगर, मनिहारी घाट स्टेशन[१] आदि संतालपरगना जिले के भूमिभाग में स्थित हैं।

वटेश्वरनाथ पहाड़ी के उत्तरी भाग से अग्निकोण में 'कंगालीचौकी' गाँव और 'मिरजाचौकी' रेलवे स्टेशन के पास जब माता गंगा की धार पहुँचती है, तब भागलपुर जिले की भूमि को अतिवात्सल्यपूर्ण दृष्टि से निहारती संतालपरगना के लिए विदा लेती है। किंतु, भागलपुर जिले की भूमि से जैसे ही गंगा मैया विदा लेने लगती हैं, वैसे ही उपर्युक्त दियारे के क्षेत्र में, गंगा के वाम पार्श्व में ही, पूर्णिया जिले की 'सउरा' नदी इसका 'खोइँछा' भरती है। सउरा नदी पूर्णिया जिले के रानीगंज और अररिया को मिलानेवाले मार्ग के उत्तर तथा फारविसगंज और पूर्णिया अनुमंडलों के सीमा-भाग से प्रवाहित होती है और पूर्णिया नगर के सटे-सटे दक्षिण चलकर कटिहार नगर के पश्चिम में आती है और दक्षिण को ही चलती हुई 'मनिहारी' के पास गंगा में आत्मविसर्जन करती है। यह 'सउरा' अकबर बादशाह के समय तक कोसी की प्रधान धारा थी। गंगा में गिरने के पहले 'काली कोसी' और 'सउरा' परस्पर मिल जाती हैं। इसी सउरा नदी के ऊपर पूर्णिया नगर से पश्चिम जानेवाली सड़क पर 'वनभाग' नामक पुल बना है।

संतालपरगना जिले में :

भागलपुर जिले से विदा लेकर मानव-मंगला गंगा जब संतालपरगना जिले की धरती पर पाँव रखती है, तब इसके दाहिने किनारे उल्लेखनीय स्थान 'साहबगंज' मिलता है। साहबगंज का क्षेत्र विंध्य-शृंखला के उत्तर-पूर्व कोण का अंतिम सिरा है, जिसमें 'तेलियागढ़ी' और 'सकरीगली'—ये दो आरण्यक स्थान गंगातटीय तपोभूमि के रूप में अत्यंत ही रमणीक हैं। इस क्षेत्र की पूरी-की-पूरी पर्वतीय भूमि दक्षिण दिशा की ओर ढालू है। यों तो, संपूर्ण जिले की भूमि दक्षिण और पूर्व की ओर ढलती गई है। यही कारण है कि साहबगंज-क्षेत्र की सारी नदियाँ, अत्यंत निकट में गंगा नदी के होने पर भी, दक्षिण की ओर वहकर फिर पूर्व की ओर मुड़ती हैं और बंगाल प्रदेश में जाकर गंगा से मिलती हैं। साहबगंज बिलकुल गंगा के किनारे बसा है और जिले का एक नया नगर है, जो अँगरेजों के भारत में आने के बाद सघन हुआ है, और आज यह आबादी की दृष्टि से इस जिले का सबसे बड़ा तथा व्यापार की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण नगर हो गया है।

---

१. पूर्वोत्तर रेलवे का 'मनिहारी घाट' स्टेशन संतालपरगना जिले की सीमा में है और 'मनिहारी रेलवे स्टेशन' पूर्णिया जिले में है।—दे० सर्वे-नक्शा, सन् १९५३ ई०।

यह साहबगंज संतालपरगना जिले के एक अनुमंडल का केंद्रस्थान है और सभी प्रकार की सरकारी कचहरियाँ भी यहाँ हैं। एक महाविद्यालय भी यहाँ चलता है।

साहेबगंज से पूरब सिर्फ पाँच मील की दूरी पर गंगा की पुरानी धारा के किनारे तेलियागढ़ी नामक स्थान है। यहाँ के भग्नावशिष्ट किले की दीवारों में काले पत्थरों की चट्टानें जोड़ी गई हैं। इस तरह के काले पत्थरों को तेलिया पत्थर कहते हैं, जो मुँगेर की पहाड़ियों में भरपूर मिलते हैं। इसी पत्थर से बच्चों की लिखने-पढ़नेवाली स्लेटें बनाई जाती हैं। संतालपरगना के गजेटियर में उल्लेख है कि इस किले को एसे तेली ने बनवाया था, जो बाद में मुसलमान हो गया था; किंतु अनुमान यही किया गया है कि यह गौड के मुस्लिम-शासकों द्वारा बनवाया हुआ किला है, जिसपर कुछ दिनों तक शेरशाह का भी कब्जा था। तेलियागढ़ी के पास की गंगा में एक पौराणिक तीर्थ भी है। 'नारदीयपुराण' के उत्तर खंड के ४४वें अध्याय का ४८वाँ श्लोक इसे 'अदितितीर्थ' कहता है। यहाँ 'अदिति' ने आराधना करके अपने पति 'कश्यप' से विष्णु को प्राप्त किया था। यहाँ के स्नान को 'महोदय' कहा गया है:

तस्माददितितीर्थञ्च यत्रावापादितिर्हरिम्।
कश्यपात्तत्र सुभगे स्नानमाहुर्महोदयम्॥

इस प्रकार, प्राचीन तीर्थ होने के कारण ही कालक्रम से यह बौद्धधर्म का भी केंद्र बना था; क्योंकि यहाँ अनेक बौद्ध देवी-देवताओं की प्राचीन मूर्त्तियाँ पाई गई हैं। सातवीं शती में यहाँ भी चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' आया था। उसने लिखा है कि पार्वत्य प्रदेश की उत्तरी सीमा पर गंगा के किनारे ईंटों और पत्थरों की बनी एक बहुत बड़ी ऊँची मीनार है। जेनरल कनिंघम के अनुसार, ह्वेनत्सांग द्वारा देखी गई मीनार 'तेलियागढ़ी' में थी। इसलिए, तेलियागढ़ी एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण स्थान है।

तेलियागढ़ी के किले को शेरशाह ने सन् १५३८ ई० में सुदृढ़ करवाया था, जिसमें लगनेवाली चट्टानें मुँगेर की पहाड़ियों से मँगवाई गई थीं। बादशाह हुमायूँ जब बंगाल की ओर बढ़ रहा था, तब उसे शेरशाह ने एक झटका इसी तेलियागढ़ी में दिया था। शेरशाह ने हुमायूँ को देश से बाहर निकालकर इस किले को अपना लिया था, जिसके बाद भी इसपर पठानों का कब्जा बना रहा। किंतु, अकबर के शासनकाल में, सन् १५७३ ई० में अकबर के सेनाध्यक्ष मुनीब खाँ ने दाउद खाँ से तेलियागढ़ी का किला छीन लिया था। पहले यह गढ़ी गंगा नदी के सिरे पर बनी थी और इसकी दीवार में धक्का मारते हुए गंगा की धारा आगे बढ़ती थी। कहते हैं, अकबर के शासनकाल में सेना के मत्स्यप्रेमी नौजवान किले की दीवार पर बैठकर गंगा में बंसी की डोरी डालते थे। किंतु, अब गंगा ने भी इस दुर्दिनग्रस्त किले के सान्निध्य से अपनी धारा को अलग कर लिया है और काफी दूर उत्तर चली गई है। फिर भी, पुरानी धारा 'जुकउत' और 'पहती धार' के नाम से आज भी शेष है और वर्षा ऋतु में प्रवाहवती भी बन जाती है। यह धारा 'गंगाप्रसाद' गाँव के पश्चिम-उत्तर भाग से चलकर साहेबगंज रेलवे स्टेशन और तेलियागढ़ी किले से सटे-सटे

पूर्व की ओर बहती 'सकरीगली' स्टेशन के उत्तर भाग में गंगा के प्रवाह में समाहित होती है। किले के उत्तर, पूरब और पश्चिम की भग्न दीवारें ढाई-ढाई सौ फुट की लंबाई में आज भी वर्त्तमान हैं। इसके दक्षिण भाग में पहाड़ इस प्रकार खड़ा है कि जिससे उधर प्राचीर खडा करने की आवश्यकता ही नहीं थी। किले में जाने-आने के दो ही मुख्य द्वार थे, जो पूर्व और पश्चिम भाग में बने थे। प्रतिरक्षा तथा आक्रमण की दृष्टि से किले की भौगोलिक स्थिति बडी ही महत्त्वपूर्ण थी। मानचित्र में इस किले का नाम 'सकरगढ़ी' लिखा गया है। इसी तेलियागढ़ी में बंगाल पर चढ़ाई करनेवाली शेरशाही सेना को महमूद-शाह की बंगाली सेना ने रोका था। इस समय शेरशाह ने बंगाली सेना के साथ उलझे रहने के लिए अपने पुत्र जलाल खाँ को छोड़ दिया और स्वयं कुछ चुने हुए घुड़सवारों के साथ, बड़ी ही तीव्र गति से, बड़हैत, आमड़ापाड़ा और पाकुड़ होते हुए गौड पहुँच गया और महमूद के किले को तत्क्षण घेर लिया। इस प्रकार, अचानक घिर जाने से महमूद किंकर्तव्यविमूढ हो गया। सर्वथा निरुपाय महमूदशाह की जान, नजराने में ८३ लाख अशर्फियाँ लेकर, शेरशाह ने बख्श दी। बाद, बादशाह हुमायूँ जिस समय शेरशाह को सर करने बिहार-बंगाल की ओर बढ़ रहा था, उस समय शेरशाह का पुत्र जलाल खाँ तेलियागढ़ी में ही जमा हुआ था और स्वयं शेरशाह हुमायूँ की गति-विधि लेने चुनार की ओर दौड़ पड़ा। हुमायूँ जब गंगातटीय पथ से पटना होते पूर्व की ओर बढ़ रहा था, तब अपने परिवार को सहसराम से अन्यत्र रोहतास के किले में रखवाकर शेरशाह भी घुड़सवारों के साथ बगल के रास्ते से पूर्व की ओर चल रहा था। शेरशाह ने सर्वप्रथम मुँगेर में एक झटका हुमायूँ को दिया। फिर, तेलियागढ़ी में एक छोटी-सी लड़ाई लड़ी और जलाल खाँ को हट जाने के लिए इशारा कर दिया; क्योंकि उसके कारण हुमायूँ बेखटके अपनी सेना के साथ गौड की ओर चला गया था। कुछ काल बाद शाहजादा खुर्रम ने अपने पिता जहाँगीर के खिलाफ विद्रोह कर दिया था और दक्षिण से उड़ीसा के रास्ते जब वह गौड की ओर लपका, तब जहाँगीर के सेनाध्यक्ष इब्राहीम खाँ ने भागकर 'तेलियागढ़ी' के किले में ही शरण ली। फिर, शाहजहाँ की रुग्णता और वार्धक्य की अवस्था में जब उसके पुत्रों में गद्दी के लिए छीना-झपटी हुई, तब औरंगजेब की सेना का एक सरदार मीरजुमला शाहशुजा को मुँगेर की ओर से खदेड़ते हुए तेलियागढ़ी में ही ले आया। इसी तेलियागढ़ी में लगातार छह दिनों तक लड़ाई लड़ती हुई शाहशुजा की सेना ने मीरजुमला को आगे बढ़ने से रोक दिया था और अवसर पाकर शाहशुजा स्वयं टाँडा की ओर खिसक गया था। इस प्रकार, गंगा के तट में बसे इस तेलियागढ़ी की अनेक रोमांचक कहानियाँ इतिहास के पृष्ठों को रोचक बनाती हैं।

तेलियागढ़ी से पूरब चलकर शिवशिरस्सेविनी गंगा 'सकरीगली' पहुँचती है, जहाँ ऋक्ष-पर्वत की पूर्वोत्तरकोणगामिनी शृंखला समाप्त होती है। इस स्थान का 'सकरी-गली' नाम इसलिए पड़ा है कि पश्चिम से पूर्व की ओर जाने के लिए तथा पूर्व से पश्चिम की ओर आने के लिए यात्रियों को बहुत ही सँकरे रास्ते से गुजरना पड़ता था। इसके

उत्तर-पूर्व में गंगा का विशाल प्रवाह था और मार्ग के दक्षिण एवं पश्चिम किनारे में सुदीर्घ पर्वत-शृंखला तथा घन-घोर जंगल थे। इसलिए, स्वभावतः, मार्ग का गलियारा सँकरा हो जाता था। यहाँ गंगा एकाएक दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और बंगाल के मालदह तथा मुर्शिदाबाद जिलों के साथ ही बिहार के संतालपरगना जिले की सीमा बनती एवं वर्दवान जिले से होती हुई ताम्रलिप्ति की ओर चली जाती है। इसी 'सकरीगली' में पुंड्र, वंग तथा कामरूप जाने का गंगा-द्वार था और आज भी है। आजकल यहीं से गंगा नदी के बायें भाग में बंगाल के मालदह जिले की सीमा आरंभ होती है। इसी 'सकरीगली' में, 'नारदीयपुराण' के पूर्वोक्त स्थल के अनुसार, 'शिलोच्चय' नामक महातीर्थ था, जहाँ तपस्वी अपने तप से गणों का आश्रय ग्रहण करते थे और वहाँ के तृण-तरुओं के साथ वे भी स्वर्ग की प्राप्ति कर लेते थे :

शिलोच्चयं महातीर्थं यत्र तप्त्वा तपः प्रजाः।
तृणादिभिस्सह स्वर्गं यान्ति तीर्थंगणाश्रयात् ॥

'सकरीगली' के दक्षिण, संतालपरगना में, जो पर्वतश्रेणी बिछी हुई है, उसकी लंबाई ८० मील है। इस ऊँची पर्वतश्रेणी के कारण ही 'सकरीगली' के गंगा-तीर्थ का नाम 'शिलोच्चय' तीर्थ था। मुँगेर में हुमायूँ और शेरशाह के बीच जो झड़प हुई थी, उसमें शेरशाह का प्रियपात्र योद्धा 'सैफ खाँ' घायल हो गया था। शेरशाह उसे तथा उसके परिवार को साथ लिये गंगा के मार्ग से 'सकरीगली' चला आया था। 'सकरीगली' से पूरब की ओर बढ़ने के पहले हुमायूँ यहाँ सेना की एक टुकड़ी के साथ 'मुबारक फर्मूली' और 'अब्दुल फाथ लंगा' नामक अपने दो सेना-सरदारों को नियुक्त कर आगे बढ़ा। उस समय शेरशाह का बहादुर पुत्र 'जलाल खाँ' जंगलों से तुरत निकला और उसने दोनों मुगल-सरदारों को ललकार कर मार गिराया तथा तेलियागढ़ी के किले पर कब्जा कर लिया। बाद, उसने वहाँ अपनी स्थिति और अधिक सुदृढ कर ली। फलस्वरूप, हुमायूँ जब गौड से दिल्ली की ओर लौटने लगा, तब सकरीगली के रास्ते न लौटकर गंगा के बायें बाजू से चला और मुँगेर के सामने पहुँचकर गंगा के दाहिने तट पर आया। इस घटना के कुछ काल बाद जब शाहशुजा तेलियागढ़ी से बंगाल में भाग गया, तब मीरजुमला ने उसे घेरने के लिए इसी 'सकरीगली' में गंगा को पार किया था। फिर, इन घटनाओं के बहुत समय बाद बंगाल के शासक सरफराज खाँ और अलीवर्दी खाँ के बीच सन् १७४० ई० में एक युद्ध हुआ, जिसमें अलीवर्दी खाँ ने 'सरफराज' को मार कर उसकी संपत्ति हड़प ली। मुगल-बादशाह ने यह शर्त्त रखी थी कि 'सरफराज' की संपत्ति को दिल्ली-दरबार में भेज दिया जायगा; पर अलीवर्दी खाँ किसी कारणवश ऐसा नहीं कर सका। इसपर दिल्ली की मुगलिया सलतनत खफा हो गई और उसने मुरीद खाँ नामक एक सेनाध्यक्ष को मुर्शिदाबाद भेजा। अलीवर्दी को जब यह मालूम हुआ, तब उसने आगे बढ़कर इसी सकरीगली में सरफ़राज खाँ से प्राप्त सारी संपत्ति मुरीद खाँ को विधिवत् सौंप दी।

सकरीगली जंक्शन से केवल १½ मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में समदा नामक एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ बहुत-से प्राचीन मकबरे हैं। इनके संबंध में कहा जाता है कि इनके भीतर बहुत-सी अमूल्य निधियाँ छिपाकर रखी गई हैं। तीन महत्त्वपूर्ण मकबरों में से एक के निकट संगमर्मर की एक सुंदर नर्त्तक-मूर्त्ति पाई गई थी, जिसे पटना-संग्रहालय को भेज दिया गया था। आकर्षक ढंग के आभूषित पत्थर के दरवाजे, कलईदार बरतनों के टुकड़े और चित्रित ईंटें इन कब्रों के आस-पास मिलते हैं। गंगा के दक्षिणी तट पर बसा यह गाँव स्थानीय अनुश्रुतियों के अनुसार प्राचीन काल का एक धार्मिक तथा व्यावसायिक महत्त्वपूर्ण स्थान था। कहा जाता है कि यहाँ ५२ गलियाँ और ५३ बाजार थे। यहाँ आज भी एक प्रसिद्ध शिवमंदिर है, जिसके निकट संत द्वारकानाथ देव का आश्रम है। द्वारकानाथ ने कठिन तपस्या करके मोक्ष प्राप्त किया था। सन् १९६१ ई० की गणना के अनुसार 'समदा' की जनसंख्या सिर्फ ७१ है।

सकरीगली रेलवे स्टेशन से दो मील उत्तर एक दूसरा ऐतिहासिक प्राचीन स्थान रामपुर है। यहाँ आठ फीट ऊँची मुस्लिम फकीर की एक समाधि है। लोगों का कहना है कि यह समाधि नहीं, बल्कि शिव-पार्वती-मंदिर का ध्वंसावशेष है। ईंटों से निर्मित समाधि के दरवाजे में जो पत्थरों की चौखट लगी है, उसपर अभिलेख भी खुदा है। इसे भी लोग मंदिर-द्वार की ही चौखट बतलाते हैं। स्थानीय लोगों का कहना है कि यहां तीन फीट ऊँची विष्णु की मूर्त्ति, जिसपर पंचमुख नाग का क्षत्र तना हुआ था, तथा कमल-फूल पर स्थापित शिवलिंग की मूर्त्ति—ये दोनों चीजें एक किसान को खेत जोतते समय मिली थीं। इस समाधि के निकट कुछ दूर पर एक मस्जिद भी है, जो पाँच सौ फीट के घेरे में है। इसे अकबर ने बनवाया था, ऐसा कहा जाता है। 'रामपुर' एक बड़ा गाँव है, जहाँ की जनसंख्या २०४५ है।

पूर्वी रेलवे (लूप लाइन) के सकरीगली स्टेशन से 'सकरीगली घाट' तक एक गाड़ी यात्रियों को लेकर चलती है। घाटवाली गाड़ी गंगा-कोसी के दियारे में चलती है, जहाँ पहले गंगा की धारा बहती थी। पूर्व के यात्री यहाँ से पानी के जहाज द्वारा गंगा को पार करके 'मनिहारी' स्टेशन पहुँचते हैं। फिर, वहाँ से पूर्वोत्तर रेलवे की गाड़ी द्वारा कटिहार, पूर्णिया, जोगबनी, किसनगंज, दार्जिलिंग, जलपाईगुड़ी और असम को जाते हैं। सकरीगली में औरंगजेब के सेनापति 'शाइस्ता खाँ' की बनवाई एक ऐतिहासिक कब्र है, जो 'सैयद अहमद सकदुम' नामक एक फकीर की कही जाती है। यहाँ का पलटनगंज बाजार अँग्रेजी-सेना के कमांडर 'क्लाइवलैंड' के पहाड़िया सैनिकों के लिए बहुत दिनों तक अड्डा बना हुआ था। संतालपरगना जिले के उत्तर में सकरीगली तक गंगा सिर्फ पूर्व की ओर १७½ मील तक बहती है।

यह पहले कहा गया है कि 'सकरीगली' के बाद गंगा नदी जब थोड़ा पूर्व हटकर दक्षिणवाहिनी होती है, तब यह बिहार और बंगाल की सीमा बनकर बहने लगती है। गंगा के दाहिने किनारे बिहार के संतालपरगना जिले का हरा-भरा सघन पर्वतांचल

लहराता है और गंगा के बायें किनारे बंगाल के 'मालदह' जिले की समतल और उपजाऊ जमीन लहलहाती है। सकरीगली के दक्षिण गंगा के बायें बाजू में पूर्वी रेलवे की ब्रांच लाइन का 'महाराजपुर' नामक स्टेशन है। इसी 'महाराजपुर' के ठीक सामने और गंगा के बायें तट में तथा मालदह जिले की भूमि में पूर्णिया जिले की 'पनार' नदी संगम करती है, जो कई अन्य नदियों के साथ महानंदा की शाखा का भी बेशुमार पानी लिये आती है। इनमें महानंदा की दो शाखाएँ 'देवनी' नदी से मिलकर आती हैं और कटिहार-बारसोई रेल-लाइन के 'झउवा' स्टेशन के पास 'पनार' से संगम करती हैं।

'पनार' नेपाल की तराई से प्रवाहित होकर पूर्णिया जिले में प्रवेश करती है और जोगवनी के पूर्वी भाग के जलस्रोतों को ग्रहण करके 'अररिया नगर' के निकट से अग्निकोण की ओर ढलती तथा जलालगढ़, जेतलगढ़ और कसवा के पूरब भाग से बहती 'कदवा पहुँचती है। इसके बाद झउवा स्टेशन के पास महानंदा की शाखाओं और देवनी को साथ लेकर मालदह-ब्रांच लाइन के 'लेवा' नामक स्टेशन को चली आती है। यहाँ से यह प्रायः बिहार और बंगाल की सीमा का काम करती बिलकुल अग्निकोण में पहुँच कर पूर्णिया जिले को छोड़ती है और तब मालदह जिले में प्रवेश करती है। किंतु, मालदह जिले में पहुँचते ही झट से गंगा में प्रवेश कर जाती है।[१] इसी पनार-संगम के सामने गंगा के दाहिने तट-भाग में 'महाराजपुर' रेलवे स्टेशन है। किंतु, महाराजपुर के सामने पनार नदी गंगा की धार के साथ मिलकर एक दूसरी धारा निकालती है, जिससे एक द्वीप बनता है। यह द्वीप राजमहल तक फैला है और नई धार राजमहल के सामने फिर गंगा से मिल जाती है।

सकरीगली और महाराजपुर होते गंगा के दाहिने किनारे से पूर्वी रेलवे की ब्रांच-लाइन चलती है, जो राजमहल और पाकुर जाती है। यह ब्रांच,लाइन जब 'बरहरवा' पहुँचती है, तब दो भागों में बँट जाती है, जिनमें से गौण शाखा 'अजीमगंज' चली जाती है और मुख्य शाखा 'वर्दवान' पहुँचकर पूर्वी रेलवे के प्रधान रेलमार्ग से जुड़ जाती है। सकरीगली से पाकुर तक का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोहारी है। रेलवे लाइन के दाहिने बाजू में उत्तर से दक्षिण की ओर वनाच्छादित पर्वत-शृंखला दूर तक फैली दिखाई देती है और पूर्व भाग में गंगा का विशाल प्रवाह पृथ्वी की पृथुल पीठ पर सफेद दुपट्टा-सा लहराता रहता है। संतालपरगना का यही पूर्वी भाग 'दामिन-ई-कोह' कहलाता था। इस पहाड़ी भाग में मृगयाप्रेमी संताल-जाति के मनुष्यों की घनी आबादी है। ऐसी घनी आबादी कि संपूर्ण संतालपरगना के बीहड़ पहाड़ी क्षेत्रों और घने जंगलों में, उनके शिकार के चलते, कोई बड़ा जानवर नहीं बच गया है। इस इलाके में अँगरेजों के पूरे शासनकाल (सन् १९४९ ई०) तक सरकार के आरक्षी नहीं रहते थे। यहाँ का शासन संतालों की पंचायती प्रणाली से चलता था। अँगरेजी सरकार

१ 'पनार' नदी का विस्तृत वर्णन दूसरे परिच्छेद में यथास्थान द्रष्टव्य है।

इनसे कर भी नहीं वसूलती थी; पर इनका शोषण उच्च जाति के भारतीय करते रहे। ऐसे ही बीहड़ पर्वतीय तट-प्रदेश से प्रवाहित होती हुई जह्नुतनया गंगा ऐतिहासिक नगर 'राजमहल' के पूर्वी द्वार पर पहुँचती है।

गंगा-तट के अन्यान्य मुख्य नगरों की तरह 'राजमहल' भी गंगा के दाहिने तट पर बसा है। 'तीनपहाड़ी नामक रेलवे-स्टेशन से एक छोटी-सी शाखा-लाइन राजमहल को जाती है। यह मुस्लिम-शासनकाल का प्रधान स्थान तो है ही; गौड-राज्य के उद्भव-काल से ही एक ऐतिहासिक नगर भी रहा है और गौड राज्य का मुख्य द्वार यही 'राजमहल' बना। इसी राजमहल के सटे उत्तर 'बरमसिया' नामक एक छोटी पर्वत-निर्झरिणी गंगा के दाहिने भाग में मिलती है। महाराजपुर के दक्षिण-पश्चिम कोण की पहाड़ी से एक स्रोत चलता है, जो 'मोती झरना' के स्रोत से मिलकर बरमसिया में आता है। 'मोती-झरना' इस जिले का सर्वाधिक सुंदर जल-प्रपात है, जो ६० फीट की ऊँचाई से गिरता है। यह महाराजपुर रेलवे स्टेशन से २ मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में है और राजमहल पर्वत के ऊँचे शिखर के ठीक सामने हैं। इसके बाद सम्मिलित स्रोत पर्वत की तलहटी से सटकर 'बगीचा' नाम से दक्षिण की ओर चलता है; जिसमें गंगा की 'मसहर' नामक छोटी-सी धारा भी मिलती थी। इसके बाद यही नदी 'बरमसिया' के नाम से दक्षिण की ओर बढ़ती है; किंतु 'हेमनदी' की एक शाखा जब पश्चिम से आकर मिलती है, तब यह पूर्व की ओर मुड़कर 'राजमहल' के उत्तर ही गंगा में मिल जाती है। किंतु, अब ये धाराएँ प्रायः नष्ट हो गई हैं।

हेमनदी का उद्गम राजमहल से नौ मील पश्चिम की ओर पहाड़ी में है, जहाँ से बहकर यह पूर्व में चलती है और दो भागों में बँट जाती है, जिनमें से पूर्व में जानेवाली धारा 'बरमसिया' से मिलकर गंगा में समा जाती है और दक्षिण की ओर बहनेवाली धारा 'डोमजला' नामक झील में गिर जाती है। इसी झील से 'उधवा नाला' का स्रोत तथा 'मनसाचंडी' नदी की धारा निकलती है।

इतिहास बतलाता है कि दक्षिण भारत के 'राजेन्द्र चोल' ने जब सन् १०२३ ई० में पालवंशीय 'महीपाल' (प्रथम) नामक राजा पर चढ़ाई करके दक्षिण और उत्तरी 'राढ़' प्रदेश को जीत लिया, तब उसने अपनी गजसेना को इसी राजमहल के पास गंगा की धारा को क्षुब्ध करते हुए उसमें नहलवाया और स्वयं **गंगैकोण्ड** का विरुद धारण किया। मेरे विचार से यहीं की गंगा में 'नारदीयमहापुराण' का 'इन्द्राणी' नामक तीर्थ था, जो कभी कोसी की किसी शाखा के संगम के कारण था। इसी स्थान पर शची ने तपस्या करके पति के रूप में इन्द्र को प्राप्त किया था, जिस कारण इस तीर्थ का नाम 'इन्द्राणी-तीर्थ' पड़ा था। इसीलिए, उक्त पुराण कहता है कि यह तीर्थ प्रयत्नपूर्वक सेवन करने योग्य है।

इन्द्राणी नाम तीर्थं स्याद् यत्रेन्द्राणी तु वासवम् ।
तपस्तप्त्वा पतिं लेभे सेव्यमेतत् प्रयत्नतः ।।[१]

कहा जाता है, राजमहल में गौड की राजधानी स्थापित करने का विचार प्रथम-प्रथम शेरशाह ने किया था; पर दुर्भाग्यवश अपने विचार को वह कार्यरूप न दे सका । वाद, अकबर के शासनकाल में राजा मानसिंह ने किले का निर्माण कराया था । यह भी कहा जाता है कि राजमहल का प्राचीन नाम 'आगमहल' था, जिसका नाम बदलकर मानसिंह ने राजमहल' कर दिया । बंगाल का शासन-सूत्र संभालने के लिए मानसिंह को अकबर ने सन् १५९२ ई० में 'राजमहल' भेजा था और मानसिंह ने ही यहाँ शासन-केंद्र स्थापित किया था । यह राजधानी यहाँ १६ वर्षों तक रही; पर सन् १६०८ ई० में इस्लाम खाँ नामक मुगल-सूबेदार यहाँ से राजधानी हटाकर 'ढाका' ले गया था । मानसिंह के 'राज-महल' में जाने के पहले ही पठान-सरदार 'दाउद खाँ' और अकबर के मध्य युद्ध हुआ था । दाउद खाँ अकबर की सेना से हार कर उड़ीसा भाग गया था; मगर वह तीसरी बार उड़ीसा से निकलकर इसी 'राजमहल' में आ डटा और तेलियागढ़ी के किले को छीनने का प्रयत्न करने लगा । दाउद खाँ को बार-बार हटानेवाला, अकवर-सेना का सरदार 'मुनीब खाँ' मर चुका था, पर टोडरमल जीवित था । उस समय टोडरमल की सहायता के लिए बिहार का सूबेदार मुजफ्फर खाँ पाँच हजार घुड़सवारों के साथ दिन-रात दौड़ता सन् १५७६ ई० की १० जुलाई को राजमहल पहुँच गया । उधवा नाला के पास दोनों की सेनाओं में युद्ध हुआ, जिसमें टोडरमल और खानजहान हुसेन कुली खाँ के सम्मिलित प्रयास से दाउद खाँ पराजित हुआ और पकड़ लिया गया तथा टोडरमल की इच्छा के विरुद्ध हुसेनकुली खाँ ने १२ जुलाई को दाउद खाँ का सिर काट कर अकबर के पास भिजवा दिया । दाउद खाँ बिहार के पठानों का अंतिम योद्धा था, जिसने मुगलों को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए भारी प्रयत्न किया था और एतदर्थ वर्षों अविराम संग्राम करता रहा था । इस घटना के वर्षों बाद जब जहाँगीर के पुत्र खुर्रम ने शासन के विरुद्ध बगावत की, तब वह उड़ीसा की ओर से बंगाल होते 'राजमहल' आया था । उस समय बंगाल का सूबेदार 'इब्राहीम खाँ फतहजंग' था । इसी राजमहल में दोनों के मध्य युद्ध हुआ और खुर्रम की सेना ने गंगा के दोनों बाजुओं से आक्रमण करके इब्राहीम की सेना को परास्त कर दिया तथा तेलियागढ़ी के किले में छिपे हुए इब्राहीम को पकड़कर मार डाला ।

---

१. 'नारदीय महापुराण' के उत्तरखंड के ४४वें अध्याय में वर्णित गंगातट के तीर्थों में इन्द्राणीतीर्थ के बाद स्नातकतीर्थ, प्रद्युम्नतीर्थ और दक्षप्रयागतीर्थ के नाम आते हैं। मेरा अनुमान है कि स्नातकतीर्थ गंगा की प्राचीन पगला शाखा और कोसी की शाखा कालिंदी के संगम पर और प्रद्युम्नतीर्थ महानंदा तथा पद्मा के संगम पर था। क्योंकि, दक्षप्रयागतीर्थ तो स्पष्ट रूप से ब्रह्मपुत्र नदी की यमुना (मेघना) धारा और 'पद्मा के संगम पर वर्तमान था : "ततो दक्षप्रयागन्तु गङ्गातोयं यमुना गता ।
स्नातस्यैवाक्षयं पुण्यं प्रयाग इव लभ्यते ।।"

इसके बाद फिर सन् १६३९ ई० में शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहशुजा ने भी राजमहल में अपना शासन-केंद्र कायम किया था। शाहशुजा ने 'राजमहल' में ही अपने को सम्राट् घोषित कर राजमुकुट धारण किया था। शाहशुजा और औरंगजेब की सेनाओं के बीच एक लड़ाई 'तेलियागढ़ी' में भी लड़ी गई थी जिसमें शाहशुजा के बंगाल में भाग जाने पर 'मीरजुमला' ने अपना अड्डा कुछ दिनों तक 'राजमहल' में ही जमाया था। यहीं से इसने शाहशुजा को पकड़ने के लिए १० हजार घुड़सवारों की सेना बंगाल की ओर भेजी थी। शाहशुजा जब शाहजादे की हैसियत से बंगाल का शासनसूत्र सँभाल रहा था, तब गंगा नदी ने सन् १६४० ई० में अपनी भयंकर बाढ़ से राजमहल को नष्ट कर दिया था, जिससे शाहशुजा ने दुबारे स्थापित किये गये शासन-केंद्र को वहाँ से हटा दिया। फिर भी, राजमहल किसी-न-किसी रूप में सन् १६६० ई० तक बंगाल का शासन-केंद्र बना रहा। राजमहल में मुद्रा ढालनेवाली जो टकसाल बनी थी, वह सन् १६६१ ई० तक कायम रही।

इसके बाद औरंगजेब के शासन के ह्रासकाल (सन् १६८६ ई० तक) में मेदिनीपुर जिले के शोभासिंह के साथ मिलकर उड़ीसा के अफगान सरदार 'रहीम खाँ' ने बर्दवान और मालदह को लूट लिया और 'राजमहल' को रौंद डाला। उस समय राजमहल में मुगलों का प्रतिनिधि इब्राहीम खाँ नामक व्यक्ति था, जिसने अपने पुत्र 'जबरदस्त खाँ' पर 'रहीम खाँ' को शांत करने का भार सौंपा था। राजमहल उस समय बंगाल और बिहार के लिए व्यापारिक केंद्र-बिंदु था। इसलिए, अँगरेजों ने मुगलों की खुशामद करके सन् १६७६ ई० में ही यहाँ अपनी एक एजेंसी कायम की थी और रुपये ढालने के लिए एक टकसाल भी खोली थी। किंतु, सन् १६९७ ई० में 'इसारिम खाँ' के पुत्र ने राजमहल में अँगरेजों की सारी संपत्ति लूट ली थी और बादशाह के कहने पर भी उसने वह संपत्ति नहीं लौटाई। सन् १७०२ ई० में औरंगजेब बादशाह भी एक बार इन धूर्त्त अँगरेजों पर बिगड़ गया था, जिससे उन्हें गिरफ्तार करके उनकी संपत्ति जब्त कर ली थी। बंदी अँगरेजों ने जब बादशाह से लिखित माफी माँगी, तब वे छोड़ दिये गये।

पूर्वोक्त औरंगजेब का पौत्र 'अजीम उश्शान', जिसने अपने नाम पर पटना को 'अजीमाबाद' की संज्ञा दी थी, पहले 'राजमहल' में ही रहता था। सन् १७०७ ई० में जब दक्षिण भारत में औरंगजेब की मृत्यु हो गई, तब दिल्ली के तख्त के लिए 'शाह आलम' (बहादुरशाह) के साथ बखेड़ा खड़ा हो गया। इसी शाह आलम का पुत्र 'अजीम उश्शान' था। यह अपने पिता की सहायता के लिए २० हजार घुड़सवारों के साथ दिल्ली की ओर दौड़ा और इसने अपना परिवार और खजाना 'राजमहल' में ही छोड़ दिया। उस परिवार के साथ 'उश्शान' का पुत्र 'फर्रुखसियर' भी राजमहल में ही रह गया था। यह अपने पिता की मृत्यु के बाद भी अपनी विधवा माँ के साथ सन् १७१० ई० तक 'राजमहल' में ही रहा था। 'फर्रुखसियर' की माँ कश्मीर की कन्या थी और इसका नाम 'जेबुन्निशा' था। सन् १७११ ई० में बहादुरशाह ने 'इजुद्दौला' नामक व्यक्ति को नायब

नवाव बनाकर राजमहल भेजा था। सन् १७१२ ई० में जब बहादुरशाह की भी मृत्यु हो गई, तब इजुद्दौला ने जल्दी से राजमहल के किले को नये सिरे से सुदृढ़ बनवाकर अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया था। किंतु, जब फर्रुखसियर अपनी सेना के साथ पटना से राजमहल पहुँचा, तब इजुद्दौला ने स्वयं आगे बढ़कर अपने को उसके हवाले कर दिया और वह फिर फर्रुखसियर का प्रियपात्र बन गया। इस घटना के कुछ वर्षों बाद सन् १७४२ ई० में राजमहल पर कुछ समय के लिए मराठों का अधिकार हो गया था। इस प्रकार, हम देखते हैं कि यह राजमहल अनेक रोचक-रोमांचक ऐतिहासिक घटनाओं का महत्त्वपूर्ण केंद्र है, जिसकी एकमात्र साक्षिणी त्रिभुवनपावनकारिणी माता गंगा हैं।

वर्त्तमान राजमहल से उस समय का राजमहल नगर चार मील पश्चिम में था, जहाँ उसके खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं। सब-रजिस्ट्री ऑफिस के निकट का शिवालय, रेलवे बोर्ड का कुँआ, अन्ना सरोवर, सरोवर के दक्षिण में शाहशुजा का बागीचा, शुजा के जनानखाने का खँडहर, मुर्शिदाबाद के जगतसेठ के महल का खंड़हर, फतहजंग खाँ की बारहदरी इसे मानसिंह ने तोप से उड़वा दिया था), मीरजाफर के पुत्र मीरन की कब्र, मानसिंह की बनवाई जामा-मस्जिद, मस्जिद के उत्तरी भाग की 'बागीचा' नामक नदी में बना पुल, पश्चिमी पहाड़ी के ऊपरी भाग में बना कन्हाईथान आदि अनेक ऐतिहासिक महत्त्व के स्थल आज भी राजमहल के अतीत का गौरव-गान कर रहे हैं। फिर, इसी राजमहल में संपूर्ण भारत का भाग्य-सूर्य उस दिन अस्त हुआ था, जिस दिन 'सिराजुद्दौला' पलासी के युद्ध में हारकर गंगा के रास्ते भागकर राजमहल की गंगा में पहुँचा था। उस समय मीरजाफर का एक भाई मीर दाउद राजमहल में, एक फौजदार के रूप में, नियुक्त था। दाउद को दानाशाह नामक फकीर-वेषधारी एक गुण्डे ने खबर दी कि सिराजुद्दौला की नाव घाट पर लगी है। यह दानाशाह अपनी गुंडई के चलते एक बार सिराजुद्दौला द्वारा दंडित हो चुका था, जिससे वह प्रतिशोध के घात में था। सूचना मिलते ही मीर दाउद सिपाहियों के साथ घाट पर पहुँचा और सिराजुद्दौला को गिरफ्तार कर मीरजाफर के पास मुर्शिदाबाद भिजवा दिया। मीरजाफर ने तुरत एक अँधेरी कोठरी में सिराज को बंद करवा दिया। उसी दिन की रात के अँधेरे में मीरजाफर के सुपुत्र मीरन ने मुहम्मदबेग नामक एक हत्यारे को नंगी तलवार लिये काल कोठरी में भेज दिया, जिसने असहाय सिराज को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। यह अतिशय दुर्भाग्यपूर्ण और दर्दनाक घटना सन् १७५७ ई० में घटी थी। सिराज को दुष्टों ने बिलखती गंगा-माता की गोद से छीन लिया था।

गंगा तुम्हारे तट पै क्या-क्या गुजर गया है ?
लहरों पै कारवाँ ने क्या-क्या निशाँ दिया है ?

राजमहल से छह मील दक्षिण, गंगा नदी के दाहिने किनारे ही 'उधवा नाला' नामक एक छोटा-सा गाँव है। 'उधवा' नाम का एक स्रोत भी 'डोमजला' नामक एक

पहाड़ी झील से निकलकर अग्निकोण में बहता इसी गाँव के पास गंगा में गिरता है। 'उधवा' नामक यह छोटा-सा गाँव एक अतिशय महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान है। इसी स्थान पर गंगा के किनारे शेरशाह ने गौड़ से लौटते हुए हुमायूँ को जा घेरा था। यहाँ शेरशाह ने अपनी रणनीति के अनुसार हुमायूँ को युद्ध का चकमा भर दिया और बहुत हल्की मार-काट के बाद अपनी सेना को हटा लिया। उसने अपने पुत्र जलाल खाँ को सेना के साथ तेलियागढ़ी के पास हुमायूँ को ललकारने के लिए भेजा और स्वयं कुछ चुने हुए घुड़सवारों को लेकर दुमका और जामताड़ा होते धनबाद जिले के गोविन्दपुर में पहुँचकर उस पहाड़ी और जंगली रास्ते पर पहुँच गया, जिस पर उसने पीछे चलकर राष्ट्रीय राजपथ बनवाया। इसी राष्ट्रीय राजपथ का नाम अँगरेजी-शासन काल में 'ग्रैंड ट्रंक रोड' पड़ा था और अब यह 'शेरशाह राष्ट्रीय महापथ' के नाम से ख्यात है। शेरशाह इसी मार्ग से सहसराम चला आया। उधर बादशाह हुमायूँ उधवा-नाले की झड़प से ऐसा भयभीत हुआ कि उसने अपने पश्चिमी प्रयाण का मार्ग ही बदल दिया। वह गंगा के दक्षिणी तट का मार्ग छोड़कर उत्तरी तट के मार्ग से पश्चिम में चलने लगा। मुँगेर तक वह इसी मार्ग से आया। तेलियागढ़ी में जलाल खाँ को खबर मिली कि बादशाह उस पार से जा रहा है, तो उसने तुरत इसका सूचना अपने पिता को भेजी। शेरशाह ने चौंसा में पहुँचकर हुमायूँ को जा घेरा और वहाँ उसने हुमायूँ की जो दुर्गति की, उससे आप पहले ही परिचित हो चुके हैं।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् सन् १५७६ ई० में अफगानों का सरदार दाउद खाँ भी उड़ीसा से आकर 'उधवानाला' में डटा था। उसकी लड़ाई का क्षेत्र उधवानाला से राजमहल तक विस्तृत था। सन् १७६३ ई० में इसी उधवानाला में मीरकासिम और अँगरेजों के मध्य युद्ध हुआ था। इस युद्ध में अँगरेजों ने छलछद्म का सहारा लिया और एक अँधेरी रात में चुपके से मीरकासिम की सेना पर आक्रमण कर दिया। उस रात गफलत में पड़े मीरकासिम के १५ हजार सैनिक मौत के मुँह में चले गये। इसके बाद ही मीरकासिम एक के बाद दूसरा मोर्चा हारता गया और भारत अँगरेजों के हाथ में चला गया।

उधवानाला के दक्षिण गंगा नदी के दाहिने किनारे संतालपरगना जिले के सरफराजगंज, कठलदरी, जगतपति चँदसर, राधानगर आदि गाँव बसे हुए हैं। इन स्थानों से होती पातकपुंजविनाशिनी गंगा आगे बढ़कर 'बरन' गाँव के पास अपने प्रिय बिहार प्रदेश को छोड़कर सोनार बाँगला की भूमि में प्रवेश कर जाती है। जिस स्थान में गंगा बिहार प्रांत की भूमि छोड़ती है, ठीक उसी के सामने बंगाल प्रदेश के मालदह और मुर्शिदाबाद जिलों की सीमाएँ मिलती हैं। इसके मानी हुए कि मालदह जिले की दक्षिणी सीमा तक बंगाल और बिहार की सीमा बनकर गंगा बहती है। यह जैसे ही बंगाल की भूमि में प्रवेश करती है, वैसे ही संतालपरगना की गुमानी नदी, जिसे सर बुकानन ने 'गुमान मर्दान' लिखा है, बिहार की ओर से अपनेको उपहारस्वरूप भेंट देकर माँ गंगा को विदा कर देती है।

गुमानी का आदि स्रोत 'सुंदर पहाड़ी' अँचल के दक्षिणी पर्वतीय भाग से प्रादुर्भूत होकर पहले उत्तर में चलती है और तब पूर्वोत्तर कोण में बहकर बरहैत आती है। बरहैत के पास 'मोरन' नामक नदी 'बोरियो' अँचल की उत्तरी सीमा की पहाड़ी से सीधे दक्षिण में बहती आकर गुमानी से मिलती है। इसके बाद गुमानी पूर्व दिशा में चलती 'पथना' अँचल में घुसती है और अग्निकोण में खड़ी गिरती हुई 'बरहरवा' अँचल में प्रवेश करती है। बरहरवा अँचल में फिर दो भागों में विभक्त होकर गंगा में वहाँ सम्भेद करती है, जहाँ गंगा बिहार की भूमि से विदा लेने लगती है। गुमानी नदी अपने को माता गंगा की गोद में समर्पित कर शुभकामना प्रकट करती है—शुभास्ते पन्थानः।

उपसंवरण

यह पहले लिखा जा चुका है कि बिहार की ३४५ मील की भूमि को अपने पवित्र जल से गंगा मैया प्रक्षालित करती हैं। गंगा के जल में जहाँ हिमालय की अनेक नदियाँ विभिन्न प्रकार की अनगिनत जड़ी-बूटियों का रस लाकर डालती हैं, वहीं पारियात्र, विन्ध्य और ऋक्ष-पर्वतों की भी चंबल, बेतवा, केन, धसान, शिप्रा, पार्वती, काली सिंध, बनास, टोंस, ज्योतीरथा, मंदाकिनी, रिहंद, गोपथ, कनहर, उत्तर कोइल, सोन आदि नदियाँ अपने-अपने अंचलों के रासायनिक द्रव्यों, धातुओं तथा जड़ी-बूटियों का रस निचोड़कर गंगा-गर्भ में संजीवनी शक्ति भरती हैं। प्रयाग से ही गंगा नदी ऋक्ष पर्वत की भाँवर भरती संताल परगना की गुमानी नदी के संगम तक बहती है और अपने कछार की विस्तृत भूमियों एवं तट के अनेक नगरों को धन–धान्य से समृद्ध बनाती है। हिमालय के आँगन में जब आप गंगा के बचपने की नटखट-भरी दौड़-धूप देखते हैं, तब आपका मन वात्सल्य से भर उठता है। इसी प्रकार ऋषिकेश और हरद्वार के हिम-द्वार पर इसके चंचल-चटुल चरण में आपको एक तेज किशोरी का शोख मिजाज मिलता है, जिसे देख आप मंत्र-मुग्ध तथा स्तब्ध-से हो उठते हैं। पुनः प्रयाग में एक निर्मल कन्या के रूप-लावण्य का निखार देखकर आपका हृदय पवित्र और उत्फुल्ल हो जाता है तथा काशी में पहुँचकर गंगा अष्टादशवर्षीया का रूप धारण करती है, जिसमें मज्जन-फल की प्राप्ति के लिए आपका जी ललचाने लगता है। किंतु बिहार-प्रदेश में पहुँचते ही पापघ्नी गंगा अपनी भरपूर जवानी के उभार पर आ जाती है, मद से मस्त होकर अमर्यादित हो उठती है और अपने कूलों को भी ढहाती हुई, बेसुध की तरह, जहाँ मौका पाती है, भुजा पसारकर बिछ जाती है। गंगा की यह मोहक-मादक जवानी बिहार-प्रदेश के मुंगेर, सुलतानगंज, कहलगाँव और बटेश्वरनाथ में पहाड़ को भी धकियाते हुए चलती है। किंतु, यही गंगा जब बंगाल में पहुँचती है, तब बूढ़ी की तरह थरथरा कर चलने लगती है। इसके शरीर में सर्वत्र सिकुड़नें पड़ जाती हैं। अंग-अंग उखड़े-बिखरे-से लगते हैं और दौड़ लगाने की शक्ति प्रायः समाप्त हो जाती है। अतः, बिहार की गंगा की मौज कुछ आर ही है!

बिहार-प्रदेश की गंगा में व्यापार-वाणिज्य का जैसा सामर्थ्य है, वैसा दूसरे किसी भी प्रांत की गंगा में नहीं है। प्राचीन समय में गंगा-मार्ग के द्वारा ही सामुद्रिक

व्यापार करके पाटलिपुत्र और चंपा नगर वैभव के शिखर पर पहुँच सके थे, जिन नगरों की शिराओं-सी बिछी वीथियों में अगणित हीरे-जवाहरात चमकते रहते थे। 'बड्ढकी जातक' से ज्ञात होता है कि गोमती-संगम के सामने बढ़इयों का एक गाँव था। वहाँ के बढ़ई अपने राजा के भय से गंगा-मार्ग द्वारा समुद्र में घुसे और समुद्र पार करके सुवर्ण भूमि द्वीप में चले गये थे। अपने शत्रु-राजा के भय से विदेह-राजा की विधवा पत्नी अपने इकलौते शिशु 'महाजनक' को लेकर चंपा नगरी भाग आई थी। महाजनक जब युवा हुआ, तब धनार्जन के लिए अपने ७०० साथियों के साथ बजड़ों पर बैठकर उसने गंगा-मार्ग से ही बंगाल की खाड़ी में प्रवेश किया। वहाँ सामुद्रिक तूफान में उसका बजड़ा नष्ट हो गया और उसके सभी साथी डूब मरे। महाजनक एक टूटे तख्ते के सहारे सात दिन और सात रात समुद्र में हाथ-पाँव मारता रहा। उसके उत्साह और पराक्रम को देखकर समुद्र की देवी 'मणिमेखला' ने स्वयं उसकी रक्षा की तथा उसी देवी की सहायता से महाजनक ने अपना खोया राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। गुप्त और मौखरि-राजाओं के काल में भी पाटलिपुत्र और चंपा के अनेक तेजस्वी पुरुष और व्यापारी गंगा के रास्ते समुद्र पार करके बर्मा, जावा, सुमात्रा, स्याम, चंपा, मलाया आदि देशों में गये और वहाँ अपना राज्य भी स्थापित कर लिया। इन महापुरुषों के पराक्रम की कथा कहनेवाले अनेक शिला-लेख और मंदिर उन द्वीपों में आज भी वर्त्तमान हैं।

पाटलिपुत्र ने अपनी कन्या 'संघमित्रा' को धर्मप्रचार के निमित्त गंगा के प्रवाह-मार्ग से ही ताम्रलिप्ति होते सिलोन को भेजा था। उस दिन गंगा में एक अभूतपूर्व दृश्य उपस्थित हुआ था, जब सम्राट अशोक रानी घाट पर हाथ में बोधि-वृक्ष की शाखा लिये आकण्ठ गंगा-प्रवाह में उतरा था और मंत्रोच्चार के बीच नाव पर बैठी संघमित्रा ने अपने पिता के हाथ से बोधि-वृक्ष की शाखा को ग्रहण किया था। घाट पर उपस्थित नर-नारियों की एक भारी भीड़ ने, अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछते हुए, भरे गले से 'धर्म की जय' के नारे के साथ संघमित्रा की नाव को पाटलपुत्र से विदा किया था। सच पूछिए तो बिहार-प्रदेश की गंगा अपने धारा-मार्ग से सिलोन से जापान तक के सामुद्रिक टापुओं में बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म को प्रवाहित कर ले गई थी। अंग देश के अधिपति अधिरथ के पोष्य पुत्र कर्ण को प्रयाग में ही चर्मण्वती और यमुना नदियों के द्वारा गंगा ने ग्रहण किया और वहाँ से वह अपनी तरंगों पर हलराती-दुलराती चम्पा नगरी तक ले आई थी। इस प्रकार, लिच्छवि-वंश के प्रथम शिशु को गंगा-मैया अपनी लहरों पर खेलाती काशी से दिघवारा (सारन जिले) तक ले आई थीं, जहाँ वज्जि-जनपद के ग्वालों ने गंगा की गोद से शिशु को निकालकर अपने राजा के रूप में अभिषिक्त किया था। सम्राट् अशोक के ही समय में सिलोन के तिष्य नामक राजा ने अपने धर्मदूतों को समुद्र के द्वारा पाटलिपुत्र में भेजा था। इन धर्मदूतों की नाव ने जब सागर से निकलकर ताम्रलिप्ति के पास गंगा नदी में प्रवेश किया, तब वह वहाँ से सात दिन और सात रात निरंतर चलकर पाटलिपुत्र पहुँची थी। नन्दों, मौर्यों, शुंगों और गुप्तों की नौ-सेनाएँ

जब पाटलिपुत्र से रवाना होती थीं, तब दूर तक गंगा का प्रवाह उद्वेलित हो उठता था। ह्वेनत्सांग को नाव पर बैठाकर सम्राट् हर्षवर्द्धन का बजड़ा जब बिहार की गंगा में चल रहा था, तब उसके दोनों तटों पर उसकी अश्वसेना, हस्तिसेना और पदाति-सेना मार्च कर रही थी। फिर, मुगल-साम्राज्य का संस्थापक बाबर जब पूर्वी भारत में विजय के लिए चला, तब उसने गंगा के मार्ग से ही सोन-संगम तक की यात्रा की थी। उसकी गंगा-यात्रा ४८ दिनों में पूरी हुई थी और उसके पड़ाव कुसार, कड़ा, कोह, सिरऔलिया, प्रयाग, लवायन, टोंस-संगम, नोलीवा, कन्तित (मिर्जापुर), नानापुर, बजुआघाट, गोमती-संगम, गाजीपुर, चौंसा, बक्सर और नैनीजोर की गंगा में डाले गये थे। बाबर की तोपें प्रयाग से नैनीजोर तक गंगा के द्वारा ही नावों पर लाई गई थीं। बक्सर में बाबर ने गंगा को तैरकर पार किया था और नैनीजोर में उसने गंगा के दूसरे तट पर स्थित 'हलदी' तक गंगा की धारा को नावों से पाट दिया था, जिससे सारी सेना बलिया जिले में उतर गई थी। इसके पश्चात् दाउद खाँ से युद्ध होने पर अकबर बादशाह का नौ-बेड़ा भी आगरा से यमुना के प्रवाह होते प्रयाग में ही गंगा की धारा में उतरा था और वहाँ से गंगा के द्वारा ही पटना तक आया था। इस घटना के सिर्फ दो सप्ताह पूर्व दाउद खाँ हाजीपुर में आ डटा था और उसकी नौ-सेना गंडक के मुहाने पर हलचल मचा रही थी तथा इधर पटना की गंगा में टोडरमल और मुनीब खाँ का नौ-बेड़ा प्रवाह को क्षुब्ध कर रहा था।

अँगरेजी शासनकाल में बिहार की गंगा में कार-कंपनी का जहाज चल रहा था, जो माल और यात्री—दोनों को ढोता था। यह जहाज बक्सर से बंगाल के ग्वालंदो नगर तक जाता था। बिहार में इसके ठहरने के घाट—पश्चिम से पूर्व की ओर—बक्सर, नैनीजोर, बहोरनपुर, छपरा, सिनहा, हरदी छपरा, पहलेजा, दानापुर, दीघा, मारूफगंज, फतुहा, बख्तियारपुर (काला दियारा), बाढ़, मोकामा, सेमरियाघाट, सूर्यगढ़ा, मुंगेर, खगड़िया, गोगरी, सुलतानगंज, भागलपुर, कहलगाँव, तेलियागढ़ी, सकरीगली और राजमहल में बने थे। इसके अतिरिक्त गंगा नदी को आर-पार करनेवाले जहाज भी खास-खास स्थानों में चलते थे, जिनमें से आज भी कई जगहों में चलते हैं। इनमें से पटना की गंगा में जहाज के स्थायी दो घाट हैं— महेंद्रू और दीघा। इन दोनों घाटों से यात्री उस पार 'पहलेजा घाट' जाते हैं और वहाँ से रेल-मार्ग द्वारा उत्तर-पूर्वी रेलवे के सोनपुर-जंक्शन पर पहुँचते हैं। मोकामा-सिमरिया का जहाज-घाट, गंगा में 'राजेंद्र-पुल' के बन जाने से, बंद हो गया है। मुंगेर नगर से चलनेवाला जहाज उस पार मुंगेरघाट ले जाता है, जहाँ से यात्री घाटवाली रेलगाड़ी से पूर्वोत्तर रेलवे के साहेबपुर-कमाल स्टेशन को पहुँचते हैं। फिर, भागलपुर के बरारी घाट में पानी का जहाज गंगा को पार करके महादेवघाट जाता है। पुनः सकरीगली में भी गंगा-पार करने का जहाज दौड़ता है, जो उस पार मनिहारी घाट (पूर्णिया जिला) तक यात्रियों को ले जाता है।

पहले कहा गया है कि बिहार के १७ जिलों में से १५½ जिलों की भूमि का अथाह ज़ल-भंडार गंगा नदी में समाता है। इन नदियों का गंगा नदी के साथ जहाँ-जहाँ संगम-

क्षेत्र है, वे सभी तीर्थ-स्थान माने जाते हैं और इन सभी स्थानों में संगम-ह्रद हैं। इनमें सरयू-संगम पर छपरा नगर से बड़हरा एकौना ग्राम तक[१]; सोन-संगम पर मनेर से दानापुर-दीघा तक; गंडकी संगम पर सब्बलपुर से पटना और फतुहा तक[२] (राघोपुर दियारा); पुनपुन के संगम पर फतुहा के पास; हरोहर-किउल के संगम पर गंगा के दाहिने किनारे सूर्यगढ़ा से गंगा के उस पार 'साम्हो' तक[३]; बूढ़ी गंडकी के संगम पर मुंगेर नगर से पूरब और गंगा के उत्तरी किनारे गोगरी से तारापुर दियारे तक[४]; बड़ुआ-जमुनिया के गंगा-संगम पर अकबरपुर के उस पार बिक्रमपुर, गौरीपुर और फिर दक्षिणी किनारे नाथनगर तक; फिर चानन नदी के संगम पर दक्षिण किनारे के सबौर से उसके सामने उस पार खगड़ा, पकड़ा तथा मकनपुर तक और फिर दक्षिणी किनारे पूरब में एकचारी रेलवे स्टेशन तक; कोसी-संगम पर कुरसेला से पीरपैंती तथा और पूरब में मनीहारी से सकरी गली तक एवं पनार-संगम पर महाराजपुर से राजमहल तक बड़ी-बड़ी झीलें तथा दियारे बने हुए हैं। ये सभी गंगाह्लद कहलाते हैं तथा तीर्थ-क्षेत्र हैं। इन पवित्र क्षेत्रों की पुण्य महिमा नारदीय पुराण में वर्णित है।

इस प्रकार, विपद्विनाशिनी विष्णुपदी गंगा समस्त बिहार प्रदेश की माता नदी, देवनदी और पितरों को उद्धार करनेवाली पितर नदी है। हमारी गंगा सगर-संतानों के साथ समस्त भारत को तारनेवाली दयामयी माता-नदी है। यह शिवप्रिया अपने दोनों कछारों में बसे सभी पुत्र-पुत्रियों को तारती है और निश्चय ही युग-युगांतर तक तारती रहेगी। इति।

श्रीमद्रामनरेशतातसविधे त्यक्त्वा किशोरं हि माम्
जाह्नव्याः सदृशी पवित्रजननी चन्द्राभिधा स्वर्गता।
यात्रैतिह्यकृती कविः सहृदयः सोऽहं स्वमातुर्मुदे
गङ्गेत्यादिविहार-भूमिसरितां प्रस्तौमि तीर्थान्विताम्॥

दशाब्दतपसोद्भूतं पूतं ग्रन्थं नदीजलैः।
मात र्जनेश्वरीजानिः सुतोऽर्पयति तृप्यताम्॥

---

१. यह संगम प्राचीन काल में बलिया जिले के ददरी मेले के पास था, जिसके दक्षिण में भोजपुर नगर बसा था।

२. यह संगम पुरा काल में 'मही-संगम' के नाम से सारन जिले के 'दिघबारा' में था।

३. इसमें 'हरोहर' नदी किसी काल में बड़हिया के पश्चिम में संगम करती थी, जिससे 'हुमरा' से 'सूर्यगढ़ा' तक और उस पार बदलपुरा तक ह्रद बनता था। उस समय सूर्यगढ़ा में अकेले 'किउल' नदी संगम करती थी और उस पार 'साम्हो' के पास बूढ़ी गंडक अपनी जमुनिया धार से बहकर संगम करती थी।

४. बागमती, कमला, तिलयुगा और कोसी का संगम इतना अधिक और दूरी में परिवर्तित हुआ है कि इनका प्राचीन संगम-स्थान बतलाना बड़ा कठिन है। इनका संगम-स्थान महेशखूंट से पद्मा-संगम तक फैला था।

द्वितीय परिच्छेद

उत्तर बिहार और उसकी नदियाँ

उत्तर बिहार

प्रथम परिच्छेद में कहा गया है कि गंगा नदी बिहार-प्रदेश के मध्य भाग से, पश्चिम से पूरब की ओर बहती है और बिहार प्रदेश को दो भागों में सीमंत की तरह विभक्त करती है। इन दोनों भागों में गंगा के उत्तरी भाग को 'उत्तर बिहार' और दक्षिणी भाग को 'दक्षिण बिहार' कहा जाता है। फिर, दक्षिणी बिहार में भी छोटानागपुर की आरण्यक अधित्यका भौगोलिक दृष्टि से एक अलग हिस्सा है। संपूर्ण बिहार की नदियों में सबसे ख्यात और बड़ी नदी गंगा की धार और कछार के सर्वेक्षण के बाद अब 'उत्तर बिहार' की स्वच्छन्दगामिनी नदियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

उत्तर बिहार की भूमि स्वर्ग का वह खण्ड है, जो हिमालय से पिघलकर पृथ्वी के रूप में परिणत हुई है। दक्षिण दिशा की ओर ढलती-उतरती यहाँ की धरती देवतात्मा हिमालय के आंतरिक भावातिरेक से तथा दुग्ध-द्रवित अनगिनत स्रोतों से सनकर बनी है। इस धरतो पर सर्वत्र सरिताओं के लहरदार श्वेत जरीदार तार खींचे गये हैं और जगह-जगह ह्रदों एवं सरोवरों के चमकते शुक्र और चाँद-जैसे बेल-बूटे भी काढ़े गये हैं। उत्तर बिहार की यह धरित्री हिमकन्या गौरी के आँचल के पवनांदोलित दुकूल-जैसी बनी है, जिस आँचल के निचले छोर में चाँद की पिघलती धारा-सी गंगा नदी टाँकी गई है और दोनों किनारियों में एक ओर पुखराजी रंगवाली गण्डकी की धार और दूसरी ओर कांचन-द्रवित सुनहले रंग की महानन्दा की धार जड़ी हुई है। वर्षा ऋतु में हिमालय से गंगा तक और गंडकी से महानन्दा तक का धरा-दुकूल जब लहराता है, तब इसकी मौज कुछ और ही होती है। लगता है, जैसे समस्त वरुणालय उजले आकाश की तरह बिछकर पृथ्वी पर बह रहा है। हिमालय तो हर साल ही इस धरित्री का कलुष-कलमष धोकर गंगा में डाल देता है। वर्षा ऋतु के बीतते ही फिर उपर्युक्त हिमसुता की चादर-सी वही धरती इस प्रकार धानी रंग में रँग जाती है कि लगता है, ऋद्धि, सिद्धि और नव निधियाँ गौरी के लिए कोहबर सजा गई हों। संपूर्ण पृथ्वी घूँघट काढ़ लेती है, नूपुर बजने लगते हैं और शृंगार मुस्कराने लगता है। उस समय इस धरती की जवानी का उभरता-सँवरता रंग पग-पग पर सोना बरसाता है और बड़े-बड़े ऋषियों, ज्ञानियों तथा धर्मनेताओं के मन को भी विस्मय-विमुग्ध कर देता है। हाजीपुर का चिनिया केला, मुजफ्फरपुर की विद्रुमवर्णी लीचियाँ, पूसा की अमृत-स्यन्दिनी ईख, दरभंगा का शाहबसन्त चावल, मीठे शकरकन्द और सुधारस-भरे आम,

सरैसा की नस-नस झनका देनेवाली सुरती, सरिसव पाही की पीली-पीली स्नेहमयी सरसों, मधुबनी का मलाईदार मधु-सा मीठा दही, सिलौत का नाक की हवा से उड़ जानेवाला चूड़ा और गदराई मटर की छीमियाँ, तमाम खेतों में खड़ी और हरी साड़ी का घूँघट काढ़े मोतियन माँग भराये वधू-सी मकई, दियारे क्षेत्र में खेतों में बिछे परवल की लुढ़कती फलियाँ तथा झीलों एवं सरोवरों में तैरती-उछलती मछलियाँ आदि उत्तर बिहार की धरती को निश्चय ही स्वर्ग से गिरे एक खंड के रूप में प्रकट करते हैं। लगता है, पिता हिमालय बरसात बीतते ही स्वर्ग की सारी निधियों को बहाकर पुत्री की ससुराल के आँगन में बिखेर देता है। अपने जामाता शिव की प्रसन्नता के लिए जहाँ वह बरसात में घड़ियालों, सूँसों, व्यालों, कच्छपों, मेढ़कों और मत्स्यों का जमघट लगा देता है, वहीं बरसात बीतते ही नन्दा देवी की चोटी से कंचनजंघा तक के और फिर ऊपर में मानसरोवर से ल्हासा तक के रंग-बिरंगे एवं छोटे-बड़े विविध जातियों के पक्षियों को यहाँ के चौरों और सरोवरों में भेज देता है। ये अनोखे पक्षी चौरों के किनारों में जब पंक्तिबद्ध होकर व्यूह-रचना करते हैं, तब मालूम होता है कि विस्तृत नील नभ के चारों ओर आकाशगंगा घेरा डाले हुई है। ये फिर जब झीलों में तैरने लगते हैं, तब पंखदार श्वेत शंखों के झुण्ड बहते-से दीख पड़ते हैं। फिर जब ये झुण्ड-के-झुण्ड पर फैलाये आसमान में उड़ते होते हैं, तब इनके राव-विरावों से सारा आकाश भर उठता है और बादलों की भाँति अपने सघन फैले पंखों से सूर्य-ताप को ढँक देते हैं। संक्षेप में, उत्तर बिहार की ऐसी ही धरित्री पर नदियों का जाल हिमालय ने बुन दिया है।

उत्तर बिहार की इस धरती पर फैली नदियों को जब हम पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ने के क्रम में देखते हैं, तब सबसे पहले हमें सरयू (घाघरा) मिलती है, जिसके तटों पर हम भगवान् राम के बचपन को मचलते पाते हैं। इसके बाद झरही, दाहा, भगवान् बुद्ध की चारिका से पवित्र नदी मही, गण्डकी (नारायणी), बाया, बूढ़ी गण्डकी, बागमती, लखनदेई, अधवारा, खिरोई, व्याघ्रमुखी, जमुनिया, जीवछ, करेह, कमला-बलान, भुतही-बलान, तिलयुगा, कौशिकी, कौशिकी की अन्य उप-धाराएँ (बेती, धेमुरा, तिलावह, परवाने, चिलौनी, हइयाधार, लच्छाधार, काली कोसी), सउरा, पनार, कवल, कंकई, मेची, महानन्दा आदि नदियाँ उत्तर बिहार की भूमि पर बिछी हुई हैं और ये सब गंगा की गोद को भरती हैं। इन नदियों में हिमाचल-प्रदेश से आरंभ करके संपूर्ण नेपाल देश तक का पानी आता है और गण्डकी तथा कोसी के मार्ग से तो तिब्बत तक का जल ढलकर गंगा में पहुँचता है। ये ही नदियाँ उत्तर बिहार के भू-खंड को सिरजती हैं, उसमें अन्न और धन का सोना उगलती हैं तथा जनक, याज्ञवल्क्य, गौतम, तीर्थंकर महावीर, कुमारिलभट्ट, मण्डन मिश्र, वाचस्पति, ज्योतिरीश्वर, विद्यापति आदि सारस्वत विभूतियों का संवर्धन करती हैं। अतः इन संपोषिकी सरिताओं की चंचल लहरियों और इनके चटुल आवर्त्तन-विवर्त्तन का थोड़ा कीर्तन-मनन करना हमारा धर्म हो जाता है।

सरयू बनाम घाघरा

पतित पावनी और विहार-भूमि-वाहिनी माँ गंगा का अनुशीलन पश्चिम में 'चौसा' से आरंभ करके पूर्व की ओर 'उधवा नाला' तथा 'गुमानी' नदी के संगम तक किया गया है। उसी क्रम से गंगा की सहायिका उत्तर विहार की नदियों का अध्ययन भी इस भू-भाग की पश्चिमी सीमा से आरंभ करके क्रमशः पूर्व की ओर बढ़ते हुए 'महानन्दा' एवं 'दाउक' नदी तक किया जायगा। इस क्रम में सबसे पहले 'सरयू' का नाम आता है। सरयू को लोग 'घाघरा' भी कहते हैं। यद्यपि 'सरयू' नदी अपने संगम-क्षेत्र को छोड़कर कहीं भी विहार की भीतरी सीमा में नहीं बहती, तथापि यह उत्तर प्रदेश और विहार के मध्य में सीमा बनकर लगभग ५० मील तक प्रवाहित होती है एवं बलिया तथा सारन जिले की सीमारेखा बनती है। साथ ही, यह उत्तर बिहार की अति-प्रसिद्ध और पुण्यवती नदी मानी जाती है। धार्मिक दृष्टि से गंगा-जल के बाद बिहार में इसी का जल सबसे अधिक पवित्र माना जाता है, अतः इसके विवरण के बिना इस पुस्तक को पवित्रता और मेरे लेखन-श्रम की सार्थकता संभव नहीं।

सरयू का प्राचीन साहित्य :

प्राचीन भारतीय साहित्य में सिन्धु, सरस्वती एवं दृषद्वती—इन तीन भारतीय नदियों का वृहत् यशोगान किया गया है। किन्तु, जैसे-जैसे वैदिक सभ्यता पूर्व की ओर बढ़ती गई, वैसे-वैसे ही गंगा, यमुना और सरयू—ये तीन देवनदियाँ भी लोकमानस पर आच्छन्न होती गईं। सूर्यवंशियों के चरित्र तथा उत्तर कोसल-राज्य की राजनीति के विकास के साथ ही 'सरयू' की विरुदावली भी फैलती गई, जिससे 'सरयू' के विरुदों से प्राचीन ग्रंथ गरिमान्वित होने लगे। यों तो, ऋग्वेद के पाँचवें तथा दसवें मण्डल में 'सरयू' का नाम अनितभा, कुभा, क्रुमु, सिन्धु और सरस्वती के साथ आया है;[१] किन्तु कुछ विद्वानों का कहना है कि यह 'सरयू' नदी सरस्वती के पश्चिम 'सिन्धु' नद में समागम करने वाली नदी है अथवा एरियाना के उत्तर 'अरियुस' नामक नदी को ऋग्वेद ने 'सरयु' कहा है। उन विद्वानों का ऐसा सोचना स्वाभाविक है; क्योंकि ऋग्वेदोक्त 'सरयु' का नाम जिन नदियों के क्रम में जोड़ा गया है, वे सभी भारत के सुदूर पश्चिम भाग में ही बहती हैं और उनमें सबसे पूरब की नदी 'सरस्वती' ही है। किन्तु, बहुतेरे विद्वान् अयोध्यावाली 'सरयू' को ऋग्वेदवाली 'सरयु' से अभिन्न मानते हैं।

---

१. (क) मा वो रसाऽनितभा कुभा क्रुमुर्मावः सिन्धुर्निरीरमत।
मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत सुम्नमस्तुव ॥– ऋग्वेद, ५।५३।९।
(ख) सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणी। –ऋ०, १०।६४।९।

जो हो, हम ऋग्वेद को छोड़ भी दें, तो भी हमारी प्रतिपाद्य 'सरयू' की महत्ता प्राचीन संस्कृत-साहित्य में प्रचुर है, जिससे प्रमाणित है कि 'सरयू' अति प्राचीन काल से भारतीयों की पवित्र नदी है। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामामण में 'सरयू' की २० स्थानों में चर्चा की है तथा महाभारतकार व्यास ने आठ स्थानों में स्मरण किया है। कतिपय पुराणों ने भी सरयू का गुणगान किया है। वाल्मीकीय रामायण की मुख्य नगरी अयोध्या इसी सरयू के तट पर अवस्थित है, जहाँ वाल्मीकि के धीरोदात्त नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का बचपन विकसित हुआ था और उनकी इहलीला भी इसीके तट पर समाप्त हुई थी। पर पता नहीं क्यों, महर्षि वाल्मीकि ने जिस भावविह्वलता के साथ गंगा की उत्पत्ति, उसके प्रवाह-पथ एवं महिमा का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है, भगवान् राम की और उनके ६३ पूर्व पुरुषों की प्यारी नदी 'सरयू' का वैसा विशद गुणगान नहीं किया है। 'महाभारत' भी सरस्वती, दृषद्वती, गंगा और यमुना का जैसा भूगोल और इतिहास बतलाता है, वैसा ऋषि वसिष्ठ की प्यारी नदी 'सरयू' का नहीं। वह केवल 'सरयू' की उत्पत्ति की कथा दो ही श्लोकों में कर देता है। सिद्धाश्रम को जाते समय महर्षि विश्वामित्र के साथ जब राम-लक्ष्मण गंगा-सरयू-संगम के समीप पहुँचते हैं, तब राम कहते हैं : **वारिणो भिद्यमानस्य किमयं तुमुलो ध्वनिः ?** इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि विश्वामित्र ने 'सरयू' का बहुत ही संक्षिप्त परिचय दिया है :

कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं सरः।
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः ॥
तस्मात् सुश्राव सरसः साऽयोध्यामुपगूहते ।
सरः प्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता ॥
तस्यायमतुलः शब्दो जाह्नवीमभिवर्त्तते ।
वारिसंक्षोभजो राम प्रणामं नियतः कुरु ॥[1]

अर्थात्, "हे राम, सरयू नदी गंगा में प्रवेश कर रही है और दोनों नदियों की जल-धाराओं के टकराने से जल में जो क्षोभ पैदा हो रहा है, उसी का यह भारी शब्द सुनाई पड़ रहा है। यह सरयू ब्रह्मसर से स्रवित होकर मानसरोवर में प्रवेश करती है और वहाँ से स्रवित होकर अयोध्या नगर को घेरती है। ब्रह्मा ने कैलास पर्वत पर अपने मन से एक सरोवर का निर्माण किया है, जिससे वह 'मानस सर' कहलाता है, उसीसे यह सरयू स्रवित होती है। यह परम पुण्यवती है, इसे भक्तिभावपूर्वक प्रणाम करो।" वाल्मीकि-रामायण में 'सरयू' की उत्पत्ति की कहानी इससे अधिक नहीं मिलती।[2]

'सरयू' नदी के उत्पत्ति-स्थान के संबंध में 'महाभारत' भी वाल्मीकि-ऋषि के मत का समर्थन करता है। इसके अनुसार, 'कैलास' पर्वत की ओर जानेवाली 'गंगा' को ब्रह्मर्षि

१. वाल्मीकीय रामायण, वा० का०, सर्ग २४, श्लोक ८ से १०।
२. सरयू नदी का स्राव मानसरोवर में है या नहीं, इसपर विस्तार से आगे विचार किया जायगा।

वसिष्ठ मानसरोवर में ले आए और तब उस 'गंगा' ने मानसरोवर का भेदन कर दिया और बह निकली। सरोवर का भेदन करके निकली है, इसीलिए इसका नाम 'सरयू' पड़ा है। इसी के उद्गम-प्रदेश में खलिन मारे गए थे, जिससे इस क्षेत्र का नाम भी 'खलिन' पड़ा।

कैलासे प्रस्थिताञ्चैव नदीं गङ्गां महातपाः।
आनयत् तत्सरो दिव्यं तया भिन्नञ्च तत्सरः॥
सरो भिन्नं तया नद्या सरयूः सा ततोऽभवत्।
हताश्च खलिनो यत्र स देशः खलिनोऽभवत्॥

—महा०, अनु०, १५५।२३-२४

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि 'महाभारत' सरयू का स्थान सप्तगंगाओं में मानता है, और इसका उल्लेख अपने आदिपर्व में करता है।[१] समान कोटि की ऐसी चार नदियों की चर्चा करता है, जिनके गर्भ में अग्नि का वास है।[२] इनमें गंगा, शतकुम्भा, सरयू और गण्डकी हैं। 'महाभारत' और 'पद्मपुराण' के अनुसार सरयू के तट पर अयोध्या के निकट तीर्थोत्तम 'गोप्रतार' नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान राम अपने सेवकों, सेनाओं तथा वाहनों के साथ स्वर्ग गए थे : **गोप्रतारं ततो गच्छेत् सरय्वास्तीर्थमुत्तमम्।**
यत्र रामो गतः स्वर्गं सभृत्यबलवाहनः॥

—महा०, वन, ८४।७१

अति प्राचीन भारत में ही सरयू की इतनी बड़ी महत्ता स्थापित हो गई थी कि जब दशरथ के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ कराने को शृंगी ऋषि उद्यत हुए, तब उन्होंने यज्ञवेदी 'सरयू' के तट पर ही बनवाने का आदेश दिया : **सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्।** उन्होंने सरयू के उत्तरी तट पर यज्ञ-सम्पन्न कराया था : **सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्त्तत।**[३] सरयू नदी के तट पर केवल दशरथ ने ही यज्ञ नहीं किया था; बल्कि समस्त इक्ष्वाकुवंशियों के यज्ञ सरयू के तट पर संपन्न हुए थे। इसीलिए, सरयू का तट यज्ञ-यूपों की पंक्तियों से भरा हुआ था : **एषा सा दृश्यते सीते सरयूः यूपमालिनी।**[४] अयोध्या से छह कोस आगे जाने पर सर्वप्रथम इसी सरयू के जल का आचमन राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र ने कराया था और तब उन्हें बला-अतिबला नामक विद्या-मंत्रों को दिया था,[५] जिससे दोनों भाइयों ने अपार शक्ति प्राप्त कर ली थी। इसके बाद तीनों ने सरयू के तट पर शयन किया था। विश्वामित्र ने सिद्धाश्रम जाने के लिए, गंगा नदी तक, सरयू के तटवाले

---

१. गङ्गां च यमुनाञ्चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम्।
रथस्थां सरयूञ्चैव गोमतीं गण्डकीं तथा॥
अपर्युषितपापास्ते नदी सप्त पिबन्ति ये। —महा० आदि, १६९।२०-२१

२. गङ्गा च शतकुम्भा च सरयूः गण्डसाह्वया। —महा० वन०, २२२।२२

३. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १४।१

४. उपरिवत्, युद्धकाण्ड, सर्ग १२६।४९

५. उपरिवत्, बालकाण्ड, सर्ग २२।१० और १२।

मार्ग से ही राम-लक्ष्मण के साथ प्रयाण किया था। संगम-स्थान पर सरयू और गंगा के मध्य बने पावन-पुलिन पर इन्होंने एक रात भी बिताई थी और भोर होने पर गंगा नदी को पार किया था : **इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शने।**

पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम् ।।[1]

सरयू नदी के तट-प्रदेश की भूमि अयोध्या के राजाओं की आखेट-भूमि भी थी। दशरथ ने अपने जिस आखेट में मुनि-पुत्र (श्रवणकुमार) का बध किया था, वह आखेट सरयू नदी के किनारे में ही हुआ था और आखेट करने वे सरयू के किनारे से ही गए थे: **व्यायामकृतसङ्कल्पः सरयूमन्वगां नदीम्।** उन्होंने जंगली जानवर के भ्रम में जिस ऋषि-कुमार को वाण मारा था, उस कुमार को सरयू-तट के जल में ही पीड़ा से छटपटाते हुए देखा था : **ततः सरय्वां तमहं शयानं समीक्ष्य भद्रेऽस्मि भृशं विषण्णः।**[2]

राजा दिलीप जब पुत्रार्थी होकर नन्दिनी की सेवा करने अयोध्या से वसिष्ठाश्रम में गए, तब वसिष्ठाश्रम जाने का मार्ग उनका सरयू का तट ही रहा होगा; क्योंकि महाभारत के उस प्रसंग में पहले कहा गया कि वसिष्ठ ने ही कैलास पर्वत की ओर जाती हुई गंगा को मानससर में डाला, और वह गंगा मानससर से 'सरयू' नदी बनकर निकली। अतः वसिष्ठाश्रम सरयू के उद्गम-स्थान के पास ही था, जिसको सम्पुष्टि ब्रह्माण्डपुराण[3] भी करता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि अयोध्या नगर के विकास का अधिकांश श्रेय सरयू नदी को ही दिया जा सकता है, जिसका उल्लेख कालिदास ने भी खूब किया है।

उक्त प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त भारतीय भूगोल-विज्ञान के विशेषज्ञ महाकवि कालिदास ने 'सरयू' की उत्पत्ति और उसकी महिमा का वर्णन बड़ी ही मनोरंजक काव्यभाषा में किया है। भगवान् राम लंका से पुष्पक विमान पर सीता को जब अयोध्या ला रहे थे, तब उन्होंने विमान से सरयू को दिखलाते हुए सीता से कहा था :

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्ट-हेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।
जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्।
तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरी कृतानि ।।
यां सैकतोत्सङ्गसुखोचितानाम्प्राज्यैः पयोभिः परिवर्द्धितानाम्।
सा मान्यधात्रीमिव मानसं मे सम्भावयत्युत्तरकोसलानाम् ।।
सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरङ्गहस्तैरुपगूहतीव ।।[4]

---

१. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग २३।१६
२. उपरिवत्, बालकाण्ड, सर्ग ६३।५३।
३. ब्रह्माण्ड पुराण, उपोद्घातपाद-३, अध्याय १३, श्लोक ५२ से ५४।
४. रघुवंश, सर्ग १३, श्लो० ६०-६३।

अर्थात्, "हे सीते, उस सरयू नदी की तरंगों को जरा देखो। इस सरयू का उत्पत्ति-स्थान 'ब्राह्मसर' है, जिसमें प्रस्फुटित स्वर्णकमलपुष्पों के पराग देवताओं की पत्नियों के पयोधरों से संसक्त रहते हैं। इसका उद्‌गम-स्थान उसी तरह 'ब्राह्मसर' में अव्यक्त है, जिस तरह आप्त वाक् बुद्धि का कारणस्थान अव्यक्त प्रकृति मानी जाती है। यानी सरयू के उद्‌गम की अव्यक्तता का उपमान अव्यक्त प्रकृति से उत्पन्न व्यक्त बुद्धि से दिया जाता है। इसके तट प्रदेशों में गाड़े गये यज्ञस्तम्भ दीख रहे हैं और यह कोसल की राजधानी अयोध्या को घेर कर बहती है। इक्ष्वाकुनृपति अपने अश्वमेध यज्ञों के अवसरों पर यज्ञान्त स्नान इसी के जल से करते हैं और उसके सहारे वे विमुक्त होते हैं, जिससे यह सरयू उनके तारने के लिए नौका मानी जाती है। उत्तर कोसल देश के राजाओं ने इस नदी की सैकत भूमिवाली गोद में सुखपूर्वक बैठ इसके प्रचुर जलरूपी दूध पीकर अपने को परिपुष्ट किया है, अतः मेरे पूर्वज उत्तर कोसल देश के नृपतियों का पोषण करनेवाली माता की तरह यह आदरणीया है। वही यह सरयू नदी है, जो मेरी भी मातृस्वरूपा है। माननीय राजा दशरथ ने जब मुझे माता-सरयू से अलग कर दिया और मैं जब इससे बहुत दूर जा बसा, तब यह इसी कारण मानो अत्यन्त विह्वल हो उठी है। वह देखो, शिशिरकालीन वायु से उसकी जो तरंगें उद्वेलित हो रही हैं, वे ऐसी लगती हैं, जैसे वह अपने तरंग-रूपी हाथों के इशारे से जल्दी-जल्दी मुझे बुला रही है और भुजा पसारकर मुझे अंक में भर लेना चाहती है।" इन पंक्तियों में कालिदास ने सरयू के उद्‌गम-स्थान को स्पष्ट करते हुए समस्त इक्ष्वाकुवंशियों का इस नदी से कितना अधिक सांस्कृतिक संबंध जुड़ा हुआ था, इसका गूढ़ तथ्य प्रकट किया है।

अयोध्या के राजाओं ने सरयू के तट पर इतने अधिक यज्ञ किये थे कि राम के ज्येष्ठ पुत्र 'कुश' दक्षिण की कुशावती नगरी से पुनः अयोध्या में बसने के क्रम में जब सरयू के तट पर पहुँचे, तब उन्होंने उसके तट-प्रदेश में वेदियों पर प्रतिष्ठित सैकड़ों यूप-स्तम्भों को देखा था :

इत्यध्वनः कैश्चिरहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः ।
वेदिप्रतिष्ठान् विततावराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम् ॥[1]

फिर कालिदास के अनुसार, भगवान् राम के पितामह राजा 'अज' ने इसी सरयू के संगम-स्थान पर 'प्रायोपवेशन' कर्म के द्वारा अपने प्राण विसर्जित किये थे :

तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोः ।
देहत्यागादमरगणनालेखमासाद्य सद्यः ॥[2]

कालिदास के बाद, 'नामलिंगानुशासन' (अमरकोश) के रचयिता अमर सिंह ने यद्यपि भारत की गिनी-चुनी प्रसिद्ध नदियों के साथ 'सरयू' नदी का नाम नहीं लिया है,

---

१. रघुवंश, सर्ग १६, श्लो० ३५।
२. रघुवंश, सर्ग ८, श्लो० ९५।

तथापि 'सरयू' और 'देविका' इन दो नदियों के क्षेत्र में उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं को 'सारव' और 'दाविक' नामों से अभिहित किया है : **देविकायां सरय्वाञ्च भवेद्दाविकसारवौ।**[1]

उपर्युक्त प्राच्य साहित्य में 'सरयू' की चर्चा से इतना सिद्ध है कि सरयू की मान्यता और पवित्रता अत्यन्त पुराकाल से है और यह भारत की ख्यात-प्रख्यात प्राचीन नदियों में अन्यतम है।

सरयू का उद्गम-स्थान :

सरयू नदी के उद्गम-स्थान के संबंध में जितना अधिक मतभेद है, उतना मतभेद किसी भी प्रसिद्ध और बड़ी नदी के लिए नहीं है। वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, कालिका पुराण और कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य के अनुसार, सरयू का उद्गम-स्थान मानसरोवर ह्रद में है; पर आधुनिक काल में इसके उद्गम-स्रोत का जो अन्वेषण हुआ है, जिसमें स्वामी प्रणवानन्द का अन्वेषण मुख्य है। उसके अनुसार प्राचीन मान्यताएँ खंडित हो गई हैं। यों तो लोक में प्रचलित विचार के अनुसार, ऐसी तीन नदियाँ हैं, जो अपने-अपने क्षेत्र में सरयू कहलाती हैं। इनमें से एक तो वह है, जो नेपाल के 'राप्ती' अंचल से निकलती है और पश्चिम में बहकर 'भेरी' अंचल के दक्षिणी भाग में आकर और फिर दक्षिण मुड़कर भारत में प्रवेश करती है। नेपाल में इसका नाम 'बबई' है। भारत में आकर यह सरयू कही जाती है और कटाईघाट के पास 'घाघरा' से संगम करती है। कटाईघाट स्थान 'सुहेली' नदी के संगम से ५० मील दक्षिण में है। यह सुहेली लखीमपुर-खीरी जिले के पश्चिमी और उत्तरी भाग से बहकर आती है। अमेरिका से प्रकाशित 'आडेसी वर्ल्ड एटलस' में भी नेपाल की बबई को ही भारतीय भूमि में सरयू लिखा गया है। दूसरी वह नदी सरयू कही जाती है, जो कुमाऊँ प्रदेश के 'बागेश्वर' स्थान के उत्तर-पश्चिम में स्थित नन्दा कोट-शिखर से प्रवाहित होती है, और बागेश्वर के पास जब आती है, तब 'गोमती' नामक नदी (लखनऊ वाली गोमती नहीं) को आत्मसात् कर लेती है। इसके बाद अग्निकोण में बहती हुई 'टनकपुर' के पास 'काली' नदी में मिल जाती है। उत्तर प्रदेश के उत्तरी अंचल में तथा कुमाऊँ में यही नदी सरयू कही जाती है। इसी के संगम के बाद 'काली' नदी का नाम मिट जाता है और इसी का नाम 'शारदा' हो जाता है। तीसरा मत यह है कि नेपाल की 'कर्णाली' नदी ही वास्तविक सरयू है और इसकी संपुष्टि वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा रघुवंश से होता है। इस नदी का उत्स 'राक्षसताल' के दक्षिणी-पश्चिमी कोण में मप्चा चुङो के स्रोत के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिए, तिब्बती भाषा में 'कर्णाली' को 'मप्-छू' कहा जाता है और ब्रह्माण्ड पुराण में (उपोद्घात पाद, ३।१३।५२) मप्-छू को ही मद्रवा लिखा गया है : **प्रायशो मद्रवा पुण्या शिवो नाम ह्रदस्तथा** और यहीं वसिष्ठ का आश्रम बतलाया गया है : **अत्रैव चाश्रमः पुण्यो वसिष्ठस्य महात्मनः।** अतः, कर्णाली नदी को ही वास्तविक सरयू कहलाने का

१. नामलिंगानुशासन (अमरकोश), वारिवर्ग, श्लो० ३३।

अधिकार है। अब हमें अंतःसाक्ष्यों के आधार पर देखना और अनुशीलन करना है कि वस्तुतः 'सरयू' नदी कौन है ?

उक्त विचार के क्रम में सर्वप्रथम हमें इसके नाम की ओर ध्यान देना होगा। नदी का नाम 'सरयू' है और यह उणादिसूत्र **सर्त्तेरयूः** (३०६) के अनुसार, **सृ गतौ** से **अयू** प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। यद्यपि इसका अर्थ केवल 'बहनेवाली' नदी किया गया है, तथापि महाभारत[१] के अनुसार, **सरो यौति = भिनत्तीति** तथा वाल्मीकीय रामायण[२] के अनुसार **सरो यौति = निस्सरतीति** 'सरयूः'—ये दोनों अर्थ अधिक सटीक हैं। अतः, नाम से सिद्ध है कि सरयू उस नदी का नाम है, जिसका निस्सरण किसी सरोवर से होता है। इससे तो स्पष्ट है कि वास्तविक 'सरयू' कर्णाली ही है, जिसका उद्‌गम वाल्मीकि और महाभारत-कार ने मानसरोवर में बतलाया है।

किन्तु, प्रश्न उठता है कि उक्त प्राचीन ग्रंथों के आधार पर जिस कर्णाली नदी को सरयू माना जायगा, उस कर्णाली का उद्‌गम न तो मानसरोवर में है या न राक्षस-ताल में। भारतीय भूगोल के विशिष्ट अन्वेषक स्वामी प्रणवानन्दजो ने भी मानस-खंड के तमाम क्षेत्रों का पैदल भ्रमण करके तथा बड़ी सावधानी से जाँच-पड़ताल करके अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **कैलास-मानसरोवर** में मानचित्र के साथ यही लिखा है कि कर्णाली का उद्‌गम-स्थान न तो मानसरोवर में है या न राक्षसताल में। उक्त पुस्तक के पृष्ठ ५४ पर वे लिखते हैं : "वस्तुतः कर्णाली का उद्‌गम-स्थान रावण-ह्रद के नैऋत्य-कोण में 'मप्‌चा-चुङो' नामक स्रोतों में है, जहाँ से कर्णाली मानस-खंड (मप्‌चा खम्बम्) और नेपाल की सीमा से निकलकर 'घाघरा' नाम से प्रसिद्ध हो जाती है।" प्रणवानन्दजी के इस अन्वेषण को आज अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सभी भूगोलविदों ने मान लिया है। किन्तु, अब हम यहाँ प्राचीन अंतःसाक्ष्यों का सूक्ष्म विवेचन करना चाहेंगे, जिससे कर्णाली (सरयू) के उद्‌गम-स्थान के रहस्योद्‌घाटन के साथ ही स्वामी प्रणवानन्दजी की प्रत्यक्षदर्शिता का भी समन्वय यथोचित रूप में हो जायेगा।

(क) अंतःसाक्ष्यों में पहला तो मानसरोवर के किनारे का वह प्राचीन तिब्बती मठ है, जिसके एक शिला-लेख में तिब्बती भाषा में लिखा है कि इस सरोवर से कर्णाली, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु और शतद्रु (सतलज)—ये चार नदियाँ निकलती हैं। शिलालेख किस काल का है, इसका उल्लेख नहीं है; पर यह उनलोगों द्वारा लिखा गया है, जो इस क्षेत्र में अति प्राचीन काल से बसते और जीवनपर्यन्त भ्रमण करते रहे हैं। इसके मानी हुए कि मान-सरोवर ने उत्तर में सिन्धु को, पश्चिम में सतलज को, दक्षिण में कर्णाली को तथा पूर्व दिशा में ब्रह्मपुत्र को प्रवाहित किया है। किन्तु प्रत्यक्षदर्शी प्रणवानन्दजी ने इस शिला-लेख को कपोल-कल्पित कहा है और बतलाया है कि शतद्रु (सतलज) को छोड़कर कोई

१. सरो भिन्नं तया नद्या सरयूः सा ततोऽभवत् । —महा० अनु०---१५५।२४ ।

२. 'सरः प्रवृत्ता सरयूः' अथवा 'तस्मात् सुस्राव सरसः' । — वाल्मी० रा०, बा०, सर्ग २४।९ ।

दूसरी नदी मानसरोवर से नहीं निकलती है। सतलज भी वस्तुतः राक्षस-ताल से निकलती है; पर मानसरोवर का जल राक्षस-ताल में जाता है, अतः सतलज का उद्गम-स्थान मानसर माना जा सकता है।

(ख) दूसरा साक्ष्य वाल्मीकि-रामायण के वे श्लोक हैं, जिन्हें मैंने इसके पूर्व 'सरयू का प्राचीन साहित्य' प्रकरण में उद्धृत किया है। उनमें कहा गया है कि कैलास पर्वत पर ब्रह्मा ने मानससर का निर्माण किया है, जिसमें ब्रह्मसर से स्रवित होनेवाली सरयू प्रवेश करती है और फिर उस मानससर से स्रवित होकर अयोध्या को घेरती है : **तस्मात् सुस्राव सरसः साऽयोध्यामुपगूहते।**

(ग) तीसरा साक्ष्य फिर महाभारत (अनु० १५५, २३-२४) का है। इसे भी सरयू के प्राचीन साहित्य के विवरण-क्रम में उद्धृत किया गया है। इसमें भी कहा गया है कि कैलास शिखर की ओर जानेवाली गंगा को वसिष्ठ ऋषि मानस-सर में ले आये। वही गंगा उस सर को भेदन करके प्रवाहित हुई। वह 'सर' को भेदन करके बहती है, इसलिए उसका नाम सरयू पड़ा : **सरो भिन्नं तया नद्या सरयूः सा ततोऽभवत्।**

उपर्युक्त दोनों आर्ष वाक्यों से तो यही प्रमाणित होता है कि सरयू का मूल स्रोत मानसरोवर में नहीं, बल्कि उससे भिन्न ब्रह्मसरोवर में है; क्योंकि ऋषि वाल्मीकि कहते हैं : **सर प्रवृत्ताः सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता** और व्यास कहते हैं : **कैलासं प्रस्थिताञ्चैव नदीं गङ्गां महातपाः, आनयत् तत्सरो दिव्यम्** अर्थात् कैलास की ओर जाती हुई गंगा को वसिष्ठ मानसरोवर में ले आए। इन दोनों वचनों से तो यही लगता है कि तिब्बत के जिस हिम-सर से ब्रह्मपुत्र निकलता है, उसी से पश्चिमी-उत्तरी कोण में बहनेवाली 'गंगा' नामक नदी[1] वास्तविक सरयू है, जिसमें 'टग' नामक नदी मिलती है और तब वह 'गंगा' के नाम से मान-सरोवर के अग्निकोण में गिरती है। ब्रह्मसरोवर वही सर है, जिससे ब्रह्मपुत्र भी निकलता है। ब्रह्मसरोवर से निकलने के कारण ही इसका नाम 'ब्रह्मपुत्र' पड़ा है, जो सार्थक है। यही गंगा कैलास की ओर जाती देखी जाती है, जिसे वसिष्ठ मानस में लाए। मानसरोवर में मिलने के बाद यही गंगा फिर राक्षस ताल में प्रवेश करती है और वहाँ यह 'गंगा छू' कहलाती है। फिर राक्षसताल को भेदन करके भीतर-भीतर जो जल 'मप्चा चुङो' के स्रोत में पहुँचता है, वही कर्णाली (सरयू) के स्वरूप में प्रकट होता है।

(घ) चौथा साक्ष्य 'ब्रह्माण्डपुराण' (अनुषंगपाद, ३, अध्याय १८, श्लोक ७०) का है : **श्वेतात् प्रवर्त्तते पुण्यं सरयू र्मानसाद् ध्रुवम्।** इस श्लोक के 'ध्रुवम्' शब्द के द्वारा बड़े ही दृढ स्वर में यह पुराण कहता है कि सरयू श्वेत मानससर से प्रादुर्भूत हुई हैं, जो अतिशय पवित्र है।

(ङ) पांचवाँ साक्ष्य 'कालिका महापुराण' (अध्याय २३) का भी है। इसके अनुसार वसिष्ठ और अरुन्धती के विवाह-संस्कार के अवसर पर अर्घ्यों-आचमनों के जो अवशिष्ट जल

१. देखिए; सर्वे ऑव इण्डिया का रोड-मैप, सन् १९६० ई०।

मानसाचल पर गिरे और जो यत्र-तत्र उसकी कंदराओं में एकत्र हो गए, वे ही जल सात भागों में बिखर कर सानु-प्रदेश की झीलों तथा सरोवरों में आए और अलग-अलग हो गए। इन सभी झीलों के जल को हंसों ने 'वाडव' के निकट एकत्र किया, जिससे पुण्यमयी सरयू प्रवाहित हुई :

एवं विवाह्य विधिवत् सौवर्णे मानसाचले।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्तु मोदमाप तया सह ॥
यत्र यत् पतितं तोयं मानसाचल-कन्दरे।
तत्तोयं सप्तधा भूत्वा मानसाचल-कन्दरात् ॥
हेमाद्रेः कन्दरे सानौ सरस्याञ्च पृथक्-पृथक्।
तत्तोयं संगतं कुर्यात् हंसा वाडवसन्निधौ ॥
तेनाऽभूत् सरयूर्नाम्ना नदी पुण्यतमा शुभा।

'कालिका पुराण' के इस कथन के अनुसार, मानसाचल से 'सप्तधा भूत्वा' निकलनेवाली कङ्जम छू, ल्हा छू, झोङ् छू, तरछेन छू, करखेद छू, डमा छू और खण्ड छू—इन सात नदियों में सरयू का उत्स है, जो सभी कैलास के किनारों से प्रवाहित होकर 'ल्हा छू' के द्वारा राक्षसताल में गिरती हैं। इन सप्त नदियों का विवरण स्वामी प्रणवानन्दजी की निम्नलिखित पंक्तियों में[1] देखा जा सकता है :

"कैलास-शिखर की उत्तरी तलहटी से जो छोटी नदी निकलती है, उसका नाम कङ्जम छू है। यह डिरफुक गोम्पा के सामने ल्हाछू में जाकर गिरती है। जिस नदी को सतलज के नाम से इन (कुछ) लोगों ने पुकारा है, वह झोङ् छू है। यह भी आगे चलकर ल्हा छू में मिलती है। कैलास के दक्षिण में सिन्धु का होना केवल काल्पनिक है। कैलास के दक्षिण दिशा से तरछेन छू निकलती है और झोङ् छू में जाकर मिलती है। पूर्वोक्त लेखकों ने जिस नदी को उत्तर में सतलज और पूर्व में गुङ् छू बतलाया है, वह वास्तव में झोङ् छू है। पश्चिम की लाक्षू, ल्हा छू है। झोङ छू और 'तरछेन छू मिलकर ल्हा छू में गिरती है। ल्हा छू राक्षसताल में जाकर गिरती है।"

उक्त विवरण को उसी पुस्तक के पृष्ठ ४८ में स्वामीजी ने और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है : "कैलास पर्वत के पश्चिम होकर बहनेवाली ल्हाछू पूर्व होकर बहनेवाली झोङ्छू और बीच में होकर बहनेवाली तरछेन छू नामक नदियाँ तिब्बती धर्मग्रंथों में केङ्मा, रेङ्मा और उङ्मा अर्थात् इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नाम से तथा कैलास-सहस्रारचक्र के रूप में वर्णित है। ये तीन नदियाँ मिलकर राक्षस-सरोवर में गिरती हैं।

प्रत्यक्षदर्शी श्री प्रणवानन्दजी के उक्त कथनों का इतना लंबा उद्धरण देने का मेरा एकमात्र तात्पर्य यही है कि कालिकापुराण सरयू का मूल उत्स मानसाचल के जिन सप्त-

१. 'कैलास-मानसरोवर', प्रकाशक, हिंदी साहित्य—सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९४३ ई०, पृ०५५।

धाराओं में मानता है, वे सप्तधाराएँ कैलास की ये नदियाँ हैं; जिनका जल राक्षसताल में आता है और जहाँ से सरयू प्रादुर्भूत होती है।

सरयू मानसरोवर-प्रस्रविणी नदी है, इसके संबंध में पूर्वोक्त इन पाँच साक्ष्यों के बाद भी प्रत्यक्षदर्शी स्वामी प्रणवानन्दजी की यह बात खंडित नहीं होती कि कर्णाली का उत्स 'मप्‌चा चुङो' के स्रोतों में है, न कि राक्षसताल या मानसरोवर में। क्योंकि, स्वामीजी ने कर्णाली तथा मानसखंड का चप्पा-चप्पा छान डाला है तथा नदियों के उत्सों का गंभीर अन्वेषण किया है और जैसा पहले मैंने कहा, इनके अन्वेषणों को अंतरराष्ट्रीय भूगोल-वेत्ताओं ने अनुमोदित किया है। तब क्या ऐसी स्थिति में वाल्मीकि, व्यास और पुराणों के रचयिता तथा तिब्बती मठ के शिलालेख—इन सबका अन्वेषण और कथन निरा गप्प है? मेरी समझ से दोनों अपने-अपने ज्ञान के अनुसार ठीक हैं और प्रणवानन्दजी ने अपनी दृष्टि से जो देखा है, उसका उल्लेख किया है। सरयू के मूल स्रोत के रहस्य का उद्घाटन वे नहीं कर सके हैं। किंतु निश्चित रूप से इन दोनों अन्वेषणों में सामंजस्य है, जिसका उद्घाटन मैं स्वामीजी के कथनों तथा वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के द्वारा प्रस्तुत अंतःसाक्ष्यों के आधार पर ही करना चाहूँगा।

स्वामी प्रणवानन्द ने अपनी उसी पुस्तक 'कैलास-मानसरोवर' में लिखा है कि "किसी काल में मानसरोवर और रावणह्रद एक ही सरोवर थे, जो भूमि की हलचलों के कारण दो हो गए हैं।" आज भी गंगा छू नामक नदी मानसरोवर से निकलकर रावणह्रद में गिरती है और रावणह्रद से उसके पश्चिमी-उत्तरी कोण में सतलज (शतद्रु) बहती है। शेष सिन्धु, कर्णाली और ब्रह्मपुत्र के उत्स आज प्रत्यक्ष तौर पर मानससर अथवा रावणह्रद में नहीं दिखाई पड़ते हैं। सिन्धु नदी का उत्स मानसरोवर से दूर कैलास पर्वत के उत्तर भाग में है और ब्रह्मपुत्र का उत्स मानसरोवर से बहुत दूर अग्निकोण में ब्रह्मसर में है। इसी प्रकार, कर्णाली (सरयू) का उत्स रावणह्रद के नैऋत्य कोण में स्थित मप्‌चा चुङो के स्रोतों में है। किंतु, प्रणवानन्दजी ने यह कहीं नहीं बतलाया कि मप्‌चा चुङो के स्रोतों में से कौन-सा स्रोत कर्णाली का है। ये सभी स्रोत रावणह्रद के समीप में हैं; जिनमें से छिबरा छू का उत्स अधिक समीप है। 'गुरला छू' नामक नदी कर्णाली में जहाँ संगम करती है, वहाँ से ऊपर 'करदुङ्' नामक स्थान में छिबरा छू नाम की दो धाराएँ गुरला छू से मिलती हैं और इनका जल समेटकर गुरला छू, कर्णाली में आती है। छिबराछू नाम की धाराओं के अतिरिक्त भी गुरला छू नदी रिपुंग छू और परबू छू नामक स्रोतों का जल भी ग्रहण करके ले आती है। छिबरा छू नामक स्रोतों का उद्‌गम 'यूप्‌चा' नाम के एक बड़े मैदान में है, जहाँ भीतर से अनेक स्रोत फूटकर बहते हैं, जिनमें से कुछ का जल-समूह छिबरा छू नामक स्रोतों से बहकर गुरला छू में आता है और कुछ जल-समूह सिमटकर पूर्व-उत्तर कोण में बहकर फिर रावणह्रद में चला जाता है। यूप्‌चा के यही स्रोत वस्तुतः सरयू के उत्स हैं। तिब्बती में 'यू' का अर्थ 'फिरोजा' और 'प्चा' का अर्थ पहाड़ होता है अर्थात् नील पर्वत। मेरी समझ से

'मानसर' का 'सर' और यूप्चा' का 'यू' मिलकर ही यदि 'सरयू' का नाम बना हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। इसलिए 'सरयू' शब्द जब पाणिनि के सूत्रों से सिद्ध नहीं हो सका, तब उन्होंने **सत्तेरयूः** नामक उणादि सूत्र का निर्माण किया; क्योंकि यह शब्द संस्कृतभाषा में बाहर से आया था। यहाँ मानसर का जल तो प्रत्यक्ष रूप से रावणह्रद में 'गंगा छू' के द्वारा आता ही है और रावणह्रद का जल भीतर-भीतर यूप्चा की भूमि में फूटता है, जहाँ से सरयू बहती है। इसके अतिरिक्त 'मप्चा' का अर्थ 'मानसाचल' होता है और 'चुङो' का अर्थ स्रोतसमूह है—अर्थात् मानसाचल के स्रोत।

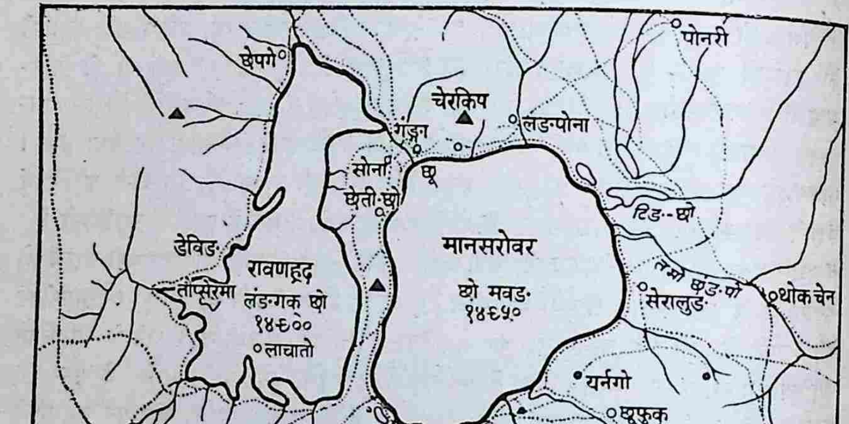
स्वामी प्रणवानन्दजी के कथनानुसार, जब भूमि की हलचलों से मानसरोवर दो भागों में विभक्त हो गया और जो सही बात है, तब वे भूमि की हलचलें सिन्धु, ब्रह्मपुत्र और कर्णाली के उत्सों को मानसरोवर से अलग क्यों नहीं कर सकतीं? भूमि की हलचलों का ही परिणाम है कि सरस्वती नदी कहीं लुप्त और कहीं प्रकट हो गई है और इन हलचलों के ही परिणामस्वरूप बहुत-सी नदियाँ सूख गईं और बहुतों का मार्ग अपनी जगह से योजनों दूर चला गया। रावणह्रद एक बड़े परिमाण में अपना जल भीतर-भीतर ही बहाता है, इस बात को स्वयं स्वामी प्रणवानन्द स्वीकार करते हैं। वे अपनी उसी पुस्तक के पृष्ठ ६५ पर लिखते हैं: "राक्षसताल में मानसरोवर-जैसी बड़ी-बड़ी दरारें और फाड़ न होने का यही कारण हो सकता है कि **राक्षसताल से वर्षा के नीचे से बाहर निकलनेवाले जल** की पूर्ति मानसरोवर की वर्फ के नीचे से आनेवाला जल कर देता है।" इन पंक्तियों को लिखने के अतिरिक्त भी स्वामी प्रणवानन्द 'स्वेन हेडिन' के मत का खंडन करते हुए उसी पुस्तक के पृष्ठ ६८ पर लिखते हैं—"उनके (स्वेन हेडिन के) कथन के विरुद्ध हम डंके की चोट पर कह सकते हैं कि **राक्षस ताल से अंतर्वाहिनियों के द्वारा तथाकथित सतलज के पुराने रास्ते** (ओल्ड बेड ऑफ सटलेज) **से या किसी अन्य रूप से बाहर जानेवाले जल का परिमाण उतना ही होना चाहिए, जितना कि वह मानसरोवर से ग्रहण करता है, संभवतः अधिक भी।**"

स्वामीजी के इन कथनों से स्वतः सिद्ध है कि मानसरोवर और राक्षसताल का स्रोत-जल समस्त मानसखंड में अंतर्धार होकर बहता है, जिसमें 'यूप्चा' के स्रोत तथा 'मप्चा चुङो' के स्रोत भी हैं और वाल्मीकि तथा व्यास के ये वचन ठीक हैं कि सरयू मानसरोवर से स्रवित होती है। मप्चा चुङो का अर्थ मानसाचल के स्रोत ही है, ऐसा मैंने पहले ही कहा है।

स्वामी प्रणवानन्दजी ने कर्णाली के स्रोत को आँखों से देखा, किंतु इसके रहस्य पर ध्यान नहीं दिया। किंतु वाल्मीकि और व्यास ने अपनी उन पंक्तियों में इस रहस्य को भी रखा है, इसीलिए वाल्मीकि कहते हैं: **तस्मात् सुस्राव सरसः**, अर्थात्, उस सर से रिस-रिस करके बहती है। इसी प्रकार व्यास ने कहा—**सरोभिन्नं तया नद्या**, अर्थात्, सरोवर को उस नदी ने भेदन किया, यानी विवर फोड़कर बही। यहाँ इन दोनों आर्ष वचनों में सर्वसाधारण के लिए पूरा स्पष्ट नहीं है कि मानसरोवर का जल भीतर-भीतर बहकर सरयू के रूप में

प्रकट होता है। किंतु, महाकवि कालिदास ने तो इस रहस्य को इतना स्पष्ट कर दिया है कि फिर प्रणवानन्दजी अथवा किसी को इस बात में किंचित् मात्र भी संदेह नहीं रह जाना चाहिए कि सरयू मानस-प्रस्रविणी है, जो छिपकर बहती है और इसका मूल स्रोत ब्रह्मसर में है। मैंने पहले सरयू से संबद्ध कालिदास के जिन श्लोकों को उद्धृत किया है, उनमें से इस श्लोक को देखिए :

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्त मुदाहरन्ति ॥[1]



अर्थात्, सरयू नदी का कारण-स्थान ब्रह्मसर उसी प्रकार है, जिस प्रकार आप्तवाक् बुद्धि का कारण-स्थान अव्यक्त (प्रकृति) है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार आप्तवाक् बुद्धि अव्यक्त से प्रकट होती है, उसी प्रकार सरयू नदी का उत्स अव्यक्त रूप में मानसरोवर से

1, रघुवंश; सर्ग 13, श्लोक 60।

प्रकट होता है। स्वामी प्रणवानन्द सरयू के उत्स के इस रहस्य को नहीं समझ सके और उन्होंने स्थूल दृष्टि से जैसा देखा, वैसा लिख दिया कि कर्णाली का उत्स न तो मानसरोवर में है या न राक्षसताल में; बल्कि मप्चा चुङो के स्रोतों में है। यह बात तो कालिदास के समय में सभी लोग जानते थे। किंतु वास्तविकता यह है कि मानसरोवर का जल गंगा छू के द्वारा अंतःस्थ रूप से राक्षसताल में आता है और राक्षसताल का जल अंतर्धार होकर मप्चा चुङो और यूप्चाचुङो के स्रोतों में आता है और वहाँ से कर्णाली (सरयू) प्रकट रूप से पृथ्वी पर बहती है। यह अन्वेषण कालिदास से भी पहले हो चुका था और उसी के आधार पर कालिदास ने सरयू के उत्स को 'अव्यक्त' कहा है और वाल्मीकि तथा व्यास के इस मत को स्पष्ट कर दिया है कि सरयू का मूल उत्स मानसर में है।

कर्णाली (सरयू) का धारा-मार्ग :

राक्षसताल का जो अंतर्वाही जल यूप्चा के मैदान में ऊपर फूटता है, वह छिवरा छू नामक दो सरिताओं के रूप में दक्षिण की ओर बहता है और पूर्वोत्तर कोण से नैऋत्य कोण में आनेवाली गुरुला छू के स्रोत से मिलकर मप्चा चुङो के अग्निकोणवाही स्रोत से 'करदुङ्' स्थान के पास सम्मिलित होता है। वही स्रोत कर्णाली नाम से अग्निकोण में बहने लगता है (देखिए मानचित्र)। करदुङ् के बाद इसके प्रवाह-पथ के बाएँ किनारे प्रसिद्ध स्थान 'तकलाकोट' मिलता है। कैलास मानसरोवर जानेवाले जो भारतीय यात्री अल्मोड़ा से चलकर काली नदी का किनारा पकड़कर मानसरोवर की ओर चलते हैं, वे तकलाकोट में ही कर्णाली नदी को पार कर जाते हैं। इसी स्थान पर भारत और तिब्बत की सीमाएँ मिलती हैं। तिब्बती व्यापारी तकलाकोट की मंडी में ऊनी कपड़े का अच्छा व्यापार भारतीयों के हाथ करते थे।

तकलाकोट से जब तीन मील आगे अग्निकोण में कर्णाली बढ़ती है, तब वहाँ इसके तट पर 'तोयो' नामक स्थान मिलता है। कश्मीरी सेना के जनरल जोरावर सिंह की समाधि इसी तोयो में है। जोरावर सिंह तिब्बत-विजय के लिए वर्षों से प्रयास कर रहे थे और उनके लिए वे कालदूत प्रमाणित हो रहे थे। किंतु १८४२ ई० के अक्टूबर मास में वे तिब्बतियों के हाथों तोयो में ही मारे गए, जिससे उनकी वहाँ समाधि बनी। तोयो से कर्णाली पूर्व-दक्षिण कोण में बहती हुई जब 'खोचारनाथ' (तिब्बती बौद्धतीर्थ) की ओर बढ़ती है, तब उसके किनारे 'गेजिन' नामक एक ऐतिहासिक स्थान मिलता है। इस गाँव में 'श्रीज्ञान दीपंकर अतिश' को भिक्षा नहीं मिली थी।[1] यहाँ 'डुप्छू' नामक एक स्रोत है, जिसके संबंध में कहा जाता है कि इसे दीपंकर अतिश ने अपने पीने के जल के लिए खोदा था। इस स्रोत की यह विशेषता है कि इस भयानक वर्फीले भाग में भी यह कभी न तो सूखता है या न कभी जमता है। यहाँ जो एक मानव-पदचिह्न है, उसे दीपंकर का ही पदचिह्न कहा जाता है। यह पदचिह्न एक 'छोरतेन' में है, जिसकी पूजा बड़ी ही श्रद्धाभक्ति से तिब्बती करते हैं।

---

१. कैलास-मानसरोवर, पृ० १७८।

गेजिन गाँव के अग्निकोण में 'खोचारनाथ' का गोम्पा है। यह गोम्पा उस समय भूटान राजा का था, जब तिब्बत पर चीनियों का अधिकार नहीं हुआ था। इसी स्थान पर **'रोमा'** नामक एक नदी ईशानकोण से बहकर आती है और कर्णाली में गिर जाती है।[1] खोचारनाथ बहुत ही प्राचीन और पवित्र स्थान माना जाता है, जहाँ तीर्थयात्रियों की बराबर भीड़ लगी रहती है। यहाँ बहुत-से देवी-देवताओं की प्राचीन मूर्त्तियाँ हैं। यहाँ से बहुत थोड़ी दूर पर ही कर्णाली पर वह पुल बना है, जो तिब्बत-नेपाल को जोड़ता है और यही पुल दोनों देशों का सीमा-स्थल है। यहीं कर्णाली नदी तिब्बत की भूमि छोड़कर नेपाल देश में घुसती है।

सीमा का यह दर्रा, जिससे कर्णाली नेपाल की सीमा में प्रवेश करती है, तकला-दर्रा अथवा यारी दर्रा कहलाता है। कर्णाली जहाँ नेपाल में प्रवेश करने लगती है, वहाँ तिब्बत का अन्तिम गाँव 'शर' है, जो 'पुरुङ् दून' नामक क्षेत्र में है। कर्णाली नदी नेपाल के पश्चिमोत्तर कोण में बाईसी राज्य के हुम्ला जिले में प्रवेश करती है और थोड़ी दूर पूर्व की ओर बहकर पूर्वोत्तर कोण में मुड़ती है। कर्णाली के किनारे से चलनेवाला एक मार्ग नेपाल और तकलाकोट को जोड़ता है। पूर्वोत्तर कोणवाही कर्णाली में जब एक बर्फीली नदी उत्तर से दक्षिण की ओर बहकर मिलती है, तब यह अग्निकोणवाहिनी होकर 'हुमला खोला' नामक दर्रे से पूर्वदिग्वाहिनी हो जाती है। इसी दिशा में बहती हुई यह जब 'सीनीकोट' स्थान के अग्निकोण में पहुँचती है, तब इसमें नेपाल की उत्तरी सीमा से निकलकर दक्षिण-पश्चिम बहती हुई 'वासिष्ठी' नामक नदी 'कर्णाली' से संगम करती है। वासिष्ठी का स्रोत धौलागिरि के दक्षिण से चलता है और धौलागिरि के उत्तर से ब्रह्मपुत्र और मानसरोवर में गिरनेवाली 'गंगा' का स्रोत उद्गमित होता है। ब्रह्मपुत्र का स्रोत पूर्वोत्तर भाग में, गंगा का स्रोत पश्चिमोत्तर कोण में और वासिष्ठी का स्रोत दक्षिण दिशा में बहता है। पश्चिमोत्तर कोण में बहनेवाली यह वही 'गंगा' है, जो मानसरोवर में 'टग' नदी को लेकर गिरती है और इसीके संबंध में महाभारत (अनु० १५५-२३) में कहा गया है कि कैलास की ओर जानेवाली गंगा को वसिष्ठ ने मानसरोवर में डाला, और वही गंगा फिर मानसरोवर से सरयू नदी के रूप में निकली। अस्तु।

'सीनीकोट' के अग्निकोण में वासिष्ठी को आत्मसात् कर कर्णाली 'सेती' और 'कर्णाली' अंचलों की सीमा बनती हुई अग्निकोण में बढ़ती है और जब 'गलवा' स्थान से उत्तर कई कोस दूर ही रहती है, तभी 'हुम्ला कर्णाली' नामक नदी कर्णाली के बाएँ भाग में मिलती है। यह भी नेपाल-तिब्बत-सीमा से बहकर दक्षिण की ओर आती है। हुम्ला कर्णाली का जल ग्रहण कर कर्णाली दक्षिण दिशा में गलवा होकर निकलती है। गलवा से थोड़ी दूर दक्षिण में कर्णाली के बाएँ भाग में 'मुगु कर्णाली' नामक नदी मिलती है। मुगु कर्णाली का उद्गम भी वहीं है, जहाँ हुम्ला कर्णाली का है। किन्तु, यह 'मुगु' नामक

१. कैलास-मानसरोवर पृ० १७९।

स्थान से होकर दक्षिण बहती है, अतः इसका नाम 'मुगुकर्णाली' है। पूर्व से बहकर आनेवाली 'लहगु' नामक नदी 'फोपा' नामक स्थान से बहती हुई पश्चिम की ओर आती है और मुगुकर्णाली के वाम पार्श्व में संगम करती है। लहगु का जल ग्रहण करके मुगुकर्णाली पश्चिम दिशा में दौड़ती है और 'गलवा' के नीचे (दक्षिण में) कर्णाली के वाएँ भाग में समागम करती है। इस समागम से कर्णाली का पैर थोड़ा डगमगाता है, जिस कारण यह नैऋत्य कोण की ओर घूमती है। किन्तु, इतने में सेती-अंचल की एक हिमनदी कर्णाली को दाहिने भाग से उसे सहारा देती है और यह फिर वाईं ओर झुकना चाहती है। इतने में महेन्द्रताल नामक प्रसिद्ध ह्रद की एक प्रस्रविणी कर्णाली को वाईं करवट से ठेलती है, जिससे इसके लड़खड़ाते पैर सीधे दक्षिण की ओर चलने लगते हैं। जब यह 'थिबलु' स्थान से दक्षिण और 'नेतकोट' के पूरब पहुँचती है, तब यहीं से कर्णाली और भेरी-अंचलों की सीमा बनने लगती है। दोनों अंचलों की सीमा पर कर्णाली के वाएँ भाग में 'ठुलो भेरी' नामक नदी समाहित होती है। यह संगम ठीक नेतकोट के सामने पूर्व में है। नेतकोट स्वयं 'सेती-अंचल' में पड़ता है और यहाँ तक कर्णाली नदी नेपाल में सेती-अंचल और कर्णाली अंचल की सीमा बनती हुई बहती आती है। कर्णाली के दाहिने भाग में सेती-अंचल और वाएँ भाग में ठुलो भेरी-संगम तक कर्णाली-अंचल का क्षेत्र है। ठुलो भेरी का नाम नेपाल के नक्शे[१] में 'तिला' भी है। यह 'कंजीरवा-हिमाल' के पश्चिमी और पूर्वी—दोनों भागों से दो धाराओं में चलती है और इन दोनों धाराओं के मध्य में 'जुमला' नामक नगर है, जो भेरी अंचल का मुख्य नगर भी है। इस नगर के नैऋत्य कोण में दोनों धाराएँ परस्पर सम्मिलित होती हैं और तब ठुलो भेरी पश्चिम दिशा में चलकर कर्णाली के वाम पार्श्व में समाहित हो जाती है।

ठुलो भेरी के संगम के वाद कर्णाली फिर दक्षिण दिशा में ही चलती है; पर अब सेती-अंचल और भेरी-अंचल की सीमा का काम करने लगती है। किन्तु, कर्णाली जब और कुछ दक्षिण बढ़ती है, तब इसके आगे 'अच्छाम' का ऊँचा अभेद्य पर्वत खड़ा और अग्निकोण में नुकीला बना मिलता है। इसलिए, कर्णाली उसके नुकीले भाग के उत्तर से ही अग्निकोणवाहिनी होकर उसे घेरती है। यहाँ अग्निकोण में आकर दक्षिण और फिर नैऋत्य कोण में और तब पश्चिमोत्तर कोण में मुड़कर इस पर्वत-शृंग को केंचुल की तरह लपेटती है। कर्णाली के इस तीखे घुमाव तक इसमें मिलनेवाली प्रायः सभी नदियाँ इसके वाएँ बाजू में ही गिरती हैं। अच्छाम के पर्वत-शृंग को घेरने के बाद यह पश्चिम मुड़ती है और भेरी-अंचल की सीमा के भीतर से ही पश्चिम की ओर चलती है। इस प्रकार जब यह 'धुन्ड्रास' स्थान के उत्तर आती है, तब सेती नदी उत्तर से आकर और अपने अंचल-भूमि को बहुत थोड़ी दूर के लिए लाँघकर कर्णाली के दाहिने भाग में संगम करती है।

१. निर्माता : एन० बी० थापा; प्रकाशक : सुनीता और अजित थापा।

नेपाल के पश्चिमी भाग की यह एक प्रसिद्ध नदी है, जिसके नाम पर नेपाल के एक बड़े भूमि-खंड का, अंचल के रूप में, निर्धारण हुआ है।

सेती : सेती का उद्गम-स्रोत उक्त 'तोयो' स्थान के दक्षिण, ठीक 'नेपाल'-तिब्बत सीमा के पर्वत के दक्षिणी ढलान से तथा टिंकर लिपू के पूर्वी पर्वत-श्रेणी से चलता है। इस स्थान में सेतो के प्रथम दो स्रोत चलते हैं। पश्चिमी स्रोत तो महाकाली-अंचल के उत्तरी सिरे के दाचुंला जिले की भूमि से चलता है और 'नम्पा' स्थान होते हुए तुरत सेती-अंचल के 'बझाङ्' जिले में, 'व्यास ऋषि हिमाल' के क्षेत्र में, घुस जाता है। दूसरा स्रोत बझाङ् ज़िले की ही ऊत्तरी सीमा से दक्षिण चलकर व्यास हिमाल के क्षेत्र में आता है। दोनों स्रोत व्यास हिमाल के दक्षिण तथा 'धुली' स्थान के पश्चिमोत्तर भाग में मिल जाते हैं। अब सेती नदी धुली के पश्चिम से अग्निकोण में चलती 'तालकोट' के पश्चिम पहुँचती है। यहाँ अपनी धारा के आगे इसे ऊँची पर्वत-शृंखला का सामना करना पड़ता है, अतः यह नैऋत्य कोण की ओर झुककर अपना दरी-मार्ग बनाती है। सेती के इसी धारा-मार्ग पर 'चैनपुर' नामक नगर है, जहाँ से बझाङ् नैऋत्य कोण में स्थित है। चैनपुर से और दक्षिण आकर सेती बिलकुल नैऋत्य कोण में चलने लगती है और 'थलरा' होते महाकाली अंचल और सेतो-अंचल की सीमा पर पहुँच जाती है। यहाँ सेती में उत्तर से आनेवाली एक नदी मिलती है। यह नदी सेती और महाकाली अंचलों की सीमा बनती हुई दक्षिण की ओर आती है। इस हिमनदी को आत्मसात् करके सेती दोनों अंचलों की सीमा बनतो दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है और 'डडेलधुरा' से कुछ दूर पूर्वोत्तर कोण में आकर अग्निकोण में थोड़ा पूर्व की ओर झुककर बहने लगती है। इधर इसका सारा बहाव महाभारत पर्वत के क्षेत्र से गुजरता है। इसके इसी बहाव के मार्ग पर, थोड़ी दूर उत्तर में, डोटी जिले का मुख्य नगर सिलगढ़ी स्थित है। 'सिलगढ़ी' के दक्षिण से ही यह अग्निकोण में चलती जाती है। इस क्रम में जब यह डोटी और अच्छाम जिले की सीमा पर आती है, तब इसमें उत्तर से दक्षिण बहकर आनेवाली 'काली गाढ़' नामक नदी समागम करती है। यह काली गाढ़ 'थालकोट' के पहाड़ से प्रवाहित होती है और 'बाभुरा' के पास से गुजरती तथा डोटी के पश्चिम से ही दक्षिण दिशा में आती है। काली गाढ़ को लेकर सेती थोड़ा दक्षिण की ओर झुकती अग्निकोण में चलती हुई सेती-अंचल की सीमा पार करके भेरी-अंचल में प्रवेश करतो है और थोड़ी दूर आगे बढ़कर कर्णाली के दाहिने भाग में समा जाती है। नेपाल की यह एक प्रसिद्ध और पवित्र नदी है।

सेती नदी का प्राचीन नाम 'सैतवाहिनी' है और जिसका दूसरा प्राचीन नाम 'बाहुदा' भी है। इसी के तट पर 'कार्तवीर्यार्जुन' ने तपस्या की थी, जिससे उसे सहस्त्र भुजाएँ प्राप्त हुई थीं। 'लिखित' ऋषि ने अपने जिस हाथ से फल तोड़कर चुरा लिया था, प्रायश्चित्त में उस हाथ को काट दिया था। किन्तु सेती तट पर तपस्या करके पुनः उन्होंने अपना हाथ प्राप्त कर लिया था, अतः इसका नाम 'बाहुदा' पड़ा। 'सितवाही' अर्जुन का

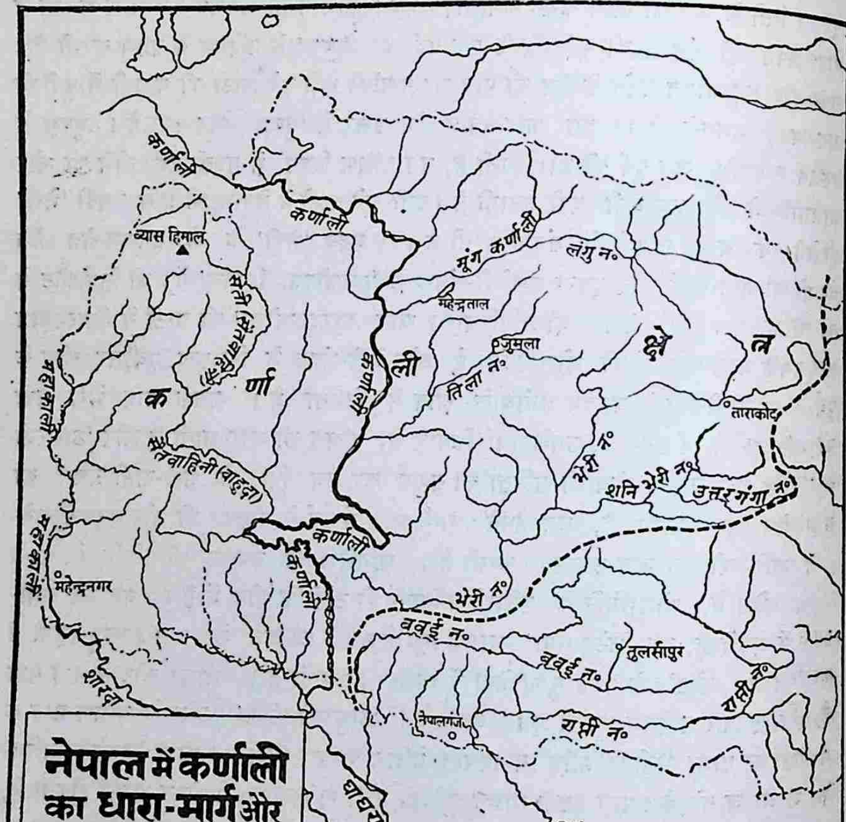
नाम था। उनकी भी यह तपस्या-स्थली थी, अतः इसका दूसरा नाम 'सैतवाहिनी' भी है। इसका जल बहुत ही स्वच्छ है, इसलिए भी यह 'सैतवाहिनी' कहलाती है। सैतवाहिनी का ही अपभ्रंश 'सेती' है। अमरकोश कहता है: **वाहुदा सैतवाहिनी**[1]। इस प्रकार, सेती अति प्राचीन काल से पवित्र और प्रसिद्ध नदी रही है।

सेती के जल को ग्रहण करके कर्णाली नैऋत्य कोण में ही लगभग १२ मील चलती है और अपने ही अंचल की पूर्ववाहिनी एक नदी को 'घुण्ड्रा' के पश्चिम में ग्रहण करती है। इसके बाद महाभारत पर्वत के क्षेत्र को पार कर कर्णाली नदी चूरे घाटी की पहाड़ी में पूर्व की ओर फाड़ बनाती है। इस फाड़-प्रवाह के उत्तर में 'घुण्ड्रा' नगर बसा है। घुण्ड्रा से लगभग २५ मील जब पूर्व की ओर आती है, तब दक्षिण दिशा में मुड़ती हुई नीचे की ओर अतलगामिनी और भयावनी दरी बनाती है। इसी चूरे घाटी में नेपाल की प्रसिद्ध नदी 'भेरी' कर्णाली के वाम पार्श्व में संगम करती है। मुख्य 'भेरी' के दो उद्‌गम-क्षेत्र हैं। एक तो धौलागिरि में और दूसरा कर्णाली-अंचल के 'कनजीरवा हिमाल' में, जो तिव्रीकोट से दस मील उत्तर में है। धौलागिरिवाला स्रोत 'बरदुङ्खोला' की घाटी से नैऋत्यकोण तथा उसके बाद पश्चिम की ओर चलता है और भेरी-अंचल के बिलकुल पूर्वोत्तर कोण के किनारे पर तिव्रीकोट से बहकर आनेवाले स्रोत से मिलता है। उसके बाद भेरी नदी 'भेरी-अंचल' के भीतर ही, उसके पूर्वी किनारे से, दक्षिण की ओर आती है और 'ठाकुरजी लेख' पर्वत से बहकर आनेवाली सरिता को ग्रहण कर जब बिलकुल भेरी-रासी-अंचल की सीमा-संधि पर आती है, तब अपने बाएँ भाग में पूर्व से पश्चिम की ओर बहकर आनेवाली '**शनिभेरी**' का जल उदरस्थ करती है। शनिभेरी का उद्‌गम धौलागिरि-अंचल के नैऋत्य कोण में, धौलागिरि के दक्षिणी-पश्चिमी दो टाँगों के बीच में है। यह जब रासी-अंचल में आती है, तब 'उटेर गंगा' नामक एक हिमनदी का जल लेकर पश्चिम चलती है और 'जाजर कोट' के पूरब मुख्य भेरी में विलीन हो जाती है। जाजर कोट से भेरी नदी दक्षिण और फिर पश्चिम घूमती है। यहाँ यह 'ठाकुरजी लेख' पर्वत के दक्षिण भाग के जलस्रोतों का पानी पीती है और तत्पश्चात् दक्षिण चलकर 'सुर्खेत' जिले के बिलकुल अग्निकोण में आ जाती है। यहाँ इसके सामने चूरे की ऊँची शृंखला खड़ी होकर रास्ता रोकती है, अतः यह उसके उत्तरी दून से पश्चिम दिशा में सरकती है। इसके इसी पश्चिमोन्मुख धारामार्ग के दाहिने (उत्तर) भाग में, 'कल्यान' स्थान है। इस प्रकार, पश्चिम की ओर चलती तथा पश्चिमोत्तर कोण की ओर बढ़ती हुई भेरी नदी 'सेती अंचल' में प्रवेश कर 'कर्णाली' में समाप्रम्म कर जाती है। इसमें धौलागिरि, कर्णाली, रासी तथा भेरी—इन चार अंचलों का जल सिमटकर आता है और संपूर्ण भेरी-अंचल का जल किसी दूसरी नदी में नहीं जा पाता। केवल चूरे पहाड़ के दक्षिणी भूमि-भाग का हिम-जल बवई और रासी में जा पाता है।

---

१. अमरकोश, प्रथम क़ाण्ड, वारिवर्ग, श्लो० ३३। इस श्लोक की 'रसाल-टीका' देखिए----
"लिखितस्यर्पं श्छिन्नं वाहुं ददातिस्मेति वाहुदस्य कात्त वीर्यस्येयमिति वा वाहुदा। सिताश्च ते वाहाश्च ते सन्ति अस्यासाविति, सित वाही अर्जुनस्तस्येयं सैतवाहिनीति द्वे वाहुदायाः।"

भेरी-संगम के बाद तराई क्षेत्र में जब कर्णाली आती है, तब इसका नाम कौड़ियाला हो जाता है। इस भाग में 'कैलाली'-क्षेत्र की नदियाँ भी इसमें मिलती है, अतः इसका नाम 'कौड़ियाली' अथवा कौड़ियाला' कहलाता है। इस प्रकार पूर्व में धौलागिरि क्षेत्र से पश्चिम



में 'व्यास हिमाल' और उत्तर में 'मानसखंड' तक के अपार जल-स्रोतों को लेकर जब यह चूरे पहाड़ी से 'शीशापानी' नामक स्थान में नीचे की ओर लुढ़कती है; तब इसकी जलधारा घोर शब्द करती हुई बहती है, जिससे कर्णाली का नाम घर्घरा (घाघरा) भी हो जाता है। चूरे पहाड़ी के उत्तर के दून में जिस नीचाई से यह बहती है, उतनी ही नीचाई तक यह चूरे पहाड़ी को काटकर दरी-मार्ग बनाती है। यहाँ यह भारी-भारी चट्टानों को लुढ़काती-रगड़ती, पहाड़ी को अपने दोनों बाजुओं से धकियाती और छलांग मारती हुई बहती है। यहाँ इसकी जलधारा की

चौड़ाई केवल ६०० फुट है और पहाड़ी मार्ग से इसके धारा-स्तर की नीचाई २५०० फुट गहरी है। तराई-क्षेत्र के 'राजापुर' से उत्तर की ओर मानसखंड में जानेवाला मार्ग संपूर्ण नेपाल में इसी कर्णाली का तट पकड़कर तथा चूरे शृंखला को लाँघकर चलता है। चूरे शृंखला से जब यह मार्ग गुजरता है और उसपर चलनेवाला यात्री जब यहाँ कर्णाली के धारास्तर को नीचे की ओर झुककर देखता है, तब कर्णाली पाताल गंगा-सी भयावनी लगती है। यहाँ इसके ऊँचे और घोर घने भयावह जंगलों में विविध प्रकार के वन्य जन्तुओं की भरमार है। कर्णाली जब चूरे पहाड़ को चीरती हुई पार कर जाती है और तराई-भाग में उतरने लगती है, तब दो भागों में बँट जाती है। इसकी पश्चिमी धार का नाम 'गिरवा' हो जाता है, जो राजापुर से पश्चिम में बहकर दक्खिन आती है और पूर्वी धार का नाम कर्णाली ही रह जाता है। इस तराई-क्षेत्र में कर्णाली झील का रूप ले लेती है और राजापुर से बहुत पूरब से दक्षिण की ओर दौड़ती है। इसी राजापुर के दक्षिण 'गिरवा'-धार नेपाल की सीमा पार करके कौड़ियाला नाम से भारत के बहराइच जिले की भूमि में प्रवेश करती है और ठीक सीमा पर ही 'कैलाली' क्षेत्र की निर्झरिणियों को समेट लेती है। उधर इसके पूर्व में कर्णाली भी बहराइच में ही प्रवेश करती है। गिरवा और कर्णाली दोनों भारत की भूमि में १८ मील अलग-अलग बहकर 'भरतपुर' के पास परस्पर मिल जाती हैं। दोनों के मिलने के बाद इसका 'कर्णाली' नाम मिट जाता है और पूरे तौर पर यह 'घाघरा' नाम से प्रसिद्ध हो जाती है।

घाघरा नदी से संगम के बाद यह खीरी और बहराइच की सीमा बनकर बहती है। इसके पहले ही खीरी जिले से बहकर आनेवाली 'सुहेली' नामक नदी भी 'घाघरा' में संगम करती है। घाघरा के इसी प्रयाण में 'कटाई घाट' के पास नेपाल की 'बबई' नदी मिलती है, जिसे कुछ लोग सरयू भी कहते हैं। 'आडेसीवर्ल्ड एटलस' (अमेरिका) के पृष्ठ १४८ में 'भारतीय सीमा में' बबई का ही नाम सरयू लिखा गया है। **बबई बनाम सरयू** नेपाल के राप्ती-अंचल के मुख्य नगर 'तुलसीपुर' के उत्तरी पहाड़ी से निकलती है और दक्षिण की ओर चलकर पूर्व से आनेवाले एक स्रोत को समेटती चूरे शृंखला के दून से पश्चिम दिशा में प्रयाण करती है। इस प्रकार, लगभग २५ मील बहने पर यह राप्ती-अंचल को लाँघकर भेरी-अंचल में प्रवेश करती है। भेरी-अंचल में जब यह लगभग तीन मील आगे बढ़ती है, तब 'सल्यान' के उत्तर से दक्षिण की ओर आनेवाली तथा फिर नैर्ऋत्य कोण में बहनेवाली एक और गिरिनदी को आत्मलीन करती है। इसके बाद भी पश्चिम दिशा में ही प्रयाण करती जाती है और 'बर्दिया' के उत्तर आकर चूरे शृंखला के घेरे को काट डालती है। फिर बर्दिया के पश्चिम से होती दक्षिण की ओर भागती है तथा नेपाल के तराई-क्षेत्र की समतल जमीन पर पहुँचती है। इसके पश्चात् यह दक्षिण की ओर चलती हुई बहराइच जिले में आकर कटाई घाट में घाघरा नदी से समागम करती है। इसी समागम के बाद घाघरा का नाम 'सरयू' भी हो जाता है, जिससे बहुत-से लोग बबई को ही सरयू कहते हैं;

क्योंकि इसके समागम करने के बाद ही 'घाघरा' सरयू कहलाने लगती है। इस सरयू की चर्चा मैंने पहले प्रथम मत के रूप में की है।

बहराइच और खीरी जिले की सीमा का काम समाप्त कर घाघरा नदी बहराइच और बाराबंकी जिलों की सीमा-सन्धि पर पहुँचती है। यहीं इसके दाहिने भाग में, 'बहरामघाट' के पास, शारदा नदी घाघरा में प्रवेश करती है। यह वही शारदा है, जिसे भी कई लोग 'सरयू' कहते हैं। शारदा का एक नाम 'चौका' भी है। शारदा नदी हिमाचल-प्रदेश को अनेक निर्झरिणियों का जलग्रहण करके बनती है, जिन निर्झरिणियों में हिमाचल प्रदेश की एक सरयू नामक नदी भी है। शारदा का मूल और बड़ा स्रोत 'काली' नदी का है। हिमाचल-प्रदेश के पूर्वी भाग के नदी-गुच्छों के जल-भण्डार के अतिरिक्त इस शारदा में लिपूलेख पर्वत-श्रेणी की काली, टिंकर लिपू की जुङ-जुङ, लिलिङ्ती, कालापानी के नदी-स्रोत, कुटी, टिंकर, धौलीगंगा, गौरीगंगा, गोमती, सरयू आदि सरिताओं का अपार हिम-जल आता है। 'टनकपुर' में कालीगंगा से जब नन्दकोट से प्रवाहित होनेवाली तथा 'वागेश्वर' स्थान के पास से बहकर आनेवाली 'सरयू' नदी मिलती है, तब उसके बाद से काली नदी अपना नाम मिटाकर शारदा कहलाने लगती है। काली में मिलनेवाली जिन नदियों की ऊपर में चर्चा की गई है, वे सभी 'टनकपुर' से उत्तर की ओर ही काली से संगम करती हैं। इसी कालीगंगा के किनारे जलजीबी, हंसेश्वरतीर्थ, धारचूला,[१] तोवाघाट, बोलाघाट,[२] गर्व्याङ्, कालापानी, पाला, तकला कोट आदि प्रसिद्ध स्थान बसे हुए हैं। ये सभी स्थान उन यात्रियों को मार्ग में मिलते हैं, जो अल्मोड़ा से कैलास-मानसरोवर को जाते हैं। टनकपुर के उत्तर में कालीगंगा और उसके दक्षिण शारदा नदी नेपाल और भारत की सीमा बनती हुई बहती है, अर्थात् काली नदी के पूर्व में नेपाल और पश्चिम में भारत का हिमाचल प्रदेश है। टनकपुर के पास ही शारदा नदी से बड़ी नहर निकाली गई है, जिससे उत्तर प्रदेश की तराईवाले खेतों की सिंचाई होती है। काली के उद्गम-स्थान से आरंभ करके १५० मील का रास्ता जब शारदा तय कर लेती है, 'ब्रह्मदेव' नामक स्थान में बिलकुल समतल भूमि पर आ जाती है। यहाँ इसके धारा-स्तर की ऊँचाई समुद्र-तल से केवल ८०० फीट और धारा-मार्ग की चौड़ाई ४०० फीट है। 'ब्रह्मदेव' से जब यह अग्निकोण में कुछ ही दूर आगे बढ़ती है, तब यह छिन्न-भिन्न होकर बहने लगती है; किंतु फिर 'मुड़िया घाट' स्थान में सभी धाराएँ एकीभूत हो जाती हैं। मुड़िया घाट के बाद बिलकुल समतल भूमि पर 'शारदा' खीरी जिले में बहने लगती है और तब इसका नाम 'चौका' भी हो जाता है। खीरी जिले के बाद जब यह 'सीतापुर' जिले में आती है, तब घाघरा नदी के समानांतर बहने लगती है। फिर, बराबंकी जिले में आकर बहरामघाट के पास घाघरा में मिल जाती है। शारदा भी एक बहुत बड़ी और प्रसिद्ध नदी है।

१. धारचूला में काली गंगा को लाँघने के लिए रस्सी का पुल है।
२. 'बोला घाट' में कालीगंगा का धरातल यात्रीमार्ग से २००० फुट गहराई में चलता है।

महाभारत में पाण्डवों के राजगृह जाने का जिस यात्रा-मार्ग का वर्णन आया है; उसमें सदानीरा को पार करने का उल्लेख है। उस स्थल के भौगोलिक विवेचन के आधार पर शारदा नदी ही सदानीरा कहला सकती है।[1]

शारदा को सम्मिलित करके घाघरा (सरयू) जब सीतापुर जिले से गोंडा जिले में चलने लगती है, तब इसके किनारे 'पसका' नामक तीर्थ मिलता है। यहाँ एक मंदिर में 'बराह भगवान' की प्राचीन मूर्त्ति पुरातन काल से स्थापित है। इसीका दूसरा नाम 'सूकरखेत' है। यहीं तुलसीदास ने अपने गुरु से रामायण की कथा सुनी थी। यहाँ आज भी प्रति पूर्णिमा को मेला लगता है। गोंडा जिले की एक पवित्र नदी 'मनोरमा' भी घाघरा में समागम करती है। इसका संगम-स्थान अयोध्या से केवल ९ मील दूर सिकन्दरपुर स्थान के पास है। इस संगम पर 'मखौड़ा' नामक स्थान है, जिसका मूल नाम 'मखस्थान' है। यहाँ इक्ष्वाकुवंशियों ने अनेक यज्ञ किए थे, जिसकी चर्चा 'स्कन्दपुराण'[2] भी करता है। मनोरमा नाम का ताल गोंडा से सात मील उत्तर-पश्चिम में है, जहाँ से यह नदी निकलती है। इसी स्रोत के किनारे 'उद्दालक मुनि' का आश्रम था, ऐसा कहा जाता है। यहीं उद्दालक मुनि के पुत्र 'नचिकेता' ने ऋषि-मुनियों को 'नासिकेतोपाख्यान' सुनाया था और अपने पिता के साथ 'नचिकेता' ने यहाँ भारी यज्ञ किया था। इस प्रसंग की चर्चा स्वयं महाभारत अपने निम्नलिखित श्लोकों में करता है :

> **औद्दालकेस्तथा यज्ञे यजतस्तस्य भारत ।**
> **समेते सर्वत्तः स्फीते मुनिनां मण्डले तदा ॥**
> **उत्तरे कोसलाभागे पुण्ये राजन् महात्मना ।**
> **उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती ॥**
> **आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् ।**
> **पूज्यमाना मुनिगणैः वल्कलाजिन-संवृतैः ॥**
> **मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता ।**
>
> **—महा०, गदापर्व, अध्याय ३८। २२ से २५।**

आज भी नचिकेता की इस यज्ञ-स्थली पर कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन गोंडा जिले का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध मेला लगता है और इस क्षेत्र में पवित्रता की दृष्टि से अयोध्या के बाद इसी तीर्थ का स्थान आता है। महाभारत के उक्त श्लोकों के अन्तिम पद में **'मनोरमेति विख्याता केदारे या सरस्वती'** ऐसा परिवर्त्तन करके 'वामन पुराण' ने अपने ३७ वें अध्याय के ३२ से ३४ वें श्लोकों के रूप में उद्धृत किया है।

---

१. महाभारत, सभापर्व, अध्याय २०।२६–२७।

२. मखस्थल मिति ख्यातं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
हरिश्चन्द्रादयो यज्ञे यज्ञैर्विधिदक्षिणैः ॥ वि|
ईजिरे राजसूयैश्च हयमेधैरधभिरन्ततः ।
यत्र स्नानेन यज्ञानां फलं मुनिभिरुदाहृतम् ॥
----स्कन्द पु०, मनो० मा०, अध्याय ४, २०-२१।

मखौड़ा के बाद घाघरा (सरयू) के किनारे सबसे प्रसिद्ध और पुण्य स्थान 'अयोध्या' बसा है। इस अयोध्या के साथ सरयू नदी का ऐसा और इतना अधिक घनिष्ठ संबंध रहा है कि उसका उल्लेख यहाँ असंभव है। समस्त सूर्यवंशी राजाओं का इतिहास अयोध्या और सरयू से जुड़ा हुआ है, जिसका लेखा-जोखा यहाँ दुष्कर है। थोड़ी-सी चर्चा पहले कर भी दी गई है। इसके अतिरिक्त भी अयोध्या का एक बहुत बड़ा इतिहास है, जो अकेले एक ग्रंथ का विषय है। मनोरमा के अतिरिक्त एक छोटी-सी 'टेढ़ी' (कुटिला) नामक नदी भी केराघाट के पास सरयू में गिरती है। यहाँ यमद्वितीया को मेला लगता है। अयोध्या में 'गोप्रतार' नामक तीर्थ बहुत ही प्रसिद्ध है, जिसकी चर्चा पहले भी आई है।

फैजाबाद (अयोध्या) जिले के बाद सरयू आजमगढ़ जिले की सीमा पर आती है और कुछ दूर तक आजमगढ़ और देवरिया जिले की सीमा बनती है। सरयू (घाघरा) के किनारे ही देवरिया का 'मझदीप' गाँव इसके बाएँ तट पर बसा है। मझदीप गाँव 'घुरियापार' परगने में है। यहाँ से सरयू पूरब दिशा में चलती है और किनारे पर गोला, बरहलगंज, राजपुर, बरहज तथा भागलपुर को निहारती बिहार-प्रदेश के सारन तथा उत्तर प्रदेश के बलिया जिलों की सीमा पर आती है और तब दोनों प्रदेशों की सीमा का काम करती दक्षिण दिशा में मुड़ती है।

किंतु, अतिप्राचीन काल में सरयू का गंगा-संगमवाला प्रवाह-मार्ग दूसरा था। आज जो नदी अयोध्या के पास से अग्निकोण में चलती है और तमसा नाम से टांडा, आजमगढ़ तथा मउ होकर फिर सरयू के नाम से ही बलिया के पास गंगा में मिलती है, यही वाल्मीकि रामायण (अयोध्या काण्ड ४९।११) के अनुसार प्राचीनकाल में 'स्यन्दिका' कहलाती थी। यह स्यन्दिका पुराकाल में आजमगढ़ के पास 'सरयू' से मिल जाती थी। आजमगढ़ का 'गरहाताल' और 'घोषीताल' तथा बलिया जिले का 'खैराताल' और 'सुरहाताल' आदि सरयू के धारा-मार्ग के ही चिह्न हैं। सातवीं शती तक सरयू और राप्ती नदियाँ अलग-अलग धारा-मार्ग से गंगा में गिरती थीं। राप्ती पहले छपरा के पश्चिम गोदना के पास और सरयू बलिया के पास गंगा से संगम करती थी; किंतु उसके बाद सरयू खैराताल और सुरहाताल होकर गंगा में ददरी मेले के पास गिरने लगी और आजमगढ़ का मार्ग इसने छोड़ दिया। मेरे कथन की कुछ झलक 'ए० सी० एल० कार्लाइल' की **गोरखपुर, सारन और गाजीपुर की यात्रा** (१८७७-७८-७९ और ८०) संबंधी विवरणवाली पुस्तक में दिये गए मानचित्र में मिल सकती है।

देवरिया जिले में घाघरा की सहायक नदियों में 'कुवानो' और 'राप्ती' ये दो मुख्य हैं। कुवानो नदी 'शाहपुर' गाँव के पास घाघरा से संगम करती है और इसी संगम के बाद घाघरा मुड़कर आजमगढ़ जाती थी। कुवानो बहराइच जिले के पूर्वी भाग से प्रवाहित होती है। यह बहराइच से गोंडा जिले में और तब वस्ती जिले को पार करती देवरिया जिले के पश्चिमी सीमा पर पहुँचती है तथा शाहपुर के पास घाघरा में प्रवेश करती है। इसकी पेटी बहुत ही ढालुआ और गहरी है और दोनों ओर के कगार ऊँचे हैं। इसके संगम-स्थान से 'धकवा बाजार' तक अत्यंत सुविधापूर्वक व्यापारिक नौकाएँ इसमें चलती हैं।

कुवानो के संगम के बाद 'घाघरा' पूर्व की ओर अग्निकोण में झुककर चलती है और 'दोहरीघाट' होते 'बरहज' पहुँचती है। 'बरहज' में ही 'राप्ती' नदी घाघरा से मिलती है। किसी काल में राप्ती इस मार्ग से अकेले बहती थी और 'घाघरा' शाहपुर में 'कुवानो' को लेकर आजमगढ़ के पूर्व से होते 'मउ' आकर बलिया जाती थी; किंतु आज यह बरहज में राप्ती को समेटकर उसी के प्रवाह-मार्ग को हथियाकर छपरा के दक्षिण गंगा में गिरती है। राप्ती नदी का प्राचीन नाम 'इरावती' तथा 'शरावती' भी है। बौद्ध साहित्य में 'शरावती' का अपभ्रंश 'अचिरवती' भी प्राप्त है। उत्तर कोसल की राजधानी 'श्रावस्ती' से होकर यह गुजरती है, अतः इसका 'शरावती' नाम नितान्त सार्थक है और 'शरावती' का ही अपभ्रंश 'राप्ती' है। किंतु 'बाणभट्ट' ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हर्षचरित' (द्वितीय उच्छ्वास) में इसका नाम 'अजिरवती' लिखा है।[1] फिर 'विशुद्धिमग्ग' (सीलनिद्देस-६४) में इसका नाम 'अचिरवती' मिलता है।[2] इतिहास में 'राप्ती' का बहुत बड़ा महत्त्व है; क्योंकि यही नदी पुराकाल में भारत को प्राच्य देश, उदीच्य देश, म्लेच्छ-देश और मध्यदेश—इन चार नामों से चार भागों में विभक्त करती थी। इस बात का स्पष्टीकरण इसके धारामार्ग के भौगोलिक विश्लेषण से प्राप्त होता है।

राप्ती (शरावती) नेपाल के राप्ती-अंचल के 'प्युठान' जिले से प्रवाहित होती है। प्रथम-प्रथम इसके तीन स्रोत हैं। एक प्रवाह 'प्युठान' के पश्चिमोत्तर कोण की उस सीमा से चलता है, जहाँ इसके पश्चिम से 'बबई' का स्रोत भी प्रवाहित होता है। राप्ती का यह स्रोत अग्नि कोण में बहता है। दूसरा स्रोत 'प्युठान' की उत्तरी सीमा के मध्य भाग से चलकर सीधे दक्षिण, थोड़ा-सा नैऋत्य कोण में झुकते हुए, चलता है। दोनों स्रोत 'स्वर्गद्वारी' से १० मील उत्तर में सम्मिलित हो जाते हैं। उसके बाद राप्ती अग्निकोण में लगभग १७ मील चलकर चूरे पहाड़ी के दून में पहुँचती है। यहीं इसकी तीसरी धार—जो प्युठान जिले के पूर्वी किनारे से दक्षिण चलकर और प्युठान शहर के पश्चिम से दक्षिण की ओर दाङ्-देङ् खुरी जिले में आती है—स्वर्गद्वारीवाली धार से समागम करती है। इन तीनों धाराओं के सम्मिलन से राप्ती अपना पूर्ण स्वरूप ग्रहण करके चूरे पहाड़ की गहरी घाटी से नैऋत्य कोण में दौड़ती है। राप्ती जब 'कोयलाबास' से ११ मील दूर पूर्वोत्तर कोण में दाङ्-देङ् खुरी जिले में घुसती है, तब पश्चिम दिशा में चूरे पहाड़ी की फाड़ से दौड़ने लगती है। इस प्रकार यह चूरे के दरीमार्ग से पश्चिम की ओर चलती हुई राप्ती-अंचल को पार कर 'भेरी' अंचल के तराई-क्षेत्र में भी जब २२ मील बहती है, तब एकाएक दक्षिण मुड़ जाती है। इसके इसी मोड़ के दाहिने किनारे, पाँच मील पश्चिम में, नेपालगंज है, जहाँ भारत के 'बहराइच' तथा 'नानपारा' से सड़क जाती है। इस जगह नेपाल तराई के 'बाँके' जिले की एक गिरि नदी को आत्मसात् कर राप्ती भारत के बहराइच जिले में प्रवेश करती है। यहाँ से यह

१. अन्यस्मिन् दिवसे स्कन्धावारमुपमणिपुरं अन्वजिरवतीकृतसन्निवेशं समाससाद।

२. न गङ्गा यमुना चापि सरयू वा सरस्वती।
निम्नगा वाचिरवती मही वापि महानदी॥

श्रावस्ती नगर होते अपने गंगा-संगम तक अग्निकोण में बहती आती है। भारत में इसके प्रवेश स्थान से मुहाने (छपरा) तक (**शरावत्यास्तु योऽवधेः**) और मुहाने के सामने गंगा पार करके सीधे दक्षिण की ओर अग्निकोण में (**प्राग्दक्षिणः**) बंगाल की खाड़ी तक का भाग 'प्राच्य देश' कहलाता था। इस प्राच्य देश में वृज्जि, विदेह, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, मगध, अंग, सुह्म' वंग, ताम्रलिप्ति तथा उत्कल देश थे। इसी प्रकार राप्ती (शरावती) के मुहाने तक के प्रवाह-पथ के पश्चिम और उत्तर भाग के देश उदीच्य (उत्तरापथ) के नाम से अभिहित होते थे : **उदीच्यः पश्चिमोत्तरः**। इस भाग में मल्ल, उत्तर कोसल, हिमाचल-प्रदेश, बदरी-खंड, मानसखंड, नेपाल का पश्चिमी भाग, कुरु, पांचाल, गांधार, कंबोज, कश्मीर, लद्दाख आदि उदीच्य देश थे। इनके अतिरिक्त हिमालय और विंध्य के मध्य आर्यावर्त्त में जो भूमिभाग बच जाते थे, जैसे—करुष-कारुष, कोसल, काशी, वत्स, सूरसेन, चेदि, अवंती आदि मध्य देश कहलाते थे। इनके अतिरिक्त जो प्रत्यंत देश थे और जो पुण्यभूमि आर्यावर्त्त के बाहर थे, वे सब म्लेच्छ देश के नाम से पुकारे जाते थे। शरावती (राप्ती) के द्वारा भारत के इस सीमा-निर्द्धारण की चर्चा गुप्त-शासन-काल में रचित 'अमरकोश' में इस प्रकार की गई है :

लोकोऽयं भारतं वर्षं शरावत्यास्तु योऽवधेः।
देशः प्राग्दक्षिणः प्राच्य उदीच्य : पश्चिमोत्तरः।
प्रत्यन्तो म्लेच्छ-देशः स्यात् मध्यदेशस्तु मध्यमः॥[1]

मेरे मत की पुष्टि क्षीरस्वामी की 'रामाश्रमी' टीका को इस पंक्ति से होती है: **प्राच्या सहितो दक्षिणो देशः प्राच्यस्तथा पश्चिमेन सहित उत्तरो देशः उदीच्यः।** इसी गौरव के कारण क्षीरस्वामी 'शरावती' की श्रद्धापूर्वक वन्दना करते हैं। और कहते हैं कि 'शरावती' न केवल देशों का सीमा-निर्धारण करती है; बल्कि यह भाषाओं का भी अपने प्रवाह-पथ के द्वारा विभाजन करती है, इसलिए भी यह वंदनीय है :

प्रागुदञ्चौ विभजते हंसः क्षीरोदकं यथा।
विदुषां-शब्द-सिद्ध्यर्थं सा नः पातु शरावती॥

—अमरकोश, रामाश्रमी टीका

अर्थात्, 'शरावती' विद्वानों की शब्दसिद्धि के निमित्त प्राच्य और उदीच्य का विभाजन उसी प्रकार करती है, जिस प्रकार हंस नीर से क्षीर को विभक्त कर देता है। इस प्रकार प्राचीन काल में प्राची, उदीची, मध्यदेशीया तथा म्लेच्छ भाषा का भी विभक्तीकरण, 'शरावती' (राप्ती) के प्रवाह-पथ के अनुसार होता था, जिससे राप्ती भारत की नदियों में एक महत्त्वपूर्ण नदी मानी जाती थी।

यही 'शरावती' आजकल 'राप्ती' कहलाती है, और बरहज के पास 'घाघरा' से मिलती है। घाघरा में संगम करने से पहले 'राप्ती' नदी 'चुंघी' नामक नदी का जल ग्रहण

१. अमरकोश, द्वितीय कांड, भूमि-वर्ग, श्लो० ६-७। कुछ विद्वानों ने दक्षिण की 'साबरमती' को शरावती कहा है, जो गलत है।

करती है। **चुंघी** को नेपाल में **'तितन'** कहा जाता है। चुंघी भी धमेला, गेरुई, कुन्हला आदि निर्झरिणियों के जल से अपना स्वरूप ग्रहण करती है। **'रोहिन'** नामक नदी भी 'राप्ती' में ही मिलती है। इसका उद्‌गम-स्थल बुटवल के उत्तर तानसिंग स्थान के पास है। कोलियों और कपिलवस्तुवालों के बीच इसी 'रोहिन' के पानी के लिए झगड़ा हो गया था, जिसकी पंचायती भगवान् बुद्ध ने की थी। नौतनवा से जो राजमार्ग पोखरा (नेपाल) जाता है, वह रोहिन के किनारे से ही गुजरता है। सच पूछिए तो बरहज में घाघरा ही राप्ती में गिरती है, न कि राप्ती नदी घाघरा में; क्योंकि बरहज से छपरा तक का (आधुनिक घाघरा का) प्रवाह-पथ प्राचीन काल में पहले केवल राप्ती का प्रवाह-पथ था।[१]

बरहज में राप्ती नदी को आत्मसात् करके 'घाघरा' नदी अग्निकोण में चलती हुई बिहार और उत्तर-प्रदेश की सीमा-संधि पर पहुँचती है। यह सीमा-संधि बिहार-प्रदेश के सारन जिले के 'गुठनी' (गोस्तनी) स्थान के दक्षिण 'बसुहारी' गाँव के पास लगती है। इसी बसुहारी में 'घाघरा' बिहार की भूमि का स्पर्श करती है। बसुहारी से गंगा-संगम के ऊपर माँझी-रिविलगंज तक 'घाघरा' के दाहिने (पश्चिम) भाग में उत्तर प्रदेश का बलिया जिला और बाएँ (पूर्व) भाग में बिहार-प्रदेश का सारन जिला पड़ता है। घाघरा (सरयू) नदी दोनों जिलों के मध्य में सीमा-रेखा बनकर प्रवाहित होती है।

घाघरा (सरयू) नदी जैसे ही बिहार-भूमि का स्पर्श करती है, वैसे ही इसके वाम भाग में 'छोटी गंडक' नामक नदी घुस आती है। यह गोरखपुर से दक्षिण की ओर आती है,

१. पहले भी कहा गया है कि प्राचीन काल में सरयू (घाघरा) अयोध्या से टाँडा, अकबरपुर,
तथा मऊ होते बलिया आकर गंगा से संगम करती थी। सरयू की वही धार आजकल आजमगढ़ में
तमसा और बलिया जिले में सरयू कहलाती है। इसके बाद सरयू 'कुवानो' नदी को लेकर दक्षिण-पूर्व
में मुड़कर आजमगढ़ में आकर 'तमसा' वाली धार से मिलती थी। तीसरी बार जब इसकी धारा बदली,
तब यह देवरिया जिले के गोला स्थान के पास से दक्षिण मुड़ती थी और खैरा-ताल तथा 'सुरहा ताल'
होकर बलिया से पूर्व 'ददरी क्षेत्र' के पास गंगा से समागम करती थी। गोला के पश्चिम का
'मझद्वीप' घाघरा और राप्ती के संगम के बीच में बसा था। इस धारा का परिचय महाकवि विद्यापति
के काल तक लोगों को मालूम था जिसकी झलक उनकी 'भू-परिक्रमण' नामक पुस्तिका में मिलती है।
अकबर के काल में निर्मित 'आनन्द रामायण' में भी 'दद्री' नाम के विवेचन-प्रसंग में इस धारा की
चर्चा है, जिसमें धारा के सूखने और फिर प्रवाहित होने का उल्लेख 'यात्राकांड' में है। बरहज
पहुँचकर राप्ती से मिलनेवाली घाघरा की धारा की यह चौथी उड़ान है।

छपरा में संगम करनेवाली धारा केवल राप्ती की प्रवाह-वीथि थी, उसका प्रमाण 'अमरकोश'
के उन श्लोकों में मिलता है, जिनका मैंने उल्लेख किया है और बतलाया है कि इसी शरावती-धार के
अनुसार भारत के देशों का बँटवारा होता था। वहाँ केवल शरावती का ही उल्लेख है। यदि यह प्रवाह-
पथ घाघरा का होता, तो इसकी भी चर्चा होती। इस संबंध में दूसरा प्रमाण 'बाणभट्ट' का भी है,
जिसने 'हर्षचरित' में कहा है कि 'मणिपुर' (मनियर) में हर्ष का स्कन्धावार 'अचिरवती' नदी के पास
बनाया गया था। आजकल 'मनियर' घाघरा के प्रवाह-पथ के किनारे है; किंतु उस समय केवल
'अचिरवती' के किनारे था, अन्यथा बाण इसे 'सरयू' या 'घाघरा' के किनारे बतलाता।

और थोड़ी दूर तक तो बिहार-उत्तरप्रदेश की सीमा भी बनती है। इसी के किनारे उक्त 'गुठनी' गाँव बसा है। गोरखपुर की 'सोंदा' नदी 'खनुआ' नामक नदी में जल डालती है और 'खनुआ' उक्त छोटी गण्डकी को भरती है। उत्तरी भाग में कुछ दूर तक 'खनुआ' भी उत्तर-प्रदेश और बिहार की सीमा का काम करती है।

वसुहारी के पश्चात् घाघरा अपने बाएँ किनारे डुमेहर और अमरपुर गाँवों का स्पर्श करती 'दरौली' आती है। अमरपुर की पुरानी मस्जिद शाहजहाँ के शासन काल में बनाई गई थी। इसी दरौली में सारन जिले की 'झरही' नामक नदी घाघरा में गिरती है। झरही सारन ज़िले के पश्चिमी भाग की नदी है, जो उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है। अतीत काल में यह 'गंडकी' की ही शाखा थी, जो शरावती (राप्ती) में गिरती थी। इसी 'झरही' के किनारे 'मैरवा' नामक गाँव है, जहाँ के 'ब्रह्म' बड़े हो तेजस्वी माने जाते हैं। मैरवा छपरा-गोरखपुर-रेलपथ में एक स्टेशन भी है। दरौली के बाद भी सरयू (घाघरा) पूर्व-दक्षिण कोण में ही चलती है, जिसके तट पर कसिला-पचवेनियन, पतार अदमनपुर, मरहन, मिरजापुर, कउसर, गभिरार, गंगपुर, सिसवन, गयासपुर, सैदपुर, डोमैगढ़, महाजीचक दियारा आदि गाँव बसे हुए हैं। उक्त डोमैगढ़ से गोदना (रिविलगंज) तक का सरयू तट बाबर और महमूद की सेनाओं का युद्ध-क्षेत्र रहा है। इस युद्ध की चर्चा प्रथम परिच्छेद में गंगा-सरयू-संगम के प्रसंग में किया गया है। 'डोमैगढ़' के संबंध में किंवदंती है कि यहाँ किसी डोम जाति के फकीर का निवास था। किंतु, मेरा ख्याल है कि इसका नाम 'दुमायगढ़' है और यहाँ पौराणिक राजा 'द्रुम' का निवास स्थान था।

महाजीचक दियारे के दक्षिण सरयू के किनारे 'माँझी' गाँव है। कभी किसी काल में इसका नाम भी 'मध्यद्वीप' था, जो राप्ती और सरयू के दोआब में बसा था। यहाँ एक प्राचीन किले का भग्नावशेष है। इसके संबंध में कुछ लोगों का कहना है कि 'माँझी मकरा' नामक चेरो राजा ने इस गढ़ को बनवाया था, जिसका राज्य इस क्षेत्र में था। उज्जैन राजाओं के इतिहास से भी ज्ञात होता है कि इस भाग में चेरो-जाति का आधिपत्य था, जिनको भगाकर राजपूतों ने इस भाग में अपना आधिपत्य स्थापित किया। यहाँ एक अति विशाल वटवृक्ष है, जिसके संबंध में किंवदंती है कि मुसलमान राजाओं के अत्याचार से पीड़ित होकर 'गांगो पँड़ाइन' नामक एक विधवा पृथ्वी में प्रवेश कर गई थी। उसी स्थान पर यह वटवृक्ष पीछे जन्मा था। माँझी के दक्षिण 'सरयू' के बाएँ तट पर 'गोदना' नामक स्थान है। इसीका एक भाग 'रिविलगंज' कहलाता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के चुंगी कलक्टर 'रिविल' ने गोदना में सन् १७८८ ई० में एक बाजार (गंज) बसाया था। उसने अपने निवास के लिए एक कोठी भी बनवाई थी, इसीलिए इसका नाम 'रिविलगंज' पड़ा। मिस्टर रिविल की कोठी और कब्र आजतक रिविलगंज में है। सन् १८४६ ई० में यहाँ एक अँगरेज-सेनाध्यक्ष की भी मृत्यु हुई थी। उसकी क़ब्र भी यहाँ वर्त्तमान है।

'गोदना' नाम के संबंध में कई किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। एक किंवदंती के अनुसार, न्याय-दर्शन के आद्य प्रतिष्ठाता गौतम ऋषि का यहाँ आश्रम था। उसी ऋषि 'गौतम' के नाम पर स्थान का नाम भी 'गोदना' पड़ा, जो 'गौतमा' का अपभ्रंश है। इसी किंवदंती के आधार पर गौतम ऋषि की स्मृति में सन् १८८३ ई० में ही 'थाम्पसन गौतम संस्कृत-विद्यालय' नामक एक शिक्षा-संस्था स्थापित हुई। उस समय विहार-प्रदेश बंगाल-प्रदेश में ही सम्मिलित था और एक ही गवर्नर शासन करते थे, जो कलकत्ता में रहते थे। तत्कालीन बंगाल के गवर्नर 'सर रिवर्स थॉम्पसन' थे, जो बड़े ही विद्याप्रेमी थे। उन्होंने ही इस संस्कृत-विद्यालय की स्थापना कराई थी। यह विद्यालय आज तक कायम है। किंतु, वस्तुतः यहाँ बौद्ध धर्म से संवद्ध 'गौतमक' नामक चैत्य था, जिसके आधार पर इसका नाम 'गोदना' पड़ा है। गोदना में कार्त्तिक और चैत्र-पूर्णिमा को मेला लगता है और यह 'भृगु-आश्रम'-सा पवित्र माना जाता है। इसी गोदना और माँझी के पास दिल्ली के बादशाह वलवन के पुत्र 'नासिरुद्दीन बुगरा खाँ', जो बंगाल का शासक था, और उसके पुत्र 'मुएजउद्दीन कैकोवाद' का युद्ध हुआ था, जिसमें एक तरह से पुत्र से पिता हार गया था। वलवन की मृत्यु के पश्चात् नासिरुद्दीन बुगरा खाँ को बादशाहियत नहीं मिली। गद्दी नासिरुद्दीन के पुत्र यानी वलवन के पौत्र कैकोवाद को मिल गई। अतः नासिरुद्दीन ने अपने पुत्र के विरुद्ध बंगाल से दिल्ली की ओर सैनिक अभियान आरंभ किया। कैकोवाद भी शाही सेना के साथ आगे बढ़ा और 'गोदना' के पास 'घाघरा' के किनारे युद्ध हुआ। युद्ध में हार जाने पर नासिरुद्दीन दीन-भाव से पुत्र के पास हाजिर हुआ। कैकोवाद ने पिता पर दया करके बंगाल का शासन नासिरुद्दीन के जिम्मे ही रहने दिया और सुलहनामे के मुताबिक पश्चिम में बंगाल की सीमा इसी घाघरा के तट तक उसने मान ली। यह युद्ध और संधि माँझी में ही १२८३ ई० में हुई थी।

गोदना के बाद 'सरयू' नदी पूर्व की ओर मुड़ती है और 'छपरा' नगर के दक्षिण से बहती हुई गंगा से संगम करती है। संगम-स्थल का कुछ विस्तृत विवरण प्रथम परिच्छेद में सरयू-गंगा-संगम के प्रसंग में किया गया है।

सारन जिले में सरयू की सहायक नदियाँ तीन हैं—छोटी गंडकी, झरही और दाहा। दाहा नदी का दूसरा नाम 'सुन्दे' भी है।

छोटी गंडक : यह पहले कहा गया है कि गुठनी के दक्षिण 'बसुहारी' के पास गंडक नामक नदी सरयू (घाघरा) से संगम करती है। इसका उद्गम-स्थान नेपाल के 'वघवन वन' में है। उद्गम-स्थान से चलने के बाद इसका नाम 'पूरनहवा' होता है। यह दक्षिण दिशा में चलती हुई शीतलपुर (गोरखपुर) गाँव के पास भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करती है। शीतलपुर से जब यह एक मील और दक्षिण वढ़ती है, तब दो भागों में बँट जाती है। इसकी एक धारा उत्तर-पश्चिम कोण में 'चानन' तक जाती है और दूसरी धारा दक्षिण की ओर बहती आती है। इसी का नाम 'छोटी गंड़क' हो जाता है। यह पँड़रौना-

तहसील से पूरब होकर ही दक्षिण आती है। गोरखपुर जिले के लाँघने के बाद कुछ दूर तक यह देवरिया और बिहार के सारन जिले की सीमा भी बनती है। अंत में, सारन जिले के गुठनी के पास 'घाघरा' में मिल जाती है।

झरही : सरयू (घाघरा) में दरौली के पास गिरनेवाली 'झरही' किसी काल में बड़ी गंडकी (नारायणी) की उपशाखा नदी थी। यह पँड़रौना (गोरखपुर) तहसील के उत्तरी भाग से प्रवाहित होती है। यह एक उथली और पतली पेटीवाली नदी है, जिससे इसके दोनों तटवर्त्ती क्षेत्रों में बाढ़ का पानी दूर तक फैलकर मलेरिया रोग का कारण बन जाता था। सन् १९०८ ई० में इसकी पेटी की खुदाई की गई थी, जिससे बाढ़ का पानी बाहर फैलने से रुक गया और मलेरिया का प्रकोप भी कम हो गया।

झरही के ऊपर 'तमकुही' (देवरिया जिले) में पुल बना है। जब यह पुल बन रहा था और पुल के पायों के लिए नींव खोदी जा रही थी, तब जमीन की निचली सतह में जलधारा की रगड़ से घिसी हुई भारी चट्टानें और वृक्षों के ऐसे धड़ मिले थे, जो परतदार कोयले के रूप में परिवर्त्तित हो गये थे। भूगर्भशास्त्रियों ने इनका परीक्षण करके बतलाया था कि किसी काल में इस प्रवाह-पथ से गंडक की तीव्र धारा बहती थी। यही कारण है कि यहाँ के जंगली वृक्ष धरती के नीचे दबकर कोयले तथा चूने के भंडार के रूप में परिणत हो गये हैं। जिस समय यहाँ खुदाई की गई थी, उस समय 'गगलवा' स्थान के पास 'बंसी' नदी में बाँध लगाकर उसे 'झरही' में डाला गया था। यह बाँध तमकुही के इलाके में नील की खेती की सिंचाई के लिए लगाया गया था। सिंचाई से अवशिष्ट पानी को ही 'झरही' में डाला गया था।[१] यह बंसी नदी भी गंडकी की ही उपधारा है।

झरही नदी गोरखपुर जिले से आती हुई 'योगोपट्टी' झील से पूरब तथा 'संगवाडीह' गाँव के उत्तर में बिहार के सारन जिले में प्रवेश करती है। झरही थोड़ी दूर तक टेढ़ी-मेढ़ी होती सारन जिले के शाहपुर, भगवानपुर, नतवा, गीधा, हुसेपुर, कोयलदेवा और तब सिसवा गाँव को आती है। हथुवा-राजवंश की राजधानी पहले इसी 'हुसेपुर' गाँव में थी। यहाँ उनके गढ़ का चिह्न अभी तक देखा जा सकता है। सिसवा के सामने 'झरही' के उस पार देवरिया जिले का 'भवानीपुर' गाँव स्थित है। सिसवा से मैरवा (सारन) गाँव तक झरही नदी देवरिया और सारन जिले की सीमा-संधि बनकर दक्षिण दिशा में बहती है। मैरवा उत्तरी बिहार के पश्चिमी भाग का अंतिम रेलवे स्टेशन है। यहाँ के जाग्रत् ब्रह्म के चौरे पर मनौती के चढ़ावा चढ़ाने के लिए नर-नारियों की भीड़ लगी रहती है। सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम के अवसर पर अँगरेजों ने यहाँ अपना एक सैनिक अड्डा कायम किया था। 'झरही' नदी मैरवा के बाद थोड़ा अग्निकोण में मुड़ती हुई चलती है और 'फरछुआ' होते 'विशुनपुर' गाँव पहुँचती है। यहाँ से दक्षिण की ओर प्रस्थित 'झरही' जब आगे बढ़ती है, तब इसके किनारे बिकाउर, खैराती उधो, सारन (सरना), बिसबनिया, खरदरा और

१, गोरखपुर गजेटियर, पृ० ७, सन् १९०९ ई०।

पिहुली गाँव मिलते हैं। उक्त 'सारन' गाँव के नाम पर ही जिले का नाम 'सारन' पड़ा है। झरही जब पिहुली पहुँचती है, तब यहाँ से एकाएक पश्चिम की ओर मुड़ती है और 'दरौली' के अग्निकोण में 'सरयू' से मिल जाती है। इसी दरौली के इलाके में बुद्धकालीन 'बुलियों' का शासन कायम था।

दाहा बनाम सुन्दे : सारन जिले के 'डोमैगढ़' और 'ताजपुर' के पास सरयू में गिरने वाली 'सुन्दे' अथवा 'सुण्डी' नदी का नाम, जिले के उत्तरी भाग में, 'दाहा' है। यह सीता-नारायणी 'गंडकी' की उपशाखा है। किंतु, जब सारन जिले के 'सिपाय-विजयपुर' तक गंडक के दोनों किनारों में १० फुट ऊँचा बाँध लगा दिया गया, तब 'दाहा' का संबंध मुख्य गंडक से सर्वथा विच्छिन्न हो गया। अब यह गोपालगंज से गोरखपुर जानेवाले रेल-मार्ग के 'ससा-मुसा' स्टेशन के पास से प्रवाहित होती है। 'ससा-मुसा' गोपालगंज से सात मील पश्चिमोत्तर कोण में तथा कुचायकोट से ४ मील अग्निकोण में स्थित है।

'दाहा' अपने प्रवाह-पथ पर आगे की ओर सरकने के पहले 'ससामुसा' से दक्षिण में आकर अपनी धारा को घिरनी की तरह घुमाती है और फिर स्वयं दक्षिण की ओर चलकर 'हथुआ' रेलवे-स्टेशन के पूरब आती है। यहाँ से फिर दक्षिण की ओर ही चलती जिगना-जगरनाथ और करनपुरा होते 'सीवान' नगर को पहुँचती है। सीवान में सारन जिले का अनुमंडलीय कार्यालय है। यह एक प्राचीन स्थान है, जिसके भग्नावशिष्ट टीलों को देखकर डॉ० होय ने सीवान को ही 'कुसीनारा' बतलाया था। बाद, ये टीले बुद्ध-स्तूपों के अवशेष माने गये। कुछ लोग यहाँ के टीले को किसी 'जगन' नामक राजा के गढ़ का अवशेष बतलाते हैं। सीवान में शेख अब्दुल्ला नामक एक प्रभावशाली जमींदार का भी निवास था, जिसे फक-रुद्दौला ने बहुत सताया था। शेख अब्दुल्ला पटना से भागकर सीवान के अपने गढ़ में छिपा रहा। पीछे अवध के नबाब सादत खाँ ने इसे शरण दी। यह घटना सन् १७११ ई० की है। सीवान की सुराही और मिट्टी के बरतन प्रसिद्ध हैं। 'सीवान' शिशपावन' का अपभ्रंष्ट या विकसित रूप मालूम पड़ता है।

दाहा नदी जब 'सीवान' से दक्षिण की ओर ढलती है, तब यह सलोनेपुर, सिंगार-पट्टी, वाली, गरार एवं अंदार गाँवों से होकर गुजरती है। अंदार से यह अग्निकोण में प्रयाण करती है और हसनपुर, राजनपुर, जगदीशपुर, चैनपुर, मोबारकपुर, मारेवाँ, घर-घट, सुअही और बधउना होते 'गोरा' नामक गाँव को आती है। सारन के गजेटियर में उल्लेख है कि हसनपुर को 'पीर मकदुम सईद हसन चिश्ती' नामक व्यक्ति ने बसाया था, जो अरब से आकर यहाँ बसा था। दिल्ली के बादशाह की दी हुई जागीर से इन्होंने यहाँ खानकाह कायम किया था। यहाँ एक पुरानी मस्जिद और पीर की दरगाह भी है। दरगाह के सामने विष्णु की एक प्राचीन प्रतिमा है, जो सातवीं शती की बनी हुई मानी गई है। इस भाग में यह सुन्दे या सुण्डी नदी कहलाती है। सुन्दे धार चैनपुर रेलवे-स्टेशन से बहकर गोरा गाँव में आती है और यहाँ दाहा से मिलती है, अतः सुन्दे की ही प्रधानता हो जाती है।

गोरा के दक्षिण ताजपुर गाँव है, जहाँ सुन्दे नदी आकर पश्चिम घूमती है और सरयू में समा जाती है। यह संगम डोमैंगढ़ के पश्चिमोत्तर कोण में है। सुन्दे-संगम से दक्षिण का सरयू-तट कई लड़ाइयों का स्थल रहा है। नासिरुद्दीन और कैकोबाद (पिता-पुत्र) की लड़ाई इसी भाग में हुई थी। फिर, बाबरी और महमूदी सेना का टकराव भी इसी क्षेत्र में हुआ था। डोमैंगढ़ का वास्तविक नाम 'दुमायगढ़' है, जो द्रुम राजा के गढ़ का अपभ्रंश है। राजा द्रुम चंपा के राजा 'अधिरथ' का पुत्र था, जो कर्ण का भाई लगता था।

उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि प्रागैतिहासिक काल में गंडकी की एक धारा दरौली के पास और दूसरी धारा डोमैंगढ़ के पास अचिरवती में गिरती थी। उस समय अचिरवती अथवा शरावती (राप्ती) इन नदियों को लेकर 'गादना' के दक्षिण गंगा में संगम करती थी और सरयू नदी बलिया के पास गंगा से समागम करती थी, अत: दोनों के दो संगम-स्थल थे। किंतु आज सरयू (घाघरा) पूर्व की ओर बढ़कर बरहज में राप्ती को समेटकर झरही तथा सुन्दे को आत्मसात् करती हुई छपरा[1] से दक्षिण गंगा में मिल जाती है।

---

१. छपरा नगर का विस्तृत परिचय प्रथम परिच्छेद के पृ० ३८ से ४१ तक देखिए।

गंडकी या नारायणी

उत्तर विहार की नदियों में, सरयू के वाद पूर्व की ओर दूसरी बड़ी नदी गंडकी है, जिसे नारायणी भी कहते हैं। नेपाल के तराई भाग में इसे 'शालग्रामी' भी कहा जाता है। गंडकी नदी पाटलिपुत्रनगर के सामने तथा उत्तर विहार के हाजीपुर और सोनपुर नामक दो प्रसिद्ध उपनगरों के बीच से बहती हुई एवं मुजफ्फरपुर तथा सारन जिलों की सीमा-रेखा बनतो हुई माता गंगा की गोद में समाती है।

गडकी का पौराणिक गौरव :

महाभारत में गंडकी नदी त्रिभुवन-तारिणी गंगा की तरह पुण्यवती मानी गई है और गंगा की सप्तधाराओं में इसकी गणना है। 'महाभारत' कहता है कि गंगा सात धाराओं में विभक्त होकर लवणोदधि में गिरती है। इन सात नदियों के जल का पान करनेवालों के सारे पाप धुल जाते हैं। इन सप्तधाराओं का जल वाष्पित होकर एकत्र होता है और फिर 'गंगा' का रूप धारणकर आकाश में पहुँचता है :

गङ्गाञ्च यमुनाञ्चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम्।
रथस्थां सरयूञ्चैव गोमतीं गंडकीं तथा॥
अपर्युषितपापास्ते नदीः सप्त पिबन्ति ये।
इयं भूत्वा चैकवप्रा शुचिराकाशगा पुनः॥[1]

फिर, 'महाभारत' ने जिन तीस नदियों को अग्निगर्भा कहा है, उनमें सिंधु, पंचनद, देविका, सरस्वती, गंगा, शतकुम्भा, सरयू, गंडकी, चर्मण्वती, मही, मेध्या, मेधातिथि' ताम्रवती, वेत्रवती, कौशिकी, तमसा, नर्मदा, गोदावरी, वेण्या, उपवेण्या, भीमा, वडवा, भारती, सुप्रयोगा, कावेरी, मुर्मुरा, तुंगवेणा, कृष्णवेणा, कपिला और सोन हैं।[2] ये सभी नदियाँ अग्नि की माताएँ कही गई हैं—**एता नद्यस्तु धिष्ण्याणां मातरो याः प्रकीर्त्तिताः।** इसी प्रकार देवी-भागवतोक्त सोलह सर्वश्रेष्ठ नदियों में भी गंडकी का नाम आता है :

नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती।
नर्मदा गंडकी सिन्धुर्गोमती तमसा तथा।
कावेरी चन्द्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा।

---

१. महाभारत, आदिपर्व, अध्या० १६९, श्लो० २०-२१।

२. महा० वनपर्व, अध्या० २२७, श्लो० २२ से २६।

चर्मण्वती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा ।
एताश्च कथिता राजन्.....................।[१]

वराह पुराण[२] में भगवान् शंकर ने कहा है कि गंडकी-तीर्थ में स्नान करके जो मेरे लिंग का अर्चन करता है, वह सम्यक् प्रकार से योगफल प्राप्त करता है :

स्नात्वाऽत्र गंडकीतीर्थे मम लिङ्गानि योऽर्चयेत् ।
तस्य योगफलं सम्यग् भविष्यति न संशयः ॥

इनके अतिरिक्त, 'पद्मपुराण' में भी गंडकी का गौरव-गान है कि गंडकी में संपूर्ण तीर्थों का जल सन्निहित है। अतः जो कोई गंडकी के जल में स्नान करता है, वह वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है और उसे सूर्यलोक मिलता है। गंडकी के पास ही ध्रुव का तपोवन विद्यमान है :

गंडकीञ्च समासाद्य सर्वतीर्थजलोद्भवाम् ।
वाजपेयमवाप्नोति सूर्यलोकञ्च गच्छति ॥
ततो ध्रुवस्य धर्मज्ञ समाविश्च तपोवनम् ।
गुह्यकेषु महाभाग मोदते नात्र संशयः ॥[३]

गंडकी के उद्गम की कहानी :

गंडकी के उद्गम की कथा 'देवीभागवत' के नवें स्कंध के २४ वें अध्याय में कही गई है, जिसमें 'शंखचूड' नामक दैत्य की पत्नी 'तुलसी की कथा है। भगवान् नारायण ने छल करके तुलसी को अपनी पत्नी बना लिया, जिससे वह बाद में 'नारायणी' कहलाई।[४] नारायण की छलना से तुलसी बहुत दुःखी हुई, तब नारायण ने कहा—तुम अपना वर्तमान स्वरूप त्याग कर दिव्य शरीर धारण करो और लक्ष्मी का स्थान प्राप्त करो और मेरे साथ विहार करो। नारायण के इस कथन से 'तुलसी' नदी-रूप में परिणत हो गई और पुण्यभूमि भारत में अत्यंत पवित्र तथा पुण्यदा होकर 'गंडकी' नाम से ख्यात हुई।

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च ।
रामे रम मया सार्द्धं त्वं रमा सदृशी भव ॥
इयं तनुर्नदीरूपा गंडकीति च विश्रुता ।
पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते[५] ॥

---

१. देवीभागवत, स्कंध ५६, अध्या० १२, श्लो० ४ से ६ ।

२. वराहपुराण, अध्या० १४६, श्लो० ५९ ।

३. पद्मपुराण, स्वर्गखंड, अध्या० ३८, श्लो० ३०-३१ ।

४. यह कथा ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के प्रकृति खंड, अध्या० १५ से २५ तक में एवं 'शिवपुराण' खंड ५, अध्या० ३८-३९ में भी कही गई है।

५. देवीभागवत स्कंध ९, अध्या० २४, श्लो०, ३०-३१ ।

भगवान् नारायण ने जब तुलसी को नदी-रूप में परिणत हो जाने का शाप दिया, तब पतिव्रता तुलसी ने भी उन्हें पत्थर बन जाने का अभिशाप दे दिया। भगवान् नारायण तुलसी के शाप को स्वीकार करते हुए बोले—"ठीक है, इस भारत भूमि में तुम नदियों की अधिष्ठात्री देवी बनकर पुण्यवती बनो और मेरे ही अंश का जो लवणोदधि है, उसकी पत्नी बनो। मैं शैल रूप धारण करके तुम्हारे (गंडकी के) तट के पास तुम्हारे शाप की महिमा की रक्षा के लिए निवास करूँगा। साथ ही, वहाँ तेज दाँतों के आयुधवाले करोड़ों की संख्या में कीड़े होंगे, जो उन प्रस्तर-खंडों के छिद्रों में मेरे चक्र का निर्माण करेंगे।"

नद्यधिष्ठातृ देवी या भारते च सुपुण्यदा ।
लवणोदस्य सा पत्नी मदंशस्य भविष्यति ॥
अहञ्च शैल-स्नपेण गंडकी-तीरं-सन्निधौ ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥
कोटिसंख्यास्तत्र कीटा स्तीक्ष्ण-दंष्ट्रावरायुधैः ।
तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ॥[1]

किंतु 'वराहपुराण' के १४४ वें अध्याय में गंडकी की उत्पत्ति की कथा दूसरी है। इसके अनुसार 'गंडकी' की उत्पत्ति तपस्या में रत विष्णु के गंड-प्रदेश से गिरे श्रमबिंदुओं से हुई है। कथा है कि अति प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु लोक-कल्याण के निमित्त देवगण-सेवित हिमालय में तपस्या कर रहे थे। कठोर तपस्या में उनके द्वारा जो अधिक श्रम हुआ, उससे उनके कपोलों से श्रम-बिंदुओं की धारा बहने लगी, जिससे दिव्य-स्वरूपा गंडकी नदी बह निकली। विष्णु के गंड-प्रदेशों से बही, इसलिए नदी का नाम 'गंडकी' पड़ा :

पुरा विष्णुस्तपस्तेपे लोकानां हितकाम्यया ।
हिमालये गिरौ रम्ये देवतागणसेविते ॥
तस्योष्मणा समुद्भूतः स्वेदपूरस्तु गंडयोः ।
तेन जाता धुनी दिव्या लोकानामघहारिणी ॥[2]

गंडकी जहाँ उत्पन्न हुई, वहीं उसने हजारों वर्षों तक सूखे पत्ते खाकर और वायु पीकर एवं विष्णु का ही ध्यान करती हुई तपस्या की।[3] उसके कठिन तप से भगवान विष्णु परम प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा : "जो वस्तु नहीं दी जा सकती, उसकी भी तुम याचना कर सकती हो"—**यत् याचय वरारोहे अदेयमपि सर्वथा ।**[4] विष्णु को ऐसा प्रसन्न

१. देवीभागवत, स्कन्ध ९, अध्याय २४, श्लो० ५४ से ५६।
२. वराह पुराण, अध्या० १४४, श्लो० १०७ और १०९।
३. वराह पु०, अध्या० १४४, श्लोक ३९-४०।
४. तत्रैव, श्लोक ५६।

देखकर गंडकी ने झट वर माँगा— "मम गर्भगतो भूत्वा विष्णो मत्पुत्रतां व्रज ।" गंडकी की इच्छापूर्त्ति के लिए विष्णु ने वचन दिया— "भक्तों पर कृपा करने के निमित्त मैं तुम्हारे गर्भ में शालग्राम-शिला के रूप में वास करूँगा और तुम्हें पुत्रत्व का लाभ दूँगा ।" तभी से गंडकी की धारा में उद्गम-स्थान से आरंभ करके त्रिवेणी घाट तक सर्वत्र शालग्राम विष्णु के पत्थर मिलते हैं । इसीलिए यदुकुल के 'शालंकायन' ऋषि से भगवान विष्णु ने कहा था :

अहं तिष्ठामि तत्रैव गिरिरूपेण नित्यशः ।
तस्मिञ्छिलाः समग्रास्तु मत्स्वरूपा न संशयः ॥[१]

शालंकायन ऋषि, पुत्र-प्राप्ति के निमित्त समग्र तीर्थों के यात्रा-क्रम में 'पिंजरक्षेत्र' और लोहार्गल-क्षेत्र होते, जब वराह-रूप विष्णु के पास (पसका स्थान के वराह क्षेत्र में) आए, तब विष्णु ने शालग्राम गिरि-तीर्थ में जाने के लिए उनसे यह बात कही थी। इससे तो सिद्ध होता है कि गंडकी के उद्गम-स्थान दामोदर कुंड से त्रिवेणी-संगम तक का पर्वत शालग्राम गिरि है, जिससे इतने बड़े क्षेत्र में शालग्राम-शिलाएँ प्राप्त होती हैं । किंतु 'वराह-पुराण' केवल मुक्तिनाथ-क्षेत्र से आरंभ करके त्रिवेणी-संगम तक द्वादश योजन (९६ मील) तक विस्तृत पर्वत-क्षेत्र को 'शालग्राम'-शिखर कहता है :

आरभ्य मुक्तिक्षेत्रं तत् क्षेत्रं द्वादशयोजनम् ।
शालग्रामस्वरूपेण मया यत्र स्थितं स्वयम् ॥[२]

गंडकी का उद्गम-स्थान, धारा-मार्ग तथा उस क्षेत्र के तीर्थ और कुंड :

नेपाल राज्य के उत्तरी सीमा पर हिमालय में ऐसे सात दर्रे हैं,[३] जिनसे होकर तिब्बती भूमि-भाग में प्रवेश किया जा सकता है । सबसे पश्चिम में 'तकला दर्रा' है, जिसके पश्चिम में नंदा देवी शिखर और पूर्व में धौलागिरि शिखर तथा सामने दक्षिण में 'व्यास हिमालय' है। इसी दर्रे से कर्णाली नदी बहकर नेपाल में आती है । इसके पूर्व में 'मुस्ताङ् दर्रा' है, जिससे होकर 'काली गंडकी' नेपाल में प्रवेश करती है । मुस्ताङ् दर्रे के उत्तर-पश्चिम धौलागिरि शिखर तथा दक्षिण में थोड़ा अग्निकोण में हटकर अन्नपूर्णा की चोटी है और पूर्व में कुछ दूर 'मन्ना' तथा 'रसुआगढ़ी' के शृंग हैं । इसके पूर्व भाग में 'केराङ्' दर्रा है, जिससे गंडकी की एक शाखा त्रिशूली नेपाल में प्रवेश करती है । केराङ् दर्रा 'गणेश हिमाल' के पूर्व और 'युगल हिमाल' के पश्चिय में है । जिस मुस्ताङ् दर्रे से गंडकी की मुख्य धारा 'काली गंडकी' नेपाल में प्रवेश करती है, उसके बहुत नजदीक ही उत्तर में (तिब्बत-भूमि) में इसका उद्गम-स्थान है । इसका उद्गम 'मुस्ताङ् गिरि, से ४० मील पूर्व में पड़ता है और काली गंडकी दक्षिण को ओर धौलागिरि अंचल में ही बहती हुई प्रवेश करती है ।

---

१. वराह पु०, अध्याया० १४४, श्लोक १४ ।

२. तत्रैव, अध्याय १४४, श्लोक १८२ ।

३. सातों दर्रे के नाम इस प्रकार हैं : तकला दर्रा, मुस्ताङ् दर्रा, केराङ् दर्रा, कुटी दर्रा, हतिया दर्रा, बलाङ् दर्रा और यग्मा दर्रा ।

गंडकी के उद्गम-स्थान के पड़ोस का वर्णन 'ब्रह्मांड पुराण' के अनुषंगपाद के १५वें अध्याय में मिलता है, जिससे ऊपर उल्लिखित चित्र स्पष्ट होता है। 'ब्रह्मांड पुराण' कहता है कि गंधमादन पर्वत के पार्श्व में 'माल्यवान्' पर्वत है, जिसके पूर्व में पश्चिमी गंडकी वहती है। माल्यवान् की लंबाई और चोड़ाई के भाग से अन्य गंडकी नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं :

पार्श्वे माल्यवतश्चापि पूर्वेऽपूर्वा तु गण्डिका ॥५६
आयामतो ह्यथ विस्तारात् यथैषापरगण्डिकाः ॥५७॥[1]

'ब्रह्मांड-पुराण' के अनुसार आधुनिक मुस्ताङ् पर्वत श्रेणी ही माल्यवान् पर्वत है और इसके पूर्व के मन्ना-शिखर, रसुआगढ़ी-शिखर और गणेश-शिखर माल्यवान् की ही शृंखला में हैं, जिनसे सप्तगंडकी धाराएँ प्रवाहित होती है। 'ब्रह्मांड पुराण' अपने उक्त श्लोक में **अपरगंडिकाः** कहकर सप्तगंडकियों की ओर भी संकेत कर देता है। किंतु, 'वराह पुराण' अपने तीन अध्यायों (१४४, १४५ और १४६) में गंडकी-क्षेत्र का बड़े विस्तार से वर्णन करता है और इस क्षेत्र के तीर्थों की भी चर्चा करता है। इस पुराण ने दामोदर कुंड से त्रिवेणी-तीर्थ तक गंडकी क्षेत्र का जैसा भौगोलिक सर्वेक्षण करता है, वह आश्चर्यजनक है। इसके अनुसार गंडकी के उद्गम-स्थान के पास गुह्यक्षेत्र 'बिल्वप्रभ' है, जो नारायण का प्रिय स्थान है। वहाँ एक कोस के भीतर चार कुंज हैं तथा 'चक्रस्वामी' नामक एक तीर्थ है, जहाँ इधर-उधर बिखरे हुए चक्रांकित प्रस्तर (शालग्राम) मिलते हैं। उसके चारों तरफ तीन योजन का क्षेत्र चक्रस्वामी तीर्थ का क्षेत्र है। वहाँ स्नान करके तीन रात जो कोई रहता है, उसका सारा पाप धुल जाता है। यही 'विष्णुपद' नामक गुह्य क्षेत्र है, जहाँ हिम-शिखर से तीन धाराएँ गिरती हैं। यहीं 'कालीह्लद' नामक गुह्य क्षेत्र है, जिसका स्रोत बेर के वृक्ष से निस्सृत होता है। इसी के पास 'शंखप्रभ नामक तीर्थ भी है, जहाँ द्वादशी की अर्द्धरात्रि में शंख की आवाज सुनी जाती है। इसी क्षेत्र में 'गदाकुंड नामक तीर्थ है, जहाँ दक्षिण दिशा की ओर लहराता हुआ स्रोत गिरता है :

तत्र बिल्वप्रभं नाम गुह्य क्षेत्रं मम प्रियम् ।
कुञ्जानि तत्र चत्वारि क्रोशमात्रे यशस्विनि ॥३८॥
चक्रस्वामीति विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।४१॥
चक्राङ्कितशिलास्तत्र दृश्यन्ते च इतस्ततः ।
तदेतद्विद्धि वसुधे समन्तात् योजनत्रयम् ॥४२॥
चक्राङ्कितशिला यत्र वरवर्णिनि तिष्ठति ।
तत्र स्नानं तु कुर्वीति त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥४३॥
तत्र विष्णुपदं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम ।

---

१. ब्रह्माण्ड पुराण, अनुषंगपाद २, अध्याय १५, श्लोक ५६-५७।

तिस्रो धाराः पतन्त्यत्र हिमकूटसमाश्रिताः ॥४६॥
तत्र काली ह्रदं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम ।
अत्र चैव ह्रदस्रोतो बदरीवृक्षनिःसृतः ॥४८॥
तत्र शंखप्रभं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम ।
श्रूयते शंखशब्दश्च द्वादश्यामर्द्धरात्रके ॥५२॥
गदाकुण्ड मितिख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
यत्र वै कम्पते स्रोतो दक्षिणां दिशमाश्रितः ॥५३॥[1]

गंडकी के उद्गम-स्थान के इन तीर्थों तथा कुंडों की जानकारी बहुत कम लोगों को रह गई है। किंतु, दामोदर कुंड के आस-पास जिस प्रचुर परिणाम में शालग्राम शिलाएं उपलब्ध होती हैं; इससे तो यही संकेत मिलता है कि उसके चारों तरफ बारह कोसों में शालग्राम शिलाएँ बिखरी हुई मिलती हैं। फिर, 'काली ह्रद' वही झील होगी, जिससे प्रवाहित होने के कारण गंडकी को 'काली गंडकी' आख्या मिली है। इसी प्रकार 'शंखप्रभ' नामक क्षेत्र वही होगा, जहाँ 'शंखचूड' दैत्य का निवास बतलाया गया है और जहाँ तुलसी को नारायण ने छला और जहाँ से वह गंडकी नदी के रूप में प्रवाहित हुई। अन्य विवरण तो बहुतों के लिए अज्ञात हैं। किंतु इतना तो अनावृत तथ्य है कि ये सारे विवरण दामोदर-कुंड के आस-पास के हैं, जहाँ 'मुक्ति-नाथ' से तीन दिन पैदल चलकर पहुँचा जाता है।

इस प्रकार, कई प्रपातों और हिमकुंडों के साहाय्य के द्वारा काली ह्रद (दामोदर) से बहकर तथा मुस्ताङ् दर्रे से गुजरकर गंडकी जब मुक्तिनाथ क्षेत्र में, धौलागिरि के पूर्व से, 'छुक' स्थान के पास आती है, तब वहाँ पूर्वोत्तर कोण से एक धारा इसमें गिरती है। यह 'अग्निप्रभ'[2] नामक गुह्य क्षेत्र है। यह 'अग्निप्रभ' नामक कुंड हेमंत ऋतु में गरम जल प्रस्रवित करता है और ग्रीष्म ऋतु में शीतल जल देता है। मुक्तिनाथ तथा दामोदर कुंड तक का क्षेत्र नारायण स्थान है और यह 'शालग्राम' तीर्थ कहलाता है। इस तीर्थ में सर्वदा विष्णु निवास करते हैं। यहाँ ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, तपस्वी, आदित्य, वसु तथा रुद्रगण निरंतर विष्णु की उपासना करते हैं। अतः, जो कोई इस त्रिलोकेश विष्णु के धाम में जाता

---

१. वराह पुराण, अध्याय १४५।

२. 'तपोभूमि', पृ० ३१०—"मुक्तिनाथ क्षेत्र में गंडकी के आस-पास छोटे-बड़े १५-२० मन्दिर हैं। यहाँ सात गर्भस्रोतों का पानी बहकर गंडकी में गिरता है, जिसमें शालग्राम पत्थर मिलते हैं।"----ले० रामगोपाल मिश्र, प्रकाशक----हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग। संवत्----२००७ (सन् १९५०ई०)।

है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर विष्णुलोक प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। 'पद्म पुराण'[1] ये बातें 'महाभारत'[2] से उद्धृत करते हुए कहता है :

ततो गच्छेत् नरः श्रेष्ठं स्थानं नारायणस्य च।
सदा सन्निहितो यत्र हरिर्वसति भारत॥
तत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
आदित्या वसवो रुद्रा जनार्दनमुपासते।
शालग्राम इति ख्यातो विष्णोरद्भुत कर्मणः।
अभिगम्य त्रिलोकेशं वरदं विष्णुमच्युतम्॥
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकञ्च गच्छति।

फिर 'वराह पुराण' कहता है कि इसी के पास 'सर्वायुध' नामक गुह्यक्षेत्र है, जहाँ हिमालय से सात स्रोत बहते हैं। यहाँ सात रात रह कर जो इन स्रोतों में स्नान करता है, वह सर्वायुध-विद्या में निपुण बनकर राजा हो जाता है। इस क्षेत्र में 'देवप्रभ' नामक गुह्य क्षेत्र भी है, जहाँ पर्वत का आश्रय लेकर पाँच धाराएँ गिरती हैं। इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में 'विद्याधर' नामक गुह्य क्षेत्र भी है, वहाँ भी हिम शिखर से पाँच धाराएँ गिरती हैं। ये सारी बातें 'वराह-पुराण' की निम्नलिखित पंक्तियों में मिलती हैं :

पुनश्चाग्निप्रभं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम।
धारा पतति तत्रैका पूर्वोत्तर-समाश्रिता॥५६॥
हेमन्ते चोष्णकं तीर्थं ग्रीष्मे भवति शीतलम्॥५९॥
गुह्यं सर्वायुधं नाम तत्क्षेत्रे परं मम।
पतन्ति सप्तस्रोतांसि हिमवन्निःसृतानि वै॥६०॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सप्तरात्रोषितो नरः।
राजा भवति सुश्रोणि सर्वायुधकलान्वितः॥६१॥
तत्र देवप्रभं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम।
धाराःपंचमुखास्तत्र पतन्ति गिरिसंश्रिताः॥६३॥
गुह्यं विद्याधरं नाम तत्र क्षेत्रं परं मम।
पंचधाराः पतन्त्यत्र हिमकूटविनिःसृताः॥६६॥[3]

इसके पश्चात्, 'वराह पुराण' गंडकी के पूर्व में स्थित और धौलागिरि-अंचल में ही वर्त्तमान 'मुक्तिनाथ तीर्थ' की महिमा गाता है। मुक्तिनाथ 'छुक्' स्थान से अग्निकोण में तथा 'मनाङ्' से पश्चिमोत्तर कोण में वर्त्तमान है। दामोदर कुंड से दक्षिण दिशा में इसकी

---

१. पद्मपुराण, स्वर्गखंड, अध्या० ३८, श्लो० ४० से ४३।
२. महाभारत, वन पर्व, अध्या० ८४, श्लो० १२१ से १२८ तक।
३. वराह पुराण, अध्या० १४५।

दूरी १६ मील है। यह धौलागिरी-अंचल के 'मुस्ताङ्' जिले में है और धौलागिरी पर्वत के पूर्व में। 'पोखरा' से जो यात्री मुक्तिनाथ को जाते हैं, वे पश्चिम की ओर चलकर नागडंगा, पदमपुर और वहाँ से अन्नपूर्णा-पर्वत शिखर की दक्षिण घाटी से होते तथा पश्चिमोत्तर कोण में चलकर 'घोरेपानी' तथा 'तातोपानी' पहुँचते हैं। फिर 'तातोपानी' से उत्तर की ओर चलते हुए 'दान संभार' और 'टुक छु' होते मुक्तिनाथ जाते हैं। इस यात्रा की पूरी दूरी ४६ मील है। दूसरा मार्ग और लंबा तथा कठिन है, जो 'काठमाण्डौ' से होकर जाता है। काठमांडो से जानेवाले यात्री पश्चिम चलकर त्रिशूली और वृद्ध गंगा के संगम पर पहुँचते हैं। बहुतेरे लोग वृद्ध गंगा को ही 'गंडकी' का मुख्य प्रवाह मानते हैं। फिर, इस संगम से यह मार्ग उत्तर की ओर वृद्ध गंगा का तट पकड़ कर 'छुक्' जाता है। वहाँ से पश्चिम की ओर चलता हुआ 'लटकाले' पर्वत श्रेणी के दक्षिण से तथा 'हिमाल चुली'-श्रेणी के उत्तर से तथा और कुछ पश्चिम जाने पर अन्नपूर्णा हिमाल के उत्तर-उत्तर ही 'मनाङ्' पहुँचता है। पश्चिमोत्तर कोण में मनाङ् से १० मील दूर 'मुक्तिनाथ' है। काठमांडो से इस रास्ते मुक्तिनाथ की कुल दूरी १४० मील है। मुक्तिनाथ नेपाल का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ तो है ही, भारत का भी महान् तीर्थ है, जहाँ प्रतिवर्ष भारत से सैकड़ों तीर्थ-यात्री श्रम-साध्य यात्रा करके मुक्तिनाथ के दर्शन करते हैं। भारतीय यात्री यदि नौतनवाँ से बुटवल जायँ और वहाँ से थालपा तथा वाँगडुङ् होते गंडकी का कछार पकड़कर पैदल चलें तो बुटवल से मुक्तिनाथ की दूरी सिर्फ ६४ मील पड़ेगी। इसी 'मुक्तिनाथ' के संवंध में 'वराह पुराण' कहता है :

> मुक्तिक्षेत्रमिदं देव दर्शनादेवमुक्तिदम् ।
> गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गंडकी सरितांवरा ।।१२२।।
> अहं ब्रह्मा च देवाश्च ऋषिभिः सह केशवः ।
> सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च सर्वतीर्थानि चाच्युत ।।१२४।।
> वसिष्यामः सदैवात्र गण्डक्यां जगतांपते ।
> कार्त्तिकं सकलं मासं यः स्नास्यति नरः प्रभो ।।१२५।।
> सर्वपाप-विनिर्मुक्तो मुक्तिभागी न संशयः ।
> तीर्थानां परमं तीर्थं मंगलानाञ्च मंगलम् ।।१२६।।
> यस्यास्तत् समतां कान्या लभेद् गंगा विना नदीम् ।
> यत्र सा परमा पुण्या गंडकी मुक्तिभुक्तिदा ।।१२८।।[1]

मुक्तिनाथ-क्षेत्र के बाद भी कृष्णा गंडकी धौलागिरी-पर्वत श्रेणी के पूर्व भाग से बहती दक्षिण चलती है और 'टुक् छू' स्थान से होते तथा 'अन्नपूर्णा'-पर्वत-श्रेणी के पश्चिम से

१. वराह पुराण, अध्या० १४५ ।

ही 'तातोपानी' आती है। 'तातोपानी' यह नाम बतलाता है कि यहाँ भी उष्ण जल-स्रोत हैं, जो गंडकी में अपना पानी डालते हैं। 'तातोपानी' के उत्तर की ओर ईशानकोण में थोड़ा झुककर अन्नपूर्णा-पर्वत-श्रेणी की दक्षिणी सीमा है और 'तातोपानी' के पश्चिमोत्तर कोण में धौलागिरि की दक्षिणी सीमा मिलती है। इन दोनों पर्वतश्रेणी की फाड़ से दक्षिण की ओर बहती 'काली गंडकी' 'तातो पानी' को आती है। 'वराहपुराण' के अनुसार 'तातोपानी' से दक्षिण 'वरिगड' के संगम (रीदी) तक 'रुरु खंड' कहलाता है। 'वराह पुराण' काली गंडकी के त्रिवेणी-संगम तक के कछार को चार क्षेत्रों में बाँटता है—सबसे उत्तर प्रथम मुक्ति क्षेत्र, उसके दक्षिण वरिगड-संगम तक 'रुरु खंड क्षेत्र', फिर तीसरा नदियों का संगमवाला 'संभेद क्षेत्र' और सबसे दक्षिण 'त्रिवेणी क्षेत्र' कहता है।

मुक्तिक्षेत्रं प्रथमतो रुरुखण्डं ततः परम्।
सम्भेदो देवनद्योश्च त्रिवेणी च ततः परम्॥[१]

इस प्रकार 'तातोपानी' के पास गंडकी रुरु-खंड-क्षेत्र में आती है। इस क्षेत्र का 'रुरु-खंड' नाम क्यों पड़ा, इसकी कहानी 'वराह पुराण' अपने १४६वें अध्याय में कहता है। कहानी में कहा गया है कि भृगुवंशी देवदत्त नामक एक तपस्वी ब्राह्मण के द्वारा 'प्रम्लोचा' नामक अप्सरा के गर्भ से एक कन्या पैदा हुइ। 'प्रम्लोचा' कन्या को इसी क्षेत्र में छोड़कर स्वर्ग लोक चली गई। इस क्षेत्र के रुरु मृगों ने उस कन्या का पालन किया और कन्या का नाम भी 'रुरु' ही रखा गया। इस कारण यह क्षेत्र 'रुरु-खंड' कहलाया। फिर, काली गंडकी 'तातोपानी' से दक्षिण की ओर बहती 'बेनी' स्थान को आती है। इसी 'बेनी' में कागवेनी नामक तीर्थ है, जहाँ पश्चिम से पूर्व की ओर बहकर आनेवाली एक हिमनदी गंडकी में गिरती है। यह धौलागिरि के दक्षिण पाद में स्थित 'गुरजा' के ऊपर धौलागिरि के तीन टाँगों के बीच के दो हिमनदों से, दो स्रोतों के द्वारा, बहती है और 'गुरजा' के अग्नि-कोण में सम्मिलित होकर तथा अग्निकोण में चलकर पूर्व घूमती है और 'बेनी' के पास गंडकी में समा जाती है। इसी के संगम पर 'कागबेनी' नामक तीर्थ है। वराह पुराण 'पुण्या' नदी की गणना गुह्य क्षेत्र में करता है और उसे लता-कुंजों से आकीर्ण एवं गंधर्व तथा अप्सराओं से सेवित कहते हुए पश्चिम की ओर गिरनेवाली एक धारा के रूप में बतलाता है। उससे अंदाज तो यही लगता है कि धौलागिरी के दक्षिणी हिमकुंजों से आनेवाली और 'बेनी' में समागम करनेवाली इसी कागबेनी नदी की वह दो श्लोकों में चर्चा करता है —

तत्र पुण्या नदी नाम गुह्य क्षेत्रे परं मम।
शिलाकुंज-लताकीर्णा गन्धर्वाप्सरसेविता॥

---

१. वराह पुराण, अध्या० १४५ श्लोक, १११।

गन्धर्वेति च विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
एक धारा पतत्यत्र पश्चिमां दिशमाश्रिता ।।[१]

'वेनी' स्थान म्यांग्दी जिले का मुख्य नगर है। यहीं उक्त हिमनदी को ग्रहण कर गंडकी अग्निकोण में झुककर दक्षिण चलती है, और 'बागडुङ्' आती है। 'बागडुङ्' धौलागिरि अंचल का, साथ ही अपने जिले का भी, प्रधान प्रशासकीय नगर है। फिर, 'बागडुङ्' से गंडकी बिलकुल अग्निकोण में लगभग पाँच मील आती है, तब इसमें 'अन्नपूर्णा हिमाल' के उत्तरी शिखर से दक्षिण की ओर ढलनेवाली एक हिम नदी गंडकी में प्रवेश करती है, जो 'कुसुमा' होकर आती है। यह हिम-सरी गंडकी अंचल के पश्चिमी किनारे की पहली नदी है, जो 'कुसुमा' से तीन मील दक्षिण 'काली गंडकी' में प्रवेश करती है। 'बागडुङ्' से 'कुसुमा' आठ मील पूर्व भाग में थोड़ा पूर्वोत्तर कोण में झुककर बसा है। यह गंडकी-अंचल में स्थित है। अन्नपूर्णा हिमाल से बहनेवाली तथा 'कुसुमा' होकर आनेवाली इस हिम नदी को आत्मसात् कर गंडकी दक्षिण की ओर चलती है और थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकती 'लुम्बिनी-अंचल' में 'गलकोट' से अग्निकोण में ६ मील दूर भीतर प्रवेश करती है। फिर, यहाँ से अग्निकोण में बहकर गंडकी अंचल के बिलकुल दक्षिण नैऋत्य कोण वाले सँकरे भाग में पहुँचती है। यहाँ इसके वाम पार्श्व में, 'फेवा ताल' के पास से बहकर आनेवाली नदी समागम करती है। 'फेवा ताल' नेपाल का प्रसिद्ध ताल है और गंडकी-अंचल के प्रसिद्ध हिम-झीलों में एक है। गंडकी-अंचल के मुख्य नगर 'पोखरा' का यह अत्यंत ही लुभावना स्थान है और उसके नैऋत्य कोण में स्थित है। यह 'नवाकोट' से तीन मील उत्तर में है। इसी पोखरा और 'फेवाताल' के पास हिमालय पर्वत की दक्षिणी सीमा समाप्त होती है और महाभारत-पर्वत की शृंखला इसके दक्षिण में आरंभ होती है। जो नदी फेवाताल के नैऋत्य कोणवाली पर्वत-श्रेणी से बहती है, उसका निकास 'कुसुमा' से तीन मील पूर्व में है। यह दक्षिण की ओर ढलकर अग्निकोण में बहती है और फिर 'बुटवल' से 'पोखरा' जानेवाले प्रसिद्ध राजमार्ग के पश्चिमी किनारे से नैऋत्य कोण में बहती आती है और अंत में पश्चिम की ओर मुड़कर काली गंडकी में समा जाती है। समागम के बाद काली गंडकी फिर नैऋत्य कोण में चलकर 'बरिगड' का हिमजल ग्रहण करती है। 'बरिगड' नदी सप्त गंडकियों में पहली नदी है, जो 'काली गंडकी' में प्रवेश करती है। 'बरिगड' का संगम 'रीदी' से डेढ़-दो मील दूर पूर्वोत्तर कोण में है। 'बरिगड' का उद्गम लुम्बिनी-अंचल के उत्तरी छोर के पश्चिमोत्तर कोण में लुम्बिनी, राप्ती और धौलागिरि अंचलों की त्रिसंधि सीमा पर है। इसके उद्गम स्थल से लगभग सात मील दूर पूर्वोत्तर कोण में 'धोरपट्टन' नामक स्थान है, जो धौलागिरि अंचल में पड़ता है। अपने उद्गम से बरिगड का प्रवाह सर्वत्र अग्निकोण में बहता आता है और पूरे लुम्बिनी-अंचल को पार करता 'रीदी' के पूर्वोत्तर कोण में पहुँचकर काली गंडकी में गिर जाता है। बरिगड का जल

---

१. वराह पु०, अध्या० १४५, श्लोक ६९ और ७२।

पीकर गंडकी 'रीदी' आती है और यहाँ भी पश्चिम से आनेवाली एक गिरि नदी को ग्रहण करती है। इसी 'रीदी' में 'काली गंडकी' का दक्षिणी पथगामी प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। यहाँ तक 'काली गंडकी' हिमालय और महाभारत की पर्वतमालाओं को पारकर नेपाल में लगभग ६० मील तक अपना प्रवाह-पथ तय कर लेती है।

लुम्बिनी-अंचल के इस 'रीदी' स्थान से काली गंडकी पूर्व दिशा में प्रवाह-दरी वनाती है और पूर्व की ओर बढ़ने के क्रम में पूर्वोत्तर भाग में थोड़ी झुकती हुई प्रवाहित होती है। रीदी से १३ मील पूर्व की ओर गंडकी का 'रामदी घाट' है। भारत के गोरखपुर जिले के 'नौतनवा' से नेपाल में प्रवेश कर उत्तर की ओर बुटवल और तानसिंग होकर 'पोखरा' नगर को जानेवाला 'सिद्धार्थ राजमार्ग' गंडकी को इसी 'रामदी घाट' में पार करता है। काली गंडकी में यह पुल वड़ा ही लुभावना और आकर्षक ढंग से बना है। गंडकी के जल-स्तर से यह १२३ फुट ऊँचा है और धनुषाकार लोहे की बीमों पर तना हुआ है। पुल की लंबाई ३०१ फुट है; किंतु बीच में कहीं कोई पाया नहीं दिया गया है। नेपाल राज्य का अभी तक यह सबसे बड़ा पुल है। यहाँ नदी की धारा अपने भूमि-तल से आठ फुट की ऊँचाई में वहती है; किंतु वर्षाऋतु में जलधारा की ऊँचाई ३५ फुट तक उठ जाती है। पुल में ७० टन तक का बोझ वहन करने की क्षमता है और इसमें ५०० टन की वजनवाली लौह पट्टियाँ लगाई गई हैं। पुल का निर्माण-कार्य सन् १९६९ ई० में आरंभ हुआ था और सन् १९७१ ई० के जुलाई मास में पूरा हो गया था। पुल के बनाने में २७ लाख रुपयों का व्यय हुआ था।

उक्त 'रामदी घाट' से गंडकी नदी पूर्व ओर की घाटी से बहती हुई जब लुम्बिनी-अंचल की पूर्वी सीमा पर पहुँचती है, तब यहीं 'देवघाट' के पास इसमें 'त्रिशूली गंडकी' समागम करती है। बरिगड के संगम-स्थल से त्रिशूली-संगम का सारा क्षेत्र 'वराहपुराण' के अनुसार 'सम्भेद'[१] क्षेत्र कहलाता है। इसी 'देवघाट' में श्वेतगंडकी, मर्सियङ्दी, दारामादी और बूढ़ी गडकी—इन चार नदियों तथा अन्य कई छोटी निर्झरिणियों के भारी जल-भांडार को लेकर त्रिशूली गंडकी, कृष्णा गंडकी से समागम करती है। 'देवघाट' नारायणी अंचल के बिलकुल पश्चिमोत्तर कोण में त्रिशूली-संगम पर बसा है। चम्पारन के भैंसा-लोटन (त्रिवेणीघाट) से 'गुरखा' तक का मार्ग 'भरतपुर' और 'देवघाट' होते हुए जाता है। इस संगम-क्षेत्र का पुराणों में बड़ा महत्त्व है, जिसकी चर्चा आगे की जायगी।

त्रिशूली : नेपाल की 'वागमती' नदी का उद्गम-स्रोत लक्ष्मी की उस मूर्ति-जैसा है, जिसकी गोद में 'काठमांडो' नगर शिशु की तरह बैठा है। वागमती रूपी लक्ष्मी के सिर पर ऋद्धि और सिद्धि की तरह त्रिशूली गंडकी और स्वर्ण कौशिकी—ये दो सरिताएँ अपना-अपना हाथ उठाये श्वेत चँवर डुलाती-सी धारा बहाती हैं। त्रिशूली गंडकी तथा स्वर्ण कौशिकी की उद्गम-धाराओं की, आप श्वेत हाथियों को ऊपर उठी उन सूँड़ों से भी, तुलना कर सकते हैं,

---

१. वराह पुराण, अध्या० १४५, श्लो० ८९।

जो वागमती-रूपी लक्ष्मी के सिर पर अभिषेक कर रही हैं। त्रिशूली गंडकी की सूँड़ दाहिनी ओर पश्चिम में तनी हुई है और स्वर्ण कौशिकी की बाईं ओर पूर्व में।

त्रिशूली गंडकी का क्षेत्र 'वागमती-अंचल' में फैला है। इसकी धारा 'गणेश हिमाल' (गंडकी-अंचल के गोरखा जिले की ऊपरी तथा उत्तरी सीमा) के पूर्वोत्तर भाग के तिब्बती प्रदेश से प्रवाहित होती है और तिब्बत की भूमि में अग्नि-कोण में बहती हुई केराङ् दर्रे से रसुआगढ़ी के पास नेपाल में प्रवेश करती है। दक्षिण की ओर बहती जब यह 'थाङ्जेट' के पूर्व में आती है, तब इसकी दूसरी धारा भी इसमें सम्मिलित हो जाती है। त्रिशूली की यह दूसरी धारा उत्तरी सीमा के पास 'लिरु-लामटाङ्' नामक हिमाल से दक्षिण बहती है। ठीक इसी के सामने 'लिरु-लामटाङ्' के उत्तरी भाग से 'अरुण कोशी' का भी उद्गम होता है और वह थोड़ी दूर उत्तर चलकर पूर्व की ओर तिब्बत की भूमि में बहती है। त्रिशूली की यह दूसरी धारा 'लिरू-लामटाँङ्' के दक्षिण आकर नैऋत्य कोण में चलती है और 'थाङ्जेट' के पूर्व त्रिशूली की मुख्य धारा में संगम कर जाती है। त्रिशूली 'थाङ्जेट' से दक्षिण की ओर थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकती हुई बहती है और 'नुवाकोट' के पश्चिम में आती है। काठमांडो से नुवाकोट और नुवाकोट से केराङ् दर्रा होकर तिब्बत में घुसनेवाला मार्ग इसी त्रिशूली के तट से गुजरता हुआ जाता है। 'थाङ्जेट' से ११ मील दक्षिण में 'गोसाईं कुंड' से प्रवाहित होनेवाली 'तादी' नामक सरिता पश्चिम में बहती त्रिशूली से संगम करती है। फिर, 'नुवाकोट' से छह मील दक्षिण पूर्वोत्तर कोण के हिम-पर्वत से नैऋत्य कोण में आनेवाली 'लिखु' नामक नदी भी त्रिशूली में मिलती है। लिखु-संगम से जब त्रिशूली नैऋत्य कोण में ही लगभग आठ मील दूर आती है, तब यह पश्चिम की ओर काठमांडौ-पोखरा राजमार्ग के सहारे गुजरने लगती है। इसी यात्रामार्ग में त्रिशूली से 'बूढ़ी गंडकी', जिसे नेपाल में 'वृद्ध-गंगा' भी कहा जाता है, संगम करती है।

बूढ़ी गंडकी : सप्त गंडकियों में प्रसिद्ध नदी है और यह भी तिब्बत नेपाल-सीमा के कुटाङ् और गणेश हिमालों से दो धाराओं में उद्गमित होती है। इसकी इन दोनों धाराओं का उद्गम-क्षेत्र 'गंडकी-अंचल' में है। काठमांडो और गुरखा से मुक्तिनाथ तीर्थ जानेवाला मार्ग इसी बूढ़ी गंडकी के तट के सहारे उत्तर की ओर चलता है। बूढ़ी गंडकी की पश्चिमी शाखा का उद्गम 'कुटाङ्' पर्वत के लरकना क्षेत्र में है। उद्गम-स्थान से अग्निकोण में तथा पूर्व बहकर 'सन्हा' होते उसके पूर्व स्थित 'कच्छुमन ताल' के पूर्वोत्तर कोण में पहुँचकर दक्षिण की ओर घूमती है, तब इसकी दूसरी धारा 'गणेश हिमाल' के पश्चिमी किनारे से दक्षिण चलकर पहली धारा से संगम करती है। इसके बाद सीधे दक्षिण में प्रपात की तरह गिरती हुई 'अरुघाट' स्थान को पहुँचती है। नुवाकोट से पश्चिम की ओर कुंछा तथा पोखरा जानेवाला मार्ग अरुघाट में ही 'वृद्ध गंगा' को पार करता है। इसी अरुघाट से चार मील दक्षिण, वागमती-अंचल के पश्चिमी छोर की 'आँखु' नदी 'गंडकी-अंचल' में प्रवेश कर बूढ़ी गंडकी में समाती है। आँखु नदी वागमती-अंचल के 'आवुथुम' झील से प्रवाहित

होती है, जो रसुआ जिले में है। 'आँखु' को ग्रहण कर 'बूढ़ी गंडकी' दक्षिण आती है और नारायणी, गंडकी और बागमती-अंचलों की त्रिसंधि-सीमा पर 'त्रिशूली' में आ मिलती है। इसी बूढ़ी गंडकी का संगम-स्थान नारायणी तथा गंडकी-अंचलों की सीमा-रेखा भी है।

बूढ़ीगंडकी को आत्मसात् कर 'त्रिशूली' पश्चिम की ओर नेपाल के 'नारायणी' और 'गंडकी'-अंचलों की सीमा बनती पश्चिम में चलती है और जब 'मकैसिङ्' के नैऋत्य कोण में गोरखा नगर के दक्षिण आती है, तब 'मर्सियङ्दी (मर्सियगंडी) नामक नदी अपने मुहाने से तीन मील उत्तर में 'मादीगंडी' को लेकर त्रिशूली से समागम करती है। मर्सियङ्दी, गंडकी-अंचल की नदियों में सबसे बड़ी है। यह मुक्तिनाथ-पर्वत श्रेणी से निकलती है और 'मनाङ्' के दक्षिण से तथा अन्नपूर्णा-पर्वत शिखर के उत्तर से उसे घेरती हुई पूर्व दिशा में चलती है और अन्नपूर्णा पर्वत के पूर्वोत्तर कोण में पहुँचकर मनालू तथा हिमाल चुली के पश्चिम से ही अग्नि कोण में मुड़ती है। फिर दक्षिण की ओर मुड़ती है और दक्षिण पथगामिनी होने पर हिमाल चुली के पश्चिम से ही बहती 'चान पोखरा' के पूर्व भाग में आती है। यहाँ से फिर यह अग्निकोण में चलकर 'तन्हू' शहर के पूर्व भाग से ही 'वंदीपुर' पहुँच जाती है। वंदीपुर के दक्षिण पहाड़ है, अतः पूर्व की ओर चलती है और पूर्व में चार मील जाने पर 'मादी गंडी' को समेटती है। **मादी गंडी** रूपिना ताल से प्रवाहित होकर दक्षिण चलती है और 'गोरखा' नगर होते 'मर्सियङ्दी' से मिलती है। मादी गंडी को साथ करके लगभग दो-तीन मील दक्षिण बढ़कर मर्सियङ्दी 'त्रिशूली' में प्रवेश कर जाती है।

त्रिशूली गंडकी, उक्त मर्सियङ्दी-संगम से दक्षिण में और फिर नैऋत्य कोण में केवल चार मील आगे जाती है, तभी इसके दाएँ पार्श्व में फिर 'श्वेत गंडकी' नामक नदी आ गिरती है। त्रिशूली गंडकी में समागम करनेवाली सभी मुख्य नदियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हुई त्रिशूली के दाहिने भाग में ही प्रवेश करती हैं।

सेती (श्वेत) गंडकी : यह यद्यपि बहुत बड़ी नदी नहीं है, तथापि नेपाल में तथा पुराणों में प्रसिद्ध है। वराह पुराण (अध्याय १४५।८७-८८) कहता है कि महादेव के जटा-जूट तथा उनके शिवालय से 'श्वेत गंगा' प्रादुर्भूत होती है, जिसमें दृश्य-अदृश्य अनेक हिम-सरिताएँ मिलती हैं। यह श्वेत गंडकी अन्नपूर्णा के २४,३०० फुट ऊँचे पर्वत-शिखर से प्रवाहित होती है और 'मच्छपुच्छेर, पर्वत को फाड़ती दक्षिण की ओर 'पमदुर' के पास आ जाती है। फिर पमदुर से अग्निकोण में मुड़कर 'गंडकी' अंचल के प्रधान नगर 'पोखरा' को पहुँचती है, जहाँ इसके नैऋत्य कोण में प्रसिद्ध 'फेवाताल' है। फेवाताल के पूरब श्वेत गंडकी में 'सिद्धार्थ राजमार्ग' का पुल है और यहीं यह पूर्व में मुड़कर, फिर दक्षिण होती है और तब पूर्व की ओर बहती है। यहीं श्वेत गंडकी से एक दूसरी नदी भी मिलती है, जो इसके समानांतर अन्नपूर्णा पर्वत-शिखर से निकलकर तथा श्वेतगंडकी की तरह 'मच्छपुच्छेर' की घाटी को पारकर 'सिकलिस' आती है। वहाँ से दक्षिण बहकर पूर्व की ओर तथा पुनः दक्षिण की ओर बहती हुई पोखरा-काठमांडो-राजमार्ग को पारकर श्वेत गंडकी से मिलती है। इस

संगम के पश्चात् श्वेत गंडको बिलकुल अग्निकोण में बहती हुई 'गंडकी-अंचल' के बिलकुल पूर्व-दक्षिण कोण में 'तनहुँ' जिले के छोर पर पहुँचकर त्रिशूली से समागम करती है। इस प्रकार श्वेत गडकी, मर्सियगंडी, मादी गंडी, बूढी गंडकी तथा अन्य पर्वत-निर्झरिणियों का भारी जल-भांडार समेटकर त्रिशूली गंडकी, श्वेत गंडकी-संगम के नैऋत्य कोण में, कृष्णा-गंडकी से 'देवघाट' में संगम करती है। इसी संगम पर इसका सप्तगंडकी नाम सार्थक होता है और नदी अपना विशाल स्वरूप ग्रहण कर लेती है। पुराणों में इस संगम का माहात्म्य खूब गाया गया है और यहाँ के ह्रद का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ह्रद को 'देवह्रद' कहा गया है, जिसका नाम आज 'देवघाट' है। यहाँ 'नारायणगड' नामक स्थान है, जहाँ भगवान् नारायण का वास रहता है। इसी नारायण के कारण गंडकी 'नारायणी' कहलाती है। संगम के दक्षिण और सप्तगंडकी-प्रवाह के पूर्व में 'भरतपुर' स्थान है, जो 'जडभरत' के क्षेत्र में होने के कारण 'भरतपुर' नाम से अभिहित होता है।

वराहपुराण (अध्याय १४५) में त्रिशूली-संगम अथवा सप्तगंडकी-ह्रद का माहात्म्य और महिमा बतलाते हुए भगवान् वराह कहते हैं—"हे भूमि, यहाँ देवह्रद नामक स्थान मेरा क्षेत्र है, जहाँ बलि के यज्ञ की समाप्ति के बाद तुम मेरी कांता (पत्नी) बनी हो। यह ह्रद वर देनेवाला, श्रेष्ठ मनभावन तथा सुख से भरा है। यह ह्रद देवताओं के लिए भी दुर्लभ और अगाध है। इस ह्रद में मेरे द्वारा चक्रांकित मछलियाँ इधर-उधर घूमती-फिरती दिखाई पड़ती हैं। सबसे आश्चर्यकर वस्तु तो यह है कि इस में छत्तीस सुवर्ण कमल भोर में खिलते हैं और दोपहर तक दिखाई पड़ते हैं। किंतु, इन कमलों को श्रद्धालु लोग ही देख सकते हैं, पापी पुरुषों को ये दिखाई नहीं पड़ते। अतः देवनदियों का यह संभेद (संगम) समस्त सुखों का आश्रय है। यहाँ दिन में अपनी प्रियाओं के साथ स्वर्ग से उतर कर देवता ठहरते हैं। इनके अतिरिक्त गंधर्व, अप्सराएँ, नागों के साथ नागकन्याएँ, देवर्षि, मुनि, सभी सुरनायक, सिद्ध, किन्नर आदि स्वर्ग से इस संगम-स्थान पर उतरते हैं। नेपाल राज्य में समस्त सुखों का देनेवाला जो शिवस्थान है और जितने तीर्थ-स्थान हैं, उन सबसे अधिक इस संगम-स्थान का महत्त्व है!"

इतना कहने के पश्चात् 'वराहपुराण' सेती गंडकी को 'श्वेत-गंगा' कहता है और उसे महादेव के जटाजूट तथा नीलकंठ के शिवालय से प्रादुर्भूत बतलाता है, जिसमें अनेक दृश्य-अदृश्य नदियाँ उससे मिलकर संगम पर पहुँचती हैं। फिर काली गंडकी को कृष्ण-तनूद्भवा कहता है और त्रिशूली गंडकी को शिव-तनूद्भवा मानता है और दोनों के संगम-स्थान को संपूर्ण तीर्थों का संगम बतलाता है। इस स्थान को नारायण का परम पवित्र क्षेत्र मानता है और इसे देवताओं के लिए दुर्लभ कहता है। इसी के पास पुण्यवर्द्धक सिद्धाश्रम है, जहाँ शंभु का तपोवन-क्षेत्र है। इस तपोवन के वृक्षों तथा लता-गुल्मों का बड़ा ही आकर्षक वर्णन 'वराह पुराण' करता है। वह कहता है कि त्रिशूली और काली गंडकी के संगमवाले ह्रद में जो स्नान करता है, वह सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है। यह गंगा-यमुना के संगम की

तरह पवित्र है। इस शालग्राम क्षेत्र में वराह भगवान् पूर्वाभिमुख होकर स्थित हैं, जो भागवतों के अतिशय प्रिय हैं। ये बातें 'वराहपुराण' के १४५वें अध्याय में इन पंक्तियों के द्वारा वर्णित हैं :

तत्र देवह्रदं नाम मम क्षेत्रं वसुन्धरे ।
यत्र कान्तासि मे भूमे बलेर्यज्ञ-विनाशनात ।।७५।।
स ह्रदो वरदः श्रेष्ठो मनोज्ञः सुखशीतलः ।
अगाधः सौख्यदश्चापि देवानामपि दुर्लभः ।।७६।।
तस्मिन् ह्रदे महाभागे मम वै नियतोदके ।
मत्स्याश्चक्राङ्किताश्चैव पर्यटंते इतस्ततः ।।७७।।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
महाश्चर्यं विशालाक्षि यत्र तत्परिवर्त्तते ।।७८।।
पश्यति श्रद्धधानस्तु न पश्येत् पापपूरुषः ।
तस्मिन् देवह्रदे पुण्ये चतुर्विंशतिर्द्वादश ।।७९।।
सौवर्णानि च पद्मानि दृश्यन्ते भास्करोदये ।
तावत्पश्यन्ति भूतानि यावन्मध्य दिनं भवेत् ।।८०।।
सम्भेदो देवेनद्योस्तु समस्त-सुखवल्लभः ।
दिवोऽवतीर्य तिष्ठन्ति देवा यत्र सहप्रियाः ।।८४।।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव नागकन्या सहोरगैः ।
देवर्षयश्य मुनयः समस्त-सुरनायकाः ।।८५।।
सिद्धाश्च किन्नराश्चैव स्वर्गादवतरन्ति हि ।
नेपाले यच्छिवस्थानं समस्तसुखवल्लभम् ।।८६।।
तेभ्यस्तेभ्यश्च स्थानेभ्यः तीर्थेभ्यश्च विशेषतः ।
महादेवजटाजूटान्नीलकण्ठ-शिवालयात् ।।८७।।
श्वेतगङ्गेति या प्रोक्ता तया सम्भूय सादरम् ।
नाना नद्यः समायाताः दृश्यादृश्यतया स्थिताः ।।८८।।
गण्डक्या कृष्णया चैव या कृष्णस्य तनूद्भवा ।
तया सम्भेदमापन्ना या सा शिवतनूद्भवा ।।८९।।
त्रिशूलगङ्गेत्याख्याता सापि यत्र महानदी ।
एवं नदीसमुद्भेदः सर्वतीर्थ-कदम्बकम् ।।९०।।
मम क्षेत्रे समाख्यातं पुण्यं परमपावनम् ।
वसुधे त्वं विजानीहि देवानामपि दुर्लभम् ।।९१।।
यत्र सिद्धाश्रम इति विख्यातः पुण्यवर्द्धनः ।
शम्भोस्तपोवनं यत्र सर्वाश्रमवरं प्रति ।।९२।।

तस्मिन् ह्रदे महापुण्ये पुण्यनद्योस्तु सङ्गमे ।
स्नानाच्छताश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥९७॥
गङ्गा-यमुनयो र्यद्वत्सङ्गमो मर्त्य-दुर्लभः ।
तथैवायं देवनद्योः सङ्गमः समुदाहृतः ॥१०३॥
अहमस्मिन्महाक्षेत्रे धरे पूर्वमुखः स्थितः ।
शालग्रामे महाक्षेत्रे भूमे भागवतप्रियः ॥१०४॥

'वराह पुराण' ने अपने उपर्युक्त श्लोकों में से ८९वें श्लोक में त्रिशूली को 'शिवतनूद्भवा' कहा है और ७५ वें श्लोक में संगम-स्थान को 'देवह्रद' कहा है। 'महाभारत' शिवतनूद्भवा त्रिशूली को 'माहेश्वरी धारा' कहता है और देवह्रद को दिवौकसा पुष्करिणी नाम देता है।

अथ माहेश्वरीं धारां समासाद्य धराधिप। अश्वमेधमवाप्नोति कुलञ्चैव समुद्धरेत् ॥
दिवौकसां पुष्करिणीं समासाद्य नराधिप। न दुर्गतिमवाप्नोति वाजिपेयफलं लभेत् ॥
—वन पर्व, ८४।११७-११८

भरतपुर के पश्चिम 'नारायणी' नदी लुम्बनी और नारायणी अंचलों की सीमा छूती है और यहाँ से फिर नैऋत्य कोण में दोनों अंचलों की सीमा के पास से लुम्बिनी-अंचल के भीतर से बहने लगती है। यहाँ यह मुख्यतया दो धाराओं में बहती हुई चलती है। पूर्वी धारा 'नारायणी' कहलाती है और पश्चिमी धारा सप्त गंडकी। लगभग १३ मील तक यह दो धाराओं में बहकर पुनः सम्मिलित हो जाती है। इसके बाद महाभारत पर्वत और चूरे पर्वत की बीचवाली घाटी से नैऋत्यकोण में बहकर आनेवाली 'राप्ती' नदी नारायणी में संगम करती है। इस राप्ती को 'वराहपुराण' देविका नदी कहता है और इसके तट तथा संगम का बड़ा महत्त्व बतलाता है।

देविका बनाम राप्ती : देविका नदी, जिसे आजकल 'राप्ती' (श्रावस्ती के पास बहनेवाली राप्ती दूसरी है।) कहते हैं; नारायणी-अंचल के 'मकवानपुर' जिले के भीमफेदी' नगर के पास से प्रवाहित होती है। अपने उद्गम-स्थान से प्रथम नैऋत्यकोण में चलकर 'चीसापानी गढ़ी' और 'धोरसिङ्' स्थान के बीच से निकलती है तथा 'धोरसिङ्' के पश्चिम 'त्रिभुवन राजपथ' (वीरगंज से काठमांडो जानेवाला महापथ) को पार करती है। इसके बाद यह, जैसा कहा गया, दक्षिण की ओर महाभारत पर्वत और चूरे की घाटी से होकर बहती है। इसके इसी बहाव के पूर्वी किनारे नारायणी-अंचल का प्रधान नगर 'हेटिंडा' बसा है, जो 'त्रिभुवन राजपथ' पर है। हेटिंडा से ही एक सड़क पश्चिम की ओर गंडकी-त्रिशूली-संगम पर 'देवघाट' जाती है। इस मार्ग को 'हेटिंडा' में ही 'देविका' नदी पार कर दक्षिण बहती है, और चूरे पहाड़ की रुकावट के कारण उसकी घाटी से पश्चिम की ओर मुड़कर

परसा तथा चितवन जिलों की सीमा होकर बहने लगती है। इसी परसा जिले का मुख्य नगर वीरगंज है, जो नेपाल-राज्य के बिलकुल दक्षिणी सीमा पर बसा है।

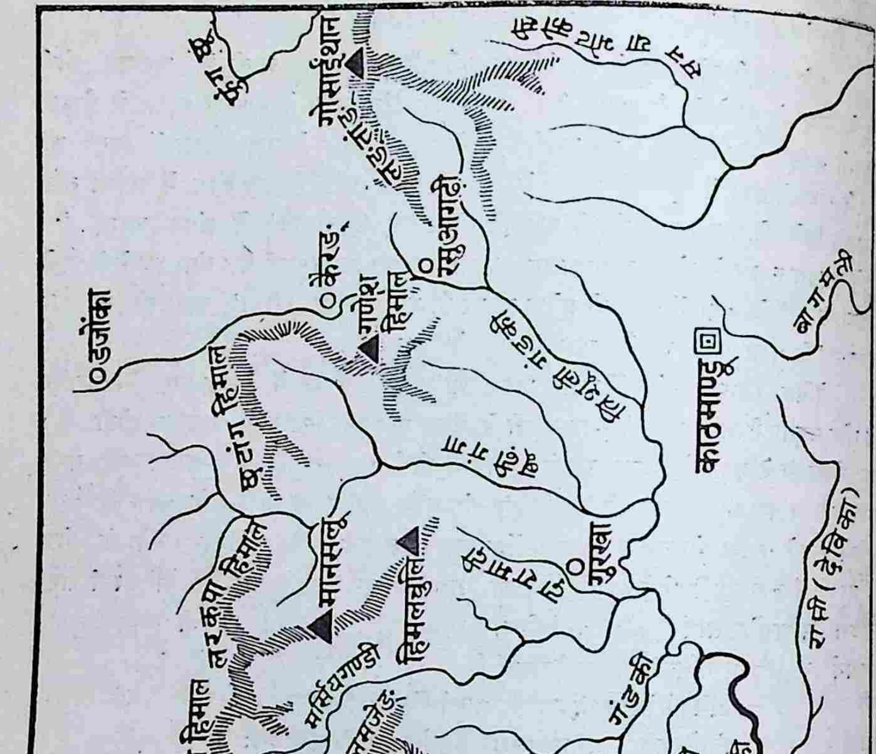
चूरे पहाड़ी की घाटी से जब देविका नदी पश्चिम कुछ दूर जाती है, तब यह थोड़ी दूर के लिए दो भागों में बँट जाती है। यहाँ महाभारत पर्वत के दक्षिणी ढलान से नैऋत्य कोण में बहकर और सोमेश्वर तथा नर्त्तनाचल के उत्तरी ढलान से उत्तर दिशा में बहकर कई पहाड़ी स्रोत देविका में गिरते हैं। इसके बाद देविका (राप्ती) नैऋत्य कोण में चलती तथा चितवन जिले को पार करती उसकी पश्चिमी सीमा पर 'नारायणी' से संगम करती है। अपने उद्गम-स्थान से संगम तक लगभग ६२ मील इसका प्रवाह-मार्ग है। संगम करने से पहले देविका के दाहिने भाग में जो नदी प्रवेश करती है, वह 'बरधा खोला' कहलाती है और 'भरतपुर' के पूरब से बहकर नैऋत्य कोण की ओर आती है।

देविका (राप्ती)-संगम के बाद 'नारायणी' पश्चिम दिशा में, कुछ-कुछ नैऋत्यकोण की ओर बहती है और 'चक्रा' नामक नदी के संगम तक इसी स्थिति में प्रवाहित होती है। चक्रा-संगम से देविका-संगम तक का क्षेत्र 'त्रिवेणी तीर्थ' कहलाता है और प्रयाग की तरह पुण्य तथा पवित्र माना जाता है। देविका-संगम और त्रिवेणी के पड़ोस के अनेक तीर्थों का उल्लेख हमारे पुराण ग्रंथ करते हैं। पूर्वोक्त महाभारत पर्वत और सोमेश्वर पर्वत के बीच की तराई में बहनेवाली 'देविका' के क्षेत्र की वस्तुएँ 'दाविक' कहलाती थीं : **देविकायां सरय्वाञ्च भवेद्दाविकसारवौ।** (अमरकोश, १।१०।३६)। 'महाभारत' भी अपने अनुशासन पर्व (२५।१९) में देविका की चर्चा करता है :

देविकामिन्द्रमार्गञ्च स्वर्ण-विंदु विगाह्य च।
विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्सरोभिरभिष्ठुतः॥

अनुशासन-पर्व के उक्त २५वें अध्याय के ही २५वें श्लोक में 'नंदा' और 'अपर नंदा' नदियों का उल्लेख महाभारत करता है। और, बीच के श्लोकों में नेपाल-क्षेत्र के प्राचीन तीर्थों की ही चर्चा है। महाभारत की देविका नदी की स्पष्ट और विस्तृत चर्चा 'वराह पुराण' में प्राप्त है। इस पुराण के १४४ वें अध्याय के निम्नांकित श्लोकों से स्पष्ट है कि गंडकी में त्रिवेणी-संगम के पास मिलनेवाली 'राप्ती' नदी ही प्राचीन काल में देविका कहलाती थी और वहाँ की एक दूसरी नदी ब्रह्मा की पुत्री मानी जाती थी :

अपरा देविका नाम्ना गंडक्या सह सङ्गता।
पुलस्त्य-पुलहौ पूर्वं तेपाते परमं तपः॥१२९
यत्र सृष्टि-विधानार्थं कृत्वाश्रमपदं पृथक्।
सृष्टेर्विधान-सामर्थ्यं यत्र लब्धं ततः परम्॥१३०
ततोऽभूद् ब्रह्मतनया पुण्या सा सरितांवरा।
गंडक्या यत्र मिलिता ब्रह्मपुत्री यशस्विनी॥१३१
त्रिवेणी सा महापुण्या देवानामपि दुर्लभा।
धरे जानीहि तत्क्षेत्रं योजनं परमार्चितम्॥१३२



अर्थात्, ''गंडकी में मिलनेवाली (राप्ती) देविका है, जिसके किनारे पुलस्त्य और पुलह ने घोर तपस्या की थी और जहाँ सृष्टि रचने के लिए दोनों ने अपना एक अलग आश्रम,

बनाया था। आश्रम के पास जिस स्थान पर उन्होंने सृष्टि रचने का सामर्थ्य प्राप्त किया, वहाँ 'ब्रह्मतनया' नामक श्रेष्ठ नदी प्रादुर्भूत हुई और वह जहाँ गंडकी से मिली, वह स्थान देवदुर्लभ त्रिवेणी-क्षेत्र कहलाया।'' इस ब्रह्मपुत्री नदी को श्रीमद्भागवत् पुराण 'चक्रा' कहता है और इसी के किनारे पुलस्त्य और पुलह का आश्रम बतलाता है। इन दोनों ऋषियों ने तप किया 'देविका' के संगम के पास और आश्रम बनाया चक्रा नदी के किनारे। गंडकी, देविका और ब्रह्मतनया (चक्रा)—इन तीनों नदियों का अस्तित्व 'वराह पुराण' के एक दूसरे सूत्र से भी प्राप्त होता है और तीनों के संगम के कारण ही गंडकी त्रिवेणी बनी, इसका भी रहस्य इन श्लोकों से खुलता है :

देविका नाम देवानां प्रभावाच्च तपस्यताम् ।
नियमार्थं समुद्भूता गण्डक्या मिलिता शुभा ॥
आश्रमादपरा चासीत् पुलस्त्य-पुलहाश्रमात् ।
गण्डक्या मिलिता सापि त्रिवेणी गण्डकीत्यभूत् ॥

—अध्याय १४४।९६-९७

अर्थात्, ''तप करनेवाले देवताओं के प्रभाव से देविका नदी प्रादुर्भूत हुई और गंडकी से मिली। दूसरी नदी (ब्रह्मतनया) पुलस्त्य और पुलह के आश्रम से निकली और वह भी गंडकी से मिली, इसलिए गंडकी 'त्रिवेणी' कहलाई।

नेपाल की उक्त 'राप्ती' ही देविका नदी है। इसका स्पष्टीकरण 'महाभारत' भी अपने वनपर्व के ८२ वें अध्याय के निम्नांकित श्लोकों में करता है, जिनमें कहा गया है कि ब्राह्मणों का उद्भव देविका के क्षेत्र में ही हुआ है और वहीं लोक-प्रसिद्ध शिव का स्थान है। वहीं देवर्षियों से सेवित रुद्र का 'काम' नामक स्थान है :

ततो गच्छेत राजेन्द्र देविकां लोकविश्रुताम् ।
प्रसूतिर्यत्र विप्राणां श्रूयते भरतर्षभ ॥१०२॥
त्रिशूलपाणेः स्थानञ्च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
देविकायां नरः स्नात्वा समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥१०३॥
कामाख्यं तत्र रुद्रस्य तीर्थं देवनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वा नरः क्षिप्रं सिद्धिं प्राप्नोति भारत ॥१०५॥[1]

देविका के दक्षिण भाग की सोमेश्वर पहाड़ी भगवान् शंकर का प्रसिद्ध स्थान है और इसी क्षेत्र में सालंकायन ऋषि को शिव का दर्शन हुआ था और इसी क्षेत्र के 'गोस्थलक' (संभवतः गोदेनाथ) तीर्थ में और्वऋषि के शाप की ज्वाला से शंकर का त्राण हुआ था और इसी क्षेत्र में शंकर ने सोम को प्रक्षालित किया था इत्यादि उपाख्यानों से शंकर का स्थान

---

१. किंतु महाभारत के अनुशासन-पर्व के २५ वें अध्याय के श्लोक ९ और श्लोक ११ दोनों में 'देविका' की चर्चा है। ११ वें श्लोकवाली देविका, सुंदरिका ह्रद और अश्विनी नदी के साथ चर्चित है। अतः वह ९ वें श्लोक तथा वन पर्ववाली इस देविका से भिन्न है।

होना सिद्ध है। फिर, देविका के पास 'कामाख्य' नामक तीर्थ था, जिसका प्रमाण फिर 'वराह पुराण' अपने १४४ वें अध्याय के ९८ वें श्लोक में देता है :

> कामिकं तन्महातीर्थं पितृणामतिवल्लभम् ।
> तत्र स्थितंमहालिङ्गं त्रिजलेश्वर संज्ञितम् ॥९८॥
> मुक्तिभुक्तिप्रदं देवी दर्शनादघनाशनम् ॥९९॥

इससे स्पष्ट है कि महाभारत रुद्र के जिस 'काम' तीर्थ की चर्चा करता है, वराह पुराण उसी 'काम' को त्रिवेणी के पास 'कामिकतीर्थ' के नाम से प्रकट करता है, और यहीं 'त्रिजलेश्वर' शिवलिंग का होना बतलाता है।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'ब्रह्मांड पुराण' के उपोद्घातपाद (अध्याय ३।४१) में भी 'देविका' की पहचान के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ सहायक होती हैं :

> देविकायां वृषो नाम कूपः सिद्धनिषेवितः ।
> समुत्पतन्ति तस्यापो गवां शब्देन नित्यशः ॥
> योगेश्वरैः सदाजुष्टः सर्वपाप-वहिष्कृतैः ।
> दद्याच्छ्राद्धन्तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि तत्फलम् ॥

अर्थात्, सिद्धों से सेवित वृष नामक एक कूप देविका में है। वहाँ जो जल गिरता है, वह साँड़ की तरह हुँकड़ता रहता है। वह योगेश्वर महादेव से सेवित है। वहाँ श्राद्धकर्म करना चाहिए। 'ब्रह्मांड पुराण' के इस वृषकूप की पहचान 'वराह पुराण' के १४७वें अध्याय में वर्णित 'गोनिष्क्रमणतीर्थ' और 'गोस्थलक'-तीर्थ से की जा सकती है। गोस्थलक तीर्थ को 'वराह पुराण' पंचनद-संगम से ऊपर चक्रा- (ब्रह्मतनया) से देविका-संगम तक की पाँच कोसवाली नारायणी-वार को 'विष्णुसर' कहता है और उसी के पड़ोस में गोस्थलक तीर्थ का वर्णन निम्नोक्त श्लोकों द्वारा करता है :

> अस्ति विष्णुसरोनाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
> पूर्वोत्तरेण पाश्र्वेन पञ्चक्रोशं न संशयः ॥४७॥
> मत्सरः पद्मपत्राक्षि अगाधं परिसंस्थितम् ।
> पञ्चक्रोशश्च विस्तारः पर्वतः परिमण्डलः ॥४८॥
> तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे आश्चर्यं शृणु सुन्दरि ॥५२॥
> गवां वै श्रूयते शब्दो मम कर्म सुखावहा ।
> अथात्र ज्येष्ठमासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशी ॥५३॥
> श्रूयते सुमहान् शब्दः स्वयमेतन्न संशयः ।
> एवं गोस्थलके पुण्ये महाभागवतः शुचिः ॥५४॥

अर्थात्, पाँच कोस में विस्तृत 'विष्णुसरोवर' के क्षेत्र में शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को जहाँ गायों का शब्द सुना जाता है, वहीं गोस्थलक नामक तीर्थ है। फिर, 'देविका' की पहचान

के लिए 'देवीभागवत्' के अनुसार उसके तट पर 'नन्दिनी' नाम की देवी और शिव-कुंड में 'नन्दा' नामक देवी प्रतिष्ठित हैं।[१]

त्रिवेणी गंडकी के इस क्षेत्र में जहाँ 'जडभरत' का आश्रम था, वहाँ त्रिजलेश्वर नामक शिवलिंग के होने का उल्लेख 'वराह पुराण' में मिलता है और देवी भागवत वहीं फिर 'अनंगा'[२] नामक देवी के प्रतिष्ठित होने की चर्चा करता है। किंतु, वराहपुराण' इसे 'समंग' कहता है और यहाँ बहुतेरे शिवलिंग के होने का भी उल्लेख करता है। यहाँ गंडकी में स्नान करके शिवलिंगों को जो अर्चना करता है, वह निश्चय ही योगसिद्धि प्राप्त करता है :

तपः प्रभावल्लिङ्गानि प्रादुर्भूतानि यत्र वै।
समङ्गमिति विख्यात मेतत्स्थानं भविष्यति ॥
स्नात्वाऽत्र गण्डकी-तीर्थे मम लिङ्गानि योऽर्चयेत्।
तस्य योगफलं सम्यग् भविष्यति न संशयः ॥[३]

किंतु, 'महाभारत' (गीताप्रेस, गोरखपुर) के वन पर्व, (अध्याय ८४।११५) में समङ्ग को 'अधिवङ्ग' कहा गया है :

ततोऽधिवङ्ग[४] धर्मज्ञ समाविश्य तपोधनम्।
गुह्यकेषु महाराज मोदते नात्र संशयः ॥

यहाँ 'अधिवङ्ग' पाठ लिपिदोष के कारण अशुद्ध जान पड़ता है। यहाँ भी 'समङ्ग' ही पाठ होना चाहिए : ततः समङ्गं धर्मज्ञ।

त्रिवेणी-क्षेत्र के 'गोनिष्क्रमण' तथा 'गोस्थलक' तीर्थ की उत्पत्ति की कहानी 'वराह पुराण' अपने १४७ वें अध्याय में इस प्रकार करता है कि और्व नामक ऋषि के आश्रम को उनकी अनुपस्थिति में शंकर ने दग्ध कर दिया था। इस कारण और्व ने शाप दे दिया कि दग्ध करनेवाला स्वयं अग्निताप से परितप्त हो जाय। भगवान् शंकर उग्र ताप से व्याकुल होकर शांति के लिए त्रैलोक्य में दौड़ने लगे। पीछे नारायण के बीच-बचाव से और्व ऋषि ने कहा : भगवान् शंकर स्वयं ७७ गायों को ले आकर 'नारायणी' में स्नान करावें, तो उनके तन का अग्निदाह शांत हो जाएगा :

सप्तसप्ततिः कल्याणि सौरभेयां महौजसः।
तेनाप्लावित-देहाश्च परां निर्वृतिमागताः ॥३०॥
तच्च गोनिष्क्रमं नाम तीर्थं परम पावनम् ॥३१॥

---

१. शिवकुण्डे शुभा नन्दा नन्दिनी देविकातटे।--देवी भा०, स्कन्ध-७, अध्याय ३०, श्लोक ६९।
२. अनङ्गा भरताश्रमे।···उपरिवत्, श्लोक ७६।
३. वराहपुराण, अध्याय १४६, श्लोक ५८-५९।
४. भण्डारकर रिसर्च इंस्टिच्युट, पूना से प्रकाशित महाभारत के आरण्यक पर्व के ८२वें अध्याय के ९८ वें श्लोक में···ततोऽधिवंश्यं धर्मज्ञ' पाठ मिलता है।

गोनिष्क्रमणकं नाम गावो यत्र प्रतारिताः ।
यथा निष्क्रमणं प्राप्य सुरभीणां वसुन्धरे ॥४
सप्तति यंत्र कल्पानि और्वो यत्र प्रजापतिः ।
तपश्चचार परमं मम मायाबलान्वितः ॥५

उक्त पुराण इसी अध्याय के ३३-३४ वें श्लोकों में गोनिष्क्रमण तीर्थ के पास ही एक आदिवट तीर्थ का भी उल्लेख करता है और कहता है कि इसके मूल से पाँच धाराएँ बहती हैं :

पञ्चधाराः पतन्त्यत्र मूले मूलवटस्य हि ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत पञ्च रात्रोषितो नरः ॥

'वराह पुराण' त्रिवेणी-क्षेत्र के पड़ोस को पाँच योजन भूमि को पुण्य-क्षेत्र कहता है,[1] जिसमें अनेक तीर्थों की चर्चा करता है। इन्हीं तीर्थों में पुलस्त्य-पुलहाश्रम भी है, जहाँ 'जड़-भरत' ने त्रिजलेश्वर की पूजा की थी। यह पहले कहा गया है कि पुलस्त्य और पुलह ने देविका-संगम के पास तप किया था और सृष्टि रचने के लिए अलग आश्रम बनाया था। इन्हीं ऋषियों के आश्रम के पास जब घूमते-फिरते हुए राजा भरत ने त्रिजलेश्वर विष्णु का पूजन किया था, तब भरत मोह के वशीभूत हो गए थे। फिर जब उनका मृगशरीर समाप्त हुआ, तब वे जड़भरत कहलाये। उसी भरत के द्वारा पूजित होने से 'त्रिजलेश्वर' तीर्थ बना :

यदा च भरतो राजा पुलस्त्यस्याश्रमान्तिके ।
स्थित्वा पर्यचरद्विष्णुं त्रिजलेशमपूजयत् ॥१५५॥
ततः प्रभृति तस्यासीद्भरतेनारतिः स्फुटम् ।
पुनश्च मृगदेहान्ते जडः स भरतोऽभवत् ॥१५६॥
तेनैव पूजितो यस्माज्जलेश्वर इति स्मृतः ॥१५७॥

यहाँ यह त्रिजलेश्वर नाम से ज्ञात होता है कि त्रिवेणी में ही उक्त विष्णु का स्थान है। वराह पुराण के १४४ वे अध्याय के श्लोक १२४ से १२८ तक में कहा गया है कि त्रिवेणी-स्थान पर देवऋषियों के साथ ब्रह्मा निवास करते हैं और चारो वेदों, सभी प्रकार के यज्ञों तथा सभी तीर्थों का वास भी है, अतः कार्तिक मास में जो कोई नित्य स्नान करते हुए यहाँ वास करता है, वह निर्द्वन्द्व होकर सभी पापों से मुक्ति प्राप्त करता है। यह मंगलों का भी मंगलदायक सर्वोत्तम तीर्थ है। इसकी बराबरी गंगा के अतिरिक्त दूसरी कोई नदी नहीं कर सकती। इसके स्मरण और स्पर्श से ही मनुष्य निष्पाप हो जाता है।

'जड़भरत' का चरित्र श्रीमद् भागवत के पाँचवें स्कंध में भी है। इस स्कंध के सातवें अध्याय में उल्लेख है कि भरत अपनी सकल सम्पत्ति, स्वजन-परिजन और आवास-निवास का त्याग कर तपस्या करने पुलहाश्रम में चले गए, जहाँ हरि अपने भक्तों के पास

---

१. तत्क्षेत्रं तु महाभागे पञ्च योजन-मण्डलम् ।
तिष्ठामि परमा प्रीत्या दिशपूर्वामुपाश्रितः ॥

—वराह पुराण, १४७।६५

आज भी स्थित हैं। उस आश्रम के दोनों भागों को सरिताओं में श्रेष्ठ 'चक्र' नामक नदी पाषाण-चक्र रूपी नाभियों से पवित्र करती रहती है। उसी आश्रम-वन में भरत पत्र, पुष्प, तुलसीदल और जल से हरि की अर्चा-पूजा करके मुक्ति पा गए :

स्वयं सकल-सम्पन्निकेतात् स्वनिकेतात् पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥८॥ यत्र ह वाव भगवान हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन सन्निधाप्यत इच्छारूपेण ॥९॥ यत्राश्रमपदान्युभयतो नाभिभि र्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरितप्रवरा सर्वतः पवित्री करोति ॥१०॥ तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलय-तुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलाहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्तः परां निर्वृतिमवाप ॥११॥

इसके अतिरिक्त भी 'श्रीमद्भागवत' के पाँचवें स्कन्ध के आठवें अध्याय में कहा गया है कि भरत ने जब मृगशिशु के मोह में पड़कर कालंजर पर्वत पर मृगयोनि में जन्म ग्रहण किया, तब कालंजर छोड़कर वे पुलहाश्रम में ही आए। वहाँ भगवान् शालग्राम की पूजा-अर्चा में तत्पर रहकर मृग शरीर से उन्होंने उद्धार पाया : **इत्येवं पुनर्भगवत् क्षेत्रमुपशम-शीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्य-पुलहाश्रमं कालञ्जरात् प्रत्याजगाम ॥३०॥**

इसका तात्पर्य हुआ कि भरत पुलहाश्रम में ही मृगशिशु के मोह में पड़े और मृग-योनि में जब उनका जन्म कालंजर पर्वत पर हुआ, तब पुनः वे पुलहाश्रम में आए और यहीं वे भगवान् की आराधना करके मृगशरीर से मुक्त भी हुए।

फिर, इसी त्रिवेणी-संगम पर गज-ग्राह की प्रसिद्ध लड़ाई की चर्चा भी मिलती है। 'वराह पुराण' के अनुसार, वेदनिधि ऋषि की पत्नी 'कर्दमा' से जय-विजय नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी। दोनों यज्ञ-विद्या में अत्यन्त निपुण थे और वेद-वेदांग में पारंगत भी। इन दोनों भाइयों ने तृण-विंदु के दो पापी पुत्रों को अपनी दृष्टि मात्र से व्रतचारी बना दिया था। दोनों हरि की भक्ति में सदा डूबे रहते थे। कहानी है कि मरुत्त[1] राजा ने जय-विजय को यज्ञ संपन्न कराने के लिए आमंत्रित किया। यज्ञांत में दोनों को दक्षिणा में विविध प्रकार की सामग्री तथा स्वर्ण मिले। घर आने पर दक्षिणा के बँटवारे में दोनों में कलह छिड़ गया। कलह इतना बढ़ा कि जय ने विजय को शाप दे दिया कि तू धन नहीं छोड़ रहा है, अतः तुम ग्राह हो जाओ। शाप सुनकर विजय ने भी कहा—तू मदांध हो गया है, अतः तुम गज बन जाओ। इसके बाद 'वराहपुराण' कहता है :

गण्डक्यामेव सञ्जातो ग्राहः पूर्वस्मृतिर्द्विजः।
त्रिवेणी-क्षेत्र-मध्ये तु जयोऽभूद्‌ महान् गजः ॥[2]

एक समय त्रिवेणी-क्षेत्र के जंगल से वह गजराज बहुत-सी हथिनियों के झुंड के साथ आकर त्रिवेणी में जलक्रीड़ा करने लगा। इसी बीच पूर्वविरोध के कारण ग्राह ने गजेन्द्र को

---

१. मरुत्त और तृणविंदु दोनों वैशाली के राजा थे।
२. वराहपुराण, १४४।१४२।

जा पकड़ा और दोनों में भयानक युद्ध होने लगा। दोनों के युद्ध से त्रिवेणी के जलचर क्षुब्ध हो उठे। तब वरुण ने भगवान् नारायण की उपासना की, जिससे स्वयं विष्णु उपस्थित होकर सुदर्शनचक्र से ग्राह का मुख विदारण कर दिया :

सुदर्शनेन चक्रेण ग्राहास्यं समपाटयत् ।
क्षिप्तं पुनः पुनस्तत्तु शिला-सङ्घट्टयद् धरे ॥
सङ्घट्टनात्तु चक्रस्य शिलाश्चक्रेण लांक्षिताः ।
बाहुल्येन बभूवुर्हि तस्मिन् क्षेत्रे परे मम ॥
वज्रकीटैश्च ज्ञातानि सन्ततानि विलोकय ।
न सन्देहस्त्वया कार्य-स्त्रिवेणीं प्रति सुन्दरि ॥
त्रिवेणी-क्षेत्र-महिमा एवं ते परिकीर्त्तिता ॥[1]

गजेन्द्र-मोक्ष की कथा 'वामन पुराण' के ८५ वें अध्याय में भी वर्णित है, जिसका संकेत भी गंडकी के इस त्रिवेणी तीर्थ की ओर ही है। त्रिवेणी के पार्श्व में स्थित पर्वत को त्रिकूट कहा गया है, जिसका एक शिखर स्वर्ण का, दूसरा रजत का और तीसरा वैदूर्य का बतलाया गया है, और कहा गया है कि धर्मात्माओं के अतिरिक्त ये शिखर दूसरे को दिखाई नहीं पड़ते। स्वर्ण शिखर पर आदित्य का, रजत पर सोम का और नील वैदूर्य पर ब्रह्मा का वास बतलाया गया है। इसी त्रिकूट के पृष्ठ भाग में त्रिवेणी-सर का उल्लेख किया गया है, और कहा गया है :

तस्मिन् सरसि दुष्टात्मा निगूढोऽन्तर्जलेशयः ।
आसीद् ग्राहो गजेन्द्राणां दुराधर्षो महाबलः ॥१९॥

वराह पुराण के अध्याय १४४ के श्लोक १५८-१५९ में त्रिवेणी को 'सुदर्शन तीर्थ' भी कहा गया है। नारायण भगवान् ने कहा है कि जब मैं शालग्राम क्षेत्र (मुक्तिनाथ क्षेत्र) में स्थित था, तब 'त्रिजलेश' ने मेरी स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर मैंने इस क्षेत्र में अपना सुदर्शन फेंका। मेरा चक्र जहाँ पहले गिरा, वह स्थान सुदर्शन-तीर्थ नाम से अभिहित हुआ :

शालग्रामपरे क्षेत्रे यदाहं सुभगे स्थितः ।
तत्र गत्वा जलेशेन स्तुतोऽहं वसुधे भृशम् ।
ततो भक्तकृपावेशात् क्षिप्तवांस्तत् सुदर्शनम् ।
प्रथमे पतितं यत्र तत्र तीर्थं ततोऽभवत् ॥

'वराह पुराण' के अध्ययन से पता चलता है कि त्रिवेणी क्षेत्र के दक्षिण भारत-नेपाल सीमा के पास गंडकी के किनारे 'गोनिष्क्रमण तीर्थ' था और इसीके पास 'कोटिवट तीर्थ' भी था। इसीके पास पंचनद नामक क्षेत्र था, जहाँ पंचशिलाएँ स्थित हैं। इसीके पास दो ब्रह्म-पदों के चिह्न हैं, जो एक कुंड की शिला पर हैं। उर्ध्व कमल नाल के ऊपर विष्णु-

---

१. वराह पु०, अध्या० १४४, श्लोक १५१ से १५४।

पद अंकित है। इसके बाद ब्रह्मपद नामक गुह्यक्षेत्र है, जिसके पश्चिम भाग में एक धारा गिरती है। यहाँ गंडकी के वायव्य दिशा में कोटिवट नामक तीर्थ है। इस प्रकार के उल्लेख निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है :

अस्ति पञ्चनदं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
मन्न पूर्वेण पार्श्वेन दृढाः पञ्चमहाशिलाः ॥३६॥
मम पूर्वां दिशमाश्रित्य तत्र ब्रह्मपदद्वयम् ।
मध्ये तु तस्य कुण्डस्य शिलाविस्तीर्ण-संज्ञिता ॥३७॥
उर्ध्वं नाल-परीणाहं तत्र विष्णुपदं मम ।
तत्र स्नानन्तु कुर्वीत पञ्चरात्रोषितो नरः ॥३८॥
ततो ब्रह्मपदं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम ॥४०॥
यत्र धारा पतत्येका पश्चिमां दिशमाश्रिता ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत एक रात्रोषितो नरः ॥४१॥
अस्ति कोटिवटं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ॥४४॥
पञ्चक्रोशं ततो गत्वा वायव्यां दिशि संस्थितः ।
तत्र स्नानन्तु कुर्वीत षष्टकालोषितो नरः ॥४५॥

इस 'कोटिवट' तीर्थ को 'तीर्थकोटि' भी कहा गया है और महाभारत के साथ 'पद्मपुराण' (स्वर्ग खंड, अध्याय ३८) भी इसी बात को उद्धृत करता है और कहता है कि यहाँ कूर्मरूप धारण करके कोई असुर 'तीर्थकोटि' को चुरा ले गया था, जिसका उद्धार विष्णु ने किया था :

तत्र कोटिस्तु तीर्थानां विश्रुता भरतर्षभ ।
कूर्मरूपेण राजेन्द्र ह्यसुरेण दुरात्मना ॥१२०॥
ह्रियमाना हृता राजन् विष्णुना प्रभविष्णुना ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत तीर्थकोट्यां युधिष्ठिर ॥१२१॥
महा०, वन पर्व, अध्या० ८४ ।

त्रिवेणी से १० मील दक्षिण में पंचनद है और वहाँ कनहा (कर्णशा), मनहा (मनसा), सोनहा (स्वर्णशा), पंचनद तथा त्रिवेणी—इन पाँच धाराओं का संगम है। कनहा, मनहा और सोनहा ये धाराएँ जब सम्मिलित हो जाती हैं, तब इनका नाम 'तमसा' पड़ जाता है। उक्त तीर्थ इसी क्षेत्र में पड़ते हैं। यहाँ गंडकी तथा पंचनद के पूर्वी पहाड़ी का नाम 'सोमेश्वर पर्वत' है, जिसे वराह पुराण 'त्रिकूट' भी कहता है और इसके अरण्य का बड़ा ही लुभावना वर्णन करता है। इसी पर्वत के पश्चिमी भाग से और गंडकी के पूर्व भाग से 'हरहा' नदी की धारा दक्षिण में, मोतीहारी जिले में, चलती है, जिससे सिकरहना (बूढ़ी-गंडक) नदी बनती है। इसी नदी का प्राचीन नाम 'विशल्या' अथवा 'विशाला' है,

जो प्राचीन काल में आधुनिक 'वाया' नदी की धार से वैशाली नगर के पास से बहती थी। इस सोमेश्वर क्षेत्र के कई तीर्थों का वर्णन महाभारत, पद्मपुराण तथा वराह पुराण करते हैं।

इस प्रकार, हमने देखा कि गंडकी के त्रिवेणी-क्षेत्र में देविका-संगमतीर्थ, पुलस्त्य और पुलह का आश्रम, ब्रह्म-तनया (चक्रा) संगम, कोटि-वटतीर्थ, और्वआश्रम, गोनिष्क्रमणतीर्थ, गोस्थलक तीर्थ, पंचनद तीर्थ, ब्रह्मपद तीर्थ, विष्णु सरोवर, अनंगादेवी तीर्थ, कालिका तीर्थ, त्रिजलेश्वर तीर्थ, सुदर्शन तीर्थ, गजोद्धार तीर्थ आदि इतने पुण्य स्थल हैं कि यहाँ 'वाल्मीकि-आश्रम' जैसे नये तीर्थ स्थापित करने का प्रयास उपहासास्पद-सा लगता है। स्वयं 'त्रिवेणी' इतनी पुण्यमयी है कि वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ बतलाई गई है—**त्रिवेणी सा महा-पुण्या देवानामपि दुर्लभा।** अतः गंडकी के त्रिवेणी क्षेत्र में वाल्मीकि-आश्रम की परिकल्पना सर्वथा निराधार, अतएव अनावश्यक है।

बिहार में गंडकी का प्रवेश और प्रवाह-मार्ग :

पूर्वोक्त पंचनद-क्षेत्र के पास गंडकी नदी भारतीय सीमा तथा इसके बिहार-प्रदेश के चम्पारन जिले के पश्चिम-उत्तर कोण की भूमि में प्रवेश करती है। इस स्थान को 'भैंसालोटन' कहते हैं; क्योंकि पहले यहाँ जंगली भैंसे बड़ी तादाद में विचरते रहते थे। आजकल इसका नाम 'वाल्मीकि-आश्रम' रखा गया है और कुछ लोगों ने यह कहने की अक्षम्य धृष्टता की है कि यहीं वाल्मीकि का आश्रम था और राम के द्वारा निर्वासित होने पर सीता ने इसी स्थान पर कुश और लव को जन्म दिया था। इसी भैंसालोटन के पास गंडकी में बाँध बना है, जिससे दोनों ओर नहरें निकाली गई हैं। यहाँ गंडकी के पश्चिम (दाहिने किनारे) नेपाल-राज्य की भूमि है और पूर्व (बाएँ भाग) में बिहार-प्रदेश के चम्पारन जिले का क्षेत्र है। पंचनद-संगम गंडकी के वाम पार्श्व में ठीक नेपाल और चम्पारन की सीमा पर है। संगम के बाद गंडकी पश्चिम मुड़ती है और इसको आजकल कुछ लोग 'त्रिवेणी' कहते हैं। इसी मोड़ पर गंडकी नदी में बाँध बना है। इस बाँध-स्थल तक गंडकी का जलग्रह-क्षेत्र १४,६०० वर्ग मील है। वर्षा ऋतु में बड़ी बाढ़ के आने पर गंडकी यहाँ ८,५०,००० घन फुट जल का निकास करने की क्षमता रखती है। इसमें सन् १९५४ ई० में ७००००० घन फुट प्रति सेकेंड जल का निस्सरण हुआ था। किंतु, इसका सबसे न्यूनतम जल-निस्सरण सन् १९५८ ई० में १०००० घन फुट तक प्रति सेकेंड रहा था। इस बाँध के जल के निकास-मार्ग की लंबाई २,७४९ फुट है और बाँध के शिखर की सतह ३४७·०० फुट ऊँची बनी है। जल-निकास वाले द्वार ६०-६० फुट चौड़े बनाये गये हैं। इस बाँध से चार मुख्य नहरें—पश्चिमी किनारे दो और पूर्वी किनारे दो निकाली गई हैं, जिनमें दो नहरें तो प्रायः नेपाल की भूमि की सिंचाई के लिए हैं। नेपाल की पश्चिमी नहर सिर्फ १८·४ मील लंबी है, जिससे वार्षिक सिंचाई ३१·००० एकड़ होगी। नेपाल की पूर्वी नहर की लंबाई ५० मील है और यह नेपाल तराई की कई छोटी नदियों को तथा त्रिभुवन-राजपथ को लाँघती अन्त में बागमती नदी में गिराई गई है। इस नहर से वीरगंज तथा कलैया-क्षेत्र की भूमि का सिंचन होगा। इसकी वार्षिक सिंचाई ८७·०००

एकड़ होगी। गंडकी की दूसरी पश्चिमी नहर से सिंचाई का कार्य उत्तर प्रदेश के गोरखपुर-देवरिया तथा बिहार के सारन जिले के खेतों का होगा। फिर, पूर्वी तट की जो दूसरी नहर है, उससे चम्पारन जिले और मुजफ्फरपुर जिले के खेत सींचे जायेंगे। इस बाँध योजना पर भारत-सरकार ने २ करोड़ २३ लाख रुपये का व्यय किया है।

इस बाँध से थोड़ी दूर पश्चिम जाकर गंडकी दक्षिण की ओर मुड़ती है। इसके प्रथम मोड़ से लगभग ११$\frac{1}{2}$ मील तक गंडकी का दाहिना तट नेपाल की भूमि से सटता है और पूर्वी तट चम्पारन जिले से। अर्थात्, यहाँ गंडकी ११$\frac{1}{2}$ मील तक चम्पारन और नेपाल की सीमा बनकर बहती है, तत्पश्चात् उत्तर-प्रदेश और बिहार की सीमा-रेखा बनकर बहने लगती है। यहाँ से गंगा-संगम तक गंडकी का प्रवाह-मार्ग लगभग १७० मील पूर्व-दक्षिण कोण में प्रवाहित होता है। उत्तर प्रदेश की गोमती से आरंभ करके महानंदा नदी तक की सभी हिमालयीय नदियाँ पूर्वोत्तर कोण में धारामार्ग बनाती हुई बहती हैं, जिससे सिद्ध है कि अपने मुहाने पर ये निरंतर मिट्टी भरती गई हैं और पूर्व की ओर हटती गई हैं। पूर्व-दक्षिण कोण में बहती हुई गंडकी के दोनों किनारों में प्राचीन विदेह, कोसल, मल्ल तथा वज्जि की गौरवमयी भूमि पड़ती है। इसी गंडकी के तटों में उक्त पुरातन राज्यों के माध्यम से प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति पल्लवित-पुष्पित हुई थी। फिर, इसी गंडकी के तट पर संसार का प्राचीन वृज्जियों का प्रथम गणतंत्र राज्य स्थापित हुआ था। दक्षिण समुद्र के तट से कैलास तक जाने का एक मार्ग गंडकी के तट से ही गुजरता था। दक्षिण भारत से कैलास जाने के जितने मार्ग हैं, उनमें सबसे छोटा यही मार्ग था।

उक्त बाँध (त्रिवेणीघाट) के पूर्वी भाग में अनेक पवित्र तीर्थ हैं और कच्चे पत्थर का पहाड़ है, जो अति सघन वनों से भरा हुआ है। इसके आगे बारह मीलों तक 'बनरी वन' है। महाभारत के सभा पर्व के २०वें अध्याय में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण के साथ पांडवों ने गिरिव्रज के लिए गंडकी-प्रदेश से होकर यात्रा की थी। वे कुरु-जांगल से हिमालय की तलहटी होते मिथिला (चम्पारन) जिले तक आये और यहाँ से दक्षिण मुड़कर गिरिव्रज गये। कुरु-जांगल और गिरिव्रज को जोड़नेवाला यह यात्रा-पथ अन्य मार्गों से छोटा पड़ता है। वे कुरुजांगल से चलकर पहले पद्मसरोवर (हरद्वार) आये और तब उन्होंने कालकूट पर्वत को पार किया। फिर गंडकी, महाशोण और सदानीरा को लाँघते हुए वे पूर्व कोसल आये थे। यहाँ गंडकी और सदानीरा को अलग-अलग बतलाया गया है और गंडकी भी किसी दूसरी नदी को कहा गया है। किंतु, इतना तो स्पष्ट है कि सदानीरा और गंडकी—दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। अमरकोश ने भी सदानीरा की पहचान करतोया नदी के रूप में की है—**करतोया सदानीरा, बाहुदा सैतवाहिनी**। मेरी समझ से सदानीरा की पहचान 'शारदा' से होनी चाहिए। फिर, तब गंडकी और महाशोण की पहचान किन नदियों से की जाय, यह पता नहीं चलता। यहाँ महाभारतकार की भौगोलिक भ्रम भी मालूम पड़ता है; किंतु आज के संदर्भ में उस समय के नदी-नामों के संबंध में कोई निश्चित धारणा कैसे संभव है?

गंडकी जब चम्पारन जिले के पश्चिमी-उत्तरा कोण का सामा से अग्निकोण में प्रयाण करती है, तब 'सत्तार' घाट के पास दो धाराओं में बँटकर फिर 'पियुराघाट' के पास एक हो जाती है। उक्त दो धाराओं में से पूर्वी धारा के तट पर चम्पारन जिले का 'ठाढ़ी' गाँव ज़ाने कबसे कायम है। गंडकी के इस भाग में घड़ियालों की बहुत बड़ी तादाद है, जो अक्सर धाराओं और पुलिनों पर रेंगते नजर आते हैं। गंडकी की मुख्य धारा ठाढ़ी गाँव के दक्षिण आकर रामपुरवा और लक्ष्मीपुर गाँवों के पश्चिमी भाग से सर्वप्रथम दक्षिण-पश्चिम में मुड़ जाती है, फिर उत्तर प्रदेश के पँड़रौना तहसील के 'अनहरिया' गाँव तक उसी दिशा में बहती है। यहाँ से जब पुनः पूरब की ओर मुड़कर आगे चलती है, तब बिहार और उत्तर प्रदेश की सीमा बनकर अग्निकोण में बहने लगती है। इसी अग्नि कोण में बहती यह चम्पारन जिले के बलुआ-बतसरा के नैऋत्य कोण में 'मदनपुर' गाँव को पहुँचती है। मदनपुर से आगे बढ़ने पर गंडकी के दाहिने किनारे देवरिया जिले का 'गँधवा' गाँव मिलता है और कुछ दूर बढ़ने पर यह 'छितौनी घाट' आती है, जहाँ इसके किनारे चम्पारन का 'बगहा' नामक रेलवे स्टेशन है। रेलवे स्टेशन के दक्षिण 'डोमवलिया' गाँव है, जहाँ बहुत-से प्राचीन भग्नावशेष के चिह्न हैं। गंडकी बराज से छितौनीघाट तक गंडकी बिहार में लगभग अपनी ३० मील की यात्रा पूरी करती है।

छितौनी घाट (बगहा रेलवे स्टेशन) के उत्तर ऊपरी भाग में गंडकी के बाएँ किनारे चम्पारन की कई छोटी नदियाँ अपने जल से गंडकी को समृद्ध करती हैं। सोमेश्वर पर्वत के पश्चिमी भाग से, पंचनद के उद्गम के पास से ही, हरहानदी पहाड़ को फोड़ती हुई अग्नि कोण में बहती है और घाटी बनाती हुई सोमेश्वर पर्वत को दो भागों में बाँटती है। इसी हरहा के उद्गम-क्षेत्र के दक्षिण भागवाले पर्वत-खंड की ये नदियाँ हैं, जो गंडकी में गिरती हैं। इस पर्वत-खंड की नदियों में पहली नदी 'सोनाह' है, जो पश्चिम चलकर बराज के ऊपर ही त्रिवेणी में प्रवेश करती है। हरहा नदी के दाहिने भाग से निकलने वाली सोनाह 'काला पानी' स्थान से होती पश्चिमोत्तर कोण में दौड़ती है, और त्रिवेणी में 'बराज' के पास ही प्रवेश कर जाती है। किंतु, 'रोहुआ' नामक निर्झरिणी पहाड़ी से चलकर पहले नैऋत्य कोण में चलती है और फिर पश्चिम दिशा में बहने लगती है। इस प्रकार, जब यह 'दरुआबारी' के वायव्य कोण में आती है, तब एकाएक नैऋत्य कोण में प्रयाण करने लगती है। इस क्रम में 'रोहुआ' नदी लक्ष्मीपुर तथा रामपुरवा के मध्य में पड़ती है। यहाँ इसके दाहिने किनारे रामपुरवा तथा बाएँ किनारे लक्ष्मीपुर है। यहाँ यह और कुछ दूर नैऋत्य कोण में बहने के बाद दक्षिण दिशा में प्रवाहित होने लगती है और 'बाल गंगवा' गाँव के पास गंडकी की प्राचीन तथा पूर्वी धारवाली छाड़न से मिल जाती है, जो इसी स्थान पर अलग होती है। यह प्राचीन धार नेपाल-चम्पारन की सीमा बनकर बहती हुई गंडकी से निकलती है। इसके बाद दक्षिण चलने पर ही गंडकी के दोनों भाग में उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा लगने लगती है।

उपर्युक्त 'दरुआबारी' गाँव भैंसालोटन-बराज से दक्षिण पाँच मील दूर है और बराज से रामनगर आनेवाले मार्ग पर है। कुछ लोग 'दरुआबारी' का अर्थ 'दरबार-द्वार' बतलाते हैं। इस गाँव के उत्तर भाग में कुछ भग्नावशेष के चिह्न आज तक हैं। कहा जाता है कि यहाँ ५२ गढ़ और तिरपन बाजार थे। इसीलिए दरुआबारी का एक नाम 'बावनगढ़ी' भी है। पहले 'विन्सेंट स्मिथ' ने 'दरुआबारी' को ही 'रामपुरवा' होने का अनुमान किया था, जहाँ 'फाहियान' और 'ह्वेनसांग' के जाने का भी उल्लेख मिलता है। कुछ लोग उसे सिमराँव-राजवंश के किसी राजा का गढ़ कहते हैं। किंवदन्ती यह भी है कि दक्षिण बिहार के भीम सिंह तथा उनके भाइयों ने आकर यहाँ राज्य स्थापित किया था और गढ़ बनवाये थे। किंतु, इस क्षेत्र के नटों के एक लोकगीत से मालूम होता है कि 'जासोर' और 'टोटर' नामक दो राजभ्राताओं की राजधानी 'दरुआबारी' में थी। जो हो, पर यह एक प्राचीन राजधानी तथा ऐतिहासिक स्थान अवश्य है, जो 'रोहुआ' के तट पर बहुत काल से बसा हुआ है। इसी प्रकार इसके पश्चिमी किनारे रामपुरवा भी प्राचीन स्थान है, जो अशोक-स्तंभवाले 'रामपुरवा' से भिन्न है।

सोनाह और रोहुआ नदियों से अलग चम्पारन की तीसरी नदी 'मनोर' है, जो 'पचरुखा' के ऊपर गंडकी में गिरती है। 'मनोर' कुछ बड़ी नदी है। यह हरहा नदी के नैऋत्य कोण के पार्वत्य-प्रदेश से प्रवाहित होती है और 'दरदरी' तथा 'पिपरा' गाँवों से सटती दक्षिण आती है। इसके बाद 'भवसान' नामक नदी 'गरदी' गाँव के पास से प्रवाहित होती है, और दक्षिण दिशा में उतरती 'छितौनी घाट' से तीन मील उत्तर एक तीसरे 'रामपुरवा' नामक गाँव के पास गंडकी के वाम पार्श्व में प्रवेश करती है। यह पूर्व कथित तीनों नदियों से बड़ी है। इसके बाद 'कोसी' नामक पाँचवीं नदी भी गंडकी के बाएँ भाग में मिलती है। यह अपने उद्गम-स्थान के पास बाएँ भाग के दो तथा दाहिने भाग के चार स्रोतों का जल ग्रहण कर दक्षिण की ओर आती है तथा 'बगहा' और 'रतनमाला' नामक गाँवों के अग्निकोण में गंडकी में गिरती है। चम्पारन जिले की ये पाँच छोटी-छोटी निर्झरिणियाँ गंडकी के वाम पार्श्व में प्रवेश करती हैं। इनके अतिरिक्त फिर गंडकी के संगम तक दूसरी कोई ऐसी नदी नहीं है, जो इसके जल में वृद्धि करती हो। इन सब का परस्पर मिलन बिहार में तीस-बत्तीस मील तक के गंडकी प्रवाह-पथ में ही हो जाता है।

उपर्युक्त कहानी भारत-भूमि में गंडकी के ३० मील के प्रवाह-पथ के पूर्वी किनारे की है। इतनी दूरी तक के पश्चिमी किनारे की बात जानने के लिए पुनः गंडकी के बराज-स्थल की धारा के पास आपको चलना पड़ेगा। यह पहले संकेत किया गया है कि भारत के उच्चस्तरीय नदी-जल-प्रवाहों में गंडकी का प्रवाह-स्तर प्रथम कोटि में परिगणनीय है। गंडकी जहाँ बिहार की सीमा को छूती है, वहाँ उसका प्रवाह-गर्भ बहुत ही पथरीला है और वहाँ उसकी धारा बड़ी तीव्र है। जल का भांडार इतना अधिक है कि भारी बोझ वाली बड़ी-बड़ी नावें इसकी धारा में आसानी से माल-असबाब का परिवहन कर सकती हैं।

किंतु, धारा के भीतर नुकीले और बड़े-बड़े शिलाखंडों के जमाव के कारण विकराल आवर्त्तों का चक्करदार घुमाव इतना तीव्र है कि नावों का चलना बिलकुल असंभव हो जाता है। बराज से ऊपर नेपाल की गंडकी में २० मील तक छोटी-छोटी नावों के योग्य सुविधा-मूलक प्रवाह प्राप्त है; किंतु इस भाग में भी उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण नावों का गमनागम नहीं हो पाता है। किंतु बराज के बन जाने पर और नदी-गर्भ से बड़े-बड़े पत्थरों को निकाल देने से स्थिति में थोड़ा अन्तर आना स्वाभाविक है। इस स्थल के शिला-खंड-मंडित धारा-प्रवाह का उल्लेख 'वामनपुराण' (अध्या० ५८/५) के निम्नांकित श्लोक में देखा जा सकता है :

क्षीरोदजलवीच्यग्रै धौतामलशिलातलः ।
उत्थितः सागरं भित्वा देवर्षिगण-सेवितः ॥

इससे स्पष्ट है कि इस स्थल का गंडकी जल प्राचीन काल से ही स्वच्छ, शीतल, अतिशय प्रवाहमय और प्रस्तर-खंडों से भरा हुआ था।

इस स्थान पर गंडकी में कभी-कभी अकस्मात् ऐसी भयंकर बाढ़ आ जाती थी कि नेपाल के 'लुम्बिनी-अंचल' की भूमि तथा गोरखपुर जिले के 'चन्दन' तक के क्षेत्र को गंडकी आप्लावित कर देती थी। इसकी यह बाढ़ कई बार तो 'रोहिन नदी' के गर्भ तक पहुँच गई है। इसकी भीषण बाढ़ का जल-विस्तार गोरखपुर जिले के 'डोमा खंड' के पास बहनेवाली छोटी गंडकी के गर्भ तक चला गया है और 'झरही' तथा 'बंसी' नदी के धारा-मार्ग से फिर गंडकी में लौट आता है। 'बंसी' नदी का संगम 'चम्पारन' जिले के बेतिया उपनगर के नैऋत्य कोण में गंडकी के दाहिने भाग में पड़ता है। यहाँ बाढ़ के दिनों में बंसी अपना जल गंडकी में डालती है और कभी-कभी उस मुहाने से गंडकी अपना जल बंसी की धारा में फेंकती है और इस मिलन से जो एक तीसरी नदी बनती है, वह 'सीतानारायणी' नाम से अभिहित होती है। अतः, यह निश्चित है कि प्राचीन काल में बंसी और सीतानारायणी की धार के मिलने से ही गंडकी रूपायित होती और बहती थी। कुछ लोग तो 'झरही' को भी गंडकी की ही प्राचीन धार बतलाते हैं और कहते हैं कि अति प्राचीन काल में गंडकी सारन जिले के दरौली गाँव के पास 'राप्ती' नदी से मिलकर गंगा से संगम करती थी। 'गोरखपुर-गजेटियर'[1] में तो लिखा गया है कि देवरिया जिले के 'रामभर' ताल से निकलनेवाली 'खनुआ' नदी भी कभी-कभी गंडकी की बाढ़ का पानी ग्रहण करती थी और इस प्रकार गंडकी नदी देवरिया जिले के आधे पूर्वी भाग पर अपना प्रभाव फैलाती थी। किंतु छितौनी घाट के पास रेलवे पुल के बनने से तथा रेलवे सड़क की ऊँचाई के कारण गंडकी के पानी का फैलाव देवरिया जिले में कुछ कम हो गया। किंतु, गंडकी ऐसी उच्छृंखल नदी है कि वह इन रुकावटों की कभी परवाह नहीं करती।

चम्पारन जिले का 'बगहा' गाँव गंडकी के पूर्वी किनारे, बगहा-रेलवे स्टेशन से डेढ़-दो मील दक्षिण है। इसीके सटे दक्षिण भाग में गंडकी के तट पर 'रतनमाला' गाँव है।

१. भाग ३१, प्रकाशन-वर्ष १९०९ ई०, पृ० ६-७।

गूलर के पंचांग द्वारा सर्वरोगों की चिकित्सा के विशेषज्ञ तथा हिन्दी के साहित्यिक इतिहास के अन्यतम हस्ताक्षर पंडित चन्द्रशेखरधर शर्मा इसी गाँव के निवासी थे। इन्होंने 'गुलर-गुण-विकास' नामक पुस्तक भी लिखी थी। वगहा का रेलवे-स्टेशन 'डोमवलिया' नामक गाँव के क्षेत्र में है। गंडकी तट के डोमवलिया, वगहा तथा रतनमाला—ये तीनों ग्राम प्राचीन हैं और भग्नावशेषों से युक्त हैं। वगहा और रतनमाला के पूरव 'वरगांव' और 'पिपरिया' नामक गाँवों में भी बहुत-से प्राचीन स्मारक के चिह्न हैं, जिनका पुरातात्त्विक अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है।

वगहा से गंडकी नदी थोड़ा-सा अग्निकोण लिये दक्षिण दिशा में चलती है और अपने पूर्वी किनारे रजवतिया, चंदरपुर, वकवा, पतिलर, रतवल आदि गाँवों को निहारती हुई वहती है। ये सभी ग्राम प्राचीन ध्वंसावशेषों से युक्त हैं। गंडकी नदी का हाजीपुर से चलनेवाला पूर्वी तटवंध उत्तर में 'रतवल' तक ही है। पश्चिमी तटवंध सोनपुर (सारन जिला) से आरंभ करके सारन जिले के 'सिपाय' स्थान के कृषि-फार्म तक है। यहीं पहले 'सीतानारायणी' से एक नहर भी निकाली गई थी। वंगाल-विहार के शासक नवाब अलीवर्दी खाँ के अंतिम शासन-काल में विहार का सूवेदार 'मीरकासिम' था। प्रथम-प्रथम मीरकासिम ने ही गंडकी के किनारों में तटवंध की योजना वनाई थी। उसने अपने नायव धौंसी राय के जिम्मे तटवंधों के तैयार करने का भार सुपुर्द किया था। धौंसी राय सारन जिले के 'गरखा' के आस-पास के किसी गाँव के रहनेवाले थे। गंडकी के दोनों तटवंधों को तैयार करने में मीरकासिम ने तत्कालीन एक लाख रुपए व्यय किए थे; फिर भी राजनीतिक अस्त-व्यस्तता के कारण तटवंध अधूरे रह गए थे। इस अधूरे तटवंध को अँगरेजी-शासन ने सन् १७६६ ई० में पूरा किया था। सन् १७६६ ई० में अँगरेजी सेना ने वेतिया के राजा युगलकेश्वर सिंह को परास्त करके चंपारन जिले पर पूरी तरह अधिकार कर लिया और तव ३५,६४० रुपए व्यय करके गंडक-तटबंध का काम सन् १७६६ ई० में पूरा किया था, जिससे जनता समझे कि अँगरेज भारतीयों के हितैषी हैं। किंतु, थोड़े ही दिनों वाद इन ३५,६४० रुपयों में से ३४,४३२ रुपए गंडकी-तटवंध के पास वसनेवाले गाँवों से अँगरेजों ने वसूल कर लिया था। इसके पश्चात् सन् १८२४ ई० में और फिर सन् १८३२ ई० में ऐसी वाढ़ आई कि गंडकी का पश्चिमी तटवंध अनेक स्थानों में पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गया। तव सारन जिला-वोर्ड ने फिर सन् १८३४ ई० में जनता से पैसे वसूल करके तटवंध को ठीक कराया था। किंतु फिर सन् १८७७ ई० में ऐसी वाढ़ आई कि दोनों किनारों के तटवंध जगह-जगह टूटकर वह गए। इसके वाद तटवंधों पर पुनः दो लाख व्यय किये गए और तव इसे दुरुस्त किया गया। इन तटवंधों के कारण गंडकी नदी की धारा नियंत्रित हो गई थी।

उपर्युक्त दोनों तटवंधों के भीतर भी चंपारन जिले के कई गाँव गंडकी की पेटी में हैं। चंपारन का संपूर्ण 'धनहा' थाना गंडकी नदी के पश्चिमी किनारे तटवंध की गोद में है। वरसात में इस थाने का संबंध अपने जिले से प्रायः टूट-सा जाता है। सन् १६७१ ई० में

गंडकी में ऐसी बाढ़ आई कि कई गाँव घुल-पुछ गए और बड़ी तादाद में जान-माल की क्षति हुई थी और सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई थी। गंडकी के पूर्वी तटबंध के भीतर चंपारन के पटखौलिया, भरौलिया, तसरहिया, करहिया, बसउली, मानपुर, कोअर, नवलपुर, धरहवा, कौलापुर, भरवलिया, मदारपुर, चौमुखा, मानधातापुर, भवानीपुर, मंगलपुर, श्रीनगर, भगवानपुर-सूरजपुर, गंभीरपर, बैंजुआ, डीह भरउवा, करमैनी, छरकी, शामपुर, कोटरहा, बरहरवा, सखना, पछरिया, गोपालपुर, डुमरिया, झँझरिया, ढेकहा आदि गाँव बसते हैं। गंडक बराज से चंपारन की जो नहर निकल रही है, वह बड़ी नहर इन्हीं गाँवों की वगल से वेतिया से वैशाली-क्षेत्र होते समस्तीपुर के दक्षिणी इलाके तक ले जाई जा रही है। फिर, इसी पूर्वी तटबंध के भीतर गंडकी के किनारे मुजफ्फरपुर जिले के वँगरा निजामत, सारंगपुर, हुसेपुर, सोहागपुर, डुमरी, लछीदियारा, लेछी डुमरी, चितामनपुर, तेजा डुमरी आदि गाँव स्थित हैं। ये सभीं ग्राम पश्चिमोत्तर दिशा से अग्निकोण में बहनेवाली गंडकी के बाएँ भाग में क्रमशः बसे हुए हैं। पश्चिमी तटबंध के भीतर गंडकी की पेटी में सारन जिले के गोपालगंज उपमंडल के वे सभी गाँव हैं, जो सारन नगर के पूर्वी किनारे हैं। इनके अतिरिक्त सारन जिले के बरौली थाने के उत्तरी भाग के दियारा रूपनछाप, हसनपुर, तथा सलेमपुर स्थान हैं। फिर दिघवा-दुबौली थाने के नेहपुर, बनजरिया और अमरपुर गाँव भी पश्चिमी तटबंध की चपेट में आते हैं।

यह पहले कहा गया है कि गंडकी का पूर्वी तटबंध चंपारन जिले के पतिलर और रतबल तक उत्तर में है। पतिलर और रतबल से गंडकी नदी पूर्व-दक्षिण कोण में चलती है और क्रमशः बिशनपुरवा, भरौली, भगहा, बसवरिया, नवलपुर गाँवों से होती पिपरहिया आती है। पिपरहिया में टील्हे का वहुत पुराना भग्नावशेष है और यह प्राचीन स्थान ज्ञात होता है। पिपरहिया के बाद अग्निकोणगामी तटबंध के क्रोड में गंडकी के बाएँ किनारे कौलापुर और भटवलिया गाँव मिलते हैं। इसी भटवलिया से पूर्वी भाग में वेतिया-उपमंडल का थानाग्राम 'योगापट्टी लउकरिया' है। योगापट्टी में बहुत-से प्राचीन अवशेष हैं। इसके पश्चिम में गंडकी नदी अपनी एक उपधारा बनाती है। वगहा से ही गोविंदपुर तक गंडकी छिन्न धाराओं में बहती आती है और बीच-बीच में दियारा बनाती गई है। योगापट्टी के पास ऊँची जमीन होने से तटबंध में फाँक है। योगापट्टी से दक्षिण-पूर्व चलने पर गंडकी के वाम पार्श्व में वरहरवा, भवानीपुर तथा मंगलपुर गाँव में मिलते हैं। मंगलपुर के दक्षिण 'पतजिरवा' गाँव विलकुल गंडकी के पूर्वी तट पर बसा है, जो वेतिया से पश्चिम सात मील दूर है। पतजिरवा का प्राचीन मंदिर दुर्विजय सिंह नामक एक व्यक्ति ने बनवाया था जो अपने क्षेत्र का वड़ा ही प्यारा जमींदार था। यह एक युद्ध में भारी पराक्रम दिखाने के वाद मारा गया था। उसकी साध्वी पत्नी अपने पति की चिता में सती हो गई थी। तब से उस तप्पे के लोग अपने नेता के शोक में न खाट पर सोते थे या न रहने के लिए पक्का मकान वनवाते थे, किंतु कालचक्र ने अब इस नियम को तोड़वा दिया है। इस पतजिरवा और डुमरिया के बीच में पूर्वी तटबंध नहीं है। इसी तटहीन भाग से गंडकी के राजघाट से

सड़क बेतिया जाती है। यह मार्ग पश्चिम की ओर से देवरिया जिले के तमकुही से चलकर तुर्कवलिया आता है और राजघाट में गंडकी को पारकर बेतिया पहुँचता है।

पतजिरवा के बाद गंडकी के बाएँ किनारे चंपारन जिले के प्राचीन गाँव 'गंभीरपुर' तथा 'बैजुआ' हैं, जहाँ प्राचीन गढ़ों के खँड़हर एवं मंदिर हैं। बैजुआ से पूरब, गंडकी तट-बंध के सटे पूर्व 'नौतन दुबे' नामक प्राचीन गाँव भी ऐतिहासिक स्थान जान पड़ता है। नौतन दुबे के बाद गंडकी जब आगे बढ़ती है, तब इसके वाम पार्श्व में जगदीशपुर, गोरा, डीहभरवा, करमैनी, भगवानपुर, छर्की तथा शामपुर-कोटराहा गाँव बसे हुए हैं। शामपुर-कोटराहा के पास ही बेतिया उपमंडल की सीमा समाप्त हो जाती है तथा छर्की के सामने गंडकी के दाहिने भाग में उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले की सीमा भी समाप्त हो जाती है। इसके बाद गंडकी बिहार-भूमि के भीतर से गुजरने लगती है, जिसके दाहिने भाग में सारन जिले और बाएँ भाग में चंपारन जिले की भूमि बिछी हुई है। सारन जिले के 'रामपुर-टँगराही' एवं 'मठिया' नामक ग्राम सर्वप्रथम गंडकी के दाहिने तट का स्वागत करते हैं।

बेतिया-उपमंडल की सीमा समाप्त कर जब गंडकी का बायाँ तट-बंध मोतिहारी उपमंडल में प्रवेश करता है, तब क्रमशः यह मँझरिया-निजामत, तेजपुरवा, गुंजरवलिया, बरहरवा, घटिया, नगदहा एवं सखवा गाँव को रेंगते हुए पहुँचता है। ये सभी वैसे गाँव हैं, जो प्राचीन भग्नावशेष के चिह्नों को सँजोये हुए हैं। सखवा के बाद गंडकी नदी अग्नि-कोण से थोड़ी दूर के लिए पूर्ववाहिनी होती है। इसी पूर्ववाहिनी धार के वाम पार्श्व में सरेयाँ, नवादा तथा गोविन्दगंज गाँव अपने पुरातात्त्विक अवशेषों के कारण प्रसिद्ध हैं। नवादा-गोविन्दगंज से एक मील उत्तर गोविन्दगंज थाना है। इसी थाने से एक मील पश्चिमोत्तर कोण में प्राचीन स्थान 'साल्हा' है तथा तीन मील सीधे उत्तर विख्यात ऐतिहासिक स्थान 'लौरिया अरेराज' है। इसी लौरिया अरेराज में सम्राट् अशोक द्वारा स्थापित प्रस्तर-स्तम्भ है, जिसकी ऊँचाई ३६½ फुट है। प्रस्तर-स्तम्भ का निचला आधार-भाग ४१.८ इंच तथा शीर्ष भाग का व्यास ३७.६ इंच है। किंतु, शीर्ष भाग टूट गया है, जिससे अनुमान है कि इस पर सिंहमूर्त्ति स्थापित थी। इस पर के खुदे लेख ब्राह्मी-लिपि में है, जिसके अक्षर स्पष्ट हैं और अच्छी तरह पढ़े जाते हैं। इस स्तम्भ पर अशोक के लिखवाये छह शासन-अभिलेख हैं, जिन्हें उसने अपने अभिषेक के २६ वें वर्ष में खुदवाया था।[1] स्तम्भ के उत्तर भाग में १८ पंक्तियाँ और दक्षिण भाग में २३ पंक्तियाँ हैं। इस स्तम्भ से नैऋत्य कोण में एक मील की दूरी पर शंकर महादेव का प्राचीन मन्दिर है, जहाँ बड़ा मेला लगता है। इससे स्पष्ट है कि लौरिया अरेराज अशोक-काल में प्रसिद्ध बौद्ध स्थान था और यह क्षेत्र अपने गौरव के लिए परम प्रसिद्ध था। अपने तीर्थ-यात्रा-प्रसंग में अशोक का यहाँ पड़ाव पड़ा था। इसके इर्द-गिर्द के जिन प्राचीन गाँवों के खंडहरों की चर्चा

1. इस स्तम्भ के लेखों के मूल पाठ तथा उसके हिन्दी-रूपान्तर के लिए लेखक की 'बौद्ध-धर्म और बिहार' नामक पुस्तक (पृ० ३३५ से ३३८ तक) देखिए।

ऊपर में की गई है, वे सभी इसके पश्चिमी भाग में गंडकी के पड़ोस में पड़ते हैं। उक्त सखवा, नवादा तथा गोविन्दगंज में ही वह राष्ट्रीय राजमार्ग गण्डकी को पार करेगा, जो दिल्ली से काठमांडो को जोड़नेवाला प्रसिद्ध राष्ट्रीय राजमार्ग होगा और जो पँड़रौना तथा गोपालगंज से गुजरते हुए गंडकी के किनारे आयेगा।

नवादा-गोविन्दगंज से अग्निकोण में, गंडकी के पूर्वी तट-वंध पर 'संग्रामपुर' नामक एक गाँव है, जो किसी युद्ध-स्थल का स्मारक है। यहाँ तो किंवदंती है कि कुश-लव ने अपने पिता 'राम' के साथ इसी स्थान पर युद्ध किया था। पता नहीं, इस किंवदंती का क्या आधार है? किंतु यहाँ कई प्राचीन भग्नावशेष हैं, जिससे प्रतीत होता है कि किसी राजा की राजधानी यहाँ थी। यहाँ से पुनः गंडकी अग्निकोण-वाहिनी हो जाती है और आगे वढ़ने पर इसके बाएँ किनारे गोपालपुर, सिकन्दरपुर तथा भवानीपुर गाँव मिलते हैं। भवानीपुर में भी पुरातात्त्विक अवशेष दिखाई पड़ते हैं। भवानीपुर के अग्निकोण में डुमरिया, रामपुर खजुरिया तथा हुसेनी नामक गाँव हैं। हुसेनी में भी एक बड़े गढ़ का प्राचीन भग्नावशेष है। हुसेनी के बाद बाएँ तटवंध के किनारे कढ़ान, बैरिया, मँझरिया, ताजपुर, पठखौलिया, ढेकहा आदि गाँव स्थित हैं। ढेकहा में प्राचीन गढ़ का एक भारी टील्हा वर्त्तमान है। लगता है, यहाँ कभी ढेकहा-राजपूतों का शासन-केंद्र था।

उपर्युक्त 'कढ़ान' गाँव से दो-ढाई मील पूर्व में चम्पारन जिले का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'केसरिया' है। आज से छह सौ वर्ष पूर्व गंडकी की धार केसरिया के पास से बहती थी। सातवीं शती के मध्य में चीनी यात्री, ह्वेनत्सांग 'केसरिया' में भी आया था और उसने इसके संबंध में लिखा था—"वैशाली से लगभग ३० मील उत्तर-पश्चिम एक बहुत धनाढ्य और पुराना नगर था, जो पहले से ही उजड़ा पड़ा था। भगवान् बुद्ध ने एक वार कहा था कि 'कभी मैंने यहाँ चक्रवर्त्ती राजा होकर जन्म लिया था।' इसीलिए यहाँ तथागत की स्मृति में एक बृहत् स्तूप बनवाया गया था।" किंतु, चम्पारन के इस क्षेत्र के लोगों में किंवदंती है कि तथाकथित स्तूप का भग्नावशेष राजा 'वेन' के गढ़ का टील्हा है। आजकल यह टील्हा 'देवरा' के नाम से प्रसिद्ध है, जो 'देव-गृह' या 'देव-घरा' शब्द का विकसित रूप है। इस बड़े टील्हे के पार्श्ववर्त्ती टील्हे को 'रनिवास' का भग्नावशेष कहा जाता है। 'देवरा' नामक टील्हे के सम्बन्ध में किंवदंती है कि इसके ऊपरी भाग से लोग 'पाटलिपुत्र' नगर को देखते थे। यहाँ का 'गांगेया ताल' 'राजा वेन' की पट्टमहिषी 'पद्मावती' का स्नान-सरोवर था। किंतु, ऐतिहासिकों का मत है कि रनिवासवाला टील्हा भी किसी बौद्ध मठ का भग्नावशेष है। इस टील्हे के संबंध में 'जनरल कनिंघम' का कहना है कि 'देवरा' नामक स्तूप सन् २०० ई० से ७०० ई० के मध्य कभी बना होगा तथा यह स्तूप किसी अति प्राचीन स्तूप के ऊपर खड़ा किया गया होगा। किंतु, स्तूप-निर्माण के संबंध में कनिंघम का मत ठीक नहीं जँचता है; क्योंकि सन् ६३५ ई० के लगभग जब 'ह्वेनत्सांग' यहाँ आया था, तब उसके बहुत पहले से यह स्थान उजाड़ हो गया था। प्राचीन अवशेष पर नया स्तूप अशोक के

काल में खड़ा किया गया होगा, इसलिए कि भगवान् बुद्ध कभी यहाँ चक्रवर्त्ती राजा के रूप में अवतरित हुए थे। इससे तो यह ठीक लगता है कि 'राजा वेन' वाली किंवदंती प्रामाणिक है और बुद्ध ने अपने संबंध में जिस चक्रवर्ती राजा होने की बात कही थी, वह 'राजा वेन' ही था।

स्तूप का भग्नावशेष आज भी 'केसरिया' से दो मिल दक्षिण में वर्त्तमान है तथा राजा वेन और तथागत बुद्ध का स्मारक बना हुआ है। इस भग्नावशेष की ऊँचाई आज भी लगभग ६२ फुट है और इसके आधार का व्यास-घेरा १४०० फुट में है। सन् १८६२ ई० में यहाँ एक खुदाई भी हुई थी, जिससे टीलहे के भीतर एक मंदिर मिला था, जिसमें भगवान् बुद्ध की एक मूर्त्ति स्थापित थी।

केसरिया से दो मील पूर्वोत्तर कोण में 'राजपुर' नामक ग्राम है, जहाँ मिथिला के शासक गणेश्वर के पुत्रों—कीर्त्तिसिंह और वीरसिंह—की ओर से जौनपुर के बादशाह मुहम्मद इब्राहीम शर्की का युद्ध सन् १३६५ ई० के आस-पास 'असलन' नामक गौड़ के सेनाध्यक्ष के साथ हुआ था। मिथिला के ठाकुर वंशीय राजा गणेश्वर को भवेश्वर ठाकुर के पुत्रों ने षड्यंत्र करके गौड़ के सेनाध्यक्ष 'असलन' के द्वारा मरवा डाला था और गणेश्वर के पुत्रों—कीर्त्तिसिंह और वीरसिंह—को राज्य से वंचित करवा दिया था। कीर्त्तिसिंह जौनपुर के सुलतान मुहम्मद इब्राहीम की शरण में गया और अपनी वीरता और भक्ति प्रदर्शित कर इब्राहीम को मिथिला का राज्य वापस दिलाने के लिए राजी कर लिया। सेना के साथ मुहम्मद इब्राहीम जब मिथिला की ओर रवाना हुआ, तब असलन ने केसरिया के पास ही जाकर गंडकी की घाट को रोका। दोनों ओर की सेना जब आमने-सामने खड़ी थी, तब कोई ऐसा वीर नहीं था, जो नदी पार करके हमला करे। ऐसी अवस्था में मुहम्मद इब्राहीम ने जुझारू बाजे बजाने का हुक्म दिया और सबसे पहले उसने अपने घोड़े को नदी की धारा में कुदा दिया। दोनों सेनाओं का युद्ध राजपुर (रायपुर) के पूर्वी बधार में दिन के दोपहर को हुआ और 'असलन' हारकर युद्ध से भाग गया।[१] इब्राहीम की सेना आजमगढ़ और मऊ होते घाघरा को 'दोहरी घाट' में पार कर 'केसरिया' में गंडक के तट पर आई थी।

गंडकी के पूर्वी तट पर स्थित पूर्वोक्त 'ढेकहा' गाँव के पास चम्पारन जिले की सीमा समाप्त हो जाती है। इसके बाद अग्निकोणवाहिनी गंडकी का बायाँ तट मुजफ्फरपुर

---

१. पैरि तुरंगम भेलि पार गंडक का पानी।
परवल भंजनिहार मलिक महम्मद्द गुमानी॥
अम असलान फौदे-फौदे निज सेना सज्जिअ।
भेरी काहल ढोल तबल रणतूस बज्जिअ॥
रायपुरहिं का पूब्व षेत पहरा दुइ बेरा।
वेवि सेन संघट्ठ मेल वाजल भट भेरा॥
----कीर्त्तिलता, पल्लव ४, १५७—१६२

जिले से तथा दाहिना तट सारन जिले से लगता हुआ चलने लगता है। चम्पारन जिले के साथ गंडकी लगभग १४० मील चलती है।

मुजफ्फरपुर जिले और सारन जिले की सीमा बनकर जब गंडकी (नारायणी) दक्षिण-पूर्व कोण में बहती है, तब इसके बाएँ तट पर मुजफ्फरपुर जिले के बिशुनपुर, चकपहाड़ तथा 'वगैरह निजामत' नामक उल्लेखनीय गाँव मिलते हैं। ये गाँव गंडकी के पूर्वी तटबंध के भीतर हैं। यहाँ तटबंध से सटे पूरब 'मखवा' नदी उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है। जो साहेबगंज के पश्चिम से सटकर आती है। अति प्राचीनकाल में यहाँ से गण्डकी की जो आधुनिक धारा बहती है, संभवतः वह इसी मखवा या वाया नदी की धारा थी, जो महाभारत या पुराणों में 'विशल्या' तथा 'विशाला' नाम से अभिहित है। उस समय गंडकी की अलग धार थी और वह सीतानारायणी की धार से 'मही' नाम से दिघवारा के पास गङ्गा से संगम करती थी। वाया (विशल्या) के संबंध में आगे चर्चा की जायगी।

वगैरह निजामत के दक्षिण गंडकी के वाम पार्श्व में 'सारंगपुर' तथा 'हुसेपुर' नामक गाँव हैं। हुसेपुर के बाद मुजफ्फरपुर जिले के 'पारु' थाने का 'सोहांसी' गाँव है, जिसके भग्नावशेष उसके ऐतिहासिक स्थान होने के साक्ष्य प्रकट करते हैं। सोहांसी की तरह ही उसके दक्षिण प्राचीन स्थान 'धारफादी' है और इसीके दक्षिण, गंडकी के तटबंध पर ही 'सिगाही अवस्थी' तथा 'गोखुला' गाँव बसे हैं। गोखुला से जब गंडकी दक्षिण-पूर्व कोण में आगे बढ़ती है, तब इसके वाम पार्श्व में कल्याणपुर, फतेहाबाद, सरमस्तपुर, लच्छी डुमरी, सुनौली गुरगाँवाँ आदि गाँव मिलते हैं। वैशाली का एक मार्ग इसी फतेहाबाद में गंडकी पार कर पश्चिम की ओर मशरक (सारन) जाता है। गंडकी नदी जब मुजफ्फरपुर जिले की भूमि में प्रवेश करती है, तब थोड़ा दक्षिण की ओर झुककर बहने लगती है और 'तेजा डुमरी' तथा 'गुरगाँवाँ' तक इसी दिशा में बहती है। इसके बाद फिर अग्निकोणवाहिनी होकर चलने लगती है। इसी गुरगाँवाँ के अग्निकोण में गंडकी नदी के किनारे 'रेवाडीह' नामक गाँव है, जहाँ गंडकी में प्रसिद्ध रेवाघाट है। वैशाली से दिघवारा (सारन जिला) आनेवाला मार्ग रेवाघाट में ही आजकल गंडकी को पार करता है। प्राचीनकाल में दक्षिण बिहार से गंगा नदी पार करके वैशाली आने के लिए यही मार्ग विख्यात था। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण ने दिघवारा के सामने ही गंगा पार किया था और इसी मार्ग से वैशाली पहुँचे थे। यह बात वाल्मीकीय रामायण से जनकपुर यात्रा के क्रम में प्रमाणित होती है। रेवाघाट से दक्षिण थोड़ा अग्निकोण से झुककर परमानंदपुर, फुलार, मसूद चक आदि ग्राम गंडकी के बाएँ किनारे ही मिलते हैं। इसी परमानंदपुर के पूरब संसार का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'बसाढ़' है, जिसका प्राचीन नाम 'वैशाली है। वैशाली के पास एक छोटी नदी 'वाया' बहती है, जो कभी 'विशल्या या 'विशाला' नाम से प्रसिद्ध थी और चंपारन जिले की सारी सरिताओं का जल इसी विशाला के स्रोत से बहकर गंगा में जाता था।

परमानंदपुर और मसूदचक के बाद अग्निकोण में गंडकी नदी 'सलेमपुर' गांव को आती है, जिसके पूरब 'अमृतपुर' गांव का भग्नावशेष इसकी प्राचीनता की गवाही देता है। अमृतपुर के अग्निकोण में क्रमशः खानजहाँ, यूसुफपुर तथा लालगंज, अवस्थित हैं। लालगंज मुजफ्फरपुर जिले का विख्यात कस्वा और थाना है। प्राचीनकाल में इसका नाम अवश्य कुछ दूसरा होगा। यहां एक प्रसिद्ध समाजसेवी व्यक्ति श्रीजगन्नाथप्रसाद साहु हैं। यहां का 'हिंदी-हितैषी' पुस्तकालय बड़ा ही समृद्ध है, जिसके जोड़े का पुस्तकालय विहार के किसी ग्रामीण क्षेत्र में नहीं है। इसके व्यवस्थापक श्री साहुजी ही हैं। लालगंज का क्षेत्र कृषि के मामले में बड़ा उन्नत है और कृषि के सुधार में समाजसेवी श्री साहुजी की विशिष्ट देन है। वैशाली नगर के पुनरुद्धार में भी श्रीजगन्नाथप्रसाद साहु का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इसी लालगंज में 'सराय सिंघिया' नामक स्थान है, जो बौद्धों का 'गोशृंग सालवन' ज्ञात होता है।[१] यहाँ से गंडकी नदी दक्षिण की ओर थोड़ा झुककर बहने लगती है।

लालगंज के बाद गंडकी के बाएँ किनारे वसंता-जहानाबाद, घटारो-चतुर्भुज, दौलतपुर, चाँदी आदि प्राचीन ग्राम मिलते हैं। इसके बाद गंडकी नदी असधारपुर तथा घउसपुर गाँवों को पार करती 'हाजीपुर' चली आती है। हाजीपुर गंडकी के बाएँ किनारे तथा सोनपुर गाँव दाहिने किनारे बसा है। 'हाजीपुर' मुजफ्फरपुर जिले का अनुमंडल है और 'सोनपुर' सारन जिले का एक थाना तथा पूर्वोत्तर रेलवे का सुप्रसिद्ध स्टेशन है। सोनपुर का रेलवे प्लैटफार्म संसार के वृहत्तम प्लैटफार्मों में से एक है।[२] हाजीपुर का चीनिया केला भारत में प्रसिद्ध है और सोनपुर का हरिहरक्षेत्र मेला संसार में प्रसिद्ध है।

पालि-साहित्य से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध के समय का 'उक्काचेल' सोनपुर है और कोटिग्राम हाजीपुर।[३] यही कोटिग्राम बाद में 'अश्वपुर' हुआ और अश्वपुर हाजीपुर बन गया। ह्वेनत्सांग ने वैशाली से पटना आते समय अश्वपुर होते हुए गंगा को पार किया था। किंतु सातवीं शती के बाद १३ वीं शती तक भी हाजीपुर का नाम 'अश्वपुर' ही था, यह नहीं कहा जा सकता। सन् १३४० ई० के आस-पास बंगाल के शासक शमशुद्दीन हाजी इलियास ने तुगलक वंश की ओर से दक्षिण मिथिला का शासक हुआ। इसी ने अपने मूल नाम पर 'शमशुद्दीनपुर' नामक गाँव बसाया, जो आजकल 'समस्तीपुर' कहलाता है और इसी ने अपने ही नाम पर 'अश्वपुर' के 'अश्व' के स्थान पर 'हाजी' रख दिया, जिससे 'हाजीपुर' बना। इसने मिथिला का अपना शासन-केंद्र हाजीपुर में ही स्थापित किया। हाजी इलियास का पुत्र 'सिकदरशाह' था, जिसने हाजीपुर को बहुत ही समृद्ध किया था और स्वयं अपना निवास यहाँ बनाया था। हाजीइलियास के आक्रमण के बाद ही ओइनवार वंशियों का राज्य 'बागमती' नदी के उस पार चला गया। सिकंदरशाह के बाद हाजीपुर में उत्तर बिहार का मुख्य शासन-केंद्र 'शेरशाह सूरि' ने बनाया था। शेरशाह के समय में हाजीपुर का शासक

१. मज्झिम निकाय, (चुल्लगोसिंग सुत्तंत)---१, ४, १

२. सोनपुर की विशिष्ट चर्चा; आगे यथास्थान द्रष्टव्य है।

३. दीघनिकाय, परिनिब्बाण सुत्त।

मकदूम आलम था, जो गौड़ के शासक महमूदशाह से बगावत कर स्वतंत्र हो गया था। महमूद शाह के प्रचंड आक्रमण की वात सुनकर मकदूम ने अपना सारा खजाना 'शेरशाह को सुपुर्द कर दिया, जिससे शेरशाह की शक्ति दुगुनी हो गई और वह गौड़ के शासक से लोहा लेने के योग्य बन गया। यही मकदूम आलम था, जिसने माँझी के पास वावर से युद्ध किया था। उस समय भी मकदूम ने हाजीपुर में ही रहकर अपनी सेना का संगठन किया था।

शेरशाह के शासन के बाद मुगलों से लोहा लेनेवाला पठान दाउद खाँ हुआ। अकबर की सेना से दाउद खाँ जब सोन नदी के किनारे हार गया, तब इसने हाजीपुर में ही अपनी सेना को समेटा और गंडक के संगम पर अकबरी सेना की पूर्व की ओर बढ़ती हुई बाढ़ को रोकना चाहा। अकबर की सेना टोडरमल और मुनीव खाँ के नेतृत्व में लड़ रही थी, जिसने यहाँ भी दाउद खाँ को हराया।

उक्त घटना की कुछ शताब्दियों बाद सन् १७६३ ई० में, जिस समय 'शाह आलम' मीरजाफर के बेटे 'मीरन' और अँगरेजों की संयुक्त सेना से फतुहा और पटना में लड़ रहा था, उस समय पूर्णिया के 'खादिम हुसैन खाँ' शाह आलम की मदद में गंगा की बाईं ओर से सदल-बल चलकर हाजीपुर तक आया था। जैसे ही वह हाजीपुर में पहुँचा, वैसे ही शाह आलम हारकर पश्चिम की ओर भागा। शाह आलम को हटाकर 'मीरन' अँगरेजी सेना के साथ 'खादिम हुसैन' की ओर हाजीपुर दौड़ा। खादिम हुसैन बेतिया की ओर भागा और मीरन पीछा करता बेतिया पहुँचा, जहाँ उसके ऊपर बिजली गिर गई और वह मर गया।

हाजीपुर में गंडकी का 'कोनहरा' घाट नौकाओं के यातायात के लिए बड़ा प्रसिद्ध है। किंवदंती है कि जनकपुर जाते समय राम ने यहाँ गंडकी नदी को पार किया था। बरसात के दिनों में छोटे जहाजों के द्वारा कोनहरा घाट से पटना का सीधा यातायात-संबंध जुड़ जाता है। हाजीपुर के नेपाली मंदिर के ऊपर उकेरी गई कामासनों से संवद्ध मूर्त्तियाँ तांत्रिक वज्रयानियों की स्मृति जगाती हैं।

हाजीपुर से गंडकी नदी अग्निकोण में स्वल्पाधिक पूर्व की ओर झुकती हुई बहती है। वस्तुतः, गंगा-गंडक संगम-क्षेत्र तो हाजीपुर के बाद ही आरंभ होता है, जो पाटलिपुत्र नगर के सामने पड़ता है। गंडकी की इस संगम धारा के पास सारन जिले का अंतिम गाँव 'सब्बलपुर' है, जो निठट्ट यादवों की बस्ती है। यहाँ के लोगों की जीविका का आधार पाटलिपुत्र नगर है, जहाँ वे दूध, सब्जी और मकई का व्यापार करते हैं। किंतु अपने संगम-क्षेत्र में सदा की भाँति गंडकी अपार मिट्टी और बालू भर रही है, जिससे उसने अपना एक और वैकल्पिक मार्ग पूर्व की ओर बना लिया है। यह धारा-मार्ग मुजफ्फरपुर जिले के 'महनार' गाँव पहुँचता है और तब अग्निकोण में मुड़ता हुआ गंगा के दाहिने किनारे स्थित पटना जिले के बख्तियारपुर के पश्चिम, गंगा के वाम पार्श्व में, संगम करता है। इस संगम-धारा और पाटलिपुत्र के सामने की संगम-धारा के बीच में, गंगा

के उत्तरी भाग में, एक बहुत बड़ा दियारा-क्षेत्र है, जो 'राघोपुर दियारा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दियारा-क्षेत्र में लगभग छोटे-बड़े ५० ग्राम बसे हैं, जो बरसात में निरंतर पानी से घिरे रहते हैं। इनमें सुकवारपुर, राघोपुर, पहाड़पुर, फतेहपुर शहवाज, धरमपुर, पलवइया, गोपालपुर-पलवइया आदि कई गाँव प्रसिद्ध हैं। ये सभी गाँव गंगा और गंडकी की धाराओं की गाँस में फँसे हैं। एक तरफ गंडकी अपना दियारा-क्षेत्र हाजीपुर और महनार इन दो पुलिस-थानों की सीमा के किनारे-किनारे बहती हुई बनाती है और दूसरी तरफ गंगा नदी 'पटना से फतुहा' तक और फिर 'फतुहा से बाढ़' नगर तक की धारा में गंडकी के पूर्वी प्रवाह को आत्मसात् करती है। इस प्रकार, गंडकी के पूर्वी प्रवाह के दक्षिण तथा गंगा-प्रवाह के उत्तर भाग में विस्तृत दियारा क्षेत्र है, जिसका पुलिस थाना 'राघोपुर' है। इस संपूर्ण दियारे में यादवों की घनी आबादी है, जिनकी मुख्य जीविका गो-पालन और कृषि है।

भारत-भूमि अथवा बिहार प्रदेश की सीमा में गंडकी नदी जहाँ प्रवेश करती है, वहाँ से उसके संगम तक का सर्वेक्षण और अध्ययन अभी तक उसके बाएँ तट का किया गया है; क्योंकि बिहार में उसका मुख्य तट बायाँ ही तट पड़ता है। इस बाएँ तट पर चंपारन तथा मुजफ्फरपुर जिले की भूमि बिछी हुई है। अब गंडकी के दाहिने किनारे का भी थोड़ा सर्वेक्षण कर लेना चाहिए, जहाँ बिहार प्रदेश के सारन जिले की भूमि है और जिधर गंडकी की पुरानी मृतप्राय धाराएँ बहती हैं। सच पूछिए, तो गंडकी का मुख्य क्षेत्र सारन जिले की ही भूमि रही है।

गंडकी नदी भैंसालोटन में बिहार की सीमा को छूती है और लगभग ११½ मील तक नेपाल और बिहार की भूमि की सीमा-रेखा बनकर बहती है। इसके पश्चात् यह उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा बनती है और दोनों के मध्य भाग में ५० मील तक चलती है। इस भाग में यह पहले चंपारन और गोरखपुर की सीमा का काम करती है और दाहिने तट पर गोरखपुर जिले का महाराजगंज तहसील पड़ता है। महाराजगंज तहसील से जब यह आगे बढ़ती है, तब उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले और बिहार के चंपारन जिले की सीमा बनती है। देवरिया जिले के पँड़रौना और हाटा—इन दो तहसीलों की भूमि इसके दाहिने किनारे लगते हैं। इन्हीं तहसीलों के सामने गंडकी के बाएँ किनारे चंपारन जिले के मधुबनी और धनहा प्रखंड स्थित हैं। सन् १९७१ ई० की प्रलयंकारिणी बाढ़ ने सबसे अधिक महाराजगंज, पँड़रौना और हाटा तहसीलों तथा चंपारन के धनहा प्रखंड की भूमि को ही धो-पोंछ दिया था। इसके पहले गंडकी ने अपने भयंकर जल-प्लावन से सन् १९२२, २६, ४५, ५०, ६० तथा ६७ ई० में भी इन इलाकों को ध्वस्त किया था। सन् १९२२ ई० की बाढ़ को इधर के लोग 'बुढ़िया बाढ़' कहते हैं। सन् १९२६ ई० की बाढ़ ने छितौनी-बगहा-पुल को ध्वस्त कर दिया था और सन् १९६६ ई० की बाढ़ ने खड्डा क्षेत्र को बोरती हुई २२ मील दूर 'पँड़रौना' तक के भाग को अपनी चपेट में ले लिया था।

गंडकी नदी नेपाल की पहाड़ी भूमि से जब भारतीय मैदान में उतरती है, तब इसके बाएँ बाजू में चंपारन की दो-चार छोटी नदियों के अतिरिक्त दूसरी कोई ऐसी नदी नहीं है, जो इसकी जल-समृद्धि में वृद्धि करती हो। बल्कि, गंडकी ही अपनी पुरानी धाराओं के माध्यम से शाखा-प्रशाखाओं को फोड़ती है और उनसे अपने जल-भांडार को इधर-उधर वितरित करती गंगा की गोदी में प्रवेश कर जाती है। पहले यह कहा गया है कि प्रागैतिहासिक काल में गंडकी नदी सारन जिले की 'झरही' और 'दाहा' के धारा-मार्ग से बहती थी और 'राप्ती' नदी से मिलकर गङ्गा में गिरती थी, जिसका प्रमाण सन् १९०८ ई० में जब तमकुही (देवरिया) का पुल बन रहा था, तब मिला था। उसके बाद ऐतिहासिक काल के आरंभ में यह आधुनिक 'सीतानारायणी' की धार से बहती थी और सारन जिले में 'मही' के नाम से प्रसिद्ध थी। यह मही (गंडकी) सारन जिले के 'दिघवारा' में गङ्गा नदी से संगम करती थी और कम-से-कम भगवान् बुद्ध के काल में गंडकी का संगम 'दिघवारा' में तो अवश्य ही था। इसीलिए, यह 'दीर्घवाह' कहलाता था और उस काल में दीर्घवाह संगम का बहुत बड़ा महत्त्व था। आज भी 'मही' नाम से गंडकी की मृतप्राय धारा है, जो दिघवारा के उत्तर से अग्निकोण की ओर चलती हुई 'सोनपुर' के नैऋत्य कोण में आती है और पुनः पूर्व की ओर बहकर गंडकी-गङ्गा-संगम के पास गंडकी से मिलती है। अतः संपूर्ण सारन जिले का निर्माण गंडकी को झरही, दाहा, सीतानारायणी तथा मही नामक उपशाखाओं के द्वारा लाई गई मिट्टी से हुआ है।

गंडकी की उपर्युक्त धाराओं में झरही, वंसी तथा दाहा (सुंदे) का उल्लेख पहले हो चुका है, इसलिए 'सीतानारायणी' और 'मही' की थोड़ी चर्चा यहाँ आवश्यक है। **सीतानारायणी** (छोटी गंडकी) देवरिया जिले के तुर्कवलिया रेलवे स्टेशन के पूर्वोत्तर से तथा बड़ी गंडकी के 'राजघाट' (चंपारन) के पश्चिमोत्तर भाग से चलती है, यानी किसी काल में गंडकी यहीं से 'सीतानारायणी' के धारा-मार्ग से बहती थी। सीतानारायणी में 'वंसी' नदी का भी जल आता है। आजकल गंडकी की इसी धारा का नाम 'सीतानारायणी' है। थोड़ा और बारीकी से विचार करने पर पता चलता है कि मूल गंडकी नदी चंपारन जिले के 'वनहा थाने के 'बिनहरवा' और 'भितहा' नामक ऐतिहासिक गाँवों के पूर्वी भाग से ही दक्षिण की ओर चलती थी, जो 'हरिपुर' 'कुरसाहा' तथा 'ठकरा' नामक गाँवों के पूर्व भाग से 'नौतन' गाँव से होते हुए सीतानारायणी (छोटी गंडक) की धारा से मिलती थी। किंतु अब यह पुरानी धार 'नौतन' से मुड़ जाती है और अग्निकोण में बहती हुई राजघाट के पास पुनः गंडकी में मिल जाती है। इसी स्थान पर नौतन के दक्षिण 'सीतानारायणी' का संपर्क मूल गंडकी से टूट जाता है। अतः 'सीतानारायणी' अब केवल 'वंसी' की सहायता पर जीती है, जो साहाय्य उसे 'राजघाट' से पश्चिम में मिलता है। यहाँ से 'सीतानारायणी' सिपाय-बेतिया-मार्ग तक 'देवरिया' जिले के पूर्व-दक्षिण कोण की सीमा तक

गुजरती है और उसके बाद सारन जिले के 'सिपाय' स्थान को पहुँचती है। इसी 'सिपाय' गाँव से गंडकी नदी का पश्चिमी तटबंध 'सोनपुर' तक बना है।

सीतानारायणी (छोटी गंडकी) सारन जिले के उत्तरी भाग में स्थित 'मथनिया' गाँव को सबसे पहले स्पर्श करती है। पुनः मथनिया के बाद दक्षिण में 'सिपाय' आती है, जहाँ एक सरकारी कृषि-फार्म है। 'सिपाय' में ही सीतानारायणी से 'सारन-नहर' निकाली गई है, जिसकी एक शाखा नैर्ऋत्य कोण में चलकर 'ससा-मुसा' की ओर जाती है और दूसरी शाखा अग्निकोण में चलती गंडकी-तटबंध के भीतर 'मेहदिया' गाँव की तरफ आती है। पहली शाखा से ही 'दाहा' नदी निकलती है, जिसका विवरण पहले लिखा गया है। मेहदिया के दक्षिण सीतानारायणी से जो नहर नैर्ऋत्य कोण में चलती है, वह गोपालगंज (सारन जिले का उपमंडल) आकर दक्षिण मुड़ती है और 'दुलदुलिया' (माझागढ़ स्टेशन से पश्चिमोत्तर) में समाप्त हो जाती है। किंतु 'सीतानारायणी' नदी गंडकी तटबंध के भीतर से ही अग्निकोण में चलकर फिर दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और 'रूपन छाप' गाँव के पास तटबंध को पार कर 'बरौली' (पुलिस स्टेशन) आती है। यहाँ यह मशरक गोपालगंज-रेलवे लाइन को पार करती है। इस प्रकार चलकर सीतानारायणी 'बसंतपुर' थाने में प्रवेश करती है। इसी थाने में 'जामो' नामक प्राचीन गाँव है, जो सीतानारायणी के दाहिने किनारे बसा है। सीतानारायणी गोरियाकोठी तथा खवासपुर के बीच से चलती 'सेमरदह' के पूरब और 'बसन्तपुर' के पश्चिम—दोनों के मध्यभाग में पहुँचती है। बसंतपुर हथुआ राज्य के पूर्व पुरुष बसंतशाही के नाम पर बसा है, जिन्हें उनके चचेरे भाई फतहशाही ने सन् १७७५ ई० में अँगरेजों की जीहजूरी करने के कारण मार दिया था।[1]

'बसंतपुर' के आस-पास से 'सीतानारायणी' का नाम **'धामती'** नदी हो जाता है। यह धामती नदी बसंतपुर से दक्षिण की ओर 'बनियापुर' होते छपरा नगर को आनेवाले मार्ग के किनारे-किनारे दक्षिण दिशा में चलती है और इस यात्रा-पथ में इसके किनारे बड़का गाँव, सोनबरसा, जगदीशपुर, रामपुर दिगर, पिपरा, सिसाय, सरमी, कोल्हुआ, बनियापुर आदि गाँव स्थित मिलते हैं। धँगरहा से ही यह थोड़ा अग्निकोण में झुकती बनियापुर, बनरोपुर तथा भुँइधरा गाँवों को आती है। भुँइधरा में ही एक छोटी गंडकी नाम की सरिता 'धामती' से मिलती है, जो कभी 'धामती' की ही धारा रही थी। धामती में मिलने वाली यह गंडकी 'मेघवार' गाँव के पास से चलती है। मेघवार 'गोरियाकोठी' के पश्चिम में है। वहाँ से यह 'भरथपुर गाँव होते 'महराजगंज' आती है और वहाँ से दंदासपुर, ताज़पुर और तब बनियापुर के पश्चिम में 'अमावाँ' नामक गाँव के पास पहुँचती है।

१. सारन जिले के एक और प्रसिद्ध जमींदार का नाम 'वसन्त शाही' था, जो गौड़ के शासक नसरत शाह के पक्षपाती थे। सन् १५२९ ई० में इन्होंने नशरत शाह के सेनानायक 'महमूद' की ओर से बाबर के विरुद्ध युद्ध किया था, जिसमें ये मारे गये थे।
—बाबरनामा।

फिर अमावाँ से अग्निकोण में बहती जब 'हरपुर' आती है, तब अग्निकोण में मुड़ जाती है। इसके बाद पूरब दिशा में बहकर 'भुँइधरा' के पास घामती नदी से संयोग कर जाती है।

उपर्युक्त संगम के बाद 'घामती' नदी का नाम पुनः 'गंडकी हो जाता है और यह गंडकी नाम के साथ क्रमशः नरहरपुर, कटेसर बुजुर्ग, नगरा तथा रेपुरा नामक गाँवों तक बहती है। नगरा गाँव इसके दाहिने तट पर तथा 'रेपुरा' बाएँ तट पर स्थित है। यह गंडकी 'रेपुरा' के अग्निकोण में तथा खैरा और 'पटेढ़ी' नामक रेलवे स्टेशनों के बीचोबीच रेलवे लाइन एवं छपरा से महरौरा जानेवाली सड़क को पार कर अग्निकोण में ही बहती है। इस प्रकार यह पथरा तथा शहवाजपुर गाँवों के बीच से बहती हुई 'गरखा' पहुँचती है। गरखा में ही छपरा तथा रेवाघाट (गंडकी) को जोड़नेवाले मार्ग का पुल इस नदी पर बना हुआ है। गरखा के बाद अग्निकोण में जब यह 'रहीमपुर' गाँव को आती है, तब यह दो धाराओं में विभक्त हो जाती है, जिनमें से नैऋत्यकोण में बहनेवाली धारा छपरा-सोनपुर रेलवे के 'सनटा' नामक स्टेशन के पास ही रेलवे-मार्ग से अवरुद्ध होकर समाप्त हो जाती है। यह धारा पहले चिराँद से पूरब गङ्गा में गिरती थी। किंतु, मुख्य धारा, जो अग्निकोण में बहती है, 'श्रीपाल-वसंत' गाँव से होती तथा 'मिरजापुर' और 'फतेहपुर चैन' गाँवों के मध्य भाग से बहती 'दिघवारा' के उत्तर भाग में आती है और यहीं 'मही' नामक पुरानी गंडकी से संगम करती है। इसके बाद 'मही' नाम से ही बढ़ती हुई आजकल के गंडक-संगम के पास मुख्य गंडकी (नारायणी) में गिर जाती है।

सीतानारायणी बनाम घामती वाली धार गंडकी की बहुत पुरानी धार है; किंतु 'मही' वाली धार तो दो-ढाई हजार वर्ष ही पुरानी है। मेरा ख्याल है कि यह मही-धार गुप्तशासन-काल तक गंडकी की मुख्य धारा रही है। भगवान् बुद्ध के समय में गंडकी की 'मही' नामक धारा ही प्रमुख थी, जो दिघवारा के पास गङ्गा से संगम करती थी। 'मही' का उद्गम आजकल 'बलुआ भिखारी' तथा 'रामकोला' गाँवों के पास है। किंतु, प्राचीन काल में गंडकी (नारायणी) नदी 'भगवानपुर' से ही दक्षिण की ओर चलती थी। भगवानपुर के सामने, गंडकी के पूर्वी तट पर, मुजफ्फरपुर जिले के 'सिंगाही अवस्थी' तथा 'गोखुला' गाँव पड़ते हैं, जिनकी स्थिति 'वैशाली' के ठीक पश्चिम में है। मही का स्रोत 'बलुआ भिखारी' से दक्षिण की ओर चलकर 'रामकोला' होते 'राजधानी' गाँव को आता है और तब पचउर, मंझोपुर तथा भवालपुर गाँवों को पहुँचता है। ये सभी स्थान सारन जिले के हैं। 'मही' नदी भवालपुर से अग्निकोण में बहती 'अमनउर हरनारायण' गाँव आकर दक्षिण मुड़ती है और 'बलहा' तथा 'लखना' नामक गाँवों से होकर गुजरती है। लखना के बाद जब यह दक्षिणचलती है, तब इसके किनारे अपहर, सलखुआ तथा चंद्रपुरा गाँव मिलते हैं। छपरा से रेवाघाट जानेवाले मार्ग को मही नदी 'भेलदी' गाँव के पास पार करती है। भेलदी से जब यह दक्षिण चलती है, तब इसके किनारे क्रमशः फिरोजपुर, पट्टी शीतल, बेजरथ, पिरारी

तथा सुतीरथ गाँव दिखाई देते हैं। इसी सुतीरथ के दक्षिण 'डेरनी' गाँव के पास सारन जिले की '**डबरा**' नदी मही से संगम करती है। डबरा नदी को इसके ऊपरी भाग में '**घघरी**' भी कहा जाता है। यह गोरियाकोठी के पूर्वोत्तर भाग में स्थित 'मंगलपुर गाँव के पास से चलती है। मंगलपुर गाँव हरदिया से पश्चिमोत्तर कोण में तथा दिघवा-दुवौली स्टेशन से लगभग पाँच मील पश्चिम में वसा हुआ है। घघरी-धार भी कभी सीता-नारायणी (धामती) की धार थी; क्योंकि यहीं गोरिया कोठी के पास से धामती भी चलती है और इसके पूर्व भाग में ही घघरी का उद्‌गम है। यह हरदिया, शाहाबाद, धरमबारी, इमादपुर, कतलपुर, हरपुरनन, देवछु, बरवाघाट, बहरउली, कवलपुरा आदि गाँवों से गुज-रती 'मसरख' आती है। मसरख में रेल-पथ को पार कर अग्निकोण में मुड़ती है और डुमरी तथा पचभिड होते इसी दिशा में नन्दनपुर तक चलती हैं। यहाँ से नैऋत्यकोण में मुड़कर 'महरौरा' आती है और वहाँ रेलपथ को पार कर दक्षिण में चलती मिरजापुर गाँव के पूर्व में पहुँचकर अग्निकोण में झुकती है। इस दिशा में चलने पर इसके किनारे 'मदारपुर' गाँव मिलता है। यहाँ से पूरब मुड़ने पर 'अरना' गाँव और अरना से दक्षिण बहने पर 'कटसा' और 'परसा' मिलते हैं। 'घघरी' इसी क्षेत्र में 'डवरा' कहलाने लगती है। डवरा के किनारे महेसिया, इटवा, सिसउनी तथा वली-छपरा गाँव बसते हैं। यह सिसउनी से पूरब तथा बली छपरा से पूर्वोत्तर कोण में 'डेरनी गाँव' के पास 'मही' से संगम करती है।

यह पहले कई बार कहा गया है कि सारन और देवरिया जिले की झरही, बंसी, दाहा, सीतानारायणी (धामती), घघरी (डवरा) आदि धाराएँ गण्डकी की प्रागैतिहासिक धाराएँ हैं; किंतु 'मही' को धार बुद्धकालीन गण्डकी धार है, जो दिघवारा के पास गङ्गा से संगम करती थी। वैशाली नगर का पश्चिमी-क्षेत्र इसी 'मही' नदी के किनारे तक था। 'वाल्मी-कीय रामायण' के बालकाण्ड की रचना उस समय की मालूम पड़ती है, जिस समय गण्डकी या तो मही-धार के नाम से बहती थी अथवा इससे भी पश्चिम उसकी धारा थी; क्योंकि राम-लक्ष्मण जब गङ्गा पार कर वैशाली गए, तब उन्हें गण्डकी को पार नहीं करना पड़ा था और उन्होंने 'दिघवारा' के आस-पास गङ्गा नदी को पार किया था।

डेरनी गाँव के पास डवरा का पानी ग्रहण कर 'मही' नदी पूर्व दिशा में चलती है और 'कैकरहत' गाँव पहुँचती है। यहाँ से यह दक्षिण मुड़ती है और 'मनुपुर' तथा 'वेला' गाँव होते चुरहू कोठिया के पूरब तथा दिघवारा के उत्तर सीतानारायणी (छोटी गंडकी) वाली धारा को आत्मसात् करती है। यह भी पहले कहा गया है कि गंडकी की मही-धार पहले दिघवारा के पास गंगा से मिलती थी और सोनपुर के दक्षिणी भाग तक अपना संगम-क्षेत्र बनाती थी; किंतु जब से रेलवे का ऊँचा मार्ग बना, तब से यह 'वेला' गाँव से पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर 'वस्ती बाजार' तथा 'नया गाँव' की तरफ अपना मार्ग बनाती है। नया गाँव से मही-धार यत्र-तत्र पेच खाती खुण्टाहा, अबुल हई, मुरथरी, कश्मर, रसूलपुर तथा लोदीपुर

गाँवों से होकर गुजरती है। लोदीपुर से यह पूरब दिशा में चलती है और सोनपुर के दक्षिणी भाग से पूरब की ओर जाती हुई आधुनिक गंडक के मुहाने पर उससे संगम कर जाती है। उपर्युक्त 'कश्मर' गाँव एक 'ऐतिहासिक गाँव है और मुगलकाल तक 'मही' की धारा यहाँ अपना महत्त्व रखती थी। नया गाँव स्टेशन से कश्मर दो मील अग्निकोण में स्थित है। शेरशाह के शासन-काल की कई प्रसिद्ध कब्रें 'कश्मर' में हैं और मही के संगम का यह कोई निश्चय ही प्राचीन स्थान ज्ञात होता है।

बौद्ध साहित्य में 'मही' नदी की चर्चा कई स्थानों पर आई है[१] और 'सुत्तनिपात' के 'धनिय सुत्त' में इसका काफी गुणगान किया गया है। मही के तट पर 'धनिय' नामक ग्वाले की मड़ई में भगवान् बुद्ध ठहरे थे। उस समय घनघोर घटा बरस रही थी। उस अवसर पर घटित भगवान् बुद्ध और धनिय का गेयात्मक संवाद बहुत ही मार्मिक चित्रकाव्य है, जिसके हिन्दी-रूपांतर का थोड़ा-सा स्वाद लीजिए :

धनिय कहता है—"भात मेरा पक चुका है। मैंने दूध भी दुह लिया है। मही नदी का सुहावना तीर है, जहाँ मैं अपने प्रियजनों के साथ रह रहा हूँ। मैंने कुटी भी छा ली है और हमारे आगे आग भी जल रही है। हे देव, अब जितना चाहो, बरसो।"

भगवान् बुद्ध कहते हैं—"मैं क्रोध और राग से रहित हो गया हूँ और मही नदी के तट पर वास कर रहा हूँ। मेरी कुटी खुली है और आग भी मेरी बुझ चुकी है। हे देव, अब जितना चाहो, बरसो।"

धनिय बोला—"मक्खी और मच्छड़ यहाँ नहीं हैं। कछार में सर्वत्र नये तृण उग आये हैं। गायें मौज के साथ चर रही हैं। अब हमारी गायें वर्षा की तीखी झड़ी खुशी-खुशी सह लेंगी। हे देव, तुम जितना चाहो, बरसो।"

बुद्ध कहते हैं—"मैंने अपनी नौका बाँध दी है और तृष्णा को पार कर गया हूँ। अब मुझे नाव की जरूरत नहीं है। अतः हे देव, तुम अब जी-भर बरसो।"

इसके बाद ग्यारहवीं गाथा में फिर 'धनिय' कहता है—"खूँटे मेरे खूब मजबूत ढंग से गड़े हैं। अच्छी तरह बटे गए मूँज के पगहे भी खूब मजबूत हैं, जिन्हें गाय को कौन कहे, बैल भी नहीं तोड़ सकते हैं। अतः हे देव, तुम जितना चाहो, बरसो।"

'सुत्तनिपात' के इस वर्णन से स्पष्ट है कि बुद्ध के काल में 'मही' प्रसिद्ध नदी थी और भगवान् बुद्ध द्वारा सेवित थी।

पूर्वकथित विवरण गंडकी की उन प्राचीन धाराओं का है, जो धाराएँ देवरिया और सारन जिले में कभी-न-कभी भिन्न-भिन्न नामों से बहती थीं और आज भी स्वतंत्र रूप में उनका अस्तित्व थोड़ा-बहुत बचा हुआ है। अब यहाँ वर्तमान गंडकी-धार के दाहिने तट (पश्चिमी भाग) का भी थोड़ा-सा पर्यवेक्षण कर लेना आवश्यक है।

---

१. निन्नगा वाचिरवती मही वापि महानदी।----विसुद्धिमग्ग, सीलनिद्देश-६४।

आधुनिक गंडकी की मुख्य धारा का दाहिना तट जब प्रथम-प्रथम सारन जिले को भूमि को छूता है, तब सर्वप्रथम इसके दाहिने भाग में सारन जिले के 'हरपुर' और 'रामपुर टँगराही' गाँव खड़े मिलते हैं। यहाँ से गंडकी अग्निकोण में बहती हुई अपने दाहिने बाजू में क्रमशः उत्तर से दक्षिण की ओर मठिया, राजवाही, शाहडिगरी, मँझरिया और बिशुनपुरा गाँवों को देखती है। बिशुनपुरा से गंडकी कुछ पूरब की दिशा में मुड़ती है और सारन जिले के 'सलेमपुर' गाँव तक इसी ओर मुँह करके बहती है। सलेमपुर के उस पार गंडकी के बाएँ तट पर चम्पारन जिले के गोविंदगंज थाने का 'संग्रामपुर' नामक ऐतिहासिक ग्राम है, जिसकी चर्चा पहले की गई है। सलेमपुर से गंडकी पुनः अग्निकोण में बहने लगती है और तब अपने दाहिने तट पर क्रमशः हसनपुर, बनजरिया, अमरपुर, डुमरिया, पकरी, महारानी-उग्रसेन आदि गाँवों को देखती है। महारानी-उग्रसेन निश्चित ही कोई प्राचीन और ऐतिहासिक गाँव मालूम पड़ता है, पर उसका प्राचीन इतिहास अब तक अज्ञात है। महारानी-उग्रसेन के अग्निकोण में गंडकी के तट पर 'उसरो' नामक गाँव है और इसके अग्निकोण में तटबंध के बाहर 'बैकुण्ठपुर' दिखाई पड़ता है। बैकुण्ठपुर सारन जिले का एक थाना है और उसके सामने गंडकी के उस पार (बाएँ तट पर) चम्पारन जिले का 'ढेकहा' नामक गाँव बसा हुआ है, जहाँ 'केसरिया' जाने के लिए गंडकी पार करके मार्ग चलता है। इसी बैकुण्ठपुर के पास सारन जिले का 'दिघवा-दुबौली' नामक ऐतिहासिक गाँव स्थित है। इसी दिघवा-दुबौली में भोजदेव के पुत्र और वाराणसी के राजा महेंद्रपाल का ताम्रपत्र मिला था। यह ताम्रपत्र विक्रम संवत् १०५५, माघ शुक्ल १० का लिखा बतलाया जाता है, जिसमें उल्लेख है कि श्रावस्ती भुक्ति के 'वालयिक' (बलिया) विषय का 'पानियक' नामक गाँव दान में दिया जाता है। इससे स्पष्ट है कि पूर्व में गंडकी तक उत्तर कोसल की सीमा थी और इस काल में इस भाग पर महेंद्रपाल का शासन था। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि ११वीं शती के आस-पास गंडकी की धार दिघवा-दुबौली के पूर्व में चली आई थी।

बैकुंठपुर से गंडकी जब अग्निकोण में चलती है, तब गंडकी के दाहिने भाग में सारन जिले के नरवर, बखरी, पियारेपुर, खैराआशा, चकिया, चितामनपुर, बसतपुर आदि गाँव क्रमशः वायव्य कोण से अग्निकोण में कतार बाँधे दिखाई पड़ते हैं। उपर्युक्त बखरी और पियारेपुर गाँव के सामने से ही गंडकी के उस पार (बाएँ तट पर) मुजफ्फरपुर जिले की भूमि प्रारंभ होती है यानी यहाँ से गंडकी नदी मुजफ्फरपुर और सारन जिले की सीमा बन कर बहने लगती है। बसतपुर के अग्निकोण में गंडकी के दाहिने तट पर क्रमशः सोन-बरसा, खजुरी, भरहा, भगवानपुर, रामकोला तथा बलुआ भिखारी नामक गाँव पड़ते हैं। अंतिम तीन गाँवों के पास से ही 'मही' नदी की धारा बनती है, अर्थात् भगवान् बुद्ध के काल में यहीं से गंडकी नदी दक्षिण की ओर 'मही' की धार से बहती थी। बलुआ भिखारी गाँव के अग्निकोण में गंडकी के दाहिने किनारे राजधानी, भतगैन तथा कुआरी नामक

गाँव बसे हुए हैं। कुआरी के सामने गंडकी थोड़ी दूर के लिए पूर्व दिशा की ओर मुड़ती है और बाघाकोल तथा दादनपुर गाँवों को आती है। दादनपुर, के पास ही गंडकी का 'रेवा-घाट' है, जहाँ दिघवारा और वैशाली का मार्ग गंडकी को पार करता है। यह बहुत ही प्राचीन मार्ग है, और प्राचीन काल में यह गंडकी के पूर्वी तट से चलता था। यही वह मार्ग है, जिस पर चलकर जनकपुर जाते समय राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ गंगा पार कर वैशाली पहुँचे थे। दादनपुर के बाद गंडकी थोड़ा दक्षिण मुड़ती है और 'पीरमकर' तथा 'कसबामकर' जैसे ऐतिहासिक गाँवों को अपने दाहिने किनारे निहारती है। इन गाँवों में प्राचीन भग्नावशेष के चिह्न दीख पड़ते हैं, जिससे अनुमान होता है कि ये भग्नावशेष वैशाली क्षेत्र के हैं। 'कसबामकर' के सामने गंडकी के बाएँ किनारे मुजफ्फरपुर के लालगंज थाने का 'मसूदचक' नामक गाँव बसा हुआ है। इस के बाद गंडकी के दाहिने किनारे सारन जिले के भथुआ, कोहड़ा, बलगाँवाँ तथा बनकेरवा गाँव बसे हैं। बनकेरवा के पश्चिम 'परसा' पुलिस स्टेशन है, जहाँ एक चैत्य का भग्नावशेष है, जिसे 'चेतन' कहा जाता है। बनकेरवा के अग्निकोण में तुरकी गाँव है, जिसके सामने नदी के पार मुजफ्फरपुर का 'लालगंज थाना है। तुरकी से थोड़ी दूर अग्निकोण में जब गंडकी नदी आगे बढ़ती है, तब फिर थोड़ी देर के लिए दक्षिण दिशा में मुँह करती है। इस दिशा में बहती हुई गंडकी क्रमशः मानपुर, सराय, मंगरपाल, नूरन तथा मंगरपाल मुतुंजा एवं दरियापुर गाँवों को आती है। इनमें सराय और दरियापुर प्राचीन ग्राम ज्ञात होते हैं; क्योंकि यहाँ प्राचीन भग्नावशेष के चिह्न हैं। दरियापुर के दक्षिण शिकारपुर और कल्याणपुर गाँव हैं और उसके बाद गंडकी की दाहिनी ओर भारत-प्रसिद्ध मेलेवाला गाँव सोनपुर बसा हुआ है। सोनपुर के सामने ही गंडकी के बायें तट पर 'हाजीपुर' है, जिसकी चर्चा पहले की गई है। सारन जिले के दिघवारा के पूरब और सोनपुर के पश्चिम यानी दोनों के मध्य में जितने गाँव बसे हैं, सभी गंडकी के मुहाने पर बसे हैं, जिनका समय एक हजार वर्ष के भीतर को मालूम पड़ता है ? इस क्षेत्र में 'पुरान्त' नामवाले गाँवों की भरमार है। इनमें से कुछ के नाम हैं— कनकपुर, सिंधिनपुर, सालेहपुर, गोपालपुर, छतरपुर, परमानंदपुर, बाकरपुर, रसूलपुर, संगमपुर, सोनपुर, सब्बलपुर आदि। सब्बलपुर के पूरब भाग के दियारे में भी जब हम बढ़ते हैं, तब भी 'पुरांत' नामवाले गाँवों की भरमार देखते हैं—राघोपुर, शुकबापुर, पहाड़-पुर, फतेहपुर, धरमपुर, गोपालपुर, पानापुर आदि। उक्त सब्बलपुर गंगा-गंडकी के संगम पर है और पटना के रानीघाट के सामने गंगा के बायें किनारे बसा है। लगता है, इन गाँवों ने अपने नामकरण में हाजीपुर (अश्वपुर) का बहुत अनुकरण किया है।

गंडक के संगम पर बसे 'सोनपुर' अपने मेले के कारण भारत का प्रसिद्ध स्थान है और यहाँ 'हरिहर क्षेत्र' का मेला कार्त्तिकी पूर्णिमा को लगता है। इस मेले में पंजाब से आसाम तक के लोग हाथियों, घोड़ों, गायों, भैंसों को बेचने तथा खरीदने आते हैं। आसाम

के हाथी, हरियाणा की गायें, भूटान तथा नेपाल के भोटिये घोड़े बड़ी तादाद में पहुँचते हैं। हाथियों के झुंड मवेशियों के हार की तरह बँधे रहते हैं और जब भोर में ये गंडक में स्नान के लिए झुंड में चलते हैं, तब चीटियों की तरह कतार बाँध लेते हैं। गंडकी में जब ये हाथी स्नान के लिए लेटते हैं, तब गंडकी के पानी में हलचल पैदा कर देते हैं। मेले के चिड़िया-बाजार में भारतवर्ष भर के छोटे-बड़े तथा रंग-बिरंगे पक्षी बिकने के लिए आते हैं। यहाँ पाँच हजार तक की भैंसें तथा दो हजार रुपये तक के बैल सन् १९७१ ई० के मेले में बिके हैं। देश के प्रसिद्ध थियेटर तथा नौटंकी एवं सरकस दिखाने वाली कंपनियाँ यहाँ प्रतिवर्ष आती हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले तक भारत की प्रसिद्ध गणिकाओं की रावटियों की कतारें भी यहाँ लगती थीं और देश के छैल-छबीले राजे तथा जमींदारों के खेमें भी गिरते थे। आज भी १५ दिनों के मेले में लाखों लोग एकत्र होते हैं, जिन्हें ढोने के लिए विशेष रेल गाड़ियाँ प्रति मिनट सोनपुर के प्लैट फार्मों से खुलती तथा लगती हैं। इसी मेले के कारण सोनपुर में संसार का सबसे बड़ा प्लैट फार्म बना था, जिसकी लंबाई अब प्रथम स्थान पर न रहकर तीसरे या चौथे स्थान पर आ गई है। आज से १२५ वर्ष पूर्व यह मेला गंडकी के वामपार्श्व में 'हाजीपुर' में लगता था, जिससे अनुमान होता है कि हाजी इलियास के शासन-काल के बाद और अकबर के शासन के मध्य किसी काल में यह मेला आरंभ हुआ। अकबर के शासन-काल में राजा मानसिंह ने इस क्षेत्र में बहुत दिनों तक अपना अड्डा कायम किया था।

सोनपुर के मेला-क्षेत्र में हरिहर ('हरि' और 'हर') नामक शंकर का मंदिर है, जिससे इसका नाम 'हरिहर क्षेत्र' पड़ा है। यद्यपि पुराणों से पता चलता है कि 'हरि' का क्षेत्र काली गंडकी के उद्गम-स्थान के पास तथा 'हर' का क्षेत्र गंडकी के त्रिवेणी घाट के पूर्व में, सोमेश्वर पहाड़ी में, है, तथापि मुगल-काल में पुराणों में जो अंश जोड़े गये, उनमें सोनपुर के क्षेत्र को भी 'हरिहर' का क्षेत्र कहा गया है। 'वराह पुराण' का निम्नलिखित अंश मुगलकालीन ही है, जिसमें सोनपुर के क्षेत्र को 'हरिहर क्षेत्र' कहा गया है—

गङ्गया मिलिता यत्र भागीरथ्या महाफला।
अपरं तन्महाक्षेत्रं हरिक्षेत्रमितिस्मृतम् ॥[१]

हरिहरक्षेत्र मेले के पास का हाजीपुर और सोनपुर को जोड़ने वाला आधुनिक रेल-पुल पुराने पुल के पश्चिम पार्श्व में बना है। पुराने रेल-पुल का उद्घाटन तत्कालीन भारत के वायसराय लार्ड डफरिन ने सन् १८८७ ई० में किया था। पुल के दोनों किनारों में पैदल चलने के मार्ग बने थे, जिसकी लंबाई २१७६ फुट थी। पुल के नीचे आठ जल-विवर-द्वार बने थे, जिनमें प्रत्येक का मुख्य-विवर २७० फुट चौड़ा था। इस प्रकार लोहे और लकड़ी का यह पुल नौ पायों पर बना था। नया पुल पुराने पुल से भी शानदार और मजबूत बना है।

१. वराहपुराण, अध्या० १४५।११२।

सोनपुर के अग्नि कोण में स्थित एक गाँव में राजा मानसिंह की छावनी थी, जिसका चिह्न आजतक वर्त्तमान है। इसी काल में मानसिंह ने प्राचीन मेले का विकास किया था। इसी सोनपुर के पूर्व-दक्षिण भाग में 'सब्बलपुल' दियारे के पास गंडकी (नारायणी) नदी गंगा से संगम करती है, जिसकी चर्चा पहले की गई है। किंतु, पहले जहाँ गंडकी का संगम था, वह क्षेत्र अधिक महिमान्वित तथा पुण्यतम था। इस बात का उद्घाटन वराह-पुराण (१४५/११४) इस प्रकार करता है :—

आदौ सा गंडकी पुण्या भागीरथ्या च सङ्गता।
तस्य तीर्थस्य महिमा ज्ञायते न सुरैरपि ॥

गंडकी का यह प्राचीन संगम-स्थान 'दिघवारा' के पास था, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

बाया

उत्तर बिहार की नदियों में 'वाया' एक छोटी नदी है, जो आज एक महत्त्वहीन तथा क्षीण बन गई है। किंतु, किसी काल में यह एक महत्त्वपूर्ण नदी थी, जिससे 'महाभारत' तथा पुराणों ने इसका स्मरण **'विशल्या'** तथा **'विशाला'** नाम से किया है। यह नदी वैशाली नगरी के क्षेत्र से बहती थी, इसीलिए इसका नाम 'विशाला' या विशल्या' था। इसी 'विशाला' नदी का क्षीणतम रूप 'वाया' आज भी 'वैशाली'-क्षेत्र से होकर बहती है। 'वाया' विशल्या या विशाला का ही अपभ्रंश रूप है।

उत्तर बिहार की नदियों के मूल धारामार्ग का पता लगाना बड़ा ही दुष्कर है; पर प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से इनके धारामार्गों पर कुछ-न-कुछ प्रकाश पड़ता ही है। सरयू ने जिस प्रकार 'राप्ती' नदी के धारा-मार्ग को हड़प लिया है, उसी प्रकार गंडकी ने भी 'विशाला' की धारा को हथिया लिया है। जिस 'वाया' (विशाला) नदी में नेपाल-चंपारन के सीमावर्त्ती पर्वत 'सोमेश्वर' की दर्जनों निर्झरिणियों का जल-भांडार आता था, उसे आज 'सिकरहना' (बूढ़ी गंडक) ग्रहण कर रही है। इसका निरीक्षण-परीक्षण आज भी भूमि-सर्वेक्षक कर सकते हैं। 'वाया' की इस स्थिति के निरीक्षण करने के पहले 'विशाला' के प्राचीन उल्लेखों की थोड़ी चर्चा कर देना अधिक उपयुक्त होगा।

महाभारत 'विशाला' नदी की चर्चा शल्यपर्व (३८, २०-२१), अनुशासनपर्व (२५,४४) तथा 'विशल्या' को वनपर्व (८४,११४), सभापर्व (६,२०) और अनुशासन पर्व (१६५,२०) में करता है और ये सारी चर्चाएँ उत्तर विहार के तीर्थों के प्रसंग में अथवा इस क्षेत्र की नदियों के साथ की गई हैं। पांडवों के तीर्थ-प्रसंग में गंडकी के साथ ही 'विशल्या' का नाम वनपर्व के उपर्युक्त स्थल पर आया है—**ततो विशल्यामासाद्य नदी त्रैलोक्यविश्रुताम्।** फिर, 'पद्मपुराण' (स्वर्गखंड, ३८।३४) में भी 'महाभारत' का उक्त श्लोक उद्धृत किया गया है और 'विशल्या'[१] को अत्यंत पुण्यवती नदी कहा गया है।

'विशाला' के धारा-मार्ग के अध्ययन से पता चलता है कि गंडकी नदी जब अपने प्राचीन मार्ग 'झरही' या 'सीतानारायणी' की धार से मिलकर बहती थी, तब 'विशाला' नदी 'सोमेश्वर' पर्वत की हरहा, मसान, कापन, वाण-गंगा, चित्रगंगा आदि नदियों का जल

१. वाल्मीकि रामायण, लंकाकाण्ड के ५० में सर्ग के ३० वें श्लोक की और सर्ग १०१ के ३२ वें श्लोक की 'विशल्या' नदी दूसरी है, जो 'नर्मदा' की सहायिका है।

लेकर बेतिया से लगभग आठ मील पश्चिम से, जहाँ 'पतजिरवा' गाँव तथा 'राजघाट' है, आधुनिक गंडकी का प्रवाह पकड़कर गंगा-संगम तक बहती थी। इस 'विशाला' नदी में भैंसालोटन के पूर्व चंपारन-नेपाल-सीमा तक की 'पंडई' तथा 'उरई' नामक नदियों का पानी भी आता था। किंतु, उधर गंडकी अपनी सीतानारायणीवाली धारा पर जैसे-जैसे मिट्टी और बालू डालती गई, वैसे-वैसे इधर भी 'विशाला' अपने 'राजघाट' पहुँचनेवाले धारा-मार्ग को भी भरती गई। फलतः, गंडकी ने चंपारन जिले के धनहा-क्षेत्र के पूरब आकर तथा राजघाट के पास पहुँचकर विशाला नदी के धारा-मार्ग को हड़प लिया और विशाला धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़कर क्रमशः बाया, धनौती, सिकरहना तथा बूढ़ी गंडक के रूप में परिणत होती गई।

'विशाला' ने जब पतजिरवावाले अपने मुहाने को भर दिया, तब उसने नवादा-गोविंदगंज के पास आधुनिक गंडकी की धार को पकड़ा। फिर, जब इसने इस मुहाने को भी बंद किया, तब 'मखवा' नदीवाले प्रवाह का अवलंबन किया था और बनकटवा, पोखरा, दैनीमठ तथा सारंगपुर के पास आकर गंडकी-धारवाला मार्ग अपना लिया था। इस प्रवाहमार्ग के छोड़ने के पश्चात् इसने और पूर्व बढ़कर 'बाया' वाली धारा को पकड़ा था। किंतु, ये सारे नदी मार्ग भी बुद्धकाल के पूर्व के ही हैं। बुद्धकाल में तो विशाला नदी का गौरव मिट चुका था, अन्यथा बौद्ध साहित्य में कहीं-न-कहीं इसकी चर्चा अवश्य मिलती। हाँ, अंगुत्तरनिकाय' की अट्ठकथा में **'वग्गमुद्दा'** नदी की चर्चा है, जिसमें कहा गया है कि 'मिगलं-डिककुत्तक' नामक अन्य तैर्थिक ने बौद्ध भिक्षुओं को मार कर अपने छुरे को 'वग्गमुद्दा' के जल में धोया था।[१] 'बुद्धचर्या' (पृ० ३१६) में भी कहा गया है कि वैशाली में जब अकाल पड़ा था, तब कुछ बौद्ध भिक्षु वर्षावास करने 'वग्गमुद्दा' के तट की ओर चले गये, जहाँ उन्होंने कृषकों की चाकरी करके पेट-पूजा की और मोटे-ताजे बनकर वे वैशाली के कूटागार में भगवान् बुद्ध के पास आये। भगवान् बुद्ध ने उन्हें पेटू कहकर संघ से निकाल दिया था। कुछ लोग इस 'वग्गमुद्दा' नदी को 'बाया' नदी मानते हैं, जो आज वैशाली के पार्श्ववर्त्ती सरैया बाजार के निकट से बहती है।

किंतु, वस्तुतः 'वग्गमुद्दा' नदी बागमती है; क्योंकि दोनों के नामों में काफी समानता है। दूसरी बात है कि वैशाली में अकाल पड़ने पर भिक्षु वग्गमुद्दा के तट-प्रदेश में गए थे, जहाँ अकाल की स्थिति नहीं थी। 'बाया' नदी तो वैशाली के पास ही थी, जहाँ अकाल ने विकराल रूप धारण किया था, अतः वग्गमुद्दा नदी अवश्य ही वैशाली से कुछ दूर थी। यदि बाया को 'वग्गमुद्दा' माना जायगा, तो वहाँ अकाल भी माना जायगा; क्योंकि यह वैशाली-क्षेत्र में थी। अतः बागमती को वग्गमुद्दा होना चाहिए, जहाँ अकाल नहीं था और गृहस्थी का काम सुविधा-पूर्वक चल रहा था और वहाँ के गृहस्थों के यहाँ मौज से भिक्षु भोजन पा रहे थे। 'मज्झिम निकाय' के 'वत्थु सुत्तन्त' में 'बाहुमती' नामक नदी की भी चर्चा आई है और बहुत संभव

१, विस्तार के लिए देखिए— लेखक की पुस्तक 'बौद्धधर्म और बिहार', पृ० ११८-११९

है कि इसका तात्पर्य 'वागमती' से ही हो। किंतु यह नाम 'वग्गमुद्दा' का ही परवर्ती तथा संस्कृत नाम है, जो निश्चय ही पालि भाषा से भिन्न है। अतः 'विशाला' (वाया) बुद्ध-काल में अपना महत्त्व खो चुकी थी और इसकी प्रधान धारा सिकरहना का मार्ग पकड़ चुकी थी, जिससे वैशाली के पड़ोस में रहने पर भी इसकी चर्चा बौद्ध साहित्य में नहीं आई है।

उपर्युक्त विवेचन से एक बात स्पष्ट होती है कि बुद्ध के काल में गंडकी यद्यपि 'मही' की धार के साथ मिलकर बहती थी, तथापि 'मही' की धारा भी बदल रही थी और गंडकी ने 'विशाला' की धारा को अपना लिया था और मही की धारा गौण बन रही थी। अर्थात्, बुद्ध के काल में ही गंडकी दो धाराओं में बहने लगी थी—एक मही की धारा के रूप में और दूसरी 'विशाला' की धारा के रूप में भी। इस प्रकार 'विशाला' का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त प्राय हो चुका था और मृतप्राय रूप में यह अपनी 'वाया' वाली आधुनिक धारा बना चुकी थी। इस प्रकार, बेचारी 'वाया' का प्राचीन गौरव वैशाली के गौरव के मिटने के पहले ही मिट चुका था।

'वाया' का उद्गम-स्थान वर्त्तमान गंडकी के पूर्वी तटबंध के सटे 'सुंदरपुर' नामक गाँव के दक्षिण है, जो 'ढेकहा' से अग्निकोण में पड़ता है और ऐसा लगता है कि यह 'गंडकी' की ही शाखा है। अपने उद्गम-स्थान से जब 'वाया' थोड़ी दूर पूर्व-दक्षिण की ओर आती है, तब 'करनउल' गाँव के दक्षिण इसमें उत्तर से आनेवाली 'मखवा' नामक नदी मिलती है। वस्तुतः, अपने तृतीय विकास-काल में 'विशाला' नदी समस्त सोमेश्वर पहाड़ी का जल लेकर मखवा की धार से बहकर साहेबगंज (प्रतापपट्टी) तथा करनउल आती थी। किंतु, आज 'मखवा' का भी संबंध सोमेश्वर पर्वत की नदियों से टूट गया है और यह भी अब महत्त्वहीन बाँड़ी नदी बन गई है। मखवा का उद्गम अब मोतीहारी नगर से ९ मील दक्षिण-पश्चिम कोण में स्थित 'तुर्कवलिया' (तुरकौलिया) नामक गाँव के दक्षिण में है तथा 'बड़हरवा' गाँव के उत्तर-पश्चिम कोण में। इस उद्गम के सटे 'रामपुर' और 'चरगाहा' नाम के दो गाँव हैं। अपने इस उद्गम-स्थान से चलकर यह बनकटवा, कररिया जागीर, कल्याणपुर खास, दिपऊ, पोखरा, भोपतपुर, जमुनापुर, दैनीमठ, गरीबा, गवांद्री, राजपुर, फुलकिया और दरवा होते हुए 'बनकट' गाँव को पहुँचती है और मुजफ्फरपुर जिले के साहेबगंज (प्रतापपट्टी) गाँव के पश्चिम चंपारन जिले की सीमा से बाहर निकल आती है। उपर्युक्त 'राजपुर' वही 'राजपुर' है, जहाँ कीर्त्ति सिंह का पक्षपाती महमूद इब्राहीम शर्की का युद्ध 'असलन' नामक व्यक्ति से हुआ था। राजपुर गाँव 'गंडकी' और 'मखवा' इन दो नदियों के दोआब में बसा हुआ है। 'दरबा' गाँव 'केसरिया' से ठीक एक मील पूरब में स्थित है।

विशाला (वाया) की पुरानी धारा 'मखवा' जब मुजफ्फरपुर जिले में साहेबगंज के पश्चिम आती है, तब केसरिया की ओर से दक्षिण की तरफ आनेवाली एक मृतप्राय छोटी सरिता का जल भी 'बनकट' के पास ग्रहण करती है। मुजफ्फरपुर जिले की भूमि में सर्व-प्रथम यह 'परसौनी और आशापट्टी' गाँवों को आती है। साहेबगंज (प्रतापपट्टी) और परसौनी

में प्राचीन भग्नावशेष के चिह्न देखने में आते हैं, जो वैशाली-क्षेत्र के गौरव को प्रकट करते हैं। इसके बाद 'मख़वा' दक्षिण चलकर बैंजनाथपुर, करनउल तथा राजवारा आती है। राजवारा के पश्चिम गंडकी-तटबंध से सटे 'ढेकहा' से आनेवाली 'वाया' नामक धार इससे संगम करती है, जिससे यह वहाँ से 'वाया' नदी कहलाने लगती है। संगम के बाद 'वाया' अग्निकोण दिशा में बहने लगती है और इसी दिशा में बिशुनपुरपट्टी, मुरहार, बैकुंठी तथा मथुरापुर नामक गाँवों से होते हुए गुजरती है। मथुरापुर से यह पूरब दिशा में मुड़कर 'सालेहपुर' और सालेहपुर से फिर अग्निकोण में चलकर सरैया, चाँदपुर, चिहुटा तथा जगदीशपुर पहुँचती है। जगदीशपुर से फिर पूरब दिशा में मुड़कर 'बाजितपुर' गाँव को आती हैं। यहाँ से 'वाया' फिर दक्षिण चलती हुई केशोपुर, बभनगावाँ, गिंजास तथा जैंतपुर को अपने तट पर निहारती है। 'गिंजास' दीघनिकाय (२,३,२) के 'गिंजकावसथ' का स्मारक लगता है, जहाँ भगवान् बुद्ध 'नादिका' से चलकर आए थे और वहाँ इन्होंने 'गोसिंग सालवन' में विहार किया था।[१] इस सालवन में भगवान् बुद्ध के जाने के पहले से ही अनिरुद्ध, नंदिय और किंवल नामक बौद्ध भिक्षु विहार कर रहे थे। भगवान् के साथ इन भिक्षुओं को विहार करते देखकर 'दीर्घपरिजन' नामक यक्ष ने वैशाली-क्षेत्र के सौभाग्य को सराहा था। इसी 'गिंजास' के पास के 'जैंतपुर' गाँव का भग्नावशेष निश्चित ही किसी बौद्ध स्मारक का सूचक है। जैंतपुर से 'वाया' दक्षिण दिशा में चलकर 'खरहनिया खास, रघुनाथपुर एवं बायाडीह को पहुँचती है। यहाँ से अग्निकोण में जब चलती है, तब इसके धारा-मार्ग के किनारे सरैया, सैंवरनुआ तथा चितामनपुर गाँव मिलते हैं। यहाँ से दक्षिण मुड़ने पर इसके पश्चिम भाग में रहीमपुर तथा ऐतिहासिक बसाढ़ (वैशाली) ग्राम हैं। इसी 'विशाला' नगरी के पास से बहने के कारण नदी का प्राचीन नाम भी 'विशाला' तथा 'विशल्पा' पड़ा था। विशाला (नगरी) के गौरव मिट जाने पर विशाला नदी का नाम भी मिट गया।

विशाला (वैशाली) नगरी वज्जि-प्रदेश की राजधानी थी, जहाँ संसार का प्रथम गणतंत्र राज्य स्थापित था। वैशाली तीन भागों में बँटकर बसी हुई थी। प्रथम भाग में ७,००० प्रासाद के गुंबज स्वर्ण-पत्र से मढ़े गए थे। दूसरे भाग के १४,००० गुंबज रजत-पत्र से मढ़े गए थे और तीसरे भाग में २१००० गुंबज थे, जो ताम्रपत्र से आच्छादित थे। वैशाली के ही पूर्व भाग में 'कुंडग्राम' था, जहाँ जैनों के २४ वें तीर्थंकर महावीर स्वामी का जन्म हुआ था। वैशाली के प्रधान शासक 'चेटक' था, जिसकी छोटी कन्या मगध-सम्राट् बिंबिसार से ब्याही गई थी और इसी के गर्भ से अजातशत्रु पैदा हुआ था। 'अम्बपाली' वैशाली की ही सुप्रसिद्ध वारवनिता थी, जिसके यहाँ भगवान् बुद्ध ने अपने संघ के साथ भोजन किया था और उस श्रद्धावती गणिका का सौभाग्य बढ़ाया था। यह जैन और बौद्ध धर्म की केंद्र-नगरी थी। मगध के महाराज चंद्रगुप्त की पत्नी कुमार देवी वैशाली के लिच्छवी-कुल की ही पुत्री थी, जिससे समुद्रगुप्त-जैसा प्रतापीपुत्र पैदा हुआ था। यहीं की कूटागारशाला में भगवान् बुद्ध

---

१. मज्झिम-निकाय---१,४,१।

अक्सर निवास करते थे। बौद्धों की दूसरी संगीति, बुद्ध के मरने के १०० वर्ष बाद, इसी वैशाली के 'वालुकाराम विहार' में बैठी थी, जिसकी अध्यक्षता वैशाली-वासी 'महास्थविर सर्वकामी' ने की थी। यह संगीति आठ महीनों तक चली थी और इसमें ७०० महास्थविर सम्मिलित हुए थे और इसी संगीति में बौद्धधर्म दो टुकड़ों में बँट गया था। वैशाली के प्राचीन गौरव का इतिहास स्वयं एक अलग पुस्तक का विषय है। यहाँ तो एक झलक-भर दी गई है।[१]

वाया नदी चिंतापुर से जगदीशपुर तक अग्नि कोण-वाहिनी होकर चलती है और जगदीशपुर से पूर्व-वाहिनी होकर 'इनायत नगर' तथा 'रसूलपुर' पहुँचती है। 'रसूलपुर' के टीले इसकी प्राचीनता के साक्ष्य हैं, जो 'गोरौल' स्टेशन से थोड़ी दूर पश्चिम में है। यहाँ से 'वाया' दक्षिण-वाहिनी होकर 'गोढ़िया चमन' गाँव आती है। अपने भग्न टीले के कारण 'गोढ़िया चमन' भी प्राचीन स्थान ज्ञात होता है। इसी 'गोढ़िया चमन में वाया नदी हाजीपुर-मुजफ्फरपुर-मोटर-मार्ग को पार करती है और वहाँ से थोड़ी दूर अग्निकोण में बहकर हाजी-पुर-मुजफ्फरपुर-रेल-लाइन को भी लाँघ जाती है और तब 'करहरी' गाँव को आती है। यह 'करहरी' भगवानपुर नामक रेलवे स्टेशन के पूर्व में है। यहाँ से अग्निकोण में बहती तथा फतेहपुर पकड़ी गाँव से गुजरती 'महुआ' पहुँचती है, जो हाजीपुर अनुमंडल का एक प्रसिद्ध थाना है। फिर, महुआ से भी अग्नि कोण में बहती हुई यह सिंघरा बुजुर्ग, अदलपुर, बिशुन-पुर, वेदौलिया, हजरत जनदाहा और तब साल्हा पहुँचती है। हजरत जनदाहा 'महनार' से नौ मील उत्तर है और यहाँ प्राचीन भग्नावशेष के चिह्न भी वर्त्तमान हैं। यहाँ 'दीवान शाह अली' नामक एक फकीर[२] की कब्र है, जिसकी अनेक चमत्कारी कहानियाँ यहाँ के लोगों में प्रसिद्ध हैं। इसी लिए मुसलमान लोग 'जनदाहा' को एक अति पवित्र स्थान मानते हैं और इसे 'हजरत जनदाहा' कहते हैं।

साल्हा गाँव के बाद 'वाया' नदी देढ़पुरा तथा मुहम्मदपुर नामक गाँवों को आती है। मुहम्मदपुर में ही एक छोटी सरिता वाया से मिलती है, जो लालगंज के पास से पूर्व की ओर बहती आती है। यह भी कभी इसी 'विशाला' की ही शाखा थी। यह 'सराय' स्टेशन के पास हाजीपुर-मुजफ्फरपुर-रेल-लाइन को पार करती है तथा 'राजा पकर' गाँव होते 'चक सिकन्दर' स्टेशन (हाजीपुर-बछवारा-रेल-लाइन) के पास पूर्वी रेल-लाइन को पारकर 'सहदेई बुजुर्ग' के दक्षिण पहुँचती है। वहाँ से महनार रोड (रेलवे स्टेशन) के पास से पूर्व की ओर बहती हुई 'महम्मदपुर' के नजदीक वाया से मिल जाती है।

इस संगम के बाद 'वाया' अग्निकोण में चलकर 'वासुदेव चंदल' नामक गाँव के पास मुजफ्फरपुर जिले की सीमा से बाहर निकल जाती है और दरभंगा जिले के बिलकुल दक्षिणी भाग के ताराधनउन, हसनपुर एवं शाहपुर पटोरी नामक स्थानों को क्रमशः पहुँचती

१. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए-'बौद्धधर्म और बिहार'। प्रकाशक—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-४

२. इस फकीर का चाचा भी एक प्रसिद्ध फकीर था, जिसका नाम 'मकदूमशाह अब्दुलफतह' था। उसकी कब्र 'हाजीपुर' में है।

है। शाहपुर पटोरी अन्न और तंबाकू की एक अच्छी मंडी है। यहाँ एक भव्य धर्मशाला है तथा यह नगर पूर्वोत्तर रेलवे का प्रसिद्ध स्टेशन है। यहाँ देश के प्रसिद्ध विद्वान् तथा समाजवादी नेता स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्र देव के नाम पर एक महाविद्यालय भी है। यहाँ के व्यापार पर मारवाड़ी-समाज का एकाधिकार है। यहाँ से बाया नदी अग्निकोण में बहती सुलतानपुर चोरासी तथा मुकुंदपुर गाँवों के बीच से बहती रूपौली, गुड़गावाँ तथा अदलपुर नामक गाँवों का स्पर्श करती है। तत्पश्चात् अग्निकोण में ही चलती हुई अरैया, नंदिनी परशुराम, शरहद माधो तथा चांदपुर गाँवों को देखती है। चान्दपुर से 'बाया' अपनी धार उत्तर दिशा की ओर मोड़ती है ओर मोहीउद्दीन नगर रेलवे स्टेशन के पश्चिम में रेल-लाइन से थोड़ी देर के लिए सट जाती है। ऊँचे रेल-पथ के व्यवधान के कारण यह अग्निकोण में मुड़कर 'रहईपुर' गाँव को आती है। यहाँ से फिर उत्तर मुड़ती है और नारायणपुर गाँव से होते रेल-लाइन से सटकर पूर्व दिशा में बहने लगती है। पूर्ववाहिनी गति में 'बाया' के बायें किनारे 'चतरा' तथा दाहिने किनारे 'मस्त अलीपुर' गाँव मिलते हैं और तब यह 'बाजितपुर' पहुँचती है। इसी 'बाजितपुर' में गंगा का एक स्रोत 'बाया' से मिलता है। यह स्रोत गंगा-दियारे के 'चापड़' गाँव से पूर्वोत्तर कोण में चलकर बाकरपुर होते 'भवसिंहपुर' तथा 'बोचहा गाँवों को आता है। इस स्रोत के दक्षिण में भवसिंहपुर है और उत्तर किनारे में बोचहा बसा है। 'बोचहा' गाँव से यह गंगा-स्रोत उत्तर चलता है और बाजितपुर गाँव के उत्तर में आकर 'बाया' से मिलता है। यह स्रोत इस बात का साक्षी है कि यहीं कभी 'बाया' का संगम था, जिसकी छाड़न इस स्रोत के रूप में आजतक विद्यमान है। बाजितपुर रेलवे स्टेशन और बाजितपुर गाँव इन दोनों के मध्य में 'खाँ मिरजापुर' नामक एक गाँव भी बाया के किनारे बसा है। इसी बाजितपुर में मैथिल कोकिल कवि विद्यापति का देहांत हुआ था, जिसके संबंध में कहा जाता है कि जब मरण के लिए वे गंगा-तट पर आ रहे थे, तब बाजितपुर आने पर वे आगे बढ़ने से असमर्थ हो गये। उन्होंने अपने एक गीत के द्वारा गंगा की स्तुति की, जिससे गंगा ने उपरि-चर्चित स्रोत के द्वारा स्वयं बाजितपुर आकर 'विद्यापति' को अपनी गोद में समाहित कर लिया। विद्यापति का वह गीत इस प्रकार है :

बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे। छाड़इते निकट नयन बह नीरे॥
कर जोरि बिनमओं बिमल तरंगे। पुन दरसन होअ पुनमति गंगे॥
एक अपराध छेमब मोर जानी, परसल माए पाए तुअ पानी
कि करब जप-तप जोग धेआने। जनम कृतारथ एकहि समाने॥
भनहि विद्यापति समदओं तोहि। अन्तकाल जनु बिसरह मोहि॥

इस गीत से ज्ञात होता है कि महाकवि विद्यापति अपनी अंतिम अवस्था में बाजितपुर में आकर रहने लगे थे। लगता है कि 'बाजितपुर' के पास कभी गंगा की धारा थी, जिस कारण उक्त स्रोत का नाम आजतक 'मरगंगा' (मृतगंगा) है। कवि के निधन-स्थान में 'बालेश्वरनाथ' महादेव का मंदिर है, जिसमें शिवलिंग की स्थापना विद्यापति की मृत्यु के बहुत काल बाद की गई। यहाँ प्रति रविवार को स्नानार्थियों की अधिक भीड़ होती है।

बाजितपुर के पास के 'खान मिरजापुर' गाँव के बाद ही 'बाया' नदी दरभंगा जिले की सीमा लाँघकर मुँगेर जिले की भूमि में प्रवेश करती है, किंतु बायें किनारे कुछ दूर तक दरभंगा जिले की ही भूमि पड़ती है, जिसका अंतिम गाँव 'मउधनेशपुर' है। यह गाँव प्राचीन है, क्योंकि यहाँ एक बड़ा भग्नावशेष दीख पड़ता है। वाजिदपुर गाँव से दक्षिण 'मरगंग' वाला स्रोत ही मुँगेर और दरभंगा जिले की सीमा बनता है। अतः, मरगंग-स्रोत जहाँ 'बाया' में प्रवेश करता है, वहाँ से सटे पूर्व में तथा 'बाया' नदी के दाहिने भाग में मुँगेर का 'चमथा' नामक गाँव स्थित है। दरभंगा जिले के 'मउधनेशपुर' गाँव के ठीक दक्षिण तथा बाया नदी के दाहिने भाग में एवं गोपालपुर नामक गाँव के पूर्वोत्तर कोण में गंगा का एक और स्रोत प्रवेश करता है, जो 'चमथा' की ओर से बहकर आता है। वर्षाऋतु की बाढ़ में गंगा और बाया का पानी मिलकर बछवारा से बरौनी तक की भूमि को आप्लावित कर देता है। इसलिए बाया के पूर्वी किनारे एक बृहत् तटबंध बनाया गया है। सन् १९७१ ई० में गंगा की बाढ़ ने इस क्षेत्र को समुद्र में परिणत कर दिया था। इसके बाद भी 'बाया' नदी पूर्व दिशा में बहती हुई तथा दादूपुर गाँव से होती 'सुरो' नामक गाँव के दक्षिण में आती है। यहाँ यह तेघड़ा से पश्चिमोत्तर दिशा में दलसिंहसराय जानेवाले मोटर-मार्ग से सट जाती है। यह स्थान 'बछवारा' से पश्चिम में पड़ता है और इस मार्ग से सटकर दक्षिण की ओर झुकती अग्निकोण में बहने लगती है। बाया नदी के इस प्रवाह-क्रम में इसके बायें तट पर 'रानी' नामक प्राचीन ग्राम है। 'रानी' के दक्षिण जब 'बाया' बढ़ती है, तब इसके दाहिने किनारे महम्मदपुर, राउत गाँव तथा बायें किनारे तेघड़ा दिखाई पड़ता है। तेघड़ा के बाद यह बिल्कुल अग्निकोण में बहती है और फुलवरिया के दक्षिण पहुँचती है। फुलवरिया तथा बरौनी—ये दोनों गाँव बाया के वाम पार्श्व में स्थित हैं। बरौनी में ही पूर्वोत्तर रेलवे का जंकशन है और यह स्थान बहुत बड़ा औद्योगिक नगर बन गया है। बरौनी के संबंध में पहले लिखा जा चुका है। गरहरा, बारो, निपनिया, बरौनी, फुलवरिया, पपउर, मालती आदि गाँव एक बड़े औद्योगिक नगर में रूप में परिणत हो गये हैं। यहाँ से 'बाया' दक्षिण में मुड़कर निपनिया, बारो तथा अमरपुर पहुँचकर इसके पूर्व भाग में गंगा-प्रवेश कर जाती है। बाया-संगम के पूर्व में मोकामा का 'राजेन्द्र पुल' है, जो गंगा नदी के ऊपर बना है। 'बाया' का संगम बहुत प्राचीन काल में 'पुणारक' के सामने गंगा के उत्तर भाग में 'चमथा' के पास था, जहाँ कभी बूढ़ी गंडकी भी अपनी 'जमुआरी' शाखा की धार से बहती हुई, चमथा के पास ही गंगा में संगम करती थी, जिससे गंगा का प्रवाह 'चमथा' से अग्निकोणवाही बन गया था और आज तक अग्निकोणवाही ही बना हुआ है।

बूढ़ी गंडकी : सिकरहना

जिस 'विशाला' या 'विशल्या' नदी का उल्लेख महाभारत और पद्मपुराण में मिलता है और जिसकी चर्चा अभी-अभी 'बाया' के क्रम में की गई है, वह 'विशाला' नदी आजकल यही 'बूढ़ी गंडकी' है। क्योंकि, जिस 'सोमेश्वर' पर्वत-श्रेणी की नदियों का जल-भांडार पहले बहकर 'बाया' (विशाला) में आता था, वह अब 'बूढ़ी गंडकी' (सिकरहना) की धारा से बहता है, अतः आजकल बूढ़ी गंडकी ही वास्तविक 'विशल्या' नदी है। विहार की बड़ी नदियों में 'उत्तर कोइल' और 'किऊल' (दक्षिण विहार) तथा 'बूढ़ी गंडकी' (उत्तर विहार)—ये तीन ही ऐसी नदियाँ हैं, जो विहार प्रांत में उद्गमित तथा विसर्जित होती हैं। इनके अतिरिक्त कर्मनाशा, फल्गु, पुनपुन तथा सकरी (शुक्तिमती) भी पुराण-प्रसिद्ध नदियाँ हैं, जो विहार में जनमती तथा विलुप्त होती हैं। किंतु जल-समृद्धि की दृष्टि से किऊल, कोइल और बूढ़ी गंडकी का जो महत्त्व है, वह विहार में जनमने और विलुप्त होनेवाली दूसरी किसी नदी का नहीं है।

उद्गम स्थान और चंपारन जिले में धारा-मार्ग :

चंपारन जिले में 'बूढ़ी गंडकी' के उद्गम-स्थान के संबंध में प्रचलित लोक-धारणा के अनुसार यह मान लिया गया है कि इसका उद्गम-स्थान बगहा से अग्निकोण की ओर चार मील दूर पर स्थित 'विश्वंभरपुर' गाँव के एक चौर में है तथा चंपारन जिले में इस नदी का नाम 'सिकरहना' है। इस जिले में यह नदी उस भूमि-भाग से बहती है, जिस भूमि में शिकार करने योग्य घना वन था, इसलिए नदी का नाम भी सिकरहना (शिकार-वन) पड़ा। फिर 'बूढ़ी गंडकी' नाम से अनुमान होता है कि कभी इस झील में 'गंडकी' का जल भी उसकी छाड़न से आता था; क्योंकि यहाँ से गंडकी केवल दो-ढाई मील के फासले पर पश्चिम में बहती है। यदि कभी गंडकी का पानी इसमें आता होगा, तो वह 'रजवटिया' तथा 'कौलापुर' से होकर गुजरता होगा, जिससे इसका नाम आजतक 'बूढ़ी गंडकी' बना हुआ है। यदि बूढ़ी गंडकी की मूल धारा इसी स्रोत को माना जाय, तो कहना होगा कि संपूर्ण सोमेश्वर पर्वत-श्रेणी' का जल ढलकर इसमें आता है, जिससे बूढ़ी गंडकी एक विशाल नदी बन जाती है। किंतु बूढ़ी गंडकी कोई अलग नदी नहीं है और इसका वास्तविक मूल स्रोत 'हरहा' का मूल स्रोत है, जो आगे बढ़ने पर 'मसान' नदी और फिर और दूर जाने पर 'सिकरहना' नदी के नाम से अभिहित होता है। उत्तर विहार की नदियों में जलस्रोत की दृष्टि से 'नारायणी' (बड़ी गंडकी) तथा 'कोसी' के बाद इसी 'बूढ़ी गंडकी' का सर्वोच्च स्थान है। इसमें हरहा,

कापन, मसान, बाणगंगा, पंडई, मनियरी, करटहा, उरिया, तेलावे, पसाह, तियर आदि ३२ निर्झरिणियों का भारी जल-भांडार आता है। इन नदियों के अतिरिक्त चंपारन जिले के भीतरी भाग से बहनेवाली नदियों का जल भी इसी बूढ़ी गंडकी के गर्भ में समाता है। चंपारन जिले के भीतरी भाग की नदियाँ प्राचीन विशाला के ही टूटे तथा छोड़े गए स्रोत हैं। प्राचीन 'विशाला' नदी के ही स्मारक चंपारन जिले के 'चौर' और 'दह' भी वर्त्तमान हैं।

उत्तर विहार में जितनी नदियाँ वहती हैं, उनमें किसी भी नदी की चाल-ढाल में इतनी कुटिलता नहीं है, जितनी बूढ़ी गंडकी की गति में है। चंपारन के 'लौरिया नंदनगढ़' के पास से ही इसकी चाल में जो वक्रता आती है, वह इसके गंगा-संगम तक बनी ही रह जाती है। अपनी सर्पिल चाल के कारण इसने अपने दर्जनों प्रवाह-पथों का निर्माण किया है और पश्चिम में 'वाया' की धारा से आरंभ करके पूरब दिशा में 'वागमती' की धार तक यह अपनी भुजा पसारती रही है। आज भी कई स्थानों पर साँप-सा गेंड़ुर मारती और घुँघुराली लट-सी पेचोखम खाती आगे बढ़ती और बहती गई है।

बूढ़ी गंडकी का उद्‌गम-स्रोत यदि पूर्वकथित 'विश्वंभरपुर' ग्राम का चौर माना जाय, तो इसमें संगम करनेवाली पहली नदी वह होगी, जो 'चौतरवा' गाँव की उत्तर दिशा में तथा 'पिपरा' (पिपरा स्टेशन नहीं) के नैॠत्य कोण में इससे संगम करती है। यह संगम नारायणी-तट के पूर्वी किनारे के 'रतवल' और 'पतिलर' गाँव से सिर्फ दो-डेढ़ मील दूर पूर्वोत्तर कोण में है तथा रतवल से उत्तर भैरोगंज जानेवाली सड़क के पूर्व में है। संगम करनेवाली निर्झरिणी का अपना कोई महत्त्व नहीं है। यह 'हरहा' की घाटी के दक्षिण-पश्चिम कोण वाली पहाड़ी के अग्निकोण से ढलती है और सीधे दक्षिण बहकर 'खतौरा' ग्राम के पास पहुँचती है। यहाँ यह त्रिवेणी घाट से रामनगर जानेवाले मोटर-पथ को पार करती है और 'भैरोगंज' रेलवे स्टेशन के पास पहुँचती है। भैरोगंज में ही यह पुरानी त्रिवेणी-नहर को पार करती है तथा इसी के पास 'रामनगर' से 'बगहा' जानेवाले रेल-पथ को भी लाँघ जाती है। इसके बाद यह 'मेढ़' तथा 'प्रतापपुर' गाँवों से होती हुई 'चौतरवा' गाँव के उत्तर भाग में ही 'सिकरहना' से मिल जाती है।

हरहा : उक्त संगम से पूरव फिर सिकरहना (बूढ़ी गंडक) में संगम करनेवाली दूसरी नदी 'हरहा' है, जिसे 'मसान' नदी भी कहा जाता है। यह दो धाराओं में बँट कर सिकरहना से संगम करती है। एक शाखा 'करजनिया' गाँव के पास और दूसरी बड़ी शाखा इससे डेढ़ मील पूरब 'वरियरवा' गाँव के अग्निकोण में तथा 'वसंतपुर' के उत्तर 'सिकरहना' में संभेद करती है। यह संगम-स्थान 'लौरियानंदन गढ़' से साढ़े तीन मील और 'गंदौली' गाँव से डेढ़ मील पश्चिमोत्तर कोण में पड़ता है। सच पूछिए, तो 'सिकरहना' का मूल अस्तित्व 'हरहा' नदी के ही जलभांडार पर स्थित है, इसलिए हरहा से कोई अलग नदी यह नहीं है।

नारायणी (बड़ी गंडकी) के प्रसंग में कहा गया है कि 'हरहा' नदी सोमेश्वर पर्वत के पश्चिमी भाग को विदीर्ण करके बहती है। हरहा नदी का दरी-प्रवाह-पथ वायव्य कोण से अग्नि कोण की ओर बढ़ता है, जिससे यह पर्वत अपने नैऋत्य कोण में दो भागों में विभक्त-सा हो गया है। 'सोमेश्वर' पहाड़ अपने पश्चिमोत्तर भाग में १३२८ फुट ऊँचा नुकीला भाग लिए खड़ा है, जहाँ से 'हरहा' नदी प्रवाहित होती है। प्रारंभ में इसके दो स्रोत चलते हैं और पहाड़ी भाग के 'गरदी' नामक गाँव (चंपारन जिले) के पास मिलकर पूर्व-दक्षिण कोण में लुढ़कते हुए झरने की तरह बहने लगते हैं। गोबरहिया' गाँव के पास 'हरहा' में एक दूसरा जल-स्रोत भी मिलता है, जो उत्तर के ऊपरी भाग से दक्षिण आता है। यह स्रोत १६७६ फुट की ऊँचाई पर बसे 'बलुआ' नामक गाँव से चलता है और पहाड़ी भाग के 'धायर' तथा 'गोबरहिया' गाँवों को स्पर्श करता 'हरहा' नदी में गिरता है। वस्तुतः इन तीनों स्रोतों के मिलने के बाद ही 'हरहा' नदी अपना वास्तवित रूप ग्रहण करती है। इस स्रोत के ग्रहण करने के बाद भी 'हरहा' अग्नि कोण में चलती है और 'नरकटिया' नामक एक पर्वतीय ग्राम को पहुँचती है। 'नरकटिया' से डेढ़ मील पूर्व में **'कापन'** नदी 'हरहा' से संगम करती है। प्रारंभ में 'कापन' की भी दो जीभें निकलती हैं, जिनमें पूर्वी जीभ 'खैरावास' गाँव के क्षेत्र से नैऋत्य कोण में आती है और 'बनकटवा' नामक वन्य ग्राम के पश्चिमोत्तर भाग में पश्चिमी जीभ से मिल जाती है। इसके बाद 'कापन' नदी 'रूपवलिया' तथा 'सहेरवा' गाँवों के मध्य भाग से दक्षिण की ओर बहती 'हरहा' में समाती है। 'कापन' का जल समेट कर 'हरहा' पूर्व की ओर चलती है और सोमेश्वर पर्वत के और भी पाँच स्रोतों को समेटती है। इन स्रोतों के मध्य में 'रघिया' और 'शीतलवारी' नामक पर्वतीय ग्राम हैं, जो उत्तरी भाग में चंपारन जिले की सीमा पर हैं। उक्त पाँचों स्रोतों को समेटकर 'हरहा' नदी दक्षिण दिशा में दौड़ती है और फिर पूर्व की ओर मुड़कर झट अग्निकोण-वाहिनी बन जाती है। इस भाग में यह 'रामनगर' तथा 'बगहा' थाने की सीमा बनकर १५-१६ मीलों तक चलती है। बगहा थाने का ऊँचा पार्वत्य भाग इसके दाहिने किनारे पड़ता है, जिसके पादमूल में 'हरहा' गंगा की तरह उत्सर्पण करती है और तब समतल जमीन पर आकर बहने लगती है। गरदी गाँव से मसान-संगम तक इसके बायें भाग में घोर जंगल फैला हुआ है, जिसमें उत्तम किस्म के सालवृक्ष भरे हुए हैं। जंगली जानवरों की भी इस भाग में भरमार है। हरहा नदी जहाँ पवर्तीय भाग से उतरती है, वहीं से **'मसान'** नाम धारण कर लेती है। **'मसान'** नाम धारण करने का प्रमुख कारण यह लगता है कि जो स्रोत 'बाणेश्वर महादेव' के पश्चिमी हिस्से से चलकर पश्चिम की ओर बहता है, उसका नाम 'मसान' है। यह स्रोत 'डुमरी' गाँव के सटे नैऋत्य कोण में आकर 'हरहा' से संगम करता है और 'हरहा' का नामशेष करके अपने नाम को विख्यात कर देता है। इसके बाद 'हरहा'-बनाम 'मसान' 'सिवरही' और 'सिगाही' गाँवों के मध्य भाग से होकर अग्नि-कोण में प्रयाण करने लगती है।

हरहा से सम्मिलित होकर मसान जब आगे बढ़ती है, तब 'चुरहरवा' गाँव के पास

इसमें एक दूसरी नदी भी मिलती है, जो 'सिंगहा' नाम से ही अभिहित की जाती है। इसका उद्गम-स्थान भी मसान के उद्गम के सामने पूर्व में है और वहाँ से यह दक्षिण दिशा की ओर बहती है। संगम से दक्षिण में सम्मिलित मसान के दाहिने किनारे और 'चुरहरवा' के ठीक सामने पश्चिम में, 'पथरी' गाँव स्थित है। संगम के अग्निकोण में 'चुरहरवा' दिखाई पड़ता है। सिंगहा की एक शाखा तो चुरहरवा के पास संगम करती है, पर इसकी दूसरी धारा थोड़ा अग्निकोण में हटकर चलती हुई 'रामनगर' को आती है।

चुरहरवा-संगम के पश्चिमोत्तर भाग में, संगम के ऊपर ही, 'चमरडीह-वड़गाँव' नामक गाँव के पूर्वोत्तर भाग में 'हरहा-वनाम मसान' अपनी दो धाराएँ बनाती है। 'चमरडीह-वड़गाँव' हरहा के दाहिने भाग में मिलता है। दाहिनी धारा, यानी पश्चिमी धारा, हरहा की पुरानी धारा है, जो अब बहुत ही क्षीण हो गई है। इसी धारा को कुछ लोग 'जुरी पानी' नाम से पुकारते हैं। यह हरहा की मुख्य धारा के समानांतर दाहिनी भुजा बनकर दक्षिण की ओर चलती है तथा 'कुंभिया कलाँ' तथा 'बरबेलवा' गाँवों के निकट से होते हुए भैरोगंज एवं 'हरिनगर' रेलवे स्टेशनों के मध्य में आती है। यहाँ यह रामनगर-बगहा-रेल लाइन को पारकर 'जमुनिया' तथा 'सलहा' गाँवों का स्पर्श करती और भैरोगंज से बसवरिया आनेवाली सड़क के समानांतर दक्षिण चलती हुई 'बरियरवा' गाँव के पश्चिम, 'करजनिया' के उत्तर और 'पिपरा' नामक गाँव के पूर्व-दक्षिण कोण में पूर्वोक्त 'सिकरहना' से संगम करती है। यह संगम-स्थान 'चौतरवा' से चार मील पूर्व में तथा 'पतिलर' से छह मील की दूरी पर थोड़ा पूर्वोत्तर कोण में झुका हुआ है। किंतु, 'मसान' की बड़ी धारा जो दक्षिण चलती है, वह पथरी, फगनहुटा, बेली और बलिया नामक गाँवों के आस-पास से गुजरती 'हरिनगर' रेलवे स्टेशन के पश्चिम ही तथा अपनी पुरानी धारावाली राह के पूरब, रेल-लाइन को पार करती है। पथरी के पास यह गंडक की पूर्वी नेपाल शाखा नहर के ऊपर से बहती है और 'साइफन' देकर बड़ी नहर हरहा के नीचे से बहाई गई है। इसके बाद भी मसान दक्षिण दिशा में ही बहती है और मुरेरा, रायबारी-महुअवा, सेरहवा, बट्टुआरी, मुरिला आदि गाँवों को अगल-बगल में निहारती बरियरवा गाँव के अग्निकोण में तथा 'बसंतपुर' के पश्चिमोत्तर कोण में एवं पश्चिम से पूर्व की ओर बहनेवाली सिकरहना के वाम पार्श्व में अपना जल डाल देती है। यहाँ 'सिकरहना' के बाएँ किनारे उत्तरभाग में 'बरियरवा' तथा इसके दाहिने किनारे दक्षिण भाग में 'बसंतपुर' स्थित है। हरहा बनाम मसान की यही धारा पुराकाल में सीधे दक्षिण बहकर 'पिपरहिया' के पास बड़ी गंडकी की आधुनिक धार से मिलकर बहती थी और 'विशाला' नाम से व्यवहृत होती थी।

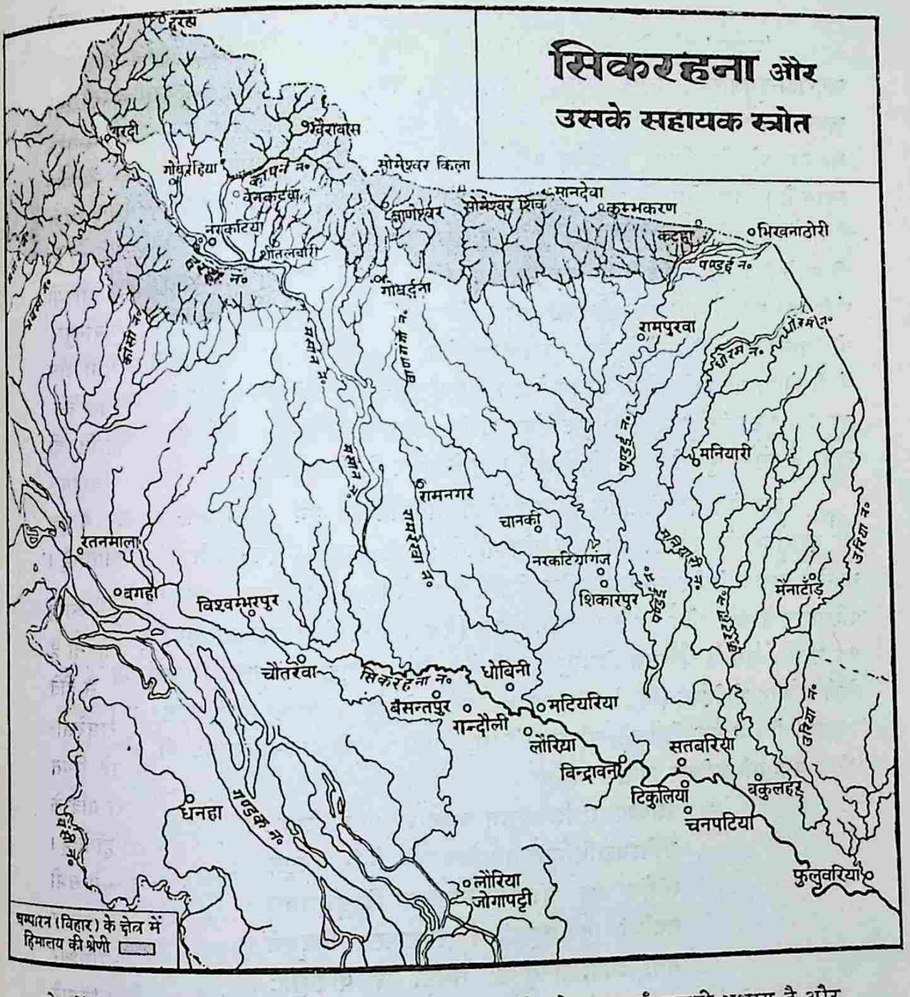
यह पहले कहा गया है कि 'चुरहरवा' के पास सिंगहा नदी दो भागों में विभक्त होती है, जिसमें एक धारा वहीं 'हरहा' से मिलती है और दूसरी धारा 'रामनगर' से बहकर 'लौरिया नंदन गढ़' से उत्तर तथा 'मठिअरिया' के नैऋत्य कोण में सिकरहना से संगम करती है। सिंगहा की इसी धारा का नाम 'रामरेखा' नदी है और सिकरहना में संगम करने के पहले बाणेश्वर, सोमेश्वर, मानदेवा तथा कुम्भकरण आदि चोटियों से बहनेवाली अनेक

निर्झरिणियों के जल से सम्मिलित होकर बहती है, जिन निर्झरिणियों की चर्चा आगे की जायगी।

रामरेखा नदी 'चउतरवा' से दक्षिण 'फगनहुटा' आती है और तब 'भावल' तथा 'वरवा-वनजरिया' गाँवों के बीच भाग से बहती 'रामनगर' पहुँचती है। रामनगर चंपारन जिले का एक प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान है और रेलवे का स्टेशन भी है। यहाँ किसी प्राचीन टीले का ध्वंसावशेष भी है। यहाँ के जमींदार चित्तौरगढ़ के रतन सिंह के वंशज माने जाते हैं। रतन सिंह ने अपने प्रभुत्व तथा बाहुवल से नेपाल में राज्य कायम किया था। उन्हीं की छठी पीढ़ी में मुकुन्द सिंह नाम के राजा हुए, जिन्होंने अपनी जमींदारी को चारों भाइयों के बीच बँटवारा कर दिया। इनमें पृथ्वीपाल सिंह को बुटवल, लंगी सिंह को मकवानपुर, राजसिंह को राजपुर तथा बुटंगी सिंह को तेलाहु-क्षेत्र की जमींदारी दी गई। ये सभी क्षेत्र नेपाल-राज्य के हैं। इनमें से बुटंगी सिंह ने 'रामनगर' (चंपारन) में भी अपना गढ़ वनवाया। सन् १६७६ ई० में औरंगजेब ने 'रामनगर' के जमींदार को राजा की उपाधि दी और फिर अँगरेजों ने भी सन् १८६० ई० में इस राजवंश को ही राजा की पदवी से विभूषित किया था। चंपारन जिले में इस राजवंश की अच्छी प्रतिष्ठा रही है। रामनगर से एक सड़क सीधे उत्तर की ओर मेघवल, घोराघाट और गोबर्द्धना होते वाणेश्वरतीर्थ को जाती है।

रामरेखा नदी रामनगर से दक्षिण की ओर बहती पचरुखा, पकरी, मधुबनी आदि गाँवों से होते हुए 'गवनन' नामक गाँव को आती है। गवनन में यह पूर्व की ओर मुड़ती है और फिर अग्निकोण-वाहिनी बनकर वेलवा, लाकड़ और धोबिनी नामक गाँवों से होते 'मटिअरिया' पहुँचकर बूढ़ी गंडक से मिल जाती है। वेलवा, लाकड़ और धोबिनी रामरेखा-धार के दाहिने किनारे पश्चिम में तथा 'मटिअरिया' इसके बाएँ भाग में पूर्वी किनारे स्थित हैं। रामरेखा अपने संगम-स्थान के पहले, लगभग डेढ़ मील उत्तर में, रोआरी गाँव के नैऋत्य कोण में, सात नदियों के पानी से संयुक्त होने के बाद सिकरहना में सम्मिलित होती है। इसके मुहाने पर धोबिनी, मटिअरिया, गोवरउरा, गंदौली तथा लौरियानंदनगढ़—ये सभी स्थान प्राचीन अवशेषों से भरे हुए पुरातात्त्विक स्थान हैं। जिन सात नदियों के जल-भांडार के साथ 'रोआरी' के पास रामरेखा संयुक्त होती है, उन नदियों का क्षेत्र—वाणेश्वर महादेव से आरंभ करके पूर्व में कुंभकरण क्षेत्र तक—यानी पंडई नदी के पश्चिमी किनारे तक (नरकटियागंज-भिखना ठोरी जानेवाले मार्ग के तमाम पश्चिमी भाग तक) फैला हुआ है। अब यहाँ इन सातों नदियों का नातिदीर्घ विवेचन आवश्यक है।

उपर्युक्त सातों नदियों में सबसे पश्चिमी भाग की नदी '**बाणगंगा**' है, जो सोमेश्वर-पर्वतमाला के 'वाणेश्वर महादेव' स्थान से दक्षिण की ओर ढलती है। सोमेश्वर किला (नेपाल) के दक्षिण में चंपारन जिले की सीमा में वाणेश्वर है। वाणगंगा वाणेश्वर महादेव से चलकर गोवर्द्धना, घोराघाट, खैरा, मछगाँवाँ और सोन्हा होते जब 'मधुबनी' तथा 'जवका' नामक गाँवों को आती है, तब यहाँ से अग्निकोण में बहने लगती है। गोवर्द्धना के ऊपर के



क्षेत्र में 'वाणगंगा' के दोनों भाग में, उत्तर से दक्षिण की ओर, ढलुवाँ पहाड़ी भूभाग है और इस भाग में तमाम सोमेश्वर-पर्वतमाला के सघन जंगल भरे हुए हैं। 'वाणगंगा' के संबंध में 'वराहपुराण' कहता है कि सोमेश्वर शिव के दक्षिण में रावण ने अपने वाण से पर्वत को विदीर्ण करके इस जल-धारा को प्रवर्त्तित किया था, इसलिए इसका नाम 'वाणगंगा' पड़ा। यह पापों को नाश करनेवाली पुण्यदायिनी नदी है :

सोमेशात् दक्षिणे भागे वाणेनाद्रिं विभिद्य वै।
रावणेन प्रकटिता जलधाराति पुण्यदा।
बाणगङ्गेति विख्याता या स्नाता चाघहारिणी।''

—वराहपुराण, १४४।७०–११

'जबका' गाँव के बाद अग्निकोणवाहिनी बाणगंगा नरकटियागंज पहुँचने के पहले छगुराही-बनजरिया, चैनपुर, हरपुर, लंगरा, बरवा, महुअवा आदि गाँवों से गुजरती आती है। छगुराही-बनजरिया के पास गंडक बराज की नई नहर इसके ऊपर से बहती है। आगे महुअवा गाँव के पश्चिम, बाणगंगा नदी के पश्चिमी भाग में, चानकीगढ़ नामक अति प्राचीन स्थान है। कुछ लोग इसे 'जानकीगढ़' भी कहते हैं और राजा जनक से इसका संबंध जोड़ते हैं। किंतु, अधिकांश चंपारनवासी इसे चाणक्य का पितृ-स्थान मानते हैं और 'चानकीगढ़' ही कहते हैं। इनका तर्क है कि चंद्रगुप्त मौर्य चंपारन की मोरियवंशी संतान था, अतः उसका मंत्री चाणक्य भी यहीं का रहनेवाला था। किंतु, यदि चंद्रगुप्त चंपारन भूमि का पुत्र था, तो 'चानकीगढ़' भी उसी के नाम का स्मारक होगा और मोरियों की राजधानी चानकीगढ़ में ही होगी, यह तर्क अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। जो हो, यहाँ के ध्वंसावशेष हाल-तक ६० फुट ऊँचा तथा २५० फुट लंबा था। आज से ७०-७५ वर्ष पहले बेतिया के राजा ने इसकी खुदाई कराई थी, जिसमें ताँबे के प्रचुर सिक्के मिले थे।

बाणगंगा नरकटियागंज के उत्तर में ही सोमेश्वर की अन्य पाँच नदियों का जल ग्रहण कर नरकटियागंज पहुँचती है। उन पाँच नदियों में से सबसे पश्चिमवाली नदी 'सोमेश्वर' महादेव नामक तीर्थ-स्थान से प्रवाहित होती है। सोमेश्वर का किला इस तीर्थ-स्थान से पश्मोत्तर में चार मील दूर है। वराह पुराण (१४४।१६-२०) में बतलाया गया है कि जिस प्रकार इस भाग में चक्रनाभ शिलाएँ मिलती हैं, उसी प्रकार शिवनाभ शिलाएँ भी प्राप्त होती हैं और सोमेश्वर (शिव) के कारण इस पर्वत को वह शिवरूप गिरि कहता है। उसके अनुसार सोम ने इस लिंग की स्थापना की थी, जिससे उसकी शाप-मुक्ति हुई थी और उसने अपना यथापूर्व तेजोरूप प्राप्त किया था :

शिवनाभाः शिलास्तत्र चक्रनाभास्तथा शिलाः ।
सोमेश्वराधिष्ठितस्ततु शिवरूपो गिरिः स्मृतः ॥
सोमेन तत्र संस्थाप्य स्वनाम्ना लिङ्गमुत्तमम् ।
वर्षाणां तु सहस्रं वै स्वशापस्य निवृत्तये ॥
ततः शापाद्विनिर्मुक्तः तेजसा च परिप्लुतः ।
स्वकं तेजोबलं प्राप्य तुष्टाव गिरिजापतिम् ॥
सोमेश्वराच्च वरदं आविर्भूतं त्रियम्बकम् ।

—वराह पु०, १४४, १६-२०

उक्त सोमेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन करते हुए वराह पुराण (१४४, ३१) कहता है कि महादेव ने स्वयं कहा है कि विष्णु भगवान् शालग्राम-गिरि पर रहते हैं और मैं सोमेश्वर गिरि पर वास करता हूँ, इसीलिए वहाँ प्राप्त होनेवाली शिलाएँ विष्णु-शिलाएँ कहलाती हैं और यहाँ प्राप्त होनेवाली शिव शिलाएँ हैं :

शालग्रामगिरि विष्णु रहं सोमेश्वराधिपः ।
तयोः पर्वतयो र्या वै शिला विष्णु शिवाभिधा ॥

इस सोमेश्वर तीर्थ की चर्चा महाभारत के वनपर्व (अध्या० ८४, ११६) में भी है, जिसे वह सोमपद तीर्थ कहता है। फिर, 'पद्म पुराण' के स्वर्ग खंड (अध्या० ३८/४५)में भी इस क्षेत्र में ऋण से मुक्त सोम की तथा विष्णुरूप महादेव की स्थिति बतलाई गई है :

अभिगम्य महादेवं वरदं विष्णुमव्ययम् ।
विराजते यथा सोम ऋणमुक्तो युधिष्ठिर ॥

फिर, 'वामन पुराण' भी निम्नलिखित पंक्तियों में सोमेश्वर-तीर्थ की महिमा का गुण-गान करता है :

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सोमतीर्थमनुत्तमन् ।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा व्याधिमुक्तोऽभवत् पुरा ॥
यत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥
व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तः सर्वदोषविवर्जितः ।
सोमलोकमवाप्नोति सुखेन रमते चिरम् ॥

—वा० पु०, परि० पृ० ७३५

सोमेश्वर स्थान से दो नदियाँ दक्षिण की ओर प्रवाहित हुई हैं। पश्चिमी निर्झरिणी पर्वतीय भूमि को पार कर 'परसा' में उस मार्ग को पार करती है, जो पश्चिमी भाग के त्रिवेणी घाट से, पहाड़ की तलहटी से पूर्व की ओर चलता, भिखनाठोरी को जाता है। परसा के बाद दक्षिण बहती हुई यह नदी क्रमशः पोखरिया, तुर्कवलिया (तुरकौलिया), इटवा, चिउंटहा, एकडरवा, बड़गाँव तथा मनवा नामक गाँवों को निहारती है। इनमें से 'इटवा' नामक गाँव के पास इसके ऊपर से गंडक बराज की पूर्वी नेपाल-नहर पूर्व की ओर बहती जाती है। मनवा में पहुँचकर सोमेश्वर से बहनेवाली पूर्वी नदी से तथा कुम्भकरण पहाड़ी भाग से वहकर आने-वाली अन्य चार सरिताओं से संगम करके यह बाणगंगा में नरकटियागंज के पास मिलती है और तब रोआरी के पास रामरेखा का जल लेकर सिकरहना में समाती है।

सोमेश्वर महादेव से चलनेवाली दूसरी धारा 'सोनवरसा' गाँव के पास पहाड़ी क्षेत्र को छोड़ती है और यहीं त्रिवेणी घाट-भिखनाठोरी वाले मार्ग को पार करती है। वहाँ से अग्निकोण में बहती परसा, हरदी तथा पिपरा होते जरिया नामक गाँव से उत्तर ही अन्य चार पहाड़ी नदियों से संगम करती है। यह संगम नरकटियागंज से भिखनाठोरी जानेवाली रेलवे के एक स्टेशन 'अमोलवा' के पश्चिम में है और नरकटियागंज-भिखनाठोरी-राजमार्ग के किनारे में ही स्थित है। अन्य चार धाराएँ मानदेवा और कुम्भकरण पहाड़ के भू-भाग से दक्षिण की ओर बहती हैं। 'वराह पुराण' से पता चलता है कि मानदेवा तथा कुम्भकरण के पहाड़ी-भूभाग का नाम 'नर्त्तनाचल' पर्वत था और उस क्षेत्र के जंगल का नाम 'रावण तपोवन' था। उक्त पुराण के अनुसार इसी पर्वत भाग में शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण ने नृत्य किया था, जिससे इस पर्वत-भाग का नाम 'नर्त्तनाचल' पड़ा था :

सोमेशात् पूर्वदिग्भागे रावणस्य तपोवनम् ।
यत्र स्थित्वा त्रिरात्रेण तपसः फलमश्नुते ।।
यत्र नृत्येन देवेशस्तुष्टस्तस्मै वरं ददौ ।
तेन रावण-नृत्येन प्रख्यातो नर्त्तनाचलः ।।

—वराह पु०, १४४, ७२-७३

इस प्रकार, 'मानदेवा' भाग की दो और 'कुम्भकरण' क्षेत्र की दो सरितात्रों का संगम 'मछौली' के पास होता है, जिसके सटे दक्षिण में चंपारन की पुरानी नहर इन्हें पार करती है। मछौली प्राचीन स्थान है, जो नरकटियागंज भिखनाठोरी-राजमार्ग पर अवस्थित है। इस प्रकार, चारों सरिताओं का जल मिलकर दक्षिण चलता है और 'जरिया' गाँव के पास सोमेश्वर वाली पूर्वी नदी से मिलता है। यह सम्मिलित जल थोड़ा नैर्ऋत्य कोण में हटता हुआ दक्षिण की ओर वहता है और तब 'मनवा' गाँव के अग्निकोण की ओर सोमेश्वर की पश्चिमी धारा से सम्मिलित होता है, जिसका विवरण पहले लिखा गया है। इस प्रकार, पाँचों नदियों का जल अग्निकोण में बहता 'सिसवा' तथा 'पकरी' आता है, जहाँ नरकटियागंज-भिखना-ठोरी रेलवे मार्ग से पश्चिम में सट जाता है। नरकटियागंज से डेढ़-दो मील उत्तर में रेल-लाइन के किनारे पकरी गाँव है। यह सारा जलस्रोत नरकटियागंज के सटे उत्तर में 'बाणगंगा' नदी में समा जाता है।

यह पहले भी कहा गया है कि 'वाणगंगा' नरकटियागंज के पास सोमेश्वर आदि स्थानों से आनेवाली पाँच नदियों का जल ग्रहण कर पहुँचती है। नरकटियागंज चंपारन जिले का सबसे बड़ा रेलवे-जंक्शन है, जहाँ से चारों दिशाओं में रेलगाड़ियाँ जाती हैं। पूर्व में रक्सौल, सीतामढ़ी और दरभंगा जाने की, पश्चिम में रामनगर और बगहा जाने की, दक्षिण में वेतिया, मोतीहारी और मुजफ्फरपुर जाने की तथा उत्तर में नेपाल के भिखनाठोरी जाने की रेल लाइनें बिछी हैं। नरकटियागंज का जंक्शन वस्तुतः 'शिकारपुर' नामक स्थान में है, पर आजकल शिकारपुर का नाम कम लोग जानते हैं, सभी नरकटियागंज के नाम से ही इस स्थान को पहचानते हैं। इस स्थान से थोड़ा उत्तर-पूर्व कोण में झुक कर तीन मील दूर एक और 'शिकारपुर' है, जो 'दीवानजी का शिकारपुर' कहलाता है। यहीं के रहनेवाले श्री विपिन-विहारी वर्मा थे, जो वेतिया-राज्य के वहुत दिनों तक दीवान थे। 'दीवानजी का शिकारपुर' पण्डई नदी के ठीक पूर्वी तट पर स्थित है।

वाणगंगा नदी नरकटियागंज रेलवे जंक्शन के सटे पश्चिम में रेल-लाइन को पार कर, नरकटियागंज-लौरिया सड़क के किनारे-किनारे, 'सिरहथा' गाँव से होते 'मढ़िया' के उत्तर में आकर नैर्ऋत्य कोण में चलती है और तव'मढ़िया' के दक्षिण पहुँचती है, जहाँ रामनगर से आने वाली छोटी नहर का पानी इसमें गिरता है। यहाँ एक नाला भी इसमें संगम करता है, जो रामनगर के पूर्व वाले 'चौर' से चलता है और कभी किसी काल का यह वाणगंगा की ही छाड़न-धार है। इसके बाद भी बाणगंगा नैर्ऋत्य कोण में ही बहती है और जव यह

'रौआरी' गाँव के नैऋत्य कोण में और 'वेलवा' के पूर्वोत्तर कोण में तथा 'लाकड़' के उत्तर में आती है, तब लौरिया और नरकटियागंज थाने की सीमारेखा पर रामनगर वाली रामरेखा नदी को भी समेट लेती है। उसके बाद 'वाणगंगा' दक्षिण दिशा में चलती है और उक्त 'लाकड़' गाँव से होते 'मटियरिया' गाँव के नैऋत्य कोण तथा लौरियानन्दन गढ़ के पूर्वोत्तर कोण में सिकरहना (बूढ़ीगंडक) में प्रवेश कर जाती है। वाणगंगा और उसमें मिलकर आने-वाली नदियों की यही इतनी-सी कथा है और इनका स्पष्ट रूप पिछले मानचित्र में देखा जा सकता है।

वाणगंगा के संबंध में 'वराह पुराण' (अध्या० १४४/७४) कहता है : **स्नात्वा तु वाणगंगायां दृष्ट्वा वाणेश्वरं प्रभुम्। गंगास्नानफलं प्राप्य मोदते देववद् दिवि।** इसके अतिरिक्त, फिर जिनप्रभसूरि (१४ वीं शती) ने अपनी पुस्तक 'विविधतीर्थकल्प' के 'मिथिला तीर्थकल्प' नामक खंड में (पृ० ३२) वाणगंगा और गंडकी के संगम की चर्चा की है और लिखा है कि दोनों के संगम-स्थान का जल महावीर स्वामी के पद-पंकज से पवित्र हुआ है—**सिरि महावीरसामिपयपंकयपवित्तिअजलाओ वाणगंगागंडईनईओ मिलित्ता एयं नयरिं पवित्तयंति।** इससे पता चलता है कि जैनों के २४ वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने वाणगंगा के संगम पर कभी वास किया था।

वाणगंगा-गंडकी संगम के दक्षिण चंपारन जिले का प्राचीत पुरातात्त्विक स्थान 'लौरियानंदनगढ़' है। यह वेतिया नगर से थोड़ा पश्चिम कोण में झुककर उत्तर दिशा में १२ मील दूर पर स्थित है। यहाँ अशोकस्तंभ के अतिरिक्त एक वृहत् स्तूप का भी भग्नाव-शेष है और समाधि के कई चिह्न हैं। यहाँ का अशोक-स्तंभ जमीन की सतह से ३२ फुट ६½ इंच ऊँचा है और मूलभाग की मुटाई का व्यास ३५·५ इंच है। स्तंभ के शीर्ष-भाग का व्यास २६·२ इंच है तथा शीर्ष-कलश ६ फुट १० इंच ऊँचा है। शीर्ष भाग में मोती चुगते हुए राजहंसों की पाँत की तस्वीरें उत्कीर्ण हैं और माथे पर सिंह-मूर्त्ति स्थापित की गई है। सिंह का मुखभाग खंडित है। स्तंभ पर खचित सम्राट् अशोक का ज्ञापन जगत्प्रसिद्ध है, जिसकी लिपि भारत की प्राचीन ब्राह्मी लिपि है। स्तंभ-लेख इतना स्पष्ट है कि आज भी भली-भाँति पढ़ा जाता है।[१] स्तंभ को तोड़ने के लिए विधर्मियों द्वारा दागे गए गोलों के निशान भी स्तंभ पर स्पष्ट देखे जा सकते हैं। इस पर सन् १६६०-६१ ई० का लिखा फारसी लिपि में—**मोहिउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बादशाह आलमगीर गाजी सन् १०७१ (फसली)**—यह वाक्य भी है। लौरियानंदनगढ़ का यह स्तंभ 'लौरिया अरेराज' (चंपारन) तथा 'बखरा' (मुजफ्फरपुर) के स्तंभों से पतला, हल्का और सुंदर है। इस पर विक्रम संवत् १५६६ (सन् १४८८ ई०) का नागरी लिपि में अंकित लेख आज ठीक से पढ़ा नहीं जाता है। इसपर एक वाक्य **नृप नारायण सुत नृप अमर सिंह** भी लिखा मिलता है। इस

१. इस स्तम्भ-लेख का मूल तथा हिन्दी-रूपान्तर इस पुस्तक के लेखक द्वारा प्रणीत 'बौद्धधर्म और बिहार' के पृ० ३३५ से ३३९ तक में पढ़िए।

वाक्य के साथ-साथ सन्-संवत् कुछ नहीं लिखा है, फलतः यह स्पष्ट नहीं होता कि नारायण का पुत्र अमरसिंह कौन था ? सन् १७६२ ई० की अँगरेजी-लिपि में, एक किसी अँगरेज का नाम भी इस पर अंकित है ।

इस स्तंभ-स्थान से कुछ दूर दक्षिण 'नंदनगढ़' नामक एक भग्नावशेष भी है, जिसके ऊपर एक छोटे-से मंदिर का भी अवशेष है । विन्सेंट स्मिथ का कहना है कि यह गढ़ का अवशेष नहीं है; बल्कि स्तूप का अवशेष है, जो बुद्ध के भस्मावशेष पर बना है। किंतु, डॉ० ब्लॉच ने तो इसे किले का ही अवशेष कहा है । नंदनगढ़ के भग्नावशेष के उत्तर में, तीन पंक्तियों में, १५ टीले हैं, जो अत्यंत प्राचीन बतलाये जाते हैं । इनमें से एक में जो चाँदी का सिक्का मिला था, मुद्रा-विशेषज्ञों ने उसे ईसा से १००० वर्ष पूर्व का कहा था। जेनरल कनिंघम का कहना है कि बुद्धवाणियों से प्रमाणित होता है कि ये टीले ईसा से ६०० से १००० वर्ष पूर्व में होनेवाले राजाओं के समाधि-स्थल हैं । डॉ० ब्लॉच ने यहाँ जो खुदाई कराई थी और उसमें जो चाँदी का सिक्का मिला था, उससे भी कनिंघम का विचार समर्थित होता है। लौरिया नंदनगढ़ के उत्तर-पश्चिम भाग में 'मसान' नदी के संगम-क्षेत्र में समाधिस्थल के टीलों की भरमार है, जिससे प्रमाणित होता है कि चंपारन की भूमि पद-पद पर आज भी अति प्राचीन स्मारकों को सँजोये हुई है ।

सिकरहना (बूढ़ीगंडकी) अपने उद्गम-स्थान विश्वरम्भरपुर चौर से चलकर चौतरवा, करजनिया, हरपुर, डुमरा, लिपनी, गंदौली आदि गाँवों से पूर्व की ओर बहती तथा उपर्युक्त नदियों का स्थान-स्थान पर जल ग्रहण करती लौरियानंदनगढ़ से उत्तर आती है तथा उत्तर-पूर्व कोण में बाणगंगा से संगम करती है । यहाँ पहुँचते-पहुँचते सिकरहना एक बड़ी नदी का स्वरूप ग्रहण कर लेती है । लौरिया-नंदनगढ़ के उत्तर में बेतिया से रामनगर जानेवाला मार्ग तथा पूर्वोत्तर में बेतिया से नरकटियागंज होते भिखनाठोरी जानेवाला मार्ग सिकरहना नदी को पार करते हैं । बाणगंगा-संगम के बाद सिकरहना अग्निकोण में बड़े वेग से दौड़ती है तथा एक बड़े चौर से होती छह मील दूर 'बिन्द्रावन' नामक स्थान को पहुँचती है। बिन्द्रावन सिकरहना के बाएँ तट पर स्थित है । यहाँ 'गाँधी-सेवा-संघ' नामक संस्था है, जिसका क्षेत्र लगभग १०० बीघे की जमीन में है। यहाँ सन् १९३७ ई० में अखिल भारतीय गाँधी-सेवा-संघ का अधिवेशन हुआ था, जिसमें महात्मागाँधी के साथ भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और आचार्य जे० बी० कृपलानी ने भी भाग लिया था। उसी समय सेवासंघ की स्थापना हुई, जो ग्रामीण क्षेत्रों के लिए आज भी अच्छा सेवाकार्य कर रहा है ।

सिकरहना नदी बिंद्रावन के अग्निकोण में अपनी धारा को उत्तर, पूर्व और फिर दक्षिण दिशा में मोड़कर एक बड़ा-सा गोपुर-द्वार बनाती है तथा पुनः अग्निकोण में चलकर 'चनपटिया' नामक' स्थान को पहुँचती है । इस क्षेत्र में 'इयांत' नामवाले गाँवों की भरमार है । जैसे—चनपटिया, टिकुलिया, कैथवलिया, जैतिया, सथवरिया, सतवटिया आदि।

चनपटिया सिकरहना के तट से कुछ दक्षिण है; पर सथवरिया और टिकुलिया इसके तट पर ही बसे हैं। बउध टोला नामक एक स्थान भी इसके तट पर है। बेतिया से चनपटिया को जानेवाली रेल-लाइन 'बउध टोला' के पास ही सिकरहना को पार करती है, जो चनपटिया स्टेशन से थोड़ी दूर उत्तर में स्थित है। बउधटोला के उत्तर सतवरिया एक प्राचीन और भग्नावशेष-युक्त ग्राम है। सतवरिया के उत्तर 'साठी' नामक ग्राम है, जहाँ की जमीन की बंदोवस्ती में बिहार के बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं ने खुलकर मनमानी की थी। यह घटना राजनयिक इतिहास में **साठीकांड** के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ सिकरहना की धारा सीधे पश्चिम से पूरब की ओर बहती है और इसी बहाव में यह 'बकुलहर' नामक स्थान को आती है। यहीं 'पंडई' नामक नदी नेपाल-क्षेत्र की अनेक जलधाराओं को समेट कर 'सिकरहना' से संगम करती है। पंडई में धोरम, मनिआरी, करटहा आदि नदियों का जल आता है। ये नदियाँ नेपाल के परसा जिले के पर्वतीय भूभाग से निकल कर चंपारन जिले की भूमि में आती हैं।

पंडई उपर्युक्त नदियों में सबसे बड़ी है, जो प्रारंभ में भिखनाठोरी के पास पश्चिम की ओर बहती है और 'कटहा' नामक दो स्थानों के मध्य से और पर्वत के पूर्वी पाद-तल से चंपारन जिले की भूमि में सर्वप्रथम 'मँगुराहा' गाँव के पास प्रवेश करती है। चंपारन ज़िले में सोमेश्वर पर्वत की पूर्वी सीमा इसी पंडई के तट तक है। मँगुराहा गाँव के पास से बहने के कारण कुछ लोग इसे 'मँगुराहा' नदी भी करते हैं। मँगुराहा गाँव गौनाहा रेलवे स्टेशन (नरकटियागंज-भिखनाठोरी-रेल लाइन) से ठीक उत्तर में है और पंडई के पश्चिम, उसके दाहिने तट पर, बसा है। पंडई नदी गौनाहा स्टेशन से पूर्वोत्तर कोण में रेल-लाइन को पारकर के इसके पूर्व भाग में आती है और दक्षिण दिशा में, बहकर 'सिसाय' गाँव को पहुँचती है। इसी नरकटियागंज-भिखनाठोरी-सड़क पर, प्रसिद्ध एतिहासिक स्थान 'रामपुरवा' है। रामपुरवा गौनाहा स्टेशन के अग्निकोण में स्थित है। इसी रामपुरवा में अशोक का स्तंभ है। इसपर भी ब्राह्मीलिपि में लौरियानंदनगढ़वाले ज्ञापन खुदे हुए हैं। इस प्रस्तर-स्तंभ का शीर्ष-भाग का व्यास भी लौरियानंदनगढ़वाले स्तंभ के शीर्ष भाग के बराबर है। यहाँ भी इसके आस-पास बौद्ध मठों तथा भिक्षुओं के समाधि-चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। अशोक के इन स्मारकों से ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के पितामह चंद्रगुप्त की जन्मभूमि पिप्पली कानन (चंपारन) ही रही होगी, जिस पितृ-भूमि से अशोक को बेहद प्यार था और इसीलिए चंपारन ज़िले की भूमि में उसने अपने कई स्मारक खड़े करवाये थे।

सिसाय के बाद पंडई दक्षिण-पश्चिम की ओर कई बार साँप-सी मुड़ती-चलती जब दक्षिण की ओर बढ़ती है, तब पिपरिया और मनडीहा गाँवों के पास इसके ऊपर से गंडक बराज की वह बड़ी नहर बहती है, जो नेपाल-क्षेत्र के एक लाख साढ़े तीन हजार एकड़ भूमि का सिंचन करती है। उसके बाद पंडई 'मछौली' के सामने रेल-लाइन के पूर्वी किनारे सट जाती है। उसके आगे दक्षिण की ओर बढ़कर फिर 'असुरारी' और तब 'अमोलवा' नामक गाँवों को पहुँचतीं है। इन दोनों गाँवों के मध्य में एक छोटी-सी निर्झरिणी को आत्मसात्

करती है, जो राजपुर के पास से चल कर जमुनिया, वेदउली, गेनहरिया तथा पिपरा गाँवों से होकर नैऋत्यकोण में बहती हुई आती है। इसी संगम के पास पंडई नदी चंपारन जिले की दूसरी और पुरानी नहर के नीचे से निकलती है। इसके बाद दक्षिण और नैऋत्यकोणवाहिनी बनकर यह 'हरदी टेढना' नामक गाँव के पश्चिमोत्तर भाग में तथा पिपरा नामक गाँव के नैऋत्यकोण में पुनः नरकटियागंज-भिखनाठोरी रेल-लाइन से सटती है। फिर, यहाँ से पूर्व मुड़कर अग्निकोण में झुकती हुई दक्षिण दिशा में दौड़ती है और महेशपुर होते उक्त 'दीवानजी का शिकारपुर' आ जाती है। इसके बाद पंडई पकरी ओर मलदा गाँवों के मध्य भाग से तथा नरकटियागंज के पूर्वी इलाके से बहती 'भसुरारी' ग्राम के पश्चिम में आती है। यह गाँव भी अपने प्राचीन भग्नावशेष के कारण प्राचीन ग्राम ज्ञात होता है। भसुरारी के पश्चिम में पंडई नदी रक्सौल-नरकटियागंज-सड़क को पार करती है और यहाँ से दक्षिण बढ़कर रक्सौल-नरकटियागंज रेल-मार्ग के नीचे से सरक जाती है। इसके आगे दक्षिण में मठिया और राजपुर के मध्य से होते 'वेलवा' नामक गाँव को आती है। मठिया गाँव पंडई के पूर्वी किनारे और राजपुर पश्चिमी किनारे में स्थित हैं। वेलवा के बाद यह वेतिया-नरकटियागंज रेल-लाइन के 'साठी' नामक स्टेशन के पास आती है, जिस साठी के संबंध में पहले चर्चा की गई है। साठी के बाद पंडई नदी अग्निकोण से होकर गुजरती है और साठी गाँव के पूरब पहुँचती है और तब 'सिहपुर' नामक गाँव को आती है। यहाँ सिंहपुर के अग्निकोण में तथा 'छरदवाली' नामक गाँव के उत्तर में 'धोरम' नामक नदी को, जो कई स्रोतों का जल ग्रहण करने पर 'करटहा' भी कहलाती है, पंडई आत्मसात् करती है। इसके वाद 'छरदवाली' गाँव से होते दक्षिण बढ़ती है और 'वकुलहर' नामक गाँव के नैऋत्यकोण में 'सिकरहना' से संगम करती है। वकुलहर मठ के महन्थ अपनी जमीन्दारी के कारण पहले बहुत प्रसिद्ध थे।

धोरम : पंडई के सिकरहना संगम-स्थान से पहले ही उसमें मिलनेवाली नदी 'धोरम' की संक्षिप्त कहानी यहाँ जान लेना आवश्यक है। 'धोरम' नेपाल के परसा जिले के पश्चिम में स्थित चुरियाघाट पहाड़ीभाग से निकलकर पश्चिम की ओर चलती है और चंपारन जिले के उत्तर-पूर्व कोण में 'भतुझिला' गाँव के पास पश्चिम दिशा में मुँह करके घुसती है और तुरत नैऋत्यकोण में मुड़ जाती है। नैऋत्यकोण में मुँह करते ही इसके पश्चिमी तट पर 'परसउनी' ग्राम और पूर्वी तट पर 'मानपुर' नामक गाँव दिखाई देते हैं और दोनों के मध्य भाग से बहकर यह 'बैरिया' नामक गाँव को आती है। बैरिया में थोड़ी देर के लिए यह पश्चिम की ओर मुड़ती है और फिर दक्षिणवाहिनी वन जाती है। इसके इस दक्षिणवाहिनी धार के किनारे 'भवानीपुर' तथा 'दुधौरा' ग्राम स्थित हैं। ज्ञातव्य है कि 'धोरम' जैसे ही चंपारन जिले की भूमि में प्रवेश करती है, वैसे ही दो धाराओं में बँट जाती है। ऊपर वर्णित 'धोरम' की धारा पश्चिमवाहिनी है, इससे इसकी पूर्वी धार इसी 'दुधौरा' ग्राम के पास पुनः परस्पर मिल जाती है। जब यह 'दुधौरा' से कुछ दूर दक्षिण बढ़ती है, तब 'मनियारी' गाँव के पास

चंपारन की पुरानी त्रिवेणी-नहर इसके ऊपर से बहती दिखाई पड़ती है। यहाँ से दक्षिण की ओर बढ़नेवाली 'धोरम' को कुछ लोग 'मनियारी' नदी भी कहते हैं। मनियारी के दक्षिण 'मझरिया' गाँव के पास इसकी वह छाड़न भी मिल जाती है, जो दुधौरा के उत्तर 'भवानी-पुर' के पास से इससे विलग होती है तथा 'वहुअरवा' तथा 'खरकटवा' गाँव होते 'मझरिया' आती है। यह छाड़न 'खरकटवा' गाँव के पास त्रिवणीनहर के नीचे से बहती है। मझरिया के बाद यह 'दीवानजी का शिकारपुर' गाँव के पूरब से वहती तथा अग्निकोणवाहिनी वनती 'धोवहा' गाँव को पहुँचती है। यहाँ से दक्षिण यह 'औरैया' तथा 'मँगराही' गाँवों को निहा-रती गोखुला नामक रेलवे स्टेशन (रक्सौल-नरकटियागंज रेल-लाइन) के पास आती है। यहाँ 'धोरम' नदी फिर दो धाराओं में विभक्त होती है, जिनमें से सीधे दक्षिण बहनेवाली धारा पूर्वोक्त 'बेलवा' गाँव होते 'साठी' रेलवे स्टेशन के पास 'पंडई' नदी में गिर जाती है। किंतु, गोखुला से अलग होकर अग्निकोणवाहिनी धोरम की धारा 'वेलवनिया' तथा 'भेड़िहारी' गाँव होते और 'करटहा' नामक स्रोत-समूह का जल पीते पूर्वोक्त 'सिंहपुर' नामक गाँव के पास 'पंडई' में प्रवेश करती है। 'भेड़िहारी' गाँव के नैऋत्य कोण में 'भभटा' नामक एक प्राचीन ग्राम है, जहाँ दो गढ़ों के भग्नावशेष हैं। भग्नावशेषों के चारों ओर खाई है, जिसमें जल डालने के लिए 'धोरम' नदी मोड़ी गई थी और उसका जल खाई में पहुँचाया गया था। भेड़िहारी गाँव के दक्षिण में 'धोरम' नदी ने फिर अपने को दो धाराओं में विभक्त किया है, जिसका पूर्वी प्रवाह 'झखरा' और 'बहुरवा' गाँवों के पास 'उरई' नदी में जाकर गिरता है।

'करटहा' : धोरम की सहायिका निर्झरिणी 'करटहा' चंपारन जिले की उत्तर-पूर्व कोण की सीमा पर स्थित 'पँचगछिया' ग्राम से चलती है। यह गाँव मैनाटाँड़ थाने के बिलकुल उत्तरी सीमा पर है। अपने उद्गम-स्थान से नैऋत्य कोण में बहकर 'पँचरुखा' ग्राम को आती है, जहाँ से दक्षिणवाही होकर क्रमशः झुमका, सेनुअरिया, चिउटहा, इनरवा आदि गाँवों के निकट से गुजरती 'सुखलाही' ग्राम के पास पहुँचती है। यहाँ यह अपनी दाहिनी भुजा को समेटती है, जो सिंहनउला, परसउनी तथा पुरइनिया गाँवों से होकर 'सुखलाही' में सम्मिलित होती है। सुखलाही में भी टीला का अवशेष दिखलाई पड़ता है। 'करटहा' यहाँ से दक्षिण चलकर वलिरामपुर और महुअवा नामक गाँवों से होते हुए उक्त भेड़िहारी' ग्राम के पास धोरम से संगम करती है। महुआ गाँव के पास 'करटहा' अपनी पूर्वी धारा को भी आत्मसात् करती है। यह पूर्वी धारा धोरपा, झंझरी, बउधवरवा, बस्था, मँझरिया, वलिराम आदि गाँवों से गुजरती 'महुअवा' के पास अपनी पश्चिमी धारा से मिलती है। इस प्रकार, धोरम-समूह और करटहा-समूह के अनेक स्रोतों को जल-भंडार ग्रहण करके पंडई नदी 'बकुलहर' के पास 'सिकरहना' नदी में समाविस्थ होती है।

प्रस्तुत प्रकरण की हमारी मुख्य नदी सिकरहना (बूढ़ी गंडक) यथोक्त हरहा, मसान, बाणगंगा, पंडई तथा करटहा-समूहवाली सारी पर्वत-निर्झरिणियों का जल ग्रहण करके जब 'बकुलहर' से अग्निकोण में दौड़ती है, तब सबसे पहले इसे 'सेवाघाट' का

स्थान मिलता है, जहाँ बेतिया से 'मैनाटाँड़' जानेवाला मार्ग 'सिकरहना' को पार करता है। बेतिया से नेपाल-स्थित 'परसा' जाने का यह मुख्य मार्ग है। सेवाघाट के बाद अग्निकोण में बढ़ने पर सिकरहना नदी के किनारे घोघा, मोहछीनैन, पुरैना तथा सोनबरसा गाँव मिलते हैं। सोनबरसा सिकरहना नदी के पूर्वीतट पर स्थित है, जिसके सामने पश्चिमीतट पर 'सिरिसवा' गाँव दिखाई पड़ता है। सिरिसवा भी कोई प्राचीन और ऐतिहासिक गाँव मालूम पड़ता है; क्योंकि यहाँ भी भग्नावशेष के चिह्न वर्त्तमान हैं। सिरिसवा से नैऋत्यकोण होकर बेतिया जाने वाले मार्ग पर प्राचीन ध्वंसावशेषों की तो पाँत ही बिछी हुई है। ये ध्वंसावशेष सिरिसवा, रतनमाला (नारायणी के तटवर्त्ती रतनमाला से भिन्न), चनउन बाँध, धोकरहा, लालगढ़ आदि गाँवों में हैं। इस प्रकार, हम देखते हैं कि आज चंपारन जिले में बहुकोणीय अध्ययन-अन्वेषण के निमित्त जितने पुरातात्त्विक अवशेष विद्यमान हैं, उतने बिहार के किसी एक जिले में नहीं हैं। चंपारन के अनेक पुरातात्त्विक अवशेष अपने उद्धार के निमित्त किसी महान् पुरातत्त्ववेत्ता की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सिकरहना नदी सोनबरसा गाँव से थोड़ी दूर के लिए पूर्व दिशा में चलती है और इस क्रम में यह 'फुलवरिया' नामक गाँव के दक्षिण भाग में आती है। इसी फुलबरिया गाँव के अग्निकोण में तथा हरपुर नामक गाँव के पूर्व भाग में बेतिया से रामगढ़वा होकर रक्सौल जानेवाला मार्ग सिकरहना नदी को पार करता है। इसके साथ फुलवरिया में ही उसके सटे दक्षिण 'उरई' नदी, जिसे नेपाल-क्षेत्र में 'लखरिया नदी' भी कहा जाता है, सिकरहना से संगम करती है। संगम करने से पहले 'उरई' नदी सिकटा होकर आनेवाली 'सकती' नदी तथा भेलवा और बँरियाविर्त्त होकर आनेवाली तीन धाराओं का जल ग्रहण करके सिकरहना में गिरती है। ये सभी धाराएँ नेपाल-क्षेत्र से दक्षिण की ओर आती हैं। इनमें सकती नदी दक्षिण की ओर आती है और शेष तीन निर्झरिणियाँ चंपारन जिले में आकर नैऋत्यकोण-वाहिनी बनकर 'बहुआरी' गाँव के पास 'उरई' से मिलती हैं। ये सभी 'तिलावे' नदी के पश्चिमी भूमि-भाग में स्थित हैं और 'मनुसमारा' नामक नदी-समूह की धाराएँ हैं।

उरई नदी बिहार के चंपारन और नेपाल के परसा जिले की प्रायः सीमा बनती हुई दक्षिण की ओर बहती है ओर मैनाटाँड़ नामक स्थान को आती है। मैनाटाँड़ पहुँचने के पहले अपने दाहिने बाजू में भगनहा, नगरदही तथा खम्मिया नामक गाँवों से गुजरती हुई आती है। मैनाटाँड़ भी इसके दाहिने किनारे ही बसा है, जो चंपारन जिले के पूर्वोत्तर सीमा का अंतिम थाना (पुलिस स्टेशन) है। इस भाग में हिंदू और मुसलमानों के अतिरिक्त ईसाई तथा थारु जातियाँ भी वास करती हैं। मैनाटाँड़ में भी एक बड़-सा ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। मैनाटाँड़ के बाद उरई नदी क्रमशः भेड़िहरवा, पकुहवा तथा भउँरा गाँवों को आती है, जहाँ नेपाल और भारत की सीमा लगती है और सीमा पर १३ मील तक 'उरई' बहती है। भउँरा के पश्चिम 'बलथर' नामक गाँव के मध्य से उरई अपनी धारा निकालती है। दोनों गाँवों में पुरातात्त्विक ध्वंसावशेष वर्त्तमान हैं। उरई इसी स्थान पर रक्सौल-नरकटियागंज-रेललाइन को पार करती है। भउँरा के बाद यह दक्षिण दिशा में ही प्रवाहित होती है और शिकारपुर

नामक ग्राम को आती है। यह शिकारपुर पूर्वकथित दोनों शिकारपुर से भिन्न और 'सिकटा' रेल-स्टेशन से दो मील दूर नैऋत्यकोण में स्थित है। शिकारपुर के दक्षिण जब यह 'बेहरा' नामक ग्राम को पहुँचती है, तब अग्निकोणवाहिनी बनकर मैनपुर तथा पटखौलिया नामक गाँवों को आती है और इसी पटखौलिया के अग्निकोण में बसे 'बहुआरी' नामक ग्राम के पास 'मनुसमारा' नामक नदी-समूहों का जल ग्रहण करती है और तब फुलवरिया पहुँच कर अपने-को सिकरहना में विलीन कर देती है।

उरई-संगम तक, यानी फुलवरिया और हरपुर तक, सिकरहना नदी चंपारन जिले के बेतिया-अनुमंडल से बहती हुई आती है और उरई-संगम से लालपरसा (सुगौली के पास सटे पश्चिमोतर कोण में) तक बेतिया तथा मोतीहारी-अनुमंडलों की सीमा बनकर बहती है और तब सुगौली के पास मोतीहारी-अनुमंडल की भूमि में पद-निक्षेप करती है। हरपुर घाट के पास से सिकरना पहले अग्निकोण में चलती है और उसके बाद दक्षिण की ओर बहने लगती है। सिकरहना के इसी धारा-पथ के वाम-भाग में (पूर्वीतट पर) 'सिंघासिनी' नामक ग्राम है, जो सुगौली से सात मील उत्तर में है। गाँव से थोड़ी दूर पश्चिम में सिकरहना के बाएँ तट पर एक प्राचीन ध्वंसावशेष है, जिसे लोग 'ऊँचाडीह' कहते हैं। भग्नावशेष के चारों कोनों पर शिखरनुमा मिट्टी के ढेर हैं, जिनसे ऐसा लगता है कि ये चारों किले के बुर्ज-भाग हैं। किले तक आने के लिए एक प्राचीन सड़क थी, जिसका भी स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि किसी प्राचीन राजा का किला इस स्थान पर था, जिससे गाँव का नाम भी 'सिंघासिनी' पड़ा है। यहाँ 'सिकरहना' नदी दक्षिणवाहिनी बनकर 'टोला सुन्दर-बहुअरवा' गाँव को आती है। यह सुगौली से थोड़ा पश्चिम कोण में झुका हुआ उत्तर दिशा में स्थित है। इसी गाँव के 'पश्चिम कोनहरा' नाम से पुकारी जानेवाली एक दूसरी नदी 'वितना' नदी को समेटकर 'सिकरहना' के दाहिने भाग में प्रवेश करती है। सिकरहना के अभी तक के प्रयाण में यह पहली नदी है, जो इसकी दाहिनी कोख को भरती है। पहले की सभी निर्दिष्ट नदियाँ 'सिकरहना' के वामपार्श्व में ही प्रवेश करती हैं।

कोनहरा चंपारन जिले के हृदय प्रदेश की नदी है, जो चंपारन की भूमि में ही जनमती और विलीन होती है। यह चंपारन जिले के मध्य भाग में पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है और कई झीलों का निर्माण करती है। कोनहरा भी पुरा काल में बहनेवाली 'विशाला' नदी की ही टूटी धार है, जो आधुनिक सिकरहना-धार के बनने के पूर्व इसी धार से मिलकर बहती 'बूढ़ी गंडकी' का निर्माण करती थी। बेतिया नगर के पड़ोस में कोनहरा के झरही और चंद्रावत—ये दोनों नाम मिलते हैं। चंद्रावत को कुछ लोग 'चमइनी' नदी भी कहते हैं।

'झरही' बेतिया नगर के पश्चिमोत्तर कोण में स्थित 'दुलारपट्टी' गाँव के पासवाले चौर से चलती है। दुलारपट्टी गाँव जोगापट्टी के पूर्वोत्तर कोण में दो मील पर तथा 'परसा' और 'मुँगुरहा' गाँवों से एक मील दूर नैऋत्य कोण में स्थित है। झरही उक्त चौर से चलकर

तुरहापट्टी गाँव के पास से होती हुई 'पत्तरखा' नामक गाँव को आती है और इधर यह 'चमइनी' नदी कहलाती है। यहाँ एक दूसरी किसी नदी की टूटी और छूटी धार भी झरही (चन्द्रावत) से मिलती है, जो मान्धातापुर तथा बैसियाखाप गाँवों के पास से पूर्व की ओर आती है। उक्त दोनों गाँव नारायणी के पूर्वी तटबंध के भीतर हैं, जहाँ से यह छाड़न भवानीपुर गाँव के पास नारायणी के पूर्वी तटबंध को लाँघकर उत्तर की ओर घूमती हुई फिर अग्निकोण में चलती है और 'पत्तरखा' के पास चन्द्रावत में प्रवेश कर जाती है। वस्तुतः तो 'झरही' (चन्द्रावत) विशाला नदी का ही भग्नावशेष है, जिसमें दुलारपट्टीवाली धारा से हरहा-मसान आदि नदियों का पानी आता था। पत्तरखा गाँव से अग्निकोण में झुकती-बहती चन्द्रावत, बेतिया नगर के मध्य भाग से बहती 'चरगहा' नामक गाँव को पहुँचती है जहाँ से अग्निकोण में चलकर फिर पूर्व दिशा में बहने लगती है। इसी के तट पर बेतिया का अस्पताल है और इसी के किनारे बेतिया का श्मशान घाट भी है। पूर्व दिशा से जब यह उत्तर दिशा में मुँह करती है, तब यहीं इस पर मोतीहारी-बेतिया-मार्ग का पुल मिलता है। इस दिशा में चलते समय इसके किनारे 'पकड़िहारी' ग्राम मिलता है, जहाँ से अग्निकोण में चलकर 'टोलाबैजनाथपुर' पहुँचती है। इसके बाद यह बेतिया-मोतीहारी मार्ग से सटने लगती है। इसी सटाव के पास 'चन्द्रावत' नदी पूर्वोत्तर कोण में बहने लगती है और इस ओर बहती हुई 'करम टोला' गाँव के पश्चिम, सुगौली और मँझवलिया नामक स्टेशनों के मध्य, रेल-लाइन को लाँघकर नारायणपुर गाँव के पश्चिमोत्तर भाग में आ जाती है। इस भाग में चन्द्रावत (झरही) का नाम 'कोनहरा' हो जाता है। नारायणपुर के पश्चिमोत्तर भाग में ही सुगौली से चनपटिया होते जो मार्ग लौरियानन्दनगढ़ जाता है, वह 'कोनहरा' को पार करता है। यह मार्ग जहाँ 'कोनहरा' को पार करता है, उससे थोड़ी दूर पूर्वोत्तर कोण में 'बितना' नामक छोटी नदी 'कोनहरा' में प्रवेश करती है। इसके बाद कोनहरा थोड़ी दूर ही पूर्व में बह पाती है और 'टोला सुन्दर बहुअरवा' गाँव के पश्चिम भाग में 'सिकरहना' की दाहिनी कोख में समाहित हो जाती है। टोला-सुंदर-बहुअरवा गाँव सिकरहना के पूर्व, बायें भाग में, स्थित है। 'बितना' के किनारे 'धोकरहा' और 'मझौलिया' भी प्राचीन ग्राम हैं और भग्नावशेषों से युक्त हैं।

कोनहरा को आत्मसात् करके 'सिकरहना' दक्षिण में 'लाल परसा' और तब 'सुगौली' आती है। सुगौली के पास यह मोतीहारी-अनुमंडल में प्रवेश करती है। सुगौली चंपारन जिले का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्राम है। यहाँ उत्तर-पूर्व रेलवे का प्रसिद्ध जंक्शन है, जहाँ से उत्तर की ओर नेपाल की सीमा पर रक्सौल के लिए रेलगाड़ी जाती है और पश्चिम की ओर बेतिया तथा नरकटियागंज-जंक्शन जाने के लिए खुलती है। सन् १८१५ ई० के दिनांक २ दिसंबर को नेपाल और भारत की अँगरेजी-सरकार के मध्य सुगौली में ही एक संधि हुई थी। इस संधि-वार्त्ता में नेपाल-सरकार की ओर से वहाँ के महाराज गीर्वाण युद्ध विक्रम शाह-बहादुर शमशेर जंग के प्रतिनिधि एवं उनके **गुरु गजराज मिश्र** तथा **चंद्रशेखर उपाध्याय** ने और अँगरेजी-सरकार के प्रतिनिधि **लेफ्टिनेंट कर्नल ब्रैडशा** ने भाग लिया था और इन्हीं प्रतिनिधियों ने संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। इस संधि के द्वारा मोरंग प्रदेश की 'मेची'

तथा 'तिस्ता' नदियों का तराई-भूमिभाग सिक्किम-सरकार को तथा पूर्व के कोसी-क्षेत्र के तराई-भाग से आरंभ करके पश्चिम में शारदा नदी-प्रदेश तक का तराई-भाग नेपाल सरकार को मिला। उसी समय से सुगौली में अँगरेजी-सेना की एक छावनी स्थायी रूप से रहने लगी। सन् १८५७ ई० में जब भारत ने अँगरेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता-संग्राम छेड़ा, तब सुगौली में स्थित भारतीय सैनिकों ने अपने कई अँगरेज-अफसरों को गोली मार दी थी। उस समय सुगौली-छावनी का सबसे बड़ा कैप्टेन **मेजर होम्स** नामक अँगरेज था। इसने विद्रोह की बात सुनकर वहाँ फौजी क़ानून लागू कर दिया, जिससे भारतीय सैनिक क्रुद्ध हो उठे। सन् १८५७ ई० की १६ जुलाई को **मेजर होम्स** जब अपनी पत्नी के साथ बाहर टहलने निकला, तब चार भारतीय घुड़सवार सैनिकों ने उन्हें घेर कर मार डाला। उसके पश्चात् डिप्टी पोस्ट मास्टर और अस्पताल के अँगरेज डाक्टर को भी, उनके परिवार के साथ, गोलियों से भून दिया था तथा इनके घरों में आग लगा दी थी। मोतीहारी का जिला-मैजिस्ट्रेट वहाँ से भाग निकला। इन सारी घटनाओं के कारण सिकरहना के तट पर स्थित 'सुगौली' एक प्रसिद्ध स्थान बन गया था। सुगौली का शिव-मंदिर तो २०० वर्ष पुराना बतलाया जाता है।

सुगौली के बाद सिकरहना की धारा अग्निकोण-वाहिनी ही रहती है तथा वहाँ से इसकी गति, जैसा पहले कहा गया है, बड़ी ही कुटिल हो जाती है और घुँघराली लटों-सी ऐंठती हुई बहती दिखाई पड़ती है। प्राचीन ध्वंसावशेषों से युक्त 'पचरूखा' ग्राम तक सिकरहना अपनी ऐसी ही गति से चलती हुई अग्निकोण में बहती आती है और तब पूर्ववाहिनी बनकर 'जतवा' नामक गाँव से होती 'लोकनाथपुर' के उत्तर भाग में पहुँचाती है। 'जतवा' गाँव के पास ही मोतीहारी नगर से रामगढ़वा होकर रक्सौल जानेवाला मार्ग सिकरहना नदी को पार करता है। इस घाट के अग्निकोण में 'कटहा' नामक गाँव के पास एक दूसरा मार्ग भी सिकरहना को पार करता है, जो मोतीहारी नगर से 'छौरादानो' जाने का मार्ग है। यह मार्ग जहाँ सिकरहना को पार करता है, वहाँ से पश्चिमोत्तर कोण में, लोकनाथपुर नामक गाँव के ठीक उत्तर भाग में, **तेलाबे** नदी सिकरहना के वाम पार्श्व में प्रवेश करती है। तेलावे भी नेपाल के तराई-भाग से निकलकर दक्षिण की ओर चलती हुई भारतीय भूमि में घुसती है। इसी तेलावे के संगम के पास, सिकरहना नदी के किनारे 'नोनाचर' नामक गाँव है, जो मोतीहारी से ५ मील पूर्वोत्तर कोण में स्थित है। यहाँ का तालाब बहुत प्रसिद्ध है, जिसके संबंध में कहा जाता है कि यह किसी 'नोनाचर' नामक दुसाध के द्वारा खुदवाया गया था।

तेलाबे नदी नेपाल के वीरगंज-क्षेत्र के पश्चिमी भाग से दक्षिण की ओर चलती है और चंपारन जिले के रक्सौल के पश्चिमी हिस्से में भारत की भूमि में प्रवेश करती है। भारत की भूमि में यह जहाँ प्रवेश करती है, वहाँ चंपारन जिले का 'बैरियाविर्त्त' गाँव स्थित है। बैरियाविर्त्त से दक्षिण की ओर चलकर 'तेलाबे' रक्सौल-नरकटियागंज रेल लाइन को 'सिसवा' गाँव के पास पार करके 'कउवाधोंगर' गाँव के पूर्वी भाग से ही 'खिरिचिया गाँव' को पहुँचती है। इसके बाद भी दक्षिण दिशा में चलती हरनाही, खरकटवा, धनहरदिहुली,

सकरार आदि गाँवों के पास से गुजरती 'रामगढ़वा' नामक स्थान पर आती है। चंपारन जिले का यह रामगढ़वा एक प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ से नैऋत्य कोण में बेतिया, अग्निकोण में मोतीहारी, उत्तर दिशा में रक्सौल और बैरियाबिर्त तथा पूर्वोत्तर कोण में आदापुर नामक स्थान को जानेवाले मार्ग चलते हैं। सुगौली से उत्तर की ओर रक्सौल जानेवाली रेल-लाइन भी 'रामगढ़वा' होकर गुजरती है।

रामगढ़वा में पहुँच कर तिलावे नदी अपनी धारा को अग्निकोणवाहिनी बनाती है और यहीं सुगौली-रक्सौल-रेल-पथ को पारकर क्रमशः 'ऊँची भटिया' तथा 'सिरखंडी' गाँवों को आती है। ऊँची भटिया तिलावे नदी के वाम तट पर और सिरखंडी दक्षिण तट पर बसे हैं। इसके बाद तिलावे जब 'देवदतवा' गाँव के पास आती है, तब यह 'गध' नामक नदी की पश्चिमी धार को भी समेट लेती है और आगे बढ़कर फिर 'फुलवार' गाँव के पास 'गध' की पूर्वी धार को भी आत्मसात् कर लेती है। फिर, आगे यह 'चिचुरहिया' गाँव के पास रक्सौल के पूर्व भाग से तथा आदापुर के पश्चिमी भाग से दक्षिण आनेवाली 'पसाह' नामक नदी को भी 'पुरुषोत्तमपुर' नामक गाँव के नैऋत्य कोण में, उदरस्थ करती है। पसाह-संगम के बाद अग्निकोण में ही बहती 'तिलावे' नदी 'लोकनाथपुर' नामक गाँव के पास 'सिकरहना' में समाधिस्थ हो जाती है। इस प्रकार, सिकरहना (बूढ़ी गंडकी) नदी तिलावे, गध, पसहा आदि स्रोतों का जल समेट कर और मोतीहारी-छौरादानो-मार्ग को पार कर जब 'रामगढ़वा' नामक स्थान (दूसरा रामगढ़वा) को आती है, तब 'तियर' नामक एक दूसरी नदी का जल-भाण्डार को भी ग्रहण कर लेती है।

तियर नामक नदी नेपाल की उपत्यका में दक्षिण की ओर बहती है, और नैऋत्य कोण में मुँह करके चंपारन जिले के 'महुआवा' गाँव के पास भारतीय सीमा से लगती है और छौरादानों तक सीमा का काम करती है। यद्यपि यह एक छिछली नदी है, तथापि वर्षा ऋतु में इसके प्रवाह-वेग को पैदल लाँघना कठिन है। यह छौरादानो स्टेशन, बेलवा तथा एकडारी नामक स्थानों के निकट से पूरब-उत्तर से दक्षिण की ओर बहती चंपारन जिले में प्रवेश करती है और क्रमशः पिपरा, सिरिपुर तथा जितपुर नामक गाँवों को आती है। ये तीनों ग्राम 'तियर' नदी के बाएँ भाग में (पूर्वी तट पर) स्थित हैं। छौरादानों स्टेशन के पास ही 'तियर' से एक नहर निकाली गई है, जो इसके दाहिने भाग की ओर में स्थित खेतों को सींचती है। जितपुर गाँव के दक्षिण 'तियर' के पूर्वी किनारे 'पोकरिया' नामक गाँव बसा है। यहाँ यह 'बगरी' नामक स्रोत की दाहिनी धारा का जल अपने में समेटती है। इसके बाद 'तियर' दक्षिण दिशा में प्रयाण करती हुई टोला मलाही, दोस्तिया तथा डीह महुआरी नामक गाँवों के पास क्रमशः आती है। दोस्तिया गाँव से पश्चिम तथा मोतीहारी से छौरादानो जानेवाले मार्ग के किनारे 'लखौरा' नामक एक गाँव है, जहाँ के ध्वंसावशिष्ट टीले में आज भी प्राचीन सिक्के, बर्तन तथा मिट्टी के खिलौने पाये जाते हैं। यह टीला तथा इसके आस-पास की भूमि पुरातत्त्व-सामग्री के लिए बहुत ही उर्वर बतलाई जाती है। डीहमहुआरी के बाद 'तियर' नदी 'बगरी' की पूर्वी धारा को भी समेट लेती है। इसी के बाद उक्त

'रामगढ़वा' के ठीक सामने उत्तर में यह 'सिकरहना' के वाम पार्श्व में प्रवेश कर जाती है। तियर-संगम के पास ही 'घोड़ासाहन' की ओर से नैऋत्य कोण में आनेवाली एक छोटी-सी नदी भी सिकरहना में समाती है। यह बरवाकलाँ, विजई, बगही भेलवा, खोरहा, सुन्दरपुर-वभनौली आदि गाँवों से गुजरती तियर से मिलकर सिकरहना में गिरती है।

घोड़ासाहन के उत्तर से एक **अनुरवा** नामक नदी भी दक्षिण की ओर आती है, जो 'जमुनी' भी कहलाती है। इसी के किनारे 'सिमराँव' नामक गाँव है, जो अब नेपाल की सीमा में है। ग्यारहवीं-बारहवीं शती में मिथिला की राजधानी इसी 'सिमराँव' गाँव में थी। कर्णाटक के नान्यदेव नामक एक महापुरुष ने मिथिला को जीतकर यहाँ १०८६ ई० में अपनी राजधानी स्थापित की थी। उनके वंशजों के गढ़ का भग्नावशेष 'सिमराँव' में आज तक भी है। ऐतिहासिकों का कहना है कि सिमराँव नगर समानान्तर चतुर्भुज आकृति में बसाया गया था और जिसके परकोटे का घेरा १४ मील में फैला था तथा परकोटे के भीतरी भाग का व्यास १० मील में विस्तृत था। परकोटे का अवशेष आज भी दिखाई पड़ता है और नगर के पूर्वी भाग तथा पश्चिमी भाग की खाई का चिह्न भी स्पष्ट ज्ञात होता है। नगर के उत्तर भाग में स्थित 'कोतवाली' नामक चौतरा स्थान किले का ध्वंसावशेष माना जाता है तथा उसके बीचवाले टीले को लोग रनिवास बतलाते हैं। नगर के भीतर में चलनेवाली सड़कों के चिह्न भी दृष्टिगोचर होते हैं। सिमराँव का तालाब, उसी समय का कहा जाता है। इस वंश का अंतिम राजा हरिसिंहदेव था। उसे दिल्ली के बादशाह गयासुद्दीन तुगलक ने परास्त कर उसका राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया था। इसी नान्यदेव के साथ कर्णाटक से जो ब्राह्मण मिथिला-क्षेत्र में आये, उनके वंशजों में अधिकांश आज मैथिल ब्राह्मण कहलाते हैं।

तियर नदी का जल ग्रहण करके सिकरहना जब पूर्व की ओर मुँह करती है और फिर जब दक्षिण दिशा में घूम जाती है, तब इसके इसी यात्रा-क्रम में मोतीहारी से ढाका जानेवाला मार्ग 'भरौलिया' गाँव के पूर्वोत्तर कोण में 'सिकरहना' नदी को पार करता है। इसके बाद 'सिकरहना' थरघटवा स्थान को पहुँचती है। थरघटवा के अग्निकोण में, जहाँ सिकरहना का घुमाव है, उपर्युक्त अनुरवा (जमुनी) नदी सिकरहना से संगम करती है।

अनुरवा नदी घोड़ासाहन के पूर्वभाग में स्थित भगवानपुर से होकर नैऋत्य कोण में चलती है और तब जमुनिया, कवइया और खुरहिया गाँवों को आती है। यहाँ से यह दक्षिण-वाहिनी होकर क्रमशः गुरमिया, लौखान तथा तुर्कवलिया (तुरकौलिया) नामक गाँवों के पास बहती है। तुर्कवलिया से फिर थोड़ा नैऋत्यकोण-वाहिनी बनती है और मधुवनी, राघोपुर, हरबोलवा और सिमरा नामक गाँवों को पहुँचती है। हरबोलवा इसके पूर्वी भाग में और सिमरा इसके पश्चिमी भाग में बसा है। फिर, सिमरा आकर यह पश्चिम की ओर मुँह करती है और टिकुलिया नामक गाँव के पूर्वोत्तर कोण में 'सिकरहना' के वाम पार्श्व में समाहित हो जाती है। टिकुलिया नामक गाँव 'सिकरहना' के दाहिने किनारे नैऋत्यकोण में दीख पड़ता है। नेपाल से बहकर चंपारन जिले की भूमि में गिरनेवाली सभी नदियों का जल पीने के बाद

'सिकरहना' पूर्ण परिपुष्ट होकर किशोर वय में पदार्पण करती है और इस प्रकार इसके भरने और सँवरने की कहानी यहीं समाप्त होती है ।

अनुरवा (जमुनी)-संगम के बाद सिकरहना पूर्ण यौवना बनकर सीधे दक्षिण दिशा में चलती है और हराजपुर तथा ढेकहा गाँव को पहुँचती है । नारायणी के तट पर एक ढेकहा नामक गाँव भी है, जिसकी चर्चा की गई है । उस ढेकहा की तरह इस ढेकहा में भी प्राचीन ध्वंसावशेष हैं । ढेकहा के बाद 'सिकरहना' के दाहिने तट पर प्राचीन गाँव 'मधुवनी' स्थित है । अनुरवा नदी के किनारे भी एक 'मधुवनी' गाँव है, जो इससे भिन्न है । इसी मधुवनी में बेतिया राज के संस्थापक उग्रसेन सिंह के प्रपौत्र अवधूत सिंह का गढ़ था । अवधूत सिंह के वंशजों ने अब अपना निवास 'मधुवन' में बनाया है । मधुवन-वेदीवन इस मधुवन से भिन्न है । वह सिकरहना के दाहिने तट पर है और एक प्राचीन तीर्थस्थान है । हराजपुर, ढेकहा, मधुवनी तथा मधुवन-वेदीवन—ये सभी स्थान सिकरहना के दाहिने भाग यानी पश्चिम में स्थित हैं । किंतु यह मधुवन सिकरहना-तट से दूर पूर्व में बसा है । यहाँ आज भी दशहरे के अवसर पर मेला लगता है । मोतीहारी से मधुवन स्टेट जानेवाला मार्ग उक्त मधुवनी में ही सिकरहना नदी को पार करता है । मधुवनी के दक्षिण सिकरहना के पूर्वी किनारे 'पकरी दयाल' नामक गाँव बसा है । इसी के सामने सिकरहना के दाहिने भाग में मोतीहारी से बहकर आनेवाली 'धनौती' नामक नदी सिकरहना में प्रवेश करती है । यह धनौती भी चंपारन जिले के मध्य भाग की तथा प्राचीन 'विशल्या' की अवशिष्ट धारा है, जिसकी झील पर 'मोतीहारी' नगर बसा है । इसी के दाहिने तट पर 'पिपरा कोठी' नामक स्थान है । धनौती और चंद्रावत—ये दो नदियाँ ऐसी हैं, जो किसी काल की विशल्या की भग्न धाराएँ हैं और पूर्व की ओर बहकर सिकरहना से संगम करती हैं । 'सिकरहना' के दाहिने किनारे प्रवेश करनेवाली भी ये ही दो भग्न धाराएँ हैं, शेष सभी नदियाँ तो उसके वाम पार्श्व में प्रवेश करती हैं ।

पहले यह संकेत दिया गया है कि महाभारत तथा पुराणों की विशल्या नदी, जो वैशाली-प्रदेश से बहने के कारण 'विशाला' भी कहलाती थी, की जलधारा वर्त्तमान सोनपुर-हाजीपुरवाली नारायणी-धारा से लेकर मुजफ्फरपुर वाली बूढ़ी गंडकी की धार तक अपना मार्ग बनाती रही है । पुराकाल में गंडकी रिविलगंज से दिघवारा तक के भाग में गंगा से संगम करती थी और विशाला नदी बेतिया के पश्चिम भाग से वर्त्तमान गंडकी-धार पकड़कर बहती थी । फिर वही बाद में बेतिया होकर 'तेलुवा' के पास से वर्त्तमान गंडकी-धार के मार्ग से चलती थी । कालक्रम से वही विशाला नदी धनौती की धारा बनने के बाद 'बाया' की धारा बनी और फिर कालक्रम से बाया को भी छोड़ गई । उसी विशाला की अवशिष्ट धाराएँ धनौती और चंद्रावत की धाराएँ हैं । बाया को छोड़ने के बाद विशाला ने धनौती के मार्ग से बूढ़ी गंडक का निर्माण किया था और पुन: धनौती को छोड़कर उसने चंद्रावत के मार्ग से बूढ़ी गंडकी को बनाया । किंतु, आज इन सभी को छोड़कर तथा अपना नाम भी मिटाकर सिकरहना के मार्ग से यह बूढ़ी गंडकी का निर्माण करती है । वही धनौती वाली अवशिष्ट धारा आजतक वर्तमान है, जो पकरी दयाल के सामने 'सिकरहना' की दाहिनी कोख को भरती है ।

धनौती आज भी बड़ी गंडकी (नारायणी) की एक शाखा-नदी है, जो हरसिद्धि थाने के 'तेजपुरवा' गाँव के पश्चिम से तथा 'मझरिया निजामत' गाँव के पश्चिमोत्तर भाग से निकलती है। इसका उद्गम-स्थान ही चंपारन जिले के वेतिया और मोतीहारी-अनुमंडलों की सीमारेखा है। यह अपने उद्गम-स्थान से उत्तर की ओर बहती है और 'लालवेगी' नामक एक सोते का जल ग्रहण कर वेतिया-अनुमंडल में घुसती है। वस्तुत:, धनौती नदी का उद्गम लालबेगी से ही आरंभ होता है और लालवेगी की धार ही प्राचीन विशल्या की वह धार है, जिससे आधुनिक नारायणी की धार वनी है। लालवेगी वाली विशल्या का मूल स्थान अब वेतिया के पश्चिम, पतजिरवा के दक्षिण, गंभीरपुर और डुमरिया से उत्तर 'टोला मलाही' और 'सूरजपुर' के चौर में है। टोला मलाही गाँव नारायणी के किनारे के राजघाट से वेतिया जानेवाले मार्ग के उत्तरी किनारे में स्थित हैं, जहाँ के चौर से लालवेगी वहती है। इस मार्ग पर 'मसानढाव' नामक गाँव है, जो अपने नाम से प्रमाणित करता है कि 'मसान' नदी के मुहाने पर यह वसा है। तथाकथित लालवेगी उक्त चौर से निकलकर पहले पूर्व में चलती है और मोतीहारी नामक एक गाँव (जिले के मुख्यालय नगर से भिन्न) को आती है। मोतीहारी गाँव वेतिया नगर से डेढ़ मील नैऋत्य कोण में वसा है। लालवेगी जव उक्त मोतीहारी से थोड़ी दूर पूर्व की ओर पहुँचती है, तव इसके किनारे 'भितहा निजामत' गाँव मिलता है, जहाँ से यह दक्षिण दिशा में मुड़ती है। इस क्रम में जब यह 'वगही' होकर 'पुरंदरपुर' आती है और वहाँ से दक्षिण पहुँचती है, तव इसकी धारा चक्कर लगाती हुई आगे की ओर खिसकने लगती है। इसके वाद यह जब पूर्व दिशा की ओर प्रयाण करती है, तव इसके किनारे 'लीला-पट्टी' गाँव मिलता है, जहाँ यह दो भागों में अपनेको विभक्त कर लेती है। इसकी दाहिनी भुजा सीधे दक्षिण की ओर चलती है और वरदाहा, तेलुआ तथा मंगलपुर कलाँ गाँव के पास धनौती में मिल जाती है। विशल्या की यही प्राचीन धारा किसी काल में गंडकी से मिलती थी। इसकी यह भुजा जब मंद हुई, तब लालवेगी की बाईं भुजा वनी थी, जिससे धनौती के माध्यम से 'वाया' नदी चलती थी। आज यह बाईं भुजा भी तेलुवा के उत्तर-पूर्व में धनौती से मिलती है। लालवेगी की इस पूर्वी धारा के संगम के पास धनौती अपना किनारा ऐंठ-ऐंठ कर रस्सी की तरह वनाती हुई आगे बढ़ती है और तव टोला 'हलखोरवा' तथा 'मझरिया किशुन' नामक गाँवों को पहुँचती है। यहाँ से थोड़ा उत्तर बढ़ने पर यह गोविंदगंज-वेतिया-मार्ग से सटकर दक्षिण की ओर वहने लगती है। अपने इसी पथक्रम में यह 'विशुनपुर मटिहरवा' आकर पूर्वोत्तर कोण में मुड़ती है और 'जगदीशपुर' नामक गाँव को तीन ओर से घेरकर वहती है। यहाँ से यह फिर पूर्व दिशा में प्रयाण कर 'करमवाँ' गाँव होते 'वलुवाविर्त्त' गाँव को पहुँचती है। विशुनपुर-मटिहरवा गाँव से 'वलुआविर्त्त' तक फिर यह वेतिया तथा मोतीहारी-अनुमंडलों की सीमारेखा का काम करती है। इस स्थान पर भी 'धनौती' तीन दिशाओं से करमवाँ गाँव की परिखा बनती है और इसके वाद पूर्ण रूप से वेतिया-अनुमंडल की सीमा में प्रवेश कर जाती है। वेतिया-अनुमंडल में घुसने के बाद पहले यह उत्तर में चलती है और फिर पूरब में तथा इसके बाद पूर्वोत्तर कोण में सरककर बढ़हिया

गाँव होते 'माधोपुर' नामक गाँव का स्पर्श करती है। यदि धनौती के उद्गम-स्थान से माधोपुर तक एक सीधी रेखा खींची जाय, तो यह रेखा पूर्वोत्तर कोण में ठीक बारह मील तक जायगी। यह माधोपुर सुगौली से लगभग तीन-साढ़े तीन मील नैऋत्य कोण में स्थित है। इसी माधोपुर से धनौती नदी अग्निकोण में चलती है और बेतिया अनुमंडल से निकलकर मोतीहारी अनुमंडल में पुनः प्रवेश करती है। इस अनुमंडल में प्रवेश करने पर नैऋत्य कोण में बहती हुई 'भतहा' गाँव होते 'दुमदुमवाँ' गाँव के नैऋत्य कोण में आ जाती है। यहाँ से अग्निकोण में मुड़कर धनौती, दुधही और वहाँ से उत्तर-पूर्व बहकर 'कुवेया' और तब दक्षिण तथा पूर्व की ओर घूमती-फिरती धोबही गाँव को पहुँचती है। धोबही के नैऋत्य कोण में और धनौती-तट के पश्चिम हरसिद्धि थाने का मुख्यालय है, जिसका दूसरा नाम 'पकड़िया-हरसिद्धि' भी है। धोवही से धनौती जब दक्षिण की ओर बढ़ती है, तब इसके किनारे 'बहुरूपिया' और 'बरहरवा' गाँव मिलते हैं। इन दोनों गाँवों को धनौती नदी अपने प्रवाहांचल में शिशु की तरह तीन दिशाओं से आच्छादित कर सुरक्षित करती है। इसी बरहरवा के दक्षिण धनौती से सटे, मुरारपुर नामक गाँव है, जहाँ से दक्षिण की ओर 'मखवा' नामक छाड़न के द्वारा यह 'वाया' नामक नदी में अपना जल डालती थी। यही जलधार वैशाली-प्रदेश से होकर बहती थी।

बहुरूपिया गाँव के बाद धनौती पूर्व दिशा में चलती है और 'औरैया' नामक गाँव के पास आकर अपने प्रवाह को अग्निकोण में कुछ दूर तक तानकर 'चौलाहा' पहुँचती है। चौलाहा के पहले ही 'चिल्हराँव' गाँव के पास एक मार्ग धनौती को लाँघता है, जो वैशाली से उत्तर की ओर चलकर साहेबगंज, कटवा तथा सुगौली होते 'रक्सौल' जाता है। 'चौलाहा' से धनौती दक्षिण दिशा में मुड़ती है और जिले के मुख्यालय मोतीहारी नगर के नैऋत्य कोण में 'लक्ष्मीपुर' नामक गाँव से सट आती है। यहीं से पूर्वोत्तर दिशा में और फिर सीधे उत्तर दिशा में बहकर 'मोतीहारी' नगर के पश्चिम भाग से गुजरती नगर के उत्तरी भाग में आ जाती है। यहाँ से यह फिर दक्षिण की ओर मुँह करती है और मोतीहारी नगर के मध्य भाग में आकर एक झील बनाती है। लगता तो ऐसा है कि कभी कोई इस झील में 'धनौती' का पानी डालने के लिए धनौती की धार को खोद कर मोतीहारी नगर के पश्चिम भाग से दक्षिण से उत्तर की ओर ले गया था और फिर दक्षिण मोड़कर इसे झील में ले आया था। इसके बाद भी इसे वहाँ से नैऋत्य कोण में मोड़कर 'लौठाहा' तथा 'परसउना' पहुँचाया गया था।

मोतीहारी चंपारन जिले का मुख्यालय है, जहाँ जिले के सारे सरकारी कार्यालय हैं। नगर में दो झीलनुमा बड़े तालाब हैं, जो 'धनौती' के जल से भरे रहते हैं। उत्तरी जलाशय के दोनों बाजुओं में नगर बसा है। पश्चिमी बाजू में घुड़दौड़ का मैदान और सरकारी कार्यालय की इमारतें हैं एवं पूर्वी बाजू में शहर तथा बाजार हैं। दोनों को मिलाने के लिए जलाशय के ऊपर एक मनोरम पुल बना हुआ है। जलाशय का पानी बहुत ही स्वच्छ और निर्मल रहता है। ये जलाशय, घुड़दौड़ का मैदान, जलाशय के ऊपर का पुल तथा प्राकृतिक बनावट मोतीहारी नगर के श्रृंगार हैं। एक किंवदंती है कि जलाशय का पानी मोती के

हार की तरह स्वच्छ है, इसीलिए नगर का नाम 'मोतीहारी' रखा गया था। किंतु, 'मोतीहारी' नाम के संबंध में यह बात भी प्रचलित है कि मिथिला के राजा हरिसिंहदेव की रखैल पत्नी के पुत्र का नाम 'मोती सिंह' था, जिसने इस नगर को बसाया था और उसी के नाम पर इसका नाम 'मोतीहारी' पड़ा। यहाँ मोती सिंह ने १५ वर्षों तक, उनके पुत्र शक्ति सिंह ने २५ वर्षों तक और शक्तिसिंह के पुत्र श्यामसिंह ने १२ वर्षों तक शासन किया था।[१] किंतु, मोतीहारी नगर का वर्त्तमान और आकर्षक रूप तो अँगरेजी-सलतनत की देन है।

मोतीहारी के नैऋत्य कोण से धनौती की धारा 'परसउना' आती है और वहाँ से पहले अग्निकोण में चलती है और फिर पूर्वोत्तर कोण में दौड़कर 'बेगमपुर' नामक गाँव को पहुँचती है। यहाँ से यह फिर अग्निकोण में बड़ी ही कुटिल गति से मुड़ती और बल खाती हुई रुलई, धर-महान, पँड़वलिया आदि गाँवों से गुजरती 'पिपराकोठी' के सटे पूर्व भाग में पहुँचती है। यह पिपराकोठी, पिपरा रेलवे स्टेशन से चार मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में स्थित है। पिपराकोठी से धनौती नदी पहले दक्षिण, और तब उत्तर-पूर्व कोण में बहकर 'खैरी माल' आती है और तब पुनः दक्षिण तथा नैऋत्य कोण में चलकर 'खैरी जागीर' गाँव के पास से गुजरती है। यहाँ से यह अति वक्र गति से प्रयाण करती है और पहले दक्षिण, फिर पूर्व और तब पूर्वोत्तर कोण में दौड़कर 'पकरीदयाल' गाँव के सामने 'सिकरहना' के दाहिने भाग में संगम कर जाती है। इस धनौती की चाल इतनी कुटिल है कि कहीं यह तीन मील भी सीधी नहीं चल पाती है। यह निरंतर अपने दाहिने बाजू को हिमालयीय मिट्टी से भरती गई है और धीरे-धीरे पूर्व की ओर अपना मुँह बनाती गई है, जिसके कारण इसे भी अन्य नदियों की तरह 'सिकरहना' की शरण में जाना पड़ा है। स्वास्थ्य-विभाग का कहना है कि 'धनौती' के दोनों तटीय भाग अत्यंत अस्वास्थ्यकर हैं। धनौती की धार चंपारन जिले के कटि-प्रदेश में बहती है, जिसके दोनों भागों की जमीन उरोज तथा नितंब की तरह ऊँची है और धनौती की धार जिले की कटि-भागवाली त्रिवली-भूमि से बहती है।

'सिकरहना' नदी पकरीदयाल गाँव के सामने विशाला की अवशिष्ट धार धनौती का जल ग्रहण करके नैऋत्य कोण में चलती है और इस क्रम में यह 'भिरखिया', 'इटवा' तथा 'सिरहा' नामक गाँवों के पास से गुजरती है। सिरहा गाँव नदी के पूर्वी भाग में है। इसी के सामने नदी के पश्चिमी भाग (दाहिने तट) में 'मधुवन-वेदीवन' नामक एक अत्यंत प्राचीन तीर्थ है। मेरा अनुमान है कि 'महाभारत[२] तथा 'पद्मपुराण'[३] का विनशन तीर्थ यही वेदीवन है, जो आज 'विनशन' से अपभ्रष्ट होकर 'वेदीवन' बन गया है। उक्त ग्रंथों में 'जनककूप' से गंडकी तीर्थ पहुँचने के मध्य 'विनशन' की चर्चा आई है और यह 'वेदीवन' इसी भाग में स्थित है। इसी मधुवन-वेदीवन के पश्चिम पिपरा-मोतीहारी-मार्ग के किनारे 'सीताकुंड' नामक स्थान है, जहाँ नदी लाकर समाप्त कर दी गई थी, जिससे यह 'विनशन' तीर्थ कहलाता था।

---

१. मिथिला-तत्त्व-विमर्श, पृ० १४४।
२. महाभारत, वनपर्व, ८४।११२।
३. पद्मपुराण, स्वर्गखंड ३८।२९

वेदीवन स्थान पिपरा रेलवे स्टेशन से ठीक एक मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित है। केसरिया से उत्तर-पूर्वकोण में जो प्राचीन मार्ग पिपरा, पकरीदयाल, ढाका आदि स्थानों से होते बैरगनिया को जाता है, उसी मार्ग के किनारे यह वेदीवन है। वेदीवन, मधुवन तथा सीताकुंड—इन तीनों स्थानों में ध्वंसावशेष के टीले हैं। वेदीवन के ध्वंसावशिष्ट टीले के उत्तर भाग में २० फुट ऊँचा एक दूसरा टीला है, जिस पर एक मंदिर भी खड़ा है। मंदिर के भीतर दो फुट लंबा एक पत्थर है, जो भगवान् राम का चरण-चिह्न बतलाया जाता है। मुस्लिम-शासन-काल में इस पत्थर को अपवित्र करने के विचार से किसी ने इस पर अरबी लिपि में सात पंक्तियाँ लिख दी हैं, जो अब पढ़ी नहीं जाती हैं। **जनरल कनिंघम** ने बड़ी कोशिश करके इसका एक शब्द पढ़ा और बतलाया कि 'महमूदशाह' लिखा है। कनिंघम का कहना था कि यह महमूदशाह जौनपुर का बादशाह 'महमूदशर्की' है, जो सन् १४५० ई० में वर्तमान था और जो कीर्ति सिंह की सहायता करने इस क्षेत्र में आया था। कनिंघम के विचार से यहाँ कोई प्राचीन मंदिर था, जिसे तोड़कर उसकी जगह मस्जिद बनवाई गई थी।

सीताकुंड में भी प्राचीन किले का ध्वंसावशेष है। पुरातत्त्वविदों का कहना है कि यह किला वर्गाकार में था और इसके प्रत्येक भाग की लंबाई ४५० फुट थी। किले के चारों कोनों पर तथा प्रत्येक सिंहद्वार पर गुम्बज बने थे। किले की दीवार २१$\frac{1}{2}$ फुट चौड़ी थी और दीवार के बाहरी भाग में १०-१० फुट की तथा भीतरी भाग में तीन-तीन फुट की ईंटें लगाई गई थीं। बाहरी और भीतरी भाग की ईंटों के बीचवाले भाग में मिट्टी भरी गई थी। इस प्रकार से २१$\frac{1}{2}$ फुटवाली चौड़ी दीवारें बनाई गई थीं। किले के उत्तरी भाग में दो सिंहद्वार बने थे और शेष तीन दिशाओं में एक-एक। किले के चारों ओर गहरी खाई थी, जिसका चिह्न यत्र-तत्र आज तक वर्त्तमान है। किले के ध्वंसावशेष के मध्य भाग में सीताकुंड नामक स्थान है, जो किसी महत्त्वपूर्ण प्राचीन तीर्थ का स्मारक माना जाता है। रामनवमी के अवसर पर आज भी यहाँ एक बड़ा मेला लगता है और तीर्थयात्री कुंड में स्नान कर पुण्य प्राप्त करते हैं। इस मेले के संबंध में इस भाग में एक कहावत है—"सीताकुंड के बेल, हाथे-हाथे गेल।" इस मेले के बेल और बैल—दोनों प्रसिद्ध हैं। मेरा अनुमान है कि 'महाभारत' का मिथिला- स्थित विनशन-तीर्थ इसी वेदीवन का क्षेत्र है।

मधुवन-वेदीवन के अग्निकोण में सिकरहना के दाहिने किनारे 'बैरिया' गाँव स्थित है और उसके आगे उसके तट पर 'कोइरीगाँवा' हैं। इसी कोइरी गाँवा के पश्चिम रेलवे का 'पिपरा' नामक स्टेशन है। दोनों के बीच 'महुअवा' नामक एक ग्राम है। महुअवा और पिपरा—इन दोनों स्थानों में महत्त्वपूर्ण प्राचीन भग्नावशेष हैं। उक्त कोइरीगाँवा से सिकरहना अपने प्रवाह को अत्यंत वक्र बनाती अग्निकोण में बढ़ती है और क्रमशः मानपुरवा, भगवानपुर और तब बारा-गोविंद नामक गाँवों को पहुँचती है। ये तीनों गाँव सिकरहना के पूर्वी किनारे हैं। इसके सामने नदी के दाहिने किनारे, पश्चिमी तट पर बेलवा, बालोचक तथा बैसहा नामक गाँव भी बसे हुए हैं। इसी बारा में निलहे अँगरेजों ने सर्वप्रथम सन् १८१३ ई० में 'नील की फैक्टरी' बैठाई थी। बारा के नाम पर ही यहाँ के रेलवे स्टेशन का नाम भी पहले

'बारा' ही था, जिसका नाम अब 'चकिया' हो गया है। यह स्टेशन 'बारा' के पश्चिम में है। इसीलिए रेलवे स्टेशन को कुछ लोग 'बारा-चकिया' भी कहते हैं। बारा सिकरहना नदी के द्वीप में बसा है और यहाँ भी प्राचीन किले का ध्वंसावशिष्ट टीला है। सिकरहना की धारा चारों ओर से 'बारा' को घेरती है। लगता है, किसी ने 'बारा' की सुरक्षा के लिए यहाँ सिकरहना-प्रवाह को गेंडुरनुमा बनाया था और सिकरहना के प्रवाह के द्वारा ही परिखा तैयार की गई थी। 'बारा' के बाद ही सिकरहना नदी का नाम 'बूढ़ी गंडकी' हो जाता है, अतः आगे के विवरणों में सिकरहना नाम के स्थान पर सर्वत्र हम 'बूढ़ी गंडकी' नाम का ही प्रयोग करेंगे।

बूढ़ी गंडकी 'बारा' के बाद भी अग्निकोण में ही चलती है और इस क्रम में यह 'मेहसी' के पूर्वोत्तर कोण में पहुँचती है। मेहसी की प्रसिद्धि मुस्लिम-शासन-काल से ही है। कहा जाता है कि शेरशाह के शासन-काल में यहाँ डाक ढोनेवाले घुड़सवार रहते थे। लोगों का कहना है कि महेश कोइरी नामक एक साधु के नाम पर इस स्थान का नाम 'मेहसी' पड़ा है। महेश कोइरी का शिष्य हलीमशाह नामक एक फकीर था, जो महेश के अलौकिक चमत्कारों के कारण उसका शिष्य बन गया था। उसी हलीमशाह के उद्योग से इसका नाम 'मेहसी' हुआ था। यहाँ की दरगाह उसी हलीमशाह के नाम से और मंदिर महेश के नाम से संबद्ध हैं। इसके अतिरिक्त 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के शासक अँगरेजों ने जब सर्वप्रथम चंपारन जिले पर अधिकार किया, तब उन्होंने यहाँ का शासन-केंद्र सर्वप्रथम 'मेहसी' में ही स्थापित किया था। उसी समय यहाँ एक अदालती कचहरी भी कायम की गई थी, जिसका मकान आजतक अवस्थित है। इसके अतिरिक्त, अँगरेजों की कुछ अन्य कोठियाँ भी जीर्णावस्था में वर्त्तमान हैं। इसी मेहसी में गोरियालीचक और कँथा नामक स्थान हैं, जहाँ ध्वंसावशेष के टीले हैं। गोरियालीचकवाले टीले के पास से ही बूढ़ी गंडकी की धारा बहती है। मेहसी नाम तो 'माहिष्मती' का अपभ्रंश जान पड़ता है।

गोरियालीचक से बूढ़ी गंडकी की धारा बड़ी ही तीखी और वक्र हो जाती है और पूर्व दिशा में बहने लगती है। इस दिशा में मुँह किये यह क्रमशः छपरा, बहबल, भीमलपुर तथा पिपरा नामक गाँवों को पहुँचती है। छपरा और बहबल के बीच 'मेहसी' से 'शिवहर' जानेवाले मार्ग का घाट बूढ़ी गंडकी में लगता है। पिपरा के बाद बूढ़ी गंडकी दक्षिण दिशा में चलती है और 'धतहरा' गाँव के पास अपने प्रवाह को अँगूठीनुमा बनाकर नैऋत्य कोण में ठेलती है और 'चक नगरी' नामक गाँव को पहुँच जाती है। यहाँ से फिर यह अग्निकोण में चलती है और 'सेमरा' पहुँचकर अपने दाहिने भाग में मुजफ्फरपुर जिले की जमीन निरखने लगती है। 'सेमरा' बूढ़ी गंडकी के दाहिने तट पर है, जहाँ 'वृजी' नामक एक प्रसिद्ध गाँव है। वृजी चंपारन जिले की पूर्व-दक्षिण सीमा का अंतिम गाँव है, जो कई टोलों में विभक्त है। इसके कुछ टोले मुजफ्फरपुर जिले की भूमि में भी पड़ते हैं। संभव है कि 'वृजी' गाँव में वैशाली के प्राचीन वृजि-संघ का वृजि-वंश निवास करता हो; क्योंकि वृजि-संघ कई कुलों के समूह से बना था।

मुजफ्फरपुर जिले में बूढ़ी गंडकी :

बूढ़ी गंडकी अपने दाहिने तट पर वृजी के पास ही चंपारन जिले की भूमि से बाहर निकल जाती है; पर बाएँ भाग में चंपारन जिले के सिधवलिया और बालटोला नामक गाँवों को पवित्र करती है। बालटोला से यह थोड़ी दूर दक्षिण दिशा में मुड़कर फिर पूर्व दिशा में मुड़ती है और चंपारन के ही जालिमपुर तथा वखरी नामक गाँवों से गुजरती निःशेष रूप से मुजफ्फरपुर जिले में घुस आती है। इस सीमा-स्थल पर बूढ़ी गंडक अपनी कई मोटी-मोटी ठूँठ शाखाएँ निकालती है, जो भिन्न-भिन्न काल की धाराएँ हैं। एक ठूँठ शाखा तो वृजी के पास है और दूसरी शाखा मुजफ्फरपुर जिले के वरियारपुर गाँव के अग्निकोण में टूटती है, जो चंपारन जिले के जालिमपुर के नैऋत्यकोण में पड़ती है। बूढ़ी गंडकी अपनी इन दो मोटी, पेचदार और ठूँठी शाखाओं को अपने दाहिने पार्श्व में ही फैलाती है। वरियारपुरवाली दूसरी ठूँठी शाखा नैऋत्यकोण में चलकर पूर्व की ओर मुड़ती है और फिर पूर्वोत्तर कोण में मोतीपुर स्टेशन तक घूमकर उत्तर की ओर मुख्य धार के पास मेधुआ गाँव तक पहुँचकर अँगूठी-सी वन जाती है। इस प्रकार बूढ़ी गंडकी कई स्थानों में अपने प्रवाह-पथ से विभिन्न प्रकार के अलंकारों का रूप ग्रहण करती है। कहीं अपनी अँगूठीनुमा धारा से गाँवों को घेरती है, तो कहीं काली घुँघराली लट की तरह लटकती हुई वहती है। किसी-किसी स्थान में इसकी धार चंद्रहार की तरह झूलती है, तो कहीं हँसुली की तरह वक्र बनकर गाँव की गरदन में सटती है। कई जगह इसकी गोल धारा झुमके की तरह गाँवों के गालों पर लटकती-झूमती दीख पड़ती है। इस प्रकार, विभिन्न अलंकारों का रूप धारण करती हुई बूढ़ी गंडकी मुजफ्फरपुर जिले में प्रवेश करती है।

प्रवेश करने के वाद यह पहले दक्षिण दिशा में चलती है और 'नरियर' तथा 'पानापुर' नामक गाँवों को पहुँचने के पहले ही तीन द्वीप बनाती है तथा अपनी धारा को रस्सी की तरह ऐंठती हुई 'पानापुर' पहुँचती है। इसकी पहली ऐंठन पर सेंदुआरी, मध्य की ऐंठन पर नरियर और पूर्व की ऐंठन पर पानापुर नामक गाँव बसे हैं। पानापुर से यह पूरब दिशा में चलती है और 'खरिका' नामक गाँव से गुजरती पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर 'भिलाईपुर' पहुँचती है। यहाँ से उत्तर दिशा में दौड़कर 'वारा हसन' और 'घोसुअत' आती है और फिर पूरब की ओर चलकर 'मधुवनी-काँटी' पहुँच जाती है। मधुवनी-काँटी के पास 'बूढ़ी गंडकी' में घाट है, जहाँ मुजफ्फरपुर से काँटी रेलवे स्टेशन होते 'शिवहर' जाने का मार्ग इसे लाँघता है। यहाँ भी यह अपनी धारा को तीन वार लपेटती है। गंडकी के इसी मोड़ के आस-पास आजकल वागमती ने अपना संगम बना लिया है और मुजफ्फरपुर जिले भर में वहनेवाली वागमती प्रायः अव मर चुकी है। यहाँ वागमती का पानी ग्रहण कर बूढ़ी गंडकी दक्षिण की ओर कुछ झुककर 'रायपुरा' नामक ग्राम को पहुँचती है। रायपुरा में भी अपनी धारा को यह अँगूठी-नुमा वनाती है। यहाँ से यह अग्निकोण में थोड़ा झुककर आगे बढ़ती है और कुशी-काँटी नामक स्थान को पहुँचती है, जहाँ अपने दोनों तटों पर दो द्वीपों का निर्माण करती है। दक्षिणी द्वीप कुशी-काँटी के पूरब में और उत्तरी द्वीप 'चाँद परन' गाँव के पूर्व भाग

में स्थित है। यहाँ उत्तरी द्वीप के ठीक सामने, बूढ़ी गंडक के दाहिने तट पर, पकड़ी नामक गाँव है। इस द्वीप से जब थोड़ी दूर पूरब यह आती है, तब दक्षिण दिशा में मुड़कर 'पैगंबरपुर' कोभुआ गाँव के पास पहुँचती है। इस गाँव के पास यह अपके प्रवाह को अँगरेजी भाषा के 'U' अक्षर के रूप में ढालती है और इसी के पश्चात् मुजफ्फरपुर नगर के पश्चिमोत्तर कोण में पहुँच जाती है।

मुजफ्फरपुर नगर तिरहुत-प्रमंडल का मुख्यालय है। इस नगर को इस जिले के 'चकलानाई' परगने के अमला मुजफ्फर खाँ ने १८ वीं शती में अपने नाम पर बसाया था। इस समय देश के पूर्वी भाग में अलीवर्दी खाँ के शासन का दबदबा था। मुजफ्फरपुर के 'गजेटियर' से पता चलता है कि सन् १८१७ ई० में इस नगर में केवल ६६७ घर थे। सन् १८७५ ई० के पहले दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिले—दोनों सम्मिलित थे; किंतु उस समय भी मुख्यालय मुजफ्फरपुर में ही था। नगर के पश्चिमोत्तर भाग में दो बड़े जलाशय हैं, जिनमें से एक 'सिकंदरपुर' में और दूसरा 'अखाड़ाघाट' स्थान में है। ये दोनों जलाशय बूढ़ी गंडकी के प्रवाह-परिवर्त्तन के परिणाम हैं और आज भी ये दोनों जलाशय नदी के पड़ोस में हैं। अँगरेजी शासन के समय मुजफ्फरपुर में सेना की छावनी भी थी, जो अब नहीं रही। इस नगर की भौगोलिक स्थिति बिलकुल केंद्रबिंदु पर है, जहाँ से तिरहुत-प्रमंडल में चारों ओर सड़कें जाती-आती हैं। यहाँ पूर्वोत्तर रेलवे का जंक्शन भी है, जहाँ से पूरब, पश्चिम और दक्षिण की ओर रेलगाड़ियाँ चलती हैं। नगर का प्राचीन इतिहास कुछ भी नहीं है, किंतु आज तो तिरहुत-प्रमंडल में यह सबसे बड़ा और मुख्य नगर बन गया है। आज यहाँ जिले तथा प्रमंडल के मुख्यालय तो हैं ही, बिहार विश्वविद्यालय का मुख्यालय और छह महाविद्यालय भी हैं। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में बिहार के मुख्य नगरों में मुजफ्फरपुर नगर का प्रमुख योगदान रहा है। बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी 'खुदीराम बोस' तथा 'प्रफुल्ल चाकी'—इन दो किशोरों ने सन् १९०८ ई० में ही अँगरेज-कमिश्नर को मारने के लिए बम फेंका था, जिससे धोखे में एक अँगरेज-महिला मारी गई थी। इसी नगर के जेल में खुदी राम को फाँसी दी गई थी। यहाँ का चतुर्भुज स्थान का मंदिर और तिलक-मैदान बहुत प्रसिद्ध है। बिहार-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना सर्वप्रथम इसी नगर में हुई थी।

बूढ़ी गंडकी मुजफ्फरपुर नगर के उत्तर में, पश्चिम से पूरब की ओर गोमूत्रिका की आकृति में टेढ़े-मेढ़े ढंग से अपनी धारा को बढ़ाती है और क्रमशः नजीरपुर, पीरमुहम्मदपुर, रोशनपुर, राजबारा-भगवान आदि गाँवों के निकट से होते दक्षिण की ओर मुड़ती है और तब 'बिंदा' नामक गाँव को पहुँचती है। बिंदा में किसी प्राचीन दुर्ग का ध्वंसावशेष है, जहाँ मुजफ्फरपुर नगर से 'सिलौत' होकर दरभंगा जानेवाली सड़क बूढ़ी गंडकी को पार करती है। बिंदा के बाद यह पहले अग्निकोण में चलती है और तत्पश्चात् पूर्वोत्तर कोण में बहती है। इसके बाद उत्तर दिशा में प्रयाण कर मुहम्मदपुर-दामोदर गाँव को पहुँचती है। इन्हीं गाँवों के आगे बूढ़ी गंडकी अपने प्रवाह का गेंडुर बनाती है, जिसके टापू में 'गुरमी' नामक गाँव बसा है। गुरमी से पहले अग्निकोण में और फिर नैर्ऋत्यकोण में चलती हुई यह मुहम्मदपुर-

मोहन नामक गाँव को पहुँचती है। मुहम्मदपुर-दामोदर और मुहम्मदपुर-मोहन ये दोनों गाँव बूढ़ी गंडकी की सँड़सीनुमा धारा के बीच में बसे हैं। इसके बाद यह नदी मुजफ्फरपुर से समस्तीपुर जानेवाले मार्ग के उत्तर-पूर्व भाग से सटकर अग्नि कोण-वाहिनी होती है। इस यात्रा में यह क्रमशः अजितपुर, रामपुरदयाल एवं सुन्दरपुर-रतवार नामक गाँवों को आती है। सुन्दरपुर-रतवार ग्राम बूढ़ी गंडकी के पश्चिमी तट पर और 'अब्दुलपुर रैनी' ग्राम पूर्वी तट पर स्थित हैं।

दरभंगा जिले में बूढ़ी गंडकी :

अब्दुलपुर रैनी ग्राम से बूढ़ी गंडकी उत्तर-पूर्व चलकर दरभंगा जिले की सीमा में प्रवेश कर जाती है, जहाँ दरभंगा का मालीनगर गाँव सर्वप्रथम इसका स्वागत करता है। मालीनगर गंडकी के बायें तट पर है और दाहिने किनारे कुछ दूरी पर प्रसिद्ध स्थान 'पूसा' है। पूसा के उत्तर, पूर्व तथा अग्निकोण के भाग में बूढ़ी गंड़की बहती है। अग्निकोण में गंडकी के किनारे बख्तियारपुर नामक एक गाँव है, जहाँ से नैऋत्यकोण में चलने पर यह सिमरीगोपाल, बिरौली खुर्द तथा बथुआ नामक गाँवों के पास से गुजरती है। बथुआ के पास यह समस्तीपुर जानेवाली सड़क से सटकर बहने लगती है। बिरौली खुर्द और बथुआ—ये दोनों ग्राम नदी के पश्चिमी तट पर हैं। बूढ़ी गंडकी यहाँ पूसा के तीन भागों में बहती है। 'बथुआ' नाम का आम, जो श्रावण मास में पकता है, इसी बथुआ ग्राम के नाम पर प्रचलित हुआ है। आज से ४० वर्ष पहले पूसा में भारत की एक मात्र 'कृषि-अनुसंधानशाला' थी। सन् १९०३ ई० में अमेरिका के प्रसिद्ध दानी श्री हेनरी पेलपस ने भारत में कृषि-विकास के लिए अँगरेजी सरकार को २० हजार पौंड का दान दिया था। इसी राशि से अँगरेजी सरकार ने पूसा में कृषि-अनुसंधानशाला की स्थापना की थी। महाविद्यालय और अनुसंधानशाला के भवनों के निर्माण में नौ लाख रुपये व्यय हुए थे। यहाँ कृषि-विभाग, वनस्पति-विभाग, रासायनिक विभाग तथा कीटाणु-विभाग अलग-अलग स्थापित किये गये थे। पूसा-कृषि-अनुसंधानशाला ने भारतीय कृषिविद्या में अनेक नए आविष्कार और अनुसंधान किये थे। सन् १९३४ ई० के प्रसिद्ध बिहार-भूकंप के पश्चात् अँगरेजों ने कृषि अनुसंधानशाला को यहाँ से हटा दिया और इसे वे दिल्ली ले गये, जिससे अब यहाँ केवल एक कृषि-विद्यालय रह गया। किंतु, अब पुनः बिहार में जो कृषि-विश्वविद्यालय की स्थापना हो रही है, उसके लिए उपयुक्त स्थान 'पूसा' ही चुना गया है। इस निर्णय से 'पूसा' का अपना गौरव पुनः बढ़ गया है।

उपर्युक्त 'बथुआ' ग्राम के दक्षिण थोड़ी दूर पर 'ओयनी' नामक ग्राम है, जहाँ मिथिला के ओइनवार राजवंश की कभी राजधानी थी। किसी काल में बूढ़ी गंडकी 'ओयनी' के पूर्वी किनारे से पितौंजिया होकर तथा समस्तीपुर के पश्चिमी भाग से बहती थी, जिसकी निशानी आज भी 'जमुआरी' नदी है। मुजफ्फरपुर-समस्तीपुर-रेल-लाइन का 'पूसा रोड' नामक रेलवे स्टेशन इसी प्राचीन 'ओयनी' ग्राम में है। दिल्ली के बादशाह **फिरोजशाह तुगलक ने** जब सन् १३५२ ई० में शमसुद्दीन हाजी इलियास से मिथिला को छीनकर अपने अधीन किया, तब उसने इसी ओयनी के निवासी **कामेश्वर ठाकुर को** अपनी ओर से मिथिला का शासक

बनाया। कामेश्वर ठाकुर से पाँच पीढ़ी पूर्व 'ओयन ठाकुर' नामक व्यक्ति थे, जिन्होंने जगतपुर से आकर अपने नाम पर 'ओयनी' ग्राम को बसाया था। कामेश्वर ठाकुर के पुत्र **भोगीश्वर ठाकुर** थे, जिन्हें फिरोजशाह तुगलक ने सम्मानित किया था। इलियास को फिरोजशाह तुगलक ने जब पराभूत किया, तब कामेश्वर ठाकुर बहुत बूढ़े हो गए थे, अतः मिथिला का वास्तविक शासक **भोगीश्वर ठाकुर** ही बने थे। भोगीश्वर तीन भाई थे। शेष दो भाइयों का नाम **कुसुमेश्वर ठाकुर** और **भवेश्वर ठाकुर** था। शासक बनने के बाद इनकी उपाधि 'सिंह' की हो गई थी। भोगीश्वर का देहांत सन् १३६० ई० में हुआ था, जिसके बाद उनके पुत्र **गणेश्वर ठाकुर** राजगद्दी पर आसीन हुए। इस घटना से भोगीश्वर के छोटे भाई भवेश्वर के दो पुत्र (कुँअर हरिसिंह और त्रिपुर सिंह) क्रुद्ध हो गये; क्योंकि ये भी राज्य में हिस्सा चाहते थे। इन दोनों भाइयों ने षड्यंत्र करके बंगाल के शासक के सूबेदार 'असलम' के द्वारा गणेश्वर ठाकुर को मरवा डाला और असलम की छत्रच्छाया में राज्य के मालिक बन बैठे। गणेश्वर के भी दो पुत्र थे, जिनका नाम **कीर्त्ति सिंह** और **वीरसिंह था**। इन दोनों ने जौनपुर के शासक **महमूद इब्राहिम शर्की** की सहायता लेकर अपने पिता का बदला लिया और फिर से शासन प्राप्त कर लिया।[१] इसी कीर्त्ति सिंह के नाम पर महाकवि विद्यापति ने 'कीर्त्तिलता' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी है।

'बथुआ' ग्राम के बाद बूढ़ी गंडकी पूर्वोत्तर कोण में चलती है और 'सोमनाहा' ग्राम को पहुँचती है। सोमनाहा में प्राचीन अवशेष का चिह्न दीख पड़ता है। यहाँ से यह पहले कुछ दूर उत्तर दिशा में चलती है और फिर पूर्व में और तब अग्निकोण में मुड़कर 'रामपुर' के पश्चिम भाग में आती है। इसके बाद नैर्ऋत्यकोण में दौड़कर 'माधोपुर' गाँव का स्पर्श करती है। यहाँ यह पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशा की ओर से अपनी धारा बहाती है और वाजिदपुर तथा माधोपुर को घेरती हुई दक्षिण दिशा की ओर द्वार बनाती है। माधोपुर के अग्निकोण में 'झहुरी' और पूर्व भाग में 'वरसिंहपुर' नामक गाँव इसके तट पर हैं। वरसिंहपुर से यह बूढ़ी गंडकी दक्षिण की ओर दौड़ती है और इस यात्राक्रम में इसके किनारे सिसनौत, रहमतपुर तथा चकनूर गाँव बसे हुए हैं। ये तीनों गाँव गंडकी के पश्चिमी तट पर इसकी धारा के दाहिने भाग में पड़ते हैं। रहमतपुर के ठीक सामने और इसके बाएँ किनारे थोड़ा हटकर मुक्तापुर गाँव है। यहाँ समस्तीपुर से दरभंगा जानेवाली रेलवे लाइन का स्टेशन भी है। मुक्तापुर में कागज और जूट की फैक्टरी है और यहाँ भी एक प्राचीन टीला दीख पड़ता है। मुक्तापुर के दक्षिण बूढ़ी गंडकी के दाहिने तट पर 'धर्मपुर' नामक गाँव है, जहाँ से नदी अग्निकोण में प्रयाण करती है और समस्तीपुर नगर के सटे उत्तर-पूर्व भाग में पहुँचती है।

समस्तीपुर पूर्वोत्तर रेलवे का प्रसिद्ध जंक्शन है, जहाँ से चारों दिशाओं में रेल की लाइनें दौड़ती हैं। पश्चिम में मुजफ्फपुर को, उत्तर में दरभंगा को, पूर्व-दक्षिण कोण में रोसड़ा

---

१. मिथिला-तत्त्व-विमर्श (श्री परमेश्वर झा), पृ० १४७ से १४९।

होते 'खगड़िया' को और दक्षिण में बछवारा होते बरौनी को जाती है। इस नगर का जन्म भी १४ वीं शती के मध्य में हुआ। इसका वास्तविक नाम 'शमशुद्दीनपुर' है, जो अब बिगड़कर 'समस्तीपुर' बन गया है। गयासुद्दीन तुगलक ने हरिसिंहदेव को मिथिला से खदेड़कर अपना शासन कायम किया, तब उसकी ओर से शमसुद्दीन हाजी इलियास ने सन् १३४० ई० के आस-पास मिथिला का शासन सँभाला था।

हाजी इलियास ने प्राचीन 'कोटिग्राम' अथवा 'अश्वपुर' का नाम बदलकर अपने नाम के एक शब्द 'हाजी' जोड़कर उस स्थान का नाम 'हाजीपुर' रखा और यहीं अपनी राजधानी कायम की। हाजीपुर की ख्याति इसी के राज्यकाल में हुई। इसी शमसुद्दीन ने अपने नाम पर मिथिला में दूसरा नगर 'शमसुद्दीनपुर' बसाया, जो आज 'समस्तीपुर' कहलाता है। मेरे खयाल से शमसुद्दीन का मिथिला के इसी भाग पर शासन कायम हो सका था, जिसकी उत्तरी सीमा 'बूढ़ी गंडकी' नदी थी और दक्षिण में गंगा नदी। इस काल में 'बागमती' के उत्तर 'देकुली' में भवेश्वर के वंशजों का शासन-केंद्र हम देखते हैं। मेरे खयाल से 'शमसुद्दीनपुर' का ही प्राचीन नाम 'जगतपुर' था, जहाँ से ओइनवारों के पूर्व पुरुष **ओइनठाकुर** ने हटकर 'ओइनी' ग्राम बसाया था। समस्तीपुर आजकल दरभंगा जिले का एक अनुमंडल है, जहाँ का बाजार और व्यापार अच्छा है। इसी समस्तीपुर के निवासी पद्मश्री कविवर **रामावतार पोद्दार 'अरुण'** हैं, जिन्होंने काव्य की अनेक पुस्तकें लिखी हैं और विख्यात कवि होने के कारण ही भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मश्री' उपाधि से विभूषित किया है। इनके महाकाव्यों में 'वाणांबरी', 'महाभारती' तथा 'अरुणरामायण' प्रसिद्ध हैं।

इसी समस्तीपुर से डेढ़ मील पश्चिम, और समस्तीपुर-मुजफ्फरपुर-रेल लाइन के किनारे 'पितौंजिया' नामक ग्राम है, जहाँ के निवासी प्रसिद्ध समाजवादी नेता **कर्पूरी ठाकुर** हैं। श्रीठाकुर एक बार बिहार के मुख्यमंत्री भी रह चुके हैं और अखिल भारतीय समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष भी। एक अतिशय निर्धन नाई-परिवार में जन्म लेकर भी इन्होंने त्याग, तपस्या और जनसेवा की सच्ची निष्ठा से अखिल भारतीय पद और प्रतिष्ठा अर्जित की है। यह 'पितांजिया' ग्राम बूढ़ी गंडकी की एक प्राचीन और खंडित धारा ('जमुआरी' नदी) के किनारे है। किसी काल में बूढ़ी गंडकी 'बथुआ' ग्राम के पास से ओइनी, चंदौली तथा पितौंजिया होकर समस्तीपुर के पश्चिम अग्निकोण में बहती थी, जिसकी निशानी 'जमुआरी' नदी है। ओइनवारों की 'ओइनी' राजधानी इसी धारा के किनारे बसी थी।

समस्तीपुर के उत्तर भाग में प्रवाहित बूढ़ी गंडकी नदी के बाएँ तट पर 'अकबरपुर' तथा 'सारी' गाँव बसे हैं, जहाँ से पूर्व दिशा में बहकर यह 'हंसा' तथा 'सथमलपुर' नामक गाँवों को पहुँचती है। दोनों ग्राम अपने प्राचीन अवशेष के कारण प्राचीन जान पड़ते हैं और दोनों नदी के बाएँ तट पर उत्तर में हैं। सथमलपुर के ठीक सामने नदी के दाहिने किनारे 'मरदेवा' नामक ग्राम से कुछ दूर अग्निकोण में जाकर बूढ़ी गंडकी रामनाथपुर के पास फेरी बनाती है और रस्सी की तरह ऐंठकर उत्तर और फिर दक्षिण दिशा में घूमकर सुरतपुर तथा सोमन नामक गाँवों को पहुँचती है। इनमें सुरतपुर नदी के दाहिने किनारे और

सीमन बाएँ किनारे बसे हैं। यहाँ से यह अग्निकोण में बहती क्रमशः भोरे जयराम, शाहपुर तथा बघौली नामक ग्रामों को आती है। ये तीनों ग्राम इसके बाएँ तट पर दिखाई पड़ते हैं। शाहपुर और बघौली के पास बूढ़ी गंडकी, समस्तीपुर-रोसड़ा-रेल-लाइन के उत्तरी भाग में बहुत नजदीक से, अग्निकोण में ही बहती है तथा सड़क-मार्ग से तो बिलकुल सटकर चलती है। बघौली के पास यहाँ पुनः अपनी धारा को उत्तर, पूर्व और दक्षिण की ओर मोड़कर झुमके की तरह लटकती है और फिर अग्निकोण में सटकर 'भेरपुरा' ग्राम के पास रोसड़ा-समस्तीपुर-सड़क से सट जाती है। इसी 'भेरपुरा' के पूरब तथा नरहन के रेलवे स्टेशन और सिंघिया के पश्चिमोत्तर दिशा से दक्षिण की ओर आती हुई 'बागमती' की मुख्य धारा बूढ़ी गंडकी में संगम करती है। यह संगम रोसड़ा से दो मील पश्चिमोत्तर कोण में होता है। बागमती का यह दाहिना मुख्य प्रवाह-पथ है। यह प्रवाह हायाघाट रेलवे स्टेशन के सटे पश्चिम 'खरमन्द' नामक गाँव के पास दो धाराओं में विभक्त होनेवाली बागमती का दाहिना हाथ है।

बूढ़ी गंडकी अपनी सहायिका बागमती की दाहिनी धार को समेटकर अग्निकोण में ही बढ़ती है और सिंघिया-बुजुर्ग पहुँचती है तथा वहाँ से पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर फिर अग्निकोण में बहती है। इस प्रवाह के बाएँ तट पर 'रोसड़ा' नामक बाजार मिलता है। रोसड़ा में रेलवे स्टेशन है तथा समस्तीपुर-अनुमंडल का एक प्रसिद्ध थाना भी (पुलिस स्टेशन) है। रोसड़ा के पश्चिमी भाग से ही बूढ़ी गंडकी दक्षिण दिशा में बढ़ती है और स्टेशन के पश्चिम में ही रेल-लाइन को पारकर 'महथी' नामक गाँव के पूरब आती है। महथी गाँव के पास यह पश्चिमोत्तर कोण में अंतरीप बनाती है और दक्षिण बढ़कर 'बोरिया' गाँव का स्पर्श करती है। महथी के पास जहाँ यह अपनी धारा को पश्चिम की ओर घुमाती है, वहीं से इसके वाम भाग में मुँगेर जिले की भूमि प्रारंभ होती है तथा दाहिने भाग में दरभंगा जिले की ही भूमि रहती है। बोरिया के दक्षिण, यानी बूढ़ी गंडकी के दाहिने भाग में, दरभंगा जिले के क्रमशः नरहन, भुसवार, पतिला, करख, देसरी आदि गाँव उत्तर से दक्षिण की ओर बसे हुए हैं। पतिला के नैर्ऋत्य कोण में दरभंगा जिले के दक्षिणी भाग में 'गंगौली' नामक एक प्रसिद्ध गाँव है, जो पूर्वकथित ओइनी और पितौंजिया से बहकर आनेवाली 'जमुआरी' नदी के तट पर बसा है। जमुआरी को इधर 'बेलती' नदी भी कहा जाता है। गंगौली में प्राचीन किले का भग्नावशेष दीख पड़ता है। गंगौली नान्यदेव के पुत्र गंगदेव के नाम पर बसा था। महथी के बाद से ही जब बूढ़ी गंडकी दरभंगा जिले और मुँगेर जिले की सीमा बनकर बहने लगती है, तब इसके बाएँ किनारे में, यानी पूर्वी तट पर मुँगेर जिले के सागी, दौलतपुर, बारा, बरियारपुर, मटिहानी, खोदाबन्दपुर, मेघौल, गोपालपुर, रामपुर, सकरउली आदि गाँव स्थित मिलते हैं। ये सभी गाँव उत्तरी मुँगेर जिले के चेरिया-बरियारपुर थाने के हैं।

मुँगेर जिले में बूढ़ी गंडकी :

दरभंगा जिले के उक्त देसरी और मुँगेर जिले के उक्त रामपुर के पास से बूढ़ी गंडकी अग्निकोण में प्रयाण करती हुई मुँगेर जिले में प्रवेश कर जाती है। मुँगेर में इसकी धारा और भी कुटिल हो जाती है। इधर पग-पग पर अपनी धारा को इस तरह ऐंठती है, जैसे

यह आगे की ओर जाने में अत्यंत सकुचाती हो। 'सकरौली' के बाद इसके बाएँ तट पर जहाँ क्रमशः कोरजन, विक्रमपुर, बिशुनपुर और इसके बाद चेरिया-बरियारपुर (थाना) गाँव स्थित हैं, वहीं दाहिने तट पर अकहा एवं जैरामपुर गाँव दिखाई पड़ते हैं। चेरिया बरियारपुर से दक्षिण बढ़कर जब बूढ़ी गंडकी पूर्वोत्तर कोण में मुड़ती है, तब इसके दाहिने किनारे 'ठठा' गाँव पड़ता है और 'ठठा' के सामने नदी के बाएँ भाग में प्रसिद्ध गाँव 'मझौल' बसा हुआ है। मझौल के पश्चिम बूढ़ी गंडकी अपनी धारा को उत्तर, पूर्व और दक्षिण की ओर से बहा कर सिर्फ नैऋत्य कोण में एक अन्तरीप बनाती है। उत्तर में मेघौल से आरंभ करके दक्खिन में मझौल तक के पूर्वी भाग में एक बड़ी झील है, जिससे पश्चिम में बूढ़ी गंडकी अपना धारा-मार्ग बनाती है और दक्षिण की ओर बहती है। जिस काल में बूढ़ी गंडकी 'जमुआरी' की धार से बहती थी, उस काल में 'बागमती' इसी झील से होकर गुजरती थी। बागमती की इस झील का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है, जिसके मध्य में जयमंगलागढ़ नामक एक द्वीप है। इस झील का नाम 'काबरताल' है, जिसकी लंबाई आठ मील और चौड़ाई दो मील है। यह १८०० एकड़ भूमि में फैली है। यह झील चेरिया-बरियारपुर से ४ मील उत्तर-पूर्व में और बेगूसराय नगर से १२ मील उत्तर में है। 'काबरताल' झील अपने मनोरम दृश्य के कारण उत्तर बिहार में सैलानियों के लिए सबसे आकर्षक स्थान है। झील में हिमालय तक के रंगविरंगे पक्षियों का झुण्ड खास-खास समय में आता है और उनके राव-बिरावों से संपूर्ण झील-क्षेत्र गुंजित-मुखरित रहता है। पक्षियों के शिकार करनेवाले लोगों के लिए तो यह झील बड़ी ही उपयुक्त है। ग्रीष्म ऋतु में यह प्रायः सूख जाती है, जिसमें धान की खेती होती है और नवम्बर में नाव पर चढ़कर लोग धान की बाली काट लेते हैं। मछली पकड़नेवाले मल्लाह छोटी डोंगियों का सहारा लेकर इधर-उधर जाल डालते चलते हैं। कुछ स्थानों में तो दूर तक गहरा पानी भरा रहता है; पर अधिकांश भूमि में खेती होती है।

'काबरताल' के बीच में जो द्वीप है, उसे बंदर-द्वीप भी कहा जाता था; क्योंकि वहाँ बंदरों की भरमार थी। इन बंदरों को लोग देव-सेना मानकर इनपर श्रद्धा रखते थे। इसी कारण सन् १७९३ ई० में जब सर्वत्र जमीन की बंदोबस्ती हुई, तब देवांश समझकर इस द्वीप की बंदोबस्ती नहीं की गई। बल्कि सरकार ने द्वीप के मंदिर में घी का दीप जलाने और बंदरों को भोजन कराने के लिए एक अच्छी राशि का अनुदान देना स्वीकार कर लिया, जो सन् १८५२ ई० तक दिया जाता रहा। सरकार को जब मालूम हुआ कि अनुदान के पैसों से न तो मंदिर में दीप जलता है, न बंदरों को भोजन दिया जाता है, तब उसने अनुदान देना बंद कर दिया। लोगों की दृष्टि में यह द्वीप इतना पुण्यमय तथा पवित्र माना जाता था कि इसके चारों तरफ जो ताड़ के वृक्ष लगे थे, उनसे ताड़ी इसलिए नहीं निकाली जाती थी कि यदि इन ताड़ों को छेदन किया जायगा, तो इनसे ताड़ी नहीं; रक्त निकलेगा। द्वीप पर तमाम नरपत के घने जंगल भरे रहते थे, जिनमें जंगली सूअरों का निवास था और तीर्थयात्री बड़ी कठिनाई से द्वीप के मंदिर तक पहुँचते थे; पर आज ऐसी स्थिति नहीं रह गई है।

'बंदर द्वीप' पर एक ऊँचा टीला है, जिस पर एक बहुत प्राचीन छोटा-सा मंदिर है। मंदिर का प्रवेश-द्वार बहुत ही छोटा है, जिसके निचले भाग में दुर्गा की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। दुर्गा की पूजा के लिए दूर-दूर के पुण्यार्थी यहाँ आते हैं—विशेषकर विजयादशमी के अवसर पर तो यहाँ मेला लग जाता है। यों भी प्रति मंगल और शनिवार को भी दुर्गा-भक्तों का जमघट लगा रहता है। यहाँ एक ऐसा प्राचीन कुंड पाया गया, जिसकी लंबाई ३०० फीट थी और चौड़ाई १०० फीट। यह कुंड पश्चिम दिशा में बिना बाँध का था और गढ़ की बाहरी दीवार के भीतर तक चला गया था। कुंड के मध्य में तीन पंक्तियों में लकड़ी के स्तंभ गड़े हैं और प्रत्येक स्तंभ ७½ फुट की दूरी पर गाड़ा गया है। अनुमानतः ये स्तंभ कुंड के बीच भाग में गाड़े गये थे। इनमें और भी दो बाहरी खंभे खड़े किये गये हैं, जिनमें एक बाएँ किनारे और दूसरा उसी के नजदीक में। ये सभी स्तंभ अब भी देखे जा सकते हैं। यहाँ बहुत-से चिकनी पॉलिश किये गये खिलौने, एक लोहे का सीकड़ तथा अन्य प्राचीन वस्तुएँ भी पाई गई हैं। द्वीप पर सर्वत्र अत्यंत पकी झाँवाँ ईंटें बिखरी हुई मिलती हैं, और तोप के गोले भी पाये गये हैं। इसकी अभी तक समुचित खुदाई नहीं हुई है, पर जो भी चीजें मिली हैं, उनसे यही निष्कर्ष निकला है कि यह स्थान शुंग काल के पहले का है। सन् १९५५ ई० में यहाँ बहुत-से सिक्के मिले थे, जिनमें से केवल चाँदी के तीन सिक्के ही ऐतिहासिकों को मिल सके, जो तुगलक बादशाह के समय के थे। यहाँ की दुर्गा भवानी का नाम 'जयमंगला' है, जिससे इसे 'जयमंगला' गढ़ कहा जाता है। जिस प्रकार की प्राचीन सामग्री यहाँ मिली है, उससे यही अंदाज लगाया जाता है कि इस द्वीप पर किसी राजा का किला था, जो 'जयमंगलागढ़' नाम से भी स्पष्ट होता है। इसकी बहुत संभावना है कि झील से मिट्टी डालकर द्वीप बनाया गया हो और किले की सुरक्षा के लिए झील में बागमती की धारा डाली गई हो।

पूर्व वर्णित 'ठठा' गाँव के बाद बूढ़ी गंडकी दक्षिण दिशा में बढ़कर फिर नैऋत्य कोण में चलती है और 'डीहपुर' को आती है। इसी डीहपुर के पास समस्तीपुर के पश्चिम से बहकर अग्निकोण में आनेवाली 'छोटी जमुआरी' नदी का जल लेकर बलान नदी बूढ़ी गंडकी के दाहिने भाग में प्रवेश करती है। बलान और जमुआरी का संगम 'भिथसारी' गाँव के सामने होता है, जो जमुआरी के बाएँ तट पर स्थित है। उक्त संगम के बाद बूढ़ी गंडकी थोड़ी दूर दक्षिण बढ़कर पुनः पूर्वोत्तर कोण में चलती है और अपने इस यात्रा-क्रम में अपने बाएँ तट पर 'पवरा' तथा दाहिने तट पर 'पानापुर' नामक गाँवों को निहारती है। इस भाग में बूढ़ी गंडकी की धारा अत्यंत कुटिल हो जाती है और इसी कुटिल गति से अग्निकोण में बहती 'चाँदपुरा' तथा 'कतरमाला' नामक गाँवों तक आती है। पानापुर तथा कतरमाला के मध्य में इसके किनारे हैबतपुर, महेशवारा, वसुदेवपुर, पहसरा, विन्द्रावन, छतपुरा, टकनपुरा, नवाकोठी, पटना, हसनपुर, इसुफा आदि गाँव मिलते हैं। उक्त महेशवारा गाँव में कुछ वर्ष पहले 'रुकनुद्दीन कैकस' के समय का अभिलेख तथा कुछ सिक्के मिले हैं। यह अभिलेख सन् १२९१-९२ ई० का है। बेगूसराय से उत्तर की ओर जो मार्ग मझौल होते गढ़पुरा और मालीपुर को जाता है, वह हैबतपुर के पास बूढ़ी गंडकी को पार करता है। हैबतपुर से

कतरमाला तक बूढ़ी गंडकी बेगूसराय थाने की उत्तरी सीमा बनती है। कतरमाला के बाद बूढ़ी गंडकी उत्तर दिशा में प्रयाण करती है और इस प्रयाण में यह मनेरपुर तथा तुरुकौलिया होते 'समास' नामक गाँव को पहुँचती है। कतरमाला से समास गाँव तक यह 'बलिया' थाने की उत्तरी सीमा बनती है। समास के बाद एकाएक दक्षिण की ओर मुड़ती है और पहली धार से सटती हुई 'परिहार' नामक गाँव के पास से होते 'मोहनपुर' पहुँचती है। बलिया-लखमनिया से उत्तर दिशा में बखरी तथा 'सलौना' रेलवे स्टेशन को पहुँचनेवाला मार्ग इसी मोहनपुर में बूढ़ी गंडकी को पार करता है। इसी मोहनपुर के पूर्व भाग में बूढ़ी गंडकी अपनी धारा की एक लट अपने मुखमंडल पर काढ़ती है और तब पूर्व दिशा में बहकर 'गनगौर' नामक गाँव को पहुंचती है। यहाँ से फिर यह दक्षिण चलकर 'बिशुनपुर' नामक गाँव के पूर्व में आती है तथा यहाँ फैलकर झील बनाती हुई उसमें से पतली धारा पूर्व दिशा में निकालती है। बूढ़ी गंडकी इसके आगे अपनी धारा को नैऋत्यकोण में तथा पुनः एकाएक पूर्वोत्तर कोण में और फिर अग्निकोण में एवं इसके बाद फिर नैऋत्यकोण में मोड़ती है। यहाँ इसके दाहिने तट पर 'सादपुर' नामक गाँव मिलता है। इस सादपुर से थोड़ी दूर पूर्व में चलकर पुनः जब पूर्वोत्तर कोण में भागती है, तब 'लाभगाँव' से पूर्व, बरही गाँव से दक्षिण और खगड़िया नगर के पश्चिम, रेल-लाइन के पास आ जाती है। यहाँ से फिर जब दक्षिण की ओर चलती है, तब इसके बाएँ तट पर एक दूसरा सादपुर नामक गाँव मिलता है, जो पहले सादपुर से डेढ़ मील पूर्वोतर कोण में स्थित है। बलिया-लखमिनिया से पूर्वोत्तर कोण में चलता हुआ जो मार्ग खगड़िया पहुँचता है, वह इसी सादपुर में बूढ़ी गंडकी को पार करता है। यहाँ से यह पहले अग्निकोण में चलकर फिर जब नैऋत्यकोण में गिरती है, तब एक हँसिये की आकृति में प्रवाह को वक्र करती है, जिसकी एक धारा दक्षिण की ओर हिलती-डोलती-सी लखमिनिया के पास की रेललाइन के उत्तरी भाग तक लटककर विलीन हो जाती है। किंतु, यह धारा अब समाप्त हो गई है। मुख्य प्रवाह पूर्वोत्तर कोण में बहता तथा दुर्गापुर-बरारी गाँव के पास से होता खगड़िया नगर को आ जाता है। दुर्गापुर-बरारी के पास ही बरौनी से खगड़िया पहुँचने वाली रेल-लाइन बूढ़ी गंडकी को लाँघती है। खगड़िया नगर और स्टेशन नदी के बाएँ भाग में हैं। खगड़िया मुँगेर जिले का एक उपमंडल है, जो मकई, मछली, आम और लीची की मंडी के लिए भारत में विख्यात है। यहाँ एक महाविद्यालय भी है।

खगड़िया नगर से सीधे पूर्व भाग में चलती बूढ़ी गंडकी पहले 'मानसी' पहुँचती है और तब बख्तियारपुर नामक गाँव को आ जाती है। मानसी में भी रेलवे का जंक्शन है, जहाँ से रेल-लाइन उत्तर दिशा में 'सहरसा' जाती है और पूर्व की ओर कटिहार की ओर निकल जाती है। बख्तियारपुर नदी से थोड़ी दूर पूर्वोत्तर कोण में मानसी-कटिहार-रेल लाइन के निकट बसा है। मानसी के पूर्व तथा बख्तियारपुर के दक्षिण में बूढ़ी गंडकी की एक पुरानी धारा कटिहार जानेवाली रेल लाइन को पार कर महेश खूँट के उत्तर, पिपरा तथा पकरैल नामक गाँवों तक पहुँच कर चौर बनाती है, जहाँ अब बरसात में ही पानी दीख पड़ता है;

किंतु मुख्य धारा दक्षिण दिशा में मुड़ती है और गंगा-द्वीप की बाईं प्रवाह-भुजा में सिमट जाती है। इसी के सामने गंगा के दाहिने भाग में मुँगेर नगर बसा है। खगड़िया से पूर्व में मानसी और मानसी से ७ मील दूर अग्निकोण में 'गोगरी' तक बूढ़ी गंडकी और गंगा का संगम क्षेत्र है। मुँगेर के सामने गंगा नदी बूढ़ी गंडकी को आत्मसात् करने के लिए अपनी बाईं भुजा बढ़ाकर अपनी गोद में खींच लेती है। यहाँ गंगा के द्वारा बाईं भुजा पसारने पर जो क्रोड-द्वीप बनाता है, उसके मध्य कैलासपुर, हरिनगर, सिसवा, कठघरा, सिरिनिया, डुमरिया खुर्द आदि गाँव बसे हुए हैं। ये सभी गाँव गंडकी-गंगा-संगम के दियारे में स्थित हैं, जो हर साल तबाह-बर्बाद होते रहते हैं। मुँगेर-नगर के बाद गंगा नदी जैसे ही अग्निकोण में मुड़ती है, वैसे ही इसके बाएँ भाग में बूढ़ी गंडकी प्रवेश कर जाती है। आजकल जिस बाईं भुजा से गंगा नदी बूढ़ी गंडकी को अपनी ओर खींचती थी, वह भुजा उत्तर में बढ़कर मानसी तक पहुँच गई है, जिसे नियंत्रित करने के लिए सरकारी तंत्र चिंतित है।

वस्तुतः, बूढ़ी गंडकी का संगम-क्षेत्र बेगूसराय से पूर्व में गोगरी तक, यानी २५ मील में विस्तृत है। बेगूसराय के पूरब 'लखो' गाँव के उत्तर भाग में 'बड़ी सनवक' तथा 'कुसमउत' गाँवों के पास जो पुराने स्रोत का चिह्न है, वह बूढ़ी गंडकी का ही प्राचीन प्रवाह है। इसके पश्चात् लखमिनिया के दक्षिण भगवतपुर के पास गंगा से यह संगम करती थी, जिसके मुहाने पर 'साम्हो' गाँव स्थित है। इसी प्रकार धीरे-धीरे पूर्व की ओर हटती हुई बूढ़ी गंडकी अपना संगम-स्थल गोगरी के पास ले गई है। बूढ़ी गंडक ने अपने जन्मस्थान से आरंभ करके संगम-क्षेत्र तक जितना अधिक और जितनी दूरी में प्रवाह-परिवर्तन किया है, उतना कोसी को छोड़कर किसी दूसरी नदी ने नहीं किया है।

जमुआरी : यह पहले कहा गया है कि मुँगेर जिले के 'भिथसारी' और 'डीहपुर' के पास 'बलान' और 'जमुआरी' नदियाँ सम्मिलित होकर बूढ़ी गंडकी से संगम करती हैं, जिसके किनारे 'नौलागढ़' नामक ऐतिहासिक स्थान है। 'बलान' का नाम भी 'जमुआरी' ही है। इस प्रकार, जमुआरी नाम की दो नदियाँ हैं और दोनों किसी काल में बूढ़ी गंडकी की ही धारा रही हैं। इनमें से बड़ी जमुआरी का मुजफ्फरपुर जिले में **'केदने'**, दरभंगा ज़िले में **'जमुआरी'** और मुँगेर जिले में **'बलान'** नाम है। छोटी जमुआरी वह है, जो पितौंजिया से तथा समस्तीपुर के पश्चिम से अग्निकोण में बहती आती है और ज़िसका एक नाम **'बेलती'** भी है। ये दोनों नदियाँ मझौल के पश्चिम, 'भिथसारी' के पास, मिलकर 'डीहपुर' के पूरब बूढ़ी गंडकी में समाहित होती हैं।

यह भी पहले भी कहा गया है कि बूढ़ी गंडकी अति प्राचीन काल में जमुआरी के धारा-मार्ग से बहती थी और बाया नदी के प्रवाह के साथ आधुनिक दरभंगा जिले और मुँगेर जिले की दक्षिणी-सीमा के पास तेघड़ा के पश्चिम गंगा नदी से संगम करती थी, जिसके सामने गंगा के दाएँ तट पर पटना जिले का 'पुण्डारक' ग्राम है। इसी संगम के कारण उस काल में वहाँ गंगा की धारा जो अग्निकोण-वाहिनी बनी, वह आज तक बनी ही हुई है। वही धारा आज बूढ़ी गंडकी से अलग हो गई है, जिसका नाम **'केदने'**, **'जमुआरी'** तथा **'बलान'** है।

मुजफ्फरपुर नगर के पश्चिमोत्तर भाग में मोतीपुर रेलवे-स्टेशन के पास जहाँ बूढ़ी गंडकी अपनी धारा की टेढ़ी लट छिटकाती है, वहीं से पहले बूढ़ी गंडकी किसी प्राचीन काल में मुजफ्फरपुर-मोतीहारी रेल-लाइन के दाहिने किनारे से अग्निकोण में बहती हुई मुजफ्फरपुर के दक्षिण-पश्चिम-कोण में आती थी। अब यह धारा बिलकुल ही खंडित हो गई है; पर जो निशानी अभी बची हुई है, वह उक्त रेल लाइन के 'काँटी' स्टेशन के अग्निकोण में स्थित 'सरुखी' गाँव के पश्चिमी भाग में दिखाई पड़ती है। यह स्थान जलगाँव के पूरब तथा 'भरही नारायण' के अग्निकोण में निकट ही है। बूढ़ी गंडकी के इसी स्रोत का नाम अब **'केदने'** है और अपने उद्गम-स्थान से अग्निकोण में चल कर शहबाजपुर तथा शाहपुर होते मैंनपकरी तथा चैनपुर नामक गाँवों को आती थी। ये दोनों गाँव मुजफ्फरपुर के नैऋत्य कोण में स्थित हैं। केदने चैनपुर से ही अग्निकोण में मुड़ती थी और मुजफ्फरपुर के दक्षिण 'गोबराही' गाँव को आती थी, जहाँ इसके दाहिने भाग की ओर 'पताही' नामक गाँव है। मुजफ्फरपुर से वैशाली जानेवाला मार्ग चैनपुर के अग्निकोण में 'केदने' को पार करता है। पताही के बाद यह क्रमशः बरमतपुर तथा 'मधोल' गाँवों को आती थी और मधौल एवं सीवानपट्टी गाँवों के बीच से यह हाजीपुर-मुजफ्फरपुर-रेल-लाइन को पार कर 'चकिया' नामक ग्राम को पहुँचती थी। इसने रामदयालुनगर ओर तुर्की स्टेशनों के मध्य जहाँ रेलवे-लाइन पार किया है, वहाँ चौर-सा बन गया है। यहाँ से यह थोड़ा दक्षिण दिशा में झुक कर प्रयाण करती 'गोरियारी' गाँव तक आती थी। यह गाँव तुर्की स्टेशन के पूर्व भाग में स्थित है। अपने उद्गम-स्थान से मुजफ्फरपुर-हाजीपुर रेल-लाइन तक अब 'केदने' का स्पष्ट धारा-मार्ग दिखाई नहीं पड़ता, किंतु वर्षा ऋतु में अवश्य ही पानी का बहाव और जमाव हो जाता है। मगर रेल-लाइन के पूर्व भाग से इसका बहाव स्पष्ट हो जाता है और 'गोरियारी' के बाद तो एक पतली सरिता अवश्य ही बन जाती है।

गोरियारी के आगे 'केदने' सीधे दक्षिण दिशा में चलती है और इस बहाव के क्रम में इसके बायें किनारे 'करवानडीह' और थोड़े दक्षिण जाने पर दाहिने किनारे 'किशुनपुर' तथा 'मधुबन' नामक गाँव मिलते हैं। अपने इसी दक्षिणी प्रयाण-क्रम में 'केदने' कुरहनी रेलवे स्टेशन के पूरब तक बहती जाती है। यहाँ से यह पूर्वोत्तर कोण में मुड़ती है और 'झकरी' गाँव के पास से होते 'छितरउली' के दक्षिण से उसके पूर्व भाग में पहुँचती है। इसके बाद अग्निकोण-वाहिनी बन जाती है और इस प्रयाणक्रम में यह क्रमशः हबीबपट्टी, भरवारी, मुनदिअरी, गनियारी एवं जोगिनी गंगा नामक गाँवों को निहारती है। जोगिनी गंगा के सटे दक्षिण में मुजफ्फरपुर जिले के बरियारपुर-कंध तथा पश्चिम भाग में 'शाहपुर-जुनेद' नामक गाँव स्थित हैं। केदने नदी बरियारपुर के पास ही 'नोन' नामक एक स्रोत का जल आत्मसात् करती है। **'नोन'** नामक जल-स्रोत मुजफ्फरपुर जिले के 'कमतउल' नामक पुलिस स्टेशन के पूर्व भाग से तथा 'कुरहनी' गाँव के उत्तर भाग से चलता है, जो मुजफ्फरपुर-हाजीपुर-सड़क के किनारे में पड़ता है। कुरहनी रेलवे-स्टेशन के दक्षिण जो चौर है, जिसके ऊपर से रेल-लाइन पार करती है, इसी 'नोन' नदी का चौर है। यह स्रोत उक्त चौर से चल कर 'जगरनाथ-

पुर' तथा 'पदमउल' नामक गाँव को आता है । पदमउल स्थान मुजफ्फरपुर जिले का प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्थान है । इसी 'पदमउल' में, मुस्लिम बादशाहों के समय में, एक कानूनगो रहता था । यहाँ का भग्नावशेष उसी कानूनगो के बनवाए गढ़ का टीला है । उस समय इस गढ़ में तोपें लगाई गई थीं, जिसका उल्लेख मुजफ्फरपुर जिले के गजेटियर में है । पदमउल के बाद यह जलस्रोत 'चपकी' तथा 'शाहपुर-जुनेद' गाँवों से होते बरियारपुर के पास 'केदने' में सम्मिलित हो जाता है ।

बरियारपुर के पास 'नोन' का जल ग्रहण कर **केदने** थोड़ा पूर्व की ओर बढ़कर उत्तर दिशा की ओर प्रयाण कर जाती है और 'सुन्दरपुर' नामक गाँव के उत्तर पहुँच कर 'सुजावतपुर' गाँव के नैऋत्य कोण में चली आती है । सुजावतपुर गाँव मुजफ्फरपुर-समस्तीपुर रेल लाइन के 'ढोली' नामक स्टेशन से सिर्फ डेढ़ मील दूर नैऋत्य कोण में स्थित है । हाजीपुर से महुआ होकर जो मार्ग मड़न छपरा होते 'ढोली' जाता है, वह सुजावतपुर में ही 'केदनें' को पार करता है । इस सुजावतपुर घाट से केदने नदी फिर दक्षिण दिशा में मुड़ जाती है और 'रहीमपुर-जीवान' गाँव से होते दक्षिण की ओर ही बहती हुई 'हरलोचनपुर-सुकी' गाँव को आ जाती है । यहाँ भी 'केदने' में एक घाट है, जहाँ महुआ से उत्तर की ओर चल कर हरपुर-पूसा पहुँचनेवाला मार्ग 'केदने' को लाँघता है । हरलोचनपुर के बाद यह अग्नि कोण में बहने लगती है और 'खेसराही' गाँव होते 'पातेपुर' नामक गाँव को पहुँचती है । पातेपुर मुजफ्फरपुर जिले के पूर्वी भाग का एक थाना है । पातेपुर से पूर्व दिशा में बहकर यह 'अलीनगर' आती है और वहाँ से दक्षिण की ओर बहती हुई मुजफ्फरपुर तथा दरभंगा जिले की सीमा बनने लगती है । दोनों जिलाओं की सीमा का काम 'केदने' दरभंगा जिले के गउसपुर-सरसौना के पास से ही आरंभ कर देती है । गउसपुर सरसौना गाँव 'ताजपुर' के पश्चिमोत्तर कोण में स्थित है । यहाँ से केदने के पूर्वी तट की ओर दरभंगा जिले के ताजपुर थाने का क्षेत्र और पश्चिमी तट की ओर मुजफ्फरपुर जिले के पातेपुर थाने का क्षेत्र प्रारंभ होता है । केदने के पश्चिमी तट पर इस भाग में पातेपुर थाने के क्रमशः, उत्तर से दक्षिण की ओर, बहुआरा, मालपुर, भगवानपुर, बकाढ़, सैदपुर, अजीजपुर चाँदी, मरई तथा मोर बुजुर्ग गाँव बसे हुए हैं । इसी प्रकार इसके बाएँ (पूर्वी) तट पर दरभंगा जिले के ताजपुर थाने के क्रमशः, उत्तर से दक्षिण की ओर वाजितपुर-सरसौना, गउसपुर-सरसौना, कोठिया, सादीपुर, हसनपुर, माधोपुर दिघरुआ, कमतउल तथा रजवारा गाँव हैं । हाजीपुर से महुआ होते जो मार्ग ताजपुर तथा समस्तीपुर जाता है, वह केदने को उपर्युक्त 'मालपुर' के पूर्वोत्तर कोण में पार करता है । इसके बाद केदने 'मोर बुजुर्ग' गाँव के पास आकर दरभंगा जिले के ताजपुर थाने की भूमि में **जमुआरी** नाम से प्रवेश करती है ।

यहाँ **जमुआरी** के बाएँ भाग में ताजपुर थाने के चकपहाड़, चकसिकंदर तथा गुनई नामक गाँव मिलते हैं । चकसिकंदर से जमुआरी थोड़ा अग्निकोण में झुकती हुई दक्षिण दिशा में बहने लगती है और 'पँचभिडा' नामक गाँव को आ जाती है । शाहपुर-पटोरी से समस्तीपुर जानेवाली सड़क इसी 'पँचभिडा' के अग्निकोण में तथा रसूलपुर गाँव के पश्चिमोत्तर कोण में

जमुआरी नदी को पार करती है। रसूलपुर के अग्निकोण में नदी के बाएँ तटभाग में 'वलभद्रपुर-मेहसी' और दाएँ तटभाग में 'इंदरवारा' नामक गाँव दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं दोनों गाँवों के मध्य से जमुआरी अग्निकोण में निकलती है। यहाँ जमुआरी ने एक चौर का निर्माण किया है, जहाँ से पूरब की ओर निकलकर उत्तर दिशा में वहने लगती है। यह चौर पहले छोटी जमुआरी का संगम-स्थल था। उत्तर-वाहिनी क्रम में इसके पूर्वी तट पर 'भतगाँवाँ' तथा पश्चिमी तट पर 'मुसापुर' नामक गाँव मिलते हैं। इसी यात्रा-पथ में यह 'वरहंडा परेम' नामक गाँव तक आती है और यहीं से अपने प्रवाह को थोड़ा अग्निकोण की ओर झुकाती हुई दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है। जमुआरी के इस यात्रा-पथ में इसके वामपार्श्व में भैरोपट्टी तथा रहीमपुर पियारे गाँव और दक्षिण पार्श्व में मनियारपुर तथा इसके पूरव में 'सोइर' नामक गाँव दिखाई पड़ते हैं। सोइर से जमुआरी पहले पूर्व दिशा में चलती है और तब पूर्वोत्तर कोण में वहकर 'केओटा' गाँव को आती है। 'केओटा' गाँव के वाद यह सीधे उत्तर दिशा में चलती हुई 'दलसिंगसराय' के पश्चिम में पहुँच जाती है। दलसिंगसराय दरभंगा जिले के समस्तीपुर अनुमंडल का थाना है और यह वरौनी-समस्तीपुर-रेल-लाइन पर एक प्रसिद्ध स्टेशन है। दलसिंगसराय एक व्यापारिक नगर है और तंवाकू तथा मिरचाई के व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। दलसिंगसराय तक जमुआरी नदी के दोनों कछार तंवाकू की उपज के लिए देश में प्रसिद्ध है और इस भाग के किसान वड़े पैमाने पर तंवाकू की खेती करते हैं। यह क्षेत्र मिरचाई की उपज के लिए भी वड़ा उर्वर है। इसी दलसिंगसराय रेलवे-स्टेशन के पश्चिम में बरौनी से समस्तीपुर जानेवाला राजमार्ग जमुआरी को पार करता है और जमुआरी यहाँ से रेलमार्ग और इस सड़क के वीचवाले सकरे भाग से, अग्निकोण में झुकती हुई, दक्षिण की ओर वहती है। नदी के दाहिने तट की ओर से सड़क चलती है और वाएँ तट-भाग से रेल-लाइन गुजरती है। अपने इसी यात्राक्रम में जमुआरी नदी दलसिंगसराय से लगभग डेढ़ मील दक्षिण-पूर्व भाग में दरभंगा जिले की भूमि से निकल कर मुँगेर जिले के क्षेत्र में चली आती है।

मुँगेर जिले का यह भाग 'वछवारा' थाने का है, जिसमें सर्वप्रथम जमुआरी को 'रसीदपुर' नामक गाँव मिलता है, जो इसके दाहिने तट पर वसा है। इसके दक्षिण में चक्का टेभुआँ तथा फतेहा नामक गाँव इसके किनारे में मिलते हैं। फतेहा गाँव बछवारा से पश्चिम में है, जहाँ से जमुआरी पूर्व दिशा में मुड़ जाती है और वछवारा आकर पूर्वोत्तर कोण में प्रवाह वनाती है। वछवारा इस नदी के दाहिने तट पर है। यहाँ से पूर्वोत्तर कोण में प्रयाण करने के वाद यह मराँछी खुर्द आती है और फिर पूर्व की ओर मुड़कर 'मंसूरचक' और 'नईपुर' गाँवों को पहुँचती है। मंसूरचक के क्षेत्र में जमुआरी का नाम **बलान** नदी हो गया है। नईपुर से 'वलान' अग्निकोण में अपना प्रवाह वनाती है और इस तरह यह आगापुर तथा रुदौली पहुँचकर दक्षिण दिशा की ओर वहती है। इस दक्षिण-प्रवाह के क्रम में इसके दाहिने किनारे हादीपुर तथा महीपुर और वाएँ किनारे 'कदरावाद' और 'गहुनी' नामक गाँव स्थित हैं। महीपुर से वलान फिर पूर्व की ओर मुड़ जाती है और वक्र गति से परीडीह तथा

पुरामनचक होते भगवानपुर गाँव को पहुँच जाती है। भगवानपुर से सटे पश्चिमोत्तर कोण में महदौली गाँव है। ये दोनों ग्राम प्राचीन तथा प्रसिद्ध हैं और दोनों में प्राचीन टीले दिखलाई पड़ते हैं। भगवानपुर के वाद पुनः बलान दक्षिण दिशा में वहने लगती है और इस यात्राक्रम में इसके कछार में डहिया, दामोदरपुर, पाशोपुर, नूरपुर, कटरिया तथा खिजिरचक गाँव बसे हुए हैं। इसी 'नूरपुर' में मीरजाफर के पुत्र मीरन का एक दस्तावेज मिला है। कटरिया के पास यह बछवारा थाने से निकलर तेघड़ा थाने में घुसती है और तब खिजिरचक आती है, जहाँ से थोड़ी दूर के लिए पूर्वोत्तर कोण में मुड़ती है और फिर दक्षिण दिशा में घूमकर 'नोनपुर' नामक गाँव को आ जाती है। बरौनी से सीधे उत्तर की ओर दरभंगा जिले के 'नरहन स्टेट' को जानेवाला मार्ग 'वलान' नदी को उपर्युक्त खिजिरचक और नोनपुर के बीच भाग में ही पार करता है। इसी नोनपुर से 'बलान नदी' बूढ़ी गंडकी से मिलने के लिए पूर्वोत्तर कोण में मुड़ जाती है और फाजिलपुर तथा गंभारपुर नामक गाँवों को पहुँचती है। फाजिलपुर इसके दाहिने तट पर तथा गंभारपुर बाएँ तट पर वसा हुआ है। फाजिलपुर से थोड़ी दूर पूर्व जाकर वलान उत्तर की ओर मुड़ती है, और इसी मोड़ के पूर्व यानी वलान नदी के पूर्वी तट की ओर 'वीरपुर' नामक ऐतिहासिक गाँव स्थित है। बरौनी जंक्शन और वेगूसराय स्टेशनों के मध्य 'तिलरथ' रेलवे-स्टेशन है। इस तिलरथ से उत्तर की ओर वीरपुर तीन मील दूर है और तिलरथ से नौलागढ़ तथा मझौल को जानेवाला मार्ग 'वीरपुर' होकर ही गुजरता है। वीरपुर का भग्नावशेष किसी प्राचीन किले का स्मारक है। इसकी दीवार की नीवों में मौर्यकालीन ईंटें मिली हैं। दीवार इतनी चौड़ी है कि जिनपर घोड़ों की जोड़ी एक साथ दौड़ सकती है। यहाँ के खेत से एक ऐसी आदमकद सूर्य-मूर्त्ति प्राप्त हुई है, जिसके कला-सौंदर्य का जोड़ नहीं है। गढ़ के भीतर से भैरव, काली और दुर्गा की भी अखंडित मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ के प्राचीन सरोवर के उड़ाह (सन् १९५८ ई०) के समय नंदी की एक बड़ी ही सुंदर प्रतिमा प्राप्त हुई, जिसकी लंबाई ४½ फुट और ऊँचाई २½ फुट है। काले पत्थर का यह नन्दी प्रसन्न-मुद्रा में बैठा है। लोगों का कहना है कि बिच्छू के डंक का दर्द इस नंदी-मूर्त्ति के स्पर्श से ही दूर हो जाता है। मूषकारूढ नृत्यरत गणेश की मूर्त्ति के अतिरिक्त, विष्णु की तीन, कीर्त्तिमुख की एक, नरसिंह भगवान् की एक तथा नवग्रहों की सम्मिलित मूर्त्तियाँ भी यहाँ उपलब्ध हुई हैं। सभी मूर्त्तियाँ काले पत्थर की हैं और पालकालीन वतलाई जाती हैं। आज भी इन सभी मूर्त्तियों को एक स्थान पर रखकर गाँववाले पूजा करते हैं।

वीरपुर के पश्चिमी भाग से दक्षिण से उत्तर की ओर वहती हुई, इस वलान नदी के वाएँ भाग में 'जोकिया' नामक गाँव है, जहाँ से थोड़ी दूर उत्तर दिशा में बहकर 'भिथसारी' गाँव के दक्षिण में 'बलान' नदी छोटी जमुआरी से मिल जाती है। यह सम्मिलित धारा पूर्व की ओर वहती हुई 'डीहपुर' गाँव के पास 'बूढ़ी गंडकी' में गिर जाती है।

छोटी जमुआरी या बेलती : भिथसारी गाँव के पास 'वलान' (बड़ी जमुआरी) से मिलकर बूढ़ी गंडकी में समाहित होनेवाली यह 'छोटी जमुआरी' भी कोई अलग नदी नहीं है;

बल्कि किसी काल में यह भी 'बूढ़ी गंडकी' की ही मुख्य धारा थी। बूढ़ी गंडकी ने बड़ी जमुआरी वाली धारा से अलग होकर जब मुजफ्फरपुर नगर के उत्तर भाग से अपना प्रयाण-पथ बनाया, तब वह इसी छोटी 'जमुआरी' की धारा से बहने लगी थी। बूढ़ी गंडकी की यह पुरानी धारा मुजफ्फरपुर जिले के 'ढोली' नामक गाँव (ढोली स्टेशन से उत्तर) के उत्तर से, सुन्दरपुर-रतवारा गाँव के पश्चिम से तथा रहीमपुर दयाल के अग्निकोण से दक्षिण चलकर 'ढोली' गाँव आती थी। फिर, यहाँ से अग्निकोण में बहकर आधुनिक दरभंगा जिले की सीमा में, भैरोपट्टी ग्राम के पास, प्रवेश कर ओइनवार वंशियों की राजधानी 'ओइनी' गाँव से होते दक्षिण बहकर ताजपुर तथा वहाँ से जितवारपुर होते 'बलभद्रपुर-मेहसी' के दक्षिण 'बड़ी जमुआरी' वाली धारा से मिलकर 'बाजिदपुर' के पास 'बाया' को समेटती गंगा से संगम करती थी। किंतु, कुछ काल बाद इसने 'ताजपुर' वाले मार्ग को भी छोड़ दिया और 'मोहम्मदपुर कुआरी' के पास (पूसा रोड रेलवे स्टेशन के पूरब) से पूर्व की ओर अपना पथ बना लिया और 'पितौंजिया' होकर समस्तीपुर के पश्चिमोत्तर दिशा से पूर्व-दक्षिण दिशा की ओर बहने लगी। बूढ़ी गंडकी की इसी छोटी जमुआरीवाली धारा ने ही 'बाजिदपुर' वाले अपने गंगा-संगम-क्षेत्र को बदला और बूढ़ी गंडकी के गंगा-संगम-क्षेत्र को पूर्व की ओर हटाकर बेगूसराय तथा साम्हो की ओर बढ़ा दिया। किंतु, अब यह पथ भी बिलकुल समाप्त हो गया है और 'ओइनी' के पास की धारा लुप्त हो गई है। मुजफ्फरपुर जिले के सन् १९३८ ई० वाले सर्वे-विभाग के नक्शे में भी बूढ़ी गंडकी की इस धारा का पथ अंकित मिलता है।

छोटी जमुआरी नदी का उद्गम-चिह्न आज पितौंजिया से पश्चिम 'मोहम्मदपुर कुआरी' के पास से (रेलवे लाइन के दक्षिणी हिस्से) से मिलता है, जहाँ से यह पूर्व की ओर चलती 'पितौंजिया' ग्राम आती है। यह वही पितौंजिया है, जहाँ के निवासी बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर हैं। वहाँ से समस्तीपुर नगर के नैऋत्यकोण भाग से बहती अग्निकोण की ओर प्रयाण करती दृष्टिगोचर होती है। बरौनी से पश्चिमोत्तर कोण की ओर जो आधुनिक बड़ी सड़क ताजपुर जाती है, वह ताजपुर के पहले विश्वंभरपुर से पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर समस्तीपुर जाते समय रहीमपुर गाँव के पास इसी छोटी जमुआरी को लाँघती है। इस सड़कपुल से पूरब की ओर बहकर छोटी जमुआरी भमरुपुर, लगनिया-रघुकंठ और बेलारी गाँव को पहुँचती है। इसी बेलारी में यह बरौनी-समस्तीपुर-रेल लाइन के नीचे से पूरब की ओर बहकर भगवानपुर-दसुआ गाँव को आती है, जो इसके पूर्वी तट पर बसा हुआ है। यहाँ से इस जमुआरी के दक्षिण-वाही यात्राक्रम में इसके किनारे पटैली, हसौली तथा रामचंद्रपुर गाँव मिलते हैं। रामचंद्रपुर से जब यह अग्निकोण में प्रयाण करती है, तब इसके बाएँ भाग में ही 'चैता' नामक प्राचीन स्मारक सँजोये एक ग्राम दिखाई पड़ता है। इसी चैता के दक्षिण यह समस्तीपुर थाने की सीमा से निकलकर दलसिंगसराय थाने में प्रवेश करती है, तत्पश्चात् यह 'रुपौली खुर्द' नामक गाँव को आती है। यहाँ से फिर नैऋत्य कोण में चलती हुई दक्षिण दिशा में और पुनः पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर कल्याणपुर बमैया गाँव को पहुँचती है। दलसिंगसराय से पूर्वोत्तर कोण की ओर 'नरहन' रेलवे स्टेशन तथा सिंघिया जानेवाला मार्ग 'कल्याणपुर-

बमैया' होकर ही गुजरता है और यह मार्ग इसी जगह इस जमुआरी को पार करता है। यहाँ से यह दक्षिण दिशा में बहकर 'किशुनपुर टभका' नामक गाँव को पहुँचती है। कल्याणपुर और किशुनपुर से 'जमुआरी' दक्षिण दिशा में जाकर एकाएक उत्तर दिशा में मुड़ती है और फिर पूरब की ओर प्रयाण करके 'सुरौली' तथा 'शाहपुर' नामक गाँवों के बीच में पहुँचती है। सुरौली इसके दाहिने तट पर और शाहपुर बाएँ तट पर बसा हुआ है। दोनों के मध्य सिर्फ जमुआरी नदी का ही अंतर है। इसी शाहपुर के दक्षिण नदी के किनारे 'गंगौली' नामक गाँव है, जिनके प्राचीन अवशेष नदी के दोनों तटों पर दिखलाई पड़ते हैं। मिथिला के शासक गंगदेव के नाम पर यह गाँव बसाया गया था। फिर, इसके दक्षिण किनारे में दरभंगा जिले के सखमोहन, करख तथा देसरी गाँव मिलते हैं और ये तीनों गाँव जमुआरी के बाएँ तथा बूढ़ी गंडकी के दाहिने किनारे, इन दोनों नदियों की गाँस में, बसे हैं। इनमें सखमोहन, जमुआरी के तट पर तथा शेष दो गाँव बूढ़ी गंडकी के तट पर स्थित हैं। इसके पश्चात् छोटी जमुआरी **'बेलती'** नदी के नाम से मुंगेर जिले के बछवारा थाने में आ जाती है।

'बेलती' (छोटी जमुआरी) सर्वप्रथम बछवारा थाने के कबिया और तब जगदीशपुर नामक ग्रामों को देखती है। ये दोनों ग्राम इसके दाहिने तट पर अवस्थित हैं। 'बेलती' जगदीशपुर से अग्निकोण में बहकर शेरपुर, ताजपुर तथा नरहरपुर पहुँचती है। शेरपुर इसके बाएँ किनारे और शेष दोनों गाँव दाहिने किनारे स्थित हैं। नरहरपुर के बाद यह पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर बूढ़ी गंडकी से सटना चाहती है, जहाँ से एकाएक दक्षिण की ओर ढलकर 'नौलागढ़' आ जाती है। नौलागढ़ में कई किलों के ध्वंसावशेष हैं, जहाँ विग्रहपाल (तृतीय) के राज्य-काल के दो ताम्रपत्र प्राप्त हुए थे।[१] इनमें से एक से पता चलता है कि यहाँ धर्मजित के पत्नी अशोका ने विग्रहपाल के राज्य के २४वें वर्ष में किसी मूर्ति की स्थापना की थी। दूसरे ताम्रपत्र के वाक्य बहुलांशतः खंडित हैं; फिर भी इतना ज्ञात हो जाता है कि किसी ने यहाँ बौद्ध बिहार बनवाया था। नौलागढ़ के संबंध में इधर एक किंवदंती भी प्रचलित है कि यहाँ की रानी अपने वीर पति के विरुद्ध होकर शत्रु से मिल गई और उसने स्वयं पति को जहर देकर मार डाला। किंतु, विजय प्राप्त हो जाने पर उस शत्रु राजा ने उस हत्यारिन रानी का भी वध कर दिया। पता नहीं, किस राजा-रानी के संबंध में यह किंवदंती है। जो हो, इस नौलागढ़ के बाद 'बेलती' नदी पूर्व दिशा में मुड़ती है और तुरत पूर्वोक्त 'भिथसारी' गाँव के पास 'बलान' नदी से मिलकर 'डीहपुर' के पूर्वी भाग में बूढ़ी गंडकी से संगम कर जाती है।

१. सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन ऑफ बिहार : सम्पा० राधाकृष्ण चौधरी, पृ० ९० और ९६।

वागमती

दरभंगा जिले के 'रोसड़ा' नगर से लगभग दो मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में तथा 'सिंघिया' नामक ग्राम के निकट उत्तर भाग में 'बूढ़ीगंडकी' से जो नदी संगम करती है, वही 'वागमती' नामक नदी है। वागमती, लहेरियासराय (दरभंगा) के दक्षिण ६ मील दूर में स्थित 'हायाघाट' रेलवे-स्टेशन के पास से दो भागों में विभक्त हो जाती है। इसकी दाहिनी धारा 'सिंघिया' के पास बूढ़ी गंडकी से संगम करती है और यही 'वागमती' नामक नदी कहलाती है। किंतु इसकी बांई भुजा 'दरभंगा' नगर के पास से बहकर आनेवाली 'व्याघ्रवती' की धारा से 'हायाघाट' के पश्चिमोत्तर में ही संयुक्त होकर 'करेह' नदी के नाम से ख्यात हो गई है और 'करेह' अग्निकोण की ओर वहती हुई 'कमला' नदी से मिलकर 'कोसी' नदी में जा गिरती है। पहले 'करेह' नदी कमला तथा तिलयुगा से मिलकर मुँगेर जिले के 'चौथम' स्थान से पूरब कोसी से मिलती थी; पर अब यह दरभंगा-सहरसा तथा मुँगेर जिले के त्रिकोणात्मक संधिस्थल पर ही, 'वेलाही' ग्राम के पूर्व में ही, कोसी से संगम कर जाती है; क्योंकि 'कोसी' अब बहुत दूर पश्चिम में हट आई है। किंतु आजकल स्थिति कुछ दूसरी हो गई है। अभी वागमती मुजफ्फरपुर के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित 'मीनापुर' के पड़ोस में कहीं बूढ़ी गंडकी से मिल जाती है और रोसड़ा के पास मिलनेवाली धार पुरानी पड़ गई है। 'वराहपुराण' में तथा अन्य कई प्राचीन पुस्तकों से 'वागमती' का नाम 'वाङ्मती' एवं 'वाग्वती' मिलता है और संस्कृत-भाषा के अनुसार ये ही दोनों रूप शुद्ध भी हैं। किंतु, लोक में इसका नाम 'वागमती' ही प्रचलित है, अतः इस पुस्तक में यही नाम रखा गया है।

हिमालय-पर्वत की गोद में बसनेवाले 'नेपाल' देश के हृदय-प्रदेश में 'काठमांडो' की अधित्यका है। इस हृदय-प्रदेश की ग्रीवा में श्वेत हार की तरह 'वागमती' नदी झूलती है और उसके कटि-प्रदेश से होती पाद-पद्म तक लटकती हुई भारतीय भूमि के बिहार-प्रदेश में पहुँच कर बहने लगती है। 'वागमती' नदी काठमांडो की वह लक्ष्मी-मूर्त्ति है, जिसके मस्तक के ऊपर दाहिनी ओर में गज-गंडकी की त्रिशूली नामक सूँड़ और वाईं ओर में 'कोसी' की इंद्रावती नामक सूँड़ है। इन दो नदियों की धाराएँ दो श्वेत लहरदार दुपट्टों की तरह वागमती के कंधों पर तनी हुई हैं। वस्तुतः 'त्रिशूली' और 'इंद्रावती' नामक नदियाँ ऋद्धि और सिद्धि की तरह 'वागमती' के माथे पर दो डुलती हुई चँवरों-जैसी बहती हैं। दूसरी वात यह भी है कि काठमांडो-अधित्यका की सुषुम्णा नाड़ी 'वागमती' है, जिसमें हनुमती, मनोहरा, गोदावरी, मणिवती, धर्मवती, विष्णुवती, भद्रवती, इक्षुमती आदि

सरिताएँ शिरा-तंतुओं की तरह जुड़ी हैं और घाटी के तमाम जल-भांडार को निचोड़ कर 'बागमती' में उड़ेल देती हैं। इन शिरा-सरिताओं के स्पंदन से 'बागमती' भरती-उभरती है, जिससे काठमांडो घाटी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक तथा सामाजिक समृद्धि निरंतर सजती-सँवरती रही है। अपने स्वच्छ, स्वस्थ और सुस्वादु जल के कारण भारत की पुण्यमयी नदियों में यह अत्यंत ही पुनीत मानी जाती है। यह इतनी पवित्र मानी जाती है कि नेपाल-राजवंश के सभी राजाओं का दाह-संस्कार बागमती के तट पर ही होता रहा है। नेपाल-राज्य में गंगा नदी की तरह 'बागमती' का पावन माहात्म्य है और नेपाल की वास्तविक गंगा 'बागमती' ही मानी गई है।

बागमती की पौराणिक चर्चा :

पुण्यवती बागमती के माहात्म्य की चर्चा 'वराह पुराण' में तो खूब है, पर प्राचीन ग्रंथ 'वाल्मीकीय रामायण' तथा 'महाभारत' में कहीं चर्चा नहीं है। महाभारत के सभापर्व (अध्याय २०, श्लोक २८) में मिथिला की 'विपुला' नदी की चर्चा उस प्रसंग में आई है, जिसमें श्री कृष्ण के साथ अर्जुन और भीम के गिरिव्रज-प्रयाण का उल्लेख है। वहाँ कहा गया है कि ये लोग पूर्व कोसल और मिथिला होते विपुला, गंगा तथा सोन नदियों को पार कर गिरिव्रज पहुँचे थे। किंतु, यह 'विपुला' भी विशाला तथा विशल्या का ही पर्यायवाची है, जिसे आज हम 'वाया' कहते हैं। किंतु महाभारत के सभापर्व (अध्याय ९, श्लोक २२) में ही जिस 'वारवत्या' नदी का उल्लेख किया गया है, उसे 'बागमती' ही होना चाहिए। क्योंकि, 'वारवत्या' के नाम का स्मरण सरयू, लांगली, करतोया, आत्रेयी और लौहित्य के साथ किया गया हैं।[1] इसी वारवत्या का नाम 'आनंद रामायण' में 'वेगावती' लिखा गया है। आनंद रामायण में स्पष्ट उल्लेख है कि अपनी तीर्थ-यात्रा के क्रम में भगवान् राम काशी में विश्वनाथ का दर्शन कर चंपारन आए और यहाँ उन्होंने चित्र-गंगा (सोमेश्वर स्थान की नदी) में स्नान कर हरि तथा हर को नमस्कार किया, तदनंतर वे मधुपुरी (काठमांडो) गए। वहाँ 'वेगावती' के जल में स्नान कर उन्होंने 'सौंदरेश्वर' नामक महादेव की वंदना की :

नत्वा काशीविश्वनाथं चम्पकारण्यमामयौ ।
चित्रगङ्गाजले स्नात्वा नत्वा हरिहरौ शुभौ ॥
ततो रामो विमानेन मधुपुर्यां विवेश सः ।
वेगावत्या जले स्नात्वा नत्वा च सौंदरेश्वरम् ॥
—आ०, रा०, यात्राकांड, ७।५९-६०

'आनंदरामायण' का निर्माण अकबर (१६ वीं शती) के राज्यकाल में हुआ है; अतः इस कथा की प्रामाणिकता के संबंध में मुझे कुछ कहना नहीं है। यहाँ सिर्फ इसी बात को उद्भावित करना है कि उस समय 'वारवत्या' का नाम 'वेगावती' था और आज वही

१. सरयू र्वारवत्याथ लाङ्गली च सरिद्वरा। करतोया तथात्रेयी लौहित्यश्च महानदः ॥
—महा० भा०, सभा० ९।२२।

'बागमती' कहलाती है। 'मज्झिम निकाय' के 'वत्थु सुतंत' में इसी 'वारवती' तथा 'वेगावती' को 'बाहुमती' नाम दिया गया है। किंतु, 'वराहपुराण' तो स्पष्ट रूप से इसका नाम 'वाङ्मती' और 'वेगवती'-दोनों लिखता है और इसकी पवित्रता की महिमा का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन करता है। यह पुराण भागीरथी के जल से 'बागमती' के जल को सौगुना अधिक पवित्र बतलाता है और कहता है कि इसके जल में स्नान करनेवाला सीधे सूर्यलोक को प्राप्त करता है :

हिमाद्रेस्तुङ्ग-शिखरात् प्रोद्भूता वाङ्मती नदी ।
भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं तज्जलं स्मृतम् ।
तत्र स्नात्वा हरे लोंकानुपस्पृश्य दिवस्पतेः ।।[1]

इसके अतिरिक्त 'वराहपुराण' के कर्त्ता भगवान् शंकर के मुख से कहलाते हैं कि जिस उच्च शिखर से 'बागमती' का उद्गम होता है, वहाँ शैलेश्वर नाम से मेरा शरीर स्थित है। यहाँ 'आनंदरामायण' की तरह 'वराहपुराण' भी 'वाङ्मती' को 'वेगवती' नाम से अभिहित करता है। शंकर कहते हैं : यह वेगवती नामक भागीरथी स्नान करनेवाले मनुष्यों का सारा कलुष धो डालती है, कीर्त्तन करने से हृदय पवित्र कर देती है और दर्शन-मात्र से ऐश्वर्य प्रदान करती है। इस 'वेगवती' नामक भगीरथी के जल का पान करने से तथा इसमें अवगाहन करने से मनुष्यों की सात पीढ़ी का तरण हो जाता है। इसके उद्गम-स्थान पर लोकपाल विचरण करते हैं, जहाँ स्नान करने से मनुष्य कभी पुनर्जन्म नहीं धारण करता :

शैलेश्वर इति ख्यातः शरीरं यत्र मे स्थितम् ।
स्रवन्तीनां वरापुण्या वाङ्मती पर्वतोत्तमात् ।।५९।।
भागीरथी वेगवती कलुषं दहते नृणाम् ।
कीर्त्तनादेव संशुद्धि दर्शनाद्भूतिमाप्स्यति ।।६१।।
पानावगाहनात्तस्या स्तारयेत्सप्त वै कुलान् ।
लोकपालस्तु चरति तीर्थख्यातिं च तत्स्वयम् ।।६२।।
यत्र स्नात्वा दिवं यान्ति मृतास्ते त्वपुनर्भवाः[2] ।।६३।।

वागमती के पुण्य-प्रताप के कारण ही मिथिलाधिपति **कामेश्वर** के पुत्र और **भोगीश्वर ठाकुर** के अनुज **भवदेव सिंह** ने इस नदी के तट पर एक शिवायतन में अपना शरीर-त्याग किया था और उनके साथ उनकी दो पत्नियों ने भी उन्हीं की चिता में प्राण-विसर्जन किया था : "**दारद्वयालंकृतः**।" इस घटना का उल्लेख महाकवि विद्यापति ने अपनी 'पुरुष-परीक्षा' नामक पुस्तक के अंत में किया है :

भुक्त्वा राज्य-सुखं विजित्य हरितो हत्वा रिपून् सङ्गरे
हुत्वा चैव हुताशनं मखविधौ भृत्वा धनैरर्थिनः ।

१. वराह पुराण, अध्याय २१५, श्लोक ५०-५१।
२. तत्रैव, अध्याय २१५, श्लोक ५९, ६१-६३।

वाग्वत्यां भवदेवसिंह नृपतिस्त्यक्त्वा शिवाग्रे वपुः
पूतो यस्य पितामहः स्वरगमात् दारद्वयालंकृतः[1] ॥

विद्यापति ने उक्त श्लोक में नदी का नाम 'वाग्वती' लिखा है, ज़ो महाभारत की 'वारवती' और 'आनंदरामायण' तथा 'वराह पुराण' की वेगावती एवं वेगवती नाम की ओर स्पष्ट संकेत है। 'वराह पुराण' अपने २१५ वें अध्याय के श्लोक ७० से ७२ तक में 'वागमती' के गुण-गान करने में अघाता नहीं दीख पड़ता। वह फिर यहाँ शंकर महादेव के मुख से कहलवाता है कि आर्त्त, भीत, संतप्त, रोगी, स्वस्थ आदि जो कोई भी 'वागमती' के जल में स्नान करके मेरा दर्शन करता है, उसे परम शांति प्राप्त हो जाती है। मेरे प्रभाव से उसका संपूर्ण किल्विष धुल जाता है और सारी प्रकटित ईतियाँ समाप्त हो जाती हैं :

वाङ्मत्यां ते नरः स्नान्ति लभन्ते चोत्तमां गतिम् ।
आर्त्ता भीताश्च सन्तप्ता व्याधितोऽव्याधितोऽपि वा ॥
वाङ्मत्याः सलिले स्नात्वा ये मां पश्यन्ति संस्कृताः ।
तेषां शान्तिर्भवेन्नित्यं पुरुषाणां न संशयः ॥
मत्प्रभावात्तु स्नातस्य सर्वं नश्यति किल्विषम् ।
ईतयः समुदीर्णाश्च प्रशमं यान्ति सर्वशः ॥

इन्हीं माहात्म्यों के कारण परमपवित्र 'वागमती' के तट पर हरिसिंह देव के महामंत्री **चण्डेश्वर ठाकुर** ने, नेपाल-विजय के उपलक्ष्य में, सन् १३१४ ई० में, 'तुला-पुरुष' नामक यज्ञ कराया था। इस यज्ञ में राजा हरिसिंह देव की शारीरिक तौल के बराबर सोना ब्राह्मणों को दान में दिया गया था। यह 'तुला-पुरुष यज्ञ' शक-संवत् १२३६ (सन् १३१४ ई०) के अग्रहायण मास के शुक्ल पक्ष में संपन्न हुआ था :

रस-गुण-भुज-चन्द्रैः सम्मिते शाकवर्षे
सहसि धवलपक्षे वाग्वती-सिन्धुतीरे ।
अदिततुलितमुच्चै रात्मना स्वर्णराशिं
निधि रखिलगुणानामुत्तरः सोभनाथः ॥[2]

यह बागमती नदी अपने हिमालय-क्षेत्र में जिस प्रकार नेपाल-राजवंश की क्रीड़ा-भूमि रही है, उसी प्रकार यह समतल भूमि में मिथिला के प्राचीन राजाओं की भी कर्म तथा धर्म-भूमि रही है। बागमती का तट प्रदेश सभी प्रकार के शस्यों के लिए बड़ा ही उर्वर रहा है और आज भी है। इसी प्रकार, इसके तटों में अनेक देवायतन खड़े किये गए थे और स्थान-स्थान पर यज्ञ-वेदियाँ स्थापित की गई थीं। किंतु बागमती के तट के किस शिवायतन में **भवदेव सिंह** ने अपनी पत्नियों के साथ शरीर छोड़ा था तथा चंडेश्वर ने तट के किस स्थान पर तुला-पुरुष यज्ञ रचाया था, इसका पता नहीं चलता है। इसका प्रधान कारण यह है कि

१. पुरुष-परीक्षा (४।१।) प्रकाशक—लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, सं० १९८४।
२. विवाद-रत्नाकर, उपसंहार भाग।

बागमती' ने भी अपने धारा-मार्ग को इधर-से-उधर बहुत बार परिवर्त्तित किया है, जिससे निश्चित स्थानों को ढूँढ़ लेना कठिन हो गया है। फिर भी बागमती के प्राचीन धारा-मार्ग को देखते हुए भवदेव सिंह के शरीर-त्याग का स्थान 'हायाघाट' अथवा 'सिरिनिया' में होना चाहिए।

बागमती का उद्‌गम-स्थान और नेपाल में प्रवाह-मार्ग :

बागमती का उद्‌गम-स्थान नेपाल की राजधानी काठमांडो नगर के पूर्वोत्तर कोण में हिमालय के गोसाईंनाथ उच्च शिखर की दक्षिणी ढलान पर है। गोसाईंनाथ शिखर की ऊँचाई समुद्र-तल से २६३०५ फीट है और इसी के दरी-भाग से वह राजमार्ग गुजरता है, जो तिब्बत और काठमांडो को जोड़ता है। बागमती के उद्‌गम के पड़ोस में ही नेपाल का 'शिवपुरी' नामक तीर्थ है, जिसके निकट के 'नुंथर' नामक स्थान से यह प्रवाहित होती है। 'बागमती' के उद्‌गम के पास ही 'शैलेश्वर और 'जलेश्वर' नामक शिवतीर्थ हैं और इन्हीं के संबंध में 'वराह पुराण' कहता है :

शैलेश्वर इति ख्यातः शरीरं यत्र मे स्थितम् ।
स्रवन्तीनां वरापुण्या वाङ्‌मती पर्वतोल्लमात् ।। २१५।५९

इसके अतिरिक्त, 'वराह पुराण' बागमती के धारा-मार्ग पर स्थित अनेक तीर्थों का ऐसा विशद उल्लेख करता है, जिससे लगता है कि 'वराह पुराण' के कर्त्ता ने बागमती के संपूर्ण तट-प्रदेश का वर्षों पर्यवेक्षण किया है। इसके तट पर जलोद्‌भेद तीर्थ, मृगं शृंगोदक तीर्थ, पञ्चनद तीर्थ आदि का उल्लेख वह करता है :

तस्यास्तीरे जलोद्भेदं मन्मूलादभिनिःसृतम् ।।६५।।
मृगश्रृङ्गोदकं नाम नित्यं मुनिजन-प्रियम् ।।६६।।
तीर्थं पञ्चनदं प्राप्य पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम् ।।६७।।
वाङ्‌मती सरिता श्रेष्ठा यत्रयत्रावगाह्यते ।
तत्र-तत्र फलं दद्यात् राजसूयाश्वमेधयोः ।।७४।।

'वराह पुराण' बागमती के उद्‌गम प्रदेश के शिखर मूल-भाग में प्रथम-प्रथम 'ब्रह्मोद्भेद' तथा 'गोरक्षक' नामक तीर्थों की भी चर्चा करता है :

भृगुमूले परं तीर्थं ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ।
ब्रह्मोद्भेदेति विख्यातं तस्यापि श्रृणु तत्फलम् ।।९४।।
तत्र गोरक्षकं नाम गोवृषः पदविक्षितम् ।
दृष्ट्वा च तानि हि पुमान् गोसहस्रं फलं लभेत् ।।९६।।

उक्त पुराण के अनुसार, 'बागमती' के उद्‌गम स्थान के पूर्वोत्तर-भाग में 'गौरीशिखर' तीर्थ है, जहाँ पार्वती जी वास करती हैं। उसी भाग में उमा का 'स्तनकुंड' नामक तीर्थ भी है, जिसमें स्नान करने से स्कंद-लोक प्राप्त होता है। इसी के पश्चात् 'वराह पुराण' (अध्याय

२१५, श्लोक १०५, १०६ में) बतलाता है कि शिखर के दक्षिण भाग से 'वागमती' एक कंदरा से प्रवाहित होती है, जहाँ 'ब्रह्मोदय' नामक तीर्थ है :

दक्षिणेन तु वाङ्मत्या प्रसृतं कन्दरोदरात् ॥१०५॥
तीर्थं ब्रह्मोदयं नाम पुण्यं पाप-प्रणाशनम् ।
तत्र गत्वा जलं स्पृष्ट्वा स्नात्वा चाभुक्षमानवः ॥१०६॥

उपर्युक्त सभी तीर्थ 'वागमती' के उद्गम के अड़ोस-पड़ोस के हैं, जिनका उल्लेख 'वराह पुराण' करता है। ये तीर्थ 'गोकर्ण' तीर्थ के उत्तर और पूर्वोत्तर भाग के हैं। शिव पुरी के पास से 'वागमती' प्रवाहित होकर पहले अग्निकोण में चलती है और पूर्वोत्तर भाग के दूसरे स्रोत को ग्रहण कर जब और आगे आती है, तब पश्चिमोत्तर कोण से आनेवाला स्रोत भी इससे आत्मसात् हो जाता है। इन तीनों स्रोतों के एकीभूत हो जाने पर 'वागमती' दक्षिण-पूर्व दिशा में बहने लगती है। कुछ दूर आगे बढ़ने पर पूर्वोत्तर कोण की ओर से आनेवाले और भी दो स्रोत 'वागमती' में समाहित होते हैं और तब बागमती पहले दक्षिण में और फिर नैऋत्य कोण की ओर प्रयाण करती है। इसके पश्चात् 'वागमती' जब थोड़ी दूर के लिए पश्चिम दिशा में मुड़ती है, तब यहीं उत्तर दिशा से आनेवाली 'मणिमती' नामक नदी 'बागमती' से संगम करती है। इसी संगम पर 'गोकर्ण' नामक तीर्थ है, जिसकी महिमा 'वराह पुराण' गाता है। वह कहता है—मणिमती और बागमती का संगम-स्थान पापनाशक है। कोई भी द्विज अथवा अद्विज यदि एक दिन और एक रात यहाँ वास करे, स्नान करे, तिलोदक दे और रुद्र का जप करे, तो उसका संपूर्ण कलुष धुल जाता है। यह संगम ऋषियों से सेवित है। इस संगम पर विद्याधर, सिद्ध, गंधर्व, मुनि, देवता, यक्ष, नाग आदि नित्य स्नान करते हैं, अतः यह संगम बड़ा ही पवित्र है :

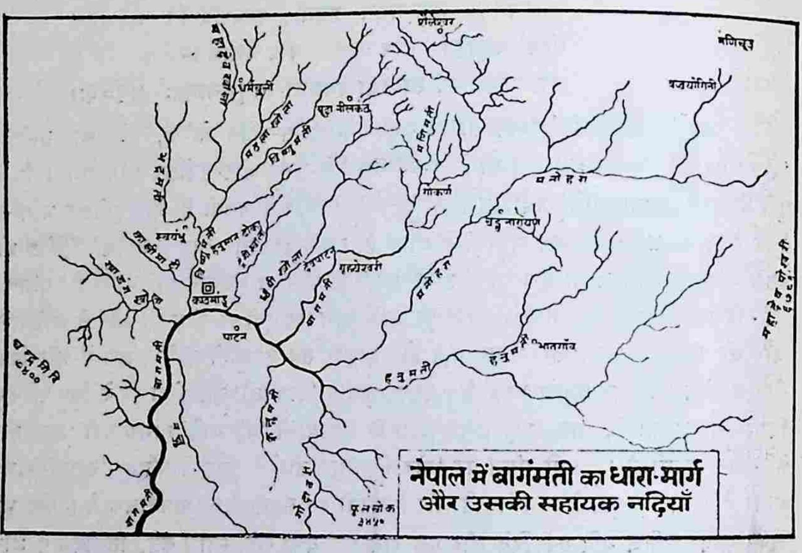
वाङ्मत्या मणिमत्याश्च सम्भेदे पापनाशने ॥१०९॥
अहोरात्रं वसेद्यस्तु रुद्रजाप्यो द्विजः शुचिः ॥११०॥
वर्णावरोऽपि यः कश्चित् स्नात्वा दद्यात्तिलोदकम् ॥१११॥
वाङ्मती-मणिवत्योश्च सम्भेदश्चर्षिसेवितः ॥११३॥
अत्र विद्याधराः सिद्धा गन्धर्वा मुनयः सुराः ।
स्नानमेतदुपासन्ते यक्षाश्च भुजगैः सह ॥११६॥

उपर्युक्त गोकर्ण महादेव के दक्षिण श्लेष्मांतक वन है, जहाँ वसिष्ठाश्रम है। गोकर्णेश्वर के संबंध में 'वराह पुराण' का कहना है कि यहीं मृगरूप शंकर का शृंग तीन भागों में विभक्त हुआ था, जिससे गोकर्णेश्वर समस्त पृथ्वी में विख्यात तीर्थ है। यहीं त्र्यम्बक-क्षेत्र में शिव के साथ देवताओं की मंत्रणा हुई, जिसके परिणामस्वरूप सबने शृंग को तीन भागों में विभक्त किया था।[१] शृंग के अग्रभाग को इंद्र ने, मध्य भाग को स्वयं शंकर ने तथा शृंग के मूल

---

१. शृंगमेतत्त्रिधाभूतं सम्यक् संश्रूयतां सुराः ।
गोकर्णेश्वर इत्येतत्पृथिव्यां ख्यातिमेष्यति ॥—वराह पुराण, २१५।१२१

भाग को विष्णु ने स्थापित किया था। इस कथानक से यही स्पष्ट होता है कि नेपाल में हिमालय की तीन शृंखलाएँ हैं, जिनके नाम हैं—हिमाल, महाभारत और चूरे। इन्हीं शृंख-



नेपाल में बागमती का धारा-मार्ग और उसकी सहायक नदियाँ

लाओं की ओर पुराण का संकेत है। इसके अतिरिक्त 'वराह पुराण' के अनुसार, नेपाल-क्षेत्र में तीन महादेव विख्यात हैं। शिवपुरी का शिवलिंग, जो इन्द्रकील पर्वत के क्षेत्र में है, उसे इन्द्र द्वारा स्थापित बतलाया गया है। मध्य भाग में 'गोकर्ण' नामक शिवलिंग को स्वयं शंकर द्वारा स्थापित माना गया है और तराई-क्षेत्र के 'शृंगेश्वर' (सिंघेश्वर) महादेव को (सहरसा जिले का सिंहेश्वर-स्थान नहीं) विष्णु द्वारा स्थापित कहा गया है। इन सभी शिवलिंगों को श्लेष्मांतक वन क्षेत्र में स्थापित कहा गया है।[१]

गोकर्णेश्वर की महिमा के क्रम में 'वराह पुराण' एक और किंवदन्ती का उल्लेख करता है और बतलाता है कि दक्षिण भारत में जो गोकर्णेश्वर महादेव का लिंग है, वह यही गोकर्ण-शिव-लिंग है। इस पुराण के अनुसार, रावण ने इसी गोकर्ण-शिव को वर्षों तपस्या करके प्रसन्न किया था और इसी गोकर्ण महादेव ने उसे त्रैलोक्य-विजय करने का वर प्रदान किया था। फलस्वरूप, रावण ने जब त्रैलोक्य की विजय कर ली, तब वह पुनः अपने पुत्र इन्द्रजीत के साथ यहाँ शिव-पूजा के निमित्त आया। इस शिवलिंग की नित्य पूजा करते रहने के विचार से उसने यहाँ से इसे उत्पाटित कर लिया और लंका में स्थापित करने के लिए ले चला। समुद्र के निकट पहुँचने पर संध्या हो गई और वह संध्योपासन के विचार से शिव-लिंग को पृथ्वी पर रख दिया, जिससे शिव लिंग-पृथ्वी में धँस गया। संध्योपासन के पश्चात् जब वह पुनः लिंग को उखाड़ने लगा, तब वह उसके लाख प्रयत्नों के

१. वराह पुराण, २१६।१-६।

बावजूद नहीं उखड़ सका और वह उसे छोड़कर चला गया। वही वज्रकल्प शिव-लिंग अब दक्षिण का गोकर्णेश्वर शिव के नाम से अभिहित होता है।[१]

उक्त गोकर्णतीर्थ और मणिवती के संगम-स्थान से वागमती नदी नैऋत्य कोण में प्रयाण करती है और फिर पश्चिम दिशा में बहने लगती है। इसके पश्चात् वागमती जब पुनः नैऋत्य कोण में प्रवाह-मुँह को मोड़ती है, तब यहीं इसके किनारे 'नेपाल' की प्रसिद्ध गुह्येश्वरी भवानी का मन्दिर स्थित दिखाई पड़ता है। यह मन्दिर काठमांडो नगर के उत्तर में है। नेपाल में गुह्येश्वरी देवी बड़ी ही तेजस्विनी मानी जाती हैं। आज भी बलि के रूप में यहाँ भैंसे कटते हैं। विजया दशमी के अवसर पर तो यहाँ पशुओं के खून और मांस का दृश्य बड़ा ही लोमहर्षक हो जाता है। इसी स्थान पर सती के शरीर का गुह्य स्थान कट कर गिरा था।[२] इसी गुह्येश्वरी मन्दिर के नैऋत्य कोण में 'काठमांडो' का 'गोचर हवाई अड्डा' है। इस हवाई अड्डे के नैऋत्य कोण में 'मनोहरा' नामक नदी अपनी कई सखियों का जल लेकर 'वागमती' के बायें भाग में संगम करती है। मनोहरा नदी हनुमती, गोदावरी और कुक्षिमती नामक सरिताओं का जल ग्रहण करके वागमती में प्रवेश करती है। ये सभी नदियाँ वागमती के वाम भाग की हैं, जिनमें 'मनोहरा' सबसे बड़ी नदी है।

गोचर हवाई अड्डे के नैऋत्य कोण में जहाँ उक्त नदियों का संगम है, वहाँ से बागमती पश्चिमोत्तर कोण-वाहिनी बन जाती है। इसके इसी प्रयाण-क्रम में गोसांई नाथ पर्वत के दक्षिणी पादमूल से प्रवाहित होकर नैऋत्य कोण में बहनेवाली 'धोबी खोला' नामक नदी 'वागमती' में संगम करती है। यह 'वागमती' के दाहिने भाग से प्रायः समानान्तर बहती हुई चलती है तथा 'देवपाटन' और प्रसिद्ध 'पशुपतिनाथ' मन्दिर के पश्चिम से ही नैऋत्य कोण में आकर वागमती की दाहिनी कोख में प्रवेश करती है। धोबी खोला के संगम के सामने 'वागमती' के बायें तट पर (दक्षिण में) पाटन नगर स्थित है, जहाँ नेपाल की पुरानी राजधानी थी। इसी संगम के पश्चात् जब यह पश्चिमाभिमुख होती है, तब इसी के दाहिने किनारे (उत्तरी भाग में) काठमांडो नगर बैठा हुआ है, जिसे मर्त्य लोक का स्वर्ग-नगर कहा जा सकता है। काठमांडो नगर तथा नेपाल के प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों का विशेष विवरण हमारे इस ग्रन्थ का विषय नहीं है। यहाँ तो 'वागमती' के परिचय के निमित्त नेपाल के क्षेत्र में इसके संक्षिप्त भौगोलिक विवरण-मात्र का उल्लेख किया जा रहा है।

काठमांडो नगर के पश्चिम 'विष्णुमती' नामक नदी बहती है, जिसके बायें (पूर्व) तट पर तथा वागमती दाहिने भाग में काठमांडो स्थित है। नगर से सटे नैऋत्य कोण में विष्णुमती नदी 'वागमती' से संगम करती है। विष्णुमती भी माहुलाखोला, धर्मचूली,

१. वराहपुराण २१६।१४–२२।

२. तवाङ्गं पतितं गुह्यं वाग्वती तटिनी-तटे।
मृगस्थलल्यामुदोच्यान्तु तत्पीठं परमं महत्॥—नेपाल माहात्म्य, १।१३८

महादेव खोला, भद्रमती, माटी-खोला आदि सरिताओं का जल समेटने के बाद 'बागमती' से संगम करती है। इस विष्णुमती-संगम के पश्चात् बागमतो थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकती हुई दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है। इसके इसी प्रयाण-मार्ग में इसके दाहिने तट की ओर (पश्चिम में) कीर्तिपुर नामक नगर स्थित दिखाई देता है। यह नगर भी नेपाल के इतिहास में ख्यात है। बागमती के इसी चंक्रमण-क्रम में इसके बायें तट की ओर (पूर्व भाग में) नखूतोप-खाना, खोकना तथा कौराली स्थान दिखलाई पड़ते हैं। बागमती का यही क्षेत्र नेपाल का हृदय-प्रदेश माना जाता है, जो काठमांडौ-घाटी के नाम से अभिहित होता है। सप्त सिन्धु, सप्त-गोदावरम्, सप्त गंडकी, सप्त कोशी, सप्त सरयू आदि नदियों की तरह बागमती नदी भी मणिमती, रुद्रमती, हनुमती, विष्णुमती, भद्रमती और मनोहरा के संगम के कारण 'सप्त बागमती' कहलाती है। इन नदियों के अतिरिक्त भी कई नदियाँ काठमांडौ के क्षेत्र में बागमती के शरीर से शिरा-तन्तुओं की तरह गुँथी हुई हैं।

बागमती काठमांडौ-क्षेत्र की नदियों का पानी समेट कर महाभारत तथा चूरे शृंखला तथा मकवानपुर जिले को लांघती रौतहट जिले में आती है। इसी भाग में बागमती कुछ दूर तक नेपाल के सर्लाही और रौतहट जिलों की सीमा बनती हुई 'गौर' नामक स्थान के पूर्व भाग से ही नेपाल के तराई-क्षेत्र को लाँघती भारत भूमि के बिहार-प्रदेश के मुज्फ्फरपुर जिले में घुस आती है।

बिहार में बागमती की धारा-मार्ग :

बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में बागमती 'बैरगनिया' तथा 'मेजरगंज' नामक थानों की बीचो-बीच सीमा पर दक्षिणाभिमुख होकर प्रवेश करती है। इसका प्रवेश-स्थल बैरगनियाँ के पूरब तथा मेजरगंज के पश्चिम, ५२ नं० के नेपाल-सीमा-स्तम्भ के पास, पड़ता है, जो सीतामढ़ी-रक्सौल-रेलपथ के 'ढेंग' नामक रेलवे-स्टेशन से एक मील उत्तर भाग में है। बागमती जैसे ही भारत-भूमि में प्रवेश करती है, इसके बायें तट पर सर्वप्रथम 'रसूलपुर पितौंजिया' नामक ग्राम इसका स्वागत करता है। यह ग्राम मेजरगंज थाने की सीमा का है, जो मेजरगंज से थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकता हुआ पश्चिम दिशा में है। इसके बाद बागमती 'ढेंग' नामक स्टेशन के सटे, उसके पश्चिम भाग में, पहुँचती है। यहाँ यह रेल-लाइन के नीचे से सरकती है। ढेंग रेलवे पुल तक बागमती १४३० वर्गमील का तथा लगभग ९१ मील लम्बे पर्वतोत क्षेत्र का वर्षाकालीन जल ग्रहण कर लेती है। पुल के दक्षिण में बागमती के किनारे 'गँभरिया' नामक गाँव बसा है, जो बैरगनिया थाने का गाँव है और बैरगनिया के अग्निकोण में स्थित है। यहाँ से बागमती दक्षिण में चलकर 'कठियार' नामक गाँव को आती है और यहाँ से अग्निकोण में मुड़कर 'सिसउला' पहुँच जाती है। कठियार, नदी के दाहिने तट पर और सिसउला बायें तट पर दीख पड़ते हैं। इसी 'सिसउला' के पास से 'बागमती' की एक पुरानी छाड़न-धार अग्निकोण में चलकर 'हरपुर पिपरा' गाँव होते, छोटी-बागमती से, मोहनपुर के पास मिल

जाती है। यह छाड़न किसी काल में 'बागमती' की पुरानी धार थी। सीतामढ़ी से जो मार्ग 'बैरगनिया' को जाता है, वह मोहनपुर तथा हरपुर-पिपरा गाँवों से होकर गुजरता है और वह 'सिसउला' के पास बागमती को पार करके बैरगनिया पहुँचता है। किन्तु बागमती की प्रमुख धारा 'सिसउला' से नैऋत्य कोण में प्रयाण करती है, जिसके दाहिने तट-भाग (पश्चिम) में 'अखता' नामक प्राचीन अवशेष-युक्त ग्राम दिखाई पड़ता है। इसके आगे बढ़ने पर बागमती के बायें भाग में 'अदउरी' नामक ग्राम है, जो शिवहर थाने का ग्राम है। इसी 'अदउरी' ग्राम के सामने, बागमती के दाहिने भाग में, 'लाल बकेया' नदी का संगम है।

लाल बकेया का एक नाम 'तालबकेया' भी है। यह नेपाल के दक्षिणी भाग में स्थित चूरे नामक पर्वत-श्रृंखला के पाद-मूल से प्रवाहित होती है। इसके उद्गम-स्थान से लगभग पाँच मील पश्चिम में 'हतउन्दा' नामक स्थान है। जिस स्थान पर यह नेपाल के तराई-क्षेत्र को पार करती है, वहाँ इसके दाहिने तट पर 'गोर' नामक गाँव है, जिसकी चर्चा पहले भी आ चुकी है। लाल बकेया नदी 'बैरगनिया' रेलवे स्टेशन के सटे पश्चिम में, 'सिनरिया' गाँव के पास भारत-भूमि में प्रवेश करती है। भारत-भूमि में घुसते ही 'लाल-बकेया' बिहार प्रदेश के चम्पारन और मुजफ्फरपुर जिलों की सीमा का काम करने लगती है। सिनरिया ग्राम के नैऋत्य कोण में तथा चम्पारन जिले के 'दोस्तिया' ग्राम के पूर्वोत्तर कोण में 'लालबकेया' का नहर-बाँध है, जिससे नहर निकाली गई है। यह नहर नैऋत्य कोण में चलती है और चम्पारन जिले के बिलकुल पूर्वोत्तर कोण की सीमा की उस भूमि को सींचती है, जो 'लालबकेया' के पश्चिमी तट-भाग की ओर में है। यह नहर जब चम्पारन जिले के फुलवरिया गाँव के नैऋत्य कोण में पहुँचती है, तब दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। पश्चिमी शाखा ढाका थाने के पश्चिमी हिस्से की भूमि को और पूर्वी शाखा पताही थाने के उत्तरी भाग की भूमि को सींचती है।

'लाल बकेया' सिनरिया ग्राम (मुजफ्फरपुर) से सीधे दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है और चम्पारन तथा मुजफ्फरपुर जिलों की सीमा बनती हुई दक्षिण की ओर बहती आती है। इस भाग में इसके दाहिने किनारे चम्पारन जिले का 'दोस्तिया' गाँव (पूर्वोक्त 'दोस्तिया' से भिन्न), हरुहनी, पर्री, झिटकाही आदि गाँव पड़ते हैं और ये सभी गाँव 'ढाका' थाने के हैं। नदी के बायें तट की ओर मुजफ्फरपुर जिले के पँचटकिरा, बारा, रसूलपुर दयाल, जमुआ, मरपा-ताहिर आदि गाँव स्थित हैं, जो 'बैरगनियाँ' थाने के हैं। मरपा ताहिर के पूर्व भाग में ही 'अखता' नामक गाँव है और इन दोनों गाँवों में प्राचीन किले के टीले हैं। मरपा-ताहिर गाँव के थोड़ी दूर दक्षिण तथा 'अदउरी' गाँव के पश्चिम में 'लाल बकेया' नदी 'बागमती' में समाहित होती है।

लाल बकेया के संगम के बाद 'बागमती' नदी अब स्वयं मुजफ्फरपुर तथा चम्पारन जिलों की सीमा बनकर 'अमवा डाकबँगले' के पास से पश्चिमोत्तर कोण में मुँह करके

'अमवा' गाँव के पश्चिम में आ जाती है। अमवाँ कलाँ में भी प्राचीन ध्वंसावशेष के दो टीले दीख पड़ते हैं। किसी काल में वागमती की धारा इस ध्वंसावशेष के पास से 'शिवहर' होकर बहती थी। अमवाँ कलाँ के पश्चिम पहुँचकर 'वागमती' अग्निकोण की ओर प्रवाहित हो जाती है और इसी क्रम में यह 'मालीपोखर भिण्डा' ग्राम को पहुँचती है। वागमती के इसी घुमाव पर, सीतामढ़ी से नैऋत्य कोण में चम्पारन जिले के 'पताही' जानेवाली सड़क नदी को पार करती है। यहीं चम्पारन और मुजफ्फरपुर जिलों की सीमा समाप्त कर 'वागमती' पूर्ण रूप से मुजफ्फरपुर जिले के भीतर घुस आती है। इस भाग में इतनी दूर तक वागमती के दाहिने किनारे चम्पारन जिले के पदुमकेर, जिहुली, गुजरउल, गोमाही आदि गाँव स्थित हैं। पदुमकेर गाँव मिथिला के राजा पद्म सिंह के नाम पर बसा है। 'पदुमकेर' में कुछ ऐसी जमीन है, जिसमें उपजे धान सुगंध से भरे होते हैं। किंवदन्ती तो यह है कि इस क्षेत्र में इतने अधिक यज्ञ हुए हैं और उसके हवनकुण्डों में इतने सुगन्धित द्रव्य और घी का हवन हुआ है कि सारी जमीन आजतक सुगन्वित बनी हुई है। 'जिहुली' ग्राम इस क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है और चम्पारन जिले के बड़े ग्रामों में एक है।

मुजफ्फरपुर जिले के भीतर वागमती नदी के प्रवेश करने पर इसका प्रवाह अग्निकोण में थोड़ा झुकता हुआ दक्षिण दिशा में प्रयाण करता है। इस प्रयाण-क्रम में इसके दाहिने तट-भाग में सुगिया, कटेसरी, ताजपुर, जहाँगीरपुर, पनारपुर, बिशुनपुर, मनियारी, झिट-काही, रामपुर, फुलकाहा आदि गाँव स्थित हैं। इसी भाग में नदी के बायें तट की ओर, क्रमशः उत्तर से दक्षिण की ओर, मालीपोखर भिंडा, माधोपुर-अनन्त, शाहपुर, मथुरापुर, धोवही, हिरम्मा आदि गाँव बसे हुए हैं। इनमें 'हिरम्मा' को छोड़कर सभी गाँव शिवहर थाने के हैं। हिरम्मा गाँव 'वेलसंड' थाने में पड़ता है। नदी के पश्चिम 'फुलकहा' ग्राम और पूर्वी तट पर स्थित 'हिरम्मा' के मध्य में 'वागमती' अभी कुछ वर्ष पहले तक दो धाराओं में बँट जाती थी। इसकी दोनों धाराएँ आज भी स्वतंत्र भाव से संपूर्ण मुजफ्फरपुर जिले में बहती हैं और जैसे ही 'वागमती' इस जिले से बाहर होने लगती थी, वैसे ही फिर दोनों धाराएँ परस्पर मिल जाती हैं। उन दो विभक्त धाराओं में से दाहिनी धारा 'वागमती' कहलाती है और बाईं धारा का नाम 'सिपरी' है। सिपरी-धार को कुछ लोग 'सिआरी' नदी भी कहते हैं। दाहिनी धारा हिरम्मा से थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकती दक्षिण में चलती है और विंद्रावन तथा छतौनी के बीच से बहती नैऋत्य कोण में मुँह करके थोड़ी दूर के लिए चम्पारन जिले में घुसती है। विंद्रावन के दक्षिण में चम्पारन जिले के 'पताही' थाने की 'चकनाहा' नामक नदी 'कभी वागमती' से संगम करती थी; पर अब 'चकनाहा' अपने संगम-स्थान से पहले ही विलीन हो जाती है।

चकनाहा का मूल स्रोत चम्पारन जिले के 'ढाका' थाने के 'कोहबरवा' गाँव तथा 'सिसउना' ग्राम के खेतों से फूटता है। प्रथमतः यह स्रोत नैऋत्य कोण में चल कर 'मसहा'

गाँव होते 'पताही' थाने में घुसता है और 'कछुवा' नदी के नाम से अभिहित होने लगता है। कछुवा नदी दक्षिण की ओर चलती हुई 'डुमरी बैंजू' तथा 'अजगरवा' नामक गाँव के पूर्व में आती है। यहाँ पूर्व दिशा से आकर एक 'मोतिया' नामक स्रोत भी मिलता है। इसके बाद 'कछुवा' बैलाबैजू, छनहाभिखारी तथा चैता नामक गाँवों को पहुँचती है, जहाँ से अग्निकोण में प्रयाण करती है। कछुआ के इस यात्रा-क्रम में इसके किनारे राजेपुर नवादा तथा नौरंगिया ग्राम मिलते हैं। यहाँ से पूर्व दिशा में मुड़कर खानपिपरा और किसुनपुर गाँव से होते 'पुनहरा' तथा देवकुलिया' नामक दो प्राचीन गाँवों को पहुँचती है। पुनहरा में प्राचीन गढ़ का ध्वंसावशेष दीख पड़ता है। इसके बाद यह अग्निकोण में बहती है और तब इसके किनारे कजरहाँ, डेल्हो, मनियारपुर तथा सेमरहाँ गाँव मिलते हैं। इस भाग में 'कछुआ' का नाम 'चकनाहा' हो जाता है। चकनाहा कुछ दूर जब दक्षिण दिशा में मुड़ती है, तब यह चम्पारन तथा मुजफ्फरपुर जिले की सीमा का भी काम करती है और उक्त विद्रावन के पश्चिम में आकर तथा चौर में फैलकर समाप्त हो जाती है। पहले यह इसी जगह पूर्व में बढ़कर 'बागमती' से संगम करती थी।

पहले यह कहा गया है कि 'विद्रावन' के दक्षिण में थोड़ी दूर के लिए 'बागमती' चम्पारन जिले में घुसती है और तुरत अग्निकोण में मुँह करके मुजफ्फरपुर जिले के मीनापुर तथा बेलसण्ड थाने की सीमा-संधि पर 'किसुनपुर' गाँव के पश्चिम में पुनः मुजफ्फरपुर जिले में प्रवेश कर जाती है। अपने प्राचीन टीले के कारण किसुनपुर भी प्राचीन ग्राम ज्ञात होता है। वैशाली से जो मार्ग उत्तर को ओर चलता है और काँटी होते 'शिवहर' जाता है, वह 'किसुनपुर' में ही 'बागमती' की इस धार को पार करता है। किसुनपुर के दक्षिण का चौर 'बागमती' के द्वारा निर्मित किसी काल का चौर है, जिससे होकर आज फिर बागमती बहने लगी है और आगे की अपनी धार छोड़ कर यहीं से दक्षिण बहकर मीनापुर के पड़ोस में ही गंडकी से मिलने लगी है। किसुनपुर से बागमती नदी सीतामढ़ी तथा सदर अनुमंडलों की सीमा बनती हुई पूर्व दिशा में तथा दक्षिण-पूर्व कोण में प्रयाण करती है, जो अब पुरानी धारा बन गई है। यह धारा पहले लगभग तीन मील पूर्व दिशा में प्रयाण कर 'तुर्की खररी' गाँव के पश्चिम भाग में पहुँचती है। तुर्की खररी में कई प्राचीन ध्वंसावशेष के चिह्न वर्तमान हैं और लगता है कि मुजफ्फरपुर जिले के 'तुर्की' नामक स्टेशन से इस 'तुर्की खररी' का कभी घनिष्ठ संबंध रहता है। यहाँ से मृतप्राय बागमती थोड़ी दूर के लिए उत्तर दिशा में मुँह कर लेती है और फिर पूरब की ओर चलकर गंगाधरमपुर तथा ताजपुर (उर्फ सैदपुर) पहुँच जाती है। मुजफ्फरपुर से 'मीनापुर' होकर जो सड़क 'बेलसंड' जाती है, वह इन्हीं दोनों गाँवों के मध्य भाग में बागमती की इस धार को पार करती है। इसी ताजपुर-घाट से मृतप्राय 'बागमती' थोड़ा अग्निकोण की ओर झुकती दक्षिण दिशा में आती है और अपने तट पर 'लउटन' नामक प्राचीन टीलेवाले गाँव को निहारती है। लउटन गाँव से थोड़ी दूर अग्निकोण में आकर यह बिलकुल विपरीत दिशा में पश्चिम की ओर मुड़ जाती है

और फिर पूर्व की ओर मुँह करके अग्निकोण-गामिनी बन जाती है । इस क्रम में यह 'बल्लीपुरा तथा सरहँचा' नामक ग्रामों को पहुँचती है । यहाँ इसके घुमाव-धार के पास उत्तर में बागमती की दूसरी धारा, जो 'सिपरी' अथवा 'सिआरी' कहलाती है, बिलकुल सटती-जैसी दिखाई पड़ती है । बल्लीपुर के पास मृतप्राय बागमती अपनी धारा को भिन्न-भिन्न दिशाओं में मोड़ती 'रामपुरहरी' तथा 'कोगलाही-मानसिंह' गाँवों के बीच में पहुँचती है । रामपुरहरी इसके दाहिने किनारे और कोरलाही बायें किनारे स्थित है । मुजफ्फरपुर से उत्तर दिशा में चलने वाला तथा रुन्नी-सैदपुर होकर सीतामढ़ी जानेवाला पक्का मार्ग रामपुरहरी के पास हो 'बागमती' की इस प्राचीन धारा को पार करता है । यहाँ से बागमती पूरब दिशा में चलती है और तार-जीवार, आदमपुर, सहिलाबल्ली, हथौरी गाँवों को निहारती तथा पवित्र करती 'विश्वम्भरपुर' नामक गाँव को आती है । ये सभी गाँव 'बागमती' के इस प्राचीन प्रवाह-पथ के बायें तट पर ही स्थित हैं । मुजफ्फरपुर से नया गाँव तथा हलीमपुर होकर 'पुपरी' जाने वाली सड़क 'हथौरी' में ही बागमती के इस पुरानी धार को लाँघती है । विश्वम्भरपुर से 'बागमती नदी' बिलकुल अग्निकोण में बहती और तब अपने बायें किनारे बरई, सहिजन तथा मधईपुर को और दाहिने किनारे भुतान, चौमुख, देवगन और 'बाधा खोल' गाँवों को दृष्टिपूत करती 'हसना गद्दी' गाँव को पहुँचती है । हसनागद्दी के पास समानांतर बहकर आने वाली 'सिआरी' धार पुनः बागमती की धारा के निकट से बहती दिखाई पड़ती है । हसना-गद्दी दोनों धाराओं के मध्य में बसा है और बहुत प्राचीन ग्राम प्रतीत होता है । मुजफ्फरपुर-समस्तीपुर रेल-लाइन पर, दोनों नगरों के मध्य स्थित सिलौत रेलवे स्टेशन से पूर्वोत्तर कोण में चलता हुआ जो मार्ग 'विंदा' ग्राम के पास बूढ़ी गंडक को पार करता 'कटरा' पहुँचता है और कटरा से कमतौल (दरभंगा जिला) जाता है, वह हसना-गद्दी में ही बागमती की दोनों पुरानी धाराओं को पार करता है । यहाँ नदी के ऊपर बना पुल दरभंगा-राज की ओर से बना था । इसी 'कटरा' स्थान में चामुंडा देवी की प्राचीन ऐतिहासिक मूर्त्ति है । बाल्मीकीय रामायण में वर्णन है कि सिद्धाश्रम से जनकपुर जाते समय राम-लक्ष्मण वैशाली से गौतमाश्रम गये थे । गौतमाश्रम कमतौल के 'ब्रह्मपुर' नामक स्थान माना जाता है । ऐसी स्थिति में यही अनुमान ठीक लगता है कि राम-लक्ष्मण का मार्ग यही 'कटरा' वाला मार्ग होगा और वे वैशाली से पद्मौल, सिलौत, विंदा, सफुद्दीनपुर, हसना, कटरा आदि स्थानों से होते गौतमाश्रम गये होंगे ।

हसना गाँव के पास एक अलग नदी-कुण्ड है । यहाँ से बागमती थोड़ा नैऋत्य कोण में झुककर दक्षिण आती है, और फिर पूरब दिशा में प्रयाण करती जाया, बेरवा, कमरथु आदि गाँवों से गुजरती मकरन्दपुर तथा गायघट्टी पहुँचती है । गायघट्टी में प्राचीन शिवमन्दिर है और आजकल यहाँ अंचल-कार्यालय भी स्थापित हो गया है । यहाँ बागमती की यह धारा दक्षिण चलती है और लक्षमण नगर तथा जातांठोको' नामक गाँवों से होते 'हठा' गाँव को आती है । हठा से बागमती की यह पुरानी धार उत्तर दिशा में मुँह करती

है और समानान्तर बहकर आनेवाली अपनी दूसरी धार 'सिपरी' (सिआरी) को थरमा गाँव के दक्षिण में समेट लेती है। इसी 'हठा' और 'थरमा' गाँवों की भूमि में मुजफ्फरपुर जिला समाप्त हो जाता है। आजकल 'सिपरी' धार तो प्रायः मिट चुकी है, पर बागमती वाली धार अभी कुछ बची है, जिसमें आज भी वर्षाकालीन बाढ़ आती है।

सिपरी-धार : बागमती की बाईं ओर सिपरी नदी कहलानेवाली धारा 'फुलकनी' तथा 'हिरम्मा' गाँवों के पास से अलग होकर दाहिनी धारा के समानान्तर चलती हुई पूरे मुजफ्फरपुर जिले की पूर्वी सीमा तक बहती थी और दाहिने प्रवाह के साथ जिले की सीमा पर 'हठा' नामक गाँव के पास मिलती थी। किन्तु, यह 'सिपरी' धार अब प्रायः लुप्त हो चुकी है। सन् १९७० ई० में बागमती को इस धारा से बहाने के लिए कुछ प्रयास किया गया था; पर सफलता नहीं मिली। बागमती का 'सिपरी' नामक यह प्रवाह-पथ हिरम्मा से चलकर, सीधे अग्निकोण में बहता, दाहिने बागमती-प्रवाह के उत्तर से, इसके समानान्तर चलता था। हिरम्मा के पास से अग्निकोण में चलने पर 'पचरा' और तब 'सुलतानपुर भीम' नामक गाँवों को आता था। ये दोनों गाँव इस 'सिपरी' धार के बायें भाग में स्थित हैं। सुलतानपुर भीम गाँव के पास ही बागमती की एक प्राचीन 'कोला' नदी नामक उपधारा 'सिपरी' से मिलती थी। 'कोला' नदी भी प्रायः लुप्त हो चुकी थी; पर सन् १९७१ ई० में बागमती ने पुनः इसके उद्गम पर अपना बहाव तेज कर दिया है, जिससे कोला में पानी का आगमन बढ़ गया है। किन्तु, यह कोला अब यहाँ संगम नहीं करती है; बल्कि पुरानी बागमती से मिलकर बेलसंड होकर बहती है। इसके अतिरिक्त, पुरानी बागमती (दूसरी बागमती) भी अब कोला से मिलने के कारण 'कोला' नाम से ही पुकारी जाने लगी है। इन दोनों का विवरण आगे दिया जायगा।

प्राचीन कोला-संगम के अग्नि कोण में 'छपरा' नामक एक गाँव है, जहाँ प्राचीन अवशेषों के चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। छपरा के बाद इस धारा के बायें किनारे सिरोपट्टी, गीवा, कुन्दाल, मन्ना आदि गाँव बसे हुए हैं। मन्ना से आगे अग्निकोण में प्रायण करने पर इसके दाहिने भाग में डकरावाँ, डीह जीवार, असमानपुर आदि गाँव दिखाई पड़ते हैं। पुरानी बागमती (छोटी बागमती) कोला नदी से मिलकर असमानपुर में ही प्रस्तुत 'सिपरी' से संगम करती है। मुजफ्फरपुर से उत्तर की ओर सीतामढ़ी जानेवाला पक्का मार्ग डकरावाँ में ही 'सिपरी' को पार करता है।

असमानपुर से सिपरी (सिआरी) पुनः अग्निकोण में ही चलती थी और शिवदासपुर, विसउठा, धनउर, राजाडीह आदि गांवों से होते गुजरती थी। धनउर गाँव के बाद ही सिपरी की धारा दक्षिण की ओर मुड़ती थी और हसनागद्दी आती थी। हसनागद्दी में ही सिलौत तथा कमतौल वाला मार्ग इसे पार करता है। यहाँ से अग्निकोण में बढ़ने पर इस 'सिपरी' नदी के किनारे 'काँटा-पिरौंछ' गाँव मिलता है और फिर आगे बढ़ने पर 'मकरन्दपुर' गाँव पड़ता है। मुजफ्फरपुर से दरभंगा जानेवाली पक्की सड़क 'कांटा-पिरौंछ' होकर ही

गुजरती है। इसके आगे बढ़ने पर सिपरी हरनारायणपुर और सुस्ता नामक गाँवों को आती थी ? इस भाग में सिपरी की धारा कुछ जीवित है और सुस्ता के आगे यह दक्षिण दिशा में मुड़ती है और 'वथा' नामक ग्राम से होते 'थरमा' ग्राम के पास यह सिपरी अपने दाहिने प्रवाह (बागमती) में समाहित हो जाती है। दाहिने प्रवाह में मिलने के पहले इस 'सिपरी' में ही 'लखनदेई' नामक नदी भी इससे संगम करती है, इससे भी पहले 'सिपरी' नदी 'थरमा' गाँव के पास वागमती से नहीं मिलती थीं; वल्कि लखनदेई नदी को समेट कर यह फतेहपुर और रसूलपूर गाँवों (दरभंगा जिला) के बीच से अग्निकोण में चलती हुई हायाघाट रेलवे स्टेशन के उत्तर 'सिरिनिया' गाँव के उत्तर में दरभंगा से दक्षिण आनेवाली व्यघ्रवती तथा अधवारा-समूहवाली नदियों से मिलती थी और 'करेह' नदी बनकर दरभंगा जिले को पार करती मुंगेर जिले में प्रवेश करती थी। यही कारण है कि 'हायाघाट' रेलवे स्टेशन के पश्चिमोत्तर कोण में एक बड़ा-सा चौर दृष्टिगोचर होता है। किंतु, आज यह सारी स्थिति बदल गई है। बागमती की मुख्य धारा भी मरणासन्न हो गई है और बागमती मीनापुर के पास ही बूढ़ी गंडक से संगम करने लगी है। थरमा के पास मिलने वाली लखनदेई की धारा भी मन्द हो गई है। अब केवल इन सारी सरिताओं में वर्षा ऋतु की बाढ़ के समय ही पानी आता है। लखनदेई स्वयं अपना अधिकांश जल लेकर सीतामढ़ी के उत्तर में ही 'अधवारा' नदी से मिलने लगी है।

अपनी बाईं भुजा 'सिपरी' नदी को समेटने के बाद मरणासन्न बागमती जैसे ही दरभंगा जिले में प्रवेश करती है, वैसे ही इसके बायें तट पर (उत्तर भाग में) सरैया ग्राम इसका स्वागत करता है। यहाँ से बागमती दक्षिण दिशा में चलती है और इसके बायें तट पर हसनपुर, विशुनपुर, गोदाई पट्टी तथा दाहिने तट पर सलहर तथा कलौंजर गाँव दिखाई पड़ते हैं। कलौंजर के पास नदी में घाट है, जहाँ से बागमती अपनी टेढ़ी-मेढ़ी चाल से पूर्व दिशा में बढ़ती है। इस प्रयाणक्रम में इसके किनारे रूपौली, उघरा, उचौली आदि गाँव मिलते हैं, तत्पश्चात् यह 'खरैन्द' नामक गाँव को पहुँचती है। खरैन्द गाँव हायाघाट स्टेशन के सटे पश्चिम में स्थित है। यह बागमती के दाहिने तट पर स्थित है और प्राचीन भग्नावशेष से युक्त है। इसी खरैन्द में बागमती दो धाराओं में बँट जाती है। यहाँ भी बागमती की दाहिनी धारा 'बागमती' कहलाती है और बाईं धारा दरभंगा की ओर से बहकर आनेवाली व्याघ्रवती से मिल कर 'करेह' नाम से बहने लगती है। 'करेह' का विवरण आगे स्वतंत्र नदी के रूप में किया जायगा।

खैरन्द गाँव से बागमती की दाहिनी धार अग्निकोण में प्रयाण करती है और हायाघाट से सटे समस्तीपुर-दरभंगा-रेल-लाइन को पार कर पूर्व में आती है। इस हायाघाट के पूर्वी भाग वाला 'बागमती' का तट-प्रदेश मिथिला के ओइनवारवंशीय राजाओं का प्रसिद्ध क्रीड़ा-क्षेत्र रहा है। 'देकुली' ग्राम के पश्चात् शिवसिंह नामक मिथिलाधिपति का शासन-केन्द्र

'गजरथपुर' नामक स्थान रहा है। गजरथपुर की पहचान महामहोपाध्याय परमेश्वर झा ने अपनी 'मिथिला-तत्त्व-विमर्श' (पृ० १५८) नामक पुस्तक में 'शिवैसिंहपुर' नामक ग्राम से किया है। शिवैसिंहपुर ग्राम हायाघाट और लहेरियासराय के बीच में रेलवे लाइन के पूर्व में है। इसी के अड़ोस-पड़ोस में देकुली, आनन्दपुर, लक्ष्मीपुर, रतनपुर, सिंघौली आदि गाँव बसे हैं। कीर्त्तिसिंह से खटपट होने के कारण भवेश्वर के पुत्र देवसिंह अपना शासन केन्द्र 'वैनी' (ओइनी) से हटाकर 'देकुली' ले गये। देकुली में उन्होंने एक शिवमन्दिर का निर्माण कराया था, जो अद्यावधि वर्त्तमान है। इसी देवसिंह के पुत्र शिवसिंह थे, जिनके नाम पर 'शिवसिंहपुर' वसा था। 'लक्ष्मीपुर' गाँव शिवसिंह की पत्नी लखिमा रानी के नाम पर और रतनपुर नामक गाँव महाराज 'रतन सिंह' के नाम पर बसाया गया था, जिनका दूसरा नाम दर्पनारायण था। सिंघोली ग्राम भी इन्हीं 'सिंह' पदवीधारी राजाओं के नाम पर बसा है। किन्तु, गजरथपुर की पहचान 'शिवसिंहपुर' की अपेक्षा 'मिरजापुर' से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, जो सिंघौली के नैऋत्य कोण में बसा है। जैसा प्राचीन अवशेष 'मिरजापुर' में आज प्राप्त है, वैसा शिवसिंहपुर में नहीं है। दूसरी बात है कि 'गजरथपुर' प्रायः 'बागमती' के किनारे था[१] और ऐसी भौगोलिक उपलब्धि 'मिरजापुर' को ही प्राप्त है। बंगाल के मुस्लिम शासकों ने जब शिवसिंह से मिथिला का शासन छीना, तब निश्चय ही उन्होंने 'गजरथपुर' को भी अपने अधीन किया होगा और तब उसके मिरजा उपाधिकारी किसी बड़े अमले ने उसका नाम 'मिरजापुर' रखा होगा। हायाघाट रेलवे स्टेशन से सिर्फ एक-डेढ़ मील पूर्वोत्तर कोण में 'करेह' नदी के बायें भाग में 'मिरजापुर' ग्राम है।

हायाघाट के दक्षिण में बागमती रेलवे लाइन को पार कर अग्निकोण में चलती रामभद्रपुर नामक गाँव को आती है। 'रामभद्रपुर' भी रामभद्र सिंह के नाम पर बसा है, जो भैरव सिंह के पुत्र थे। इसी रामभद्रपुर में विद्यापति के पदों की एक हस्तलिखित प्राचीन पांडुलिपि प्राप्त हुई थी, जिसके आधार पर कवि के बहुत से दुर्लभ पद प्रकाश में आये हैं। रामभद्रपुर से प्रथम उत्तर की ओर घूमकर बागमती जब पुनः अग्निकोण में चलती है, तब इसके दाहिने किनारे गुमला और बायें किनारे रसूलपुर, घोसरामा, चकवा तथा समस्तीपुर (समस्तीपुर नगर से भिन्न) गाँव बसे हुए हैं। इसके पश्चात् बागमती नदी हथौरी कोठी तथा मधुरापुर नामक गाँवों को आती है। ये दोनों ग्राम नदी के बायें तट पर स्थित हैं। हथौरी से एक सड़क पश्चिमोत्तर कोण में झुकती आनन्दपुर ड्योढ़ी होकर लहेरियासराय जाती है। मधुरापुर से बागमती थोड़ा अग्निकोण में झुककर दक्षिण दिशा में चलती है और अपने संगम-स्थान तक इसका प्रयाणक्रम इसी दिशा में रहता है। इसके इस यात्राक्रम में इसके बाएँ

---

१. अब्दे लक्ष्मणसेनभूपतिमते वह्निग्रहद्व्याङ्किते, मासि श्रावणसंज्ञके मुनितिथौ पक्षे वलक्षे गुरौ।
वाग्वत्यास्सरितस्तटे गजरथेत्याख्या प्रसिद्धे पुरे, दित्सोत्साहविवृद्धबाहुपुलकाः सभ्याय मध्येसभम्॥

भाग में पुनवा, रहथौली, सिरपुर गाहर, बल्लीपुर, सदुका आदि गाँव तथा दाएँ भाग में इसके द्वारा भरी गई मिट्टी से अत्यन्त उर्वर सपाट खेत फैले हुए हैं। बल्लीपुर तथा सदुका दोनों ग्राम प्राचीन मालूम पड़ते हैं। सदुका के बाद बागमती के बायें तट पर राघोपुर, सालह, ठाहड़बसढ़िया, मोतीपुर, जहाँगीरपुर आदि गाँव बसे हुए हैं। इसके साथ ही इस भाग में इसके दाहिने तट की ओर फतहनूर, हसनपुर, डगरुआ आदि स्वल्प विरल ग्राम दीख पड़ते हैं, जो बागमती के प्राचीन धाराक्षेत्र में नये जान पड़ते हैं। इसी डगरुआ के दक्षिण और महम्मदपुर, अल्लादीन गाँव के पश्चिम एवं भेटपुर और बेलसन्ती तारा के उत्तर तथा सिंधिया के पश्चिमोत्तर कोण में बागमती नदी बूढ़ी गंडकी में प्रवेश कर जाती है। यह बागमती कभी उपर्युक्त धारा-मार्ग के दाहिने भाग से भी बहती थी और उसके पहले अपनी बाईं भुजा स्वरूप 'करेह' वाली धारा से भी बहती थी। यद्यपि आजकल बागमती की यह धारा बहुत मन्द हो गई है तथापि उपर्युक्त धारामार्ग वर्षाकाल में तो उफना ही जाता है और अपने पड़ोस के गाँवों में तबाही मचा देता है। अन्यकाल में भी, मुजफ्फरपुर जिले के बाद, इसमें पानी रहता है।

छोटी बागमती : यह पहले कहा गया है कि पुरानी बागमती मुजफ्फरपुर जिले के 'असमानपुर' गाँव के पास बागमती की 'सिपरी' धार में संगम करती है; किंतु आजकल यह छोटी बागमती शिवहर थाने में, शिवहर के पूर्वोत्तर कोण में, परसौनी गाँव के पास ही बड़ी बागमती की उप-धारा 'कोला' नदी से संगम करती है और तब बेलसंड के पश्चिम से बहती दिखाई पड़ती है। इस नदी के 'पुरानी-बागमती' नामकरण से ऐसा जान पड़ता है कि किसी काल में बड़ी बागमती भी, आज जो बैरगनिया थाने के 'सिसउला कला' ग्राम से नैऋत्य कोण में धारा बनाती है, पहले सीधे दक्षिण में चलकर रेक्सी मकसूदपुर के पश्चिम (सीतामढ़ी नगर से पाँच मील पश्चिम में) तथा मोहनपुर गाँव के पास इस तराई-स्रोत से मिलती हो और असमानपुर के पास पहुँचकर 'सिपरी' धार से बहती दरभंगा जिले में जाती हो। बाद में जब इस धारामार्ग को बागमती ने छोड़ दिया और उसका जो अवशेष रह गया, वह 'पुरानी बागमती' अथवा छोटी बागमती के नाम से अभिहित होने लगा। यह अनुमान इसीलिए जान पड़ता है कि इस धारा-मार्ग पर कई प्राचीन तथा ऐतिहासिक ग्रामों के अवशेष आज भी दृष्टिगोचर होते हैं।

पुरानी बागमती (छोटी बागमती) नेपाल के जनकपुर-अंचल के 'सरलाही' जिले के पश्चिमोत्तर कोण में स्थित पर्वतपादमूल से उद्गत होती है और जिले के पश्चिमी किनारे से ही दक्षिण दिशा में बहती तराई-भाग में आती है। इस भाग में इसका नाम **'झिमवा'** है और यह नेपाल के जलेश्वर स्थान के पास से, सरलाही जिले के पश्चिमी किनारे से होती दक्षिण में आती है तथा बिहार-प्रदेश के मुजफ्फरपुर जिले के मेजरगंज (मलाही) थाने के बहेरा गाँव के पास प्रवेश करती है। यह मेजरगंज के पश्चिम में आकर पूर्व की ओर मुड़ती है और इसे घेरती हुई बहने लगती है। भारत में जब अँगरेज शासन करते थे, तब उन्नीसवीं

शती में इनका युद्ध नेपाल से हुआ था। उस समय अँगरेजी पलटन के साथ एक मेजर की छावनी 'मलाही' में स्थापित की गई थी, जिससे इसका नाम 'मेजरगंज' भी हो गया। यहाँ अँगरेजों की कई कब्रें आज भी वर्त्तमान हैं। यहाँ प्राचीन भग्न किले का एक अवशेष भी दृष्टिगोचर होता है।

मेजरगंज से 'झिमवा' नदी जब दक्षिण की ओर चलती है, तब इसकी धारा कुटिल गति ग्रहण कर लेती है और 'बागमती' नाम से अभिहित होने लगती है। मेजरगंज से दक्षिण बढ़ने पर इसके दाहिने किनारे 'डुमरी कलाँ' नामक प्राचीन ग्राम दीख पड़ता है और यहाँ से दक्षिण बढ़ने पर अपने बायें भाग में यह 'बेलहिया' तथा 'सोनर' नामक गाँवों को निहारती है। सोनर से दक्षिण आने पर इसके वाम पार्श्व में 'बुलाकीपुर' तथा दक्षिण पार्श्व में 'मोहनी मन्दार' नामक गाँव स्थित मिलते हैं। बुलाकीपुर से यह थोड़ा नैऋत्य कोण में झुककर बहने लगती है और 'नढ़ा' गाँव के उत्तर सीतामढ़ी-रक्सौल-रेल लाइन के नीचे से सरकती है। पुरानी बागमती का यह निकास 'रीगा' तथा 'धंग' नामक स्टेशनों के मध्य में दिखाई पड़ता है। नढ़ा गाँव के बाद यह अग्निकोण में झुकती हुई बहती है और 'पँछउर' गाँव को पहुँचती है, जहाँ से पश्चिम में मुड़कर फिर दक्षिण दिशा में बहने लगती है। अपने इस यात्राक्रम में पुरानी या छोटी बागमती अपने बायें तट की ओर बरई, खड़सन और पकड़ी गाँवों को तथा दाहिने तट की ओर शहबाजपुर तथा महेसिया गाँवों को निहारती है। पकड़ी से यह नैऋत्य कोण में मुड़ती है और मोहनपुर नामक गाँव के पास आकर फिर दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है। मोहनपुर के पास बागमती की 'कोला' नामक उपधारा के पास से दक्षिण में बहती है। यह उपधारा 'सिसउला' ग्राम के पास से अग्निकोण में निकलती है। किसी काल में बड़ी बागमती भी अपनी इसी उपधारा के माध्यम से बहती थी।

पुरानी (छोटी) बागमती जब मोहनपुर से दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है, तब 'कोला' नदी के दाहिने भाग में कुँअवा, मीनापुरबल्हा, धनकौली और बायें किनारे भगवानपुर, सोनार गाँवा, परशुरामपुर तथा देकुली गाँव मिलते हैं। मोहनपुर के पूर्व में 'रेवासी-मकसूदपुर' नामक गाँव है, जहाँ किले के दो ध्वंसावशेष हैं। परशुरामपुर में भी किले का चिह्न दीख पड़ता है। देकुली के सटे उत्तर विशुनपुर और दक्षिण में परसौनी गाँव है। ये सभी गाँव प्राचीन तथा ऐतिहासिक हैं। किंतु, आज इसे पुरानी बागमती की स्थिति कुछ दूसरी ही है। आजकल यह परशुरामपुर, विशुनपुर तथा देवकुली होकर नहीं बहती है। अब इसकी धारा सोनरगावाँ से नैऋत्य कोण में ही फुटती है और मीनापुरबल्हा गाँव के पश्चिम तथा शिवहर थाने के परसौनी गाँव के पास 'कोला' नदी से संगम कर जाती है। मीनापुर-बल्हा, परशुरामपुर, विशुनपुर देकुली तथा धनकौली आदि गाँव इसके प्राचीन धारा-मार्ग पर अवस्थित हैं।

देकुली गाँव शिवहर से तीन मिल पूर्व और सीतामढ़ी से ६ मील दूर नैऋत्य कोण में स्थित है। यह बेलसंड से सीधे उत्तर चार मील पर स्थित है। यहाँ एक टीले के ऊपर भग्न

शिव-मंदिर है। इसके निचले भाग के एक गड्ढे में भुवनेश्वर शिवलिंग स्थापित है। मंदिर के बाहर विभिन्न देव-देवियों की मूर्त्तियाँ पड़ी हैं। मंदिर के पार्श्व भाग में ही दो प्राचीन जलाशयों के अवशेष हैं। यह स्थान साधना के योग्य प्रतीत होता है और यहाँ का दृश्य बड़ा ही रमणीय है। किंवदन्ती है कि भग्न टीला राजा द्रुपद के गढ़ का अवशेष है और उनके अनुसार यहीं द्रौपदी का स्वयंवर हुआ था। किंतु, इस किंवदन्ती में पौराणिक आधार कुछ भी नहीं है। टीले के ऊपर के मंदिरों में भुवनेश्वर शिवलिंगवाला मन्दिर ही ख्यात है। पुण्यार्थी तालावों में स्थान कर शिवलिंग की अर्चा करते हैं। गढ़ी और मन्दिर पर एक महन्त का अधिकार है और शिवरात्रि के अवसर पर आज भी यहाँ बड़ा मेला लगता है। पुरातात्त्विकों के लिए यह एक निश्चय ही शोध-स्थान है।

पुरानी बागमती की प्राचीन धारा के बायें भाग में ही, देकुली से दक्षिण परसौनी नामक गाँव है। यह परसौनी बेलसंड थाने में है। यहाँ एक प्राचीन मुसलमान भूमिपति का निवास है। इस खानदान की स्थापना परदिल सिंह नामक एक व्यक्ति ने १७ वीं शती में ही की थी। परदिल सिंह मुसलमान बनकर मुस्लिम शासकों से जमींदारी प्राप्त की और अपनी राजधानी परसौनी में कायम की। आज भी उसके वंशज परसौनी में वर्त्तमान हैं। परसौनी के पास पुरानी बागमती मोड़ लेती है, जिसकी धारा 'बनकउल' गाँव से अग्नि कोण में अग्रसर होती है। मोड़ के दक्षिणी छोर के पास नदी के दाहिने भाग में ही 'हरपुर' गाँव की स्थिति है। हरपुर से पुरानी बागमती दक्षिण चलती है और कन्हौली, रुकुनपुर तथा रूपौली होते 'बेलसण्ड' पहुंचती है। रूपौली के उत्तर में ही पुरानी बागमती अपनी एक उपधारा निकालती थी, जो इसके बायें भाग से अग्निकोण में चलती प्रतापपुर आती थी और वहाँ से पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर 'खोपा' गाँव के पास लखनदेई नदी में मिल जाती थी।

बेलसण्ड मुजफ्फरपुर जिले का एक प्रसिद्ध थाना हैं, जहाँ पहले अँगरेजों की नील बनाने की एक कोठी थी। बेलसण्ड के पश्चिमी भाग से होती पुरानी बागमती जब दक्षिण आती है, तब यह पहले दो भागों में विभक्त होती थी। सीधे दक्षिण चलनेवाली दाहिनी धारा सुलतानपुर-भीम गाँव के पास 'कोला' नदी से संगम करती थी, जो बड़ी बागमती की 'सिसउला' के पास ने निकलनेवाली उपधारा थी। किंतु, अग्निकोण में चलनेवाली धारा 'पँछनौरमुरही' गाँव के पूर्व आकर दक्षिण मुड़ती है, और खरका, पोटा, फकसी तथा मानपुर जउआन आती है। आज कोला बागमती से मिलकर इसी धार से मिलकर बहने लगी है। खरका गाँव के पूर्व तथा पुरानी बागमती के बायें भाग में कुछ दूर 'रुनी-सैदपुर' है। आज मानपुर से यह दक्षिण चलकर जब पुरानी बागमती और कोला की सम्मिलित धार पूर्व की ओर मुड़ती है, तब मुजफ्फरपुर से रुनी-सैदपुर तथा सीतामढ़ी जानेवाला मार्ग इस नदी को 'डकरावाँ' गाँव के उत्तर में पार करता है। यहाँ से सम्मिलित धार अग्निकोण में चलती है और बसंत, मटिहानी तथा सरहँचिया ग्राम को आती है। ये गाँव इसके बायें कनारे बसे हुए हैं। इस भाग में इसके दाहिने किनारे भदई, एकमा तथा

असमानपुर ग्राम दीख पड़ते हैं। इसी असमानपुर के पूर्व में यह बड़ी बागमती को 'सिपरी' (सिआरी) धार से संगम कर जाती है, जो सिपरी अब मृतप्राय हो गई है।

कोला : यह पहले कहा गया है कि कुछ वर्ष पूर्व सुलतानपुर भीमगाँव तथा छपरा के पास बड़ी बागमती की उपधारा 'सिपरी' नदी से कोला नदी संगम करती थी। इसी संगम के कारण बड़ी बागमती यहाँ एक चौर का निर्माण करती थी, जिससे आज फिर बड़ी बागमती ने अपनी प्रधान धारा बना ली है और बूढ़ी गंडक से मीनापुर के पास ही संगम करने लगी है। सम्पूर्ण मुजफ्फरपुर जिले में बहनेवाली बागमती अब प्रायः मरणासन्न हो गई है।

कोला कोई अलग नदी नहीं है। यह बड़ी बागमती की ही एक प्राचीन उपधारा है, जिससे होकर किसी काल में बागमती बहती थी। मेजरगंज के दक्षिण में 'सिसउला' ग्राम के पास से यह उपधारा फूटती है। कोला नदी बड़ी बागमती का पानी निकालने वाला एक संकीर्ण गलियारा है। इसी से इसका नाम 'कोला' नदी है। कोला उस सकरी गली का नाम है, जो किसी घर से निकलती है और बड़ी गली में आने-जाने के लिए मिलती है। खेत की छोटी क्यारी को भी कोला, कोली या कोलकी कहा जाता है।

'कोला' नामक शाखा 'सिसउला' ग्राम के पास से बड़ी बागमती से निकलती है और हरपुर-पिपरा तथा मुरादपुर-नरकटिया ग्रामों के मध्य भाग से दक्षिण की ओर बहती रामपुर गंगौली ग्राम को आती है। हरपुर पिपरा 'कोला' नदी के पश्चिम तथा मुरादपुर-नरकटिया कुछ दूर पूर्व भाग में स्थित हैं। रामपुर गंगौली से दक्षिण प्रयाण करने पर कोला नदी के दाहिने किनारे 'बैरिया' तथा बायें किनारे (पूर्व में) बसंतपुर ग्राम स्थित हैं। इन दोनों ग्रामों के मध्य से जब यह दक्षिण की ओर चलती है, तब इसके पूर्व दिशा में बहुत नजदीक से पुरानो बागमती (नेपाल की झिमवा नदी) दक्षिण दिशा में बहती हुई मिलती है। यहाँ दोनों नदियों की भौगोलिक स्थिति बड़ी ही रागात्मक लगती है। पहले तो दोनों-नदियाँ अग्निकोण में तथा नैऋत्यकोण में ऐसी झुकती हैं, जैसे गले-गले मिल रही हों; पर एकाएक 'कोला' नदी मोहनपुर के पश्चिम आकर मानों पुरानी बागमती से रूठ जाती है और नैऋत्य कोण में मुँह करके दूर भाग जाती है तथा नारायणपुर गाँव के पश्चिम से होते चमनपुर नामक गाँव को चली आती है। चमनपुर गाँव शिवहर से दो मील उत्तर में है। चमनपुर से कोला फिर अग्निकोण-वाहिनी बनती है और परसौनी (पूर्व-कथित देकुली के पासवाले परसौनी से भिन्न) गाँव से सटती 'मोहन' नामक गाँव को पहुंचती है। मोहन के उत्तर भाग में ही शिवहर-सीतामढ़ी-मार्ग 'कोला' को पार करता है। इस मार्ग के उत्तर में ही तथा 'परसौनी' के पूर्व में पुरानी बागमती 'सोनर-गाँवाँ' के नैऋत्य भाग से अपनी धार ऋत्यकोण में बना लेती है और 'कोला' नदी से संगम करती है। अब छोटी बागमती अपनी पुरानी धारा—विशनपुर तथा देकुली होकर बहनेवाले प्रवाह—को छोड़ चुकी है और सोनर गाँवाँ के पास ही कोला नदी का धारा-

मार्ग पकड़ चुकी है; किंतु बेलसंड के पश्चिम आने पर फिर इसने 'कोला' के साथ-साथ अपना पुराना मार्ग ग्रहण कर लिया है और कोला ने अपना दक्षिणवाला प्रवाह मार्ग छोड़ दिया है। उत्तर बिहार की नदियाँ इतनी तेजी से अपना मार्ग इधर-उधर करती हैं कि संभव है, इस पुस्तक के प्रकाशित होते-होते पुस्तक में लिखित इनका धारा-मार्ग फिर बदल गया हो। आज से हजारों वर्ष पहले इन नदियों ने उत्तर बिहार की भूमि का जो निर्माण आरंभ किया था, वह आज भी रुका नहीं है, ये निरंतर मिट्टी डाल रही हैं।

परसोनी के पास (शिवहर थाना) आजकल पुरानी बागमती को लेकर कोला नदी मोहन नामक गाँव को आती है और यहाँ से महदेवा गाँव के पूर्वोत्तर कोण में तथा बेलसंड के पश्चिम से पूर्व की ओर मुड़कर पुनः पुरानी बागमती के प्राचीन धारा-मार्ग से संगम करके चन्दोली टिमहा तथा पँछनौर मुरही होकर अग्निकोण में निकल जाती है। किंतु, पहले कोला नदी मोहन गाँव से सीधे दक्षिण चलकर जगदीशपुर के पूरब से ही महदेवा गाँव आती थी। यहाँ से दक्षिण चलकर खुरपट्टी के पूर्व से ही 'सुलतानपुर भीम' पहुँचती थी, जहाँ शिवहर के पश्चिम से अग्निकोण में बहकर आनेवाले एक चुअन-नदी को समेटती हुई 'सुलतानपुर भीम' के नैऋत्य कोण में 'सिपरी' धार से संगम करतो थी।-इस संगम से पूर्व में ही 'छपरा' नामक गाँव है, जो 'सिपरी' धार के बाएँ भाग में (उत्तर की ओर) स्थित है। छपरा में प्राचीन ध्वंसावशेष के कई टीले नजर आते हैं।

लखनदेई : यद्यपि आजकल लखनदेई नदी 'अधवारा' समूह-वाली नदियों की सहायिका बन गई है और इसका अधिकांश पानी उन्हीं नदियों के साथ मिलकर दरभंगेवाली 'व्याघ्रमती' में जा रहा है, तथापि यह मुख्यतः बागमती की ही सहायक नदी रही है, जिससे इसका ब्योरा यहाँ उल्लेखनीय है। लखनदेई की यह धारा सीतामढ़ी से बहती हुई रुन्नी-सैदपुर आती है और वहाँ से अग्निकोण में चलती तथा 'कटरा' होते मुजफ्फरपुर-दरभंगा जिले की सीमा पर 'सुस्ता' गाँव के निकट बागमती की 'सिपरी' धार से मिलकर तुरत बागमती की मुख्यधारा में 'सुस्ता' के दक्षिण और 'थरमा' के पास मिल जाती है। लखनदेई का नाम कुछ लोग 'लक्ष्मणावती' कहते हैं; पर इसका संस्कृत रूप 'लक्ष्मणा देवी' होना चाहिए। मेरा तो निश्चत मत है कि नदी का नाम विद्यापति की काव्य-नायिका महारानी **'लखिमादेई'** के नाम पर ही 'लखनदेई पड़ा है। इस लखनदेई का उद्गम-स्थान भी नेपाल के 'सरलाही' जिले के विभिन्न तीन स्रोतों में है। ये तीनों स्रोत भारत-भूमि के मुजफ्फरपुर जिले के सोनबरसा थाने में घुसकर जब एकीभूत होते हैं, जब इसका नाम लखनदेई हो जाता है। तीनों में से पश्चिमवाला स्रोत नैऋत्य कोण में चलता भारत और नेपाल की कुछ दूर तक सीमा बनता है, तत्पश्चात् मधुकरपुर गाँव के पश्चिम से होता 'हिनरोलवा' गाँव आता है। हिनरोलवा तक यह स्रोत फिर मेजरगंज एवं सोनबरसा थाने की सीमारेखा बनता है। यहाँ से यह पूरब दिशा में मुड़ता है और फिर पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर मध्य स्रोत से मिल जाता है। मध्य-भाग का स्रोत 'मधुकरपुर' गाँव के

पूरब भारत भूमि में प्रवेश करता है और सीधे दक्षिण चलकर बगहा (चम्पारन जिले के बगहा से भिन्न) गाँव के दक्षिण में पश्चिमी स्रोत से संगम करता है। लखनदेई का मुख्य स्रोत यही बीचवाला स्रोत है। यह सम्मिलित स्रोत जब दक्षिण की ओर चलता है, जब 'विशुनपुर पुरुषोत्तम' गाँव होते 'कोदवारा' गाँव को आता है। कोदवारा से लखनदेई की धार जब पूरब दिशा में मुड़कर 'धुबहा' गाँव आती है, तब यहीं पूर्व भागवाला स्रोत भी इसमें सम्मिलित हो जाता है। पूर्वी भागवाला यह स्रोत मध्यवर्ती स्रोत के निकट पूर्व में 'कन्हौली' गाँव के पश्चिम भारत-भूमि में प्रवेश करता है और 'मुरचट्टी' नामक गाँव को आता है। मुरचट्टी के बाद 'कचउर' तथा 'मटियार' गाँव के पश्चिम से 'धुबहा' पहुँचता है, जहाँ लखनदेई के मुख्य स्रोत में सम्मिलित हो जाता है। इसी 'धुवहा' के दक्षिण से लखनदेई ने आज अपनी गति बदल दी है। पहले यहाँ यह दो भागों में बँटती थी और मुख्य धारा सीतामढ़ी होकर बहती थी; पर आज इसने सीतामढ़ीवाले प्रवाह को मन्द करके पूर्व भागवाले स्रोत को अपना प्रधान प्रयाण-मार्ग बना लिया है।

लखनदेई की प्राचीन धारा 'धुबहा' से 'कदवारा' आती है और वहाँ से नैऋत्य कोण में भुककर फुलवरिया गाँव को पहुँचती है। इसके बाद यह पूर्व में तथा फिर दक्षिण में मुड़कर 'पुरनहिया' ग्राम और वहाँ से फिर नैऋत्य कोण में घूमकर 'बाघमारी' तथा 'रणजीतपुर' पहुँचती है। इसके बाद लखनदेई नदी सीतामढ़ी के उत्तर 'कपरोल-सिरोया' गाँव को आ जाती है। यहाँ यह सीतामढ़ी के पश्चिम में एक बड़ा-सा चौर बनाती है, जिसमें कभी 'पुरानी बागमती' का भी पानी आता था। सीतामढ़ी में लखनदेई पहले 'डुमरा' होकर बहती थी, जिसकी गर्भधारा में आज सीतामढ़ी की सरकारी कचहरियों की इमारतें खड़ी हैं। इस सीतामढ़ी का पौराणिक महत्त्व सर्वविदित है। यहीं जनकनन्दिनी सीता का जन्म हुआ था, ऐसा माना जाता है। प्राचीन कहानी है कि सीरध्वज राजा जनक के राज्य में एक बार बारह वर्षों के लिए अनावृष्टि हुई, जिससे राज्य में अकाल पड़ गया। ऋषि-मुनियों ने बतलाया कि यदि राजा जनक स्वयं हल कर्षण करें, तो वृष्टि होगी। कहा जाता है कि हल में सोने का फाल लगवाया गया और उससे राजा सीरध्वज ने हल-कर्षन किया। फाल के कर्षण से खेतों में जो लकीर पड़ती है, उसे संस्कृत में 'सीता' कहते हैं। हल कर्षण के समय उसी 'सीता' से एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम भी 'सीता' ही रखा गया और राजा जनक ने इसका पालन-पोषण पुत्रीवत् किया। सीता राजा जनक की पुत्री मानी गईं, अतः इनका दूसरा नाम 'जानकी' भी हुआ। सीता जी के जन्म-स्थान होने के कारण ही इस स्थान का नाम उन्हीं के नाम पर 'सीतामढ़ी' हुआ है। यहाँ राजा जनक ने हलकर्षण किया था, अतः इस क्षेत्र को 'हलावर्त्त' भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में जो शिव-लिंग है, उसे 'हलेश्वर' महादेव कहते हैं, जिसके संबंध में 'लिङ्ग पुराण' कहता है—'हलावर्ते हलेश्वरः।'

सीतामढ़ी में एक जानकी-मन्दिर भी है, जिसके निर्माण का इतिहास अबतक अज्ञात है। मन्दिर में जानकी की एक प्रस्तर-प्रतिमा स्थापित है। इस स्थान में चैत्र शुक्ल

नवमी को एक बहुत बड़ा मेला लगता है, जो पन्द्रह दिनों तक रहता है। उत्तर बिहार के मेलों में सीतामढ़ी का मेला अतिशय विख्यात है। सीतामढ़ी के पश्चिम 'पुनौरा' नामक एक बहुत बड़ा ताल है, जिसमें कभी लखनदेई तथा पुरानी बागमती का संगम होता था। मन्दिर के पास ही एक पक्की पुष्करिणी है, जो सीताकुण्ड कहलाती है। कहा जाता है कि बीरबल दास नामक एक साधु को जमीन के भीतर से राम, लक्ष्मण और सीता की मूर्त्तियाँ मिली थीं; जिन्हें बाद में मन्दिर में स्थापित किया गया। यहाँ तीन पुरानी समाधियों के अवशेष भी हैं, जो बीरबलदास और उनके दो शिष्यों की हैं। किन्तु, कुछ लोगों का कहना है कि सीताजी का जन्मस्थान सीतामढ़ी से तीन मील दक्षिण-पश्चिम कोण में स्थित 'बनौरा' ग्राम है। यह 'पुनौरा' झील के दक्षिण में स्थित है।

सीतामढ़ी तक लखनदेई नदी २४६ वर्गमील का वर्षा-जल बटोरती है, जिसमें ४६ मील की दूरी की लम्बाई का पानी पहुँचता है। लखनदेई की यह धारा अब बहुत क्षीण हो गई है और सीतामढ़ी नगर के मध्यभाग से पहले यह डुमरा होकर बहती थी तथा बिशुनाथपुर एवं हरिछपरा आती थी। हरिछपरा में भी यह कभी दो भागों में बँटती थी। थोड़ा-सा अग्निकोण लिये जो धारा दक्षिण दिशा में चलती थी, वह मदनपुर होते 'सुहई' के पूरब आती थी और वहाँ से चलकर 'मानिक चौक' गाँव के पूरब में समाप्त हो जाती थी। मानिक चौक गाँव राजा 'नान्यदेव' के भाई 'मान्यदेव' द्वारा बसाया गया था, जहाँ आज तक उनके किले का ध्वंसावशेष वर्त्तमान है। किन्तु, लखनदेई की जो धारा 'हरिछपरा' से नैऋत्य कोण में चलती है, वह बिशुनपुर-रूपौली, 'गिसार' तथा 'बैना' गाँवों से होते 'खोपा' के पश्चिम में आती है और यहीं पुरानी बागमती की एक उपधारा को समेटती है। इसके पश्चात् लखनदेई का यह प्रवाह दक्षिण दिशा में बढ़ता है तथा बेलाही नीलकण्ठ गाँव के निकट से 'भपुरा भीमपुर' को आता है। ये सभी गाँव आज उस मार्ग पर स्थित हैं, जो रूनी-सैदपुर के पश्चिमोत्तर कोण में स्थित 'भपुरा-भीमपुर' से उत्तर की ओर चलता सीतामढ़ी जाता है। यह मार्ग आधुनिक राजमार्ग के पश्चिम में समानान्तर सीतामढ़ी की ओर बढ़ता है।

भपुरा-भीमपुर से लखनदेई अग्निकोण में झुकती है और 'रूनी-सैदपुर' आती है। रूनी-सैदपुर का वास्तविक नाम है—'रामपुर-सैदपुर-रून'। यह मुजफ्फरपुर जिले का एक थाना है, जहाँ किसी मुस्लिम शासक का किला था। रूनी-सैदपुर के दक्षिण बेनीपुर गाँव है, जहाँ के निवासी रामवृक्ष 'बेनीपुरी' थे। वे हिन्दी-साहित्य के अन्यतम शैलीकार एवं कथाकार थे और भारत में समाजवादी पार्टी के जन्मदाता भी वही थे। वे हिन्दी के कई साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों के सम्पादक भी रह चुके थे। उनकी कहानियों की भाषा बुलबुल की तरह चहकती और आचार्य शिवपूजन सहाय के शब्दों में खंजन की तरह फुदकती-सी दीख पड़ती है। बेनीपुर गाँव के पास का 'भरथुआ' चौर लखनदेई की ही देन है, जिसमें महात्मा गाँधी ने भी नाव से सैर की थी। किंतु, अब यह चौर भर गया है और इसमें धान की अच्छी फसल होती है। महात्मा गाँधी को बेनीपुरी जी ही अपने गाँव ले गये थे और भरथुआ

चौर में उन्होंने ही नाव पर घुमाया था। महात्मा गाँधी का यह नौका-भ्रमण सन् १९३४ ई० में तब हुआ था, जब भूकम्प-पीड़ित उत्तर बिहार में राहत का कार्य चल रहा था।

रूनी-सैदपुर से लखनदेई नदी अग्निकोण में बहती हुई गंगोली एवं राजखंड आती है। यहाँ से दक्षिण दिशा में बहती खेतलपुर, औराई, रहीमपुर तथा नयागाँव पहुँचती है। औराई से दक्षिण रहीमपुर है और दोनों गाँव लखनदेई के पूर्वी तट पर (बाईं ओर) बसे हैं; किंतु नयागाँव इसके दाहिने भाग में स्थित है। रहीमपुर और नयागाँव के बीच से बहती लखनदेई का प्रवाह अग्निकोण में ही चलता हुआ सिसउली, आलमपुर और अभिमानपुर नामक गाँवों को आता है। इसके बाद इसके तट पर चिहुटा, सदरी, पण्डौली, ज्ञानपुर, भथुआ, बरहेता, अमई आदि गाँव दिखाई पड़ते हैं। इन गाँवों को पुनीत करती लखनदेई जब अधिकांशतः अग्निकोण की ओर झुकती हुई चलती है, तब 'कटरा' नामक स्थान इसी के किनारे मिलता है। कटरा एक थाना है, जो मुजफ्फरपुर के उत्तर-पूर्व भाग में, १८ मील दूर पर अवस्थित है। यह जिले के पूर्वी भाग का आखिरी थाना है, जो दरभंगा सदर थाने के पश्चिम में है। मुजफ्फरपुर जिले के सिलौत स्टेशन से दरभंगा जिले के कमतौल जानेवाला मार्ग बूढ़ी गण्डक तथा बागमती को पार करता हुआ 'कटरा' होकर ही गुजरता है। यह मार्ग 'कटरा' में ही लखनदेई नदी को पार करता है। जनकपुर जाते समय राम-लक्ष्मण का प्रयाण-मार्ग सम्भवतः यही होगा। कटरा में प्राप्त पुराने किले के भग्नावशेष का घेरा ६० बीघे में था। हाल तक भग्नावस्था में भी किले की दीवारें ३० फुट ऊँची थीं। आज थाने की इमारत किले के ही अवशेष पर खड़ी है। किंवदन्ती के अनुसार, यह किला किसी चाँद नामक राजा का था। एक बार किसी युद्ध के अवसर पर जब वह दरभंगा जाने लगा, तब उसने कहा कि जब किले का झंडा झुक जाय, तब समझना कि मैं युद्ध में मारा गया। उधर जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब किसी विश्वासघाती कर्मचारी ने किले के झंडे को गिरा दिया। झंडे को गिरा जानकर किले की सभी रानियाँ आग में जल कर मर गईं। इसी 'कटरा' में भगवती चामुण्डा की अति प्राचीन मूर्त्ति स्थापित है, जो आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व की बतलायी जाती है। इसके सम्बन्ध में पहले भी थोड़ी चर्चा की गई है।

'कटरा' के आगे भी लखनदेई का प्रवाह अग्निकोण में चलता है और इसके दाहिने किनारे सोनपुर, हरपुर, डुमरावाँ, कल्याणपुर तथा केवटा-पिरौंछ नामक ग्राम एवं वाम-पार्श्व में नवादा, बरारी, महेशवारा और केवटवास दिखाई पड़ते हैं। केवटवास और पिरौंछ ग्रामों के पास ही मुजफ्फरपुर से दरभंगा नगर के उत्तरी भाग में पहुँचनेवाला मार्ग लखनदेई को पार करता है। केवटवास के बाद जब लखनदेई दक्षिण दिशा में चलती है, तब 'बेटौर' गाँव के दक्षिण में आकर बागमती की 'सिपरी' (सिआरी) धार में समाहित हो जाती है।

ऊपर में वर्णित लखनदेई का प्रवाह-पथ यद्यपि आज भी मुख्य माना जाता है और बरसाती बाढ़ के पानी से सारा क्षेत्र आप्लावित हो उठता है, तथापि यह प्रवाह अब

मृतप्राय है। वर्षा ऋतु के अतिरिक्त इस प्रवाह से पानी नहीं बहता है और अधिकांश स्थानों पर लखनदेई के इस धारा-क्षेत्र में कृषि होने लगी है। लखनदेई का दूसरा प्रवाह सीतामढ़ी के उत्तर पूर्ववर्णित 'धुवहा' तथा 'कोदवारा' से ही अग्निकोण में चलता है और सीतामढ़ी से पूर्वोत्तर कोण होते दक्षिण आता है। यह धारा-पथ 'कमलदह' के दक्षिण में तथा बथनाहा के पश्चिम में ही एक चौर से होकर दक्षिण की ओर बढ़ता है तथा दोस्तपुर के पूरव से ही बाजपट्टी स्टेशन से तीन मील पश्चिम रेलवे लाइन के पास आकर सीतामढ़ी के अग्निकोण से आनेवाली एक और उपधारा को समेटता है। इसके बाद रेल लाइन को पारकर, लाइन के दक्षिण से किनारे-किनारे, पूरब की ओर बढ़ता है और पुपरी स्टेशन के पश्चिम में ही पुनः रेल-लाइन के नीचे से सरककर उत्तर भाग में पहुँचता है। यहाँ से यह फिर रेल-लाइन के उत्तरी भाग से उसके किनारे-किनारे बहता है और जोगियारा रेलवे स्टेशन के उत्तर ही मुजफ्फरपुर जिले की सीमा से निकलकर दरभंगा जिले की सीमा में प्रवेश करता है। दरभंगा जिले की भूमि में प्रवेश करने के पश्चात् पूरव की ओर बहता है तथा 'रानीपुर' नामक गाँव के पश्चिमोत्तर भाग में ही अधवारा-समूहवाली नदियों में मिल जाता है।

लखनदेई का यह प्रवाह जब सीतामढ़ी थाने की सीमा में बाजपट्टी से पश्चिम रेलवे पथ को पार करता है, तब प्रायः रेलवे लाइन के किनारे-किनारे पूरब की ओर बढ़ता पुपरी थाने में प्रवेश करता है। उसके बाद पुपरी के पश्चिम भाग में ही पुनः रेलवे लाइन को पार कर उत्तर आ जाता है। इस प्रवाह-पथ के तट पर हरपुर, बरहरवा, मदारीपुर मधुबनी तथा भासोपुर गाँव मिलते हैं। मदारीपुर से यह धारा दक्षिण दिशा में मुड़ती है और हुमायूँपुर, बिशुनपुर तथा रतवारा नामक गाँवों को आती है। हुमायूँपुर नदी के पूर्वी किनारे तथा बिशुनपुर-रतवारा पश्चिमी किनारे स्थित हैं। बिशुनपुर के अग्निकोण में स्थित 'नानपुर' से पश्चिमोत्तर कोण होकर सीतामढ़ी को जानेवाले मार्ग के पास से ही लखनदेई उत्तर की ओर मुड़ती है और पुपरी स्टेशन के पश्चिम में ही रेलवे लाइन को पार करती है। यहाँ यह रेलवे लाइन के उत्तरी भाग से उसके किनारे-किनारे पूर्व की ओर चलती है और बेलमोहन गाँव पहुँचकर वहाँ से अग्निकोण में बहती 'जयंतपुर' गाँव को पुनीत करती है। जयन्तपुर गाँव पुपरी के पास रेल-लाइन के पूर्वोत्तर-कोण में है और पुपरी दक्षिण में स्थित है। दोनों गाँवों में प्राचीन भग्नावशेष हैं। जयन्तपुर के अग्निकोण में जहाँ लखनदेई मुजफ्फरपुर जिले की सीमा से बाहर निकलती है, वहाँ इसके दाहिने किनारे 'हरदिया' तथा बाएँ किनारे केशोपुर एवं गंगवारा गाँव स्थित हैं। गंगवारा लखनदेई के तट पर मुजफ्फरपुर जिले का अंतिम गाँव है, जो राजा नान्यदेव के पुत्र गंगदेव के नाम पर बसा है।

पुपरी के दक्षिण थोड़ा नैऋत्य कोण में झुका हुआ 'नानपुर' प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्राम है। नानपुर के उत्तर-पूर्व भाग में रेलवे-लाइन से सटे 'झँझवत' है, जो प्राचीन अवशेष के कारण पुराना गाँव ज्ञात होता है। 'नानपुर' का मौलिक नाम 'नान्यपुर' है, जिसे मिथिला की राज्य-प्राप्ति के बाद कर्णाटवंशीय राजा 'नान्यदेव' ने बसाया था। नान्यदेव की राजधानी 'सिमराँव' में थी, जो चम्पारन जिले के पूर्वोत्तर भाग वाले नेपाल राज्य की सीमा में है।

सिमराँव की चर्चा पहले की गई है। मिथिला पर विजय प्राप्त कर पहले-पहल नान्यदेव ने इसी 'नानपुर' में अपना निवास कायम किया और गढ़ की नींव में सोने का सर्प और उसके फण पर निम्नलिखित श्लोक खुदवा कर गड़वाया :

रामो वेत्ति नलो वेत्ति वेत्ति राजा पुरूरवाः ।
अलर्कस्य धनं प्राप्य नान्यो राजा भविष्यति ।।

इस श्लोक से इतनी बात तो प्रमाणित होती है कि यह स्थान पुराना था और यहाँ अलर्क नामक कोई राजा पहले भी था, जिसका गड़ा धन नान्यदेव को मिला था। जहाँ धन प्राप्त हुआ था, उस स्थान पर सर्प की पूजा वहाँ आज भी होती है। वाद में जब राजधानी 'सिमराँव' गई, तब भी नानपुर में उनके पुत्र गंगदेव रहते थे, जिन्होंने पड़ोस में गंगवारा नामक गाँव बसाया था। किंतु 'नानपुर' के संवंध में मुजफ्फरपुर जिला गजेटियर एक दूसरी वात का उल्लेख करता है। उसके अनुसार आज से लगभग २५० वर्ष पहले पंजाब के निवासी 'नानापाय' नामक व्यक्ति ने तत्कालीन वादशाह से इस इलाके की जमींदारी प्राप्त कर ली और 'नानपुर' में राजधानी स्थिर की थी। किंतु थोड़े ही दिनों बाद मुहम्मद अली खाँ और शेर-अली खाँ नामक दो पठानों ने 'नानापाय' की जमींदारी छीन ली और अपने-अपने नाम पर मुहम्मदपुर तथा शेरपुर नामक वहाँ दो गाँव बसाये। इन दोनों पठानों से कर वसूलने के लिए वादशाह नें जव माधोसिंह नामक व्यक्ति को भेजा, तब इन्होंने माधोसिंह को भी घेर कर मार डाला। इसके बाद जब अँगरेजों का राज्य इस इलाके में हुआ, तब उन्होंने माधोसिंह के वंशधर गुलाम सिंह को 'नानपुर' की जमींदारी सौंप दी। इस घटना से तो ऐसा लगता है कि 'नानपाय' के नाम पर 'नानपुर' बसा था। किंतु, आस-पास के गाँवों—जैसे मानेचोक (मान्यदेव), गंगवारा (गंगदेव), नानपुर (नान्यदेव), जयन्तपुर, पुपरी (पुनाति पुरी) आदि—से पता चलता है कि यह सारा क्षेत्र कर्णाटवंशीयों का क्षेत्र रहा है। पुपरी में कर्णाटवंशीय राजाओं ने एक शिव-मंदिर भी बनवाया था, जिससे यह 'पवित्र पुरी' कहलाई।

पुपरी थाने के 'गंगवारा' ग्राम के वाद लखनदेई की यह धारा जब दरभंगा जिले में प्रवेश करती है, तब इसके दाहिने किनारे (दक्षिण में) मकेर, अगरोपट्टी तथा शिवनगर नामक गाँव दीख पड़ते हैं। इस भाग में वाएँ तट की ओर 'बिशुनपुर' नामक गाँव भी है। उक्त शिवपुर के पूरब में लखनदेई की यह धारा 'अधवारा'-समूहवाली नदियों की उस एकीभूत धारा में समाहित हो जाती है, जो अधवारा, मुरहा, मरने, हरदी, वरवे (बघोर), थोमने, जमुने, धाउस आदि अनाम-सुनाम अनेक नदियों के मिलन से बनती है। इनमें थोमने दरभंगा जिले की सीमा में और जमुने, दरभंगा-मुजफ्फरपुर जिले की सीमा पर बहने वाली नदियाँ हैं। अन्य कथित-अकथित नदियाँ मुजफ्फरपुर जिले के पूर्वोत्तर कोण में बरसाती 'चारे' (जोंकटी) की तरह रेंगती हुई दिखाई पड़ती हैं।

करेह की कथा

करेह दरभंगा जिले की प्रसिद्ध नदी है। करेह का अपना कोई मूल स्थान नहीं है। यह पेड़ पर छाई आकाशवेल की तरह दूसरी नदियों के अस्तित्व पर अपना साम्राज्य कायम किये हुई है। यह दरभंगा-नगर के दक्षिण में स्थित 'हायाघाट' से अपने को प्रकट करती है और दरभंगा जिले के पूरब-दक्षिण कोण में बहती मुंगेर जिले के गोगरो थाने की पश्चिमी सीमा तक पहुँचती है। वर्षाकाल में इसका स्वरूप भयावना हो जाता है और अपने क्षेत्र में भारी आतंक मचा देती है। वस्तुतः यह एक दस्यु नदी है; जो कई नदियों का जल-वैभव अपहरण करके अपनी समृद्धि का रोब जमाये रहती है। यह दरभंगा जिले की सबसे नवीन नदी है। इसका जन्म आज से लगभग केवल ८० वर्ष पूर्व हुआ है और पहले इसका नाम **'करई'** था। 'करई' से अब यह 'करेह' बन गई है।

'करेह' के विशाल वैभव की कहानी यह है कि अधवारा-समूह की सारी नदियाँ जब लखनदेई के पूर्वोक्त प्रवाह के साथ ऐकीभूत हो जाती हैं और जब आगे बढ़कर कमला की एक धारा से सम्मिलित होकर बहने लगती हैं तथा जब 'खिरोई' का पानी पीती हुई हायाघाट में आकर बागमती की एक उपधारा से मिलती हैं, तब इसी प्रवाह का नाम 'करेह' हो जाता है। इसलिए 'करेह' की स्थिति जानने के लिए अधवारा-समूह की नदियों के साथ ही उसमें सम्मिलित होनेवाली अन्यान्य नदियों की भी स्थिति जान लेना आवश्यक है।

जिन मूल नदियों के प्रवाह-जल से 'करेह' बनती है, उनमें अधवारा, हरदी, लखनदेई, बघोर, मरहा, बाउस, जमुने, थोमने, कमला, खिरोई आदि मुख्य हैं। ये सभी एक धार होकर दरभंगा नगर के पास से दक्षिण की ओर बहती हैं और छोटी बागमती के नाम से हायाघाट आती हैं। वस्तुतः, इसका नाम बागमती नहीं, **व्याघ्रमुखी** अथवा **व्याघ्रवती** है। ये सारी नदियाँ ही 'अधवारा-समूह' की नदियाँ कहलाती हैं; क्योंकि दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिले की उत्तरी सीमा पर ये परस्पर एक गुच्छे में उलझी हुई हैं।

अधवारा के दो जलस्रोत नेपाल की तराई से निकलकर मुजफ्फरपुर जिले की उत्तरी सीमा के 'सोनबरसा' थाने में प्रवेश करते हैं। एक स्रोत सोनबरसा नगर में ही प्रवेश करता है और दूसरा स्रोत इससे तीन मील पूर्व में। दोनों के मध्य में 'सिहोरवा' तथा 'इन्दरवा' नामक दो गाँव भारत-भूमि के अन्तिम ग्राम हैं। पूर्ववाला स्रोत नैऋत्य कोण में बहता हुआ जब दो मील आता है, तब दो भागों में बँट जाता है। पश्चिमवाला स्रोत पुरन्दहा-रजवारा ग्राम के पश्चिम में सोनबरसावाले स्रोत से मिल कर दक्षिण बढ़ता है और पूर्ववाला स्रोत 'पुरन्दहा-रजवारा' को घेरता है और उससे लगभग तीन मील दक्षिण में

सम्मिलित होकर 'अधवारा' नाम से बहता हुआ तेतरिया आता है। रजवारा में एक प्राचीन किले का बहुत बड़ा ध्वंसावशेष है, जिससे लगता है कि यहाँ कभी निश्चय ही कोई राजघराना था। तेतरिया से अग्निकोण में चलकर 'अधवारा' नदी जब सिंघवाहिनी' ग्राम को आती है, तब यहीं 'हरदी' नामक नदी इससे संगम करती है।

हरदी का संस्कृत नाम 'हरिद्रा' है, जो नेपाल की तराई से बहकर भारत में आती है। 'हरदी' का प्रवेश-स्थल अधवारावाले पूर्वी स्रोत के प्रवेशस्थल से दो मील पूर्व में है और 'वेला' गाँव से तीन मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में पड़ता है। हरदी नदी 'रजवारा-भानपुर' (पुरन्दहा-रजवारा से भिन्न) तथा 'नरंगा' नामक गाँवों के पास से होती हुई दक्षिण आती है और 'सिंघवाहिनी' के पास अधवारा के वाएँ भाग में प्रवेश करती है। इसके बाद अधवारा दक्षिण की ओर चलती तथा सुपैना, पकरिया एवं 'महुअवा' नामक गाँवों से गुजरती है। महुअवा से यह थोड़ा-सा अग्निकोण में झुककर दक्षिण चलती है और सुतिहारा ग्राम के पश्चिम में आती है। यहाँ तक अधवारा नदी 'सोनबरसा' तथा 'वेला' थाने की सीमा का काम करती हुई बहती है। इसके पश्चिम में सोनवरसा थाना और पूर्व में वेला थाना है। आजकल यह सुतिहारा के ऊपर से ही थोड़ा नैऋत्य कोण में झुककर 'मरने' नदी को समेट लेती है; और सीतामढ़ी-सुरसंड-राजमार्ग को 'कुम्मा' के पश्चिम में ही पार करती है। किंतु, थोड़े दिन पहले यह सुतिहारा के दक्षिण 'कुम्मा' में ही इस मार्ग को पार करके दक्षिण आती थी। 'मरने' भी कभी अधवारा की ही धार थी। अब वह धार मर गई है। यह धार उस मार्ग के सहारे सोनवरसा से सीधे दक्षिण 'भुतही' आती थी, जो मार्ग सीतामढ़ी से उत्तर की ओर सोनबरसा को जाता है। यह धार अब समाप्त हो गई है और 'मरने' नाम धारण करके भुतही ग्राम के पश्चिम से नई नदी के रूप में बहती है।

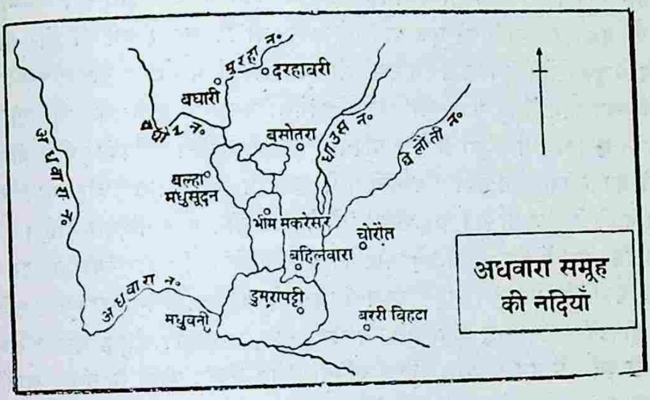
मरने : 'भुतही' निश्चय ही कोई प्राचीन और ऐतिहासिक स्थान है; क्योंकि वहाँ भी प्राचीन किले का टीला है। भुतही के पास 'अधवारा' ने अपनी धार से एक चौर का निर्माण किया था, जिसके बीच से सीतामढ़ी-सोनवरसा मार्ग गुजरता है। भुतही के पश्चिम में 'मटियार कलाँ' तथा नैऋत्य कोण में 'फूलपरासी' गाँव हैं। इन्हीं तीनों गाँवों के मध्य वाले चौर से 'मरने' नदी का स्रोत अग्निकोण में चलता है और दिग्घी गाँव के पश्चिम से तथा 'रनौली' गाँव के पूरब से 'बखार' नामक गाँव को आता है। बखार गाँव सीतामढ़ी से नौ मील तथा कमलदह से तीन मील दूर पूर्वोत्तर कोण में है। यह 'वथनाहा' से सीधे उत्तर लगभग चार मील पर स्थित है। इसी बखार से अग्निकोण में जब 'मरने' बढ़ती है, तब सीतामढ़ी-सुरसंड-मार्ग के उत्तर भाग में ही आजकल 'अधवारा' से मिल जाती है; किंतु पहले यह अकेले ही इस मार्ग को 'करहनी' में पार कर 'वारी फुलवरिया' गाँव के पास अधवारा से मिलती थी। अर्थात् यह संगम 'कुम्मा' गाँव से पाँच मील दक्षिण में था; पर अब तो 'मरने' कुम्मा से डेढ़ मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में ही अधवारा नदी से संगम करती है और पहले की मरने-धार ही अब अधवारा की धार बन जाती है तथा 'कुम्मा' से एक मील पश्चिम में ही 'सुरसंड-सीतामढ़ी-मार्ग' को पार कर 'बारी-फुलवरिया' आती है। यहाँ

से अधवारा अग्निकोण में मुड़कर 'रायपुर-जगरनाथ' तथा 'पतदेवरा' गाँवों के मध्य भाग से बहती है। बाजपट्टी-रेलवे स्टेशन से उत्तर की ओर बढ़ता जो मार्ग 'कुम्मा' पहुँचता है, वह रायपुर-जगरनाथ में ही अधवारा को पार करता है। इसके पश्चात् अग्निकोण में ही बहती हुई यह 'सवाईपट्टी' गाँव को स्पर्श करती है। यह गाँव इसके दक्षिण-तट पर स्थित है; किन्तु 'सवाईपट्टी' को स्पर्श करने के पहले ही यह पूर्व दिशा में मुँह कर लेती है। फिर, बाजपट्टी से पूर्वोत्तरकोण में चलता जो मार्ग 'सुरसंड' के पश्चिम 'पठानपुर' पहुँचता है, वह तो 'सवाईपट्टी' में ही अधवारा को पार करता है। सवाईपट्टी गाँव पुपरी थाने में है और बाजपट्टी स्टेशन से सिर्फ डेढ़ मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित है। यहाँ से अधवारा कुछ दूर के लिए पूर्वोत्तर कोण में चलती है और अग्निकोण में गिरती हुई 'बाजोपट्टी नरहा' नामक गाँव को आ जाती है। बाजोपट्टी-नरहा के पहले ही 'अधवारा' तथा बरवे (बघोर) दोनों थोड़ी दूर के लिए बिलकुल सटकर बहती हैं। बाजोपट्टी के आगे अधवारा बिलकुल अग्निकोण में दौड़ती है तथा 'पिपराही' एवं 'पचरा-निमिही' गाँवों के मध्य से बहती 'मधुबनी' गाँव को चली आती है। बाजोपट्टी-नरहा से लगभग सात मील दूर अग्निकोण में मधुबनी है तथा पुपरी-रेलवे स्टेशन से सिर्फ दो मील पूर्वोत्तर कोण में। पुपरी तथा मधुबनी के बीच में ही 'जयन्तपुर' गाँव है, जहाँ लखनदेई की पूर्वी धार बहती है। मधुबनी के पास ही अधवारा नदी में बरवे (बघोर), मुरहा, धाउस, बेलौती आदि नदियाँ संगम करती हैं। मधुबनी के पूर्वोत्तर कोण में डुमरापट्टी नामक गाँव है, जिसे ये सारी नदियाँ मिलकर चारों तरफ से घेरा डालती हैं और उनकी कुण्डली में 'डुमरापट्टी' गाँव निश्चिन्त भाव से न जाने कब से बैठा हुआ है।

बघोर (बरवे) ही वस्तुतः 'व्याघ्रमुखी' नामक नदी है, इसीलिए नाम पार्थक्य की दृष्टि से दरभंगा नगरवाली नदी 'व्याघ्रमती' कहलाती है और आज जिसे कुछ लोग भ्रमवश 'बागमती' भी कहते हैं। यह बेला थाने के 'जगधर' तथा भवानीपुर के आस-पास से चलती है। ये दोनों गाँव परिहार से पश्चिमोत्तर कोण में डेढ़-दो मील पर हैं। किसी समय बघोर का संबंध 'हरदी' नदी से अवश्य होगा। वहाँ से दक्षिण चलती 'पिपरा कोइरिया' तथा 'पिपराखुर्द' गाँवों से होते सुरसंड से ढाई मील पश्चिम 'कोदारी' ग्राम के पास बेला थाने से निकलकर सुरसंड थाने में आती है और यहीं सीतामढ़ी-सुरसंड-मार्ग को लाँघती है तथा पठानपुर और कबीरा ग्राम होते 'पररी' ग्राम को पहुँचती है। फिर, 'पररी' से डेढ़ मील दक्षिण आकर पुपरी थाने में घुसती है और अधवारा नदी से सटती हुई पूरब की ओर मुड़ जाती है। पूर्वमुखी होने के क्रम में बहुत थोड़ी दूर तक 'बघोर' नदी सुरसंड और पुपरी थाने की सीमा-रेखा भी बनती है और जब फिर दक्षिण की ओर मुड़ना चाहती है, तब ठीक इन दोनों थानों की सीमा-संधि पर 'मुरहा' नदी से संगम कर जाती है।

मुरहा का उद्गम-स्थान सुरसंड से पूरब नेपाल की तराई भाग में है। इसका बिहार में प्रवेश-स्थल सुरसंड थाने के सरखंडी भीटा स्थान से आध मील पश्चिमोत्तर कोण में

यथा सुरसंड से लगभग चार मील दूर, थोड़ा अग्निकोण में झुक कर, पूर्व दिशा में अवस्थित है। सरखंडी-भीटा बिलकुल सीमा पर वर्त्तमान है और अपने प्राचीन भग्नावशेषों के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान मालूम पड़ता है। यह मुजफ्फरपुर जिले के वृहत्तर गाँवों में एक है, जहाँ की आबादी ७५०० के आस-पास है। यह अनाज, कपड़ा, नमक आदि का प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र है।



उक्त स्थान में प्रवेश करके मुरहा पश्चिम की ओर मुड़ती है और वहाँ से फिर नैऋत्य कोण में दक्षिण की ओर चलती है। इसी दक्षिणी बहाव के क्रम में इसके बाएँ भाग में 'दरहा-बरी' और दाएँ भाग में 'बघारी' गाँव मिलते हैं। बघारी के दक्षिण एक बहुत बड़े चौर से 'मुरहा' गुजरती है और लगभग ढाई मील दक्षिण आकर 'बघोर' (बरवे) से संगम करती है। यहाँ से सम्मिलित धार पुपरी थाने में प्रवेश करती है और आध मील दक्षिण आकर फिर दो भागों में बँट जाती है। पूर्वी धार 'बसोतरा' गाँव के पश्चिम में पहुँचकर चारों तरफ से घेरकर एक टापू बनाती है और दक्षिण में उसकी धार फुटकर फिर दो भागों में बँटती है। पश्चिमवाली धार पूर्वकथित पछेयारी धार से, जो 'बल्हामधुसूदन' के पास से बहकर आती है, मिल जाती है। यहाँ भी दोनों धार उत्तर से दक्षिण की ओर बहती एक लंबोतरा टापू का निर्माण करती है, जिस पर 'भीममकड़ेसर' गाँव बसा है। 'भीम-मकड़ेसर' के दक्षिण आकर फिर दोनों धाराएँ मिलती हैं और फिर एक धार पश्चिम-दक्षिण घूमकर 'नम्हुआ' गाँव होते 'मधुवनी' (दरभंगा जिले के मधुवनी नगर से भिन्न) के पास अध-वारा से मिल जाती है। किंतु, दूसरी धार पूर्व की ओर मुड़कर 'धाउस' और 'बेलौती' नदियों के प्रवाह के साथ 'बहिलवारा' गाँव के पूर्व में मिलती है और इसके बाद वह दक्षिण की ओर चलकर 'मधुवनी' से पूर्व की ओर बहनेवाली अधवारा नदी से 'बररी बिहटा' के पश्चिम में संगम करती है। इन नदियों के उक्त प्रवाह-जालों के विवरणों को समझने लिए ऊपर की धारा-रेखाओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

धाउस : यह नदी भी सुरसंड थाने में ही 'सरखण्डी भीटा' से डेढ़ मील दूर अग्नि-कोण में तथा 'विन्दीनवाबाद' गाँव से आध मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में भारत की जमीन पर पद-विन्यास करती है। धाउस का प्रवेशस्थल दरभंगा-मुजफ्फरपुर तथा नेपाल की सीमा-संधि से सिर्फ डेढ़ मील पश्चिमोत्तर कोण में है। धाउस सुरसंड थाने के अग्निकोण वाले भाग में प्रवेश करके नैऋत्य कोण में ढाई मील चलती है और उसके बाद दो मील तक सुरसंड और पुपरी थाने की सीमा बनकर नैऋत्य कोण में ही बढ़ती है। किंतु, परिगवाँ के उत्तर में जब मुरहा नदी की एक धार इससे मिलती है, तब दक्षिण की ओर सीधी होकर पुपरी थाने में घुस आती है। यहाँ 'धाउस' भी दो धाराओं में वँटकर दक्षिण चलती है। इन धाराओं के मध्य भाग में ही 'परिगवाँ' का डाकवँगला बना है। पूर्वी धार 'वेलौती' की धारा से मिलकर नैऋत्यकोण में बहती है और पश्चिमी धार 'बसोत्तरा' गाँव के पूर्व से ही दक्षिण की ओर बहती अपनी पूर्वी धार तथा 'वेलौतीवाली' धार से संयुक्त होकर बहिलवारा गाँव से दो मील उत्तर में ही मिल जाती है। यह संगम 'चोरौत' से तीन मील पश्चिम में है। धाउस और वेलौती ने इस भाग में एक बहुत बड़े चौर का निर्माण किया है और 'चोरौत' इस बड़े चौर (झोल) के मध्य में बसा है। यह चौर वर्षा ऋतु के बाद पानी हट जाने पर कृषि-कार्य के लिए बहुत ही उर्वर-भूमि सिद्ध होता है। वेलौती और धाउस की संयुक्त धार दक्षिण चलकर बहिलवारा के पूर्व में बघोर और मुरहा नदियों की संयुक्त धारा से संगम करती है और तब दक्षिण चलकर तथा फिर थोड़ा-सा नैऋत्य कोण में झुककर 'अधवारा' से मिल जाती है। यह विवरण भी पूर्वाङ्कित धारा-रेखाओं में देखा जा सकता है।

बेलौती : इसका संस्कृत नाम 'बिल्ववती' है। यह भी नेपाल की तराई से चलती है और ठीक दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिले की सीमा पर प्रवेशकर दोनों जिलों की सीमा बनती हुई लगभग पाँच मील बहती है। इसके प्रवेशस्थल के बाएँ किनारे दरभंगा जिले का 'मधवापुर' गाँव है और दाहिनी ओर मुजफ्फरपुर जिले का 'कोरियाही' गाँव। मुजफ्फरपुर जिले के 'खोरिया' गाँव के पास वेलौती भी दो भागों में विभक्त होती है, जिनमें से पश्चिमी धार नैऋत्य कोण में वहकर 'धाउस' के द्विधा विभक्त पूर्वी प्रवाह से मिलती है तथा पूर्वी धार दक्षिण की ओर वहती और थोड़ी दूर दोनों जिलों की सीमा बनती एकाएक नैऋत्य-कोण में मुड़कर 'चंदरसैन' गाँव का स्पर्श करती अपनी पश्चिमी तथा मुरहावाली धार से मिल जाती है। 'चोरौत' से लगभग तीन मील उत्तर यह मुजफ्फरपुर जिले में नैऋत्यकोण की ओर मुड़ती है। इसके पश्चात् 'धाउस' की धार से मिलकर दक्षिण बहती हुई 'बररी बिहटा' से दो मील पश्चिम में 'अधवारा' से संयुक्त हो जाती है।

इस प्रकार, हरदी, मरने, बघोर (बरवे), मुरहा, धाउस, वेलौती आदि कई छोटी-बड़ी सरिताओं को मधुबनी के पास तथा 'बररी बिहटा' के पश्चिम में ही अधवारा अपने में समेटती है। मधुबनी के उत्तर में यह बघोर तथा मुरहा की धाराओं को समेटकर मधुबनी के दक्षिण में आकर पूर्व की ओर मुड़ती है और धाउस तथा बेलौती की संयुक्त धाराओं को

आत्मसात् करने के पहले ही यह अपनी एक और धारा दक्षिण की ओर बहाती है तथा 'कुसैल' नामक गाँव आकर अग्निकोण में मुड़कर 'बजीदपुर बौरा' गाँव को छूती दरभंगा जिले में 'वर्री' गाँव के पास जमुने एवं थोमने की धारा में प्रवेश कर जाती है। किंतु अधवारा की जो धारा पूर्व में बढ़कर धाउस और बेलौती के संयुक्त प्रवाहों से संगम करती है, वह 'बररी बिहटा' गाँव होते तुरत दरभंगा जिले में प्रवेश करती है और तुरत जमुने तथा थोमने की धार से मिल जाती है। इस त्रिमुहानी पर जब ये तीनों धाराएँ मिलकर दक्षिण की ओर बढ़ती हैं, तब 'अधवारा' की दूसरी धारा, जो वर्री, माधोपुर तथा धनुखी होकर पूर्व में आती है, 'बसैठा' गाँव के पूर्व में इससे मिलती है। यह संगम त्रिमुहानी-संगम से आध मील दक्षिण में है। फिर इस संगम से आध ही मील दक्षिण 'लखनदेई' की पूर्ववर्णित पूर्वी धार का भी इन सभी धाराओं से संगम होता है। ये सभी संगम-स्थान दरभंगा जिले के वेनीपट्टी थाने के पश्चिमी सीमा के किनारे तथा जिले के सीमास्थल के पास है और वेनीपट्टी से पाँच मील दूर पश्चिम में हैं।

जमुने : दरभंगा जिले की पश्चिमोत्तर सीमा की 'जमुने' नदी का उद्गम-स्थान नेपाल के जनकपुर जिले के उत्तरी भाग में है, जो 'जनकपुर' तीर्थ-स्थान के पास से बहती हुई दरभंगा जिले की उत्तरी सीमा पर हरलाखी थाने में प्रवेश करती है। 'जमुने' सर्वप्रथम दरभंगा जिले की सीमा को, बिसौल गाँव से तीन मील उत्तर तथा हरलाखी से भी तीन मील पूर्वोत्तर कोण में छूती है। बिसौल के संबंध में प्रसिद्ध है कि जब राम-लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र जनकपुर आए थे, तब वे बिसौल में ही ठहरे थे। यहीं से दोनों भाई 'फुलहर' में फूल लेने गए थे, जहाँ जानकीजी भी गिरजापूजन के लिए सखियों के साथ आई थीं। जिले की सीमा के स्पर्श के पश्चात् 'जमुने' नैऋत्य कोण में भारत और नेपाल की सीमा बनती हुई दौड़ती है। इस नैऋत्य कोण के बहाव में इसके बाएँ तट पर दरभंगा जिले के हरलाखी, नरहरिया, उमगाँव, सोथगाँव, पिपरुआँ, गोपालपुर गंगौर, शहर आदि गाँव स्थित हैं। इनमें 'उमगाँव' का ऐतिहासिक महत्त्व है। यह बात सर्वविदित है कि मिथिला के शासक हरिसिंहदेव पर जब मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण किया, तब वे भागकर पर्वत प्रदेश में चले गए।[1] यह बात यहाँ प्रसिद्ध है कि हरिसिंह देव ने भागकर 'उमगाँव' में ही शरण ली थी और उसी अवस्था में यहीं उनकी मृत्यु भी हुई थी। इसीलिए ग्रामदेव के रूप में 'हरिसिंह देव' की पूजा आज भी यहाँ होती है। दूसरी कथा यह है कि मुहम्मद तुगलक के भय से हरिसिंह देव नेपाल के पहाड़ी भाग में भाग गये और वहाँ उन्होंने एक किरात कन्या से विवाह भी कर लिया था। उनकी उसी पत्नी से मोती सिंह नामक पुत्र हुआ, जिसके नाम पर 'मोतीहारी' तथा 'मोतीपुर' गाँव बसे। इसी प्रकार, 'गोपालपुर' के सटे पूर्वोत्तर कोण में 'फुलहर' नामक गाँव हैं, जिसे कुछ लोग 'पुष्पहर' भी कहते हैं। इसका पौराणिक महत्त्व यह है कि यहाँ राजा जनक की फुलवारी थी, जहाँ

१. त्यक्त्वा स्वपट्टनपुरीं हरिसिंह देवो दुर्दैवदेशितपथे गिरिमाविवेश।
—मिथिला-तत्त्व-विमर्श, पृ० १४४।

गिरिजा-पूजन के निमित्त सखियों के साथ जानकी आई थीं। यहीं राम-लक्ष्मण ने प्रथम-प्रथम जानकी को देखा था। संत तुलसीदास ने इसी फुलहर के बाग और तड़ाग का मनोरम वर्णन 'रामचरितमानस' में किया है। यहाँ पौराणिक गिरिजा-मंदिर भी है। जनकपुर आनेवाले तीर्थयात्री गिरजा-स्थान देखने फुलहर में ही आते हैं। फुलहर में गिरिजा-स्थान के साथ भैरव का भी मंदिर है। यहाँ का तालाब भी प्रसिद्ध है। फाल्गुन मास में प्रतिदिन गिरिजा-दर्शन के निमित्त एक हजार तीर्थयात्री आते हैं। फुलहर से तीन मील पूर्वोत्तर कोण में 'बिसौल' है, जिसे विश्वामित्र का स्थान माना जाता है।

जमुने नदी जब 'शहर' नामक गाँव के पास पहुँचती है, तब यह सीमा-रेखा का काम छोड़कर दरभंगा जिले के भीतर प्रवेश करती है। दरभंगा जिले की सीमा को जहाँ यह छूती है, वहाँ से 'शहर' तक (लगभग १५ मील) नेपाल और भारत की सीमा बनती है। शहर गाँव 'मधवापुर' से दो मील दक्षिण 'जमुने के बाएँ तट पर है और प्राचीन टीले से युक्त है। यहीं से जमुने दक्षिण की ओर चलकर दरभंगा जिले के भीतर प्रवेश करती है। यहाँ इस के दहिने भाग में 'दुर्गापट्टी' नामक गाँव है, जो बिल्ववती और जमुने के प्रवाहों के मध्य में बसा है। शहर से दक्षिण चलने पर जमुने नदी 'बसवरिया' और 'अखा' नामक गाँवों को आती है और पुनः नैऋत्य कोण में मुड़कर 'सोबरउली' नामक गाँव पहुँचती है। 'सोबरउली' गाँव मुजफ्फरपुर जिले के 'चोरौत' से डेढ़ मील अग्निकोण में है। इस जगह 'जमुने' मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले की सोमा बनती दक्षिण की ओर बहती है। इस प्रयाण-क्रम में इसके किनारे अंदौली, पतार तथा विशनपुर नामक गाँव मिलते हैं। विशुनपुर से जैसे ही जमुने नदी अग्निकोण में झुकती है, वैसे ही इसके दाहिने भाग में 'अधवारा' नदी की उत्तरी धार संगम करती है और फिर इस संयुक्त धार के एक फर्लाङ्ग बढ़ने पर इसके बाएँ भाग में 'थोमने' नामक नदी भी संगम करती है। इस त्रिमुहानी की स्वल्पाधिक चर्चा पहले भी की गई है।

थोमने : यह दरभंगा जिले की उत्तरी सीमा पर स्थित हरलाखी थाने के 'बिदूहर' ग्राम के दक्षिण से तथा 'सिसौनी' ग्राम के उत्तर से चलती है। अपने उद्गम से नैऋत्य-कोण में बढ़ती है और बेनीपट्टी-हरलाखी-मार्ग को तुरत पार कर 'मँगरहट' गाँव के पूर्व भाग में आती है। यहाँ से 'थोमने' दक्षिण दिशा में थोड़ा झुककर प्रवाहित होने लगती है और सेंभली, सलेमपुर, सल्हा और बराँटपुर गाँवों से होते धनउजा नामक गाँव को आती है। धनउजा इसके दाहिने किनारे और बराँटपुर बाएँ किनारे बसे हैं। धनउजा के बाद थोमने नदी पश्चिम दिशा में मुड़ती है, जहाँ इसके बायें तट की ओर 'उचैठ' नामक पुराना गाँव है। उचैठ में किसी प्राचीन स्थान का डीह है, जिसे कालिदास का डीह लोग कहते हैं। यहाँ एक भगवती का मंदिर भी है, जो आधुनिक काल में बना है; पर दुर्गा देवी की मूर्त्ति बहुत प्राचीन है। यह काले पत्थर की चतुर्भुजी मूर्त्ति है, जो सिंह पर सवार है। यहाँ के लोगों का कहना है कि कालिदास इसी देवी की आराधना से इतने बड़े कवि बन गए थे। मंदिर के पूर्व-दक्षिण कोण में एक प्राचीन तालाब भी है, जिसके भिण्ड के पास से बहुत-सी देव-देवियों

की सुंदर मूर्त्तियाँ मिली थीं। अब ये मूर्त्तियाँ पटना-संग्रहालय में सुरक्षित हैं। डीह को यहाँ के लोग 'कालिदास-चौपदी' कहते है, जहाँ देवी की आराधना करके कालिदास ने सिद्धि प्राप्त की थी। पता नहीं, किस कालिदास से 'उचैठ का संबंध है; पर इतना तो स्पष्ट है कि यह कोई प्राचीन स्थान अवश्य है; क्योंकि 'उचैठ' का शुद्ध रूप 'उच्चैःस्थ' या 'उच्च पीठ' भी होगा। यहाँ 'कामदानाथ' नामक शिव का मंदिर भी है और प्रतिवर्ष यहाँ कार्त्तिक पूर्णिमा को मेला लगता है। यह 'थोमने' के तट पर, वाएँ भाग में, है और वर्षाऋतु में बाढ़ के पानी से आप्लावित हो उठता है, पर अन्य ऋतुओं में कहीं पानी नहीं दिखाई पड़ता है। यह थाना-बेनीपट्टी से सिर्फ दो मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में स्थित है। यहाँ 'थोमने' को लोग '**कमला**' भी कहते हैं।

उपर्युक्त उचैठ गाँव से सिर्फ तीन मील पश्चिम जाकर और फिर थोड़ा नैऋत्य कोण में मुड़कर 'थोमने' पूर्वकथित त्रिमुहानी पर अधवारा तथा जमुने की संयुक्त धारा में अपने को समाहित कर देती है।

सम्मिलित धाराओं का नाम बागमती :

उक्त त्रिमुहानी के बाद अधवारा-समूहवाली यह नदी दक्षिण चलती है और थोड़ी दूर दक्षिण जाकर अधवारा की दूसरी धार से भी सम्मिलित होती है और उसके दो ही मील दक्षिण में लखनदेई वाली पूर्वी धार भी इससे मिल जाती है। अब इस प्रवाह में लखनदेई, मरने, अधवारा, हरदी, बघोर, मुरहा, धाउस, बेलौंती, जमुने तथा थोमने का भारी जल-भांडार नेपाल की तराई से सरक कर बहता हुआ सम्मिलित होता है। यहाँ से यह सम्मिलित नदी 'छोटी बागमती' कहलाने लगती है, जिसका वास्तविक नाम **व्याघ्रमुखी या व्याघ्रवती है।** यह छोटी बागमती बेनीपट्टी थाने के पश्चिमी हिस्से से दक्षिण की ओर बहती क्रमशः रानीपुर, पाली, मघवन, बरदहा, जगवन, माधोपुर, बैंगरा, बल्हा और रघौली गाँवों को पहुँचती है। ये सभी गाँव इस प्रवाह-पथ के बाएँ भाग में अवस्थित हैं। इन गाँवों में से 'पाली' ग्राम के निवासी **ज्योतिरीश्वर ठाकुर** थे, जिनके लिखे 'वर्णरत्नाकर', 'धूर्त्तसमागम' और 'पंचसायक' ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। ज्योतिरीश्वर ठाकुर के ही पूर्वज **चण्डेश्वर ठाकुर** थे, जो **हरिसिंह** देव के 'सांधिविग्रहिक' (मंत्री) थे। इनमें से दूसरा पौराणिक ग्राम 'जगबन' है, जिसका शुद्ध नाम यज्ञवन या 'याज्ञवल्क्य-वन' कहा जाता है। लोगों का कहना है कि राजर्षि जनक का वह प्रसिद्ध यज्ञ इसी गाँव में हुआ था, जिसमें कुरु-पांचाल के बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों ने भाग लिया था और यज्ञस्थल पर एक सहस्र स्वर्णश्रृंगी गाएँ बाँधकर रखी गई थीं। जब जनक ने भरी सभा को संबोधित करके कहा कि जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी हो, वह इन बँधी स्वर्ण-श्रृंगी गायों को खोल कर ले जाय। जब किसी ब्रह्मज्ञानी ने गायों को खोलने का साहस नहीं किया, तब याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य 'सामश्रवा' को गायों को खोलकर ले जाने का आदेश दे दिया। इसी यज्ञस्थली में याज्ञवल्क्य ने अपनेको सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी प्रमाणित किया था। इस घटना की चर्चा 'बृहदारण्यक' इन पंक्तियों में करता है—"**जनकोऽह वैदेहो बहुदक्षिणेनेजे,**

तत्रह कुरु-पाञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव—कः स्विदेषां ब्रह्मणानामनू चानतम इति सह गवो सहस्रमवरुरोध, दश-दशपावा एकैकस्याः शृंगयोराबद्धा बभूवुः ।। सच पूछिए तो अधवारा-समूहवाली इसी नदी के तट-प्रदेश में प्राचीन मिथिला की गौरवमयी कहानियाँ मुखर हुई हैं ।

पहले कहा गया है कि इस छोटी बागमती के वाम पार्श्व में पूर्वी किनारे बैंगरा गाँव है । ठीक इसके सामने नदी के दाहिने भाग में (पश्चिमी तट की ओर) 'कमतौल' इस जिले का प्रसिद्ध नगर है । यह दरभंगा-सीतामढ़ी रेलवे ब्रांच का मुख्य स्टेशन है । यहाँ रजिस्ट्री ऑफिस और थाना भी है । इसी कमतौल के नैऋत्यकोण में 'अहल्यास्थान' और गौतमाश्रम (ब्रह्मपुर) है, जहाँ से खिरोई (क्षीरोदकी) नदी प्रवाहित होती है । बैंगरा के दक्षिण वल्हा गाँव को छोटी बागमती आती है और तब उसके दक्षिण रघौली पहुँचती है । रघौली में 'कमला' की एक पुरानी शाखा इस व्याघ्रवती से मिलती है । यह संगम बहुत ही पुण्यस्थल माना जाता है और यहाँ माघी पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला लगता है । यद्यपि आज कमला की मुख्य धारा जयनगर से पूरब की ओर से बहती झंझारपुर होकर जाती है, फिर भी 'कमला' की इस धारा में बेशुमार वर्षाकालीन पानी आ जाता है । प्राचीन समय में यही कमला की मुख्य धारा थी और कमला 'रघौली' में इस छोटी बागमती से मिलकर दरभंगा होकर ही बहती थी ।

कमला की पुरानी धारा और उसका संगम-स्थान : रघौली में छोटी बागमती से संगम करने वाली 'कमला' नदी का उद्गम-स्थान तो वही है, जो झंझारपुर होकर बहनेवाली कमला का है । कमला के उद्गम-स्रोत और उसके धारा-पथ का विस्तृत विवरण 'कमला' के मुख्य प्रवाह के प्रसंग में किया जायगा । यहाँ उसकी उस प्राचीन धारा का विवरण दिया जा रहा है, जो रघौली में छोटी बागमती (अधवारा समूहवाली नदियों) से संगम करती है । यह संगम-स्थल कमतौल से ढाई मील अग्निकोण में तथा दरभंगा से १४ मील दूर, थोड़ा पश्चिम कोण में झुकते हुए, उत्तर दिशा में है और लगभग इतनी ही दूर मधुबनी से पश्चिम में है । संगम पर 'रघौली' नामक ग्राम है ।

कमला जब नेपाल तराई से दक्षिण की ओर बहकर दरभंगा जिले की सीमा को छूती है, तब इसकी यह पुरानी धार 'जयनगर' से तीन मील उत्तर और 'भदउर' गाँव से एक मील पूरब दरभंगा जिले में प्रवेश करके नैऋत्य कोण की ओर चलती है । जयनगर रेलवे स्टेशन से आधा मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में आकर जब आगे बढ़ती है, तब यहाँ एक बड़ी झील का निर्माण करती है । नदी के दाहिने किनारे से इसके समानांतर प्रवाह के साथ **'डोरी'** नदी बहती है और बाएँ भाग में झील है । यह झील अन्य ऋतुओं में सूखी रहती है और इसमें सर्वत्र कृषि-कार्य होते हैं; पर वर्षा ऋतु में बाढ़ के पानी से लबालब भर जाती है । झील के मध्य में 'राधाकांत' और 'शिलानाथ' नामक गाँव हैं । शिलानाथ स्थान जयनगर से तीन मील दूर नैऋत्य कोण में उस मार्ग के किनारे है, जो सौराठ मेले से उत्तर की ओर कलुआही

होते 'नराढ़' जाता है और 'नराढ़' से शिलानाथ होते 'जयनगर' पहुँचता है। 'शिलानाथ' गाँव शंकर भगवान के नाम पर बसा है और पहले यहाँ 'शिलानाथ महादेव' का मंदिर 'कमला' के किनारे था, जिसे सन् १ ९३ ई० में नदी की बाढ़ ने धो-पोंछकर साफ कर दिया है। वह स्नान अब कमला के चौर के मध्य में पड़ गया है। मंदिर और शिवलिंग के नष्ट हो जाने पर भी हजारों तीर्थ-यात्री स्थान के महत्त्व के कारण प्रति वर्ष यहाँ आते रहे और कमला में स्नान कर पुण्य लूटते रहे। फाल्गुन और वैसाख की शिवरात्रि के समय यहाँ प्राचीन काल से मेला लगता है और दोनों शिवरात्रियों के अवसर पर १५-१५ दिनों तक मेला रहता है। इस अवसर पर केवल नेपाल की तराई से लगभग १५००० तीर्थयात्री यहाँ आते हैं। कमला के द्वारा प्राचीन मंदिर के नष्ट हो जाने पर इधर पुनः एक नया मंदिर का निर्माण हुआ है, जिसमें शिवलिंग प्रतिष्ठित किया गया है। मिथिला के प्राचीन तीर्थों में 'शिलानाथ' तीर्थ पांक्तेय है।

दरभंगा जिले के प्रवेश-स्थल से तथा शिलानाथ महादेव वाले बड़े चौर से गुजरती कमला जब नैऋत्य कोण से चलकर लगभग आठ मील आती है, तब 'पँचरतन' तथा 'मढ़िया' गाँव के बीच में कमला की दाहिनी कोख में 'डोरी' नामक नदी संगम करती है। 'पंचरतन' इस संगम के दाहिने किनारे और 'मढ़िया' बाएँ किनारे बसा है। इस संगम पर नदी पार करने का एक घाट भी है। यहाँ से नैऋत्य कोण में ही चलकर कमला 'मनमोहन' तथा 'अरघवा' नामक गाँवों के मध्य आती है। यहाँ मनमोहन गाँव इसके दाहिने भाग में और अरघवा बाएँ भाग में है। मधुबनी से जो मार्ग उत्तर की ओर कलुआही जाता है और कलुआही से पश्चिमोत्तर कोण में झुकता हुआ 'मलमल' गाँव होते 'वासोपट्टी' पहुँचता है और वासोपट्टी से हरलाखी चला जाता है, वह मार्ग 'कमला' की इस धार को 'मनमोहन' और 'अरघवा' में ही पार करता है। मनमोहन से नैऋत्य कोण में ही चलती कमला नदी भैयापट्टी सिरियापुर, नगवा, अकुली तथा धगजरी आती है। धगजरी को छोड़कर उक्त सभी गाँव इसके पश्चिम, दाहिने किनारे, हैं। भैयापट्टी के सामने कमला के बाएँ किनारे 'बराँटपुर' नामक गाँव है और ये दोनों गाँव 'जयनगर' थाने में हैं। सिरियापुर के दक्षिण कमला जयनगर थाने की सीमा पार करके वेनीपट्टी थाने में प्रवेश करती है। धगजरी अपने विराट ध्वंसावशेष के कारण प्राचीन तथा विशिष्ट ग्राम है। धगजरी से सिर्फ दो मील पश्चिम 'वेनीपट्टी' है। मधुवनी नगर से पश्चिम की ओर जो मार्ग वेनीपट्टी जाता है, वह 'धगजरी' में ही 'कमला' को पार करता है। धगजरी के बाद नैऋत्य कोण में बहती यह परसौना, राघोपुर, तीसीनरसम, सिबउल और रठोस नामक गांवों को आती है। इस भाग में बहनेवाली कमला के कछार में गाँव दूर-दूर पर बसे हैं, जिससे लगता है कि यह भाग कमला नदी का कभी बड़ा ह्रद रहा है। सन् १८९३-९४ ई० की बाढ़ में वेनीपट्टी का यह भाग बिलकुल जलमग्न हो गया था। रठोस के बाद 'कमला' थोड़ा दक्षिण की ओर मुड़ती है और 'दमला' से होते दक्षिण बढ़कर 'बल्हा' नामक गाँव को निहारती 'रघौली' पहुँचकर छोटी बागमती में समाहित हो जाती है। 'बल्हा' के पूरब 'बिसफी' ग्राम है, जो 'कमतौल' से तीन मील दूर थोड़ा अग्निकोण

में झुक कर पूरब दिशा में है। बिसफी ग्राम 'कमला' की एक छाड़न-धार के किनारे है, जिस धार से कभी यह 'रघौली' आकर बागमती से संगम करती थी। 'केवटी रनवे' से जो मार्ग थोड़ा उत्तर की ओर झुकता पश्चिम दिशा में चलता कमतौल पहुँचता है, वह 'कमला' की छाड़न धार को 'बिसफी' में ही पार करता है और वर्त्तमान कमला-धार को 'बल्हा' में और बागमती को उससे पश्चिम 'बैंगरा' में पार करता है। 'केवटी रनवे' से 'कमतौल' की दूरी सिर्फ दस-ग्यारह मील है। कमतौल क्षेत्र के पौराणिक इतिहास के संबंध में कमतौल-निवासी **महेश्वर प्रसाद** ने एक सवैया की रचना की थी, जिसके चारों चरणों के आदि वर्ण में 'कमतौल' नाम समाविष्ट है :

करिके किरिपा कमलापति ने कमला-तट आय बनाय सम्हारो
मख राखिबै को रघुनन्दनजी एहि मारग से ही जनकपुर धायो ।
तौल लियो पुरवासिन को सब सन्त मिले औ मिले व्रतधारी
लखि लेहु सबैही प्रमान वरो एहि पासहि में गौतम तिय तारो ।।

कमतौल के पूरब में स्थित बिसफी ग्राम के किनारे की छाड़न-धार परसौनी नामक गाँव के उत्तरवाले चौर से चलती है, जो कभी कमला की ही धार थी। परसौनी से यह खंडित धार नैऋत्य कोण में चलती परोही, पतौना, सकराही तथा बिसफी से होती कमला के मुहाने पर उससे मिलकर छोटी बागमती में प्रवेश करती है। इसी बिसफी में मिथिला के सर्वश्रेष्ठ कवि मैथिलकोकिल **विद्यापति** का जन्म हुआ था। पीछे चलकर महाकवि विद्यापति जब मिथिला के अधिपति शिवसिंह के दरबारी कवि हुए, तब बिसफी ग्राम उन्हें दानस्वरूप मिल गया। यह दानपत्र लक्ष्मण- संवत् २९३ के श्रावण शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि बृहस्पतिवार को लिखा गया था :

अब्दे लक्ष्मणसेन-भूपतिमते वह्निग्रहद्व्यङ्किते
मासि श्रावणसंज्ञके मुनितिथौ पक्षे बलक्षे गुरौ ।
वाग्वत्याः सरितस्तटे गजरथेत्याख्याप्रसिद्धे पुरे
दित्सोत्साहविवृद्धबाहुपुलकः सभ्याय मध्येसभम् ।।
प्रज्ञावान् प्रचुरोर्वरं पृथुतराभोगं नदीमातृकम्
सारण्यं ससरोवरञ्च बिसपी नामानमासीमतः ।
श्रीविद्यापतिशर्मणे सुकवये वाणीरसास्वादविद्
वीरः श्री शिवसिंहदेवनृपतिः ग्रामं ददे शासनम् ।।

उक्त दानपत्र से स्पष्ट पता चलता है कि 'बिसफी' ग्राम के पास जंगल तथा तालाब थे और बिसफी की जमीन उस समय भी बहुत ही उपजाऊ थी। आज बिसफी में ग्राम-विकास का अंचल-कार्यालय है। वहाँ एक पुस्तकालय भी है। बिसफी के विकास के लिए बिहार-सरकार प्रयत्नशील है तथा विद्यापति का यहाँ एक स्मारक-भवन भी बननेवाला है। कमला

की बाढ़ के कारण वर्षा ऋतु में आज भी 'बिसफी' का यातायात-संबंध बिलकुल विच्छिन्न हो जाता है।

रघौली में कमला के संगम करने के बाद छोटी बागमती में पानी का बहाव भारी मात्रा में होने लगता है और यह क्रम हायाघाट तक चलता है। यहाँ से यह दक्षिण की ओर दरभंगा के लिए जब प्रयाण करती है, तब इसके किनारे, उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः, दुधैल, सदुल्लाहपुर, वाजिदपुर, कोठिया, पिंडारुच, मोहनमठ, महम्मदपुर, माबोपट्टी, करजापट्टी, मखनाही, बेलउना आदि गाँव दिखाई पड़ते हैं। इन गाँवों की अगल-बगल से अपनी धारा को मोड़ती-सरकाती व्याघ्रवती (छोटी बागमती) दरभंगा नगर को पहुँचती है।

व्याघ्रवती के तट पर दरभंगा : दरभंगा जिले का क्षेत्रफल ८७६ वर्गमील में फैला है और जिले के मध्य भाग में पश्चिमी सीमा की ओर दरभंगा नगर बसा है। नगर की लम्बाई उत्तर-दक्षिण की ओर है, जो छोटी बागमती के किनारे-किनारे बसा है। नगर दो भागों में बँटा है, जिनमें से उत्तरी भाग का नाम 'दरभंगा' और दक्षिणी भाग का 'लहेरिया-सराय' है। दरभंगावाले भाग में मुख्य बाजार, महाविद्यालय, मिथिला-संस्कृत-प्रतिष्ठान, संस्कृत-विश्वविद्यालय, राज लाइब्रेरी तथा दरभंगा-महाराज के प्रासाद हैं। लहेरियासराय में मेडिकल कॉलेज, बड़ा अस्पताल, कारागार तथा सरकारी कचहरियाँ हैं। दरभंगा शब्द की व्युत्पत्ति कुछ लोग 'द्वार-वंग' अथवा 'दरे-वंगाल' के द्वारा करते हैं, जिसे व्युत्पत्ति-ज्ञान का अजीर्ण ही कहा जाना चाहिए। कुछ व्यक्तियों के मत में दरभंगा नगर किसी दरभंगी खाँ नामक एक पठान-सरदार के नाम पर बसाया गया था। किंतु, प्रचलित इतिहास में दरभंगी खाँ नामक किसी व्यक्ति की चर्चा कहीं नहीं मिलती है।

व्याघ्रवती तथा कमला की सन् १८८४ ई० वाली बाढ़ की तबाही के कारण सरकारी कचहरियाँ दरभंगा से हटाकर लहेरियासराय में लाई गई थीं। इस नदी की सन् १८९३-९४ ई० वाली बाढ़ में भी सम्पूर्ण दरभंगा नगर जलमग्न हो गया था। केवल लहेरियासराय का कचहरी-क्षेत्र बच रहा था, जिसमें नगर की आबादी ने शरण ली थी। दरभंगा नगर में चार प्रसिद्ध जलाशय हैं, जिनके नाम हैं—हराही, गंगासागर, दीघी तथा मिरजा तालाब। इनमें 'हराही' पोखर दरभंगा रेलवे-स्टेशन के पश्चिम में है। गंगा-सागर उससे दक्षिण बेतारोड पर, उसके पश्चिमी किनारे, है। दीघी तालाब नगर के पश्चिमोत्तर कोण में है। मिरजा तालाब लहेरियासराय में बेलागंज मुहल्ले के पूर्व में तथा मेडिकल अस्पताल के दक्षिण में तथा सरस्वती हाई स्कूल के पश्चिम में है। 'हराही' पोखर कर्णाटवंशीय हरिसिंह देव का और गंगा-सागर गंगदेव का खुदवाया माना जाता है। सुखदीघी पोखर को हरिसिंह देव के पिता शक्रसिंह ने खुदवाया था। मिरजा तालाब पठान-काल का है। कर्णाटवंशी राजाओं ने यहाँ तालाब खुदवाये, इससे पता चलता है कि गंगदेव, शक्रसिंह और हरिसिंह देव के समय में ही इस स्थान का महत्त्व बढ़ गया था। दरभंगा गजेटियर (पृ० ३५, प्रकाशन-वर्ष १९६४ ई०) से पता चलता है कि अलाउद्दीन खिलजी की सेना से शक्र सिंह का युद्ध दरभंगा के

'मकबरा' नामक स्थान में हुआ था, जिसमें शक्रसिंह पराजित होकर अपनी राजधानी 'सकरी' ले गये थे। फिर गजेटियर के उसी पृष्ठ पर मिलता है कि गयासुद्दीन तुगलक ने सन् १३२४ ई० में हरिसिंह देव को हराकर नेपाल खदेड़ दिया, तब उसने दरभंगा में ही अपना शासन-केन्द्र स्थापित किया और इसका नाम 'तुगलकपुर' रखा। उसी ने यहाँ किले और जामा मस्जिद का निर्माण सन् १३२६ ई० में किया था।

व्याघ्रवती के तट पर बसे दरभंगा नगर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ महाराजाधिराज दरभंगा-नरेश का निवास-स्थान है। सन् १९४८ ई० तक भारतवर्ष-भर में इतना बड़ा धनाढ्य ब्राह्मण परिवार कहीं नहीं था। इस ब्राह्मण-राज्य के संस्थापक का नाम महेश ठाकुर था, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता के प्रभाव से बादशाह 'अकबर' से राज्य प्राप्त किया था। महेश ठाकुर का मूल निवास (खण्डवा) मध्यप्रदेश में था, जिससे यह वंश 'खंडवलाकुल' कहलाता है। महेश ठाकुर मिथिला के ओइनवार-राज-वंश में पौरोहित्य का कार्य करते थे, जिससे मिथिला के प्रति इनका आकर्षण था। ओइनवारों की शक्ति जब क्षीण हो गई और वे जब दिल्लीश्वर के प्रति पूर्ण वफादार नहीं रह सके, तब अकबर ने मिथिला की जमींदारी **महेश ठाकुर** को दे दी। महेश ठाकुर के पुत्र का नाम **शुभंकर ठाकुर** था, जिसके नाम पर दरभंगा नगर के एक महल्ले का नाम 'शुभंकरपुर' है। उस समय दरभंगा में मुगल-शासन की कचहरी थी, जिससे शुभंकर ठाकुर को बराबर सरोकार रखना पड़ता था। अतः शुभंकर ठाकुर ने भी अपनी एक छावनी व्याघ्रवती के पश्चिमी किनारे स्थापित की थी। इसी प्रकार, दरभंगा नगर के उत्तर भाग में स्थित सुन्दरपुर महल्ला **सुन्दर ठाकुर** के नाम पर बसा है। सुन्दर ठाकुर महेश ठाकुर की छठी पीढ़ी में हुए थे।

ठाकुर-वंश में राजा की उपाधि सर्वप्रथम राघवसिंह को मिली थी। यह उपाधि बंगाल के शासक अलीवर्दी खाँ ने सन् १७०० ई० में राघवसिंह को दी थी; क्योंकि इन्होंने दरभंगा के विद्रोही पठानों के विरुद्ध अलीवर्दी खाँ की मदद की थी। उस समय राघवसिंह ने एक लाख रुपये की मालगुजारी देने का वादा करके अलीवर्दी खाँ से संपूर्ण तिरहुत का मुकर्ररी पट्टा लिखवा लिया था। उस समय दरभंगा महाराज की राजधानी 'मधुबनी' के पास 'भौरा' स्थान में थी। इसके पश्चात् बिहार प्रदेश पर जब अँगरेजों का राज्य हुआ, तब इस वंश के राजा का नाम नरेन्द्र सिंह था। इसी नरेन्द्र सिंह के दत्तक पुत्र प्रताप सिंह थे, जिनके पुत्र का नाम माधव सिंह था। माधव सिंह ने ही राजधानी को 'भौरा' से हटाया और उसे वे दरभंगा ले आये। इस खंडवालाकुल राजघराने की १४ वीं पीढ़ी में छत्र सिंह हुए थे, जिन्हें **वारेन हेस्टिंग्स** ने महाराजा की पदवी से सन् १८१४ ई० में, कलकत्ता के राज-दरबार में, विभूषित किया था। दरभंगा-राज की आमदनी प्रति वर्ष ८० लाख रुपये तक पहुँच चुकी थी। किन्तु, आज स्थिति बिलकुल बदल गई है। आज तो महाराजकुमार श्री जीवेश्वर सिंह के पुत्र रिक्से पर चढ़ कर स्कूल जाते हैं, यद्यपि आज भी राज-दरबार की ओर से हजारों रुपये पेट्रोल पर व्यय कर दिये जाते हैं। अर्थात्, महाराजा के वंश की स्थिति नगण्य हो गई है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत-सरकार ने सभी राजा-महाराजों की प्रभुता और मालिकाना जमीन-जायदाद अपने अधीन कर ली ।

व्याघ्रवती (छोटी बागमती) दरभंगा नगर के पश्चिमोत्तर भाग में प्रवेश करती है, जिसके पूर्वी तट से दरभंगा से कमतौल जानेवाला मार्ग गुजरता है । पहले तो व्याघ्रवती नगर की ओर वायव्य कोण से अग्नि कोण में आती है; जो पुनः नैऋत्य कोण में मुड़कर फिर पश्चिम दिशा में बहने लगती है । इसके बाद फिर अग्नि कोण में मुँह करती है और फिर पूर्वोत्तर कोण में कुछ क्षण चलकर दक्षिण दिशा की ओर प्रवाहित हो जाती है । यहीं इसके दाहिने किनारे (पश्चिमी तट पर) शुभंकरपुर मुहल्ला है, जहाँ शुभंकर ठाकुर ने राज्य की छावनी बनवाई थी । यहीं इसके बाएँ किनारे दरभंगा का गुदरी बाजार है और इसी जगह 'किला घाट' है । इसी किला घाट नामक स्थान पर दरभंगा-राजवंश के पुरुषोत्तम ठाकुर का युद्ध बंगाल के मुगल-सूबेदार के साथ सन् १६२३ ई० में हुआ था, जिसमें पुरुषोत्तम ठाकुर मारे गये थे और ठाकुर-वंश का राज्य छिन गया था । किंतु, दिल्ली की गद्दी पर जब 'शाहजहाँ' आसीन हुआ, तब ठाकुरवंश की सारी जायदाद फिर लौट आई ।

खिरोई-संगम : गुदरी बाजार से व्याघ्रवती नैऋत्यकोण में मुड़ती है और फिर पूर्व की ओरप्रयाण करके 'ईदगाह' नामक स्थान को आती है । ईदगाह से नैऋत्य कोण में प्रयाण कर 'एकमीघाट' पहुँच जाती है, जो लहेरियासराय से एक मील पश्चिम में स्थित है । 'एकमी' गाँव व्याघ्रवती के वाम पार्श्व में है और सामने—दाहिने तट पर 'रामपुर' नामक गाँव है । लहेरियासराय से मुजफ्फरपुर को जानेवाला मार्ग इसी 'एकमीघाट' पर व्याघ्रवती को पार करता है । पहले जब नदी पर पुल नहीं था, तब यात्री घाट को बरसात में नाव से पार करते थे । इसी स्थान पर खिरोई (क्षीरोदकी) नामक नदी व्याघ्रवती के दाहिने भाग में संगम करती है, जिससे इसकी गणना पुण्य-स्थानों में होती है । मिथिला की अन्य नदियों की अपेक्षा 'खिरोई' एक छोटी नदी है; पर इसका महत्त्व मिथिला के प्राचीन इतिहास में सर्वाधिक है । यह प्रसंग 'करेह' नदी का है, जिसका मूल स्रोत व्याघ्रवती है, अतः यहाँ 'व्याघ्रवती' और 'करेह' के जीवनवृत्त को विच्छिन्न करना ठीक नहीं होगा । 'खिरोई' एक स्वतंत्र नदी के रूप में आगे विवृत होगी ।

करेह का उद्भव :

एकमीघाट में क्षीरोदकी को आत्मसात् करके व्याघ्रवती दक्षिण की ओर दौड़ती है और 'बरेहता' तथा 'खिराजपुर' नामक गाँवों को आती है । ये दोनों गाँव व्याघ्रवती के पूर्वी तट की ओर स्थित हैं । खिराजपुर के बाद यह दरभंगा-समस्तीपुर रेलमार्ग के पश्चिम से ही समानांतर कुछ दूर दक्षिण की ओर बहती है । इस भाग में व्याघ्रवती के दाहिने किनारे रामपट्टी, थलवारा, हिछौली तथा अमाडीह गाँव दीख पड़ते हैं । पहले इसी भाग में मुजफ्फरपुर जिले वाली बागमती, लखनदेई तथा दरभंगा वाली व्याघ्रवती—इन तीनों का संगम होता

था, जिसका अवशेष आज भी एक बड़े बरसाती चौर के रूप में वर्त्तमान है। वर्षा ऋतु में यह बड़ा भाग आज भी जल-प्लावित हो उठता है और इस भाग का दृश्य चिल्का झील-सा बन जाता है। किंतु, जब यह चौर बाढ़ द्वारा लाई गई बेशुमार मिट्टियों से उथला हो गया, तब मुजफ्फरपुरवाली बागमती ने इस चौर के दक्षिण से अपना प्रवाहपथ पूर्व की ओर बनाया और दरभंगावाली व्याघ्रवती ने चौर के पूर्वोत्तर कोण से दक्षिण की ओर अपना मार्ग ग्रहण किया। आज इसी स्थिति में अमाडीह के दक्षिण आने पर व्याघ्रवती नदी बागमती की उस बाईं धारा से मिल जाती है, जो हायाघाट स्टेशन के सटे पश्चिम में बागमती से अलग होती है। यह संगम दरभंगा-समस्तीपुर रेल-लाइन के किनारे तथा 'सिरिनिया' नामक गांव के थोड़ा पश्चिम कोण में हटकर उत्तर में है। सिरिनिया गाँव 'हायाघाट' के उत्तर तथा रेल-लाइन के सटे पूर्व में स्थित है। बागमती की इस बाईं धार से संगम करने के पश्चात् व्याघ्रवती (छोटी बागमती) का नाम भी समाप्त हो जाता है। यह छोटी बागमती भी अधवारा-समूह वाली नदियों का नाम शेष करके प्रादुर्भूत हुई थी, जिसकी कहानी आपने पहले पढ़ी है। व्याघ्रवती (छोटी बागमती) और बागमती की बाईं धार के मिलन के बाद आगे इसी प्रवाह का नाम 'करेह' नदी के रूप में विख्यात होता है, जो दरभंगा जिले की प्रसिद्ध नदी मानी जाती है और जो ओकाश-वेल की तरह कई नदियों के जीवन-रस चूस कर अपना साम्राज्य स्थापित करती है।

करेह का धारा-मार्ग : समस्तीपुर-दरभंगा रेल-लाइन के सटे पश्चिम से तथा 'सिरनिया' ग्राम के सटे पश्चिमोत्तर भाग से प्रवाहित होकर 'करेह' नदी अग्निकोण में दरभंगा जिले की सीमा तक बहती है। करेह का प्राचीन नाम दरभंगा-गजेटियर (सन् १९०७ ई०) में 'करई' मिलता है और यह बागमती से अलग आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व हुई है। पहले व्याघ्रवती का पूरा पानी बागमती में गिरता था और बागमती रोसड़ा के पास गंडक से मिलती थी। अब 'करेह' स्वतंत्र नदी बनकर बलिपुर-परशुराम से बहेरी जानेवाले मार्ग तक, लगभग १८-१९ मील तक, बागमती के समानांतर अग्निकोण में चलती है। अपने जन्मस्थान से 'करेह' जैसे ही रेल-लाइन पार कर अग्निकोण में झुकती है, वैसे ही इसके बायें भाग में लगभग दो मील दूर उत्तर-पूर्व में 'शिवैसिंहपुर' नामक गाँव वर्त्तमान है, जो ओइन-वारवंशी राजा शिवसिंह की राजधानी कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने इसी को 'गजरथपुर' माना है, जिस 'गजरथपुर' का उल्लेख महाकवि विद्यापति ठाकुरवाले दान-पत्र में हुआ है। रेलवे-लाइन पार करके 'सिरनिया' के पूर्व में जब 'करेह' नदी आती है, तब इसके किनारे 'मन्नूपुर' गाँव मिलता है। यहां से करेह जब अग्निकोण में बढ़ती है, तब इसके बायें तट पर 'सघुआ' गाँव पड़ता है। इसके बाद यह बहेरा थाने में घुसती है, और एक बड़े चौर से आगे बढ़ने पर इसके दाहिने तट पर 'हथौरीकोठी' नामक स्थान मिलता है। हथौरीकोठी 'करेह' और 'बागमती'—इन दोनों नदियों की सँड़सी में बसा है। यहाँ पहले एक निलहे अँगरेज की कोठी थी, जिससे यह 'हथौरी कोठी' कहलाता है। 'हथौरी' नाम की व्युत्पत्ति

'हस्ति-रथ-पुरी' के द्वारा होनी चाहिए, जो 'गजरथपुरी' कहलाने का दावा कर सकता है और बागमती के तट पर इसके स्थित होने से यह दावा अधिक सटीक भी लगता है, यह मेरा अनुमान-भर है। हथौरी के पूर्व में एक मील दूर जाकर 'करेह' दक्षिण की ओर अपनी धारा बहाती है और इसके इस धारामार्ग पर क्रमशः अधारपुर, खरारी, छतौनी तथा भतउरा गाँव मिलते हैं। इनमें 'खरारी' और 'भतउरा' इसके दाहिने तट पर और 'अधारपुर' तथा 'छतौनी' वाएँ तट पर स्थित हैं। अधारपुर के वाद यह समस्तीपुर-अनुमंडल के रोसड़ा थाने में प्रवेश करती है। भतउरा के वाद 'करेह' नदी अग्निकोण में चलती है और क्रमशः वोर, रन्ना तथा वोरन नामक गाँवों को पहुँचती है। 'रोसड़ा' से 'वहेरा' जानेवाली पुरानी सड़क 'वोरन' में ही 'करेह' को पार करती है। वोरन के आगे अग्निकोण में 'करेह' नदी के दाहिने किनारे 'परवाना' नामक गाँव तथा इस गांव से पूर्व 'करेह' की वाईं ओर 'सिरिपुर' नामक गाँव है। सिरिपुर से आगे 'करेह' अग्निकोण में ही क्रमशः शंकरपुर, घिवाही, अउरा, जखार, काँकर, कलहंता, भोरहा आदि गाँवों से गुजरती हुई 'रोसड़ा' थाने को पार करती है। 'भोरहा' के पूरव 'करेह' नदी के बाएँ तट पर वसा 'महेश्वरा' गाँव 'सिंघिया' थाने की सीमा में है। एक दूसरा 'महेश्वरा' उत्तर मुंगेर के मझौल थाने में है। इस महेश्वरा के अग्निकोण में तथा 'करेह' के वाम पार्श्व में ही 'लगमा' नामक गाँव है। रोसड़ा से 'सिंघिया' तथा 'विरौल' जानेवाला मार्ग 'लगमा' में ही 'करेह' को लाँघता है। फिर अग्निकोण में चलने वाली 'करेह' इसी 'लगमा' से पूर्व दिशा में थोड़ी-सी झुकी-झुकी वहने लगती है और अपने बाएँ भाग में 'मिरार' नामक गाँव को देखती है। इससे भी आगे बढ़ने पर 'करेह' अपने तटों पर मामुरपुर, कुंडल, सिरिनिया, भतवाँ, परकउली तथा सखवाँ नामक गाँवों को निहारती हुई चलती है। इनमें 'कुंडल' निश्चय कोई प्राचीन स्थान है; क्योंकि यहाँ का प्राचीन ध्वंसावशेष इसका साक्ष्य है। उत्तरी मुंगेर जिले के 'मझौल' एवं 'गढ़पुरा' से दरभंगा जिले के 'हथरा' तथा विरौल' को जाने वाला मार्ग 'करेह' नदी को 'परकउली' तथा 'सखवा' गाँव के पास ही पार करता है। सखवा घाट से फिर 'करेह' नदी अग्निकोण में बहने लगती है और थोड़ी दूर इसके आगे बढ़ने पर नदी के दाहिने तट में 'करँची' और उसीके सामने बाएँ तट में 'छेछनी' गाँव मिलते हैं। इसी 'करँची' के सटे दक्षिण में **'विथान'** नामक गाँव है, जहाँ एक चतुर्मुखी ब्रह्मा की वहुत ही प्राचीन मूर्त्ति विद्यमान है। ब्रह्मा (विधि) के मंदिर होने के कारण इसका नाम 'विधि-स्थान' पड़ा था, जिसका अपभ्रंश रूप आज 'विथान' है। यह स्थान देखने से भी बहुत प्राचीन लगता है।

करेह का कोसी-संगम : करँची के बाद थोड़ी दूर के लिए 'करेह' पूरब दिशा में अपना धारामुख मोड़ती है और फिर तुरत पूर्वोत्तर कोण की ओर मार्ग पकड़ती है। यहाँ इसके पूर्वोत्तर कोणवाले धारा-मार्ग पर इसके दाहिने भाग में 'सोहम' तथा 'सुखासन' गाँव और बाएँ भाग में 'चंदन' एवं 'फुहिया' गाँव स्थित हैं। इसी फुहिया गाँव के पूरब

तथा 'खुटौना' नामक गाँव के पश्चिम 'जीवछ' (जीववत्सा) नामक नदी 'करेह' से संगम करती है। 'जीवछ' नदी 'कमला' की ही छोड़ी हुई प्राचीन धारा है, जो अब एक स्वतंत्र नदी बन गई है। 'खुटौना के आगे पूरब दिशा में 'तिलकपुर' नामक गाँव है, जहाँ करेह के वाम पार्श्व में ही मिथिला की लक्ष्मी स्वरूपा नदी 'कमला' की प्रधान धारा भी संगम करतो है। कुछ वर्ष पहले तिलकपुर (तिलकेश्वर) के पास करेह, कमला, बलान, तिलयुगा, धेमुरा आदि नदियों का संगम होता था और यह सम्मिलित धार कमला तथा घघरी के नाम से मुंगेर जिले के खगड़िया और चौथम थाने से बहती कोसी से संगम करती थी, जिससे उत्तर बिहार की नदियों में 'घघरी' का बड़ा ही प्राबल्य था। किंतु जब से 'कोसी' के दोनों किनारों में तटबंध लगाये गये और कोसी-धार को पश्चिम में मोड़कर इसी के तटबंध के भीतर तिलयुगा, धेमुरा आदि को विलीन कर दिया गया, तब से 'करेह' और 'कमला' तिलकपुर के पास ही कोशी से संगम करने लगी हैं। तिलकपुर गाँव दरभंगा, सहरसा तथा मुंगेर—इन तीनों जिलों के संधि-स्थल पर बसा है, जहाँ कोसो नदी पहुँच कर इन नदियों को आत्मसात् कर लेती है। इसी संगम-स्थान पर करेह नदी के दाहिने भाग में मुंगेर जिले का 'बेलाही' नामक गाँव है, जहाँ प्रतिवर्ष फाल्गुन शिवरात्रि के अवसर पर एक बड़ा मेला लगता है। आज 'घघरी' नदी का प्रभुत्व कोसी ने समाप्त कर दिया है और कोसी की धारा आज 'घघरी' के धारा-मार्ग से ही बहाई गई है।

करेह का पहला-संगम :

यद्यपि 'करेह' नदी तिलकपुर के पास ही अब नामशेष हो जाती है; पर इसका कुछ प्राचीन विवरण दे देना अनुपयुक्त नहीं माना जाना चाहिए। क्योंकि पहले यह खगड़िया के आधे भाग को अपनी बाढ़ से प्लावित करती थी तथा मुंगेर का प्रसिद्ध 'कवर ताल' भी किसी काल में बागमती तथा करेह-धाराओं की ही देन माना जाता था। कोसी की धार जब पश्चिम में नहीं मोड़ी गई थी, और जब यह 'तिलयुगा' तथा 'धेमुरा' की धार से नहीं बहाई गई थी, तब 'करेह' नदी फुहिया और खुटौना गाँवों के पास 'जीवछ' नदी को तथा तिलकपुर के पास 'बलान' से संयुक्त 'कमला' नदी को आत्मसात् करके मुंगेर जिले के 'खगड़िया' अनुमंडल के 'सिमरी-बख्तियारपुर' थाने में प्रवेश करती थी। मुंगेर जिले के स्पर्श करते ही प्रथम-प्रथम यह 'अलौली' थाने और 'सिमरी-बख्तियारपुर' थाने की सीमा बनती थी और तुरत सिमरी बख्तियारपुर थाने में प्रवेश कर जाती थी। यहीं इसके दाहिने किनारे 'अलौली थाने का बेलाही गाँव है, जहाँ फाल्गुन शिवरात्रि के अवसर पर मेला लगता है। बेलाही गाँव अलौली थाने की उत्तरी सीमा का अंतिम गाँव है; जो 'अलौली' से आठ मील उत्तर में है। 'बेलाही' के पूर्व में 'अगर' नामक गाँव है, जो 'सिमरी-बख्तियारपुर' थाने में पड़ता है। 'अगर' गाँव को पहले 'करेह' चारों तरफ से घेरती थी और इस गाँव के पूरब में 'धेमुरा नदी' को भी आत्मसात् करती थी। यह 'धेमुरा' सिमरी-बख्तियारपुर के 'घोघसम' गाँव के पश्चिम में, बलान-धार से मिली 'तिलयुगा' नदी को सम्मिलित करके कमला-करेह से संगम करती थी। किंतु, अब ये सभी नाटक समाप्त हो चुके हैं और कोसी ने सबको अपने उदर में समेट लिया है।

'अगर' गाँव के पास धेमुरा और तिलयुगा को आत्मलीन करने के पश्चात् कमला-करेह नदी खगड़िया-अनुमंडल के सिमरी-बख्तियारपुर तथा चौथम थाने में कई मुखों से अपने को बिखरा देती थी और अपना नाम भी मिटा देती थी, जिससे यह भाग एक विस्तृत झील के रूप में परिणत हो जाता था। इसकी क्षीण धारा जो आगे बढ़ती थी, वह **'मरई'** नाम से अभिहित होती थी, और पूर्व में सिमरी-बख्तियारपुर से पश्चिम में 'अलौली' तक अनेक धाराओं का निर्माण करती थी। 'मरई' की धार अग्निकोण में चलती हुई कमला भी कहलाती थी और मानसी-सहरसा-रेल-लाइन तक जाती थी तथा सलखुआ के पास की झील में पुनः बिखर जाती थी। किंतु, इसकी जो धारा 'चौथम' के पूर्व में कोसी-धार तक जाती थी, उसी का नाम **'घघरी'** होता था। यह धारा पूर्वकथित 'अगर' गाँव से अग्निकोण की ओर चलती थी और 'धनपुरा' नामक गाँव तक इसी दिशा में आती थी। धनपुरा से यह दक्षिण दिशा में बहती हुई तथा 'कबिरा' गाँव के पश्चिम से ही उस विस्तृत चौर-भूमि में प्रवेश करती है, जो अलौली के पूर्व भाग में तथा पूर्व-दक्षिण भाग में फैली हुई है और जिसमें 'बागमती' की पुरानी धार भी बहती है। खगड़िया से 'कबिरा' तथा 'चपरम' होकर जो मार्ग सहरसा जिले के 'बनगाँव' को जाता है, वह इसी चौर की भूमि से उत्तर की ओर गुजरता है और खगड़िया से आठ मील उत्तर इसी चौर में 'घघरी' के प्रवाह को भी पार करता था। यह मार्ग जहाँ 'घघरी' को पार करता था, वहीं से 'घघरी' पूर्व दिशा में मुड़ती थी। 'घघरी' के इस घाट से पूर्व में 'भिरखी' नामक गाँव है, जो 'घघरी' के बाएँ किनारे में है। भिरखी तक 'घघरी' सिमरी-बख्तियारपुर तथा अलौली थानों की सीमा बनती दक्षिण में आती थी और 'भिरखी' के पूर्व में बहने पर थोड़ी दूर (लगभग दो मील) के लिए यह खगड़िया और सिमरी-बख्तियारपुर की सीमा भी बनती थी। इस पूर्वी प्रवाह के क्रम में 'घघरी' नदी 'समहर खुर्द' नामक गाँव को पहुँचती थी, जो इसके बाएँ तट पर पड़ता था। 'समहर खुर्द' के पश्चिम से ही यह चौथम थाने की तथा सिमरी-बख्तियारपुर की सीमा बनती बहने लगती थी। खगड़िया से सिमरी-बख्तियारपुर जानेवाला मार्ग समहर के पश्चिम में ही नदी को पार करता है। इस प्रकार जब यह पूर्व की ओर बहती हुई 'धमहरा रेलवे स्टेशन के नैऋत्य कोण में आती थी, तब उत्तर की ओर मुड़कर स्टेशन और धमहरा गाँव के उत्तरी भाग से ही रेल-लाइन को पार कर जाती थी। धमहरा रेल स्टेशन मानसी-सहरसा रेल-मार्ग पर है और चौथम थाने में पड़ता है। यहाँ 'घघरी' पूर्वाभिमुख होकर रेल-लाइन को लाँघती थी और धमहरा गाँव तथा स्टेशन के पूर्व से दक्षिण की ओर ढलती थी। दक्षिण तथा पुनः अग्नि कोण में झुकती हुई इसकी धारा 'थूथी' (मोहनपुर) गाँव के पश्चिमी भाग से 'चौथम' पहुँचती थी, जहाँ बागमती की पुरानी धारा इससे संगम करती थी। किंतु, अब तो यह बागमती 'चौथम' में 'कोसी' से संगम कर जाती है; क्योंकि उपर्युक्त वर्णित 'घघरी-धार' अब कोसी-धार हो गई है। चौथम में बागमती से मिलने के पश्चात् यह 'घघरी' 'अग्राहन' गाँव के पूर्व में तथा 'बोरने' गाँव से एक मील उत्तर में पहले कोसी से मिलती थी; किंतु अब तो संपूर्ण 'घघरी' धार को ही कोसी हड़प चुकी है।

उक्त चौथम 'उत्तर मुंगेर' जिले का एक प्रसिद्ध स्थान है। यह उत्तर-पूर्व रेलवे के 'मानसी' जंक्शन से चार मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित है, जहाँ पुलिस थाना है। अब यहाँ अंचल विकास का कार्यालय भी है। चौथम में 'घघरी' के साथ बागमती की पुरानी धारा के अतिरिक्त सहरसा जिले की कोसी की कई धाराएँ उत्तर से दक्षिण की ओर आकर पहले मिलती थीं। गाँव चौथम में एक प्राचीन क्षत्रिय-वंश निवास करता है, जिस वंश के पूर्वज मुरारशाही ने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया था। कहानी है कि जोरावर सिंह और मुरारशाही दो भाई थे, जो 'कंचन' के राजा के यहाँ नौकरी करते थे। एक युद्ध में इन्होंने बादशाह अकबर की बड़ी सहायता की। अकबर ने इनकी वीरता से प्रसन्न होकर सारन जिले में गोदना-माँझी और मुंगेर जिले में चौथम तप्पा इन्हें जमींदारी में दे दिये। जोरावर सिंह ने गोदना-माँझी की जमींदारी सँभाली और मुरारशाही ने चौथम की। चौथम का इलाका उस समय जंगलों से भरा था, जिसे मुरारशाही ने साफ कराकर आबाद कराया था। एक बार सैयदशाही नामक राजा के साथ युद्ध में मुरारशाही मारे गये और चौथम के इलाके पर सैयदशाही का अधिकार हो गया। मुरारशाही की पत्नी पति के विरह में सती हो गई। मुरारशाही का पुत्र रामसिंह भागकर बादशाह अकबर के दरबार में गया और वहाँ सैयदशाही की ज्यादती तथा अपने खानदान की वफादारी की फरियाद दी। अकबर ने सैयदशाही को कड़ी चेतावनी देते हुए चौथम का राज़ पुनः रामसिंह के अधीन कर दिया। तभी से यह क्षत्रिय-वंश चौथम में निवास करता आ रहा है। मुरारशाही ने सन् १५७४ ई० में अपनी जमींदारी यहाँ स्थापित की थी।

'घघरी' का नामकरण करेह-कमला तथा तिलयुगा-धेमुरा की सम्मिलित धार के आधार पर हुआ था, जो उत्तरी मुंगेर जिले में प्रवेश करते ही विख्यात हो जाती थी और उत्तर भागलपुर के नौगछिया थाने की सीमा तक 'घघरी' ही कहलाती थी। उपर्युक्त नदियों का बेशुमार जलौघ जब इस धारा से मिलकर प्रवाहित होता था, और जब उसकी उद्धत तरंगें तथा गजराजों के शरीर को भी मरोड़ देनेवाली उसकी कूप-सदृश भवरें घरघराने लगती थीं, तब उसके घोर रव से कछार की दिशाएँ बहरी बन जाती थीं। इसीलिए नदी का नाम 'घघोरी' पड़ा था। वर्षा ऋतु में बेशुमार पानी से जहाँ यह गाँवों, टीले और खेतों को समतल बना देती थी, वहीं सूँस, मगर और घड़ियालों का मेला लगा देती थी। इसकी धारा में घड़ियालों के थूथने गोबर के उपलों तथा लकड़ी के छोटे-छोटे कुंदों की तरह तमाम तैरते नजर आते थे, जिनकी दहकते शोले की तरह आँखों की चमक के सहारे ही शिकारी रात-रात भर जागकर मचानों पर बैठे हुए इनका शिकार करते थे। कोसी के जलप्लावन को भी मात करनेवाली इस 'घघरी' का साम्राज्य कोसी ने समाप्त कर दिया। यह विधि की नहीं, मनुष्य की ही विडंबना मात्र है, अन्यथा इस पुस्तक में 'घघरी' के लिए कुछ अलग पृष्ठ होते।

बागमती का प्राचीन खँड़हर

यह पहले कहा गया है कि चौथम के पास 'घघरी' में पुरानी बागमती की धारा मिलती थी, किंतु अब यहाँ यह कोसी की धारा से मिलती है। यहाँ इस पुरानी बागमती का विवरण भी दे देना आवश्यक है; क्योंकि यह एक बड़ी नदी के रूप में अपना अलग अस्तित्व रखती है। पुरानी बागमती की यह धार आज भले ही एक अलग नदी बन गई है; पर वस्तुतः यह धार 'बागमती' की 'करेह' शाखा की ही धार है, जिससे होकर पहले यह बहती थी।

पुरानी बागमती की इस धारा का उद्‌गम दरभंगा जिले के दक्षिणी भाग में रोसड़ा के उत्तर में स्थित एक चौर से होता है। इसके उद्‌गम-स्थानवाले चौर से ही किसी काल में 'करेह' वाली 'बागमती' बहती थी और इसी पुरानी धार से 'चौथम' तक चलती थी। पर, चौर के पश्चिमोत्तर भाग में अपने मुहाने पर जब 'करेह शाखा' ने मिट्टी डाल दी, तब इस धार को छोड़कर उसने अपना दूसरा धारा-मार्ग बनाया और 'तिलकपुर' के पास पहुँचकर 'कमला' से मिलने लगी। अतः इस पुरानी बागमती की धारा की अस्तिरव 'करेह' से कटकर अलग हो गया।

इस 'बागमती' के उद्‌गम-स्थान के पश्चिम रोसड़ा थाने के 'भिरहा' तथा 'भरवारी' ग्राम हैं और दक्षिण में 'मगुरगढ़' तथा 'भरवारा'। इस क्षेत्र में भिरहा, भरवारा, भरवारी, भोरे, भरपुरा, भरैराम, भरगामा, भरउरा, भउरा आदि बहुत-से ग्राम हैं, जिससे अनुमान होता है कि मिथिला में भी 'भरों' का कभी आधिपत्य था। इस बागमती के उद्‌गम के पास ही 'मालीपुर' गाँव भी है और इसके पूरब में 'दुधपुरा' है। उत्तर मुंगेर के बरियारपुर तथा दौलतपुर से जो मार्ग उत्तर की ओर चलकर 'रोसड़ा' स्टेशन आता है और वहाँ से 'मगुर-गढ़' होते हुए सिंघिया जाता है, वह मार्ग इस पुरानी बागमती-धार को इसके उद्‌गम से थोड़ी ही दूर पूरब में 'दुधपुरा' के पास पार करता है और तब'लगमा' पहुँचता है। यही मार्ग 'लगमा' के पास ही 'करेह' को भी पार करता है। दुधपुरा के पूर्व में इस 'बागमती' के दाहिने तट पर 'फुलहरा' नामक ग्राम बसा है तथा इस गाँव के अग्निकोण में इसके दाहिने ही भाग में 'देवधा' है, जो अपने विस्तृत प्राचीन टीले के कारण निश्चय ही कोई प्राचीन स्थान है। यहाँ अब भी प्राचीन शिवमंदिर तथा कई देवी-देवताओं की प्राचीन मूर्त्तियाँ विद्यमान हैं।

फुलहरा ग्राम से यह प्राचीन बागमती-धार अग्निकोण में चलती है और 'खवासटोला तथा 'अउरा' नामक गाँव के मध्यभाग से बहती हुई 'नकुनी' ग्राम को पहुँचती है। 'नकुनी'

ग्राम के उत्तर तथा इस पुरानी 'बागमती-धार' के बाएँ किनारे प्राचीन भग्नावशेष-युक्त ग्राम 'कुंडल' है, जो 'करेह' नदी के दाहिने भाग में स्थित है। 'कुंडल' से यह बागमती दक्षिण दिशा में बहने लगती है और इस दक्षिण-वाही क्रम में यह क्रमशः हसनपुर, कड़सौली, खुरंदा तथा 'मलाहीपुर' पहुंचती है। मलाहीपुर के पश्चिम तथा इस बागमती-धार के दाहिने भाग में 'हसनपुर' नामक रेलवे-स्टेशन है, जो पूर्वोत्तर रेलवे के मानसी-रोसड़ा रेल-मार्ग का स्टेशन है। यहाँ से यह पिरउना, सोही, गजपति तथा विसुनपुर गाँवों से होते मानसी-रोसड़ा रेलमार्ग के पूर्व भाग से प्रायः इसके समानांतर दक्षिण की ओर चलती मुंगेर जिले में प्रवेश करती है। इसी बिसुनपुर से दो मील दूर पूर्वोत्तर कोण में बिथान (विधिस्थान) नामक ग्राम है, जहाँ चतुर्मुखी ब्रह्मा की प्राचीन मूर्त्ति है और जिसकी चर्चा पहले की गई है। बिसुनपुर से पश्चिम मुड़कर बागमती की यह धार 'रैंदा' ग्राम को छूती है और 'रैंदा' से दक्षिण की ओर चलकर 'गोह' तथा 'मउजी हरिसिंघ' नामक गाँवों के मध्य भाग से गुजरती 'मुंगेर' जिले में प्रवेश करती है। मुंगेर जिले में प्रवेश करके सर्वप्रथम यह 'मउजी हरिसिंघ' गाँव को छूती है, जो बखरी थाने में पड़ता है। 'मउजी हरिसिंह' नामक गाँव इस बागमती के पूर्वी तट पर बाएँ किनारे में स्थित है। इस गाँव के नाम से स्पष्ट पता चलता है कि 'हरिसिंहदेव' नामक मिथिलाधिपति के नाम पर यह बसा है। यहाँ से यह कभी दक्षिण चलकर 'चंदना' धार से मिलती थी और तब पूर्व की ओर बढ़ती थी। किंतु, मानसी-रोसड़ा रेल-लाइन के बन जाने से दक्षिण की ओर बहनेवाली धार क्षीण पड़ गई और चंदना-धार से बिछुड़कर अब यह 'मउजी हरिसिंह' के दक्षिण रेलवे लाइन को छूकर अग्निकोण की ओर मुड़ जाती है। अग्निकोण-वाहिनी बनकर यह बागमती खखरुआ, इमादपुर और इनके बाद 'चक हमीद' नामक गाँवों को पहुंचती है। यहाँ से यह बहुत थोड़ी दूर दक्षिण दिशा में चलकर पुनः पूर्व की ओर प्रयाण कर जाती है। जहाँ यह पूर्व की ओर मुड़ती है, वहीं इसके दाहिने किनारे 'सोलउन' नामक रेलवे-स्टेशन है, जो मानसी-रोसड़ा रेलमार्ग पर पड़ता है। इसी प्रकार, नदी के दाहिने किनारे ही बखरो, शंकरपुरा तथा बहादुरपुर नामक गाँव हैं, जो मुसलमानी शासन-काल के प्रसिद्ध गाँव हैं। इन गाँवों के उत्तर तथा इस बागमती के वाम तट की ओर 'जयलख विजयी' गाँव है, जो किसी युद्ध-विजय का सूचक है। बहादुरपुर के पूरब तथा इस नदी के दाहिने भाग में 'छिलकौड़ी' गाँव भी है, जहाँ से बागमती एकाएक उत्तर की ओर दौड़ लगाती है और अपने उत्तराभिमुख होने के क्रम में ही यह 'सिमराहा' तथा 'मुजौना' नामक गाँवों के मध्य में पहुँचती है। सिमराहा इसके बाएँ तट पर और मुजौना दाहिने तट पर बसे हैं। यहाँ से यह थोड़ा पूर्वोत्तर कोण में मुँह करके बहती हुई दरभंगा तथा मुंगेर जिले की सीमा-संधि पर पहुँचती है। यहाँ इसके बाएँ किनारे दरभंगा जिले का 'पड़री' गाँव है और दाहिने किनारे मुंगेर जिले का 'हरपुर' नामक गाँव है। यहाँ दरभंगा जिले के पड़री के पूर्व में नदी के बाएँ किनारे ही मुंगेर जिले के अलौली थाने का भी एक दूसरा 'पड़री' है। मुंगेर जिले के पड़री गाँव तक पहुँचकर यह बागमती अग्निकोण में झुकती है और अलौली थाने के ही बुढ़वा, सहसी, तथा भिखारीघाट नामक गाँवों को आ

जाती है। भिखारीघाट पहुँचने के लिए बागमतो को थोड़ी दूर पूर्वोत्तर कोण में मुँह करना पड़ता है और फिर अग्निकोण-वाहिनी बनकर इसे 'रउन' नामक गाँव को आना पड़ता है। रउन गाँव से यह फिर उत्तर दिशा में मुड़ती है और 'हथवाँ' पहुँचती है। 'हथवाँ' एक बहुत बड़ी झील-भूमि में बसा है, जो 'अलौली' से दो मील उत्तर में स्थित है। वर्षाऋतु में हथवाँ के चारों ओर समुद्र लहराने लगता है और पश्चिम, उत्तर तथा पूर्व तीन दिशाओं से यह बिलकुल अलग-थलग हो जाता है। हथवाँ से बागमतो नदो दक्षिण की ओर निकलती है और 'अलौली' पहुँचती है। अलौली में थाना ऑफिस तथा प्रखंड-विकास का कार्यालय है। यहाँ से यह 'सँझवती' नामक ग्राम को आती है; जहाँ से फिर अग्निकोणवाहिनी बनती है। इस क्रम में यह 'अम्बा इचरूआ' और यहाँ से नैऋत्य कोण में चलकर 'दिघनी' नामक गाँव को पहुँचती है। दिघनी से जब यह अग्निकोण में चलती है और लगभग एक मील ही चल पाती है कि इससे 'चन्ना' नामक नदी, जिसे आज कुछ लोग 'चंदना' भी कहते हैं, संगम करती है।

चन्ना बनाम चंदना : यह उत्तरी मुँगेर के 'कबरताल' नामक झील से प्रवाहित होती है, जो कभी निश्चय ही 'बागमती' की ही पुरानी धार रही थी। 'कबरताल' उत्तरी मुँगेर के 'बख्तियारपुर' थाने में है, जिसकी चर्चा पहले की गई है।[1] यह बख्तियारपुर, सिमरी-बख्तियारपुर से भिन्न है। यह बेगूसराय अनुमंडल में है और 'सिमरी-बख्तियारपुर' खगड़िया-अनुमंडल में। चन्ना नदी 'सकरबसा' के पूर्व के गहरे भाग से प्रवाहित होती है और दक्षिण चलकर बख्तियारपुर के पूरब पहुँचती है, जहाँ से पूर्व दिशा में प्रयाण करतो 'सकरा' गाँव के दक्षिण 'बखरी' थाने की सीमा में प्रवेश करती है। मझौल से उत्तर की ओर 'गढ़पुरा' जानेवाला मार्ग 'सकरा' के दक्षिण ही चन्ना-धार को पार करता है और यहीं 'चन्ना बनाम चंदना' का बखरी थाने की सीमा में पदन्यास होता है। चंदना बड़ी ही कुटिल गतिवाली स्वैरिणी नदी है और अपनो इसी कुटिल चाल से यह भुईंधरा, हेमनपुर, बागबन, करनपुर बिसौनी तथा सुगा नामक गाँवों का आलिङ्गन करती हुई बढ़ती है। सुगा के उत्तर में चन्ना 'बखरी' के दक्षिण पहलू से लगती है और दक्षिण में सुगा से सटकर पूरब की ओर सरकती हुई 'चक चनरपत' गाँव का चरण चाँपने लगती है। यहाँ से पुनः यह खगड़िया-रोसड़ा-रेल-लाइन को पार करके पूर्व दिशा में दौड़ती है। यहाँ यह जिस पुल-द्वार से लुक-छिपकर रेल-लाइन को लाँघती है, वह बखरी से तीन मील दूर अग्निकोण में स्थित है। यहाँ से यह अग्निकोण में बहती खगड़िया अनुमंडल के 'बरई' नामक गाँव को बगलियाती है। यह 'बरई' गाँव खगड़िया-रोसड़ा रेल-मार्ग के 'इमली' नामक स्टेशन से एक मील पूर्वोत्तर कोण में स्थित है। बरई से जब चंदना पूर्व की ओर बढ़ती है, तब दो धाराओं में बँट जातो है। दक्षिण की ओर चलनेवाली धार पूर्व दिशा में मुड़कर 'अहुन सिसवा' गाँव के पास पहुँचकर अपनी दूसरी धार से मिल जाती है।

१. देखिए—पृ० २४० और २४१ पर।

मगर जो धार पूरब की ओर प्रवाहित होकर 'रहीमा' गाँव को पहुँचती है, वह वहाँ से फिर पूर्वोत्तर कोण में सरक कर 'भगवानपुर घाट' एवं 'सुम्महा' नामक गाँवों के गले से लगती है। ये दोनों गाँव अलौली थाने के हैं और खगड़िया-बखरी मार्ग पर स्थित हैं। इस क्षेत्र में पुरानी बागमती की धारा तथा चंदना की छिन्न-भिन्न शाखाएँ पत्ते के रेशे की तरह परस्पर गुँथी और छितरी हुई हैं अथवा यों कहिए कि चलनी के महीन तारों की तरह इस भूमि-भाग को बुने हुई हैं। इन उच्छिन्न सरिताओं के द्वारा निर्मित झीलों एवं चौरों से खगड़िया और अलौली थाने की तमाम भूमि भरी हुई है, जिनसे प्रवाहित होनेवाली अनगिनत छोटी-मोटी सरिताएँ सर्पिणियों के सदृश रेंगती दीख पड़ती हैं। इन बिखरी-टँकी सी झीलों की बहार तब देखने में आती है, जब दूर-दूर से विभिन्न रंग और ढंग के पक्षियों के झुंड आकर इनमें चहकते, कूजते एवं तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। जब इन पखेरुओं की लंबी पाँतें एक झील से दूसरे झील में पहुँचने के लिए आकाश में कूजते हुए उड़ती हैं, तब शिकारियों की बंदूकें तमाम आसमान में गरजने लगती हैं। चिड़ियों के शिकार करने वाले सैलानियों के लिए खगड़िया और अलौली का झील-क्षेत्र सर्वोत्तम स्थान है, जहाँ आज पक्षियों के शिकार का निषेध आवश्यक है।

सुम्महा के पास चंदना की धारा झुमके की तरह दक्षिण की ओर झूलती है, जिसमें उत्तर की ओर छोटी-छोटी सरिताओं की स्वर्ण-अंकुशियाँ लगी हुई हैं। यह झुलनीनुमा प्रवाह खगड़िया-बखरी मार्ग के किनारे से अग्निकोण में सरकता है और तब 'अहुन-सिसवा' नामक गाँव की गोद में उतरता है। यहाँ चन्ना 'बरई' गाँव के अग्निकोण में अलग होकर दक्षिण की ओर बढ़नेवाली अपनी दाहिनी भुजा को भी समेटती है। फिर, यह दक्षिण से पूर्व की ओर चलती हुई धबरहा, चैनपुर तथा बँभनगवाँ होते 'अहुन सिसवा' पहुँचती है। यहाँ दोनों भुजाएँ सम्मिलित होकर एक धारा के रूप में दक्षिण की ओर जाती हैं और वह धारा खगड़िया के पश्चिम, रेल-लाइन के सटे ही, 'उरही' गाँव के पास एक छोटी-सी झील बनाकर फैल जाती है। 'अहुन सिसवा' में चंदना की दोनों धाराएँ सम्मिलित होकर जब उत्तर दिशा की ओर दौड़ती हैं और एक बड़े चौर वाले मैदान से सरकती हुई पूर्वकथित 'दिघनी' गाँव के अग्निकोण में पहुँचती है, तब यहाँ पुरानी बागमती वाली धारा इसे तुरत अंकसात् कर लेती है।

यह पहले कहा गया है कि अलौली से दक्षिण की ओर घूमती-फिरती बागमती की पुरानी धार 'दिघनी' आती है, जहाँ 'चन्ना' अथवा 'चंदना' नामक सरिता को आत्मसात् करती है। इसीलिए बागमती का बयान बंद करके हम 'चंदना' के प्रसंग पर आ गये थे। चन्ना को ग्रहण करने के पश्चात् बागमती पूरब की ओर प्रयाण कर फिर दक्षिण में दौड़ती है और 'दहवा' नामक गाँव को आती है। 'दहवा' में यह 'घघरी' (कमला, करेह, तिलयुगा की सम्मिलित धार) की एक कनहर का पानी ग्रहण करती थी, जो अब समाप्त हो गई है। दहवा के पास ही 'खैरी खुटहा' तथा 'बाढ़-छतर' गाँव हैं, जो बागमती के बिलकुल तट पर हैं और इन गाँवों से होकर खगड़िया से अलौली जानेवाला मार्ग गुजरता है। यह

मार्ग खगड़िया से अलौली तक और फिर अलौली से बखरी तक बागमती की इसी पुरानी धारा के सहारे चलता है। बाढ़छतर के पास खगड़िया-अलौली-मार्ग को पार करके बागमती पूर्व की ओर बढ़कर, खगड़िया से सीधे उत्तर चलकर 'बनगाँव' (सहरसा) जानेवाले मार्ग तक आती है और उस मार्ग के सहारे डेढ़ मील उत्तर बढ़कर मार्ग को पार करके अपनी टेढ़ी-मेढ़ी चाल से 'रसौन' नामक गाँव को पहुँचती है। रसौन के पास यह खगड़िया सिमरी-बख्तियारपुर-मार्ग को पार कर पूर्व की ओर चलती 'सैदपुर' गाँव के उत्तर आती है। यहाँ से उत्तर और फिर पूरब की ओर मुड़कर 'दिघरी' नामक गाँव को देखती है। दिघरी गाँव 'बदलाघाट' रेलवे स्टेशन से दो मील उत्तर मानसी-सहरसा-रेल-लाइन के सटे पूर्व में है। दिघरी में ही यह पुरानी बागमती रेल लाइन को पारकर 'बलकुंदा' गाँव को आती है और बलकुंदा से नैऋत्य कोण में झुककर पुनः बदलाघाट रेलवे-स्टेशन के पूर्व में पहुंच जाती है इसके बाद यह अपनी धारा को मोड़ती-ऐंठती 'रोहिअर' गाँव होते चौथम पहुंचकर 'घघरी' में समाहित हो जाती थी। बदलाघाट रेलवे-स्टेशन से चार मील पूर्व में चौथम है। जिसके मध्य में तीन मील तक इस बागमती की कुटिल धारा का अपने संगम तक बहाव है। पर, अब तो यह बागमती नदी 'चन्ना' को समेट कर चौथम के पास ही कोसी की धारा से संगम करती है; क्योंकि कोसी ने पूरी-की-पूरी 'घघरी धार' पर अपना एकमात्र आधिपत्य जमा लिया है।

खिरोई : क्षीरोदकी

लहेरियासराय से एक मील पश्चिम 'एकमीघाट' पर व्याघ्रमती (छोटी बागमती) से खिरोई (क्षीरादेकी) संगम करती है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। यह भी कहा गया है कि यद्यपि उत्तर बिहार की नदियों में प्रवाह की दृष्टि से 'खिरोई' एक बहुत ही छोटी और नगण्य नदी है, तथापि इसका उद्गम-स्थान पौराणिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण है, जितना कि उत्तर बिहार में जनमनेवाली दूसरी किसी नदी का नहीं है। अतएव, खिरोई के लिए अलग प्रकरण सुरक्षित कर देना आवश्यक प्रतीत हुआ।

गौतम तीर्थ :

'खिरोई' नाम 'क्षीरोदकी' का विकसित रूप माना जाता है। यद्यपि 'खिरोई' का शुद्ध संस्कृत-रूप 'क्षीरवती' होना चाहिए। नाम से भान होता है कि इसका जल दूध की तरह स्वच्छ तथा स्वास्थ्यप्रद है। इसका उद्गम-स्थान मिथिला का वह प्राचीन स्थान 'गौतम-तीर्थ' है, जहाँ गौतमकुंड था। आजकल गौतमतीर्थ की स्थिति 'ब्रह्मपुर' नामक गाँव में मानी जाती है, जो कमतौल रेलवे-स्टेशन से छह मील दूर नैऋत्य कोण की ओर जाले थाने में अवस्थित है। ब्रह्मपुर के पूर्व-दक्षिण में अहल्या-स्थान है, जिसे 'अहियारी' कहा जाता है। ब्रह्मपुर के नैऋत्य कोण में 'रतनपुर' और 'अभिमान्' नामक गाँव हैं। वहाँ प्राचीन इतिहास के बहुतेरे अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन्हीं गाँवों के उत्तर तथा कमतौल के पश्चिम एक बहुत बड़ा चौर है, जो कभी अधवारा-समूहवाली नदियों के द्वारा बनाया गया जलागार लगता है। चौर के पश्चिम 'राढ़ी' नामक पुराना गाँव है, जो दरभंगा जिले की सीमा का अंतिम गाँव है और जो एक मार्ग द्वारा कमतौल से जुड़ा हुआ है। इसी चौर से, अर्थात् कमतौल के पश्चिम से क्षीरोदकी नदी प्रवाहित होती है।

गौतम तीर्थ का उल्लेख वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, पद्मपुराण, स्कंदपुराण आदि प्राचीन ग्रंथों में है। वाल्मीकीय रामायण के बालकांड के ४८ वें अध्याय में विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के सिद्धाश्रम से जनकपुर जाने का वर्णन मिलता है, जिसमें वैशाली और जनकपुर के बीच के मार्ग पर गौतमाश्रम के अवस्थित होने की चर्चा आई है। यहीं अहल्यास्थान (अहियारी) में अहल्योद्धार की कथा वाल्मीकि ने कही है। वर्णन से पता चलता है कि यहाँ मिथिला का एक छोटा तथा निर्जन जंगल था, जिसमें एक प्राचीन और रमणीय आश्रम था, किंतु उस समय कोई ऋषि या मुनि उसमें नहीं रहता था। जब राम ने विश्वामित्र से इसका कारण पूछा, तब उन्होंने बतलाया कि यहाँ पहले गौतम ऋषि का आश्रम था, जो

अत्यंत ही दिव्य एवं देवताओं से पूजित था। उन्होंने यह भी कहा कि यहाँ गौतम ऋषि ने अपनी पत्नी अहल्या के साथ अनेक वर्षों तक तपस्या करते हुए निवास किया था :

मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः । पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥११॥
इदमाश्रम-संकाशं किन्विदं मुनिर्वाजितम् । श्रोतुमिच्छामि भगवन् कस्यायं पूर्व आश्रमः ॥१२॥
गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वमासीन्महात्मनः । आश्रमो दिव्य संकाशः सुरैरपि सुपूजितः ॥१५॥
स चात्र तप आतिष्ठदहल्या-सहितः पुरा । वर्षपूगान्यनेकानि राजपुत्र महायशः ॥१६॥

आश्रम के संबंध में इतना परिचय देने के पश्चात् विश्वामित्र ने अहल्या तथा इन्द्र की कथा कही, जिसमें इन्द्र ने जार का काम किया था। अतः, गौतम ऋषि अहल्या तथा इन्द्र को शाप देकर स्वयं हिमालय में तपस्या करने चले गए। तब से अहल्या यहाँ शाप-वश प्रस्तर-शिला बनकर जल में पड़ी है। इतनी कथा सुनकर राम ने जब आश्रम में प्रवेश किया, तब उन्होंने उस अपूर्व शिलाखंड को जिस रूप में देखा, उसका वर्णन वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है :

ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम् ।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ॥
प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव ।
धूमेनाभिपरीताङ्गीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥
तां तुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्र-प्रभामिव ।
मध्येऽम्भसो दुराधर्षां दीप्तां सूर्यप्रभामिव ॥

—वाल्मी० रा०, बा० का०, अध्या० ४९, श्लो० १३-१५

वाल्मीकीय रामायण के पश्चात् 'महाभारत' अपने वनपर्व (८४।१०९-१११) में गौतमाश्रम के स्थान पर 'गौतम वन' का नाम लेता है, जहाँ 'अहल्या-ह्रद' (अहल्या-झील) तथा अहल्याश्रम के होने का उल्लेख करता है। उसी के आस-पास वह एक 'उदपान तीर्थ' (कूप-तीर्थ) की चर्चा भी करता है, जो त्रिभुवन में अत्यन्त विख्यात था। वहाँ तीर्थ-यात्री अभिषेक-क्रिया करके अपने पापों का प्रक्षालन करते थे :

ततो गच्छेच्च ब्रह्मर्षे गौतमस्य वनं प्रियम् ।
अहल्यायाः ह्रदे स्नात्वा व्रजेच्च परमां गतिम् ॥
अभिगम्याश्रमं राजन् विन्दते श्रियमात्मनः ।
तत्रोदपानं धर्मज्ञ त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिषेकं कृत्वा तु वाजिमेधमवाप्नुयात् ॥

महाभारत के रचना-काल में 'मिथिलोपवन' का नाम 'गौतमवन' और वहाँ की झील का नाम 'अहल्याह्रद हो गया था। 'खिरोई' जिस चौर से प्रवाहित होती है, वही उस समय 'अहल्याह्रद' के नाम से विख्यात था। उदपान तीर्थ 'रतनपुर' के पास का 'अभिमान' नामक स्थान अथवा 'ततैला' ग्राम का कुंड होना चाहिए। 'उदपान' का बोधक यों तो

'अभिमान' गाँव ही जान पड़ता है। 'पद्मपुराण' कोई नई बात नहीं कहता है। वह अपने स्वर्ग खंड के ३८ वें अध्याय में २६ वें तथा २७ वें श्लोक के रूप में 'महाभारत' वाले उपर्युक्त श्लोकों को ही उद्धृत करता है।

अहियारी से डेढ़ मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में स्थित 'ततैला' ग्राम में ही गौतमाश्रम था, यह धारणा लोक में तो प्रचलित है; किंतु 'स्कंदपुराण' अपने हिमवत् खंड में इस बात की स्पष्ट चर्चा करता है कि ब्रह्मपुर में ही गौतम का आश्रम था। यद्यपि 'स्कंदपुराण' का यह अंश बाद में जोड़ा गया लगता है, फिर भी यह प्रक्षेप कम-से-कम चार सौ वर्ष पुराना तो माना ही जायगा :

आसीद् ब्रह्मपुरी नाम्ना मिथिलायां विराजिता ।
तस्या विराजते नित्यं गौतमो नाम तापसः ॥
अहल्या नाम तत्पत्नी पतिव्रता प्रियंवदा ।
सर्व लक्षणसम्पूर्णा आसीत् सर्वाङ्ग-सुन्दरी ॥

फिर, बृहत् विष्णुपुराण के मिथिला-माहात्म्य में भी गौतमाश्रम की चर्चा आई है, जिसे 'जनकपुर' के नैऋत्यकोण में कहा गया है : **गौतमस्याश्रमं पुण्यं याम्य-पश्चिम-कोणके।**

खिरोई नदी के वर्त्तमान प्रवाह के पश्चिम में 'ब्रह्मपुर' है, किंतु अहियारी (अहल्या-स्थान) खिरोई-धार के पूरब भाग में। ब्रह्मपुर गाँव के पूरब में 'ततैला' नामक स्थान में एक तालाब है, जिसे गौतमकुंड कहा जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष 'रामनवमी' के अवसर पर मेला लगता है और तीर्थयात्री इस कुंड में स्नान करते हैं। अहल्या से उत्पन्न 'शतानन्द' को गौतम ऋषि का पुत्र कहा गया है। शतानन्द राजा जनक के पुरोहित बतलाए गए हैं। किंतु वाल्मीकि रामायण से तो यही ज्ञात होता है कि जिस समय राम जनकपुर गए, उसके बहुत पहले गौतम ऋषि मिथिला छोड़ कर हिमालय में चले गये थे।

'ब्रह्मपुर' के संबंध में मैं एक बात की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिससे 'गौतमाश्रम' का नाम 'ब्रह्मपुर' पड़ा। यों तो भगवान् बुद्ध भी 'गौतम' कहलाते थे। मज्झिमनिकाय (२।४।३) के अनुसार, वे जब मिथिला गए थे, तब 'मखादेव' के आम्रवन में ठहरे थे। बुद्ध के मिथिला-प्रयाण की कथा 'मज्झिम निकाय' (२, ५, १) के 'ब्रह्मायु सुत्तंत' में भी कही गई है। वहाँ मखादेव के पुत्र का नाम 'निमि' और निमि के पुत्र का नाम 'कलार जनक' कहा गया है। इससे तो यह स्पष्ट है कि 'मज्झिम निकाय' मिथि को ही मखादेव कहता है, जिनके नाम पर इस क्षेत्र का नाम 'मिथिला' पड़ा है। बुद्ध ने आनंद को इन राजाओं की कथा सुनाई थी, जिससे ज्ञात होता है कि बुद्ध के बहुत पहले अतिप्राचीन काल में ही ये राजा मिथिला में हो चुके थे। 'ब्रह्मायु सुत्तंत' कहता है कि मखादेव के आम्रवन के पड़ोस में 'ब्रह्मायु' नामक एक वृद्ध ब्राह्मण था, जिसकी आयु उस समय १२० वर्ष की हो चुकी थी और ब्रह्मायु का शिष्य 'उत्तर माणवक' विद्वानों में ख्यात हो चुका था। मेरा ख्याल है कि वाल्मीकि का मिथिलोपवन और महाभारत का गौतमवन 'मज्झिम निकाय' का मखादेव के ख्यात आम्रवन था, जहाँ बुद्ध भी ठहरे थे और 'ब्रह्मायु' ब्राह्मण 'ब्रह्मपुर' का ही रहनेवाला था तथा

उसी विद्वान् ब्राह्मण के नाम पर गाँव का नाम 'ब्रह्मपुर' पड़ा। यह क्षेत्र मिथिला का सांस्कृतिक हृदय-प्रदेश था और यहाँ बड़े-बड़े ज्ञानियों का निवास था, जिससे बुद्ध भी यहाँ गए।

गौतमवन की चर्चा अति प्राचीन काल से आधुनिक काल तक भी की गई है। सन् १६१६ से १६८५ ई० के मध्य में होनेवाले मैथिल कवि गंगानन्द ने भी अपने 'भृङ्गदूत' काव्य में यहाँ के आम्रवन और जलाशय का मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है और जलाशय का नाम 'चापद' वतलाया है। 'चापद' का अर्थ यहाँ चौपदी यानी चतुष्पदी ज्ञात होता है, जिससे प्रतीत होता है कि यह जलाशय चारों ओर से समकोण था, जिसमें कमल-पुष्प भरे हुए थे :

तस्यादूरे त्रिभुवनपतेर्लोक-नेत्राभिरामा
बन्धो धीर व्रज निवसति ब्रह्मपूर्वापुराऽऽस्ते ।
यस्यामाम्रक्षितिरुहफलं पीतरक्तादिवर्णम् ॥
भुञ्जानानाममृत-निकृति र्जायते मानवानाम्
यत्र प्राच्यां हरिति हरते लोचनं चारुताभिः
लोकस्याम्भो-निधिरिवसखे चापदाख्य स्तडागः ।
तत्राघ्राय प्रणयिकमलव्रातमेकाहगम्यम्
रम्यं धाम त्रिभुवनपते भैरवस्याभ्युपेयाः ॥

जिस 'चापद' जलाशय का उल्लेख उपर्युक्त श्लोक द्वारा 'भृङ्ग-दूत' करता है, उस जलाशय का आधुनिक अस्तित्व 'रजोखर' नामक पोखर होना चाहिए। यह 'रजोखर' पोखर 'रतनपुर' तथा ब्रह्मपुर' के मध्य में है, जिसका निर्माण शिवसिंह ने कराया था, ऐसा कहा जाता है। इसी जलाशय के संबंध में मिथिला की यह कहावत बहुत ही प्रसिद्ध है : **पोखरि रजोखरि और सभ पोखरा, राजा शिवसिंह और सभ छोकरा।"**

अहियारी (अहल्यापुरी) गाँव ब्रह्मपुर से ढाई मील अग्निकोण में खिरोई नदी के पूर्वी किनारे की ओर दृष्टिगोचर होता है। वाल्मीकि-रामायण में वर्णित शिलाखंड के स्मारक-स्वरूप आज भी एक शिलाखंड एक मंदिर में सुरक्षित है। इस मंदिर को अहल्या-मंदिर कहा जाता है। मंदिर के पास ही एक जलाशय था, जिसे लोग अहल्याह्रद कहते थे; किंतु अब तो उसका भी नाम-निशान नहीं रह गया। ह्रद का अर्थ होता है—बड़ी झील, अतः मेरे जानते अहल्याह्रद वही चौर है, जिससे 'खिरोई' नदी प्रवाहित होती है। यह झील कभी अधवारा नदी के द्वारा वनाई गई है, अतः मेरी समझ से 'खिरोई' भी अधवारा की ही विच्छिन्न धारा है, जिससे होकर कभी 'अधवारा' नदी बहती थी। अधवारा नदी का नाम भी इसी कारण पड़ा कि यह 'अहल्या के घर' होकर अथवा 'अहल्या-धारा' (ह्रद) होकर कभी बहती थी, जिससे नदी का अपभ्रंश नाम 'अधवारा' है। अहियारी में भी राम नवमी का मेला लगता है और औरतें शिलाखंड पर सिंदूर तथा चूड़ियाँ चढ़ाती हैं। दरभंगा के महाराज छत्र सिंह (सन् १८०७ से १८३९ ई०) ने यहाँ एक जलाशय खुदवाया था और भगवान् राम का एक सुन्दर मंदिर भी बनवाया था।

खिरोई का प्रवाह-मार्ग :

यह पहले कहा गया है कि खिरोई का उद्गम कमतौल से पश्चिम में, और ब्रह्मपुर से पूर्वोत्तर कोण में तथा अहियारी के उत्तर में स्थित एक बड़े चौर से होता है। यह अपने उद्गम-स्थान से सीधे दक्षिण की ओर चलती है और कटरा-कमतौल-मार्ग को कमतौल से चार मील दूर नैऋत्य कोण में तथा ब्रह्मपुर से तीन मील दूर पूरब में पार करती है। कटरा-कमतौल-मार्ग भारत के प्राचीनतम मार्गों में एक है, जिसके सहारे पथिक वैशाली से जनकपुर को जाते-आते थे। वाल्मीकि-रामायण के वर्णन से तो यही पता चलता है कि राम-लक्ष्मण वैशाली से इसी मार्ग के द्वारा जनकपुर गये थे।

खिरोई नदी कटरा-कमतौल मार्ग को पार करके अहियारी के पश्चिम से तथा प्राचीन ग्राम 'कटैया' के दो मील पूर्व से दक्षिण की ओर चलती है और 'पैरा' ग्राम के पूरब में तथा कुसुमपट्टी के पश्चिम में दरभंगा सदर थाने की सीमा में प्रवेश करती है। 'पैरा' तथा 'कुसुम-पट्टी'—दोनों गाँव सदर थाने में पड़ते हैं। कुसुमपट्टी के दक्षिण में आकर 'खिरोई' थोड़ी दूर के लिए पूरब दिशा में मुड़ती है और फिर दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है। इस दक्षिणाभिमुख प्रयाण-क्रम में बहुआरा बुजुर्ग एवं मावोपट्टी-रघौली ग्राम इसके पूर्वी किनारे में पड़ते हैं। यहाँ से थोड़ी दूर दक्षिण की ओर बढ़ने पर फिर इसके पश्चिमी किनारे से (दाहिनी ओर) 'हसन-चक' और 'गोगउल' गाँव दिखाई पड़ते हैं। यहाँ से और दक्षिण बढ़कर जब यह 'बरिअउल' के नैऋत्य कोण में पहुँचती है, तब इसके दाहिने भाग में 'भरवारा' के दक्षिण से प्रवाहित होकर भवानीपुर की ओर से अग्नि कोण में आनेवाला एक साधारण-सा क्षेत्रीय स्रोत भी मिलता है। इस स्रोत को समेट कर 'खिरोई' अपना मुँह अग्निकोण में फेर लेती है, और शाहपुर गाँव को पहुँचती है। इसी शाहपुर में 'खिरोई' नदी सकरी से पश्चिम की ओर आनेवाले मार्ग को एक पुल-विवर-द्वारा पार करती है। उक्त मार्ग दरभंगा-नगर के उत्तरी भाग में वासुदेवपुर पहुँचता है, जहाँ यह केवटी रनवे से थोड़ा नैऋत्य कोण में झुक कर दक्षिण आनेवाले मार्ग के अलावा कमतौल से भी दक्षिण आनेवाले तथा दरभंगा से उत्तर बढ़नेवाले मार्ग से मिलता है और पश्चिम की ओर मुजफ्फरपुर जिले के कटरा थाने में प्रवेश कर लखनदेई, सिपरी, बागमती आदि नदियों की धाराओं को लाँघता एवं गायघट्टी होते हुए मुजफ्फरपुर को जाता है। शाहपुर गाँव वासुदेवपुर वाले चौरास्ते से चार मील पश्चिम में तथा दरभंगा नगर से छह मील दूर उसी रास्ते में स्थित है। यहाँ यह गाँव खिरोई के बिलकुल पूर्वी तट पर बसा है। शाहपुर से दक्षिण बहकर खिरोई 'मनियारी' नामक गाँव के पश्चिम में आती है और यहाँ से कुछ दूर जब और दक्षिण में बढ़ती है, तब एक बड़े चौर वाले क्षेत्र से अग्निकोण में अपनी धारा फेरती है तथा 'महनौली' नामक गाँव के पूरब भाग से बहती 'एकमीघाट' पहुँचकर व्याघ्रवती (छोटी बागमती) से संगम कर जाती है।

जीवछ-कमला

दरभंगा जिले के रोसड़ा थाने के पूर्वी भाग में 'फुहिया' गाँव के पास 'करेह' नदी से संगम करनेवाली जीवछ (जीववत्सा) नदी भी 'कमला' की ही प्राचीन धारा है, अतः यह 'जीवछ-कमला' (जीववत्सा-कमला) कहलाती है। दरभंगा जिले की भूमि के निर्माण में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका 'कमला' की है। इसने जिले की भूमि का निर्माण-कार्य पश्चिम में बेनीपट्टी थाने से पूर्व में खजौली थाने तक और दक्षिण में बहेरा एवं विरौल थाने तक किया है। इतनी दूर की भूमि में 'कमला' ने २०० वर्षों के भीतर ही कम-से-कम पाँच धारा-मार्गों का निर्माण किया है, जिसके चिह्न टूटी धाराओं के रूप में आजतक वर्तमान हैं और इन सभी धाराओं ने अब अपना अलग अस्तित्व बना लिया है। इन्हीं धाराओं में एक धारा का नाम 'जीवछ-कमला' है।

कमतौल के दक्षिण तथा बिसफी के नैऋत्य कोण में 'रघौली' के पास कमला की जो धार अधवारा-समूह वाली नदियों की धार के साथ संगम करती है, वहीं पहले इन धाराओं से एक बहुत बड़ा सम्मिलित ह्रद बनता था। आज यही ह्रद (चौर) बेनीपट्टी थाने की दक्षिणी सीमा है। किसी काल में कमला और अधवारा (अहल्या धारा) के ह्रद परस्पर जुड़े थे और अधवारा-समूह वाली नदियों की धार 'खिरोई' के प्रवाह से मिलकर बहती थी और बिलौती, जमुने, थोमने तथा कमला का पानी जीवछ के प्रवाह से होकर दक्षिण की ओर निकलता था। आज इस चौर के मध्य भाग से 'छोटी बागमती' बहती है तथा दरभंगा-सीतामढ़ी का रेलमार्ग भी इसी चौर के मध्य से गुजरता है। अतः यह चौर रेलवे-लाइन के दोनों भागों में बँट गया है और कृषि-योग्य भूमि बन गया है।

जीवछ का उद्गम तथा प्रवाह-पथ :

रघौली के पास कमला की प्राचीन धारा और छोटी बागमती के संगम के दक्षिण छोटी बागमती के किनारे 'दुबैल' नामक गाँव है। इसी दुबैल के पूर्व में स्थित चौर से सर्वप्रथम आज जीवछ का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, जो बेनीपट्टी थाने के बिलकुल दक्षिणी भाग में है। इस चौर से जीवछ की प्रथम दो धाराएँ चलती हैं। इनमें पहला तथा पश्चिम वाला स्रोत दुबैल के पास से चलता है और बिरखौली तथा कायमचक गाँवों से होते दरभंगा नगर के उत्तर 'वासदेवपुर' तथा 'बेला पैलेस' के पूरब में पहुँचता है और दरभंगा के पूर्वोत्तर भाग से बहता अग्निकोण दिशा की ओर बढ़ता है। किंतु, दूसरा और पूर्व भाग वाला स्रोत

उसी चौर से सिंघिया (बेनीपट्टी थाना) के पास से अग्निकोण में चलता है और तुरत सदर थाने में प्रवेश करके जलवारा, हनुमाननगर, डोमे होते हुए चमर्जन तथा मेघा गाँवों के मध्य में आकर पूर्व की ओर मुड़ता है और भुसकौल गाँव से डेढ़ मील पश्चिम में उत्तर से आनेवाले एक दूसरे स्रोत को ग्रहण करता है। यह स्रोत भी 'कमला' का ही प्राचीन स्रोत जान पड़ता है जो कालक्रम से बिलकुल विलग हो गया है। यह रैयाम और अँउसी बभनगावाँ मार्ग के उत्तर में स्थित 'रजौरा' गाँव के पास से प्रवाहित होकर दक्षिण आता है। वहाँ से दक्षिण चलकर भवानीपुर तथा खुटौरा के पश्चिम में दरभंगा-सकरी रेलमार्ग को पार कर पुरा, दिवारी, वोई आदि गाँवों के पश्चिम से ही चलता दरभंगा-बहेड़ा-मार्ग को पार करता है और इसके बाद तीन मील दक्षिण की ओर बढ़कर 'फतेहपुर' गाँव से दो मील पश्चिम में 'दुधैल' से प्रवाहित होनेवाले अपने पश्चिमी सखा-स्रोत से सम्मिलित हो जाता है, किंतु, अब यह दुधैल वाला स्रोत दरभंगा नगर के पूरब भाग तक प्रायः मृत हो गया है और बाढ़ का पानी भी अब तटों के मध्य न बहकर फैलते हुए बहता है।

जीवछ के दोनों स्रोत सम्मिलित होकर अग्निकोण में चलते हैं और 'बरुआरा' गाँव के पास यह हायाघाट से पूर्वोत्तर कोण में गंगिया, वासुदेवपुर तथा सेमराँव जानेवाले मार्ग को लाँघता है। बरुआरा से आध मील दक्षिण बढ़कर जीवछ नदी थोड़ी दूर के लिए पूर्व दिशा में मुड़ती है तथा पुनः अग्निकोण में प्रवाहित होकर जब आगे बढ़ती है, तब इसके दाहिने किनारे 'बिडनी' तथा बाएँ किनारे 'बिरम' नामक गाँव दिखाई देते हैं। बिरम के अग्निकोण में 'महपारा' नामक गाँव भी जीवछ के वाम पार्श्व में ही स्थित मिलता है। महपारा के दक्षिण तथा अग्निकोण में एक बहुत बड़ा चौर है, जहाँ कभी पहले 'तारसराय' स्टेशन के पास से बहकर दक्षिण की ओर आनेवाली कमला नदी की धार जीवछ से संगम करती थी। यह चौर बहेड़ा के पश्चिम में है, जिससे होकर तारसरायवाली कमला की धार अलग होकर बहती है।

महपारा के बाद जीवछ उक्त चौर के पश्चिमी भाग से अग्निकोण में बहती दक्षिण आती है और फिर पूरब दिशा में मुड़कर 'चकला' गाँव पहुँचती है, जो इसके बाएँ तट पर बसा है और 'बहेड़ा' थाने में पड़ता है। यहाँ से जीवछ दक्षिण चलकर फिर जब अग्निकोण में प्रवाहित होती है, तब इसके दाहिने भाग में आथर, सोसारी तथा तुर्की गाँव दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ से फिर यह पूर्व में मुड़ती है और 'नवानी' गाँव के पास पूर्वोक्त 'तारसराय' रेलवे स्टेशन के पास से बहकर आनेवाली 'कमला' की धार से मिल जाती है। 'नवानी' गाँव जिले के नक्शे में 'लवानी' नाम से अंकित है, जो संगम के पूर्वी किनारे में स्थित है। 'नवानी' दरभंगा जिले का प्रसिद्ध ग्राम है, जहाँ विद्वानों की विशिष्ट परंपरा रही है। नवानी गाँव और जीवछ-धार के वर्णन के पहले अब 'कमला' की उस धार का विवरण देना ठीक होगा, जो मधुबनी के पश्चिम तथा तारसराय से बहती हुई 'जीवछ' से 'नवानी' में संगम करती है।

सहायक पुरानी धाराएँ :

मैंने 'बागमती' के प्रसंग में लिखा है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व हिमालय की जिन नदियों ने उत्तर बिहार की भूमि का निर्माण आरंभ किया था, वह आज तक रुका नहीं है। ये नदियाँ आज भी उसी गति-विधि और एकनिष्ठ भाव से 'उत्तर बिहार' की भूमि का अनियंत्रित भाव से निर्माण कर रही हैं। आज भी इन पर उसी प्रकार प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में जवानी चढ़ती है और नेपाल से हिमालय-नैहर के 'बिहार' की ससुराल में अभिसार के लिए दौड़ती हैं। किंतु इनका अभिसार गोपन-भाव से नहीं होता, वरन् ये दिन-दहाड़े शोर मचाती और हंगामा करती तथा लाखों टन मिट्टी और बालुकणों को समेटती 'बिहार' के लिए दौड़ती हैं, तब आधुनिक बहुओं की तरह सारी पुरानी व्यवस्था के प्रति तूफान खड़ा कर देती हैं। कहीं ताल-तलैयों को पाट देती हैं, तो कहीं बाग-बगीचों को साफ कर देती हैं और कहीं गाँवों को उजाड़ डालती हैं। परम स्वतंत्र होकर जिधर मन आता, उधर ही करवट माँजती हैं और अपने चंचल चरणों की चाल में ऐसी द्रुत गति भरती हैं कि इनके घाँघरे जैसी भँवरदार लहरियों की धार 'उत्तर बिहार' की तमाम भूमि को दोखार डालती हैं। इनकी ऐसी गृहस्थी से पुराने मुहाने भर जाते हैं और नये मुहाने खुल जाते हैं। फलतः, उत्तर बिहार की भूमि निरंतर समृद्ध और ऊँची बनती जा रही है। दरभंगा जिले की 'कमला' भी इन्हीं नदियों में एक है, जो वस्तुतः सर्वसम्पत्सम्पन्न लक्ष्मी की तरह चंचला होते हुए भी ऋद्धि-सिद्धि-प्रदात्री और पुण्यवती नदी है।

दरभंगा जिले में 'कमला' नदी पंचमुखी हो गई है। यह अपने पाँचों मुखों के द्वारा पश्चिम में बेनीपट्टी के नैऋत्य कोण में स्थित कमतौल से आरंभ करके पूर्व में खजौली थाने के 'बाबूबरही' तथा दक्षिणी भाग में लहेरियासराय, बहेड़ी, सिंघिया, बिरौल और मघेपुर थाने तक अपना आधिपत्य जमाती है। इसका पहला धारामुख बेनीपट्टी होते हुए कमतौल के दक्षिण तथा 'रघौली' के पास छोटी बागमती से मिलता है और इसी धारा-मार्ग की टूटी-बिखरी पगडंडियाँ लहेरियासराय स्टेशन के सटे दक्षिण वाले चौर से अग्निकोण में चलने वाली तथा जोगियारा, उधरा एवं बहेड़ी होकर जीवछ से मिलने वाली धाराएँ हैं। सन् १८९३ ई० और सन् १८९८ ई० में इस प्रवाह ने बड़ा ही उत्पात मचाया था, जिसमें दरभंगा नगर तबाह हो गया था। कमला का दूसरा मुख बेनीपट्टी वाले प्राचीन प्रवाह से मिलकर किंतु जयनगर थाने के 'मनमोहन' तथा मढ़िया गाँवों के पास से अलग होकर, दक्षिण चलता था और प्रसिद्ध गाँव 'मलमल' के पश्चिम से ही 'कुसमउल' तथा 'ककरउल' (कपिलेश्वर स्थान) होते दक्षिण की ओर आकर 'तारसराय' स्टेशन के पास से बहेड़ा थाने की ओर आता था। फिर तीसरा मुख जयनगर से ही दक्षिण चलता और सौराठ होते 'मधुबनी' नगर के पश्चिम में आता और 'मलंगिया' गाँव के पास ककरउल वाली धार से मिलकर 'तारसराय' आता था। इस धारा-मुख का नाम सौराठ के उत्तर में **बलरवा** नदी है। बाद में यही धारा लक्ष्मीपुर, कालिकापुर तथा देपालपाली से पश्चिम मुड़ती हुई लक्ष्मीपुर से सीधे

दक्षिण की ओर बहने लगी और राजनगर तथा परिहारपुर होते मधुबनी के पूर्व से सरकने लगी और सकरी स्टेशन से होकर दक्षिण की ओर जाने लगी। 'कमला' का चौथा धारा-मुख १९ वीं शती के अंत में जयनगर से ही न्यूनाधिक अग्निकोण में झुक कर चलने लगा और मधुबनी-जयनगर रेलमार्ग के पूर्वी किनारे से ही खजौली तथा मिरजापुर गाँवों से होते परिहार वाली धार से मिलकर रामपट्टी, नवहथ, पंडौल एवं सकरी होकर जिले के दक्षिणी भाग में जाने लगा। किंतु, इसका पाँचवाँ प्रवाह-मार्ग तो आज से ८-१० वर्ष पहले जयनगर से पूर्व दिशा में मुड़कर **धउरे** नदी की धार तथा **सोनी-धार** को समेटता हुआ **बलान** नदी के मार्ग पर अपना अधिकार जमाता 'झंझारपुर' होकर बहने लगा है और यही धारा-मार्ग आज 'कमला' का प्रधान मार्ग बन गया है। आज 'बलान' नदी से मिलकर 'कमला' बहने लगी है, अतः अब यह 'कमला-बलान' कहलाती है। इन पाँचों प्रवाह-मार्गों ने जिले के दक्षिणी भाग में स्थित बहेड़ा, बहेड़ी, बिरौल तथा सिंघिया थानों में पहुँचकर अपनी अनेक प्रवाह-पगडंडियाँ बना ली हैं।

सन् १९०० ई० तक निश्चित रूप से कमला की बरसाती बाढ़ 'मधुबनी' के पश्चिमी भाग की धाराओं से मिलकर बहती थी और तब जीवछ (जीववत्सा)-धार की प्रधानता थी और यह धार 'जीवछ-कमला' कहलाती थी। किंतु सन् १९०२ ई० से मधुबनी-जयनगर रेलमार्ग के पूर्वी भाग से गुजरनेवाली कमला की धारा प्रधान हो गई और 'बलान' की धार तक को समेट लेने के कारण 'कमला-बलान' कहलाने लगी। इन्हीं धाराओं में अब यहाँ कमला के दूसरे प्रवाह-पथ का वर्णन किया जायगा, जो 'नवानी' के पास 'जीवछ' से संगम करता है। दरभंगा गजेटियर में कमला की बाढ़ की चर्चा सन् १८९३ से १९५८ ई० तक विशद रूप में मिलती है, जिससे पता चलता है कि 'कमला' बराबर अपने पाँचों धारा-मुखों से बाढ़ का पानी बहाती रही है। किंतु अब तो तटबंध का निर्माण हो जाने के कारण इसका 'बलान' वाला धारा-मार्ग ही प्रधान बन गया है।

कमला का दूसरा धारा-मार्ग जयनगर थाने में जहाँ **डोरी** (धवरी) नदी कमला में संगम करती है, उसी जगह 'पंचरतन' तथा 'मढ़िया' गाँव हैं। मढ़िया के नैऋत्य कोण में 'मनमोहन' नामक गाँव हैं। इन्हीं दोनों गाँवों के मध्य इसका दूसरा धारा-मार्ग बेनीपट्टी वाली धार से अलग होकर दक्षिण चलता है और 'अरघवा' तथा 'बराँटपुर' के पूरब से ही चलता 'मलमल' गाँव के पश्चिम 'बेलउना' पहुँचता है। इसके पश्चात् यह धार परसुल, झाँझी, कुसमउल, पउना, विजयपुरा तथा रहिका गाँवों से दक्षिण की ओर गुजरती है। 'रहिका' में ही 'उर्वशीदेव महादेव' का मंदिर है, जिसे 'उर्वशी' नामक रानी ने स्थापित कराया था। **रानी उर्वशी** दरभंगा के ८ वें महाराज **नरपति ठाकुर** (सन् १६९० ई० से १७०१ ई०) की पत्नी थीं। नरपति ठाकुर ने अपना निवास रहिका में ही रखा था। मंदिर का जीर्णोद्धार महाराज रमेश्वर सिंह ने कराया था। मधुबनी से पश्चिमोत्तर कोण की ओर बेनीपट्टी जाने-वाली सड़क इसी 'रहिका' में कमला के इस धारा को पार करती है। 'रहिका के दक्षिण

कमला के इसी धारा-मार्ग पर ककरौड़ (ककरउल) गाँव है, जो इस धारा-मार्ग से लगभग डेढ़ मील पूर्व में बसा है और केवटी-रनवे से उत्तर-पूर्व कोण में स्थित सौराठ जानेवाले मार्ग पर स्थित है। ककरौड़ में ही मिथिला का प्रसिद्ध तीर्थ कपिलेश्वर स्थान है, जहाँ कपिलेश्वर महादेव का मंदिर है। किंवदंती है कि प्रसिद्ध सांख्यदर्शनकार कपिल मुनि ने यहाँ शिवलिंग की स्थापना की है। कपिलेश्वर महादेव के वर्त्तमान मंदिर को दरभंगा-नरेश महाराज राघव सिंह (सन् १७०१ ई०-१७३९ ई०) ने बनवाया था। मंदिर के पुजारियों की जीविका की व्यवस्था पहले दरभंगा-राज की ओर से होती थी। कपिलेश्वर-मंदिर के पास यों तो प्रति रविवार को मेला लगता है; पर प्रतिवर्ष फाल्गुन शिवरात्रि के दिन बहुत बड़ा मेला लगता है, जो लगभग एक सप्ताह रहता है। यह एक बहुत बड़ा गाँव है, जिसमें कमलपुर, फूहरी, महिनाथपुर, रामपुर, बभनगढ़ी, डुमरी और तेलिया पोखर नामक सात टोले हैं। यहाँ ४० पोखरे, चार प्राचीन टीले और छह मंदिर हैं। यह मधुबनी से सिर्फ पाँच मील पश्चिम में स्थित है।

प्राचीन मिथिलापुरी और उसका क्षेत्र :

ककरौड़ से तीन मील दक्षिण कमला की इस धारा के दाहिने किनारे (पश्चिम तट) में जगती नामक गाँव है। यह 'जगती' गाँव भी दरभंगा से केवटी-रनवे होते हुए सौराठ तथा जयनगर जानेवाले मुख्य मार्ग पर अवस्थित है। इस गाँव के संबंध में मुझे जो एक उल्लेख मिला है, वह आश्चर्यमय है और सर्वसाधारण के लिए अविश्वसनीय भी; पर विद्वानों के विचारने योग्य अवश्य है। अभिलेख से पता चलता है कि १४ वीं शती में होनेवाले जैन विद्वान् जिन प्रभवसूरि के समय यह किंवदंती थी कि 'मिथिला' नाम की नगरी यही 'जगती' नामक गाँव है। इसके बहुत ही नजदीक जनक के भाई 'कनक' का निवास 'कनकीपुरी' नामक गाँव में था। जिन प्रभवसूरि ने 'विविधतीर्थ-कल्प' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसका १९ वाँ कल्प 'मिथिला तीर्थ' है। पुस्तक के ३२ वें पृष्ठ के ये वाक्य विचारणीय हैं—**इहेव भारहे वासे पुव्वदेसे विदेहा नाम जणवयो संपइ काले तीरहुत्ति देसो त्ति भण्णइ। ××× तत्थ रिद्धित्थ मिअसमिद्धा मिहिला नाम नयरी हुत्था। संपयं जगइ त्ति पसिद्धा। एचाए नाइदूरे जणय महरायस्स भाउणो कणयस्स निवासट्ठाणं कणइपुरं वट्टइ।**[१]

मेरा खयाल है कि 'ककरौड़' का कमलपुर अथवा इसके दक्षिणस्थित 'कोकरी' 'कनकीपुर' होगा और इन्हीं दोनों में से किसी एक में महाराज 'कनक' का निवास स्थान होना चाहिए। जिन प्रभवसूरि का पाँच सौ वर्ष पूर्व का उल्लेख यों ही टाला नहीं जा सकता है। 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर भी जनकपुर की स्थिति मधुबनी के पश्चिम अथवा पश्चिमोत्तर भाग में ही कहीं होनी चाहिए। 'जगती' के दक्षिण कमला की इस धार के पूरवी किनारे 'इजरापट्टी जगत' नामक गाँव भी है और इसके दक्षिण में इस धारा के पूर्वी किनारे

१. प्रकाशक : सिन्धीजैन ज्ञानपीठ, शान्तिनिकेतन (बंगाल), विक्रमाब्द १९९०, खिष्टाब्द १९३४।

ही 'मलंगिया' नामक गाँव है, जिसके अग्निकोण में और 'खजुरी' गाँव के पश्चिम में कमला की तीसरी धारा इस दूसरे धारा-मार्ग से संगम करती है। यह तीसरा धारा-मार्ग बेनीपट्टी वाले प्रवाह-पथ से 'जयनगर स्टेशन' के पश्चिमोत्तर कोण में ही अलग होता था, और जय-नगर-स्टेशन के पश्चिम से ही दक्षिण की ओर चलता था एवं शिलानाथ गाँव के पूर्व से ही 'कुआर' गाँव होते 'एकडारा' आता था। इसके बाद दक्षिण बढ़कर 'लक्ष्मीपुर गाँव होते 'देपालपाली' के उत्तर से ही पश्चिम मुड़ता था और कालिकापुर होते 'मलमल' के पूरब पहुँचता था, जहाँ से फिर नैऋत्यकोण में मुड़कर 'कोलुआही' तथा 'धांग' नामक गाँवों को आ जाता है। इस भाग में इस धारा-मार्ग का नाम **बलरवा** कहा जाता है। 'बलरवा' के पूर्वी किनारे 'कोलुआही' बसा है और 'धांग' इसके पश्चिमी किनारे दाहिने भाग में है। कलु-आही में पाँच मार्गों का मिलन होता है। हरलाखी से एक मार्ग अग्निकोण में आता है और दूसरा 'जयनगर' से चलकर दक्षिण में। फिर, तीसरा मार्ग 'मिरजापुर' एवं 'राजनगर' से नैऋत्य कोण में चलकर 'कोलुआही' पहुँचता है। चौथा मार्ग 'मधुवनी' से सीधे उत्तर की ओर चलता 'कोलुआही' पहुँचता है और पाँचवाँ मार्ग दरभंगा नगर से 'केवटी-रनवे' और वहाँ से पूर्वोत्तर कोण में सरकता हुआ यहाँ आता है। मधुवनी तथा राजनगर से हर-लाखी जानेवाला मार्ग 'कोलुआही' में ही 'बलरवा'-धार को लाँघता है। इस प्रकार यह प्रवाह-मार्ग जब धांग के दक्षिण बढ़ता है, तब यह क्रमशः मुरेथ, केवटा, शुभंकरपुर, ओह और सौराठ आता है। उक्त शुभंकरपुर से पूरब नदी के वाम पार्श्व में डेढ़ मील दूर 'डोकहर' नामक गाँव है, जो मधुवनी से उत्तर दिशा में 'हरपुर' तथा 'नरथ' जानेवाले मार्ग पर अव-स्थित है। यह स्थान मधुवनी से छह मील उत्तर में है। यहाँ राजेश्वरी देवी का एक प्राचीन मंदिर है, जिसके पश्चिम में 'बिंदुसर' नाम का एक जलाशय है। यहाँ एक मेला लगता है, जो वस्तुतः औरतों का मेला है। मिथिला का प्रसिद्ध और ग्रामीण नारी-सौंदर्य इस मेले में देखने योग्य होता है।

कमला की इस धारा के पश्चिम भाग में मिथिला की सबसे पवित्र और महत्त्वपूर्ण भूमि 'सौराठ' है, जहाँ दुल्हों का मेला लगता है। मैथिल ब्राह्मणों के विवाहेच्छुक युवक सज-धजकर मेले में आते हैं; और ठाट-बाट से कतारों में अपना आसन जमाते हैं। कन्यापक्ष के लोग इन्हीं दुल्हों में अपनी कन्या तथा हैसियत के योग्य वर का चुनाव करते हैं। वंश और गोत्र की पंजी रखनेवाले तथा जाननेवाले पंजीकार कहलाते हैं, जो वर और कन्या-पक्ष के खानदान का हुलिया बतलाते हैं। कन्या तथा वर-पक्ष के लोग परस्पर एक दूसरे के वंश और गोत्र का विवरण जानकर मेले में ही विवाह की बात पक्की कर लेते हैं। सुनते हैं, कुछ शती पूर्व यह मेला 'झंझारपुर' में लगता था; पर दरभंगा महा-राज माधव सिंह ने सौराठ में वर-मेला लगाने की व्यवस्था की; इसलिए कि यह भूमि विद्वानों द्वारा पवित्र और प्राचीन बतलाई गई। माधव सिंह का राज्य-काल मिथिला में सन् १७७६ से १८०६ ई० के मध्य में वर्त्तमान था।

सौराठ की पवित्र भूमि की सीमा पूरब में 'कनइल' गाँव तथा कमला का तट माना गया है। पश्चिम में पोखरौनी गाँव तथा दरभंगा-जयनगर-मार्ग, उत्तर में 'कपसिया' ग्राम और दक्षिण में 'जगतपुर' गाँव इस पुण्य भूमि की सीमा है। मैं समझता हूँ, जनक की पुत्री सीता के स्वयंवर की सांस्कृतिक स्मृति में ही यहाँ वरों का मेला लगता है, जिनका चुनाव कन्या नहीं करती; वल्कि कन्यापक्षवाले करते हैं। यहाँ का शिवलिंग राजा माधव सिंह द्वारा ही स्थापित है और उन्होंने मंदिर का निर्माण भी आरंभ किया था; पर दुर्भाग्य-वश इसे वे पूरा नहीं कर सके। मंदिर की पूर्णता उनके पुत्र महाराज छत्र सिंह ने कराई थी, जिसका उल्लेख मंदिर के शिला-लेख में आज भी प्राप्त है। छत्र सिंह ने यहाँ एक धर्मशाला और एक जलाशय का भी निर्माण कराया था। छत्र सिंह द्वारा निर्मित जलाशय के किनारे ही वरों का मेला लगता है और इस जलाशय का नाम अब गाँधी-सरोवर रखा गया है। यहाँ छोटे-वड़े २२ तालाब आज भी वर्त्तमान हैं। सौराठ के पास का 'चितहा' नामक चौर (झील) कमला की इसी धारा की देन है। सौराठ गाँव कमला की इस धारा से एक मील पश्चिम में स्थित है।

सौराठ के दक्षिण कमला के इस पुराने धारा-मार्ग पर 'जगतपुर' नामक प्राचीन ऐति-हासिक गाँव है। भौगोलिक दृष्टिकोण से तो यही लगता है, जिन प्रभवसूरि के काल में जिस 'जगती' नामक गाँव को 'मिथिला' नगरी कहलाने की किंवदंती प्रचलित थी, वह 'जगती' यह 'जगतपुर' नामक ग्राम है और राजा के भाई कनक का 'कनकीपुर' गाँव का नाम आज 'कनइल' है, जो 'जगतपुर' के समीप में है। जगतपुर के वाद कमला की यह धार दक्षिण वढ़कर 'मधुवनी' नामक प्रसिद्ध उपनगर को पहुँचती है, जो इसके पूर्व भाग में अव-स्थित है। मधुवनी नगर जिले का उपमंडल है, जहाँ सरकारी कचहरियाँ वर्त्तमान हैं। सड़क-मार्ग के द्वारा जिले के हर प्रसिद्ध स्थानों से इसका जुड़ाव है। मधुवनी के बाद यह खानजी-पुर नामक गाँव को आती है, जहाँ से नैऋत्य कोण में मुड़ती हुई ककरौड़वाली कमला-धार से, खजुरी गाँव के पश्चिम में, संगम करती है। मैंने पहले लिखा है कि जीवछ-कमला उस विच्छिन्न धारा का नाम है, जो दरभंगा नगर के उत्तर तथा कमतौल के अग्निकोण में स्थित दुवैल नामक गाँव से निकलकर अग्निकोण में बहती हुई 'गौंसा-घाट' आती है। किंतु कक-रौड़ होकर वहनेवाली कमला की दूसरी धारा और सौराठ के पूर्व से वहनेवाली तीसरी धारा दोनों यहाँ परस्पर मिलती हैं और 'तारसराय' आती हैं। ये दोनों धाराएँ भी 'जीवछ' कह-लाती हैं। इस प्रकार, कमला की ककरौड़ (कपिलेश्वर महादेव) और सौराठवाली धाराएँ खजुरी के पश्चिम में मिलती हैं। इसी संगम के पश्चिम 'रैयाम' नामक स्थान है, जहाँ की चीनी-मिल प्रसिद्ध है। अव सौराठवाली धारा प्रायः लुप्त-सी हो गई है; पर ककरौड़वाली धारा आज भी उजागर है।

रैयाम के पूरव-पूरव ही दक्षिण की ओर चलती हुई कमला की यह धार अपने तटों पर नीमा, सोनकर, गोखुल, पचगछिया, अंधरी, लोआन आदि गाँवों को तारती-झारती 'तारसराय' आती है। तारसराय उत्तर-पूर्व रेलवे के दरभंगा-झंझारपुर रेल-लाइन का

एक स्टेशन है। तारसराय में उक्त रेल-लाइन को पार कर थोड़ा-सा अग्निकोण में झुकती हुई यह अपने प्रवाह-पथ का निर्माण करती है। तारसराय के पश्चात् कमला की इस अग्निकोणवाहिनी धारा के किनारे तेलहन, नैनाघाट, रन्ना, मक्षियांव, आमी आदि गांव हैं। मझियांव और आमी के पूरब में 'तरौनी' गांव है, जहाँ मिथिला के गण्य-मान्य विद्वानों ने जन्म लिया। इसी गाँव के निवासी महामहोपाध्याय पं० परमेश्वर झा थे, जिन्होंने मैथिली भाषा में 'मिथिला-तत्त्व-विमर्श' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा है। आमी के बाद कमला दक्षिण दिशा में चलती है और सेमरांव और सुपौल गांवों को आती है। कुछ लोगों ने इस सेमरांव को नान्यदेव की राजधानी कहा है; जो तथ्यहीन बात है। नान्यदेव की राजधानी वाला 'सेमरांव' चंपारन जिले के पूर्वोत्तर कोण की ओर नेपाल-तराई में अवस्थित है। उसी सेमरांव की स्मृति में यह सेमरांव बसाया गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। भ्रम का प्रथम कारण यह है कि दोनों का नाम एक है और दूसरे, इस सेमरांव में भी महाराज हरिसिंह देव ने एक 'सुरवय' नामक जलाशय खुदवाया था, जिसका वर्णन सांधिविग्रहिक चण्डेश्वर ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'कृत्य रत्नाकर' में इस प्रकार किया है :

कुमुदवनेन्दु शङ्खशकलाभजलं यतीनां
मन इव तारकाम्बरसमं सिमरामपुरे ।
पवनजवोद्धूताम्बुजरजः पटवासचयं
किरदिव दिङ्मुखे नवमचीखनद्देवसरः ॥१८॥
आदिग्धो जलधिस्त्वया चुलुकितः क्षारोदकेनेहि मा-
मापातुं मधुरं घटोद्भवमुने यद्यस्ति शक्तिस्तव ।
इत्युच्चैर्वदतीव वीचितुलिताम्भोधिस्फुटाम्भोभरा
रावै रुद्यत वाग्निरात्म-निहिता हङ्कारमेतत्सरः ॥१९॥

उक्त श्लोकों में इस जलाशय की स्वच्छ और अगाध जलराशि के साथ इसकी विशालता का भी वर्णन किया गया है। इसमें कुमुद के वन, चाँद और शंख के चूर्ण की तरह जल को स्वच्छ कहा गया है और तारों से भरे आकाश के समान विस्तृत बतलाया गया है। दूसरे श्लोक में इसे समुद्र से भी बड़ा और अगाध कहा गया है, जिससे अगस्त्य मुनि को चुनौती दिलवाई गई है कि तुम यहाँ आओ और जितना जी चाहे, उतना जल मुझसे पीओ। इस जलाशय के निर्माण के संबंध में एक किंवदंती है कि जिस समय जलाशय खोदा जा रहा था, उस समय इसके ऊपर मोमजामे का इतना विशाल वितान ताना गया था कि कहीं से उसमें वर्षा का पानी नहीं पहुंच सके। इस जलाशय की खुदाई में कई वर्षों का समय लगा था। फसली सन् १२८१ (सन् १८७४ ई०) तथा १३२६ (सन् १९०९ ई०) में, इस क्षेत्र में पड़े भयंकर अकाल में दरभंगा जिले के नदी-नाले-सरोवर सभी सूख गये थे, परंतु उस सयय भी 'सुरवय' सरोवर में २० फुट गहरा पानी जमा था।[१]

---

१. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १३०-१३१।

आमी के दक्षिण कमला के इस धारामार्ग के दाहिने किनारे 'वासुदेवपुर' नामक गाँव है और इससे अग्निकोण में नदी के दाहिने किनारे ही 'देवकुली' है। दोनों गाँव दरभंगा-बहेड़ा-राजमार्ग पर बसे हैं। वासदेवपुर दरभंगा से ११ मील तथा देवकुली १२ मील दूर अग्निकोण में नदी के किनारे हैं। देवकुली भी महाराज देवसिंह के नाम पर बसा ज्ञात होता है। ये दोनों गाँव सदर थाने के हैं। इसी देवकुली के दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में 'कमला' की यह धार अपना ह्रद बनाती थी, जहाँ अब कृषि-योग्य भूमि बन गई है। देवकुली से थोड़ा पूर्व में मुड़कर यह धार दक्षिण की ओर अपनी चौर-भूमि से चलती है और बाएँ किनारे 'जकौली' तथा 'बलनी' गाँवों को निहारती अग्निकोण में और तब पूरब दिशा में मुड़कर 'कापी' तथा 'जरसोन' गाँवों को पहुँचती है। कापी गाँव इसके दाहिने भाग में और जरसोन बाएँ भाग में स्थित हैं। जरसोन बहेड़ा से डेढ़ मील दक्षिण बहेड़ा-बहेड़ी मार्ग के किनारे है। जरसोन से यह धार दक्षिण मुड़ती है और 'नवानी' के पास पूर्वकथित 'जीवछ-धार' से संगम कर जाती है। नवानी भी बहेरा-बहेरी मार्ग पर ही अवस्थित है और यहीं यह मार्ग जीवछ को लाँघता है। इस प्रकार, कमला की पहली, दूसरी और तीसरी प्रवाह-पद्धति का मिलन 'नवानी' में होता है और ये तीनों धाराएँ 'जीवछ' कहलाती हैं।

नवानी के बाद प्रवाह-पथ :

नवानी में 'जीववत्सा' परिपूर्ण होकर प्रायः पूर्व-वाहिनी बनती है और कटवास गाँव को अपने दाहिने तट पर निहारती है। फिर, वहाँ से पूर्व जाकर दो भागों में विभक्त हो जाती है। विभक्तीभूत दोनों धाराएँ समानांतर अग्निकोण में चलती हैं, जिनमें बाईं भुजा सिंघिया थाने में घुसकर उस थाने के 'हरनगर' गाँव के उत्तर में स्थित 'महरी' गाँव के पास 'सकरी' से बहकर आनेवाली 'कमला' नदी से मिल जाती है। इसकी दोनों भुजाएँ 'बहेड़ा' थाने में अलग होती हैं; जिनमें बाईं भुजा तुरत बिरौल थाने में घुसती है और कहुआ, नसहर, बलिया और अफजल पहुँचती है, जहाँ से यह दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है। दक्षिणवाहिनी होने के क्रम में यह अकबरपुर तथा हाँटी आती है। हाँटी के नैऋत्य कोण में यह सिंघिया-बिरौल मार्ग को पार करके सिंघिया थाने में प्रवेश करती है और एक मील दक्षिण जाकर 'बेला' नामक ग्राम को पहुँचती है। बेला के सटे नैऋत्य में पहुँच कर पूर्व की ओर मुड़ती है और 'बरहमपुर' ग्राम होते 'महरी' के पास यह जीवछ 'सकरी वाली' कमला-धार से मिल जाती है।

किंतु, जीवछ की दाहिनी भुजा ही इसकी प्रधान धारा मानी जाती है। यह दाहिनी धार पहले दक्षिण दिशा की ओर निकलती है और तब अग्निकोणवाहिनी होकर 'सजनपुर' गाँव होते 'ब्रह्मपट्टी' गाँव को आती है और यहाँ यह बहेड़ा थाने से निकलकर बिरौल थाने में घुसती है। यहाँ से आगे बढ़ने पर इस प्रवाहमार्ग के दाहिने किनारे पड़री, साहो, अथार तथा सहसराम ग्राम मिलते हैं। 'साहो' प्राचीन और ऐतिहासिक ग्राम है, जहाँ 'देकुली' तथा 'पतोर' से एक सड़क अग्निकोण में चलती हुई यहीं आकर बंद हो जाती है। सहसराम से अग्निकोण में चल कर 'जीवछ' नदी 'पोखराम' आती है। पोखराम का संस्कृत नाम 'पुष्करग्राम' है और

यह भी एक ऐतिहासिक ग्राम है। पोखराम से जब जीवछ की यह धार दक्षिण दिशा में दौड़ती है, तब समस्तीपुर-अनुमंडल के सिंघिया थाने में प्रवेश करती है। सिंघिया थाने में प्रवेश करते ही इसे सिंघिया-बिरौल-मार्ग मिलता है। यहीं 'कमला' की एक अति प्राचीन और टूटी हुई धार जीवछ के दाहिने भाग में संगम करती है। यह ठूँठी धार लहेरियासराय स्टेशन के अग्निकोण में स्थित चौर से चलती है, जहाँ गंगापट्टी नामक गाँव है। गंगापट्टी के पास से यह निरंतर अग्निकोण में बहती उधरा, कुंजी, वेहरउना, धनौती, गंगदह, बहेरी के उत्तर में स्थित अमटा, दोहदनारायण, मधुबन तथा बंधौली आदि गाँवों से गुजरती बिरौल थाने के शिवपुर एवं सिरिसिया गाँव को आती है। उक्त गङ्गदह गाँव के उत्तर **हावीडीह** नामक स्थान है, जो वहेड़ी-बहेड़ा मार्ग के बिलकुल किनारे है। इसी हावीडीह में रामसिंह देव की पत्नी **सुहब देवी** की आज्ञा से मंत्री कर्मादित्य ने हैहट्ट नामक देवी की प्रतिमा स्थापित कराई थी, जिसके संबंध में यह श्लोक है :

अब्दे नेत्रशशांकपक्ष-गणिते श्री लक्ष्मणक्ष्मापते
मासि श्रावण-संज्ञके मुनितिथौ स्वात्यां गुरौ शोभने।
हावी पट्टन संज्ञके सुविदिते हैहट्टदेवी शिवा
कर्मादित्य सुमन्त्रिणेह विहिता सौभाग्य-देव्याज्ञया ॥

इस भाग में यह विच्छिन्न धारा 'कमला' ही कहलाती है, जिससे स्पष्ट है कि कमला की जीवछ-धार कभी इसी मार्ग से बहती थी। यह मुफस्सिल थाने से चलकर वहेड़ा थाने को पार करती शिवपुर के पास विरौल थाने के नैऋत्य भाग में प्रवेश करती है। यहाँ शिवपुर के दक्षिण 'सिरसिया' है और इसके दक्षिण 'देवकली' नामक प्राचीन गाँव है। महाराज देव सिंह की राजधानी जहाँ थी, वह 'देवकुली' है और लहेरियासराय से डेढ़-दो मील दूर अग्निकोण में है। मुफस्सिल थाने में एक और 'देवकली' है, जो कमला की तारसरायवाली धार के किनारे तथा वहेड़ा से चार मील पश्चिमोत्तर भाग में दरभंगा जानेवाले मार्ग के किनारे है। किन्तु यह 'देवकली' सदर अनुमंडल तथा 'विरौल' थाने का अंतिम गाँव है, जो बिरौल से पश्चिमोत्तर कोण में सात मील तथा वहेरी के अग्निकोण में चार मील दूर है। यह कोई निश्चय ही प्राचीन स्थान है, जिसके डीह के ऊपर खड़े पीपल वृक्ष के मूल भाग के गर्त्त में देवी-देवताओं की कई प्राचीन प्रस्तर-मूर्त्तियाँ हाल तक वर्तमान थीं।

सिरसिया से यह कमला सीधे अग्निकोण में चलती है और कमरकलाँ, नारायणपुर, हरपुरकलाँ, रसूलपुर और मैनी ग्राम को आती है। इनमें पहला, दूसरा और पाँचवाँ ग्राम इसके बाएँ तट पर और तीसरा और चौथा दाहिने तट पर बसे हैं। यह कमला 'मैनी' के पास सदर अनुमंडल तथा विरौल थाने की सीमाओं को पार कर समस्तीपुर-अनुमंडल एवं सिंघिया थाने में 'मोहीउद्दीनपुर' नामक गाँव के पास प्रवेश करती है। इसका प्रवेश-स्थल ठीक 'सिंघिया' से चार मील सीधे उत्तर दिशा में है। मोहीउद्दीनपुर से लगभग आध मील यह बूढ़ी तथा मृतप्राय 'कमला' अग्निकोण में आती है और तब पूर्व दिशा में अपना मार्ग बनाती हुई सिंघिया-विरौल-मार्ग जहाँ जीवछ को लाँघता है, वहीं यह जीवछ से मिल जाती है। यह संगम-स्थल 'सिंघिया' से तीन मील पूर्वोत्तर कोण में पड़ता है।

इतनी दूरी तक में 'कमला' की जीववत्सा धार अपनी ही विकीर्ण, वियुक्त तथा परित्यक्त चार धाराओं को समेट लेती है और कुछ पानी अपनी एक शाखा धारा से सकरी वाली शाखा में भी भेज देती है। जिस धारा का वर्णन अभी ऊपर में किया गया है, वह पुराकाल में सिंघिया से तीन मील दूर पूर्वोत्तर कोण में नहीं बहती थी, बल्कि यह 'सिंघिया' से सटकर बहती थी तथा 'कुंदन' के पूरब ही 'भटवाँ' के पास, बागमती की करेह वाली धारा से मिलती थी। यह अवशेष आज भी किंचित्मात्रा में वर्तमान है। हाँ, तो सिंघिया-बिरौल-मार्ग पर उक्त प्राचीन कमला-धार को ग्रहण करके जीवछ नदी सीधे अग्नि-कोण में चलती हुई बनगढ़ता और हरदिया गाँवों के मध्य पहुँचती है। हरदिया इसके दाहिने तट पर और बनगढ़ता बाएँ तट पर खड़े हैं। इसके बाद 'जीवछ' नदी महराजपुर और पिरारी को अपने बाएँ भाग में निहारती एवं लोदीपुर और बलहा के बीच से बहती 'बहरामपुर' गाँव को पहुँचती है। 'बहरामपुर' के उत्तरी भाग से ही जीवछ दक्षिण दिशा में बहने लगती है और लगभग ढाई-तीन मील दक्षिण में बहकर 'हथरा' नामक गाँव के सटे पूरब में आती है। बिरौल से दक्षिण की ओर चलता हुआ जो मार्ग 'हथरा' आता है, वह जीवछ के पूर्वी तट से सटकर आता है। यह 'हथरा' में ही जीवछ को पार करके जब दक्षिण बढ़ता है, तब दो भुजाओं में विभक्त होकर दाहिनी से कुंदल को छूता है और सीधे दक्षिण में फैली बाईं भुजा से 'परकौली' तथा 'सखवा' गाँवों के पास 'करेह' नदी को लांघता है। इसी हथरा के पूरब में तीन मील दूर 'कुशेश्वर स्थान' है, जो मिथिला-क्षेत्र का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ की प्रसिद्ध किंवदंती है कि कुशेश्वर के शिवलिंग को कुश ऋषि ने स्थापित किया था। लगता है, जैसे कुशेश्वर स्थान का संबंध कौशिक (विश्वामित्र) तथा कौशिकी (सत्यवती) के पूर्वजों से कदाचित् जुड़ा है। कुशेश्वर स्थान में मकर-संक्रांति तथा शिवरात्रि के अवसर पर मेला लगता है। इस शिवलिंग पर गंगाजल तथा गोदुग्ध ढालने का बहुत बड़ा महत्त्व है। कहा तो यह जाता है कि जो तीर्थयात्री इस शिवलिंग पर ढालने के निमित्त यदि दो दिन पहले भी दूध लेकर चलता है, तो वह फटता नहीं है। यों प्रति रविवार को अनेक शिवभक्त गङ्गा-जल यहाँ के शिवलिंग पर ढालते हैं।

संगम-स्थान :

हथरा के आगे जीवछ नदी अग्निकोण में चलने लगती है और पिपराही, उदा, महिसउत तथा कउराही गाँवों को निहारती 'निरपा' और 'सुघरैन' पहुँचती है। महिसउत के पास से फिर जीवछ दक्षिण-वाहिनी बन जाती है और इस क्रम में तीन-चार मील चलकर निरपा सुघरैन के मध्य आती है। निरपा गाँव जीवछ के दाहिने किनारे और सुघरैन बाएँ किनारे में बसा है। उक्त कउराही गाँव के पास से अपने संगम-स्थान तक जीवछ नदी रोसड़ा तथा सिंघिया थाने की सीमा-रेखा बनती है। इसी 'निरपा' और 'सुघरैन' से जीवछ नदी पूर्व की ओर मुड़ती है और लगभग तीन मील पूरब में बढ़कर फुहिया गाँव के पूर्व में 'करेह' से मिल जाती है। यह संगम पहले के करेह-कमला-संगम से ढाई मील पश्चिम में होता है।

कमला

कमला नदी की तीन प्राचीन धाराओं का उल्लेख पहले किया गया है, जिसमें एक 'जीवछ' भी है। जिस प्रकार पहले कमला नदी, 'जीवछ-कमला' कहलाती थी, उसी प्रकार अब यह 'कमला-बलान' के नाम से अभिहित होती है; क्योंकि आज यह 'बलान' नदी से मिलकर बहने लगी है। कमला नदी मिथिला की प्रसिद्ध नदी है और पुण्य की दृष्टि से गंगा के बाद मिथिला में इसी का स्थान है। मिथिला की बड़ी और भयावह नदियों में 'कोसी' का स्थान सर्वप्रथम है; परंतु पवित्रता के विचार से 'कमला' का स्थान सर्वोपरि है। देव नदियों में 'कोसी' मिथिला के लिए लेलिह्यमान जिह्वा वाली तथा कर-कपाल-धारिणी महाकाली है; किंतु 'कमला' शस्यहस्ता और अमृत-कलशधारणी विष्णुप्रिया लक्ष्मी-स्वरूपा है। कोसी का पानी जिधर जाता है, उधर के बाग-बगीचे, खेत-पथार सभी जल जाते हैं और उर्वर भूमि भी ऊसर बन जाती है; पर कमला जिधर अपनी बाढ़ की चुनरी लहरा देती है, उधर की ऊसर भूमि भी नई वधू की तरह घुटने तक धानी रंग के आँचल का घूँघट काढ़ लेती है। सुना है, कमला की बाढ़ वाले खेतों से किसानों ने प्रति बीघे ७५-८० मन तक फसल काटी है; इसीलिए दरभंगा जिले में 'कमला' का महत्त्व लक्ष्मी के रूप में माना जाता है और वहाँ इस नदी को 'कमला माई' कहा जाता है।

इतनी प्रसिद्ध और पुण्यदायिनी नदी का न तो 'महाभारत' में या न 'वाल्मीकीय रामायण' में ही कहीं चर्चा है। आश्चर्य तो यह है कि विशाल पौराणिक ग्रंथों में भी कहीं 'कमला' नाम की नदी का उल्लेख नहीं मिलता है। यही हाल बौद्ध और जैन साहित्य का भी है। किंतु, महाभारत की **कंपना,**[१] **किंपुना**[२] और **कुलंपुना**[३]—इन तीनों में से कोई एक 'कमला' हो, तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि, इन तीनों की चर्चा हिमालय की नदियों के प्रसंग में ही 'महाभारत' करता है। महाभारत की एक और नदी 'केवला' (वनपर्व २५४, ११-१२) भी है। यह भी 'कमला' कहलाने का थोड़ा दावा कर सकती है; पर स्पष्ट प्रतिपादन इन ग्रंथों में कहीं नहीं मिलता है। कई पुराणों ने भी यत्र-तत्र उपर्युक्त नदियों का नाम लिया है; पर ऐसा निर्देश कोई नहीं देता, जिससे स्पष्ट हो कि वे 'कमला' नदी की ओर ही संकेत कर रहे हैं।

---

१. महा० भीष्म प० ९, २५ और वन प० ८४, ११६।
२. ,, सभा प० ९, २०।
३. ,, अनु० प० १६५, २० और वन प० ८३, १०४।

उद्गम-स्थान और धारा-मार्ग :

कमला का उद्गम-स्थान नेपाल के 'महाभारत-पर्वत' कहलाने वाली शृंखला में है और यह भी 'त्रिस्रोतसा' नदी है। पश्चिम और मध्य भाग के स्रोत सिंधुली जिले से चलकर धनुखा जिले में आते हैं। इनमें पश्चिम के स्रोत से मध्य का स्रोत छोटा है। किंतु, पूर्व का स्रोत कुछ लंबा है और 'कमला' का वास्तविक उद्गम यदि इसी भुजा को माना जाय, तो असंगति नहीं होगी। इस स्रोत का उद्गम 'सरगमाथा' अंचल के उदयपुर जिले के उत्तरी छोर में है और यह उदयपुर गढ़ी से नैऋत्य कोण में चलता जनकपुर अंचल के धनुखा जिले में आता है, जहाँ तीनों स्रोत मिलकर दक्षिण की ओर चलते हैं। पहले, पश्चिम और मध्य भाग के स्रोतों का मिलन होता है और जब ये परस्पर मिलकर लगभग १८ मील पूरब बढ़ते हैं, तब उदयपुरगढ़ी के उत्तर से निकलकर नैऋत्य कोण में बहकर आनेवाले स्रोत का संगम होता है। इन स्रोतों के संगम के बाद भी कमला नेपाल के पहाड़ी भाग में लगभग १५ मील बहती है और तब उसकी तराई के धनुखा जिले में उतरती है। इस तराई में भी लगभग २० मील दक्षिण की ओर बहकर जयनगर के पास, भारत के बिहार-प्रदेशीय दरभंगा जिले में, लक्ष्मी के रूप में अवतरित होती है।

पहले कहा गया है कि दरभंगा जिले की भूमि का निर्माण करने तथा उसे उर्वर बनाने का सबसे अधिक श्रेय 'कमला' को है। इसकी बिखरी और प्राचीन तथा प्रमुख तीन धाराओं का विवरण पहले दिया जा चुका है। अब इसकी मधुबनी से पूरब वाली धार का, जो आज यह भी पुरानी पड़ गई है, वर्णन करना रह गया है और आधुनिक धार, जो वस्तुतः 'बलान' नदी की धार है, की भी चर्चा शेष है। दरभंगा जिले में कमला की स्थिति दक्षिणाभिमुख फैली हथेली की तरह है, जिनकी अँगुलियाँ बिखरी हुई है। जिन धाराओं का उल्लेख पहले किया गया है, वे सभी मधुबनी-जयनगर रेल-लाइन के पश्चिमी भाग की हैं और जिनकी स्थिति अब दरभंगा-सकरी रेल-लाइन के उत्तरी भाग में प्रायः नहीं के बराबर होती जा रही है। हम यहाँ मधुबनी-जयनगर रेल-लाइन के पूर्वी भाग से दक्षिण की ओर बहकर आनेवाली धाराओं का दिग्दर्शन करेंगे।

कमला का यह धारा-मार्ग जयनगर के निकट पूर्वी भाग के रेल-मार्ग के सटे-सटे दक्षिण की ओर चलता हुआ, जयनगर के पूर्व भागवाले चौर से गुजरता था। कमला के इस प्रवाह-पथ के किनारे ब्रह्मोत्तर, ददवार, सिलरा, सुकी, भकुआ, मनियरवा तथा खजौली गाँव पड़ते थे। सुकी के पास धउरे नामक नदी कमला के इस प्रवाह से संगम करती थी, जो नेपाल-तराई की एक अत्यंत छोटी तथा नगण्य नदी है। यहाँ 'कमला' नदी 'जयनगर' के उत्तरपूर्व भाग में तथा अग्निकोण में भी पुराकाल से ही एक झील का निर्माण करती रही है, जिसके मध्य बहुत थोड़े-से गाँव बसे हुए हैं। यह झील पश्चिम में 'बरही-देवधा' और 'भदउर' से पूर्व में 'कुमारखड्ड' तक लगभग १५-१६ मील में फैली थी, जिसका उत्तरी सिरा नेपाल की उस सड़क तक फैला था, जो जनकपुर से विराटनगर तक जाती है। 'जयनगर' स्वयं एक भारत-प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ 'जनकपुर' धाम जाने के निमित्त हजारों यात्री

प्रतिदिन पहुँचते हैं। जयनगर दरभंगा जिले के 'मधुबनी'-अनुमण्डल का सीमा-स्थित एक थाना है, जो सैनिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ प्राचीन किले का ध्वंसावशेष भी है, जिसके चारों तरफ कब्रें बिखरी हैं। कहा जाता है कि बंगाल का नवाब अलाउद्दीन १५ वीं शती के अंतिम भाग में जब असम से बेतिया तक एक सड़क बनवा रहा था, तब उसके बहुत-से सैनिक 'जयनगर' में मृत्युग्रस्त हुए थे। यह भी कहा जाता है कि यहाँ का किला उसी ने बनवाया था। अँगरेजों के शासन-काल में भी यहाँ एक सैनिक टुकड़ी रहती थी। आज यहाँ रजिस्ट्री ऑफिस के अलावा तीन माध्यमिक स्कूल, एक हाई स्कूल और एक कॉलेज भी है। चावल तथा तेल की कई मिलें चलती हैं। शहर तीन वार्डों में बँटा है। जयनगर से जनकपुर के लिए भी रेल-मार्ग है, जो नेपाल-सरकार के अधीन है। मेडिकल अस्पताल, मवेशी-अस्पताल तथा पर्यटक-विश्राम-गृह भी वर्त्तमान है। पूरा शहर सभी प्रकार की आधुनिक नागरिक-सुविधाओं से संपन्न है।

कमला की उक्त धारा खजौली रेलवे-स्टेशन और खजौली गाँव के बीच से बहती थी। धारा-मार्ग के दाहिने किनारे, पश्चिम में स्टेशन और बाएँ किनारे, पूरब में खजौली ग्राम था। स्टेशन से ग्राम की दूरी लगभग ढाई मील है। मधुबनी से खजौली ग्राम १४ मील दूर, थोड़ा पूर्वोत्तर कोण में है। यह मधुबनी-अनुमंडल का एक थाना है और इसी थाने में प्रसिद्ध पुरातात्त्विक स्थान 'बलराजगढ़' है, जो 'बाबूबरही अंचल' में पड़ता है। खजौली से बलराजगढ़ की दूरी लगभग १२ मील सीधे पूर्व में है। खजौली से दक्षिण ढाई-तीन मील दूर पर 'लालापुर' नामक गाँव है। इतनी दूरी तक कमला की यह धारा दक्षिण की ओर मधुबनी-जयनगर रेल-लाइन से सटकर बहती थी। लालापुर से 'कमला' अग्निकोण में मुड़ती थी और फिर दक्षिण दिशा में बहती 'केवान' ग्राम से टकराती थी, जो 'राजनगर' रेलवे स्टेशन के पूर्व में स्थित है। केवान के दक्षिण 'चिवहरी बुजुर्ग' है और उसके दक्षिण 'मिरजापुर' है। कुछ वर्षों तक इसी मिरजापुर के पास कमला की इस धारा से 'परिहारपुर' वाली धारा भी मिलती थी। केवान से मिरजापुर तक यहाँ भी कमला नदी मधुबनी-जयनगर-रेल-लाइन से सटकर बहती थी। केवान के उत्तर कमला की यह धारा भी प्रायः समाप्त हो गई है; पर दक्षिण में मृतप्राय होकर भी 'कमला' का स्मारक बनी हुई है। मिरजापुर ग्राम मधुबनी नगर से सात मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित है। यह धारा मिरजापुर से पहले अग्निकोण में और सिमरी, कुनवारा, सिगिअक, रघुवीर चक, रामपट्टी, खनगाँव और नवहथ गाँवों को पहुँचती है। इसी रघुवीरचक के पूरब में 'कोइलख नामक गाँव है, जहाँ 'भद्रकालिका कोकिलाक्षी' देवी का मंदिर है। इस कोकलाक्षी देवी के कारण ही गाँव का नाम 'कोइलख पड़ा है।

नवहथ गाँव के पास पहुँचकर कमला अपनी दो धाराएँ बनाती थी, जिसमें से पूर्वी धार तो बिलकुल अब समाप्तप्राय है। यह पूर्वी धारा लोहट मिल के पास से तथा 'भौर' गाँव होते अग्निकोण में रामपुर तथा माधोपुर ग्राम को पहुँचती थी। माधोपुर से यह प्राचीन धारा

दक्षिण दिशा में मुड़ती थी और 'सरिसव पाही', डभारो तथा सुखवारे गाँवों के पूर्व से ही दरभंगा-झंझारपुर-रेल-लाइन को पार कर दक्षिण आती थी। झंझारपुर से तीन मील पश्चिम में ठीक 'सुखवारे' के पास यह रेल लाइन पार करती थी, रेलवे-लाइन के दक्षिण और कमला की इस मृत धारा के दाहिने भाग (पश्चिम) में 'बिसौल' गाँव है, जो हरलाखी के पास वाले 'बिसौल' का स्मारक लगता है। यहाँ से यह प्राचीन धारा अधिकांशतः अग्निकोण में झुकती हुई दक्षिण चलती थी और वहुअरवा, वथा, लगमा, कतमा आदि गाँवों से गुजरतो 'लोदिअरनी नामक गाँव को स्पर्श करती थी। लोदिअरनी इसके वाएँ किनारे बहेड़ा से झंझारपुर जानेवाले मार्ग पर अवस्थित है। यहाँ से यह धारा सीधे अग्निकोण में दौड़ती 'मदरियागाँव' आती थी, जहाँ से एकाएक दक्षिण-पश्चिम कोण में मुड़ती हुई तथा 'मिरजापुर' एवं 'वघेला' नामक गाँवों के मध्य भाग से बहती पश्चिम दिशा में मुड़ती थी और 'वहेड़ा' के पूर्वोत्तर भाग में स्थित प्राचीन चौर (झील) में समाप्त हो जाती थी। चौर में जहाँ यह अपना जलाशय बनाती है, वह स्थान 'बहेड़ा' से लगभग पाँच या छह मील पूर्वोत्तर दिशा में है। कमला की इस धारा का थोड़ा-सा चिह्न आज रेलवे-लाइन के दक्षिण वहेड़ा थाने में ही दीख पड़ता है, किन्तु नदी के ऊपरी भाग में तथा रेलवे लाइन के उत्तर में तो यह धारा प्रायः लुप्त हो गई है।

किंतु, नवहथ गाँव के पास कमला की जो धारा पश्चिम की ओर मुड़ती है, वह 'सेमुआर' के अग्निकोण में पहुँचकर सकरी-मधुवनी-रेल-लाइन को लाँघकर उसके पश्चिमी भाग से सटे-सटे दक्षिण की ओर चलती हुई 'दहिभत-नरोत्तम' नामक गाँव को आती है। यह ग्राम इसके वाम पार्श्व में तथा रेल-लाइन के पूर्व भाग में स्थित है। इसी दहिभत ग्राम के नैऋत्य कोण में हरिसिंह देव के प्रधान मंत्री वीरेश्वर ने अपने नाम पर 'वीर सागर' जलाशय खुदवाया था, जिसे आज भी लोग 'वीरसायर' कहते हैं। इसी 'वीरसागर' के नाम पर यहाँ बसनेवाला ग्राम भी 'वीरसायर' कहलाता है। वीरेश्वर का निवास-स्थान इसी 'दहिभत' नामक ग्राम में था और ननिहाल 'महथौर' नामक ग्राम में, ऐसा विद्वानों का कहना है। वीरेश्वर का लिखा 'छांदोग्य संस्कार' पुस्तक संपूर्ण मिथिला में प्रसिद्ध है। चण्डेश्वर ठाकुर ने वीरेश्वर द्वारा 'दहिभत' नगर में निर्मित जलाशय की चर्चा अपनी पुस्तक 'कृत्यरत्नाकर' के सातवें श्लोक में इस प्रकार की है :

वापीञ्चक्रेऽब्धिवन्धुं दहिभतनगरे निर्जितानेकदुष्टः।
प्रासादस्तेन तुङ्गो व्यरचि सुकृतिना स्वर्गसोपानमार्गः॥

'दहिभत नगर' से कमला की यह धारा पुनः दक्षिण दिशा में ही चलती 'पंडौल' रेलवे स्टेशन तथा पंडौल गाँव होते 'सकरी' नामक स्थान में आती है। पंडौल का वास्तविक नाम 'पद्मौल' है जो मिथिलाधिपति महाराज पद्म सिंह के नाम पर बसा था। पद्म सिंह महाराज शिव सिंह के भाई थे और उनके पश्चात् राज्य के अधिकारी भी बने थे। उक्त सकरी तक उत्तर-पूर्व रेलवे जंक्शन है, जहाँ से पूर्व में निर्मली तक रेल जाती है और उत्तर में मधुवनी होते भारतीय सीमा पर स्थित 'जयनगर' तक चलती है। मिथिला के प्रतापी

अधिपति हरिसिंह देव के पिता का नाम शक्रसिंह था, जिनके नाम पर 'सकरी' ग्राम बसाया गया था। दरभंगा नगर के 'मकबरा' नामक स्थान में जब अलाउद्दीन खिलजी की सेना से शक्रसिंह हार गये, तब उन्होंने 'सकरी' को ही अपनी राजधानी-स्थान बनाया था। विद्यापति ने अपने 'पुरुषपरीक्षा' नामक ग्रंथ के अंत में लिखा है कि 'सकरी' में एक विशाल जलाशय देवसिंह ने खुदवाया था :

शक्वरीपुरसरोवरकर्त्ता हेमहस्तिरथदान-विदग्धः ।
भाति यस्य जनको रणजेता देवसिंह नृपतिः गुणराशिः ॥

देवसिंह ने सकरी में जो सरोवर खुदवाया था, वह 'देवसागर' नामक पोखरे के नाम से प्रसिद्ध था। इसी पोखरे के कारण इसके पूर्वी भाग में बसनेवाले ग्राम का नाम 'सागरपुर' पड़ा था। इसी सकरी में 'कमला की यह धार रेलवे लाइन लाँघ कर दक्षिण चलती हुई क्रमशः कन्होली, केसठ-कवई, राघोपुर, लेहरा (नेहरा), पाइक टोला, मोअज्जमपुर तथा सिरिरामपुर नामक गाँवों को पहुँचती है। बहेड़ा से उत्तर की ओर सकरी तथा मधुवनी जानेवाला मार्ग 'केसठ-कवई' गाँव में ही कमला की इस धारा को लाँघता है। 'नेहरा' में जो टीला दीख पड़ता है, उसके संबंध में कहा जाता है कि गंगदेव के किले का यह भग्नावशेष है।[1] नेहरा का प्राचीन नाम 'लहेरा' या 'लेहरा' था। सिरिरामपुर के दक्षिण 'बोकूपट्टी' नामक गाँव है, जो नदी के बाएँ तट की ओर है। ठीक इसके सामने दाहिने किनारे, पश्चिम में 'हावी भउवार' नामक प्राचीन ग्राम है, जो मुसलमानी शासन-काल में दरभंगा जिले का एक परगना था। बोकूपट्टी के दक्षिण इस नदी के बाएँ तट पर 'बैंगनी' गाँव अवस्थित है। यहीं नदी के तट पर ही नवादा और मझउरा गाँव वसे हैं, जो 'बहेरा' के सटे पूरब में पड़ते हैं। नवादा गाँव नदी के बाएँ तट पर वसा है और मझउरा दाहिने तट पर। मझउरा बहेड़ा-बिरौल मार्ग पर तथा बहेड़ा के सटे पूर्व में है। इसी मझउरा से 'कमला' की यह धारा अग्नि-कोण में चलती है और पहले श्रीपुर-जगत नामक गाँव को, तत्पश्चात् 'श्रीपुर-धोरुख' गाँव को पहुँचती है। श्रीपुर-धोरुख से यह धार पूर्व दिशा की ओर चलती है और 'हरसिंघपुर' के पास पहुँचकर दक्षिण की ओर दौड़ती है। इस भाग में नदी के दोनों तटों से मार्ग गुजरते हैं। कमला की धारा 'कोरथो' तथा 'रोहार' नामक प्रसिद्ध स्थानों के पश्चिम से ही दक्षिण की ओर 'विशुनपुर' गाँव को पहुँचती है, जिसके सीधे पश्चिम नदी के दाहिने भाग में 'नसहरा' गाँव है। विशुनपुर के दक्षिण से 'कमला नदी अग्निकोण में मुड़ती है और 'डुमरी' होते 'बिरौल' के पश्चिम में पहुंच जाती है। बिरौल सदर अनुमंडल का थाना और एक अच्छा-खासा बाजार है। बिरौल के पास के नदी-तट से दो-ढाई मील उत्तर में 'आसी' नामक गाँव है। कहा जाता है कि इसी गाँव के 'मटिआही' नामक बड़े तालाव का फसली-सन् १२८१ (सन् १८७४ ई०) के अकाल में जब उड़ाह हुआ था, तब एक शिलास्तम्भ (विष्णुध्वज) प्राप्त हुआ था, जिस पर निम्नांकित श्लोक उत्कीर्ण था :

1. According to a legend Gangadevo held his citelde at Lahera raja in the Bahera Thana of the district Darbhanga—1964 p. 32.

जातो वंशे बिल्वपञ्चाभिधाने धर्माध्यक्षो वर्द्धमानो भवेशात् ।
देवस्याग्रे देवयष्टि-ध्वजाग्रारूढं कृत्वाऽस्थापयद्वैनतेयम् ॥

इससे स्पष्ट पता चलता है कि भवेश के पुत्र वर्द्धमान थे, जिन्होंने विष्णु-मंदिर के आगे गरुडध्वज नामक स्तंभ की स्थापना कराई थी। इसी विष्णु-मंदिर की स्मृतिस्वरूप 'आसी' गाँव के पश्चिम में 'विशुनपुर' नामक गाँव स्थित है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। आसी से एक मील उत्तर में 'नारी भदौन' गाँव है, जहाँ के रहनेवाले भवेश तथा वर्द्धमान थे। कुछ लोगों के कथनानुसार वर्द्धमान मल्लदेव के आश्रित थे और कुछ लोग गंगदेव के पौत्र रामसिंहदेव को उनके आश्रयदाता मानते हैं।

बिरौल बाजार कमला के बाएँ किनारे अवस्थित है। बिरौल से जब 'कमला' दक्षिण चलती है, तब इसके दाहिने तट पर 'हांटो' और बाएँ तट पर 'उचती' नामक गाँव दिखाई देते हैं। इसके बाद यह 'समस्तीपुर'-अनुमंडल के सिंघिया थाने में घुसती है और अपनी धारा को अग्निकोण में थोड़ा-सा वक्र करके 'मिस्सी' नामक गाँव को पहुँचती है। मिस्सी से दक्षिण जब यह 'महरी' नामक गाँव का स्पर्श करती है, तब 'तारसराय' होकर आनेवाली अपनी प्राचीन शाखा जीवछ की पूरवी बाँह को ग्रहण करती है, जो बाँह 'कटवास' के पूरब में अलग होती है। इसी संगम के दक्षिण 'हरनगर' नामक प्राचीन गाँव बसा है। संगम के पश्चात् 'कमला' की यह धारा अग्निकोण में चलती है और नराच-भदउर गाँव होते 'मोहीमखुर्द' तथा बिसरिया गाँवों को क्रमशः पहुँचती है। बिसरिया के अग्निकोण में 'कमला' जैसे ही 'पिपरा' पहुँचना चाहती है, वैसे ही, हठात् उत्तर दिशा में मुँह फेर लेती है। उत्तराभिमुखी क्रम में इसके पूर्वी किनारे (दाहिनी ओर) 'भिरुआ' गाँव है, जिसके उत्तर में पहुँचकर यह पूर्व की ओर मुड़ती है और फिर दक्षिण की ओर घूमकर दरभंगा-सहरसा-जिलों की सीमा बनती हुई दक्षिण दिशा में ही बहती चली जाती है। इसी सीमा-रेखा पर कमला के दाहिने भाग में इटहर, सँभउरा, सिमरटोक, महादेव मठ आदि गाँव बसे हुए हैं। महादेव मठ के दक्षिण गुलमा और उसके दक्षिण तिलकेश्वर है। तिलकेश्वर के पूर्व तथा तिलकपुर के पूर्वोत्तर कोण में 'कमला' की इस धारा का 'करेह' नामक बागमती की शाखा से संगम होता था; पर अब तो 'कोसी' से होने लगा है। उक्त 'इटहर' के पश्चिम में ही 'कुशेश्वर' नामक शिवस्थान है, जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। अपने मुहाने पर 'कमला' की यह धार लगभग १२ मील तक दरभंगा और सहरसा जिलों की सीमारेखा का काम करती थी, जो अब 'कोसी' करती है। 'कमला' की चौथी धारा की यही कहानी दरभंगा जिले में है।

कमला की पांचवीं धारा कमला-बलान :

सन् १९५४ ई० तक 'कमला' नदी उपरिवर्णित धारा-मार्ग से बहती थी, जो धारा अब इसकी छाड़न नदी बन गई है। सन् १९५४ ई० में 'कमला' एकाएक 'सोनी' और पश्चिमी 'बलान'—इन दो नदियों के प्रवाह-मार्ग को ग्रहण करके बहने लगी है। जिस प्रकार सरयू ने राप्ती (इरावती) की धारा को, गंडक ने 'विशाला' के प्रवाह-मार्ग को और बूढ़ी गंडकी ने

अपने निचले हिस्से में बागमती के धारा-पथ को हड़प लिया, उसी प्रकार कमला नदी ने 'बलान' के प्रवाह को अपनाकर उसे नामशेष कर दिया है। आज जिस मार्ग से 'कमला' बहने लगी है, वह प्रवाह-मार्ग पहले 'सोनी' और 'बलान' का संयुक्त प्रवाह-पथ था। अब कमला 'जयनगर' के पूर्व से अग्निकोण में गिरती हुई 'धउरे' तथा पूर्वी 'कमला' को समेटती हुई खजौली थाने में प्रवेश करती है और भटचौरा के दक्षिण, भकुआ के पूर्व-दक्षिण कोण में तथा चतरा-गोबरौरा के पूर्वोत्तर कोण में 'सोनी' नदी को लपेटती है। इसके बाद दक्षिण में बढ़कर 'महेश्वरा' के पूर्व में तथा बाबूबरही के दक्षिण में 'बलान' के अस्तित्व को समाप्त कर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लेती है। सोनी नदी नेपाल के तराई-भाग में चलकर 'कुमार खड्ड' और 'कमतौलिया' के मध्यभाग से दरभंगा जिले में घुसती है। कमतौलिया सोनी के पूर्वी किनारे और 'कुमार खड्ड' पश्चिमी किनारे बसा है। कमतौलिया के नैऋत्य कोण में तथा 'बौरा' के पूर्वोत्तर कोण में खुटौना-जयनगर-मार्ग तथा खजौली, महथा-मार्ग—दोनों चौराहे बनाते हुए सोनी को पार करते हैं। इस चौराहा-घाट के बाद 'सोनी' बौरा ग्राम के पूर्व में आती है और वहाँ से पहले नैऋत्य कोण में चलकर फिर दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है तथा 'बरुवार' एवं 'छउराह' गाँवों के पास पहुँचने पर कमला के तटबंध में समा जाती है। यहाँ से आगे कमला नदी सोनी और बलान-संगम तक सोनी के मार्ग से ही बहती है। पहले जो गाँव सोनी के तटों में थे, वे अब कमला-तट-वासी बन गए हैं। भुतगाँवा के पास 'कमला' की आधुनिक धारा 'बलान' नदी को भी समेटती है, जो सीमा पर स्थित लालमुनिया, देवरा, बेला, पिरही-बेलाही आदि गाँवों से गुजरती तथा नैऋत्य कोण में बहती हुई बाबूबरही के पश्चिम में आती है। 'लदनिया' के पूरब में सीमा का अंतिम गाँव लालमुनिया है, जहाँ 'बलान' नैऋत्यकोण में प्रवेश करती है। अब 'कमला' नदी अपने संगम तक 'बलान' की धारा से मिलकर बहने लगी है। अतः, कमला के इस प्रवाह-पथ की कथा वस्तुतः पहले की बलान नदी के धारा-मार्ग की ही कथा है। प्रथम-प्रथम 'बलान' लदनिया और 'लौकहा' थानों की सीमा बनकर प्रवेश करती है और लगभग १७-१८ मील स्वतंत्र बहकर खजौली थाने में 'कमला' की आधुनिक धार से मिलती है।

बलान को आत्मसात् करके 'कमला' की यह आधुनिक धारा क्रमशः भतगाँवाँ, बिथौनी, चपही, गंगाद्वार तथा ईमादपट्टी गाँवों को पहुँचती है। ईमादपट्टी के दक्षिण में मधुबनी से 'संग्राम' जानेवाला प्राचीन मार्ग 'कमला को पार करता है, जो पहले 'बलान' नदी का घाट था। यही घाट **कंदर्पीघाट** कहा जाता है, जहाँ दरभंगा-महाराज के पूर्व पुरुष नरेन्द्र सिंह (सन् १७४३ से १७६० ई०) के साथ बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ के सूबेदार रामनारायण का युद्ध हुआ था। यह युद्ध इसलिए हुआ था कि नरेन्द्र सिंह ने सलाना कर देना बंद कर दिया था। राजा रामनारायण की ओर से भिखारी महथा, सलावत राय और बख्तावर सिंह ने युद्ध में भाग लिया था और महाराज नरेन्द्र सिंह की ओर से टेकारी (गया) के मित्रजित सिंह और जगदीशपुर (भोजपुर) के उमराव सिंह ने। उस समय नरेन्द्र सिंह की राजधानी मधुबनी के समीप 'भौरा' स्थान में थी, जहाँ से नरेन्द्रसिंह ने प्रयाण किया था।

नरेन्द्रसिंह के प्रथम दिन की यात्रा रामपट्टी घाट (कमला नदी का घाट) मधुवनी से छह मील पूर्व) तक हुई थी और दूसरे दिन वे कंदर्पी घाट (बलान नदी) पर सदल-बल पहुँचे थे। आश्विन महाष्टमी तिथि को युद्ध हुआ और प्रथम दिन के युद्ध में ही जगदीशपुर के उमराव सिंह ने अपने घोड़े को शत्रु के दल में ठेलकर सलावत राय की गरदन काट ली। उधर अपने साथी की सफलता देखकर मित्रजित सिंह ने भी अपना रण-कौशल दिखलाया और वख्तावरसिंह के सर को कोंहड़े की तरह कतर फेंका। भिखारी महथा की जान किसी तरह वच गई। दूसरे ही दिन लड़ाई सुलह हो गई। इसी कंदर्पीघाट के पास झंझारपुर से उत्तर दिशा में 'अन्हराठाढ़ी' जानेवाला मार्ग मधुवनी से 'संग्राम' जानेवाले मार्ग को काटता है। इसी जगह कंदर्पीघाट के पूर्व में मैथिल ब्राह्मणों के 'गंधरायन' और 'भभान' नामक प्रसिद्ध तथा प्राचीन गाँव विद्यमान हैं।

कंदर्पीघाट के पास से 'कमला' जव दक्षिण चलती है, तव इसके दाहिने किनारे 'वन-उर' और बाएँ किनारे 'हरना' ग्राम मिलते हैं। हरना के दक्षिण कमला के पूर्वी किनारे प्राचीन ग्राम 'महरैल' है और उसके सामने कमला के पश्चिमी तट पर 'ओझउल' एवं 'वलनी मेहथ' हैं। इससे दक्षिण वढ़कर कमला की यह धार 'महिनाथपुर' आती है और तव 'झंझारपुर' पहुंचती है। झंझारपुर उत्तर-पूर्व रेलवे में दरभंगा-निर्मली रेल-लाइन का एक प्रसिद्ध स्टेशन तथा वाजार है। दरभंगा जिले का यह एक थाना है, जहाँ अस्पताल और अंचल-विकास कार्यालय भी है। झंझारपुर में दरभंगा-महाराज की राजधानी भी कुछ वर्षों तक थी और महाराज महेश्वरसिंह अपने अंतिम समय में झंझारपुर में ही रहते थे। मृत्यु के समय जव वे सदल-बल गंगा-तट के सेवन के लिए जा रहे थे, तब 'वहेड़ा' के दक्षिण एक जलाशय के किनारे वे स्वर्गवासी हो गए थे। झंझारपुर में 'कमला' के ऊपर एक वड़े पुल बनाने की योजना अभी तक कार्यान्वित नहीं हो सकी है, जिसके ऊपर से जानेवाला मार्ग दरभंगा तथा मधुवनी से 'फुलपरास' (दरभंगा जिले के पूर्वोत्तर क्षेत्र) को जोड़ेगा। आज फुलपरास की ओर जानेवाली मोटर गाड़ियाँ कमला नदी की पेटी को पार करके जाती हैं, जिससे बरसात में सवारियों का आना-जाना बंद हो जाता है।

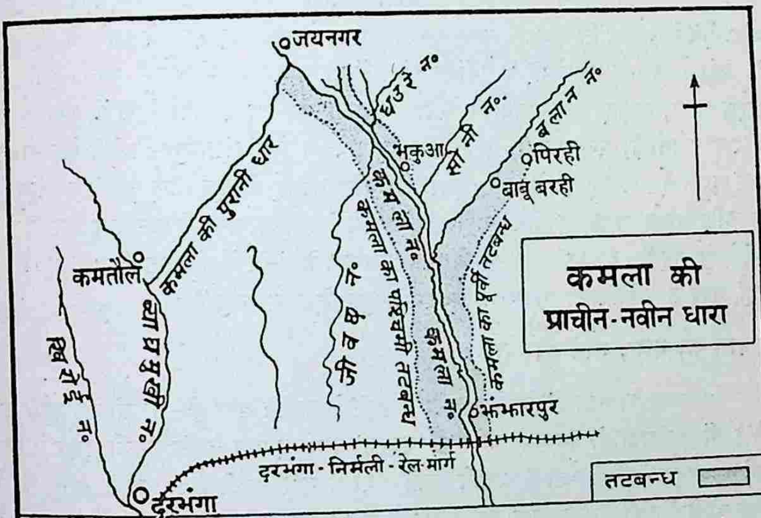
झंझारपुर रेलवे स्टेशन के पश्चिम में आधुनिक 'कमला' उस मार्ग से ही रेलवे-लाइन पार करती है, जिस धारा से पहले 'बलान' नदी पार करती थी। इसके पश्चात् यह 'रतउल' मदनपुर एवं 'गंगापुर' नामक गाँवों को स्पर्श करती है। इसके वाद कमला की आधुनिक धार 'राजाखरवार' के पश्चिम में आकर दक्षिण-पूर्व-कोण में मुड़ती है और मधुवनी तथा सदर अनुमंडलों की सीमा बनती हुई बहती है। पहले सीमा-रेखा बननेवाली नदी 'बलान' थी; पर अब तो यह स्थान 'कमला' ने ले लिया है। इस क्रम में इसके किनारे में देवन, टंघ, जदुपट्टी, पड़री, दलदलपुर, परवल, असमा तथा दोहथा नामक गाँव बसे मिलते हैं। इसी जदुपट्टी और पड़री के पूर्व में अर्थात् 'कमला-धार' (पहले ही बलान-धार) के बाएँ भाग में प्रसिद्ध ऐतिहासिक गाँव 'भीठ भगवानपुर' बसा है। यह कमला-तट से लगभग एक मील

पूरब में स्थित है। इसी 'भीठभगवानपुर' में प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि यहाँ कर्णाटवंशी नान्यदेव के पुत्र मल्लदेव का शासन था। यहाँ के एक जलाशय के स्तंभ में उत्कीर्ण **'वल्लाल सेनस्य'** ऐसा वाक्य भी मिला था। यह स्तंभ जलाशय के उड़ाह के समय प्राप्त हुआ था। इससे यह भी स्पष्ट है कि इस क्षेत्र पर कभी वंगाल के राजा वल्लालसेन का भी आधिपत्य था। कुछ ऐतिहासिकों का कहना है कि मल्लदेव ने वल्लालसेन की सेना को 'भीठभगवानपुर' में पराजित किया था।

दोहथा ग्राम के उत्तर और असमा के दक्षिण 'कमला-वलान' के दाहिने किनारे पुराना ग्राम 'रसियारी' है, जहाँ भग्नावशेष का टीला दीख पड़ता है। इसी दोहथा के पूरब में पहले केवल 'बलान' नदी तिलयुगा (त्रियुगा) से संगम करके दक्षिण चलती थी और दरभंगा तथा सहरसा जिले की सीमा बनती हुई लगभग आठ-नौ मील दक्षिण चलकर बिर-दीपुर गाँव के दक्षिण सीमा-रेखा से हटकर सहरसा जिले में घुसकर 'वैती' नदी को समेटती हुई 'घेमुरा' नदी से मिलती थी और तब मुंगेर जिले की सीमा पर कमला-करेह की सम्मि-लित धार से मिलकर 'घघरी' नदी का रूप धारण करती थी। किंतु अब तो 'वलान' और 'तिलयुगा' एवं 'वैती' तथा 'घेमुरा'—ये चारों मिट गई हैं। 'वलान' को कमला ने उदरस्थ कर लिया है और तिलयुगा, वैती तथा घेमुरा को 'कोसी' ने मिटा दिया है। 'दोहथा' के पूरब में जहाँ 'वलान' नदी तिलयुगा से मिलती थी, वहीं अब वलान को आत्मसात् करनेवाली 'कमला' का संगम 'कोसी' नदी से होता है; क्योंकि 'कोसी' अब घेमुरा, वैती तथा तिलयुगा को आत्मसात् करती हुई, दरभंगा-सहरसा-सीमा पर स्वयं बहने लगी है। दरभंगा जिले के बिरौल थाने के डंका, भोमउल, भंडरिया, कंदवारा तथा बिरदीपुर गाँव पहले 'बलान' और 'तिलयुगा' के सम्मिलित धार के दाहिने किनारे बसे थे; पर अब इनमें कुछ ग्राम उस 'कोसी' नदी के दाहिने किनारे और कुछ तट-बंध के भीतर आ गये हैं, जिस 'कोसी' में घेमुरा, वैती, तिलयुगा, भुतही-वलान, तथा कमला-बलान आदि नदियों का पानी ऊपर में ही सम्मिलित हो जाता है। अब इस भाग में एकमात्र कोसी का ही साम्राज्य विराजमान है और छोटी-छोटी नदियों की आधिपत्य-रेखाएँ प्रायः मिट चुकी हैं। किंतु, कोसी अत्यंत उच्छृंखल और चंचला नदी है। वह दो कगारों के भुजपाश से कब अपने को उन्मुक्त कर लेगी, यह कहना बड़े-बड़े इंजीनियरों के लिए भी मुश्किल है।

कमला बिहार के दरभंगा जिले में अपना दो मुख बना करके घुसती थी। इसका एक मुख जयनगर के पश्चिम में घुसता था, जो बड़ा और प्रमुख धारामुख था। इसका जयनगर के पूरब में, जो पहले छोटा मुख था और 'सौनी' से सिमट कर 'बलान' में आ जाता था। अपने इन धारामुखों से 'कमला' ने दरभंगा जिले में अनेक धारामुख बना लिए थे और जिले की आधी से अधिक भूमि पर यह स्वच्छंद विहार करती इधर-से-उधर विचरण करती थी। दरभंगा जिले के दक्षिणी हिस्से में इसने अपनी द्वादश भुजाओं को पसार दिया था और कभी-कभी यह इन सभी भुजाओं का भारी पराक्रम प्रकट करती हुई कुहराम मचा देती थी। किंतु सन्

१९५४ ई० में जब इसने अपना प्रमुख धारा-मुख जयनगर के पूर्वी स्रोत की ओर कर लिया, तब सरकार ने इसे इसी धारा-प्रवाह पर स्थित रखने का निश्चय किया और 'बलान' के धारा-मार्ग में डालकर इसे बहने के लिए छोड़ दिया। फलतः सन् १९५६ ई० में दोनों ओर तटबंध लगाने का कार्य आरंभ हुआ और सन् १९५९ ई० में आकर पूरा कर लिया गया। कमला के दाहिने तट की ओर नेपाल-भारत-सीमा से झंझारपुर तक, अर्थात् कुल ३७½ मील लंबा तटबंध बनाया गया है। फिर, 'कमला' के वाएँ भाग में नेपाल की सीमा से आरंभ करके खजौली से तीन मील उत्तर 'भकुआ' गाँव तक ७½ मील लंबा तटबंध लगाया गया है। किंतु, वाएँ (पूरवी) भाग का तटबंध तो वस्तुतः 'बलान' नदी के प्रवाह के किनारे से आरंभ होता है, जो झंझारपुर तक १९ मील लंबा बनाया गया है। यह तटबंध 'वाबू वरही' से डेढ़ मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित 'पिरही' गाँव से झंझारपुर तक आया है। कमला के प्राचीन-नवीन मार्ग तथा तटबंध का ज्ञान इन रेखाओं में उपलब्ध किया जा सकता है :



कमला-बलान की पूरी योजना, जिसमें नदी-पुल तथा सिंचाई के साधन भी हैं, एक करोड़ ग्यारह लाख सरसठ हजार तीन सौ चौहत्तर रुपये की थी, जिसमें तटबंध का काम तृतीय पंचवर्षीय योजना में ही पूरा हो गया और लगभग इसमें अठारह लाख छप्पन हजार आठ सौ तेईस रुपए व्यय हुए थे। इसमें झंझारपुर के बाद (दक्षिण में) भी कमला-बलान में तटबंध लगाने की योजना है, जो झंझारपुर से कोसी-संगम तक २७ मील लंबा होगा और इसमें तेंतीस लाख, सन्तानबे हजार, नौ सौ बाइस रुपये व्यय का अनुमान है; पर यह कार्य सन् १९६० ई० में आरंभ तो हुआ; पर आजतक पूरा नहीं हो सका है।

बलान और भुतही-बलान

जिस प्रकार 'कमला' नदी दो मुख करके विहार-प्रदेश में प्रवेश करती थी, उसी प्रकार 'बलान' नदी नेपाल की सीमा में ही त्रिमुखी हो जाती है और अपने तीनों प्रवाह-मुखों से दरभंगा जिले की उत्तरी-पूर्वी सीमा में घुसती है। इनमें पश्चिमी धारा-मुख 'लदनिया' से पूरब और 'लालमुनिया' ग्राम से पश्चिम में नैऋत्यकोण-गामिनी वनकर प्रवेश करता है। पहले बलान की यह धारा 'सोनी' नदी से मिलकर 'झंझारपुर' होकर वहती थी और नीचे में जाकर तिलयुगा से संगम करती थी। पर, अब यह खजौली थाने के 'वावूबरही' से दक्षिण तथा 'भतगावाँ' के पूर्वोत्तर कोण में ही कमला से संगम कर जाती है। किंतु, दूसरी धारा, अर्थात् मध्यभागवाली धारा 'लौकहा' के पास दरभंगा जिले में प्रवेश करती है और सोन पताही, अन्हराठाढ़ी, संग्राम आदि गाँवों से होते झंझारपुर-निर्मली-रेल-लाइन को पार करती है। बलान की तीसरी (पूर्ववाली) धारा लौकहा से एक मील पूर्व 'बंदर झूल' ग्राम के समीप प्रवेश करती है और भुतही-बलान नाम से 'फुलपरास' होकर प्रवाहित होती है। इनमें से पहली बलान-धारा का विवरण 'कमला' के प्रसंग में संकेतित किया गया। अब यहाँ मध्य तथा पूर्ववाली धारा का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

बलान का नाम, मार्ग और तट :

वलान का नाम किसी 'विल्ववन' से वहने के कारण वना हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। किंतु मैं समझता हूँ, इस नदी का नाम 'वलान' इसलिए पड़ा है कि इसकी धारा में जितनी अधिक बालुका-राशि बहती है, उतनी किसी नदी में नहीं वहती है। वर्षा ऋतु के वाद नदी की पेटी कहीं नहीं दिखाई देती है या न कहीं चुल्लू-भर पानी दीख रड़ता है; पर बालू का इतना अंबार लगा होता है कि उसे हटाना वड़ा ही मुश्किल है। फुलपरास की सड़कों पर ठेहुने-भर जमी वालुओं के प्रवाह में मीलों तक ट्रकों और मोटरों को पार करना पड़ता है। लगता है, जैसे नदी में कभी पानी का प्रवाह ही नहीं चलता है, वल्कि बालु-कणों की ही धारा वहती है। इसी बालुका-प्रवाह के कारण 'नदी का नाम 'वलान' पड़ा है। कुछ पंडितों ने इसे ही 'विल्ववती' नदी कहा है; पर विल्ववती तो आधुनिक 'वेलौती' नदी है।

बलान की यह धारा 'लौकहा' के पास दरभंगा जिले में दक्षिणभिमुख होकर प्रवेश करती है और एक वड़े वलुआही भू-भाग से गुजरती 'खुटौना आती है। 'खुटौना' दरभंगा जिले का प्रसिद्ध स्थान है और यहाँ अंचल-विकास कार्यालय तथा वाजार है। खुटौना में मुसलमानों का सुखी परिवार है और यहाँ अच्छी खासी मुस्लिम आवादी है। खुटौना उस

मार्ग पर अवस्थित है, जो 'सहरसा' जिले के 'गढ़िया' से पश्चिम की ओर चलता हुआ दरभंगा जिले के नरैना, सिसवार, खुटौना आदि स्थानों से गुजरता 'जयनगर' जाता है। बलान की यह धारा खुटौना से अग्निकोण में मुड़कर दुर्गापट्टी ग्राम के पास उक्त मार्ग को पार करके दक्षिण की ओर बहती है। इस प्रवाह-क्रम में इसके दाहिने किनारे 'बरदाहा' और बाएँ किनारे 'सोनपताही' गाँव अवस्थित हैं। सोनपताही में प्राचीन टीले का अवशेष आज भी है, जिससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। सोनपताही के दक्षिण इसके दाहिने तट पर 'फुलहरिया' नामक ग्राम है और इसी के दक्षिण पश्चिमी तट पर प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्राम 'अन्हराठाढ़ी' है। 'अन्हराठाढ़ी' में मैथिल ब्राह्मणों का बाहुल्य है। इसी अन्हराठाढ़ी में कर्णाटवंशीय राजा गंगदेव के मंत्री श्रीधरदास ने श्रीधरदेव (विष्णु) की मूर्त्ति स्थापित की थी। गंगदेव के पिता नान्यदेव के मंत्री भी श्रीधरदास रह चुके थे और नान्यदेव ने ही अन्हराठाढ़ी में एक बहुत बड़ा जलाशय खुदवाया था। इसका पता वहीं के एक मंदिर के शिला-लेख से चला था, जिसमें निम्नांकित श्लोक खुदे हुए थे :

श्रीमान् नान्यपतिर्जेता गुणरत्नमहार्णवः ।
यत्कीर्त्ति जनितोविश्वे द्वितीयः क्षीरसागरः ॥
मन्त्रिणा तस्य नान्यस्य नगरङ्गाब्जभानुना ।
तेनायं कारितो देवः श्रीधरः श्रीधरेण च ॥

यहाँ एक दूसरी शिलालिपि के धुँधले अक्षरों को किसी ने 'गंगदेव' इतना पढ़ा था, जिससे लोगों का अनुमान हुआ कि 'अन्हराठाढ़ी' में गंगदेव ने भी एक शलाशय का निर्माण कराया था, जो गंगा-सागर के नाम से प्रसिद्ध था। एक तस्तरीनुमा बरतन में **'मगरध्वज जोगी-७००'** ऐसा भी लिखा यहाँ मिला था और यही लेख सहरसा जिले के श्रीनगर स्थान में और एक शाहाबाद जिले के रामगढ़ थाने में भी प्राप्त हुआ था। ७०० अंक का अर्थ आजतक अस्पष्ट ही रहा; किंतु बहुतों का अनुमान है कि यह लक्ष्मणाब्द का सूचक है और 'मगरध्वज जोगी' शब्द किसी गोरखनाथ संप्रदाय के साधु का बोधक माना गया है। इस ग्राम में जो भगवती देवी हैं, उन्हें लोग 'ठाढ़ी मैया' नाम से पुकारते हैं। कुछ लोगों का तो कहना है कि यह ग्राम प्रमाणित करता है कि इस भाग में आंध्रों (सातवाहनों) का शासन था और अन्हराठाढ़ी में उनका शासनकेंद्र था, जिससे इसका नाम 'अन्हराठाढ़ी' पड़ा। जो हो, पर इतना तो स्पष्ट है कि 'बलान' के तट का यह अन्हराठाढ़ी' ग्राम अति प्राचीन और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अन्हराठाढ़ी के बाद भी बलान की यह धारा दक्षिण की ओर चलती है और तब इसके दाहिने किनारे डुमरा गाँव और उसके आगे दाहिने ही किनारे 'जलसैन' गाँव दीख पड़ते हैं। इसी 'जलसैन' के संबंध में मैथिली के कवि चंदा झा का अनुमान है कि महाभारत-कालीन विदेह-राज 'जलसंधि' का निवास 'जलसैन' में था; किन्तु मेरा अनुमान है कि बंगाल के सेनवंशी राजाओं के कारण जलसैन और लखनसैन नाम पड़ा है। जलसैन के पश्चिम में

(सामने ही) नदी के वामपार्श्व में 'लखसैन' और 'महीद्वार' नामक गांव भी स्थित हैं। महीद्वार के पश्चिम 'बलान' के दाहिने तट की ओर 'ननौर' गांव है और 'ननौर' के पश्चिम 'भामा' है। लोगों का कहना है कि 'ननौर' भी नान्यदेव के नाम पर बसा नान्यपुर का अपभ्रंश है। इसी प्रकार, 'भामा' के संबंध में महाकवि चंदा झा ने कहा है कि यह वृद्ध वाचस्पति मिश्र की पत्नी 'भामती' के नाम पर बसाया हुआ ग्राम है।[1] इसी अपनी पत्नी 'भामती' के नाम पर वाचस्तपति ने 'वेदांत शारीरक भाष्य' की 'भामती' नामक टीका की रचना की थी। जो हो; पर ये दोनों (ननौर और भामा) ग्राम निश्चय ही प्राचीन और मिथिला के प्रसिद्ध ग्राम रहे हैं, यह वात वहाँ की मिट्टी भी वतलाती है।

'महीद्वार' नामक गाँव के दक्षिण 'वलान' के तट पर 'संग्राम' नामक ग्राम वसा है। यह ग्राम बलान के कभी बाएँ तट पर और कभी दाएँ तट पर खड़ा दिखाई पड़ता है, अर्थात् वलान कभी संग्राम के पश्चिम से और कभी पूरब से प्रवाहित होती है। दरभंगा जिले के बड़ी आवादीवाले ग्रामों में संग्राम भी एक है और यहाँ मुस्लिम-संप्रदाय के एक बड़े तवके का निवास है। संग्राम गाँव, पंडौल से झंझारपुर होते हुए फुलपरास जानेवाले पक्के मार्ग पर वसा है और सड़क ठीक गाँव के बीच से होकर गुजरती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि बंगाल के शासक विजयसेन के राज्य के एक स्थानीय माण्डलिक शासक 'संग्राम देव गुप्त' के नाम पर यह ग्राम वसा और संभवतः उसका निवास भी 'संग्राम' में ही था। मेरे कथन की पुष्टि 'पंचोभ'[2] में प्राप्त उस ताम्रशासन से होता है, जिसमें राजा विजयसेन का उल्लेख है और जिसे जयपुर निवासी कृष्णगुप्त के पुत्र संग्रामदेवगुप्त ने विजयराज्य के १७ वें वर्ष के कार्तिक कृष्ण नवमी को खुदवाया था। उसकी निम्नांकित पंक्तियों से उक्त बातें स्पष्ट होती हैं :
जयपुरपरमेश्वर महामाण्डलिक श्री राजादित्यगुप्त देव पादानुध्यात राजपुत्र श्रीकृष्णगुप्त-सुतः परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर-पथम माहेश्वर वृषभध्वजसमान्वयार्जुन-वंशोद्भवजयपुर परमेश्वर महामांडलिक श्रीमत्-संग्रामगुप्तः देवपादप्रबर्द्धमानविजयराज्ये सप्तदशसंवत्सरे कार्तिककृष्णनवम्यां तिथौ श्रीमज्जयस्कंधावारादयमेव महाराजाधिराज-महामांडलिक श्रीमान् संग्रामगुप्तो देवो विजयी……[3]

'संग्राम' के वाद वलान अग्निकोण में अपनी धारा बनाती है और तब यह सदसी-रतौली और कीरतपुर के पूर्व-पूर्व ही चलकर 'घोघरडीहा' के पास निर्मली रेल-लाइन को पार करके 'भुतही-वलान' की धारा को समेटती है। यहीं यह कोसी के पश्चिमी तटबंध के भीतर प्रवेश करती है और तटवंध के भीतर से सटे-सटे नैऋत्य कोण दिशा की ओर बहती हुई 'चपराम' गाँव के पास पहुँचती है। यह तटवंध 'घोघरडीहा' से आरंभ होता है और इसके आठवें किलो मीटर पर 'चपराम' ग्राम अवस्थित है। चपराम से 'वलान' नदी अग्निकोण में

१. मिथिला-तत्व-विमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १०४
२. लहेरियासराय से पाँच मील पश्चिम में यह गाँव स्थित है।
३. सेलेक्ट इंस्क्रिप्सन्स ऑफ बिहार : संपा० श्री राधाकृष्ण चौधरी, पृ० ११४।

मुड़ती है, इसलिए तटबंध भी अग्निकोण में चलता है। इसी तटबंध के सहारे 'बलान' जब 'टरडीहा' ग्राम के पास पहुँचती है, तब उसके पूर्व में यह 'कोसी' की धार से सम्मिलित हो जाती है। 'टरडीहा' ग्राम तटबंध के पश्चिम उसके दाहिने किनारे है, जो तटबंध के १० वें किलोमीटर पर अवस्थित है।

किंतु, कुछ ही वर्ष पूर्व 'बलान' की धारा की स्थिति कुछ दूसरी थी। संग्राम के बाद जब यह अग्निकोण में चलती थी, तब इसके दाहिने तट की ओर सिंगदाहा, सिरखरिया, बहरारी तथा बाएँ तट की ओर सदसी-रतौली, कीरतपुर एवं केवटना ग्राम मिलते थे। बलान तब उपर्युक्त बहेरारी ग्राम के पास निर्मली वाली रेल-लाइन को पार करती थी। आज भी इस पुल के नीचे प्राचीन नदी के प्रवाह का अवशेष है। रेल-लाइन पार करने के बाद यह अग्निकोण में चलकर दरभंगा जिले के मधेपुर थाने के 'भिरहर' और 'बिरौल' (बिरौल थाना से भिन्न) गाँवों को आती थी। बिरौल से नैऋत्य कोण में बहती हुई जब यह आगे बढ़ती थी, तब अपने बाएँ तट की ओर 'चपराम' तथा दाहिने तट को ओर 'बराजीत' नामक गाँवों को देखती थी। चपराम से अग्निकोण-वाहिनी बनकर यह उस भूमि में जाती थी, जो आजकल कोसी-तटबंध के भीतर पड़ गई है। यहाँ इसके किनारे 'पउनी' ग्राम है। यहाँ से आगे दक्षिण की ओर बढ़ने पर इसके दाहिने किनारे 'देसम' और 'टरडीहा' नामक ग्राम मिलता था, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। इसी 'टरडीहा' के बाद यह सहरसा जिले में घुसती थी और मधेपुर (दरभंगा) के पूर्व भाग से ही सहरसा जिले में तीन मील चलकर फिर दरभंगा जिले के बेला ग्राम के पास आती थी। बेला के दक्षिण पुनः तीन मील दरभंगा जिले में चलती थी और तब 'महपतिया' ग्राम के पूर्व 'तिलयुगा' नदी से संगम करती थी। किंतु, आज तो स्थिति यह है कि 'टरडीहा' के ऊपर ही यह कोसी की धारा से मिल जाती है।

भुतही-बलान : यह पहले कहा गया है कि 'बलान' (बालुका-वाहिनी) अपनी तीन धाराओं से दरभंगा जिले में प्रवेश करती है और तीनों धाराएँ स्वतंत्र रूप से बहती हुई पहले 'तिलयुगा' में मिलती थीं और अब कोसी में मिलती हैं। 'भुतही-बलान' सबसे पूर्ववाली धारा है, जिसमें एक छोटी नदी 'भुतही' भी मिलती है। किंतु, दरभंगा जिले के सन् १९५२ ई० वाले सर्वे-मानचित्र में 'भुतही' का नाम 'बिहुल' लिखा है। दोनों के सम्मेलन के बाद फुलपरास थाने में यह 'भुतहीबलान' के नाम से अभिहित होती है। अपनी तीनों धाराओं में सबसे अधिक बालुका-राशि बहाकर लानेवाली नदी यह 'भुतही-बलान' ही है और नेपाल की तराई-भाग से लाखों टन बालू ले आकर फुलपरास थाने की उपजाऊ जमीन में पाट देती है, जिससे इसकी चपेट में पड़नेवाले खेत बिलकुल बंजर बन जाते हैं। इस 'बलान' की कहीं पेटी नहीं है और न कोई अपना निश्चित धारा-मार्ग है। वर्षा ऋतु के बाद इसके प्रवाह-मार्ग का कहीं चिह्न नहीं दिखलाई पड़ता और न नदी में कहीं पानी ही दीख पड़ता है। सर्वत्र बालुओं से भरी सपाट भूमि अथवा खेत ही नजर आते हैं और उन्हीं के ऊपर से मीलों में फैलकर यह नदी बाढ़ का पानी बहाती है। सन् १९६९ ई० की जनवरी में मैंने देखा था कि यह 'फुलपरास' की पक्की सड़क के ऊपर से वर्षाकाल में बही थी और तमाम पक्की सड़क ही इसका धारा-मार्ग

बनी हुई थी, क्योंकि सर्वत्र पक्की सड़क पर इतनी अधिक वालुका-राशि बिछी थी कि उस पर से ट्रक और जीप गाड़ियाँ भी बड़ी कठिनाई से चल पाती थीं; कार तो इस पर कभी पार ही नहीं पा सकती थी। मैंने अनुभव किया कि सचमुच 'बलान' जलवाहिनी नदी नहीं है; बल्कि अपने नाम को सार्थक करनेवाली वालुका-वाहिनी है।

बलान का यह पूर्वी प्रवाह नेपाल की तराई से दरभंगा जिले के थाना 'लौकहा' ग्राम के पूरब में प्रवेश करता है और सबसे पहले जिले का 'बन्दरझूली' ग्राम इसका स्वागत करता है। बन्दरझूली ग्राम 'बलान' के इस प्रवाह-मार्ग के वाम पार्श्व में स्थित है। इसके बाद वाम भाग में ही दूसरा ग्राम 'नारायणपुर' मिलता है। यहाँ से दक्षिण की ओर जब 'बलान' बढ़ती है, तब इसके दाहिने किनारे माधोपुर गाँव मिलता है और इसके दक्षिण उसी तट की ओर बसनिया एवं बलानपट्टी गाँव भी अवस्थित हैं। यहाँ इसके बायें तट में 'भजनाहा' ग्राम मानों भक्तिपूर्वक चिरकाल से 'बलान' की आराधना में खड़ा है। भजनाहा से जब थोड़े ही दूर आगे बढ़ती है, तब कुछ अग्निकोण की ओर झुकती हुई दक्षिण में ही चलती है। इस भाग में इसके बाएँ किनारे 'परसौनी-सिरिसिया' नामक प्रसिद्ध और प्राचीन ग्राम है। इसी सिरिसिया के दक्षिण 'बलान' के समानांतर 'बिहुल' (भुतही) नदी दक्षिण दिशा की ओर खेतों में फैलकर बहती हुई मिलती है। इस भाग में दोनों नदियाँ एक विस्तृत और निर्जन-मैदान से बहती हैं और तब 'बलान' आगे बढ़कर 'टेंगुरा' नामक ग्राम को आती है। टेंगुरा से दक्षिण बढ़ने पर इसके दाहिने भाग में 'महथौर' ग्राम मिलता है और इसके दक्षिण जब यह 'नरैना' नामक प्रसिद्ध ग्राम के पास आती है, तब भुतही (बिहुल) भी नरैना के पश्चिम में इससे सम्मिलित हो जाती है। 'फुलपरास' से लगभग दो मील पूर्वोत्तर कोण में बलान और भुतही का संगम है और इस संगम-स्थान के निकट ही पूरब में 'नरैना' ग्राम है।

भुतही को नदी नहीं, बल्कि एक सोता कहना चाहिए, जो दो स्रोतों के द्वारा दरभंगा जिले में प्रवेश करती है। भारतीय सीमा पर स्थित वासुदेवपुर गाँव के पास इसकी पहली धारा दरभंगा जिले में प्रवेश करती है और 'बरकोर' तथा 'हरभंग' गाँवों के मध्य भाग से बहती 'लौकही' के पश्चिम में आती है। लौकही से जो सड़क दक्षिण की ओर चलती 'नरैना' तथा 'फुलपरास' आती है, वह 'भुतही' नदी की बगल से चलती है। लौकही के दक्षिण में ही एक बलुआही मैदान है, जिससे भुतही और बलान दोनों नदियाँ गुजरती हैं। इस मैदान के दक्षिण में तथा 'भुतही' नदी के बायें भाग में लक्ष्मीपुर नामक ग्राम है। इसी ग्राम के दक्षिण में आकर दोनों नदियाँ सम्मिलित हो जाती हैं। संगम-स्थल 'नरैना' ग्राम के पश्चिम में है, जिस 'नरैना' की चर्चा ऊपर की गई है।

भुतही की एक दूसरी धारा नेपाल-तराई से निकलकर 'लौकही' के पूर्व भाग में दरभंगा जिले में प्रवेश करती है। यह धारा किंचित् अग्निकोण की ओर अभिमुख होकर दक्षिण चलती हुई जमसर, ठाढ़ी, लदनिया, कुसुमाही, राजारामपट्टी तथा बनगावाँ ग्रामों की अगल-बगल से बहती निर्मली के उत्तर 'पिपराही' ग्राम के पास कोसी-तटबंध में ४२ वें

किलोमीटर पर घुस कर 'तिलयुगा' में सम्मिलित होती है और 'तिलयुगा' निर्मली के पूरब में कोसी-धार से मिल जाती है।

उपर्युक्त 'भुतही और बलान' नदियाँ परस्पर सम्मिलित होकर जब 'फुलपरास' पहुंचती हैं, तब वर्षाकालीन बाढ़ की बालू से फुलपरास की पक्की सड़क तहस-नहस हो जाती है। बाढ़ का पानी कभी-कभी तो मीलों में पहुँच जाता है और फिर नदी के धारा-गर्भ का पता नहीं चलता है। यों तो, उत्तर बिहार की सभी नदियों का प्रवेश द्वार उथला है और भुरभुरी जमीन होने के कारण ये सभी अपना प्रवाह-मार्ग निरंतर बदलती रहती हैं। फिर भी, 'भुतही-बलान' इन सब में ज्यादा स्वच्छंद है और जिधर जी आता है, उधर कुहराम मचा देती है। 'फुलपरास' दरभंगा जिले की पूर्वोत्तर सीमा का एक थाना है और अंचल का विकास-केंद्र भी है। यहाँ से भुतही-बलान दक्षिण की ओर उस मार्ग के किनारे से चलती है, जो मार्ग 'घोघरडीहा' रेलवे-स्टेशन आता है। इस भाग में इस नदी के किनारे 'मुसहरिया' तथा 'परसा' नामक गाँव हैं। भुतही-बलान 'परसा' गाँव के दक्षिण, घोघरडीहा-रेलवे-स्टेशन के पूरब तथा किसन-पट्टी के उत्तर निर्मली रेल-लाइन को पार करके 'बसवारी' गाँव को पहुँचती है। 'बसवारी' दरभंगा जिले के पूर्वी छोर का अंतिम ग्राम है और यहीं 'भुतही-बलान' अन्हराठाढ़ीवाली बलान नदी के साथ मिल जाती है। फिलहाल, इस नदी की इतनी-सी ही कहानी है।

किंतु, कुछ वर्ष पहले यह 'भुतही-बलान' हटनी, नौआबाखर और निघम गाँवों से होती और दक्षिण की ओर चलती 'सरौती' गाँव को आती थी। फिर 'सरौती' से अग्निकोण में मुड़कर 'सहरसा जिले में घुसती थी और इस जिले में चार मील चलकर पुनः 'बेला' नामक ग्राम के पास दरभंगा जिले में आ जाती थी। बेला ग्राम 'मधेपुर' से चार मील दूर अग्निकोण में थोड़ा झुका हुआ पूरब की ओर अवस्थित है। पहले यह इसी 'बेला' के पास अन्हरा-ठाढ़ीवाली बलान-धारा से मिलती थी और तब 'भगता' तथा 'जगरनाथ' गाँवों से होती 'महपतिया' ग्राम के पूरब में 'तिलयुगा' नदी से मिलती थी। किंतु आज न तो इस भाग में कहीं तिलयुगा है और न बलान है; तब भुतही-बलान की चर्चा कौन करे! अब तो तिलयुगा निर्मली में कोसी से मिल जाती है और भुतही-बलान के साथ अन्हराठाढ़ी वाली 'बलान' टरडीहा के पूर्व कोसी में समा जाती है।

तिलयुगा

उत्तर बिहार की नदियों में 'तिलयुगा' भी प्रसिद्ध है और इसे 'त्रियुगा' भी कहा जाता है। 'वृहत् विष्णुपुराण' (अर्वाचीन पुराण) मिथिला-खंड में 'त्रियुगा' का नाम आया है : **त्रियुगा कमला चेति गंडकी अधिवारिणी**। फिर, चंदा झा नामक प्रसिद्ध मैथिल कवि ने भी अपनी 'मैथिली रामायण' में 'त्रियुगा' का स्मरण किया है :

कमला त्रियुगा अमृता धेमुरा, बागमती कृतसारा।
मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति तें मिथिला विद्यागारा॥

किंतु, महाभारत, वाल्मीकीय रामायण अथवा संस्कृत के अन्य प्राचीन ग्रंथों में हिमालय से प्रस्यूत जिन नदियों की चर्चा है, उनमें त्रियुगा का कहीं नाम नहीं हैं। हाँ, कौशिकी के साथ 'त्रिदिवा' अथवा 'तृतीया' नदी का नाम आया है : **कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठीवी गंडकी तथा**। कुछ लोग 'त्रिदिवा' से 'त्रियुगा' की कल्पना करते हैं; पर मेरी समझ से 'त्रिदिवा' नदी कौशिकी की मुख्य सहायिका नदी होनी चाहिए और निष्ठीवी नदी गंडकी की सहायिका हो सकती है। निश्चिरा नदी के लिए भी निष्ठीवी का नाम आया हो, तो आश्चर्य नहीं। ऐसा सुना है कि किसी काल में कोसी नदी पश्चिम बंगाल के बोगरा या राजशाही जिले में तिस्ता नदी को लेकर ब्रह्मपुत्र से मिलती थी, अतः त्रिदिवा नाम तिस्ता नदी के लिए अधिक सटीक जँचता है।

'तिलयुगा' नेपाल की पूर्वी तराई में स्थित सप्तरी जिले के उत्तरी भाग से 'चूरे' पर्वतमाला की दक्षिणी ढलान से चलती है और दक्षिण दिशा में चलती हुई 'राजविराज' के पूर्वी भाग से गुजरती है। विहार की सीमा को जब यह छूती है, तब थोड़ा नैऋत्य कोण में झुककर दरभंगा और सहरसा जिले की सीमा बनती हुई तथा दक्षिणवाहिनी बनकर बिहार में घुसती है। पाँच मील चलने के बाद यह बिलकुल नैऋत्य कोण में अपनी धारा को बहाना प्रारंभ करती है। आज से कुछ वर्ष पहले इसके धारा-मार्ग तथा संगम-स्थान की कुछ दूसरी ही कहानी थी और तब यह दरभंगा जिले के दक्षिण-पूर्व क्षेत्र के 'सिंगिया' थाने के अग्नि कोण में बसे 'महादेवमठ'* के पूर्व में कमला की धारा से संगम करती थी। किंतु, आज तो इसकी धारा ही कोसी की धारा बन गई है और निर्मली के दक्षिण स्वयं कोसी नदी 'तिलयुगा' की पुरानी धारा से ही मिलकर बहने लगी है।

दरभंगा जिले के पूर्वोत्तर कोण की सीमा तथा सहरसा जिले के पश्चिमोत्तर कोण की सीमा का जहाँ 'तिलयुगा' स्पर्श करती है, वहाँ इसके बायें किनारे सहरसा जिले का 'कुनौली'

---

* दो महादेवमठ हैं। एक दरभंगा जिले के पूर्वोत्तर कोण के लौवही थाने में और दूसरा जिले के पूर्व-दक्षिण कोण के सिंघिया थाने में। दोनों तिलयुगा के किनारे बसे हुए थे।

गाँव बसा हुआ है। कुनौली की आबादी सन् १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार ५२०१ थी। यह निर्मली से लगभग २० मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित है। नेपाल-राज्य का 'सखरा' ग्राम कुनौली से सिर्फ दो मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में तथा त्रियुगा के कछार में बसा है। कोसी के पश्चिमी तट-बंध की २३ कि० मी० वाले स्थल के पास से एक रास्ता कुनौली जाता हैं, जहाँ से यह २ मील उत्तर में है। 'सखरा' में छिन्नमस्ता देवी का प्रसिद्ध मंदिर है, जहाँ अन्य प्राचीन मूर्त्तियाँ भी विद्यमान हैं। इस छिन्नमस्ता को शक्रेश्वरो देवी भी कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस छिन्नमस्ता की स्थापना मिथिलाधिपति हरिसिंह देव के पिता महाराज शक्रसिंह (सन् १२८५ से १२९५ ई०) ने की थी। पंच भगवती देवियों में एक छिन्नमस्ता भी है। आज भी यहाँ प्रति दिन वलि-कर्म होता है। नये मंदिर का निर्माण केंद्रीय मंत्री श्री ललित नारायण मिश्र के सहयोग से हो रहा है! विजयादशमी के अवसर पर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। इसी तिलयुगा के तट पर तथा कुनौली के पड़ोस में आसाम के भास्करवर्मा की सेना के साथ कश्मोर के राजा वालादित्य की सेना का युद्ध छठी शती में हुआ था। कुनौली के बाद 'तिलयुगा' के बायें किनारे सहरसा जिले के कमलपुर, डगमरा, सिकरहटा, दुधैला, दिघिया तथा बेला नामक गाँव मिलते हैं। उक्त 'डगमरा' के पास ही 'तिलयुगा' कोसीतट-बंध के २२.६ कि० मी० के पास उसके भीतर प्रवेश करती है और फिर यह निर्मली तक स्वतंत्र नदी बनकर बहती है। 'वेला' ग्राम उस मुख्य मार्ग पर स्थित है, जो सहरसा जिले के पूर्वी छोर पर स्थित प्रतापगंज-भवानीपुर से पश्चिम की ओर आता हुआ दरभंगा के पूर्वोत्तर सीमा में प्रवेश करके 'नरैना' तथा 'खुटौना' पहुँचता है। दुधैला के पश्चिम में 'तिलयुगा' के पश्चिमी स्रोत के किनारे महादेवमठ नामक दरभंगा जिले का एक पौराणिक स्थान है, जिसे 'असुरगढ़' भी कहा जाता है। अवतक की जानकारी के अनुसार दरभंगा जिले में सबसे प्राचीन स्थान असुरगढ़ (महादेव मठ) और बलराजपुर (बलिराजगढ़) ही हैं। असुरगढ़ दरभंगा नगर से पूर्वोत्तर कोण में लगभग ४५ मील दूर तथा निर्मली से चार मील उत्तर में पड़ता है। यहाँ के किले का ध्वंसावशेष बहुत पुराना माना जाता है; क्योंकि यहाँ की जमीन से वहुतेरी बौद्ध कालीन वस्तुएँ प्राप्त होती रहती हैं। ध्वस्त टीले का क्षेत्र लगभग पचास एकड़ की भूमि में फैला हुआ था, जिसमें अब कई एकड़ की भूमि में तो खेती होने लगी है।

तिलयुगा-तट का असुरगढ़ :

असुरगढ़ का किला 'तिलयुगा' नदी के बिलकुल पश्चिमी तट पर बना था, जिसकी पूर्वी दीवार से टकराती हुई 'तिलयुगा' बहती है। इधर तिलयुगा की पश्चिमी धारा भी ध्वस्त टीले के पश्चिमी भाग ने होकर बहती है, जिससे टीले का एक त्रिकोणात्मक भाग धारा के वहाव में पड़ गया है। फिर भी टीले का पश्चिमी भाग बहुत दूर तक विस्तृत है; क्योंकि नदी की धारा बहुत तेज तथा गहरी नहीं है। अतः, टीले की बहुत क्षति नहीं हो सकी है। दीवारों में कई स्थानों पर जो खुला भाग है, वह निर्गमन द्वार जान पड़ता है और जो नुकीला

भाग है। वह किले का रक्षात्मक पोस्ता ज्ञात होता है। किले का मुख्य द्वार दक्षिण दिशा में और गढ़गाँव ग्राम की ओर उसके पूरब में था, ऐसा उसकी बनावट से मालूम पड़ता है। यद्यपि किले की दीवार बहुत मोटी नहीं दीखती, तथापि इसकी नींव बहुत ही गहराई तक पाई गई है। इसके निर्माण में राज मिस्त्री का काम कौतूहलपूर्ण तथा आश्चर्य में डालने वाला प्रतीत होता है। भीतर की कई कोठरियाँ ऐसी लगती हैं, जैसे ये तहखाना रही हों अथवा ये उस समय के कुएँ हों। इन तहखानों में पैठ कर इनका अन्वेषण करना बड़ा ही खतरनाक काम है, अतएव इनके संबंध में पूरी जानकारी नहीं प्राप्त की जा सकी है। यहाँ उसी तरह की प्राचीन ईंटें मिलती हैं, जैसी 'बलिराजगढ़' में प्राप्त होती हैं।

असुरगढ़ के संबंध में बहुत-सी अन्ध-विश्वासपूर्ण किंवदन्तियाँ भी प्रचलित हैं। लोगों का कहना है कि यह स्थान कभी नाश न होनेवाला तथा अत्यंत पुण्यमय तीर्थ है। कुछ लोगों का कहना है कि आज से पचहत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व जब 'कोसी' नदी की बाढ़ ने इस स्थान को ग्रस लिया था और इसे नष्ट करने पर तुल गई थी, तब नदी का पानी रज:स्राव की तरह लाल हो गया था। उस समय किले ने 'कोसी' को पत्नीरूप में वरण कर लिया था और कोसी अपने पति से समागम करने आई थी। यही कारण रहा कि 'कोसी' किले का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकी और तुरत शांत हो गई। दूसरा अंधविश्वास है कि इस स्थान में जो कोई पक्षियों का शिकार करेगा अथवा गढ़ की कोई चीज नष्ट करेगा या उठा ले जायेगा, उसका नाश अवश्य हो जायेगा। फिर भी देखा तो यही जाता है कि गढ़ के विस्तृत क्षेत्र में से कई एकड़ भूमि पर लोगों ने अधिकार कर ही लिया है। जो हो, इन किंवदंतियों के परिप्रेक्ष्य में यह स्थान अत्यंत प्राचीन प्रतीत होता है और यह पुरातात्त्विकों के लिए निश्चय ही अनुसंधान का प्रमुख केंद्र है।

तिलयुगा के तट का 'असुरगढ़' कब बना था, इसका ठीक-ठीक अनुसंधान अभी तक नहीं हो सका है। किंतु, किले की दीवारों की मुस्लिमकालीन ईंटें बतलाती हैं कि किले पर मुस्लिम-शासन का भी कभी प्रभाव था। ऐसा विश्वास है कि मुस्लिम शासक 'असर शाह' ने इस किले को बनवाया और उसी ने दूसरा किला सहरसा जिले के 'चनउर' स्थान में भी बनवाया और दोनों को जोड़ने के लिए उसने 'असुरगढ़' से 'चनउर' तक एक मार्ग का निर्माण कराया था। किंतु, यहाँ जो बहुतेरे ताँबे तथा अन्य धातुओं के टुकड़े मिले हैं, उनसे लगता हैं कि यह स्थान बहुत प्राचीन है और यह बौद्धकाल में ही विनष्ट हो गया था। संभव है कि प्राचीन समय के 'असुर' नामक किसी राजा का संबंध इस किले से हो या यहाँ के मुस्लिमयुग के किसी का काम दैत्य की तरह होता हो, जिससे इस स्थान का नाम 'असुरगढ़' पड़ गया हो। यह भी संभव है कि एक ही नाम के दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न काल में पैदा हुए हों, जिनका संबंध इस स्थान से रहा हो। यहाँ के महादेवमठ का मंदिर बहुत प्राचीन लगता है और प्रतिवर्ष फाल्गुन तथा वैशाख की शिवरात्रियों के दिन यहाँ मेला भी लगता है। यहीं त्रियुगा की दोनों धाराएँ (पश्चिमी और पूर्वी) परस्पर मिल जाती हैं।

अब यह उपर्युक्त तिलयुगा 'वेला' ग्राम के पश्चिमी भाग से दक्षिण में चलती हुई 'निर्मली' के पूरव में आकर-कोसी में मिल जाती है। किंतु, पहले त्रियुगा स्वतंत्ररूप से क्रमशः उत्तर से दक्षिण की ओर रसुआर, ढावघाट, कदमाहा, सिसउनी, वरहरा, मौहरपट्टी, पचगढ़िया तथा खोखहा ग्रामों के पूरव से एवं परसामाधो और सिसवा के पश्चिम भाग से बहती थी। कोसी का तटबंध जब नहीं बना था और जब इधर से कोसी नहीं बहाई गई थी, तब इसी 'सिसवा' के पास तिलयुगा में 'बैंती' नामक नदी मिलती थी, जो कोसी की ही उप-धारा थी। यद्यपि निर्मली के वाद से ही अब तिलयुगा का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तथापि सन् १९६३ ई० तक तिलयुगा की जो प्रधानता थी और मिथिला में जो इसका महत्त्व था, उसे भुलाया नहीं जा सकता है। निर्मली के वाद आज की कोसी की धारा सन् १९६३ ई० के पहले 'तिलयुगा' की धारा थी, जिसकी कुछ चर्चा यहाँ कर देना आवश्यक है।

तिलयुगा की पुरानी गाथा :

सन् १९६३ ई० के पूर्व 'तिलयुगा' सिसवा के पास 'बैंती' नदी को समेट कर 'सहरसा तथा दरभंगा जिले की सीमा बनती हुई सुकैला, डुमरिया, सलवा नरहरिया गाँवों के पश्चिम से बहती थी और ये सभी गाँव 'तिलयुगा' के बायें तट पर स्थित मिलते थे। इसी नरहरिया के सामने, पश्चिम में, तिलयुगा के दाहिने किनारे दरभंगा जिले का प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्राम 'द्वालख' है, जो अब 'कोसी' तटबंध के भीतर है। इसी द्वालख में नान्य-देव के पुत्र गंगदेव ने गौड़ के अधिपति वल्लाल सेन की सेना को युद्ध में परास्त किया था और अपने बंदी पिता को वल्लाल सेन के कारागार से मुक्त कराया था। इसी युद्ध के बाद मिथिला में 'सिमराँव'-राजवंश की स्थिति सुदृढ हुई थी। 'द्वालख' मधेपुर थाने के अग्निकोण में है और 'भीठ भगवानपुर' के पूरव में स्थित है। नरहरिया के बाद तिलयुगा के वाम पार्श्व में सहरसा जिले के मुरलीपुर तथा बकौनिया ग्राम पड़ते थे और अब ये भी कोसी-तटबंध के भीतर में आ गए हैं। बकौनिया एक साधारण-सा ग्राम है, जो नौहट्टा से छह मील पश्चि-मोत्तर कोण में वर्त्तमान है। तिलयुगा की बाढ़ से बचाव के लिए पहले बनैली-श्रीनगर (पूर्णिया जिले में) राज्य ने १४ मील लंबा एक तटबंध तिलयुगा में बनाया था, जो इसी 'बकौनिया' ग्राम से आरंभ होता था। कोसी-तटबंध वनने के पहले ही यह तटबंध प्रायः नष्ट हो गया था और यत्र-तत्र इसका जो चिह्न दृष्टि-गोचर होता था, वह भी अब कोसी-तटबंध वनने के पश्चात् लुप्त हो गया। 'बकौनिया' के पास ही 'तिलयुगा' पहले दो धाराओं में बँट जाती थी। इसकी पूर्वी धार पहले जो वस्तुतः 'बैंती' नदी की धारा थी। पश्चात् जब ऊपर में ही 'बैंती' तिलयुगा से मिल गई, तब बकौनिया के पास से तिलयुगा ने अपनी पूर्वी शाखा प्रवाहित की, जिसका नाम '**गोधी**' था। यह गोधी शाखा तिलयुगा के समानांतर चलती हुई सहरसा ज़िले के दक्षिणी भाग में 'धेभुरा' नदी से मिलती थी। किंतु, अब तो कोसी नदी तथा उसके तटबंध ने यह सारा खेल समाप्त कर दिया है, और इन सब पर एकमात्र कोशी का ही आधिपत्य है।

बकौनिया के बाद तिलयुगा सीधे दक्षिण दिशा में दरभंगा-सहरसा जिले की सीमा-रेखा बनती अपने दाहिने तट पर डंका, भंडरिया, कंदवारा तथा बिरदीपुर नामक गाँवों को निहारती हुई सहरसा जिले में प्रवेश कर जाती थी और विरदीपुर के पास ही सीमारेखा वनने का काम छोड़ देती थी। विरदीपुर तक तिलयुगा के बायें तट में सहरसा जिले के दरहरा, नउला, लालपुर तथा सतउर ग्राम मिलते थे, जो अब कोसी-तटबंध के गाँव में हैं। सतउर के सामने दरभंगा जिले का विरदीपुर गाँव है। सतउर ग्राम नारायणपुर-धरहरा से थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकता हुआ पश्चिम में डेढ़ मील दूर पर अवस्थित है। लोगों का कहना है कि हरिसिंह देव यहाँ कुछ दिनोंतक रह कर मिथिला का शासन चलाते थे। मिथिला के बड़े-बड़े विद्वान् इसी 'सतउर' ग्राम के निवासी थे, जिनके वंशज अब दरभंगा जिले में रहते हैं। विरदीपुर के दक्षिण सहरसा जिले का 'वीरगौन' नामक ग्राम है, जहाँ पहले तिलयुगा नदी सहरसा जिले के भीतर प्रवेश करती थी। इसके बाद तिलयुगा जब दक्षिण दिशा में बढ़ती थी, तब इसके किनारे सहरसा जिले के भटेही कलाँ, भटेही खुर्द, धनवार, आरा, मँगरौनी, करहरा, झारा तथा सिसउना नामक गाँव दिखाई पड़ते थे। आरा ग्राम के टीले की खुदाई में सन् १९३५ ई० में, प्रस्तर-स्तंभ के टुकड़े प्राप्त हुए थे, जिनके ऊपर की ब्राह्मी लिपि घिस जाने के कारण पढ़ी नहीं जा सकी थी। इसके अतिरिक्त एक लक्ष्मी की मूर्त्ति तथा कई अन्य मूर्त्तियाँ मिली थीं। तिलयुगा सिसउना के दक्षिण तथा दरभंगा जिले के महादेव मठ (पूर्वकथित महादेव मठ से भिन्न) से अग्निकोण में एवं सहरसा जिले के धरमपुर के पश्चिम में सहरसा जिले को छोड़ती थी और वहीं 'करेह' तथा 'कमला' की सम्मिलित धारा के साथ संगम करती थी। यह संगम उत्तर मुँगेर जिले के पूर्वोत्तर भाग में स्थित 'अगर' नामक गाँव के पास था। इसी 'अगर' गाँव के पास 'धेमुरा' नदी भी, जो कोसी की उपधारा है, पहले इन तीनों नदियों (करेह, कमला और तिलयुगा) के सम्मिलित प्रवाह में समाहित होती थी। किंतु, अब यह धेमुरा भी यहीं 'कोसी' के प्रवाह से मिल रही है। उत्तरी मुँगेर ज़िले का 'अगर' नामक गाँव 'बेलाही' के पूर्व में है। 'बेलाही' उत्तरी मुँगेर के 'अलौली' थाने का तथा 'अगर' सिमरी-बख्तियारपुर थाने का गाँव है। सिमरी-बख्तियारपुर से 'अगर' लगभग १२ मील पश्चिम में स्थित है। इन्हीं नदियों की सम्मिलित धारा 'अगर' के बाद जब आगे बढ़ती थी, तब 'घघरी' नदी कहलाती थी। यहाँ तक तिलयुगा के प्रवाह की चर्चा अब इतिहास की बात हो गई है, इसलिए लिख दी गई है। 'तिलयुगा' के अस्तित्त्व को तो अब निर्मली रेलवे स्टेशन के पास ही 'कोसी' नदी समाप्त कर देती है।

बैंती, जो अब कोसी में समा गई : कोसी की एक दूसरी उपधारा का नाम 'बैंती' नदी था, जिसे कोसी ने इधर बिलकुल समाप्त कर दिया है। 'बैंती' नदी कोसी-तटबंध के भीतर में आ गई है और कोसी पूर्णतः बैंती-धार से बहने लगी है। कोसी जब पश्चिम दिशा से हटकर पूरब की ओर बढ़ गई थी, तब उसने जो अपने छाड़न छोड़े दिये थे, उन्हीं छाड़नों में एक छाड़न का नाम 'बैंती' था। यह भीमनगर के दक्षिण से आरंभ होती थी और बिलंदी, बननिया, लौकहा आदि स्थानों से होते 'डगमारा' के पूरब में आती थी। यहाँ से यह

उगनीपट्टी, हरपुर, कविआही, कल्याणपुर तथा गिधानी गाँवों की अगल-बगल से गुजरती 'भपटियाही' पहुँचती थी। भपटियाही के पश्चिमोत्तर कोण में आकर 'बैंती' नदी पश्चिम की ओर मुड़ती थी और फिर अपना मार्ग नैऋत्य कोण में बना लेती थी। बैंती की नैऋत्य-कोणाभिमुखी धारा के किनारे कटैया, भुलिया, लगनिया, औराही, सोनपतहा तथा गोदहवा नामक गाँव स्थित थे। गोदहवा गाँव बैंती के पूर्वी तट पर बसा था और इसी गाँव के पूरब में 'आरा' नामक गाँव है, जिसकी चर्चा 'तिलयुगा' के प्रसंग में की गई है। गोदहवा से बैंती नदी जब दक्षिण चलती थी, तब उसके किनारे में सोनबरसा, सेमराहा तथा भौराहा नामक गाँव दिखाई देते थे। इसी जगह 'नवा बखार' गाँव है, जिसके सटे पश्चिम में पहले बैंती नदी बहती थी। नवा बखार प्रसिद्ध और पुराना ग्राम है। इसके दक्षिण बढ़ने पर 'बौराहा' गाँव मिलता है, जिसके सटे पश्चिम से बैंती-धारा दक्षिण जाती थी। जब कुछ दक्षिण बढ़ती थी, तब इसके दाहिने किनारे में 'जोबहा' गाँव पड़ता था और इसी 'जोबहा' के दक्षिण में 'सिसवा' नामक गाँव है, जहाँ 'बैंती' नदी 'तिलयुगा' से संगम करती थी। किंतु, अब तो यह सारी स्थिति समाप्त हो गई है और कोसी नदी अपने बराज-स्थान निर्मली तक 'बेती नदी' की धार से मिलकर ही बहने लगी है और 'बैंती' का नाम-निशान मिट चुका है। अपने उत्तरी और ऊपरी भाग में यद्यपि तिलयुगा नदी 'डगमरा' के पास ही कोसी-तट-बंध के भीतर प्रवेश कर जाती है, तथापि निर्मली तक अपना अस्तित्व बचाये हुए है। किंतु, बेचारी 'बैंती' का तो कहीं नाम भी नहीं रह गया है।

कोसी

'कोसी' का उल्लेख यद्यपि उत्तर बिहार की नदियों की गणना के प्रसंग में किया जा रहा है, तथापि यह केवल संपूर्ण बिहार-प्रदेश की ही नहीं, अपितु समग्र 'भारत' और नेपाल की प्रमुख नदियों में अन्यतम मानी जाती है। हमारे देश के प्राचीन ग्रंथों में भी 'कोसी' की वही महिमा और मर्यादा गाई गई है, जो गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा या कृष्णा-कावेरी की। कुछ बातों में तो कोसी की बराबरी करनेवाली कोई दूसरी नदी दुनिया में नहीं हैं—जैसे संसार के सर्वोच्च हिम-पर्वत के चारों ओर के जल को समेटने का सौभाग्य 'कोसी' के अतिरिक्त किसी भी नदी को प्राप्त नहीं है। दूसरी बात यह कि आज भी 'कोसी' हिमालय के आँगन से जितनी अधिक मात्रा में बालू और मिट्टी को बहाकर बिहार की भूमि को भरती है, शायद ही दूसरी कोई नदी इतनी बालू-मिट्टी लाकर पृथ्वी का निर्माण करती हो! यह नेपाल की राजधानी काठमाण्डो नगर के पूर्वोत्तर सीमा भाग में स्थित 'गोसाईं थान' के हिमांचल से आरंभ करके पूर्व में 'कंचनजंघा' हिम-शिखर तक के और फिर इसी प्रकार उत्तर दिशा में हिमालय पर्वत की श्रृंखला को पार करके तिब्बतीय पठार तक के विस्तृत भू-भाग के हिम-जल तथा वर्षा-जल को अपने उदर में समेटती है और हिमालय-पर्वतमाला, महाभारत-पर्वत श्रृंखला तथा चूरे-श्रृंखला को विदीर्ण करती नेपाल के तराई-भाग में 'चतरा' नामक स्थान के पास आती है और तब भारत के बिहार-प्रदेश में प्रवेश करती है। यह पश्चिम से पूर्व तक की १७५ मील लंबी एवं दक्षिण से उत्तर को ओर की ९२ मील चौड़ी भूमि का पानी, बालू तथा मिट्टी बहाकर बिहार में लाती है और गंगा के मार्ग से समुद्र के उदर में डालती है। इसके तट पर साक्षात् भगवान् शंकर बसते हैं।[१] कोसी (कौशिकी) प्रबल प्रतापी ऋषि विश्वामित्र की बहन है,[२] जिसकी अर्चा विश्वामित्र अपना आश्रम बनाकर करते थे।[३] इसलिए 'कोसी' का तांडव नृत्य तथा मदोद्धत्य सातिशय विश्रुत है। यह सहरसा और पूर्णिया ज़िले के लिए अत्यंत विपत्तिमूलक तथा विध्वंसकारिणी नदी मानी जाती है। इसकी बाढ़ की विभीषिका को लिखकर या बोलकर नहीं समझाया जा सकता है। जो लोग इसकी चपेट में पड़ते रहते है, वे ही जान सकते हैं कि कोसी कितनी बड़ी संतापदायिनी तथा प्रलयंकरी नदी है। कुछ घंटों में ही इसकी

---

१ कुमार-संभव, सर्ग ६, श्लोक ३३।

२. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, ३४।८-९।

३. महाभारत, वन पर्व, ८४।१४३ और ११०।१२०-२२।

बाढ़ मीलों चौड़ी भूमि को आक्रांत कर लेती है और गाँव-का-गाँव साफ कर देती है। पेड़-पौधों के साथ ऊँचे खेतों की भूमि को १५-२० फुट तक की गहराई से काट ले जाती है और कहीं फसलों से भरी जमीन में मीलों तक पाँच से दस फुट तक की ऊँचाई में लाखों टन वालू भर देती है। बरसात बीतते ही बाढ़वाली भूमि में कास, पटेर, झड़बेर और झउवे के घनघोर जंगल देखते-ही-देखते फैल जाते हैं और मीलों की उर्वर भूमि बिलकुल वीरान बन जाती है। अपनी बाढ़ से यह अकाल को तो लाती ही है, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों को फैलाकर अपने क्षेत्र में ऐसी महामारी फैलाती है कि घर-का-घर एवं गाँव-का-गाँव तवाह हो जाता है।

पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग की पूरी धरित्री और संपूर्ण सहरसा जिले की भूमि अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग ७५ मील की भूमि कोसी के द्वारा हिमालय से लाई गई मृत्तिका से बनी है। इस भाग में समुद्र के गर्भ से प्रथम-प्रथम पृथ्वी का आविर्भाव सुनकोसी, अरुणकोसी और तमार कोसी के त्रिवेणी-संगम के पास हुआ था, जहाँ 'कोसी' हिमालय के आँगन से बाहर निकलती है। इसीलिए, यहाँ वराह भगवान् के द्वारा पृथ्वी के उद्धार के पौराणिक आख्यान के आधार पर कोसी के तट पर वराह-मूर्त्ति की स्थापना की गई थी और वह 'वराह तीर्थ' के नाम से विख्यात हुआ था। इस भाग के कोसी-क्षेत्र में अनेक तीर्थ हैं, जिनका विस्तृत विवरण 'वराह पुराण' के १४० वें अध्याय में मिलता है और जिनका यथा-प्रसंग उल्लेख आगे किया जायगा।

बिहार-प्रदेश के उत्तरी सीमांचल को छूते ही 'कोसी' अपनी प्रवाह-वेणी को बिखरा देती है और काली घटाओं जैसी अपनी अनेक धाराओं से सहरसा और पूर्णिया जिले में फैल जाती है। दरभंगा जिले के पूर्वी भाग से पूर्णिया जिले तक की ७५ मील की भूमि में एक इंच भी ऐसी भूमि नहीं है, जहाँ कभी कोसी नदी की धारा न वही हो। इस ७५ मील के चौड़े क्षेत्र में 'कोसी' अनेक बार पश्चिम से पूर्व की ओर गई है और अनेक बार पूर्व से पश्चिम की ओर आई है। कोसी नदी पूरब में पूर्णिया, दिनाजपुर और मालदह जिलों को पार करती 'बोगरा' जिले में ब्रह्मपुत्र की धारा तक दौड़ लगा चुकी है और पश्चिम में 'कमला' नदी की धार तक आ चुकी है। इस प्रकार, इसका आना-जाना हजारों वर्षों से जारी है और पता नहीं, कब-तक जारी रहेगा और इसका औद्धत्य तथा क्रोध कब शांत होगा?

कौशिकी (कोसी) अत्यंत पुण्यवती सुर-सरिता है, जो गौरी शंकर, सागरमाथा, कंचन-जंघा-जैसे ऊँचे पर्वत-शिखरों का जल और मिट्टी बिहार-प्रदेश में लाती है और गंगा-जैसी पवित्र नदी से संगम करती है। इसीलिए, हमारे सभी धार्मिक और पवित्र ग्रंथ 'कोसी' की गुण-गरिमा गाकर अपने को धन्य करते हैं। रामायण, महाभारत और अठारहो पुराणों में कोई ऐसा ग्रंथ नहीं है, जिसने कौशिकी का गुण-कीर्त्तन न किया हो।

कोसी का प्राचीन साहित्य और कोसी-क्षेत्र के तीर्थ :

कोसी का वास्तविक नाम 'कौशिकी' है। इसी कौशिकी का अपभ्रंश आज 'कोसी' नाम से लोक में प्रचलित है। कौशिकी की उत्पत्ति की संक्षिप्त कहानी **'वाल्मीकीय रामायण'**

में है। विश्वामित्र मुनि राम-लक्ष्मण को साथ लेकर जब सिद्धाश्रम से मिथिलापुरी जा रहे थे, तब उन्होंने शोण-तट पर मागधों के साथ ही अपने वंश का भी इतिहास उन्हें सुनाया था। उसी प्रसंग में उन्होंने अपनी बड़ी बहन 'सत्यवती' की भी कथा कही थी, जो ऋचीक ऋषि से ब्याही गई थी। विश्वामित्र ने बतलाया कि ऋचीक के मरने के पश्चात् मेरी बहन सत्यवती पति का अनुगमन करती सशरीर स्वर्ग में गई और वह 'कौशिकी' नामक नदी के रूप में परिणत हो गई। वह परम रमणीय और पवित्र जलवाली नदी संसार के हित के लिए हिमालय का सेवन करती है। हे राघव, मैं अपनी बहन के प्रेम के कारण हिमालय की पार्श्वभूमि में उसके तट पर निवास करता हूँ। सत्य-धर्म में निरत एवं पतिव्रता और भाग्यवती मेरी वही बहन सत्यवती पुण्यवती नदियों में श्रेष्ठ बनकर 'कौशिकी' के नाम से बहती है :

पूर्वजा भगिनी चापि मम राघव सुव्रता।
नाम्ना सत्यवती नाम ऋचीके प्रतिपादिता॥
सशरीरा गता स्वर्गं भर्तारमनुवर्त्तिनी।
कौशिकी परमोदारा सा प्रवृत्ता महानदी॥
दिव्या पुण्योदका रम्या हिमवन्तमुपाश्रिता।
लोकस्य हित-कामार्थं प्रवृत्ता भगिनी मम॥
ततोऽहं हिमवत्पार्श्वे वसामि निरतः सुखम्।
भगिन्यां स्नेह-संयुक्तः कौशिक्यां रघुनन्दन॥
सा तु सत्यवती पुण्या सत्ये धर्मे प्रतिष्ठिता।
पतिव्रता महाभागा कौशिकी सरितां वरा[1]॥

विश्वामित्र ऋषि ने 'कौशिकी' के तट पर ही एक सहस्र वर्ष तक घनघोर और अतिशय कठोर तपस्या की थी, जिससे सारा सृष्टि-चक्र हिल गया था :

कौशिकी-तीरमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम्।
तस्य वर्ष सहस्राणि घोरं तप उपासते[2]॥

फिर, इसी कौशिकी के तटवाले अपने आश्रम से ही विश्वामित्र ऋषि यज्ञ कराने 'सिद्धाश्रम' में गए थे, जहाँ यज्ञ की पूर्णाहुति में उन्हें राम-लक्ष्मण का सहारा लेना पड़ा था :

अहं हि नियमाद्राम हित्वा तां समुपागतः।
सिद्धाश्रममनुप्राप्य सिद्धोऽस्मि तव तेजसा[3]॥

विश्वामित्र ने अपने कुल का इतिहास जब राम-लक्ष्मण को सुना दिया, तब वहाँ उपस्थित अन्य मुनियों ने 'कौशिकी' की प्रशंसा में कहा था "हे ऋषि नदियों में श्रेष्ठ

---

१. वाल्मीकीय रामायण, काण्ड १, सर्ग ३४, श्लोक ७ से ११।

२. वाल्मीकीय रामायण, काण्ड १, सर्ग ६३, श्लोक १५।

३. वाल्मीकीय रामायण, काण्ड १ सर्ग ३४, श्लोक १२।

'कौशिकी' आपके वर्चस्वी कुल को उजागर करनेवाली सर्वश्रेष्ठ पुण्यवती नदी है : **'कौशिकी च सरिच्छ्रेष्ठा कुलोद्योतकरी तव।**[१]

कौशिकी की उत्पति की जो कथा 'वाल्मीकीय रामायण' में प्राप्त है, वही कथा थोड़े हेर-फेर के साथ **'विष्णुपुराण'** (अंश ४, अध्याय ६, १२-१६ तक) के वाक्यों में मिलती है : **गाधिश्च सत्यवती कन्यामजनयत् । ताञ्च भार्गव ऋचीको वव्रे । गाधि रप्यतिरोषणायाति वृद्धाय ब्राह्मणाय दातुमनिच्छन्नेकतश्श्यामकर्णानामिन्दुवर्चसामनिल-रंहसामश्वानां सहस्त्र-कन्याशुल्कमयाचत् । ततस्तामृचीकः कन्यामुपयेमे ।** इन संदर्भ से स्पष्ट पता चलता है कि ऋचीक भार्गवकुल के थे और वे बहुत क्रोधी तथा व्याह के समय अत्यंत वृद्ध थे, जिससे सत्य-वती के पिता गाधि अपनी पुत्री का व्याह उनसे नहीं करना चाहते थे। उन्होंने इस विवाह को टालने के लिए एक शर्त्त रख दी कि यदि ऋचीक कन्या-शुल्क में चंद्रमा के समान उज्ज्वल वर्णवाले और हवा से बातें करनेवाले एक सहस्त्र श्यामकर्ण अश्व दें, तो यह विवाह हो सकता है। किंतु, भृगुवंशी ऋचीक ने गाधि की शर्त्त को पूरा करके सत्यवती का वरण कर ही लिया। 'विष्णुपुराण' इसी स्थल के अपने ३४ वें वाक्य में कहता है—**सत्यवत्यपि कौशिकी नाम नद्य-भवत् ।** इससे स्पष्ट है कि ऋचीक अत्यंत वृद्ध होने के कारण शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त कर गये और तब सत्यवती उनका अनुगमन करती हुई नदी-रूप में परिणत हुई। किंतु **'महाभारत'** कहता है कि प्रतापी ऋषि विश्वामित्र ने अपने आश्रम के पास शौच आदि नित्य क्रियाओं के निमित्त अधिक जलवाली और पवित्र एक नदी का निर्माण किया, जिसे लोग 'कौशिकी' कहते हैं :

शौचार्थं यो नदीं चक्रे दुर्गमां बहुभिर्जलैः ।
यां तां पुण्यतमां लोके कौशिकीति विदुर्जनाः ॥[२]

उक्त श्लोक से तो ऐसा लगता है कि विश्वामित्र ने 'कौशिकी' का निर्माण किया और विश्वामित्र कौशिक गोत्र के थे, अतः उनके द्वारा निर्मित नदी भी कौशिकी कहलाई; क्योंकि भगीरथ द्वारा लाई गई 'गंगा' का नाम भी जिस प्रकार 'भागीरथी' पड़ा। महाभारत के एक दूसरे स्थल में भी 'कौशिकी' की चर्चा आई है और कहा गया है मेनका के गर्भ से शकुंतला के जन्मने पर विश्वामित्र कौशिकी तट के अपने आश्रम में चले गये : **काम-क्रोधावजितवान् सखा ते कौशिकीं गतः।**[३] फिर, महाभारत के आदि पर्व (७२/३२) में कहा गया है कि अत्यंत प्राचीन काल में जब एक बार अकाल पड़ा था, तब विश्वामित्र एक दिन अपने आश्रम में लौटे और उन्होंने 'कौशिकी' का दूसरा नाम 'पारा' भी रखा :

अतीते काले दुर्भिक्षे अभेत्य पुनराश्रमम् ।
मुनिः पारेति नद्याः वै नाम चक्रे तदा प्रभुः ॥

---

१. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ३४, श्लो० २१।

२. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय ७२, श्लोक ३०।

३. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय ७३, श्लोक १६।

'महाभारत' वाल्मीकीय रामायण के उस कथन को संपुष्ट करता है कि विश्वामित्र ने कौशिकी के तट पर सुदारुण तप किया था और यहीं की कठिन तपस्या के कारण उन्होंने ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था :

ब्रहुमूलफला चापि कौशिकी भरतर्षभ ।
विश्वामित्रोऽभ्यगात् यत्र ब्राह्मणत्वं तपोधनः ।।[१]

फिर अपने भीष्म पर्व के नवम अध्याय के १८ वें श्लोक में उक्त ग्रंथ त्रिदिवा, कृत्या, निचिता (निश्चीरा) और लोहितारिणी के साथ 'कौशिकी' का नाम स्मरण करता है : **कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम्** । किंतु, सबसे विस्तृत चर्चा 'महाभारत' अपने वनपर्व के ८४ वें अध्याय में कौशिकी तथा कौशिकी-क्षेत्र के तीर्थों की करता है, जिनकी पहचान सांस्कृतिक भूगोल के अध्येताओं के लिए आज एक चुनौती है ! उक्त अध्याय के १३१ वें से १५८ वें तक के श्लोकों में यह चर्चा आई है, जिसमें कुशिकाश्रम, कौशिकी, चंपकारण्य, ज्येष्ठिल, कन्यासंवेद्य, निश्चीरा-संगम, वसिष्ठाश्रम, देवकूटशिखर, कौशिकह्लद, वीराश्रम, अग्निधारा, पितामहसर, कुमारधारा, गौरीशंकर-शिखर, स्तनकुंड, ताम्रारुणतीर्थ, नंदिनीकूप, कालिकासंगम, उर्वशीतीर्थ, कुम्भकर्णाश्रम तथा कोकामुख नामक तीर्थों की चर्चा विस्तार से मिलती है । महाभारतकार के अनुसार, यह यात्राक्रम नेपाल-क्षेत्र से चलता है और क्रम-विपर्यय होते 'कोकामुख तीर्थ' (वराह क्षेत्र) तक आता है; क्योंकि वामनाश्रम में हरि भगवान् के दर्शन के पश्चात् सभी पापों के नाशक कुशिकाश्रम में जाने के लिए कहा गया है और तब कौशिकी तीर्थ का विधान है :

कुशिकस्याश्रमं गच्छेत् सर्वपाप-प्रमोचनम् । १३१ ।।
कौशिकीं तत्र गच्छेत महापाप-प्रणाशिनीम् ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।। १३२ ।।

कौशिकी के पश्चात् 'चंपकारण्य' क्षेत्र का उल्लेख भी मिलता है, जहाँ के एक रात्रिवास करने से सहस्र गायों के दान का फल प्राप्त होता है :

ततो गच्छेत राजेन्द्र चम्पकारण्यमुत्तमम् ।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ।।[२]

'चंपकारण्य' के प्रसंग में इतना कह देना आवश्यक है कि इस 'चंपकारण्य' से वर्तमान बिहार-प्रदेश के चंपारन जिले को नहीं समझा जाना चाहिए । यह चंपकारण्य किसी काल में चंपा-राज्य का अरण्य-भाग था, जो गंगा के उत्तर में तथा कोसी नदी के पश्चिम में नेपाल के तराई-भाग तक फैला था । इसमें नेपाल-राज्य के राजविराज, सप्तरी तथा उदयपुर जिले भी सम्मिलित थे । बिहार का आधुनिक सहरसा जिला भी उस समय 'चंपकारण्य' क्षेत्र में ही था।

---

१. महाभारत, वनपर्व, अध्याय ८८, श्लोक १३ ।

२. महाभारत वनपर्व, अध्याय ८४, श्लोक १३३ ।

इसी चंपकारण्य को उद्देश्य करके 'शक्ति-संगम-तंत्र' के सातवें परिच्छेद का २७ वाँ श्लोक इस प्रकार लिखा गया था :

गण्डकी-तीरमारभ्य चम्पारण्यान्तकं शिवे ।
विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्त्यभिधः स तु ।

इससे स्पष्ट है कि विदेहभूमि पश्चिम में गंडकी तक और पूर्व में 'चंपारण्य' के अंत भाग तक और दक्षिण में गंगा-तट से उत्तर में नेपाल तक फैली हुई थी। इसी चंपकारण्य के पश्चिमोत्तर कोण में 'सरस्वती तीर्थ' है, जहाँ चंपकेश्वर नामक 'महादेव' आज भी हैं। सहरसा जिले के सिंहेश्वर थाने के 'शंकरपुर' नामक गाँव में 'चंपावती' नामक देवी की मूर्ति भी प्रमाणित करती है कि यह क्षेत्र भी 'चंपारण्य' की सीमा में ही उस समय था और कोसी उस समय इसके पूरब में बहती थी।

'चंपारण्य' के बाद 'महाभारत' जिस 'ज्येष्ठिल' तीर्थ का उल्लेख करता है, वहाँ गौरी के साथ विश्वेश्वर महादेव की मूर्ति स्थापित थी। उस तीर्थ में एक रात वास करने से मनुष्यों को 'मित्रावरुण' का लोक प्राप्त होता था :

अथ ज्येष्ठिलमासाद्य तीर्थं परम दुर्लभम्
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्र फलं लभेत्
तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा देव्या सह महाद्युतिम्
मित्रावरुणयोर्लोकानाप्नोति पुरुषर्षभ[1]

यह जेष्ठिल तीर्थ नेपाल के जलेश्वर स्थान में होना चाहिए अथवा 'जेठउर' महादेव भी ज्येष्ठिल के विश्वेश्वर हो सकते हैं। ज्येष्ठिल के पश्चात् 'कन्या-संवेद्य' तीर्थ की चर्चा है, जिसका निश्चित सूत्र हाथ नहीं लगता है। किंतु, इस तीर्थ को नेपाल के 'काभ्रे' जिले में होना चाहिए, जो भक्तपुर के पूर्व में वर्त्तमान है। अधिक संभावना तो यह है कि 'कन्यासंवेद्य' तीर्थ 'मोरंग' में होगा, जहाँ की औरतें विदेशी पुरुषों के लिए जादूगरनी मानी जाती थीं। निश्चीरा नदी और इसके संगम का पता भी नहीं चलता है। भागलपुर जिले की 'चीर' नदी 'निश्चीरा' नहीं हो सकती है; क्योंकि 'चीर' एक तो अत्यंत छोटी और अनुल्लेखनीय नदी है। दूसरी बात यह है कि निश्चीरा और निश्चीरा-संगम का प्रसंग कौशिकी का हिमालयीय भाग है, जहाँ वसिष्ठ ऋषि का आश्रम था। महाभारत के अनुसार, 'निश्चीरा' त्रिलोक में विश्रुत नदी है। अतः, गंगा के दाहिने भाग की एक छोटी नदी 'चीर' कभी निश्चीरा नहीं हो सकती है। 'महाभारत' के श्लोक इस प्रकार हैं :

निश्चीराञ्च समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ।१३८।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकञ्च गच्छति ।
ये तु दानं प्रयच्छन्ति निश्चीरासङ्गमे नराः ।१३९।
ते यान्ति नरशार्दूल शक्रलोकमनामयम् ।
तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः[2] ।१४०।

---

१. महाभारत, वनपर्व, ८४।१३४-१३५ ।

२. महाभारत, वन पर्व, अध्याय ८४।१३८-१४०

महाभारत की यह 'निश्चीरा' नेपाल की इंद्रावती नदी हो सकती है, जो गोसाईं कुंड के पूर्वोत्तर भाग में स्थित 'पंच पोखरी' के समीप से प्रवाहित होकर 'हेजंबु' नामक स्थान के पूर्व पर्वत-दरी के मार्ग से दक्षिण की ओर आती है। इंद्रावती का यह क्षेत्र आधुनिक 'बागमती' अंचल के 'सिंधुपाल चाकें' जिले में पड़ता है। यहाँ से इंद्रावती अग्निकोण में बहती है और 'भक्तपुर' जिले के पूर्वी भाग में 'सुनकोसी' से संगम करती है। इसी संगम पर 'वसिष्ठाश्रम' था, जहाँ महाभारत के अनुसार पांडव गये थे। प्राचीन धर्म ग्रंथों के अनुसार तीन स्थानों में वसिष्ठाश्रम' के होने का उल्लेख मिलता है। एक 'विपाशा' नदी के क्षेत्र में, दूसरा 'ब्रह्मसरोवर' के क्षेत्र में, जहाँ वसिष्ठ ने 'सरयू' के प्रवाह को मोड़ा था और तीसरा निश्चीरा-संगम पर।

इंद्रावती (निश्चीरा) लगभग ३८ मील स्वतंत्र रूप में वहकर 'सुनकोसी' से मिलती है। यहाँ के वसिष्ठाश्रमतीर्थ के उल्लेख के वाद 'महाभारत' देवकूट-शिखर' का उल्लेख करता है, जिसकी पहचान आधुनिक 'गौरीशंकर-शिखर' से की जा सकती है। आजकल का एवरेस्ट (सागर माथा) शिखर पहले गौरीशंकर शिखर कहलाता था; किंतु सन् १८५२ ई० में 'गौरीशंकर' नाम से पुकारे जानेवाली चोटी का नाम 'एवरेस्ट' हो गया। आजकल जिस शिखर को 'गौरी-शंकर' कहा जाता है, वही महाभारत का 'देवकूट' शिखर है, ऐसी मेरी धारणा है। देवकूट-पर्वत के पश्चात् 'कौशिक ह्लद' में जाने का उल्लेख है। जहाँ तपस्या करके विश्वामित्र ने सिद्धि प्राप्त की थी[१]। कौशिकह्लद का माहात्म्य वर्णन करते हुए 'महाभारत' कहता है कि यह तीर्थराज है और यहाँ वास करनेवाले को अश्वमेध यज्ञ करने का फल होता है। उसे कोई विपत्ति नहीं सता सकती और उसे प्रचुर सुवर्ण की प्राप्ति होती है।[२]

यह कौशिक ह्लद 'सुन कोसी' का हिमह्लद हो सकता है; क्योंकि नेवारी भाषा के 'सुन' शब्द का अर्थ हिंदी में 'सुवर्ण' होता है। किंतु, कुछ लोग 'कुसहा' में कौशिक आश्रम वतलाते हैं और सुनकोसी, अरुण कोसी और तमार कोसी के संगम-स्थल को ही 'कौशिकह्लद' कहते हैं। कौशिकह्लद के बाद 'वीराश्रम' का नाम आता है, जहाँ 'कुमारतीर्थ' है। मेरे विचार से सहरसा जिले के वीरपुर का क्षेत्र और 'कुमारखंड' उनके स्मारक हो सकते हैं। जयनगर के पूर्व में दरभंगा जिले और नेपाल की सीमा पर भी 'कुमारखड्डु' नामक स्थान है, जो 'कुमारतीर्थ' का स्मारक हो सकता है। कुमार तीर्थ के पश्चात् 'अग्निधारा' तीर्थ का उल्लेख है, जो प्रसंग वश प्रतीत होता है कि यह 'मेची' नदी के उद्गमस्थल के समीप कहीं हो सकता है।[३] इस 'अग्निधारा' तीर्थ का एक सूत्र महामारत के एक दूसरे स्थल (वन पर्व, अध्या० ११०) पर हेमकूट पर्वत के वर्णन-प्रसंग में उपलब्ध होता है। 'हव्यवाहन' के दर्शन होने का उल्लेख निम्नांकित पंक्तियों में मिलता है :

---

१. महाभारत, वनपर्व, अध्याय ८४।१४२-१४३

२. तत्रैव, श्लोक १४४।

३. महाभारत, वनपर्व, ८४।१४६।

वायु नित्यं ववौ तत्र नित्यं देवश्च वर्षति ।
स्वाध्यायघोषश्च तथा श्रूयते न च दृश्यते ।।४
सायं प्रातश्च भगवान् दृश्यते हव्यवाहनः ।।५

इसके अतिरिक्त अग्निधारा के समीप 'ऋषभकूट' पर्वत के होने का उल्लेख भी मिलता है। अग्निधारा तीर्थ से 'पितामहसर' तीर्थ में जाने को कहा गया है, जहाँ से 'कुमारधारा' नामक नदी प्रस्यूत होती है।[१] कुमारधारा और कुमारतीर्थ दोनों अलग-अलग तीर्थ हैं, जिनकी चर्चा उसी अध्याय में दो तीर्थों के रूप में महाभारत करता है। मेरे विचार से मेची नदी के उद्गम के उत्तर और 'चुंबी' घाटी के पूर्वोत्तर कोण में स्थित हिम-ह्रद 'पितामहसर' होना चाहिए और 'कुमारधारा' तमार कोसी की सहायिका हो सकती है। 'कुमारधारा' के पश्चात् 'गौरी शिखर' पर जाने का उल्लेख है, जो अरुण कोसी के क्षेत्र में आजकल एवरेस्ट (सागरमाथा) कहलाने वाला शिखर है। सन् १८५२ ई० के पहले एवरेस्ट ही गौरीशंकर शिखर के नाम से अभिहित होता था, जिसका उल्लेख कई स्थानों में प्राप्त है। महाभारतकार ने गौरी शिखर को तीनों लोक में विश्रुत शिखर कहा है और यहाँ 'स्तनकुंड' तीर्थं का उल्लेख वह करता है। कुंड के जल के स्पर्श करने मात्र से 'वाजपेय यज्ञ' का फल प्राप्त होता है और स्नान करने से 'अश्वमेध' का :

शिखरं वै महादेव्या गौर्य्यास्त्रैलोक्य-विश्रुतम् ।
समारुह्य नरश्रेष्ठ स्तनकुण्डेषु संविशेत् ।
स्तनकुण्ड-मुपस्पृश्य वाजपेयफलं लभेत् ।।[२]

स्तनकुंड तीर्थं के पश्चात् लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को वहाँ से लगभग ६० मील दक्षिण हिमालय के दक्षिणी भाग में, तमोर और अरुण कोसी के संगम पर जाने के लिए कहा है :

ताम्रारुणं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।
अश्वमेधमवाप्नोति ब्रह्मलोकञ्च गच्छति।। ८४।१५४

यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि 'महाभारत' 'सुनकोशी' को ही कौशिकी कहता है और तमोर और अरुण कोसी को अलग नदियाँ मानता है। ताम्रारुण-संगम के पड़ोस में वह किसी 'नंदिनी' नामक नदी तथा देवनिषेवित एक कूप का भी उल्लेख करता है और तब अरुण कोसी और कौशिकी के मध्य में पड़ने वाले 'कालिका-संगम' पर स्नान करने का विधान करता है। 'कालिका' की पहचान दुग्ध कोसी-संगम के पूर्व में तथा अरुण कोसी-संगम के पश्चिम में सुनकोसी से मिलनेवाली एक छोटी-सी हिमनदी से किया जा सकता है अथवा स्वयं 'दुग्धकोसी' नदी भी महाभारतकार की 'कालिका' नदी हो सकती है। महाभारत का श्लोक इस प्रकार है :

---

१. महाभारत, वनपर्व, ८४। १४८-१४९।
२. महाभारत वन, अध्याय ८४।१५२-१५३।

कालिका-सङ्गमे स्नात्वा कौशिक्यरुणयोर्गतः ।
त्रिरात्रोपोषितो राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥[१]

इस कालिका-संगम के पश्चात् क्रमशः उर्वशी तीर्थ, सोमाश्रम तीर्थ और कुम्भकर्णाश्रम तीर्थों की चर्चा है। ये सभी तीर्थ 'दूधकोसी' के उद्गम-स्थान के आस-पास के जान पड़ते हैं, क्योंकि 'कुम्भकर्णाश्रम' तो निश्चित ही आधुनिक 'कुम्भकर्ण' नामक शिखर है, जिससे 'दूधकोसी' प्रवाहित होती है। इसके पश्चात् कोसी, अरुणा और तमोर के त्रिवेणी-संगम के दक्षिण 'चतरा' के पास के 'कोकामुख' नामक प्रसिद्ध तीर्थ का उल्लेख है। इस 'कोकामुख' की चर्चा हम आगे करेंगे; क्योंकि इसके संबंध में बहुत-से प्राचीन अभिलेख मिल चुके हैं।

उपर्युक्त सारी बातें 'महाभारत' के वन-पर्व के ८४ वें अध्याय की हैं, जिन का प्रामाणिक अध्ययन और अन्वेषण अभी बाकी हैं। इन सबके प्रामाणिक तथ्यों का अन्वेषण हमारे साधन-सामर्थ्य की बात नहीं है। हमने तो भविष्य के किसी साधन-संपन्न और उत्साही अन्वेषण-कर्त्ता के लिए साहाय्य-संकेत किया है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' अपने अनुशासन-पर्व के २५वें अध्याय के इकतीसवें श्लोक में तथा ९४ वें अध्याय के पाँचवें और छठे श्लोकों में भी कौशिकी का उल्लेख करता है। प्रथम श्लोक में तो सिर्फ 'कौशिकी' में स्नान का महत्त्व वर्णन है; पर दूसरे श्लोक में कहा गया है कि इन्द्र के नेतृत्व में ऋषियों एवं राजाओं का एक दल प्रभास-तीर्थ से यात्रा आरंभ करके नाना तीर्थों में भ्रमण करता हुआ कौशिकी-तीर्थ में गया था। इस दल में भृगु, वसिष्ठ, गालव, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, अष्टक, भारद्वाज, अरुंधती और बालखिल्य ऋषि थे एवं राजाओं में शिवि, दलीप, नहुष, अंबरीष, ययाति, धुन्धुमार, पुरु आदि संमिलित थे। फिर, महाभारत के सभापर्व के ३० वें अध्याय के बाइसवें श्लोक में कहा गया है कि पौंड्रराज वासुदेव के साथ ही कौशिकी-कच्छ के सभी राजाओं को भी भीम ने पराजित किया था।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त भी 'महाभारत' अपने वनपर्व के ११० वें, १११ वें तथा ११३ वें अध्यायों में कौशिकी-प्रसंग का एक रोचक इतिहास कहता है। वह बतलाता है कि जिस कौशिकी के तट पर विश्वामित्र का आश्रम था, उसी के किनारे कश्यप ऋषि के वंशज विभांडक (काश्यप) ऋषि का भी आश्रम था। उसी विभांडक का पुत्र ऋष्यश्रृंग था, जो बड़ा भारी तपस्वी और संयतेंद्रिय था। उसी काल में चंपा का राजा रोमपाद हुआ था, जिसे कोई पुत्र नहीं था; पर 'शान्ता' नाम की एक पुत्री थी। ऋष्यश्रृंग की प्रशंसा सुनकर रोमपाद ने अपनी कन्या के लिए उसी को वर चुना और ऋषि पुत्र को किसी प्रकार लुभाकर लाने के लिए वेश्याओं का एक दल कौशिकी-तट पर भेजा। नौकाओं पर वह दल विभांडक-आश्रम के लिए विदा हुआ, जो निश्चय ही गंगा-मार्ग से कौशिकी-संगम पर गया होगा और तब कौशिकी की धारा पकड़कर विभांडक आश्रम में पहुँचा होगा। आश्रम के निकट पहुँचकर वेश्याओं ने

१. महाभारत, वन, अध्याय ८४।१५६।

अपना निवास नौकाओं पर ही रखा था और मौका तथा एकान्त पाकर वे ऋष्यश्रृंग से मिलती रहीं। कुछ ही दिनों में ऋष्यश्रृंग को रिझा लेने में वे सफल हो गईं और उन्हें नाव पर चढ़ाकर नृत्यगीत दिखाती-सुनाती अंग देश की राजधानी 'चंपा' ले आईं। बाद में 'शान्ता' का विवाह ऋष्यश्रृंग से संपन्न हो गया। 'महाभारत' कहता है कि जब ऋष्यश्रृंग को पुत्र प्राप्त हो गया, तब वे फिर अपने पिता के आश्रम में ही लौट गये। इस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

एषा देवनदी पुण्या कौशिकी भरतर्षभ।
विश्वामित्राश्रमो रम्य एष चात्र प्रकाशते॥
आश्रमश्चैव पुण्याख्यः काश्यपस्य महात्मनः।
ऋष्यश्रृंग सुतो यस्य तपस्वी संयतेन्द्रियः॥
सा तु नाव्याश्रमं चक्रे राजकार्यार्थ-सिद्धये।
संदेशाच्चैव नृपतेः स्वबुद्ध्या चैव भारत॥
ततो निबध्य तां नावमदूरे काश्यपाश्रमात्।
चारयामास पुरुषैर्विहारं तस्य वै मुनेः॥

इसके बाद एक दिन स्वयं ऋष्यश्रृंग ने प्रधान वेश्या से कहा :

प्रोवाच चैनां भवतः श्रमाय गच्छाव यावन्न पिता ममेति।

और तब **ततो राजन् काश्यपस्यैकपुत्रं प्रवेश्य योगेन विमुच्य नावम्।**
प्रमोदयन्ती विविधैरुपायै राजग्मुरङ्गाधिपतेः समीपम्॥

इसके बाद लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर से कहा :

तस्याश्रमः पुण्य एषोऽत्रभाति महाह्लदं शोभयन् पुण्यकीर्त्तिः।
अत्र स्नातः कृतकृत्यो विशुद्धस्तीर्थान्यन्याग्यनुसंयाहि राजन्॥

पद्मपुराण : महाभारत में वर्णित कौशिकी क्षेत्र के प्रायः सभी तीर्थों का ईषत् परिवर्त्तन के साथ यह पुराण उल्लेख करता है। ऐसा लगता है, जैसे 'पद्मपुराण' ने महाभारत के श्लोकों को केवल उद्धृत कर लिया है। कौशिकी-क्षेत्र के तीर्थों की महिमा 'पद्मपुराण' अपने 'स्वर्गखंड' के ३८ वें अध्याय के ४९ वें श्लोक से ६७ वें श्लोकों तक में गाता है। दोनों महाग्रंथों में जो थोड़ा उलट-फेर है, वह यह है कि वामनाश्रम में विष्णु के दर्शन के बाद 'महाभारत' जहाँ 'कुशिकाश्रम' का उल्लेख करता है, वहाँ 'पद्मपुराण' भरताश्रम की चर्चा करता है और वहाँ कौशिकी-सेवन का फल बतलाता है :

भरतस्याश्रमं गत्वा सर्वपापप्रमोचनम्।
कौशिकीं तत्र सेवेत सर्वपापप्रणाशिनीम्॥४९॥

'पद्मपुराण' के इस उल्लेख से पता चलता है कि नेपाल का भातगांव ही 'भरताश्रम' है; क्योंकि भक्तपुर स्थान से एक हिम-नदी प्रवाहित होती है और लगभग बीस मील अग्निकोण

तथा पूर्व दिशा में बहती हुई 'दुमजा' नगर के पश्चिम में, जनकपुर एवं वागमती-अंचलों की सीमापर, सुनकोसी से संगम करती है। यहीं भरताश्रम भी हो सकता है, जिसके स्मृति-स्वरूप कालांतर में अलग भातगाँव (भक्तपुर) बसाया गया होगा। फिर 'पद्मपुराण' महाभारत के 'ज्येष्ठिल' तीर्थ के स्थान पर 'गोविंद' तीर्थ का नाम लेता है और यहीं देवी के साथ महाद्युतिवाले शिवलिंग का उल्लेख करता है :

अथ गोविन्दमामाद्य तीर्थं परमसम्मतम् ।५१
उपोष्य रजनीमेकामग्निष्टोम फलं लभेत् ।
तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा देव्या सह महाद्युतिम् ।५२

इसी प्रकार, महाभारत के 'कन्यासंवेद्य तीर्थ' के स्थान पर 'पद्मपुराण' ने 'कन्या-वसथ' का उल्लेख किया है, जो कोई एक बड़ा ग्राम लगता है। फिर 'निश्चीरा' तथा 'उसके संगम-स्थान पर 'पद्मपुराण' में 'निष्ठावास' नामक स्थान तथा 'निष्ठा-संगम' का भी उल्लेख मिलता है और निष्ठासंगम पर ही 'वसिष्ठाश्रम' के होने का उल्लेख करता है :

निष्ठावासं समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।५६।।

तथा

ये तु दानं प्रयच्छन्ति निष्ठायाः संगमे नराः ।
ते यान्ति नरशार्दूल ब्रह्मलोकमनामयम् ।।५७।।
तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।५८ ।। इत्यादि ।

इन व्यतिक्रमों के पश्चात् 'पद्मपुराण' भी उन्हीं सभी तीर्थों का उल्लेख करता है, जो 'महाभारत' में मिलते हैं।

वराह पुराण : उपर्युक्त महाभारत और पद्म पुराण—दोनों महाग्रंथ कौशिकी-क्षेत्र के जितने बड़े भूभाग का वर्णन करते हैं, 'वराहपुराण' उतने बड़े क्षेत्र का उल्लेख तो नहीं करता; किंतु 'कोकामुख' तीर्थ के उत्तर में एवरेस्ट तथा कंचनजंघा तक के कोसी-क्षेत्र का विस्तृत परिचय यह अपने १४१ वें अध्याय के निम्नलिखित श्लोकों में देता है :

तस्मिन् हिमवतः पृष्ठे परं गुह्यमतः शृणु ।
बदरीति च विख्याता देवानामपि दुर्लभम् ।।१।।
प्राप्नुवन्ति च भक्ता ये बदरीं विश्वतारिणीम् ।।२।।
ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं आस्ते तत्र शिलोच्चये ।
हिमसंस्थं तदात्मानं कृत्वा तिष्ठामि माधवि ।।४।।
अग्निसत्यपदं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
शृंगत्रयात्पतन्त्यत्र धारा मुसलसन्निभाः ।।७।।
इन्द्रलोकमिति ख्यातं बदर्य्याञ्च ममाश्रमः ।
तत्राहं देवि शक्रेण निष्कलं परितोषितः ।।१०।।

तत्र चैव तु शृङ्गेभ्यः स्थूलधारा पतेत्पुनः ।
स्थूले शिलातले तत्र मम धर्मो व्यवस्थितः ॥११॥
अस्ति पञ्चशिखं नाम बदर्य्याश्रमतीर्थकम् ।
यत्र धाराः पतन्त्यत्र पञ्चशृङ्गसमाश्रिताः ॥१४॥
चतुः स्रोत इति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
चतुर्धाराः पतन्त्यत्र चतस्रो दिश आश्रिताः ।१७॥
वेदधार-मिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम ।
यत्र ब्रह्ममुखात् भ्रष्टा वेदाश्चत्वार एव च ।२०॥

'वराहपुराण' अपने १४१ वें अध्याय के जिस प्रसंग में और कोसी क्षेत्र के जिस भाग के लिए इन श्लोकों का निर्माण करता है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि वह 'दूधकोसी' और 'अरुणकोसी' के मध्यवाली घाटी में 'वदरी' नामक तीर्थ बतलाता है और उसे देवताओं के लिए भी दुर्लभ तथा संसार को तारनेवाला कहता है ! इसी तरह इसका 'ब्रह्मकुंड' कहीं एवरेस्ट शिखर के पड़ोस में लगता है; जहाँ हिम रूप में साक्षात् भगवान् निवास करते हैं । इसी के आसपास तीन पर्वत शिखरों से तीन मोटी धाराएँ गिरती हैं और वहीं 'अग्निसत्यपद' नामक तीर्थ वर्त्तमान है । इसी वदरी-क्षेत्र में 'इंद्रलोक तीर्थ' है, जहाँ विष्णु का आश्रम है । यह इंद्रलोकतीर्थ पुराणों का 'इंद्रकील पर्वत' जान पड़ता है । यहीं शक्र का कलुष धुला था, जिससे यह इंद्रलोकतीर्थ कहा जाने लगा । इसी के अड़ोस-पड़ोस में पर्वत शिखरों से एक मोटी धारा एक वड़ी चट्टान पर गिरती है, जहाँ विष्णु का धर्म व्यवस्थित हुआ है । 'वराह पुराण' के अनुसार, इसी वदरी-क्षेत्र में 'पंचशिख' नामक तीर्थ है, जहाँ पाँच पर्वतों का जल सिमटकर प्रपात वनता है और ब्रह्मा के चारों मुखों से जिस प्रकार चारों वेद उद्गमित होते हैं, उसी प्रकार चारों दिशाओं में चार मोटी-मोटी धाराएँ विगलित होती हैं, इसीलिए यह स्थान 'वेदधार' तीर्थ कहलाता है । वर्णन से तो यही लगता है कि एवरेस्ट के दक्षिण में स्थित 'मकालु पर्वत' के दक्षिणी भाग की ये धाराएँ हैं, जिसकी ऊँचाई २७६६२ फुट है । ये सभी हिम-सरिताएँ 'अरुणकोसी' की सहायिकाएँ हैं । फिर, वेदधार तीर्थ के पश्चात् 'वराह पुराण' उसी अध्याय में चार शिलाखंडों पर गिरनेवाले चार प्रपातों का उल्लेख करता है । इसके पश्चात् वह 'द्वादशादित्य कुंड' का उल्लेख करता है, जहाँ भगवान् ने द्वादश सूर्यों को स्थापित किया था तथा उसी पर्वत के पादमूल में द्वादश धाराएँ गिरती हैं, जो द्वादशादित्य कुंड तीर्थ कहलाती हैं ! इसी क्षेत्र में लोक-पाल नामक तीर्थ भी है, जहाँ संसार के हित के लिए लोकपाल प्रतिष्ठित किए गए थे :

तत्रैव हिमवत्पृष्ठे चतुः शृङ्गाद् बृहत्तराः ।
चतुर्धाराः पतन्त्यत्र विषमाश्च शिलोच्चये ।२१॥
द्वादशादित्य-कुण्डेति तस्मिन् क्षेत्रे परे मम ।
यत्र ते द्वादशादित्या देवि संस्थापिता मया ।२४॥

तत्र पर्वतशृङ्गे तु स्थूलमूले शिलातले।
द्वादश पतन्ति वै धारा मम कर्म सुखावहाः ।।२५।।
लोकपालमिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परे मम।
तत्र ते लोकपालास्तु मया संस्थापिता पुरा ।२८।।

उक्त ये सभी तीर्थ मकालू-शृंग के पश्चिम में वर्त्तमान 'लोत्से' और 'न्यूपत्से' नामक शृंगों की दक्षिणी ढलान के जल-स्रोतों वाले भाग के मालूम पड़ते हैं, जिनसे 'दूधकोसी' प्रवाहित होती है। दूधकोसी का सफेद जल द्वादशादित्य तीर्थ का संकेत देता है। 'वराह-पुराण' कहता है कि इसी स्थान के पर्वतों के मध्य मेरा (विष्णु का) 'स्थलकुंड तीर्थ है, जहाँ पर्वत के हृदय को विदीर्ण करता हुआ 'सोम समुद्भव' नामक प्रपात बहता है। इसी 'स्थल-कुंड' को महाभारत का वन पर्व (८४।१५२) 'स्तनकुंड कहता है तथा 'सोमसमुद्भव' को 'पद्मपुराण' का स्वर्गखंड (३८।६६) सोमाश्रम तीर्थ के नाम से पुकारता है। 'पद्मपुराण' अपने इसी स्थल पर क्रमशः उर्वशीतीर्थ; सोमाश्रम तीर्थ और तब 'कुम्भकर्णाश्रम' तीर्थ का उल्लेख करता है; किंतु 'वराहपुराण' प्रथम सोम-समुद्भव और सोम गिरि तथा इसके पश्चात् उर्वशी तीर्थ की चर्चा करता है। महाभारत और पद्मपुराण की तरह 'वराह पुराण' कुम्भ-कर्णाश्रम का उल्लेख नहीं करता है।

'वराह पुराण' स्थान-निर्देश के लिए अपनी जानकारी को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है कि वही श्रेष्ठ मेरु को भगवान् ने पृथ्वी पर स्थापित किया है—**अस्ति मेरो वरं नाम तस्मिन् गुह्यं परं मम।** यहाँ 'वराह पुराण' सुवर्ण-सदृश प्रभावाली तीन धाराओं का वर्णन करता है, जिससे ज्ञात होता है कि यह 'सुनकोसी' के उद्गम-स्थान की ओर संकेत करता है :

तत्र स्थितेन वै भूमे मेरुः संस्थापितः स्वयम् ।। (१४१।३२)
धारास्तिस्त्रः पतन्त्यत्र सुवर्णसदृश-प्रभाः।
पतेत् तु तज्जलं भूमौ व्यक्ति नैवोपलभ्यते ।। (१४१।३३)
यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रोपोषितः नरः।
मोदते मेरु शृङ्गेषु मम भक्तश्च जायते ।। (१४१।३४)

उक्त क्षेत्र के एक अत्यंत दुर्गम स्थान में 'मानसोद्भेद' नामक एक दूसरे तीर्थ का वर्णन है, जहाँ जमीन के भीतर से जल उद्गमित होता है। उस प्रदेश की जानकारी देवताओं को भी नहीं है; पर वहाँ जो बसते है, वे मनुष्य उस स्थान को जानते हैं :

मानसोद्भेदमिति च तत्रान्यतीर्थमुत्तमम्।
पृथ्वीमुद्भिद्य मध्ये तु जलं गच्छति सत्वरम् ।। (१४१।३६)
देवा अपि न जानन्ति तं देशं तत्र संस्थितम्।
मानुषा हि विजानन्ति भूम्यां पतति तज्जलम् ।। (३७)

इसके पश्चात् 'वराहपुराण' अपने १४१ वें अध्याय के ही ३९,४० और ४१ वें श्लोकों में एक ऐसी जलधारा का वर्णन करता है, जो रक्त की तरह लाल है और वहाँ की

भूमि भी रक्त जल से भरी हुई है। लगता है, 'वराह पुराण' का यह निर्देश 'अरुणकोसो या ताम्रकोसी की घाटी के किसी स्थान की ओर है। यह स्थान स्थूल शीर्ष नामक पर्वत-शिखर पर है, जहाँ इस तरह के पाँच कुंड वर्त्तमान हैं। 'वराह पुराण' कहता है कि यह 'पंचशिर' नामक गुप्त तीर्थ कहलाता है, जहाँ ब्रह्मा ने द्यु तिमान् का शिरच्छेदन किया था। यहाँ पाँच शिरों में अनेक धाराएँ हैं, जो सिमट कर पाँच कुंडों में परिवर्त्तित हो गई हैं। इन्हीं के मध्य भागवाले कुंड पर ब्रह्मा ने 'द्यु तिमान्' का शिर काटा था :

अस्ति पञ्चशिरं नाम तस्मिन् गुह्यं परं मम।
ब्रह्मणा छिद्यते यत्र शिरश्चैव महाद्युतिः ॥३९॥
तत्र वै पञ्चकुण्डानि स्थूलशीर्षशिलोच्चये।
पञ्चात्रशिरसः स्थाने बहुधाराः समन्विताः ॥४०॥
यत्र तन्मध्यग कुण्ड छिन्नमेव स्वयम्भुवा।
तत्र जरक्त-ला भूमिः दृश्यते धारसङ्कुला ॥४१॥

हमारा 'वराहपुराण' इसी क्षेत्र में एक दूसरे 'सोमाभिषेक' तीर्थ का भी उल्लेख करता है, जहाँ ब्राह्मणों के राजत्व-काल में विष्णु ने सोम के द्वारा अभिषिक्त किया था। इसी स्थान पर अत्रिपुत्र सोम ने विष्णु को संतुष्ट किया था और यहीं सोमगिरि नामक पर्वत भी है, जिससे प्रवाहित होकर एक बड़े आरण्यक कुंड में जलधारा गिरती है :

अस्ति सोमाभिषेकेति तीर्थमन्यत्परं मम।
राजत्वे ब्राह्मणानान्तु मया सोमाभिषेचितः ॥४५॥
तत्राहं तोषितस्तेन अत्रि-पुत्रेण माधवि ॥४६॥
तत्र सोमगिरिर्नाम यत्र धारा पतेद् भुवि।
कुण्डेऽरण्ये विशाले तु एतत्ते कथितं मया ॥४९॥

'वराहपुराण' इस बात से अवगत है कि चंपारन जिले की सोमेश्वर पहाड़ी पर स्थित 'सोमपद' (सोमेश्वरनाथ महादेव) तीर्थं से यह सोमाभिषेक तीर्थ भिन्न है। इसी लिए 'वराह पुराण' ने यहाँ 'तीर्थमन्यत्परं' शब्द का व्यवहार किया है और इसे उस क्षेत्र में बतलाता है, जहाँ 'उर्वशीकुंड' है। सोमाभिषेक तीर्थ के बाद ही यह कहता है कि विष्णु की दाहिनी जंघा को फाड़ कर उर्वशी ने यहीं जन्म लिया था, अतः यह उर्वशी-तीर्थ कहलाता है :

अस्ति चोर्वशि-कुण्डेति गुह्यं क्षेत्रे परं मम।
यत्र चैवोर्वशी भित्वा दक्षिणोरुमजायत ॥५२॥

इसी उर्वशी-कुंड को 'महाभारत' और 'पद्मपुराण' उर्वशी तीर्थं के नाम से पुकारते हैं, जिनकी चर्चा पहले हो चुकी है। कुछ टीकाकारों ने 'वराहपुराण' उक्त १४१ वें अध्याय में वर्णित वदरी-क्षेत्र की प्रसिद्ध 'वदरिकाश्रम' तीर्थ मान लिया है, जो असंगत है। क्योंकि यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'महाभारत' तथा 'पद्मपुराण' के उर्वशीतीर्थं, सोमाश्रम और अग्नि तीर्थं को—जो कोसी-क्षेत्र के तीर्थं हैं—'वराह पुराण' वदरी-क्षेत्र में ही मानता है।

यह बात इससे भी स्पष्ट है कि 'कोकामुख' तीर्थ (वराह तीर्थ) के वर्णन के पश्चात् बदरी-क्षेत्र का ही विशद वर्णन प्रस्तुत करता है। कोकामुख तीर्थ का वर्णन 'वराहपुराण' के १४० वें अध्याय में आता है और बदरी-क्षेत्र का वर्णन १४१ वें अध्याय में । अतः, 'बदरी-क्षेत्र' कोसी के त्रिवेणी-संगम के उत्तर कोसी के हिमालयीय प्रदेश का ही भू-भाग है ।

उपर्युक्त पौराणिक उल्लेखों के अतिरिक्त **मत्स्य पुराण** (अध्याय ११४ श्लोक २२) कौशिकी के साथ 'तृतीया' और 'निश्चला' नामक नदियों का नाम लेता है : **कौशिकी तु तृतीया च निश्चला गंडकी तथा ।** यहाँ 'तिस्ता' को 'तृतीया' और 'निश्चीरा' अथवा 'निष्ठा' को 'निश्चला' कहा गया है । फिर, यही 'मत्स्य पुराण' अपने २२ वें अध्याय के ६३ वें श्लोक में 'मलंदरा' और 'चन्द्रिका' के साथ 'कौशिकी' का नाम स्मरण करता है—**मलन्दरा नदी पुण्या कौशिकी चन्द्रिका तथा ।** यहाँ 'कौशिकी' प्रस्तुत 'कौशिकी' से भिन्न कोई नदी ज्ञात होती है; क्योंकि वर्त्तमान 'कौशिकी' के साथ किसी भी ग्रंथ में 'मलंदरा' और 'चंद्रिका' का नाम नहीं आता ।[१] अधिक संभावना है कि यह 'कौशिकी' कुमाउँ प्रदेश की 'कोसी' है, जो 'काली' नदी में गिरती है; क्योंकि 'पद्मपुराण' भी अपने 'स्वर्गखंड' के छठे अध्याय के २४५ वें श्लोक में 'कौणिकी' के साथ शोणा, बाहुदा और चंद्रमा नामक नदियों का नाम लेता है—**कौणिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम् ।** अतः, 'मत्स्यपुराण' निश्चय ही 'कौणिकी' के स्थान पर 'कौशिकी' पाठ देता है, जो अयुक्त है । इसके अतिरिक्त, 'मत्स्यपुराण' अपने ५१ वें अध्याय के १४ वें श्लोक में भी विपाशा, शतद्रु और सरयू के साथ 'कौशिकी' नदी का उल्लेख करता है । **ब्रह्मांड पुराण** के पूर्वभाग, अनुषंगपाद, अध्याय १६ के २६ वें श्लोक में कौशिकी नदी के साथ 'त्रिदिवा' का नाम तो आता है, पर 'निश्चीरा' अथवा 'निचिता' के स्थान पर 'निष्ठीवी' नदी का उल्लेख मिलता है—**कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठीवी गंडकी तथा ।** पुनः यही पुराण अपने उपोद्घात पाद, अध्याय १३ के १०९ वें श्लोक में 'कौशिकी ह्रद' के साथ तृतीया नदी की पादभूमि में और नीराधा-मंडल में किए गये श्राद्धकर्म का समान फल बतलाता है :

तृतीयायां तथा पादे नीराधायान्तु मंडले ।
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं श्राद्धं महाफलम् ।।

यहाँ निश्चला, निष्ठीवी अथवा निश्चीरा के स्थान पर ही 'नीराधा' पाठ है, जो लिपि-दोष ही माना जाना चाहिए; क्योंकि 'नीराधा' की चर्चा दूसरे किसी स्थान में नहीं मिलती है। कौशिकी महाह्रद का तात्पर्य कौशिकी-गंगा-संगम ही होना चाहिए । किंतु, फिर यही 'ब्रह्मांडपुराण' अपने १४९ अध्याय के ३० वें श्लोक में 'वायुपुराण' का ही पाठ उद्धृत करता है—**कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गंडकी तथा ।** फिर **वामन पुराण** अपने १३ वें अध्याय के २२ वें श्लोक में कौशिकी के साथ गंडकी, चित्रा, निःस्वरा तथा वधूसरा

---

१. फ्रांसिस बुकानन 'पूर्णिया की एक मलन्दरा नामक छोटी नदी का उल्लेख करता है, जो 'कंकई' की सहायिका है ।

नामक नदियों का उल्लेख करता है। यहाँ निश्चला, निष्ठीवी, निष्ठा एवं निश्चीरा—इनमें से किसी का नाम नहीं है; बल्कि 'निःस्वरा' पाठ है; किंतु इस पुराण के दूसरे संस्करण में मुझे 'निश्चीरा' पाठ भी मिला है। आगे 'वामन पुराण' के ही परिशिष्ट २ के ७३५ पृष्ठ पर गंगा में कौशिकी-संगम को तीर्थ कहा गया है :

तत्रापि सङ्गमं पुयं कौशिक्यास्तीर्थसम्भवम्।
सङ्गमेऽपि नरः स्नात्वा प्राप्नोति प्रियसङ्गमम्॥

फिर, यही 'वामन पुराण' (अध्याय ५७ श्लोक ६०) 'महाकोशी' के तट पर 'हंस' नामक महादेव का उल्लेख करता है : **महाकोश्यां महादेवं हंसाख्यं भक्तिमानय।** कूर्म पुराण के पूर्वार्द्ध भाग के ४७ वें अध्याय के ३० वें श्लोक में 'कौशिकी' के साथ केवल 'लोहिनी' नदी का नाम आता है : **कौशिकी लोहिनी चेति।**

इन पुराणों के अतिरिक्त अन्य पुराणों में कौशिकी की चर्चा अति संक्षिप्त रूप में है। हाँ, "**श्रीमद्भागवत**' के प्रथम स्कंध के अठारहवें अध्याय में कौशिकी का नाम आया है और उसके कछार में घटी एक घटना का उल्लेख भी है। यहाँ उल्लेख है कि राजा परीक्षित आखेट करने एक बार कौशिकी के तट-प्रदेश में गए। आखेट के श्रम से परीक्षित जब थक गए, तब वे भूख और प्यास से व्याकुल हो 'शमीक' ऋषि के आश्रम में गए। किंतु, उस समय 'शमीक' बिलकुल ध्यानस्थ थे और वहाँ कोई दूसरा व्यक्ति भी उपस्थित नहीं था, अतः किसी ने परीक्षित को अतिथि-सत्कार के लिए पूछा तक नहीं। भूख और प्यास से व्याकुल राजा ने अपने प्रभुत्वाभिमान के कारण विवेक-संतुलन खो दिया और क्रोध के वशीभूत होकर ध्यान-मग्न 'शमीक ऋषि' के गले में मरा हुआ सर्प लपेट दिया। इसी समय शमीक ऋषि का पुत्र, जो आश्रम से बाहर गया हुआ था, आश्रम में आ गया। उसने ध्यान-मग्न अपने पिता के गले में जब मृत सर्प लपेटे हुए देखा, तब क्रोध के मारे उसकी आँखों में खून उतर आया। वह राजा परीक्षित की ऐसी धृष्टता पर कटु वचन का प्रयोग करने लगा और तुरत उसने कौशिकी का जल हाथ में उठा लिया और वाग्-वज्र रूपी शाप का प्रहार कर ही दिया :

इत्युक्त्वा रोष-ताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकः।
कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह॥

किंतु, यह कौशिकी 'महाभारत' (वन पर्व, अध्याय ८३, श्लोक ९५) में वर्णित वह कौशिकी जान पड़ती है, जो 'दृषद्वती' से संगम करती है। श्लोक इस प्रकार है :

कौशिक्याः सङ्गमे यस्तु दृषद्वत्याश्च भारत।
स्नाति वै नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

हस्तिनापुर और दृषद्वती से संगम करनेवाली कौशिकी की भौगोलिक स्थिति से यही अनुमान होता है कि जिस कौशिकी के तट पर आखेट के लिए परीक्षित गये थे और जिसके जल को शमीक-पुत्र ने अपने शाप में व्यवहृत किया था, वह दृषद्वती प्रदेश वाली 'कौशिकी' है।

वायु पुराण के ४५ वें अध्याय के ९६ वें श्लोक में भी तृतीया, निश्चीरा और गंडकी के साथ 'कौशिकी' का नामोल्लेख मिलता है। फिर, **देवी भागवत** (स्कंध ८, अध्याय ११

श्लोक १७) में **कौशिकी यमुना चैव मंदाकिनी दृषद्वती**, ऐसा पाठ मिलता है। इस पुराण में साधारण नदियों की कहीं चर्चा नहीं आई है। **नारदीय पुराण** के उत्तर खंड के ४१ वें अध्याय के ४६ वें और ४७ वें श्लोकों में कौशिकी के संगम-स्थान का बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है और कहा गया है कि कौशिकी के संगम पर स्नान करनेवाले इंद्र-लोक को प्राप्त करते हैं।[1] इन पुराणों के अतिरिक्त महाकवि **कालिदास** ने महा कोसी के प्रपात के पास ही भगवान् शंकर का निवास बतलाया है, और वहीं देवताओं से मिलने के लिए वचन दिया है :

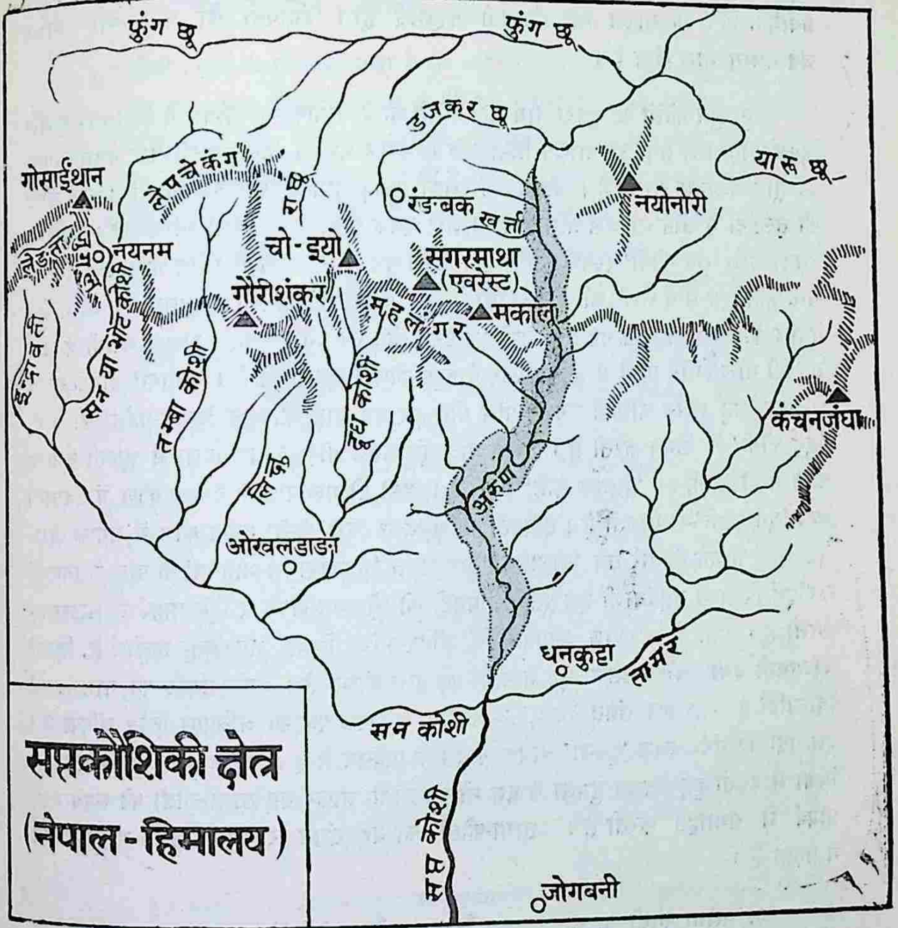
तत्प्रयातौषधि-प्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरम् ।
महाकोशी प्रपातेऽस्मिन् सङ्गमः पुनरेव नः ॥—कुमार संभव-६।३३

सप्त कौशिकी के उद्गम और उनकी धाराएँ :

सप्तसिंधु, सप्तगोदावरं, सप्तगंगम् और सप्त गंडकी की तरह कोसी भी 'सप्त कौशिकी' कहलाती है। लगता है कि भारतीय साहित्य में जब 'सात समुद्र' की कल्पना हुई, तब बड़ी नदियों में भी प्रत्येक के लिए सात धाराओं की कल्पना की गई और बड़ी धारा में सम्मिलित होनेवाली नदियाँ भी उसी मुख्य धारा के नाम से ही पुकारी जाने लगीं। इसी कारण कौशिकी की भी सात धाराएँ मानी गईं और सब के सम्मिलित रूप को 'महा कौशिकी' नाम दिया गया। इन सप्त कौशिकी की धाराओं का क्षेत्र पश्चिम से पूर्व में १६५ मील और दक्षिण से उत्तर में लगभग १०० मील तक विस्तृत है और इतने बड़े पर्वतीय भाग का हिम-जल तथा वर्षा-जल कोसी के प्रवाह से गुजरता हुआ गंगा में गिरता है। इन धाराओं के उद्गम संसार के सर्वोच्च पर्वत-शिखरों में वर्त्तमान हैं। जैसे—तमोर का उद्गम कंचनजंघा-शिखर में, जिसकी ऊँचाई २८,१४६ फीट है; तामा-कोसी का गौरीशंकर-शिखर में, जिसकी ऊँचाई २३,४४० फीट है और दूध कोसी का उद्गम मकालू-पर्वत-शिखर में, जिसकी ऊँचाई २७,६९० फीट है। अरुण कोसी की कुछ सहायिकाओं का उद्गम सागरमाथा (एवरेस्ट) शिखर में है, जो २९,००२ फुट ऊँचा तना हुआ है। इनमें 'गौरी शंकर' रोल्वालिंग हिमश्रेणी का शिखर है, सागरमाथा महालंगूर पर्वत-श्रेणी का और मकालू तथा कंचनजंघा कुम्भ-कर्ण हिमालय पर्वतमाला के शिखर हैं। इन्हीं पर्वत-शिखरों से इंद्रावती, सुन कोसी, तामा-कोसी, लिक्षु कोसी, दूध कोसी, अरुण कोसी और तमोर कोसी नामक सात धाराएँ प्रवाहित होती हैं। यद्यपि इन सबमें बड़ा प्रवाह-मार्ग 'अरुण कोसी' का है, तथापि मुख्य कोसी नदी 'सुन कोसी' की ही धारा मानी जाती है। अरुण कोसी के बाद लंबाई में 'सुन कोसी' का ही स्थान है। इन सबके संगम हो जाने पर नदी का नाम 'महा कोसी' होता है। इन सप्त कौशिकियों में सबसे पश्चिम इंद्रावती है और इसके बाद क्रमशः पूर्व की ओर सुन कोसी, तामा कोसी, लिक्षु कोसी, दूध कोसी, अरुण कोसी तथा तमोर कोसी की धाराएँ वर्त्तमान हैं। इन सातों धाराओं में हिमालय के हिम-ह्रदों से प्रवाहित होनेवाली अनेक हिम-निर्झरिणियाँ अपना जल डालती हैं।

---

१. देखिए—इस पुस्तक के पूर्व पृष्ठ ९६ की ७वीं से १०वीं पंक्तियाँ।



सप्तकौशिकी क्षेत्र (नेपाल-हिमालय)

१. **इंद्रावती** गोसाईं कुंड के उत्तर-पूर्व कोण में लगभग ११-१२ मील दूर में स्थित 'पंच पोखरी' के समीप से तथा जुगल-पर्वतमाला के पश्चिमी भाग से प्रवाहित होती है। इसका उद्‌गम-स्थल आधुनिक नेपाल के 'वागमती-अंचल' के पूर्वोत्तर भाग के 'सिंधुपाल चोक' और 'रसुआ' जिले की सीमा पर है। इंद्रावती अपने उद्‌गम-स्थान से प्रथम-प्रथम थोड़ा अग्नि कोण की ओर प्रवाह को बढ़ाती है और गोसाईंथान-पर्वतमाला एवं जुगल-पर्वतमाला के दर्रे से दक्षिण की ओर चलती है। इस क्रम में यह सिंधुपाल चोक और नुवाकोट जिले की सीमा बनती है और 'हेलम्बु' के पूर्व भाग से दक्षिण दिशा की ओर आती है। इसके बाद अग्नि कोण में चलती हुई 'दोलालघाट' स्थान के दक्षिण 'सुन कोसी' से संगम कर जाती है।

बहुत संभव है कि जुगल पर्वत का ही नाम प्राचीन समय में 'इंद्रकील' पर्वत हो, जिससे प्रवाहित होने के कारण यह इंद्रावती कहलाई हो। इंद्रावती का प्रवाह-मार्ग लगभग उनचालीस मील लंबा है।

२. **सुन कोसी** का दूसरा नाम **भोट कोसी** भी है; क्योंकि यह तिब्बत से निकलती है और जुगल-पर्वतमाला तथा रोल्वालिंग हिमाल के मध्यवाले दर्रे से हिमालय को पार करती नेपाल की भूमि में प्रवेश करती है। तिब्बत में इसका प्रवाह-भूमि लगभग ३२ मील है। सुन कोसी को तलहटी में सोने का अंश प्राप्त होता है और इसके पानी का रंग भी स्वर्णिम है। इसलिए, इसका नाम 'सुन कोसी' (स्वर्ण कोसी) है। इसी सुन कोसी घाटी में स्थित भक्तपुर से दोलाल घाट होते एक मार्ग उत्तर की ओर चलता है और तिब्बत में पहुँचकर 'ल्हासा' तक जाता है। नेपाल की सीमा में आने पर सुन कोसी 'ओडेरी' होते लगभग १० मील दक्षिण चलती है और तब नौ मील अग्नि कोण में बहकर फिर नैर्ऋत्य कोण में मुड़ जाती है। 'चौतरा' नामक स्थान से जब यह अग्नि कोण में लगभग पाँच मील दूर बढ़ आती है, तब 'जुगल-पर्वत' की धारा 'सुन कोसी' से संगम करतो है। इसके बाद सुन कोसी थोड़ा दक्षिण दिशा में झुकती नैर्ऋत्य कोण में ही बहती हुई 'दोलाल घाट' आती है। इसी दोलाल घाट के नैर्ऋत्य कोण में इंद्रावती नदी 'सुन कोसी' से मिलती है। इंद्रावती को समेटकर 'सुन कोसी' अग्नि कोण में लगभग १७-१८ मील चलती है और तब 'दोलागिरि' पर स्थित 'चंगुनारायण महादेव' के पास से निकलकर पूर्व दिशा में बहनेवाली एक दूसरी हिमनदी को भी यह अपने दाहिने पार्श्व में आत्मसात् करती है। इसी चंगुनारायण महादेव के मंदिर-स्तंभ में वह अभिलेख उत्कीर्ण है, जिसमें **राज्यवती देवी** और उसके पुत्र **मानदेव** का नाम अंकित है। दोलागिरि का नाम इसमें 'दोलाद्रि' है और शक संवत् ३८६, ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि अंकित है। इस नदी का संगम-स्थल 'दुमजा' नामक स्थान के पश्चिम में है। इसके बाद सुन कोसी पूर्व दिशा में बहती हुई लगभग दुमजा से दस मील पूरब में आकर यह तामा-कोसी को अपने वाम पार्श्व में समाहित करती है। तामा-कोसी का यह संगम 'रामेछाप' से नौ मील पश्चिम में पड़ता है।

३. **तामा कोसी** का भी उद्गम तिब्बत (भोट)-प्रदेश में 'फला कला' नामक दर्रे के समीप में है। तिब्बत में उद्भूत इसकी तीन धाराएँ गौरीशंकर-शिखर के दोनों किनारों (पश्चिम और पूर्व) से नेपाल की सीमा में आकर उक्त शिखर के सानु प्रदेश में संगम करती हैं। वहाँ से तामा कोसी दक्षिण में बहकर लगभग २६ मील चलने के बाद 'चरीकोट' नामक स्थान पर आती है और तब थोड़ा अग्नि कोण की ओर मुड़ती हुई अपना प्रवाह बनाती है। इस दिशा में ११ मील आगे बढ़कर यह 'मेलुङ्ग' पहुँचती है और मेलुङ्ग से दो मील अग्निकोण में चलकर उत्तर दिशा से आनेवाली एक हिम-नदी का जल ग्रहण करती है। इस संगम के पश्चात् 'तामा कोसी' थोड़ा नैर्ऋत्य कोण में मुँह करके दक्षिण दिशा में बहती हुई ११ मील दूर जाकर 'सुन कोसी' के प्रवाह से संगम करती है। इस प्रकार, तामा कोसी नेपाल की भूमि में

लगभग ५४ मील बहती है। इसका जल ताम्रवर्ण का है और इसकी घाटी में ताँबे की खान है, अतः यह 'तामा कोसी' के नाम से अभिहित होती है।

सुन कोसी (स्वर्ण कौशिकी) दुमजा से नौ मील पूर्व में तामा कोसी का जल-भांडार समेटती है और तब पूरब दिशा में प्रयाण करती हुई रामेछाप से चार मील दूर दक्षिण से ही पूरब की ओर बढ़ती जाती है। सुन कोसी की पूर्वाभिगामिनी यह धारा प्रकृति की अनुपम छटाओं के बीच से हल के चीरे की तरह बढ़ती है और हिमालय एवं महाभारत पर्वत को दो भागों में, दो श्रोणी-तटों की तरह, बाँटती है। ताभा कोसी के संगम-स्थल से चलकर सुन कोसी जब लगभग १६ मील दूर पूर्व दिशा में आती है, तब इसमें 'लिक्षु कोसी' नामक नदी अपना जल डालती है। लिक्षु का यह संगम 'रामेछाप' से सात मील दूर अग्नि कोण में है।

४. **लिक्षु कोसी** का उद्गम 'सागर माथा-अंचल' के उत्तरी भाग के 'सोलु खंबु' जिले के मध्य भाग के पश्चिमी किनारे में स्थित एक बर्फानी झील में है। झील से प्रवाहित होकर 'लिक्षु' सीधे दक्षिण दिशा में न चलकर थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकती हुई बहती है। इसका जन्म 'सागर माथा'-अंचल में होता है; पर पूरा जीवन-प्रवाह 'जनकपुर-अंचल' में बहता जाता है। अपने उद्गम-स्थान से थोड़ी दूर चलकर ही यह जनकपुर अंचल के रामेछाप जिले में, उसके पूर्वोत्तर भाग में, प्रवेश करती है और इस जिले के पूर्वी हिस्से से दक्षिण की ओर बहती हुई जब रामेछाप से सात मील दूर अग्निकोण में पहुँचती है, तब यह 'सुन कोसी' के गर्भ में अपने को विसर्जित कर देती है। सप्त कोसी की धाराओं में 'लिक्षु कोसी' का प्रवाह-मार्ग सबसे छोटा है और लगभग ३४ मील का है। लिक्षु का जल ग्रहण कर 'सुन कोसी' अपना पथ विचलित नहीं करती; बल्कि पूरब दिशा में ही बढ़ती जाती है। इस क्रम में यह जनकपुर तथा सागरमाथा अंचलों की सीमा-संधि के पास 'ओखल डंगा' जिले के एक हिमनद को अपने वाम पार्श्व में ग्रहण करती है और तब सागरमाथा-अंचल में पहुँचकर 'दूध कोसी' के भारी जल-भांडार को उदरस्थ कर लेती है। लिक्षु-संगम के १६ मील दूर पूर्व में 'दूध कोसी' का संगम-स्थान पड़ता है।

५. **दूध कोसी** का उद्गम कुम्भकर्ण-पर्वतमाला के सागरमाथा (एवरेस्ट)-शिखर के दक्षिणी सानु-देश में है। इसके उद्गम-स्थान के समीप कई हिम-कुंड एवं 'बागवाँ' नामक दर्रा है। आरंभ में दूध कोसी मुख्यतः तीन हिम-कुंडों के प्रस्रवण-प्रवाहों से नदी का रूप धारण करती है। दो कुंड 'सागरमाथा' के पश्चिमी भाग में स्थित हैं और एक पूर्वी भाग में है। पश्चिम के दो कुंडों में से कोई एक 'वराह पुराण' का 'स्तन-कुंड' हो सकता है, जिसमें उल्लेख है कि **देव्या शिखरवासिन्या ज्ञेयं पूर्वोत्तरेण वै**। इससे पता चलता है कि स्तनकुंड गौरी-शिखर के पूर्वोत्तर भाग में था, जिसमें स्नान करने से उमा का लोक प्राप्त होता था :

उमालोकं व्रजेदाशु विमानेन विहायसा।
स्तनकुण्डे उमायास्तु यः स्नायात् खलु मानवः ॥

गौरी-शिखर में 'स्तन-कुंड' को उसी स्थान पर होना चाहिए, जहाँ पर्वत का उन्नत स्थल (पयोधर भाग) है। इसीलिए, कुंड का नाम 'स्तन-कुंड' पड़ा था। हमारा ख्याल है, आज-कल का गौरी-शंकर-शिखर प्राचीन काल में 'गौरी शिखर' नाम से अभिहित होता था और सागरमाथा (एवरेस्ट) शिखर 'शंकर शिखर' के नाम से जाना जाता था। दोनों शिखर हिमालय रूपी शिव के अर्द्धाङ्ग माने गए थे तथा दोनों मिलकर 'गौरी-शंकर' हिम-शृंग कहलाते थे। 'अरुण कोसी' की कई सहायिका हिम-स्राविणियाँ एवरेस्ट शिखर के उत्तरी ढलानवाले तिब्बती भू-भाग से निकलकर 'अरुण' को समृद्ध करती हैं और तब 'अरुण कोसी' एवरेस्ट का भाँवर भरती उसके पूर्व भाग से दक्षिण की ओर आती हैं। किंतु, दूध कोसी एवरेस्ट शिखर के पश्चिमोत्तर भाग से प्रस्रवित होकर दक्षिण चलती है। दूध कोसी के मूल तीन प्रस्राव-केंद्रों में से पश्चिम-स्थित कुंड 'स्तनकुंड' हो सकता है, जिसकी पुष्टि 'वराह पुराण' (१४१।२९) की इन पंक्तियों से होती है :

तत्र पर्वत-मध्ये तु स्थलकुण्डं बृहन्मम ।
भित्वा पर्वत-मुद्गीर्णं यत्र सोमसमुद्भवः ।।

मध्यवाले कुंड के संबंध में 'वराह पुराण' इस प्रकार निर्देश करता है :

यत्र तन्मध्यगं कुण्डं छिन्नमेव स्वयम्भुवा ।
तत्र रक्तजला भूमिः दृश्यते धारसङ्कुला ।।(१४१।४१)

उक्त दोनों कुंडों से निकली धाराएँ समानांतर रूप से अग्नि कोण में चलती हैं, जिसमें से मध्य कुंड की धारा १६ मील बहने के बाद, 'नमचे' नामक स्थान के उत्तर में, पूर्वोत्तर कोण में स्थित कुंड से नैऋत्य कोण में बहकर आनेवाली हिम-निर्झरिणी से संगम करती है। ये दोनों संयुक्त धाराएँ अपने संगम-स्थल से जब दक्षिण दिशा में पाँच मील दूर ढल जाती हैं, तब स्तनकुंड (पश्चिमी कुंड) वाली तथा १८ मील का मार्ग तय करनेवाली धारा से मिल जाती हैं। यह दूध कोसी दुर्गम पहाड़ी दर्रे और घोर जंगलों से भरी भयावनी अधित्यकाओं से गुजरती है और हजारों फीट नीचे से दरी-मार्ग बनाती हुई दक्षिण दिशा में प्रपात की तरह हरहराती हुई लुढ़कती आती है। तीनों धाराएँ जब संयुक्त होकर १६ मील दक्षिण में आती हैं, तब वह धारा अग्निकोण में मुड़ती है। इस दिशा में जब यह सात मील चलती है, तब उत्तर से आनेवाली हंगु (मेलंगु) नामक हिम-नदी 'दूध कोसी' से संगम करती है। हंगु का उद्गम एक हिम-प्रपात में स्थित है। आपको स्मरण होगा कि सन् १९५३ ई० में 'हंट' नामक एक अँगरेज के नेतृत्व में 'हिलारी' और 'तेनजिङ् शेरपा' ने प्रथम-प्रथम 'एवरेस्ट शिखर' पर विजय प्राप्त की थी। इस दल ने इसी 'हंगु' या 'हंबु' हिम-नदी के मार्ग तथा उद्गम-स्थल की ओर से चढ़ाई की थी। सन् १९५२ ई० में भी स्वीस-पर्वतारोहियों ने इसी मार्ग से एवरेस्ट-विजय के लिए अभियान किया था; पर इस भाग के एक हिम-प्रपात के बदल जाने के कारण उन्होंने दूसरा मार्ग ग्रहण कर लिया और वे सफल नहीं हो सके थे। 'हंगु' के उद्गम हिम-सर के पूर्वोत्तर भाग में स्थित और भी तीन हिम-सरोवर हैं, जिनमें से

तीन हिम-नदियाँ बहती हैं । इनमें से दो तो 'मकालू-पर्वत' के नैऋत्य कोण वाले दो हिम-कुंडों से प्रवाहित होती हैं और पूर्व की ओर बहती हुई 'अरुण कोसी' में गिरती हैं; पर दक्षिण वाले हिमकुंड सागरमाथा (एवरेस्ट) के सानुभाग में वर्त्तमान हैं। इनमें से उत्तरवाली नदी नेपाल के आधुनिक सागरमाथा तथा कोसी अंचलों की सीमा बनती तथा अग्नि कोण में दौड़ती हुई 'अरुण कोसी' में समाती है। किंतु, इन सभी हिम-कुंडों से नैऋत्य कोण में पड़ने वाला जो कुंड है, उसी से 'हंगु' नदी प्रस्रवित होती है। हमारा ख्याल है कि महाभारत, पद्म पुराण तथा वराह पुराण का उर्वशी कुंड (उर्वशी तीर्थ) हंगु का ही उद्गम स्थल है :

अस्ति चोर्वशिकुण्डेति गुह्यं क्षेत्रं परं मम ।
यत्र चैवोर्वशी भित्वा दक्षिणोरुमजायत ।।[१]

इसके मानी हुए कि 'स्तन कुंड' गौरीशिखर के हृदय-प्रदेश में है और उर्वशी-कुंड पर्वत के दक्षिणोरु-प्रदेश में स्थित है। इस हंगु या मेलंगु नदी का प्रवाह-मार्ग केवल २२ मील का है। यह 'फफिऊ' नामक स्थान के पास 'दूध कोसी' में संगम करती है। इस संगम से नौ मील दक्षिण जब दूध कोसी बढ़ती है, तब इसके दाहिने भाग में एक और हिम-स्रोतस्विनी दूध कोसी से संगम करती है। इसका उद्गम-हिम-कुंड, लिक्षु नदी के कुंड के ठीक सामने, छह मील पूरब में है। इस हिम-नदी के संगम के बाद दूध कोसी जब सात मील दक्षिण आती है, तब यह नैऋत्य कोण की ओर अपना गिरि-दरी-द्वार बनाती है। इस दिशा में जब यह १७ मील दौड़ लगा चुकती है, तब इसकी बड़ी बहन 'सुन कोसी' (स्वर्ण कौशिकी) इसे अंकसात् कर लेती है। इस प्रकार, 'दूध कोसी' का प्रवाह-पथ अपने उद्गम-स्थान से स्वर्णकौशिकी-संगम तक लगभग ७५ मील तक प्रपात की भाँति ढलता-उबलता हिमालय के कटि-भाग तक आकर समाप्त होता है।

इधर सुन कोसी (स्वर्ण कौशिकी) दूध कोसी-संगम से आगे जब पाँच मील खिसकती है, तब सामने महाभारत पहाड़ की शृंखला उसके मार्ग को रोके खड़ी मिलती है। सुन कोसी इस पर्वत की छेड़-छाड़ पसंद नहीं करती, अतः वह पूर्वोत्तर कोण में लगभग आठ मील तक मुँह फेर कर चल देती है। किंतु, जब वह देखती है कि इधर भी हिमालय के छुटभैये रास्ता रोके खड़े हैं, तब वह फिर पूरब दिशा में अपना प्रवाह बना लेती है और ७½ मील तक बड़े वेग से भागती है। इधर भी जब इसे व्यवधान दिखाई पड़ता है, तब अग्नि कोण में चलने लगती है और चौबीस मील तक मौज मारती निर्विघ्न चली जाती है। किंतु, फिर 'महाभारत शृंखला' का अवरोध इसे प्राप्त होता है और तब यह पूर्वोत्तर कोण में २५ मील तक फिर बड़ी मस्ती के साथ उफनती -दौड़ती निकलती है और 'अरुण कोसी' के संगम पर पहुंच जाती है। प्रथम-प्रथम स्वर्ण कौशिकी (सुन कोसी) अरुण कोसी से संगम करती है और तब तुरत उसके दक्षिण में 'तमोर कोसी' भी उक्त दोनों नदियों की सम्मिलित धारा में संभेद

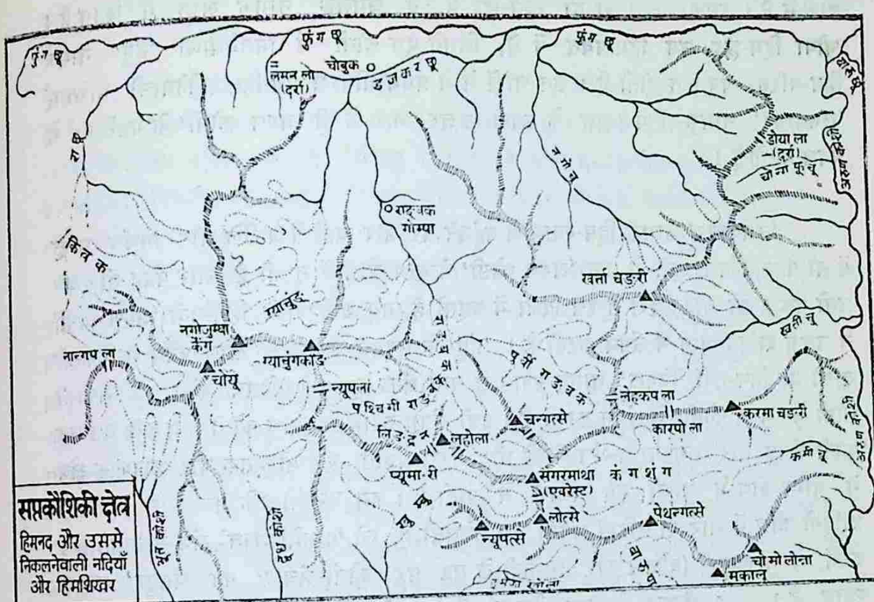
---

१. वराह पुराण, १४१, ५२।

करती है। तीनों नदियों के इस संगम-स्थान को त्रिवेणी-क्षेत्र कहा जाता है और यह प्रयाग के त्रिवेणी--संगम की तरह पवित्र माना जाता है। यह संगम-स्थान 'चतरा' नामक स्थान से छह मील उत्तर में पड़ता है। इस त्रिवेणी-संगम तक सुन कोसी (स्वर्ण कौशिकी) अपने प्रवाह में इंद्रावती, ताम्रा, लिक्षु, दूध नामक कौशिकियों के भारी जल-भांडार के अतिरिक्त अन्य कई नदियों के हिम-जल और वर्षा-जल को ग्रहण करती है। अत: मुख्य कौशिकी माने जाने-वाली 'सुन कोसी' अपने उद्गम-स्थान से लगभग एक सौ पचहत्तर मील तक दक्षिण और पूर्व दिशा में बहती त्रिवेणी-संगम तक आती है और ४७३ वर्ग मील क्षेत्र के हिम-ह्रदों का एवं ६,६८१ वर्ग मील क्षेत्र की वर्षा का जल ग्रहण करती है।

६. **अरुण कोसी** का स्थान सप्त कौशिकियों की धाराओं में जल-ग्रहण-शक्ति और लंबाई की दृष्टि से सर्व प्रथम है। इसका उद्गम हिमालय के पार तिब्बती पठार के मध्य में है और पूर्व की ओर दौड़ती हुई जुगल पर्वत, गौरी शंकर, एवरेस्ट तथा कुंभकर्ण पर्वत श्रेणियों की कई हिम-नदियों को समेटती एवरेस्ट शिखर के पूर्वी भाग से दक्षिण दिशा में दरी-द्वार बनाती नेपाल की सीमा में प्रवेश करती है। इसका मुख्य उद्गम, गंडकी की एक शाखा त्रिशूली के उद्गम-सरोवर के पूरब में स्थित एक दूसरे हिम-सरोवर में है। यह हिमसर नेपाल के 'गोसाईं थान' के उत्तर एवं हिमालय के उत्तरी पाद भाग में है। अरुण कोसी के प्रवाह-मार्ग और उसकी सहायक सरिताओं की स्थिति अगले पेज में दिये गये मान-चित्र में देख सकते हैं।

तिब्बती भू-भाग में जितनी दूर अरुण कोसी बहती है, उतनी दूर तक यह **'फूङ-छू'** नदी के नाम से पुकारी जाती है। तिब्बती पठार में हिमालय के उत्तरी पादभाग की कई हिम-नदियाँ 'फूङ-छू' में प्रवेश करती हैं, जिनमें रोल्वालिंग पर्वत माला की **'राछू'** हिम-सरिता अधिक प्रसिद्ध है। 'राछू' नदी 'नांग-पाला' नामक दर्रे के पास से उत्तर की ओर ढलती है, और इसी के दक्षिणी भाग से 'तामा कोसी' अपना दरी-मार्ग दक्षिण की ओर बनाती है। फिर, जिस भाग में दूध कोसी का उद्गम है, ठीक उसके सामने हिमालय-श्रेणी के उत्तरी पादभाग से **ग्याधुङ्** तथा **राङ्**-बक नामक हिमसरों से **डजकर-छू** नाम की हिम-नदी प्रवाहित होती है। यह पहले उत्तर दिशा में बहती है और फिर पूर्वाभिमुख होकर **नगो-छू** नामक हिम-सरिता से संगम करती है। इसका हिम-जल ग्रहण करने के बाद 'नगो-छू' फूङ-छू (अरुणकोसी) में गिरती है। 'राङ्-बक' नामक हिम-ह्रद का क्षेत्र 'सागरमाथा' (एवरेस्ट) के उत्तरी पाद-भाग में है और नगो-छू का उद्गम 'खर्ता चंगरी' नामक तिब्बती हिमालय में है। नगो-छू जहाँ संगम करती है, उसके पहले ही पूरब की ओर से पश्चिम में आनेवाली **यारो-छू** नामक हिम-सरिता फूङ-छू के वाम पार्श्व में मिली रहती है। ये सब हिम-नदियाँ एवरेस्ट के पूर्वोत्तर भाग में ही 'फूङ-छू' को समृद्ध करती हैं और इन हिम-नदियों को समेटकर 'फूङ-छू' हिमालय की ऊँची दीवार को विदीर्ण करती एवरेस्ट शिखर के पूरब भाग से दक्षिण दिशा में मुड़ती है और तब नेपाल की सीमा में प्रवेश करती है। यह जैसे ही दक्षिण की ओर मुड़ती है, वैसे ही 'डोयला' नामक दर्रे के समीप से पूर्व की ओर बहनेवाली चोङ फू छू नामक नदी सर्व प्रथम फूङ-छू



में प्रवेश करती है। डोयला-दर्रा सागरमाथा के पूर्वोत्तर कोण में लगभग पाँच मील दूर है। 'चोङ्-फू-छू' के दक्षिण तथा 'खर्ता चंगरी' पर्वत के पूर्वी भाग में वर्तमान हिम-सरोवर से खर्ता-छू' नामक हिम-सरिता प्रवाहित होती है, जो पूर्व की ओर वहकर फूङ-छू' (अरुण कोसी) में गिरती है। इसका उद्‌गम-सरोवर 'सागरमाथा' शिखर से लगभग पाँच मील दूर पूर्वोत्तर कोण में है। 'खती-छू' के उद्‌गम के दक्षिण 'कर्माचंगरी' नामक पर्वत-श्रेणी पूरब की ओर अवस्थित है। इसके दक्षिण **'कर्मा-छू'** नामक नदी का उद्‌गम है, जो पूर्व की ओर वहती है। यह सागर-माथा (एवरेस्ट) शिखर के पूर्वी सानु-प्रदेश में स्थित कड़सुङ् हिम-सर से प्रवाहित होकर और पूरब दिशा में वहकर 'फूङ-छू' (अरुण कोसी) की दाहिनी उदर-दरी में समाती है। यह 'कर्मा-छू' जहाँ संगम करती है, उसके नजदीक ही दक्षिण में, अरुण कोसी के वाम-पार्श्व में, पूर्वोत्तर दिशा से नैऋत्य कोण में वहकर आनेवाली एक और हिमस्रवा संभेद करती है। इतनी हिम नदियों तथा अनेक हिम-स्रोतों को समेटने के पश्चात् 'फूङ-छू' मकालू-पर्वत श्रेणी के पूर्व भागवाले 'पोपतिल्ला' नामक दर्रे से, 'हतिया' नामक स्थान के उत्तर में दक्षिण-दिशाभिमुखी बनकर नेपाल देश की ऊँची अधित्यका में, 'अरुण कोसी' नाम के साथ प्रवेश करती है। नेपाल की अधित्यका में प्रवेश करने के बाद नेपाल-भूमि की चार हिम-नदियाँ अग्नि कोण में बहती हुई 'अरुण कोसी' के जल-भांडार को समृद्ध करती हैं। इन चारों के उद्‌गम उन चार हिम-सरोवरों में हैं, जो 'सागरमाथा' के पूरब-दक्षिण कोणवाली ढाल में हैं। सबसे उत्तरवाला हिम-सरोवर **'वरुण खोला'** नामक

ढाल में है। इसके दक्षिण जो दो हिम-ह्रद हैं, वे **चमलङ** नामक खोले में स्थित हैं। चौथा हिम-ह्रद उस हिम-पर्वत में है, जिससे दूध कोसी में मिलनेवाली 'हंगु' नामक हिम-सरिता प्रवाहित होती है। इन चारों में से प्रथम तीन से प्रवाहित होनेवाली सरिताएँ 'लमवागर' नामक हिम-स्थान के ऊपरी (उत्तर) भाग में ही 'अरुण कोसी' के गहरे गर्भ में प्रवेश करती हैं।

'लमबागर' नामक हिम-स्थान में पहुँचने पर और वहाँ से वर्फीले और निर्जन घाटी में नौ मील दक्षिण बढ़ने के वाद 'अरुण कोसी' नैऋत्य कोण में मुड़ती है और पंद्रह मील जब उसी प्रकार की बीहड़ दरी से इस दिशा में बहती है, तब उक्त चौथी हिम-नदी 'अरुण कोसी' से उसके दाहिने भाग में संगम करती है। 'हंगु' के उद्गम स्थानवाले खोल-प्रदेश से निकलने वाली यह हिम-नदीं 'डिंगल' नामक स्थान से सात मील दूर पश्चिमोत्तर कोण की वर्फीली घाटी में 'अरुण कोसी' से संगम करती है। इसी संगम-स्थान से अरुण कोसी नेपाल के वर्तमान कोसी-अंचल और सागरमाथा-अंचलों की सीमा-रेखा बनती २२ मील तक घोर आरण्यक-क्षेत्र से अग्नि कोण में बहती हुई दक्षिण में आती है। इस २२ मील के प्रयाण-पथ में इसकी दाहिनी कोख में और दो नदियाँ अपना जल उड़ेलती हैं, जो 'पल्लोकिरात' क्षेत्र से बहती हैं। इनमें से नीचेवाली (दक्षिण की) हिम-नदी के तट पर 'कोसी-अंचल' का चैनपुर' नामक स्थान है। इस चैनपुर से आठ मील दूर नैऋत्य कोण में इस नदी का संगम-स्थान है। संगम के बाद 'अरुण कोसी' फिर नैऋत्य कोण में मुड़ती है और 'भोजपुर' जिले की सीमा बनती हुई बहने लगती है तथा अपने दाहिने भाग में एक और हिमस्रवा को ग्रहण करती है। यह हिमस्रवा भोजपुर जिले के पश्चिमोत्तर कोण से प्रवाहित होती है और भोज-पुर नगर के दक्षिण से ही अग्नि कोण में बहती हुई 'अरुण कोसी' से मिलती है। इस संगम के पश्चात् 'अरुण' फिर पाँच मील के लिए अग्नि कोण में अपना प्रवाह-पथ बनाती है ओर पुनः थोड़ा-सा नैऋत्य कोण की ओर मुँह किए जब छह मील दक्षिण दिशा में दौड़ती है, तब 'सुन कोसी' बड़े उल्लास के साथ 'अरुण' को अंकसात् कर लेती है। इन दोनों बड़ी कोसियों के संभेद-स्थलों से थोड़ी दूर दक्षिण में पूर्व दिशा से आनेवाली 'तमोर' का भी संभेद-स्थल है, जिससे कोसी का यह भाग 'त्रिवेणी-संगम' के नाम से ख्यात है।

ऊपर में जिस 'अरुण कोसी' की चर्चा की गई है, उसकी पर्वत-प्रवाह-दरी संसार की शैल-द्रोणियों में, अपनी ऊँचाई, गहराई, दुर्गमता एवं दृश्यावली के लिए, विख्यात है। सन् १९३६ ई० में स्वीट्जरलैंड के 'हाइम' और 'गंसेर' नामक दो पर्वतारोहियों ने हिमालय की अरुण-दरी का भ्रमण किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'सेंट्रल हिमालय' में लिखा है : "अरुण नदी ने ऊँचे पर्वत को चीर कर अपने लिए जो द्रोणी बनाई है, वह संसार के सभी नदी-घाटियों से अधिक गहरी और भयावनी है। एवरेस्ट चोटी के ऊँचे विंदु से अरुण नदी की भयावनी दरी की तलहटी अट्ठारह-वीस हजार फीट गहरी है। उनका कहना है कि

अरुण नदी की घाटी की ठीक-ठीक गाथा-गान करने के लिए कोई भी भूगर्भ-शास्त्री अभी तक वहाँ नहीं गया है।"[1]

अरुण कोसी नदी त्रिवेणी-संगम तक १,२२९ वर्गमील क्षेत्र के ग्लेसियर का और १२,८७७ वर्गमील क्षेत्र की वर्षा का पानी ग्रहण करती है। इसकी बनावट दूर से देखने पर कुछ ऐसा भ्रम उत्पन्न करती है, जैसे यह हिमालय के ऊँची प्रस्तर-दीवार को फाड़ती हुई एवं चाँद की पिघली हुई धारा की तरह दक्षिण से उत्तर की ओर तिब्बत में ही बहती हुई जाती है। अरुण कोसी की दरारवाली दीवारों तथा कगारों पर शीत ऋतु में तमाम वर्फ की चट्टानें जम जाती हैं, जो गर्मी आते ही पिघलकर बादलों की तरह उसकी द्रोणी में झरने लगती हैं। यह तिब्बत पठार में 'फूङ-छू' के नाम से लगभग १५४ मील तक बहती है और नेपाल की भूमि में लगभग ८२ मील बहने के बाद अपने 'त्रिवेणी-संगम' पर पहुँचती है।

७. तमोर की धारा ही सप्त कौशिकी की धाराओं में सबसे पूरब वाली धारा है, जो 'पल्लोकिरात' की पूर्वोत्तर कोण में स्थित 'कंचनजंघा पर्वत-श्रेणी' से प्रवाहित होती है। महाभारत की 'ताम्रा' यही 'तमोर' है या 'तामा कोसी', इसका पता ठीक से नहीं मिलता है। तमोर का उद्गम आधुनिक नेपाल के 'मेची अंचल' भू-भाग में है। इसी अंचल के कंचनजंघा पर्वत का सूर्योदय अपने अद्भुत दृश्य के लिए जगत्प्रसिद्ध है। कंचनजंघा की ऊँचाई २८,१४६ फीट है। सूर्योदय के समय जब सूर्य-रश्मियाँ इस पर्वत के शिखर-स्तंभ पर, नीचे से ऊपर तक पड़ती हैं, तब संपूर्ण पर्वत एक भीमकाय स्वर्ण-स्तंभ के रूप में ढल जाता है, इसीलिए यह 'कंचनजंघा' कहलाता है। लोगों का कहना है कि सूर्योदय के समय जब कंचनजंघा अपने अनेक और आश्चर्यमय रूपों को क्षण-क्षण परिवर्तित करने लगता है, तब बड़े-से-बड़े नास्तिक भी परमात्मा की अमित शक्ति, अद्भुत रूप और अटल सत्ता के प्रति नतमस्तक हो जाते हैं। 'गीता' में वर्णित ईश्वर के विराट् रूप की थोड़ी-सी परिकल्पना सूर्योदय-काल में 'कंचनजंघा' के अनुपम दृश्यों से की जा सकती है। इसी 'कंचनजंघा' के पश्चिमी सानु-प्रदेश के तीन हिम-सरोवरों में 'तमोर कोसी' के उद्गम स्रोत हैं। कंचनजंघा के जिस पश्चिमी भाग में 'तमोर' के उद्गम हैं, ठीक उसी के सामने उस पार (कंचनजंघा के पूर्वपाद में) 'तिस्ता' नदी का भी उद्गम-स्थल है। **तिस्ता** के उद्गम-स्रोत पाँच हिमकुंडों में है और ये सिक्किम के भू-भाग में पड़ते हैं। किंतु, 'तमोर कोसी' की सबसे लंबी शाखा का उद्गम कंचनजंघा के उत्तरी छोर पर स्थित 'जनक' शिखर के हिम-सर में है, जहाँ नेपाल देश के पूर्वोत्तर कोणवाली सीमा का अंत होता है। 'तमोर' की यह धारा अपने उद्गम-स्थल से प्रथमतः दक्षिण की ओर; किंतु थोड़ा-सा नैऋत्य कोण में झुकती हुई हिमानी दरी से चलती है तथा इसी यात्रा-क्रम में यह 'चुन्सो' के पश्चिम पहुँचती है। अपने उद्गम-स्थान से जब यह लगभग ३० मील और 'चुन्सो' से लगभग ११ मील दूर जाती है, तब कंचनजंघा के दक्षिणी सानु-देश के हिम-कुंड से प्रवाहित होनेवाली हिम-नदी भी नैऋत्य कोण में बहती हुई 'तमोर'

१. कैलास-मानसरोवर, भूमिका भाग, पृ० १२।

की प्रधान धारा से उसके वाम पार्श्व में संगम करती है। इस संगम से दो मील उत्तर में ही वह हिम-नदी 'तमोर' के दाहिने भाग में गिरती है, जो 'जनक' पर्वत के पश्चिम में स्थित 'कंगला' दर्रे के समीप से एवं 'वलांग चुङ्' के क्षेत्र से अग्नि कोण तथा दक्षिण में बहती आती है। इन त्रिधाराओं के सम्मिलन के पश्चात् 'तमोर कोसी' नैऋत्य कोण में बहती हुई जब १६ मील आती है, तब 'कोसी' और 'मेची' अंचलों की सीमा का काम करनेवाली हिम-सरिता तमोर के वाम पार्श्व में प्रवेश करती है। संगम करने वाली यह हिम-नदी 'टोपके' नामक स्थान के उत्तर भाग से उद्गमित होती है और दक्षिण दिशा की ओर हिम-पर्वत से ढलती हुई आती है। यह संगम 'टप्लेजुङ्' से साढ़े चार मील पश्चिमोत्तर कोण में है। इस संगम-स्थल से 'तमोर' अग्नि कोण में बहने लगती है और जब सात मील का अपना हिम-मार्ग तय कर लेती है, तब इसके वाम पार्श्व में एक और हिम-नदी अपना जल उड़ेलती है। इस हिमस्रवा का संगम भी 'टप्लेजुङ्' के दक्षिण में केवल साढ़े चार मील की दूरी पर है। यह 'टप्लेजुङ्' जिले की पूर्वी सीमा पर स्थित 'सिंगलीना' पर्वत से प्रवाहित होकर पहले नैऋत्य कोण में, फिर दक्षिण दिशा में और तब पश्चिम में बहकर 'तमोर' से संगम करती है। इसके पश्चात् 'तमोर कोसी' सिर्फ ढाई मील दक्षिण में बहकर छह मील के लिए अग्नि कोण में दौड़ लगाती है। इसके पश्चात् यह नैऋत्य कोण एवं दक्षिण दिशा में कुल छह मील बहकर 'फिदिम' नगर के पश्चिम में दो मील दूर चली आती है। इस स्थान पर पूर्वोत्तर भाग से निकलकर नैऋत्य कोण में आनेवाली २० मील लंबाई वाली एक दूसरी नदी 'तमोर' की बाँई गोद में प्रवेश करती है। इसी नदी के बाएँ तट पर 'फिदिम' बसा हुआ है। इसी नदी के संगम-स्थान तक 'तमोर कोसी' मेची और कोसी नामक अंचलों की सीमा बनती है। वास्तव में तो 'फिदिम' से ढाई मील उत्तर से ही तमोर 'कोसी-अंचल' के 'तेह्रथुम' नामक जिले की सीमा में प्रवेश कर जाती है। उक्त संगम इसी जिले की सीमा-क्षेत्र की भूमि में है।

तेह्रथुम जिले में प्रवेश करने पर 'तमोर कोसी' बिलकुल नैऋत्य कोण की सीध में बड़ी ही तीखी धार बनाती हुई दौड़ती है और 'धनकुटा नामक स्थान के दक्षिणी भाग से होती पश्चिम दिशा में मुड़ जाती है। इसी यात्रा-क्रम में यह सुन कोसी और अरुण कोसी की संयुक्त धारा के साथ त्रिवेणी-संगम पर अपने को भी विलीन कर देती है। फिदिम के पश्चिम से जब यह नैऋत्य कोण में दौड़ती और पश्चिमाभिमुखी बनकर त्रिवेणी-संगम तक आती है, तब इतनी दूर के यात्रा-पथ में इसे ३४ मील का मार्ग तय करना पड़ता है। इस प्रकार, यह अपने उद्गम-स्थान से संगम-स्थल तक कुल १०१ मील का प्रवाह बनाती है। इसका ग्लेसियर-क्षेत्र २५६ वर्ग मील में फैला है और इसके वर्षा-जलवाला क्षेत्र २०,२२ वर्ग मील में। तमोर नदी के क्षेत्र में भी 'महाभारत' के कई तीर्थ पड़ते हैं और इसके ऊपरी भाग में बीहड़ तथा बड़े-बड़े ग्लेसियर वर्तमान हैं। तमोर का क्षेत्र ऊँचे वृक्षोंवाले घनघोर जंगलों से भरा है, जिसमें मनुष्य का संचरण बड़ा ही कठिन तथा विपज्जनक है। संक्षेप में सप्त कौशिकियों के प्रवाह-मार्ग का यही विवरण है। सच पूछिए तो सप्त कौशिकी की धाराएँ सप्त लोक के प्रतीक स्वरूप सात स्वर्गङ्गाएँ हैं, जो वस्तुतः स्वर्ग से उतरती हैं और जिनका विशद और विस्तृत वर्णन

वही देवपुरुष कर सकता है, जिसकी वाणी में साक्षात् सरस्वती, लेखनी में गणेश तथा पैरों में नारद बसते हों।[1]

त्रिवेणी से चतरा तक कोसी की धारा :

त्रिवेणी-संगम के पश्चात् कोसी नदी पूर्ण यौवना बन जाती है, और इसका 'महा-कौशिकी' नाम सार्थक हो जाता है। यह पहले कहा गया है कि 'चतरा' नामक स्थान से उत्तर सिर्फ छह मील दूर कोसी का त्रिवेणी-संगम है। इस महा कोसी का संपूर्ण ग्लेसियर-क्षेत्र २,२२८ वर्ग मील का है और वर्षा का जल-क्षेत्र २३,८०८ वर्गमील का। त्रिवेणी-संगम से 'चतरा' तक सिर्फ छह मील की दूरी में, तट-बंध बनने के पहले भी यह एक धारा के रूप में एक नदी होकर बहती थी। फिर जब 'चतरा' के नीचे उतरती थी, तब फिर यह बिखरे हुए केश-कलाप की तरह अपनी धाराओं को बिखेर देती थी। किंतु, जब से कोसी में 'चतरा' से आरंभ करके सहरसा जिले के दक्षिणी भाग तक तटबंध बन गया है, तब से यह बिहार प्रदेश की भूमि में भी एक नदी के रूप में बहने लगी है।

त्रिवेणी-संगम के बाद कोसी चूरे-पर्वत श्रेणी को विदीर्ण करती दक्षिण की ओर नेपाल के तराई-भाग में आती है, जहाँ 'चतरा' नामक स्थान है। त्रिवेणी-संगम और 'चतरा' के बीच में ही महा कोसी के वाम तट पर 'कोकामुख' तथा 'वराह' नामक दो तीर्थ हैं, जो पुराणों में तथा लोक में भी अति प्रसिद्ध तथा परम पवित्र माने गये हैं।

कोकामुख तथा वराह-क्षेत्र : 'कोकामुख' नामक तीर्थ उस स्थान पर है, जहाँ इसी नाम की एक छोटी-सी नदी 'कोसी' के बाएँ भाग में संगम करती है। कोकामुख-संगम के दक्षिण थोड़ी ही दूर पर 'वराह तीर्थ' है, जिसका सबसे प्राचीन उल्लेख हमें 'महाभारत' में प्राप्त है :

कोकामुखे विगाह्याथ गत्वा चाञ्जलिकाश्रमम्।
शाकभक्षाश्चीरवासाः कुमारी विन्दते दश ॥[2]

यहाँ कोकामुख नदी में अवगाहन करने का एवं अंजलिकाश्रम में जाने का उल्लेख है। फिर, 'वराह पुराण' के १४० वें अध्याय में कहा गया है कि 'कोकामुख' के समान पवित्रस्थल तो सम्पूर्ण पृथ्वी-मंडल में कहीं प्राप्त नहीं है :

---

१. सप्त कौशिकी के उद्गम-प्रदेश और उसके विस्तृत क्षेत्र का यह विवरण दिग्दर्शनमात्र है। यह संपूर्ण क्षेत्र वर्फानी बीहड़ घाटियों, ऊँची पर्वत-श्रेणियों तथा अतिगहन दुर्गम वनों के कारण किसी एक व्यक्ति के लिए दुर्गम है। सन् १९४७ और ४८ ई० में 'केन्द्रीय जलशक्ति और नौ-संचालन समिति' नामक संस्था की ओर से कुछ व्यक्तियों ने कोसी के कुछ क्षेत्रों का पर्यटन किया था, जिसमें काठमांडो से दार्जिलिंग तक के भाग थे। ये लोग १००० मील पैदल चले थे और १९५०० फुट तक की ऊँचाई तक के क्षेत्र में गये थे। इसके पहले स्वीट्जरलैंड के उन पर्वतारोहियों ने अरुण-दरी का अन्वेषण किया था, जिनकी चर्चा मैंने ऊपर में की है। किंतु, हमारे महाभारतकार तथा पुराणों के रचयिता कैसे पुरुष थे, जिन्होंने गौरी शिखर, सागरमाथा और कंचनजंघा प्रदेश के तीर्थ-स्थानों को मथकर विशद विवरण लिख दिया है, जिनका थोड़ा-सा उल्लेख मैंने 'कोसी' के प्रसंग में किया भी है। मैंने इन्हीं महापुरुषों और पर्यटकों के द्वारा लिखे गए विवरणों के तथा नेपाल देश के कई सरकारी मानचित्रों के आधार पर 'सप्त कौशिकी' के क्षेत्रों का विवरण लिखा है, जिसमें रह गई त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

२. महाभारत, अनु० पर्व, अध्याय० २५।५२।

यानि यानि च क्षेत्राणि त्वया पृष्ठानि वै धरे।
कोकामुखसमं स्थानं न भूतं न भविष्यति ॥१२॥

इस क्षेत्र में 'वराह पुराण' निम्नांकित २१ तीर्थों के नाम गिनाता है : १. जलबिंदु, २. विष्णुधारा, ३. विष्णुपद, ४. विष्णुसर, ५. सोमतीर्थ, ६. तुंगकूट, ७. अग्निसर, ८. ब्रह्मसर, ९. धेनुवट, १०. धर्मोद्भव, ११. कोटिवट, १२. पापप्रमोचन, १३. यम व्यसनक, १४. मातंगाश्रम, १५. वज्रभव, २६. शुक्ररुद्र, १७. दंष्ट्रांकुर, १८. विष्णुतीर्थ, १९. त्रिस्रोतस्, २०. मत्स्यशिला तथा २१. वराह तीर्थ। इन सभी तीर्थ स्थानों की पहचान के लिए 'वराह पुराण' संकेत भी देता है। 'कोकामुख' उस स्थान पर है, जहाँ पर्वत से जल बिंदु चूता रहता है और यह गुह्यतम स्थान है। कोकामंडल में ही विष्णुधारा है, जहाँ मुसल-सदृश जल-धारा पृथ्वी पर गिरती है। यह 'मछवारा' नामक ग्राम के पास है। यहाँ जिसकी मृत्यु होती है, वह साक्षात् विष्णु की मूर्ति को देखता है। इसी क्षेत्र में 'विष्णुपद' नामक स्थान है, जहाँ वराह भगवान् वास करते हैं और जिसे कोई नहीं जानता। इसी स्थान को वराह-शिला भी कहते हैं। विष्णुसर नामक तीर्थ में पृथ्वी रूपी लक्ष्मी के साथ भगवान् क्रीड़ा करते हैं और यहीं दंष्ट्रावराह ने पृथ्वी का उद्धार किया था। इसी कोकामंडल में सोमतीर्थ भी है, जहाँ विष्णु के नाम से अंकित पाँच शिलाएँ हैं। तुंगकूट तीर्थ वह है, जहाँ ऊँचे पर्वत से जल की चार धराएँ गिरती हैं, जिसे स्थानीय लोग 'चौढ़ुंडा' कहते हैं। यहाँ चार सीमाएँ भी सम्मिलित होती हैं। इसीके समीप 'अग्निसर' नामक तीर्थ के होने का उल्लेख 'वराह पुराण' करता है और उसके अनुसार पाँच धाराएँ गिरि-कुंजों से बहती हुई नीचे गिरती हैं। 'ब्रह्मसर' नामक गुह्यतीर्थ वहाँ है, जहाँ एक जल-धारा शिला पृष्ठ पर गिरती है। इसकी पहचान आज 'ब्रह्मा खोला' नामक स्रोत से कराई जाती है। फिर 'सूर्यप्रभ' नामक तीर्थ उस स्थान पर बतलाया गया है, जहाँ गर्म पानी का स्रोत निकलता है; किंतु उस स्थान पर आज जलस्रोत लुप्त है। यह स्थान 'लुकवा खोला' नामक स्रोतस्थल से आध मील दूर है। 'लुकवा खोला' स्रोत 'कोकहा' नदी का सहायक स्रोत है और 'वराह मंदिर' से चार मील दूर है। जिस 'धेनुवट' तीर्थ का उल्लेख 'वराह पुराण' करता है, वह 'लुकवा खोला' नामक स्रोत से आध मील दूर है। यहाँ पर्वत से एक जलधारा गिरती है, जो 'वराह पुराण' के अनुसार भी ठीक है। इसी तरह एक प्रपात के समीप 'धर्मोद्भव' नामक तीर्थ की चर्चा 'वराह पुराण' करता है। फिर, 'कोटिवट' नामक तीर्थ में एक वट वृक्ष के मूल भाग से जल निकल कर बहता दिखाई पड़ता है। 'पापमोचन' तीर्थ में घड़े से पानी उड़ेलने-जैसी धारा पृथ्वी पर गिरती है। आज 'पापमोचन' तीर्थ उस स्थान पर बतलाया जाता है, जहाँ एक स्रोत की धारा चट्टानों के द्वारा रोकी गई है और जहाँ से वहाँ के ग्रामीण पीने का पानी ले जाते हैं। प्रति पूर्णिमा को धार्मिक लोग यहाँ स्नान करके पुण्य लूटते हैं। किंतु, 'वराह पुराण' के अनुसार, 'पापमोचन तीर्थ' को उस स्थान पर होना चाहिए, जहाँ यह जल-धारा सीधे 'कौशिकी' में गिरती है। कौशिकी में मिलने वाले एक दूसरे स्रोत-संगम पर 'यमव्यसनक' नामक तीर्थ का उल्लेख 'वराह पुराण' करता है।

'कौशिकी' में गिरनेवाले एक स्रोत के संगम पर 'मातंग' नामक तीर्थ होने का भी वह उल्लेख करता है। 'वज्रभव तीर्थ' भी उस स्थान पर वतलाया गया है, जहाँ एक और स्रोत कौशिकी से संगम करता है। कोकाशिला में तीन कोस परिधिवाला 'शुक्र-रुद्र' नामक तीर्थ का भी उल्लेख है। फिर 'वराह पुराण' 'दंष्ट्रांकुर' नामक तीर्थ को उस स्थान पर वतलाता है, जहाँ 'कोका' नदी का उद्गम है। 'कोकामुख' नदी का जन्म त्रिस्रोतसा के रूप में प्रकट होता है और वहीं 'विष्णुतीर्थ' वतलाया गया है। किंतु, इन सभी तीर्थों में श्रेष्ठ कोका-कौशिकी-संगम है, जिसके उत्तर में 'सर्वकामा' नाम की पवित्र शिला वर्तमान है। इसी क्षेत्र में 'मत्स्यशिला' नामक गुह्यतीर्थ है, जहाँ तीन जल-स्रोत कौशिकी में अपना जल डालते हैं। स्नान करनेवाले यदि वहाँ मछली के दर्शन प्राप्त कर लें, तो उन्हें नारायण-प्राप्ति का फल मिलता है। कोकामुख-क्षेत्र का विस्तार पाँच योजन की परिधि में वतलाया गया है। इसका तात्पर्य हुआ कि कोसी-नदी के पूर्व में **कवल** नदी के उद्गम तक कोकामुख-क्षेत्र वर्तमान था। वराह भगवान् कहते हैं कि हे वसुंधरे ! इस क्षेत्र में मैं दक्षिण दिशा की ओर उन्मुख रहता हूँ :

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे।
तस्मिन्कोकामुखे रम्ये तिष्ठामि दक्षिणामुखम्॥

'वराह पुराण' इस क्षेत्र में वराह भगवान् की पुरुषाकृति मूर्त्ति का वर्णन करता है, जो शिला-चंदन की मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। उसके अनुसार वराह-मूर्ति वाम भाग में उन्नत मुख करके खड़ी है, जिसका वायाँ दाँत वाहर निकला हुआ ऊर्ध्वाभिमुख है। इस रूप में यह मूर्त्ति संपूर्ण संसार को सर्वदा देखती रहती है।

ऊपर में वर्णित सारी वातें 'वराहपुराण' के १४० वें अध्याय के १२ वें श्लोक से ६० वें श्लोकों तक में वर्णित हैं, जिनके मूल रूप को अनावश्यक विस्तार के भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है। 'वराह पुराण' की यह कोकामुख-प्रशस्ति किस काल में लिखी गई, यह तो स्पष्ट नहीं है; किंतु आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व कोकामुख एवं वराह तीर्थ के अस्तित्व एवं प्रसिद्धि की चर्चा गुप्तकाल के दो अभिलेखों से हमें प्राप्त हो जाती है, जिससे इसका पौरा-णिक महत्त्व में चार चाँद लग जाता है। गुप्त-संवत् २२४, भाद्रपद ५ (सन् ५४३ ई०) को गुप्तवंशी राजा **देवगुप्त** ने एक ताम्र-पत्र लिखवाया था, जो **दामोदरपुर-ताम्र-शासन** के नाम से पुरातात्त्विकों के मध्य विख्यात है। उसमें इस वराह तीर्थ के 'श्वेत वराह स्वामी' मूर्त्ति का स्पष्ट उल्लेख है। इस ताम्रपत्र के द्वारा देवगुप्त ने अपनी माता की पुण्य-वृद्धि के लिए 'कोकामुख' नामक अरण्य में भगवान 'श्वेत वराह स्वामी' के मंदिर के संस्कार के निमित्त एवं वलि-चरु-यज्ञार्थ एवं राग-भोग के लिए एक वड़ा भूमिखंड दान में दिया था। यह भूमि खंड 'पुण्ड्रवर्द्धन' भुक्ति के 'कोटिवर्ष' विषय (जिले) में था। इस ताम्र-शासन को अयोध्या के कुलपुत्र **अमृतदेव** नामक अधिकारी ने जारी किया था। प्रामाणिकता के लिए उस ताम्र-शासन के मूल रूप का कुछ अंश यहाँ दे देना उचित है :

"कोटिवर्षाधिष्ठानाधिकरणस्य ! सं (व) २०० (+) २० (+) ४ भाद्र दि० ५ परम दैवत परम भट्टारक म (हा) राजाधिराज श्री....पृथिवीपतौ तत्पादपरि-गृहीते पुण्ड्र वर्द्धन भुक्तावुपरि (क-महाराजस्य) (महा)-राजपुत्र देव भट्टारकस्य हस्त्यश्वजनभोगेनानु-वहुमा (न) के को (टिव) र्ष विष (ये) च तन्नियुक्तकेह विषयपतिस्वयम्भुदेवे अधिष्ठाना-धिकरण (म्) आर्य (न) गर (श्रेष्ठि रिभु) पाल सार्थवाहस्थाणुदत्त प्रथम कुलिक मतिदत्त प्रथम कायस्थ स्कन्दपाल-पुरोगे (स) व्य (वह) रति अयोध्याककुलपुत्रक अमृतदेवेन विज्ञा-पितमिह विषये समुदयवाह्याप्रहताखिल (क्षे) त्राणां त्रिदीनारिक्य-कुल्यवाप-विक्रयो (ऽ) नुवृतस्तमर्थमत्तो दीनारानुपसंगृह्य मन्मातुः (पु) ण्याभिवृद्धये अत्रारण्ये भगवतः श्वेतवराह-स्वामिनो देवकुले खंड फुट्ट प्रति (सं) स्का (र) -करणाय वलिचरुसत्रप्रवर्त्तनगव्यधूपपुष्प प्रापणमधुपर्कदीपाद्यु प (यो) गा (य) त्र × × × × इत्येवमखिलक्षेत्रस्य वास्तुना सह पंच कुल्यवापा अप्रदाधर्मेण भग (व) ते श्वेत वराहस्वामिने शाश्वतकालभोग्या दत्ताः[१] (।)

उपर्युक्त ताम्र-अभिलेख से पहले का भी एक ताम्र-लेख दामोदरपुर में ही मिला था, जिसे गुप्त-सम्राट् 'बुधगुप्त' ने लिखवाया था। यद्यपि इस ताम्रपत्राभिलेख में निश्चित वर्षवाली लिपि नष्ट हो गई है, तथापि पुरातात्त्विकों ने इसे गुप्त-संवत् १६५ से १८० के मध्य का माना है और देवगुप्त के अभिलेख से ५० से ६४ वर्ष पूर्व का वतलाया है। यह उस समय लिखा गया, जव पुण्ड्रवर्द्धन-भुक्ति का शासन वुद्धगुप्त का उपरिक 'जयदत्त' नामक व्यक्ति संभालता था। इस ताम्रपत्र को भी ऋभुपाल सेठ ने जयदत्त के आदेश से लिखवाया था और कोकामुख स्वामी श्वेतवराह की मूर्ति, दो देव कुलों एवं दो कोठरियों के निर्माण के हेतु डोंगा ग्राम के समीप की भूमि दान में दी थीं। संभवतः, दोनों ताम्र-शासनों के लिखे जाने के समय 'ऋभुपाल' जीवित था और दोनों के लिखवाने में उसका हाथ था। ऋभुपाल सेठ जयदत्त द्वारा नियुक्त 'शंडक' अधिष्ठान का अधिकरणिक और वहाँ का नगर-सेठ था। इस अभिलेख की मूल प्रति इस प्रकार है :

"........फाल्गुत दि० १० (+)—(५) परमदैवत परम भट्टारक महाराजा धिराज-श्रीबुधगु (प्ते) (पृथिवीपतौ) (त) त्पाद-परिगृहीतस्य पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ता-वुपरिक महाराज जयदत्तस्य भोगेनानु (वहुमा) नके (को) टि वर्ष विषये च तन्नियुक्त-केहायुक्तक-शण्डके अधिष्ठानाधिकरण (·) नगरश्रेष्ठि रिभुपा (ल) सार्थवाह वसुमित्र प्रथम कुलिक वरदत्त प्रथम कायस्थ विप्रपाल पुरोगे च सं (व्य) वहरति अनेन श्रेष्ठि-रिभुपालेन विज्ञापितं हिमवच्छिखरे कोकामुखस्वामिनः चत्वारः कुल्यवापाः (श्वे) तवराहस्वामिनो (ऽ) पि सप्त कुल्यवापा अस्मत्फलाशंसिनो पुण्याभिबृद्धये डोङ्गा ग्रामे पूर्वं मया अप्रदा अतिसृष्टकास्तदहन्तत्क्षेत्र-सामीप्य भूमौ तयोराद्य कोकामुखस्वामिश्वेतवराह स्वामिनो ना (म) लिङ्गमेकं देवकुलद्वयमेतकोष्ठिकाद्वयञ्च कारयितुमिच्छाम्यर्हथ वास्तुना सह (कुल्य) वापान्यथाक्रममर्यादया दातुमिति (।) यतः पुस्तपाल-विष्णुदत्त-विजय (नन्दि) स्थाणु-नन्दि-नाम धारणयावधृतमस्त्यनेन हिमवच्छिखरे तयोः कोकामुखस्वामि श्वेतवरा (ह) स्वामि

१. 'प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन', सं० डॉ वासुदेव उपाध्याय, टेक्स्ट–पृ० ८०-८१।

(नो) अप्रदाक्षेत्र कुल्यवापा एकादशदत्तकास्तदर्थञ्चेह देवकुलकोष्ठिकायुक्त (मे) त (द्विज्ञा)-(पितं) (क्र) मेणतत्क्षेत्र-सामीप्यभूमौ वास्तुदातुमित्यनुवृत्तत्रिदीनारिक्य कु (ल्यवा) प-विक्रय (मर्य्या) द (या)........पु (ष्करि) णी पू (र्व्वेण) रिभु (पा) ल. पु (ष्करिणी) (दक्षिणेन)........दत्ताः ।[१]

उक्त अभिलेख में उपरिक जयदत्त, नगरसेठ ऋभु पाल, सार्थवाह वसुमित्र, प्रथम कुलिक वरदत्त, प्रथम कायस्थ विप्रपाल, पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति, कोटिवर्ष विषय, हिमवच्छिखर, कोकामुख स्वामी, श्वेतवराह स्वामी, डोंगा ग्राम आदि नाम इतने स्पष्ट हैं कि कोसी के इस वराह-क्षेत्र के संबंध के ही ये लेख हैं, इसमें किसी को संशय नहीं रह जाता है। इस अभिलेख से यह भी स्पष्ट है कि कोकामुख स्वामी और श्वेत वराहस्वामी—इन दोनों देवों के मंदिर इस भाग में थे और ये दोनों तीर्थ प्रसिद्ध थे। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि गुप्तों के शासनकाल में जिस प्रकार अन्य स्थानों में वराह-मूर्त्तियाँ निर्मित कर स्थापित की गईं; उसी प्रकार कौशिकी के तट पर भी 'वराह-मूर्त्ति' प्रतिष्ठित की गई।

कोकहा (कोकामुख) नदी की महिमा को 'वराह पुराण' अपने १२२वें अध्याय में एक किंवदंती वाली आख्यायिका कहकर गाता है। यह आख्यायिका शक जातीय एक राजकुमार और उसकी प्यारी पत्नी की है : "वह राजकुमार बरावर शिरोव्यथा से पीड़ित रहता था। शिरो रोग दूर करने के लिए बड़े-बड़े वैद्यों द्वारा इलाज हुआ; फिर भी उसकी शिरोव्यथा दूर नहीं हुई। तब उसकी प्यारी पत्नी ने इसका रहस्य पति से पूछा। पत्नी के बार-बार के आग्रह पर पति ने कहा—यह पूर्व जन्म की कहानी है, जिसे कोकामुख क्षेत्र में चलकर ही बतला सकता हूँ। माता-पिता की आज्ञा लेकर दोनों पति-पत्नी 'कोकामुख' नदी के किनारे गये। वहाँ शक राजकुमार ने पूर्वोत्तर दिशा में रखी हड्डियों का ढेर दिखलाया और कहा, ये हड्डियाँ मे जन्म-जन्मान्तर की हैं। पिछले जन्म में मैं इसी 'कोकामुख' में एक बड़ा मत्स्य था। एक दिन किसी मछुए के जाल में मैं फँस गया; किंतु मछुए ने जैसे ही जाल से निकाल कर मुझे हाथ में लिया कि मैं झटका देकर उसके हाथ से बाहर निकल गया। फिर भी मेरे दुर्भाग्य ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। उसी समय वहाँ आकाश में एक बाज मँड़रा रहा था। वह झपट्टा मार कर मुझे चंगुल में दबोचकर ऊपर ले उड़ा। पर, मैं इतना भारी था कि वह मुझे लेकर उड़ नहीं सका और मैं 'कोकामुख' में गिर कर मर गया। कोकामुख में गिर कर मरने से मैं राजकुमार होकर जन्मा; पर बाज के चंगुल से मेरा शिर जो क्षत-विक्षत हो गया था, उसी कारण यह शिरोव्यथा आज तक बनी हुई है। मुझे पूर्व जन्म की स्मृति कोकामुख-क्षेत्र में जनमने और मरने के कारण ही बनी हुई है। अब यहाँ आकर मैं पुनः मुक्त हो गया। तुम जहाँ चाहो, जा सकती हो।"

अपने पति की कहानी सुनकर राजकुमारी ने भी कहा : "मुझे भी अपने पूर्व जन्म की स्मृति है। तुम उधर देखो। वहाँ जो कुछ हड्डियाँ हैं, वे सब भी मेरे जन्म-जन्मातर

---

१. 'प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन' (डॉ० वासुदेव उपाध्याय), टेक्स्ट, पृ० ७७।

की हैं। पिछले जन्म में मैं चील थी और इसी क्षेत्र में विचरण करती थी। एक दिन एक व्याधा मांस से भरी टोकरी अपने माथे पर लेकर जा रहा था। मैं भी झपट्टा लगाकर एक मांस का भारी टुकड़ा लेकर उड़ गई और एक पेड़ पर बैठ कर आनंदपूर्वक खाने लगी। इतने में वह व्याधा घूमता-फिरता वहाँ आ गया। मुझे मांस-भक्षण करते देख कर उसने धनुष पर तुरत वाण चढ़ाया और ऐसा मारा कि मैं लुढ़कती हुई 'कोकामुख' में आ गिरी। कोकामुख में गिरकर मरने के कारण ही मैं इस जन्म में राजकुमारी हुई और फिर तुम्हारी पत्नी वनी। कोकामुख के जल में मृत्यु प्राप्त करने के कारण ही पूर्व जन्म की स्मृति मुझे भी है। यहाँ आकर मैं भी अब मुक्त हो गई।''

'वराह पुराण' की इस कहानी के लिखने का यहाँ इतना ही तात्पर्य है कि कौशिकी-तट के इस छोटी-सी नदी 'कोकहा' की अमित महिमा उस काल में लोक-प्रसिद्ध थी और यह क्षेत्र बहुत ही विख्यात और पुण्य स्थान माना जाता था।

बराह क्षेत्र के पास कोसी का दरी-मार्ग :

कोकहा-संगम और वराह क्षेत्र के बाद कौशिकी 'कुशहा' नामक स्थान को आती है और तब 'चतरा' पहुँचती है। लोगों का कहना है कि यही 'कुसहा' (कौशिकाश्रम = विश्वामित्राश्रम) है और यहीं ऋषि विश्वामित्र कौशिकी के तट पर रहते थे। त्रिवेणी-संगम से 'कुसहा' तक कोसी नदी चूरे-पर्वतमाला की दीवार को आरा-सदृश अपनी तीक्ष्ण-धारा से इस प्रकार चीरती है, जैसे अभी-अभी लोहारों ने बड़े-बड़े हथौड़ों तथा छेनियों से पहाड़ को काटा है। यहाँ कोसी अत्यंत ताजा, संकीर्ण एवं पतनोन्मुखी गार्ज बनाती है और 'चतरा' तक इसी एक द्रोणी से बहती आती है। इस भाग में नवंबर से मई महीने तक नदी का जल-निकास १८ हजार घन फुट प्रति सेकेंड रहता है; किंतु वर्षाकाल में यह निकास ३००००० (तीन लाख) घन फुट प्रति सेकेंड देखा गया है। सन् १९२७ ई० की भयंकर बाढ़ का निकास तो ७००००० (सात लाख) घन फुट तक बढ़ गया था। यों इसका सर्वाधिक अल्प निकास ९००० (नौ हजार) घन फुट प्रति सेकेंड रहता है।

पहाड़ों के द्रोणी-मार्ग से जब कोसी बहती है, तब इसका उतराव प्रति मील ७५ फीट रहता है; किंतु पहाड़ों के बाहर 'चतरा' से गंगा-संगम तक इसकी धारा का उतार प्रति-मील औसतन १.६ फुट तक हो जाता है। त्रिवेणी-संगम से चतरा तक कोसी एक वेणी के रूप में बहती है और यहाँ इसकी पेटी की चौड़ाई मात्र १००० (एक हजार) फीट है; किंतु दोनों किनारों के पाट की चौड़ाई बहुत ही विस्तृत है। इस भाग में वर्षा-कालीन बाढ़ की ऊँची सतह, अन्य दिनों की निचली सतह से, चालीस फीट की ऊँचाई तक चढ़ जाती है; किंतु सन् १९२७ ई० की बाढ़ में इसकी सतह ५६ फीट तक ऊँची उठ गई थी।

कोसी की भयानक उच्छृङ्खलता और उसका लोक-साहित्य :

कोसी का उद्‌गम-क्षेत्र समुद्र-सतह से १८ हजार फीट ऊँचा है, जबकि गंगा नदी के उद्‌गम-की ऊँचाई १०,३०० फीट और सिंधु की १६ हजार फीट। सप्त कौशिकी के हिमालयीय प्रवाह-क्षेत्र में १७०" इंच तक वर्षा होती है और अन्य नदियों की अपेक्षा हिम-सरोवर भी इसमें

अधिक जल-प्रस्रवण करते हैं। सप्त कौशिकी की प्रत्येक धारा दो पर्वतों की दरार से बहती है और अपने किनारों की बड़ी-बड़ी चट्टानों को धड़ाके के साथ निरंतर तोड़ती-उड़ाती रहती है। कोसी इन भीमकाय चट्टानों को अपने प्रबल प्रवाह के वेग में गेंद की तरह उछालती-लुढ़काती हुई बहाती तथा जलावर्त्तों में मरोड़ती-तोड़ती चलती है। शुद्ध मृत्तिका-क्षेत्र में आने के पहले यह उन चट्टानों को अपने गहरे गर्भ में तमाम भर देती है, जिससे नौ-संचालन में बड़ी ही कठिनाई होती है! चट्टानों के अवरोध के कारण जल-प्रवाह का वेग बड़ा ही तीव्र हो जाता है और भयानक शोर मचाते हुए उमड़ता चलता है। वर्षा ऋतु में इसकी प्रवाह-गति प्रति घंटा १६ मील होती है; किंतु अन्य दिनों में रिक्शे की साधारण रफ्तार की तरह प्रति घंटा तीन मील। अपने गर्भ में आगत चट्टानों को कोसी का प्रवाह-वेग अहर्निश तोड़ता चलता है और उन्हें रगड़-रगड़कर मोतीचूर के सूखे लड्डू की तरह झाड़कर अपने समतल प्रवाह-क्षेत्र की ओर ठेलता रहता है। यही बालुका-राशि और हिमालय-भाग की मृत्तिका बिहार प्रदेश के पूर्णिया और सहरसा जिलों में आती है, जिससे कोसी के समतल भूमिवाले मुहाने ऊँचे हो जाते हैं। इस समतल भूमि-भाग में कोसी अपने जिस प्रवाह-मार्ग से बहती है, उस प्रवाह का मुहाना कुछ ही वर्षों में ऊँचा हो जाता है और तब कोसी अपना दूसरा धारा-मार्ग बना लेती है। चूँकि कोसी के धारा-मार्ग में विशाल जल-भांडार बहता है, अतः इसकी समतल-भूमि भाग की मुख्य धारा जब पूरे जल-भांडार को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती है, तब कोसी अपने कई धारा-मार्गों से जल का निकास करने लगती है। इस प्रकार, अपने अनेक प्रवाह-मार्गों के कारण कोसी **सहस्र धारा** नदी कहलाती है, जो अनेक धाराओं के होने का प्रतीकात्मक नाम है। यह पहले कहा गया है कि पूर्णिया जिले की आधे भाग से अधिक की भूमि और संपूर्ण सहरसा जिले की एक-एक इंच भूमि ऐसी है, जिससे होकर कोसी की धाराएँ अबाध गति से प्रवाहित होती थी। इस प्रकार, यह पश्चिम से पूरब की ओर और पूरब से पश्चिम की ओर लगभग १४० मील की चौड़ी भूमि में, स्वैरिणी बनकर विचरण करती रहती थी।

कोसी की प्रतीकात्मक 'सहस्रधारा' की रूप-रेखा पर जब हम भली-भाँति दृष्टिपात करते हैं, तब सप्तकौशिकी की आकृति हमारे दृष्टिपथ के समक्ष एक हृष्ट-पुष्ट झबरे वृषभ के रूप में उतर आती है। इस वृषभ-आकृति में अरुण-कोसी का उद्गम-भाग गोमुख-सा दिखाई पड़ता है और इंद्रावती की लटकती धारा वृषभ के गले की लटकती 'लोर'-सी लगती है। फिर, 'अरुण-कोसी' का उत्तरी एवं ऊपरी प्रवाह, जो 'फूङ छू' नाम से पश्चिम से पूर्व की ओर जाता है, इस गवाकृति की रीढ़-सा तना हुआ प्रतीत होता है। इसके उद्गम-भाग में जो जुगल पर्वत और गौरी शंकर पर्वत खड़े हैं, वे इस वृषभ के दो नुकीले सींग जैसे लगते हैं। इनके पूर्व में सागरमाथा (एवरेस्ट शिखर) इस वृषभ का 'ककुद'-सा बना हुआ है। इसी प्रकार, सुन कोसी का प्रवाह एवं अरुण-कोसी का उत्तर से दक्षिण दिशा में आनेवाला प्रवाह—दोनों इस वृषभ की इड़ा और पिंगला नाम की नाड़ियाँ हैं, जिनमें मिलनेवाली अनेक हिम-सरिताएँ रक्त-संचारिणी शिराएँ-सी जुड़ी हुई हैं। पुनः पूर्व भाग का 'तमोर कोसी' अपने उद्गम-स्थान

से त्रिवेणी-संगम के नीचे 'चतरा' तक, लंबित भाव से प्रवाहित होने के कारण, इस वृषभ की लटकती पूँछ-सी दिखती है और इसके नीचे पूर्णिया तथा सहरसा जिलों में विखर कर वहने-वाली कोसी की अनेक धाराएँ उस वृषभ पुच्छ के चँवर-सी प्रतीत होती हैं। कोसी की तराई-भाग से वहनेवाली कमला, वलान; भुतही वलान और त्रियुगा—ये चार नदियाँ इस वृषभाकृति के चारों पैर वने हुए हैं। इसी प्रकार की कल्पना करके ऋग्वेद (४।५८।३) ने अग्नि अथवा वाग्देवी के संबंध में कहा है :

चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥

किंतु, सहरसा और पूर्णिया जिलों में वहनेवाली जिन कोसी-धाराओं को मैंने पुच्छ-गुच्छ कहा है, उसको लेकर सहरसा जिले के एक लोकगीत में कोसी के इस प्राकृतिक रूप को काव्य-कल्पित एक नारी के रूप में गाया गया है और इसे सजी-सँवरी तरुणी कहा गया है। निश्चय ही, इस लोकगीत में कवि ने कोसी के भौगोलिक रूप को एक षोडशी के रूप में देखा है और उसे व्यंजना से उच्छलित एवं भावातिरेक से युक्त उत्तम काव्यात्मक वाणी के द्वारा व्यक्त किया है। लोकगीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

मुठी एक डँड़वा गे कोसिका अलपा गे बयसवा
गे भुइयाँ लोटै नामी-नामी केश
कोसी माय लोटै छौ गे केश ॥
केशवा सम्हारि कोसी जुड़वा गे बन्हाओल
कोसी गे खोपवा बन्हाओल
ओहि खोपवा कुहुकै मजूर ।
उतरहि राज से एलैं हे रैया रनपाल
से कोसी के देखि-देखि सूरति निहारै
सूरति देखि धीरज नै रहै धीर ॥
किये तोरा कोसिका चेका पर गढ़लक
किये जे रूपा गढ़लक सोनार ॥
नै हो रनपाल मोहि चेका पर गढ़लक
नै रूपा गढ़लक सोनार
अम्मा कोखिया हो रनपाल हमरो जनम भेल
सूरति देलक भगवान
गाओल सेवक जन दुहु कर जोरि
गरुआक वेरि होउ न सहाय, गे कोसी मैया
होउ न सहाय ॥

इस लोकगीत में कोसी को एक अपरिणत यौवना के रूप में देखा गया है और उसकी कटि (त्रिवेणी-संगम से चतरा तक की धारा) को मुष्टिमेय बतलाया गया है। सहरसा और

पूर्णिया जिले में बिखरी उसकी धाराओं को जमीन पर लोटते हुए खुले केश-कलाप की तरह कवि की दृष्टि देखती है और उन धाराओं को गंगा-संगम के पहले (कुरसेला के पास) पुनः एकीभूत रूप में बँधी-सजी देखकर कवि की कल्पना ने उन्हें कुन्तलवती कोसी नायिका के सुंदर जूड़े से उपमित किया है और, उस जूड़े की सघन काली घटाओं में मयूर को कुहकते पाया है। कोसी के ऐसे रूप पर उत्तर दिशा से आनेवाला राजा (रैया) रणपाल मोहित हो उठता है और वह कोसी से पूछता है कि क्या तुम्हें किसी ने कुम्हार के चाक पर गढ़ा है अथवा तुम्हारा रूप चाँदी पिघलाकर किसी सोनार ने ढाला है। वस्तुतः कोसी की बँधी हुई धाराओं की आकृति चाक की तरह है और उसके प्रवाह-चक्र में चाक के भ्रमण की तीव्रता भी है तथा उसके बालू-कणों में चाँदी की चमक भी। फलतः रणपाल राजा कोसी के रूप पर मोहित है। इस प्रश्न का उत्तर कवि सहज शीलवती कुलीन कन्या जैसी कोसी से दिलवाता है—न तो मुझे किसी कुम्हार ने चाक पर गढ़ा है, न ही किसी सोनार ने चाँदी से बनाया है। मैं तो अपनी माँ की कोख से जनमी हूँ और भगवान् ने ही मुझे ऐसी सूरत भी दी है। कवि ऐसी कोसी देवी से गाढ़े समय पर सहाय होने की याचना करता है। इस लोकगीत में भावुक कवि ने अपने साहित्यिक वाग्वैदग्ध्य द्वारा कोसी के प्राकृतिक और भौगोलिक रूप का अद्‌भुत सामंजस्य उपस्थित किया है।

सहरसा और पूर्णिया की भूमि में कोसी के अनेक धाराओं में बँटने का कारण एकमात्र यही है कि कोसी समतल भूमि में आने पर अपने मुख्य प्रवाह के मुहाने पर बेशुमार बालू और मिट्टी भर देती थी, जिससे एक धारा-मार्ग में उसका जल-भांडार अँट नहीं पाता था। इसमें अक्सर लगभग १५ जुलाई के आस-पास ही बाढ़ आ जाती है, जिससे समतल भाग में यह अपनी अनेक धाराओं से प्रलयकालीन जलाप्लावन का दृश्य उपस्थित कर देती थी। भारदह और भीमनगर के मध्य में कोसी के बराज बनने के पहले कोसी के विशाल प्रवाह में कहीं गंगा की गंभीरता नहीं मिलती थी; बल्कि उसकी भयानकता और उच्छृंखलता से समस्त वातावरण में आतंक छा जाता था। कोसी के भयावने भँवर जब चक्कर काटते थे, तब नटराज शिव के तांडव नृत्य की घूर्णियों के विक्षुब्ध स्वर-जैसे उसके हाहाकारी निनाद से दिशाएँ बहरी-सी हो जाती थीं। इसका प्रबल प्रवाह-वेग पर्वतीय प्रदेश के भीमकाय सागवान और सखुए के वृक्षों को एरंड-द्रुम की तरह मरोड़कर अपनी लहरों पर उछालते-डुबोते-बहाते हुए लाता था। इसकी भयंकर बाढ़ की चपेट में पड़कर गाय-भैंसों का झुंड, जंगली जानवर, छप्पर और छप्परों पर बैठे स्त्री-पुरुष बहते नजर आते थे और उनकी 'त्राहि-त्राहि' की पुकार से हृदय काँपने और फटने लगता था। कोसी की भयानक बाढ़ का पानी बड़े-बड़े भँवरों में उबाल खाता समुद्री तूफान की तरह 'होंय-होंय' डकरता देखते-ही-देखते चारों तरफ फैलने लगता था और लोगों को सँभलते-सँभलते गाँवों को घेर लेता था। इसकी कुछ घूर्णियाँ तो नाभि-मंडल की तरह छोटी और सुंदर होती थीं; किंतु कुछ तो पर्वत-कंदरा एवं बड़े मुँहवाले कुँए की तरह गहरी और भयानक। इसकी ऐसी ही भ्रमरियों के मुँह में पड़कर बड़ी-सी-बड़ी नौकाएँ एक ही चक्कर में पाताल-प्रविष्ट हो जाती थीं। सन् १९४९ ई० में त्रिवेणी-संगम

पर "केंद्रीय जलशक्ति सिंचाई और नौ-संचालन कमीशन" की एक नौका कोसी के ऐसे ही भँवर में फँसकर नष्ट हो गई थी। नौका के साथ-साथ कमीशन के सोलह कर्मचारियों को भी भँवर निगल गया था। जल-समाधिस्थ होनेवालों में उक्त संस्था के मुख्य सर्वे-अधिकारी 'मनोहर मेहदी रत्ता' भी थे।

कोसी सिर्फ मिट्टी और बालू का भरना ही नहीं भरती थी; बल्कि यह अपनी तीक्ष्ण धार से जमीन का कल्पनातीत कटाव भी करती थी। कहीं-कहीं कटाव-कुंडों की गहराई तो ६० फीट से ७० फीट तक की होती थी। इसकी बरसाती बाढ़ में घड़ियालों, बोचों, गोहों और नादनुमा कछुओं को तो बारात ही उतर आती थी। जब कभी ये जलचर पानी से बाहर पुलिनों पर कतार में सोते हुए दिखाई पड़ते, तब देखनेवालों की भीड़ लग जाती थी। इस प्रकार, कोसी नदी भारदह में बराज तथा तटबंधों के बनने के पहले अपनी भयानक बाढ़ से सहरसा और पूर्णिया जिले के गाँवों को उजाड़ कर, उपजाऊ जमीन में भयावना गढ़ा खोदकर और कहीं उनमें टनों बालू के टीले लगाकर, खाद्यान्नों को सड़ाकर, कृषियोग्य भूमि में काश, कुश, पटेर तथा झाऊ के सघन जंगल उगाकर और मलेरिया फैलाकर इस भू-भाग को रौरव नरक में परिणत कर देती थी।

कोसी के द्वारा किये गये 'कटाव' को 'धसना' तथा मिट्टी-बालू के भराव को 'भरना' कहा जाता है। यह पहले कहा गया है कि 'कोसी' जब मिट्टी-बालू का 'भरना' भरती थी, तब लाखों टन का भरना मीलों तक की उर्वरा भूमि में फैला देती थी। कभी-कभी भरने का विस्तार २० मीलों तक में फैल जाता था और इतने क्षेत्र में यह औसतन ३ करोड़ ७० लाख टन बालू का भरना भर देती थी। ऐसे भरनों की ऊँचाई का अनुमान आप इसी से कर सकते हैं कि 'निपनिया' गाँव की नील-कोठी की ऊँची चिमनी चार ही वर्षों के भरने से, अपने शीर्ष भाग तक, ढक गई थी। इसके 'धसना' के संबंध में तो एक मनोरंजक और प्रतीकात्मक कहानी का गीत ही सहरसा जिले में गाया जाता है गीत में कोसी को अविवाहिता कन्या कहा गया है, जिसका प्रेमी 'रानू' नामक बलाढ्य पुरुष है। रानू भैंसे के समान मस्त, बलिष्ठ और एकसुरा मर्द है। उसका शरीर वज्र के समान कठोर है और उसकी मूँछें बँहगी की तरह लंबी और लचकदार हैं। वह सनसनाता हुआ आता है और कोसी से कहता है कि जब तुम मुझे भी डुबोना चाहती हो, तब मैं ऐसी कुदाल लाऊँगा, जिसका वजन ८० मन है और उसके बेंट का वजन ८२ मन। ऐसी ही कुदाल से मैं तुम्हारे आगे-आगे 'धसना' काटता चलूँगा। गीत की पंक्तियाँ देखिए :

भैंसा सनक मनुसवा गे बहिनो
बजर सन गात हे।
मोंछ रानू बँहिगा, सनसन आवे हे।
जब तूँ आहे कोसिका हमरो डुबइबे
आनब हम अस्सी मन कोदारि।

अस्सी मन कोदरिया हे रानो, बेरासी मन बेंट
आगू-आगू धसना धसाय ।।

कोसी-क्षेत्र के बूढ़े-पुराने लोगों का ऐसा ख्याल था कि कोसी इतना गहरा जो कटाव करती थी, वह कोई ऐसा ही पुरुष करता था, जिसका शरीर वज्र का बना था, आकृति भैंसे की थी और वह बाँस-जैसी लंबी मूँछों वाला था। यह कटान साधारण कुदाल से भी नहीं काटा जा सकता था। यह ऐसे कुदाल से ही कटता था, जिसमें बेरासी मन का बेंट लगा होता था और कुदाल अस्सी मन का रहता था। ऐसे ही कुदाल के कारण कोसी का धँसना ७० फुट तक गहरा होता था और रातों-रात २०-२० मील दूर तक जाकर यह अपने प्रवाह के लिए मार्ग खोद लेती थी। कोसी का प्रेमी रानू पृथ्वी की बड़ी-बड़ी चट्टानों को, अत्यंत गहराई से काटता था, जिससे ऊपर की जमीन भहरा-भहरा कर स्वयं धँसती जाती थी। यही कारण था कि सन् १९२७ ई० की बाढ़ के समय पूर्णिया जिले के 'जानकी नगर' में जब रानू बेरासी मन के बेंट-लगे अस्सी मन के कुदाल से जमीन काटने लगा, तब दिन के चार बजते-बजते ही महंथ 'वामन दास' का बावनहत्था मंदिर लोगों के देखते-ही-देखते पाताल में धँसकर लापता हो गया था। रानू के भयंकर कुदाल के प्रहार के समय बड़े जोरों का धड़ाका हुआ था। हवाएँ बंद हो गई थीं, तमाम अंधकार छा गया था और सारी पृथ्वी मानों भय से काँपने लगी थी।[1] उस वर्ष की बाढ़ ने सात लाख घन क्युबिक फुट जल का निस्सारण प्रति सेकेंड किया था।

उपर्युक्त गीत का एक दूसरा रूप भी लोक में प्रचलित है, जिसे सहरसा जिले की स्त्रियाँ गाती हैं। निम्नांकित लोकगीत में भी रानू की ही बात है, जो अस्सी मन के कुदाल से धँसना काटता है। किंतु, इस गीत से ऐसा लगता है कि रानू ने जो धँसना काटा, वह कोसी को नियंत्रित करने के लिए अथवा उसकी धारा को दूसरी ओर भेजने के लिए; क्योंकि रानू वीर पुरुष था और कोसी उसके सुखी दाम्पत्य जीवन के आनंद में खलल डालने वाली थी। यह लोक-गीत इस प्रकार है :

रातिए जे एलै रानू गउना करैले
कोहबर घर में सूतल नीचीत।
जकरो दुअरिया हे रानो कोसी बहे धार
से हो कैसे सुतै हे नीचीत।
सीरमा बैसल हे रानो कोसिका जगावै
सूतल रानो उठल चेहाय।।
कांख लेल धोतिया हे रानो मुख दतमनि
माय तोरा हँटौ हे रानो बाप तोरा बरजौ
जनु जाहु कोसी असनान।।
हँटलौ ने माने रानो दबलौ ने मानै

१. कोसी (श्रीललितेश्वर मल्लिक), पृ० ४९-५०।

चल गेलै कोसी असनान ।।
एक डूब लेल हे कोसी दुइ डूब लेल, तीन डूब गेल भसियाय ।।
जब तू आहे कोसिका हमरो डुबइबे, आनब हम अस्सी मन कोदारि ।।
अस्सी मन कोदरिया हे रानो वेरासी मन बेंट, आगू-आगू धसना धसाय ।।

इस गीत में कहा गया है कि रानू गौना कराकर अपनो पत्नी को लाया था और वह उसके साथ आनंदपूर्वक कोहवर-घर में सोया था । उसी रात उसके द्वार पर कोसी की बाढ़ आई, जिससे वह निश्चिंतपूर्वक सो न सका । उसके सिरहाने में ही कोसी हाहाकार मचाने लगी थी । वह अकचका कर शीघ्र जग गया और काँख तले धोती और मुँह में दँतवन लेकर कोसी में स्नान करने चला । कोसी की भयंकर बाढ़ देखकर उसके माता-पिता ने उसे मना किया और जाने से रोका; किंतु रानू ने किसी की नहीं सुनी । उसने कोसी में एक डुबकी लगाई, फिर दूसरी डुबकी; पर तीसरी डुबकी लगाते ही कोसी उसे बहाकर ले चली । इस पर रानू ने कहा—हे कोसी, जब तू मुझे भी डुबोने चली है, तब मैं अब अस्सी मन का कुदाल लाऊँगा, जिसमें वेरासी मन का बेंट लगा होगा और उसी कुदाल से तुम्हारे आगे-आगे पृथ्वी को खोदता चलूँगा ।

उपर्युक्त गीत से तो यही भान होता है कि रानू कोसी पर बिगड़ कर उसे दूर ले जाने के लिए जमीन काटता था । कोसी का कटाव इतना तीव्र था कि यह पूर्व दिशा में 'काली कोसी' के आगे 'सउरा' नदी की धार से पूर्णिया नगर के पूर्व से ही 'कटिहार' जाती थी और 'पनार' नदी को लपेटती हुई 'महानंदा' को भी दबोचती थी तथा इस प्रकार पश्चिम बंगाल के बोगरा जिले तक पहुँचकर 'ब्रह्मपुत्र' के निचले काँठे में संगम करती थी । इसी प्रकार, पश्चिम में 'त्रियुगा' को आत्मसात् करती हुई दरभंगा जिले के कुशेश्वर स्थान में आकर कमला-धार को ग्रहण करती थी, तथा 'घघरी' के प्रवाह से मिलकर बहती थी और आज तो यही इसका मुख्य प्रवाह है । इस प्रकार, इसके उपद्रव का क्षेत्र लगभग एक सौ चालीस मील में फैला हुआ था, जिसमें परम उच्छृंखल बनकर कोसी मनमाना आतंक मचाती हुई विचरण करती फिरती थी । कोसी के ऐसे ही उपद्रव से बचने के लिए एक बार तट-बंध बनाया गया था, जो कोसी के इतिहास में 'वीर-बाँध' के नाम से ख्यात है ।

कोसी का प्राचीन तट-बंध—वीर बाँध

यह 'वीर बाँध' तटबंध नेपाल के 'वेल्का' पहाड़ी श्रृंखला के फतेहपुर से ही आरंभ होता था और कोसी के आधुनिक पूर्वी तटबंध की ओर से होता हुआ सुपौल-अनुमंडल के पश्चिमी सीमा तक आता था । कुछ प्राचीन लोगों का तो कहना था कि यह तट-बंध गंगातट तक जाता था । इतिहास बतलाता है कि यह 'वीर बाँध' बीस से तीस फीट तक ऊँचा था और अस्सी से सौ फीट तक चौड़ा बना था तथा इसकी लंबाई पचास मील थी । किंतु, इस तटबंध की सबसे खराबी यह थी कि यह कोसी के दाहिने किनारे ही अर्थात् तत्कालीन कोसी-धारा के पश्चिमी तट-भाग में ही बना था । इससे कोसी पूरबी भाग में खुलकर स्वेच्छाचारिता करने लगी थी । इस बाँध के भग्न चिह्न अभी हाल तक यत्र-तत्र दीख पड़ते थे; पर अब बिलकुल लुप्त हो गए हैं ।

इसके मानी है कि यह तटबंध दरभंगा जिले तथा सहरसा जिले के पश्चिमी भाग के कुछ अंशों, अर्थात् तिरहुत, की रक्षा के लिए ही केवल बनाया गया था।

वीर बाँध के संबंध में ऐतिहासिकों का कहना है कि १२ वीं शती में गौड़ के शासक द्वितीय लक्ष्मण सेन ने इसे बँधवाया था। किंतु, मैं इससे भिन्न विचार रखता हूँ! मेरे विचार से यह तटबंध मिथिला के शासक हरिसिंह देव के मंत्री वीरेश्वर ने, मिथिला राज्य की भूमि को कोसी के उत्पात से बचाने के लिए, बँधवाया था। इसीलिए, इस बाँध का नाम 'वीर बाँध' पड़ा था। हरिसिंह देव का शासन सन् १२९५ ई० में आरंभ हुआ था, अतः इसके बाद ही यह तटबंध बँधा होगा। हरिसिंह देव के राज्य की पूर्वी सीमा यही 'कोसी' नदी थी, जिसके पूरब में गौड़ के शासक नासीरुद्दीन बुगड़ा का शासन था। हरिसिंह देव के पूर्वजों के समय से ही नेपाल का तराई-भाग भी उनके राज्य में था, जिसका प्रमाण सप्तरी जिले के 'सखरा' गाँव में स्थित छिन्नमस्ता शक्रेश्वरी देवी की मूर्त्ति है। शक्रेश्वरी छिन्नमस्ता की स्थापना हरिसिंह देव के पिता शक्रसिंह ने की थी; अतः 'वीर बाँध' का आरंभ भी नेपाल की भूमि से हुआ था। वीरेश्वर के भाई चण्डेश्वर ने तो किरातों को जीत कर नेपाल की ओर भी अधिक भूमि मिथिला में मिला ली थी।[1] यदि वीर बाँध को गौड़ के शासकों में से कोई बनवाता, तो यह तट-बंध कोसी के पूर्वी किनारे में बना होता, अतः इसका संबंध मिथिला के शासकों से ही था। यही कारण था कि कोसी नदी १२ वीं शती के पश्चात् निर्द्वन्द्व होकर पूर्व की ओर बढ़ती गई और १६ वीं शती में तो यह अपने अग्नि कोण के निचले भाग में कालिंदी नदी की बार से बहती हुई 'पद्मा' में मिलने लगी थी। इसके पश्चात् कोसी १६ वीं शती में ही पश्चिम की ओर हटने लगी थी और १९६३ ई० तक पश्चिम की ओर ही हटती आई है। यद्यपि आज वीर बाँध के अवशेष चिह्न आधुनिक कोसी के पूर्वी तट-बंध के पास है, तथापि यह तट-बंध पश्चिमी किनारे था और कोसी इसके पूर्व से बहती थी।

सहरसा और पूर्णिया जिलों में इस वीर-बाँध के संबंध में एक दंतकथा भी प्रसिद्ध है। दंतकथा के अनुसार 'कोसी' कुँआरी नदी है, जो नेपाल की सुषमा-भरी वनस्थली में क्रीड़ा करती फिरती थी। एक दिन जब प्रकृति प्रफुल्ल थी, तब इसके रूप-लावण्य तथा मदमाते अल्हड़पन को देखकर एक राक्षस मोहित हो उठा। कोसी के समक्ष उपस्थित होकर उसने परिणय की याचना की। पहले तो कोसी भयभीत हो गई, पर तुरत उसने मुस्कराते हुए कहा—"मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मेरे किनारे में गंगा तक एक ही रात में बाँध बना देगा, उसी की मैं परिणीता बनूँगी।" राक्षस ने कोसी की शर्त्त मान ली और वह बाँध बाँधने में लग गया। इधर कोसी ने देखा कि सचमुच राक्षस एक ही रात में बाँध का काम पूरा कर लगा, तो वह घबराई। उसने शंकर का आवाहन किया और अपने बचाव के लिए प्रार्थना की। शंकर भगवान् कोसी को आश्वस्त करके और मुर्गा बनकर आधी रात में ही बाँग लगाने लगे। मुर्गे की आवाज सुनकर राक्षस ने समझा कि अब तो भोर हो गया और मैं प्रतिज्ञा पूरी न कर सका। अतः, वह अधूरा बाँध छोड़कर नेपाल के पहाड़ों में भाग गया।

---

१. नेपाले विजिते बलेन सुतरां भीतात्मभि र्भूभिपै :—कृत्यरत्नाकर, श्लो० १३।

इस दंत-कथा में भी कुछ ऐतिहासिक तथ्य निहित है। ३० फुट ऊँचा, १०० फुट चौड़ा तथा ५० मील लंबा बाँध बाँधने वाला पुरुष निश्चय ही राक्षस का पराक्रम रखता होगा। कोसी-जैसी उच्छृंखल नदी को बाँध में कसना क्या था, उसे परिणीता की तरह आज्ञा-कारिणी बनाना था। हरिसिंह मुस्लिम शासकों से हार कर नेपाल में भाग गये, तो उनके मंत्री वीरेश्वर भी निश्चय ही उनके साथ भागे। अतः, बाँध भी अधूरा ही रह गया। मेरा ख्याल है कि उपर्युक्त दंतकथा में हरिसिंह देव और उनके मंत्रो वीरेश्वर की ऐतिहासिकता का ही पुट सन्निहित है। इस प्रकार, कोसी के भयानक उपद्रव से बचने के लिए और वीर बाँध की प्रेरणा से भारत सरकार ने निश्चय किया कि कोसी में बराज बनाया जा सकता है और इसके दोनों किनारों में तट-बंध लगाकर इसकी उच्छृंखलता को रोका जा सकता है। साथ ही, इस बराज से नहरें निकालकर खेतों की सिंचाई भी हो सकती है तथा बिजली का उत्पादन भी किया जा सकता है।

कोसी के नियंत्रण की भूमिका :

बिहार के सहरसा, उत्तरी मुंगेर, उत्तरी भागलपुर तथा पूर्णिया जिलों में कोसी का उपद्रव-क्षेत्र १४० मीलों में विस्तृत था, जिससे लाखों लोग तबाह-बरबाद होते थे और प्रति वर्ष करोड़ों की संपत्ति नष्ट हो जाती थी। इसलिए, बिहार-सरकार और केंद्रीय सरकार—दोनों चिंतित थीं कि 'कोसी' के भयानक उपद्रवों से लोगों की रक्षा किस प्रकार की जाय। कोसी के उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्र के लाखों लोगों की दयनीय स्थिति देखकर भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ० राजेंद्र प्रसाद ने लोगों को राहत देने की योजना बनाई और उनके प्रयास से सन् १९३६ ई० से ही राहत-कार्य चलने लगा था। किंतु, यह राहत-कार्य दाल में नमक बराबर था, जिससे कोई कारगर लाभ नहीं हो रहा था! लोगों के निरंतर निवेदन और शोर-गुल मचाते रहने के कारण सन् १९४५ ई० में तत्कालीन भारतीय वायसराय 'लॉर्ड वेवल' ने हवाई जहाज से कोसी के बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण किया था, और सन् १९४६ ई० में 'भूगर्भ सर्वेक्षण-विभाग' तथा 'केंद्रीय जलशक्ति, सिंचाई एवं नौसंचालन-कमीशन' नामक दो संस्थाओं के जिम्मे भार दिया था कि कोसी के भयंकर उत्पात को नियंत्रित करने के संबंध में अपनी रिपोर्ट दें। इन दोनों संस्थाओं के अधिकारियों और कर्मचारियों ने नेपाल के काठमांडो से दार्जिलिंग तक तथा उत्तर में कोसी के प्रवाह के प्रत्येक उद्गम-स्थान की ओर १९ हजार फुट की ऊँचाई तक एवं दक्षिण में वीरपुर तक की भूमि का निरीक्षण-परीक्षण किया था। इन लोगों ने कोसी के नियंत्रण के लिए जो सुझाव दिये और योजना तैयार की, उसके अनुसार त्रिवेणी-क्षेत्र और वराह-क्षेत्र के मध्य में बराज बनाने का सुझाव था। इस योजना के अनुसार, चतरा-द्रोणी में ७५० फीट ऊँचा कंकरीट का पक्का बाँध बाँधना था, जिससे १·०६ करोड़ एकड़ फुट जल-राशि इसकी झील में एकत्र रहती। यह समुद्राकार झील पूरी तरह नेपाल की भूमि में बनती, जिसका क्षेत्रफल लगभग ७० वर्गमील में विस्तृत होता। यह रिपोर्ट 'केंद्रीय जलशक्ति, सिंचाई एवं नौ-संचालन कमीशन' के अध्यक्ष रायबहादुर ए० एन० खोसला साहब की थी। इसी समय १५ अगस्त, १९४७ ई० को संपूर्ण भारत अँगरेज़ों के चंगुल से निकलकर स्वतंत्र

हो गया, जिससे अनेक अन्यान्य योजनाओं को व्यवस्थित करने में भारतीय सरकार व्यस्त हो गई और कोसी-योजना का कार्य अवरुद्ध हो गया।

किंतु, कोसी का उपद्रव तो पूर्व रीति से ही प्रति वर्ष जारी रहा और सहरसा ज़िला उसी रौरव नरक में डूबता-उतराता रहा तथा लोगों की त्राहि-त्राहि की पुकार मचती रही। फलतः, सन् १९४९ ई० के २८ दिसंबर को विहार-प्रदेश के तात्कालिक राज्यपाल एम्० एस्० अणे जब चतरा गये, तव उन्हें एक दूसरी रिपोर्ट दी गई, जिसमें खोसला-योजना की खूवियाँ और खरावियाँ दिखलाई गई थीं। इसमें कहा गया था कि यदि त्रिवेणी और वराह-क्षेत्र के बीच पक्का वाँध लगाया गया, तो उसके निर्माण में २० वर्षों का समय लगेगा। इस वाँध की सुरक्षा के लिए 'सुन कोसी' में भी एक पक्का वाँध वनाना होगा और वहाँ भी एक झील का निर्माण करना होगा। इसके अतिरिक्त, वराह-क्षेत्र भूकंप का सघन क्षेत्र है, अतः वाँध के टूटने और फटने का भारी खतरा है। यदि वाँध टूटा, तो संपूर्ण पूर्णिया जिला २० फीट ऊँचे जल-प्लावन द्वारा वरवाद हो जायेगा। किंतु, इस सारी खामियों के वावजूद यदि वाँध तैयार हो जायेगा, तो यह संसार की अभियंत्रणा-कला के क्षेत्र में एक अद्भुत और वेमिसाल रचना होगा। वाँध की ऊँचाई दिल्ली के कुतुवमीनार की ऊँचाई की तिगुनी होगी। इसका ऊपरी तल २००० फीट लंवा होगा और इसकी नींव की चौड़ाई जमीन पर ८५० फीट की होगी। इस बाँध की झील के पानी का जमाव सुन कोसी के क्षेत्र में ६१ मील तक, अरुण कोसी के क्षेत्र में ४२ मील तक और तमोर कोसी के क्षेत्र में २० मील तक फैला रहेगा। पूरे झील-तटों की लंवाई ४२० मील की होगी और इसमें ६९ लाख एकड़-फुट पानी भरा रहेगा। इसके निर्माण में ९० लाख घन गज कंकरीट व्यवहृत होगी, जिससे दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक १२ फुट चौड़ी कंकरीटवाली सड़क वनाई जा सकेगी। इसमें जो सीमेंट का व्यवहार होगा, उसे ढोने के लिए पूर्वोत्तर रेलवे के १३० डब्वे यदि प्रतिदिन लगातार और वर्षों तक ढुलाई करेंगे, तक काम पूरा हो सकेगा। वाँध की नींव देने के लिए ५० लाख घन गज मिट्टी और पत्थर जमीन के भीतर से निकालने पड़ेंगे। वाँध के पानी को वहाने के लिए चार सुरंगें वनानी होंगी, जिनमें से प्रत्येक का द्वार ६० फीट व्यास का होगा तथा प्रत्येक सुरंग की लंवाई ३००० फीट होगी। बाँध, विजली और नहरों पर होनेवाला व्यय १७० करोड़ रुपयों में पूरा हो सकेगा।

उपर्युक्त व्यय-भार को वहन करना तथा इतना अधिक समय लगाना सरकार ने उचित नहीं समझा। इसी वीच सन् १९५१ ई० के जुलाई के आखिरी सप्ताह में कोसी की प्रलयंकारी वाढ़ जब संपूर्ण सहरसा जिले का सर्वनाश कर रही थी, तव भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने स्वयं २० अगस्त को, वाढ़-ग्रस्त सहरसा क्षेत्र का हवाई जहाज से निरीक्षण किया और कोसी को चुनौती दी—"इस नन्हीं-सी कोसी की उच्छृंखलता अब बरदाश्त के बाहर हो गई है। इसका नियंत्रण और मानमर्दन करना अब आवश्यक है।" तुरत विशेषज्ञों ने निश्चय किया कि बराह-क्षेत्र में बाँध न बनाकर वेल्का पहाड़ी भाग से ही कोसी के दोनों ओर लंबे और ऊँचे मिट्टी के तटबंध लगाये जायँ तथा

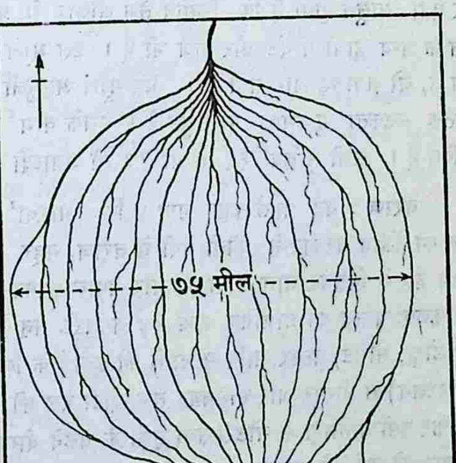
भीमनगर में कोसी का पक्का बाँध (बराज) बनाया जाय। प्रधान-मंत्री ने इस योजना के कार्यान्वयन की स्वीकृति सन् १९५३ ई० के दिसंबर महीने में दे दी। किंतु, बराज की मुख्य भूमि तथा पश्चिमी तटबंध के १५ किलो मीटर तक की एवं पूर्वी तट-बंध के चतरा तक की २५ किलो मीटर जमीन नेपाल की सीमा में थी, अतः नेपाल के महाराज की स्वीकृति भी आवश्यक थी। नेपाल के महाराज महेन्द्र ने इसकी स्वीकृति सन् १९५८ ई० के अप्रैल मास में दी। इस बराज की योजना के अनुसार नेपाल के सप्तरी और मोरंग जिलों की २.१२ लाख एकड़ भूमि की एवं सहरसा, पूर्णिया तथा दरभंगा जिलों की २४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई का और २० हजार किलोवाट बिजली प्राप्त करने का अनुमान लगाया गया था।

कोसी का बराज, नहरें तथा तट-बंध

कोसी नदी वराह क्षेत्र, कुसहा तथा चतरा स्थानों से होते हुए भारत तथा उसके बिहार-प्रदेश की सीमा पर सहरसा जिले के वीरपुर एवं भीमनगर स्थानों पर आती थी। चतरा के दक्षिण कोसी के दोनों तटों में वेल्का पहाड़ी की श्रृंखला है। पश्चिमी श्रृंखला के सटे उत्तर में 'तिलयुगा' नाम की एक नदी पश्चिम से पूरब को ओर आकर कोसी में गिरती है, जिसे बुकानन ने अपनी पूर्णिया-रिपोर्ट के नक्शे में अंकित किया है। बुकानन का कहना है कि कोसी चतरा के दक्षिण आकर पूर्व की ओर वहती हुई जाती थी और 'पनार' की धार से वहती थी। किंतु, बुकानन के समय कोसी वीरपुर के पूर्व से सीधे दक्षिण की ओर वहती थी। यह 'वीरपुर' भीमनगर से पूर्व की ओर चार मील दूर है। बुकानन (सन् १८०९-१० ई०) की यात्रा के पश्चात् इन्हीं दोनों स्थानों तथा इनके मध्य भाग से होकर, कोसी अपनी कई धाराओं के द्वारा सहरसा तथा पूर्णिया जिलों में वहने लगी थी। किंतु, उस समय भी इसकी कोई एक धारा मुख्य होती थी। अपने प्रवाहों के परिवर्त्तन करने में कोसी कितनी मनमानी करती थी, इसकी कुछ जानकारी इस बात से मिल सकती है कि सन् १७०४ से १७३५ ई० तक यह 'सउरा' नदी की धारा से मिलकर वहती थी, जो फार्विसगंज, रजोखर, गढ़वनैली, पूर्णिया और कटिहार होते वहती थी और मनियारी के पास **कोसी प्रसाद** नामक धारा से मिलकर गंगा से मिलती थी। फिर, यह सन् १७३७ ई० में सउरा-धार से पश्चिम हट गई और काली-कोसी की धारा से पूर्णिया होकर वहने लगी और मनिहारी से पश्चिम 'कोसी प्रसाद' के साथ गंगा से संगम करने लगी। सन् १७७० ई० में यह उससे भी पश्चिम की ओर खिसकी और 'लिबरी-धार से मिलकर वहने लगी तथा सरसी, चंपावती, रंगपुरा और महम्मदनगर होते काढ़ागोला आकर गंगा से मिलने लगी। पुनः सन् १८०७ से १८३८ ई० तक यह लच्छा-धार से मिलकर वहती रही, जो धार कोस्कापुर, काला वलुआ एवं वमदाहा होते कुरसेला पहुँचती थी और यहीं गंगा से संगम करती थी। बुकानन जब पूर्णिया की सर्वे-रिपोर्ट तैयार कर रहा था, तब कोसी इसी लच्छा-धार से वह रही थी। इसके पश्चात् सन् १८४० से १८७३ ई० तक कोसी ने अपना मुख्य मार्ग 'हइया' नामक धार से वनाया था, जो डोमवना, नरपतगंज, सिरिसियाकलाँ, मानपुर, चाँदपुर भागा, रघुवंशनगर, चंदेली करमचंद, रेपुरा आदि स्थानों से होते कुरसेला एवं कटेसर पहुँच कर गंगा-संगम करती थी। इसी धारा का नाम बुकानन ने 'दाउस' लिखा है।

फिर, सन् १८७५ से १८९२ ई० तक यह 'कोसी' 'सुर-सर' नामक धार से बहने लगी और श्रीपुर, रामपुर, बढ़गाँव, अर्रा, मुरलीगंज एवं प्रतापगंज होकर कुरसेला के पास गंगा से संगम करने लगी थी। इसके बाद यह और पश्चिम में हटी और सन् १८९२ ई० में 'लोरम' धार से होकर बहने लगी और १९२१ ई० तक इसी धार से मिलकर बहती रही। किंतु, सन् १९२२ ई० से यह बेलती-चिलौनी-धार, परवाने धार एवं तिलाबह नामक धारों से बिखरकर बहने लगी थी। फिर, सन् १९३७ ई० से इसने अपना प्रवाह 'घेमुरा' नामक धार से बनाया और परसाही, नानपारा, भपटियाही, गढ़िया, सुपौल, नवहट्टा एवं 'बनगाँव' गाँवों से होकर बहने लगी थी। सन् १९५१ ई० में प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू जब कोसी के बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का हवाई-सर्वेक्षण कर रहे थे, तब कोसी का मुख्य प्रवाह यही था। उस समय कोसी नेपाल की सीमा से निकलकर 'भीमनगर' में ही बिहार की भूमि छू रही थी और वीरपुर से पश्चिम की ओर खिसक आई थी। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट पता चलता है कि लगभग प्रत्येक ३५ वर्षों पर कोसी अपने प्रवाह को, बालू-मिट्टी से भरकर, अवरुद्ध कर देती थी और इतने वर्षों के बाद प्रवाह-परिवर्तन कर देती थी। ऊपर में जिन धारों का उल्लेख किया गया है, वे सभी कोसी की ही धाराएँ हैं, जिनसे होकर ढाई-तीन सौ वर्ष पहले कोसी बहती थी और फिर जिन्हें छोड़कर पूर्व की ओर बढ़ गई थी।

इसके विभिन्न काल के प्रवाहों का स्वरूप इस पीपल के पत्तेवाले चित्र में देख सकते हैं। इसी का स्वरूप लोक-गीत में बिखरे केश-कलापों के जूड़ा बनाने का संकेत दिया गया है।



बिहार में कोसी की धाराओं का प्राचीन रूप

कोसी के इस स्वैरचारी स्वभाव को नियंत्रित करने के निमित्त अभियंताओं ने चतरा के पास बननेवाले बराज की योजना को जब अस्वीकृत कर दिया, तब भीमनगर के पश्चिम में, नेपाल के 'भारदा' नामक स्थान के सटे पूरब, नए बराज की योजना स्वीकृत की गई। इसी भारदा के पास उत्तर से दक्षिण की ओर बहती एक छोटी-सी घेमुरे नामक सरिता 'कोसी' से मिलती थी, जिसे बुकानन ने अपने नक्शे में दिखलाया है। यहीं से 'बैंती' नामक कोसी की

एक पुरानी धारा नैऋत्य कोण में बहती थी और सहरसा जिले के 'सिसवा' गाँव के पास त्रियुगा से संगम करती थी। उक्त 'भारदा' में, कोसी के तत्कालीन प्रवाह के दाहिने भाग में, बराज बनाने की योजना स्वीकृत हुई और निश्चय हुआ कि बराज के तैयार हो जाने पर कोसी का प्रवाह मोड़कर इसी बराज के विवर-द्वारों से बहा दिया जाएगा।

'भारदा' का वास्तविक नाम 'भारदह' है और यह नेपाल-राज्य का गाँव है। यह भीमनगर से पश्चिम पाँच मील दूर कोसी के दाहिने तटबंध के किनारे बसा है। यह निर्मली से २७ मील और कुनोली से १० मील पूर्वोत्तर कोण में है। यहाँ 'कंकालिनी' देवी की एक तेजस्विनी मूर्त्ति है, जिसके साथ गणेश, दक्षिण काली तथा विष्णु की प्रस्तर-मूर्तियाँ भी हैं। सभी मूर्त्तियाँ एक काल की बनी हैं और सब काले पत्थर की हैं। पुराना कंकालिनी-मंदिर कोसी के गर्भ में चला गया। मंदिर पर जब कोसी ने आक्रमण किया, तब गाँव वाले मूर्त्तियों को हटाकर एक पेड़ के नीचे ले आये। मैं जब १५ जुलाई, १९७२ ई० को इस मूर्त्ति के दर्शन करने गया, तब नया मंदिर बन रहा था। इस मंदिर में सिंहासन पर सबसे दाहिने गणेश की मूर्त्ति है, जो सर्वांगपूर्ण और मूषक-वाहन है। इसके वाम पार्श्व में 'कंकालिनी' देवी की प्रस्तर-प्रतिमा है, जो चतुर्भुजी है। प्रतिमा का पेट तराशा हुआ है, जिससे अँतड़ी-रहित मूर्त्ति साक्षात् कंकालिनी का बोध करा देती है। यों इसके दाहिने भाग के निचले हाथ की हथेली भी भग्न है और ऐसा मालूम होता है कि किसीने तेज औजार से प्रतिमा का यह अंग तराश लिया है। मूर्त्ति के अन्य हाथों में दंड और पाश भी है। इस मूर्त्ति के वाम पार्श्व में दक्षिण काली की मूर्त्ति है, जो शवारूढ़ और खड़ी है। यह मूर्त्ति अष्टभुजी है और लेलिहान जिह्वावाली तथा कटितक लटकता मुंडमाल पहने हुई है। इसके वाम भाग में विष्णु की एक छोटी मूर्त्ति स्थापित है। सभी मूर्त्तियाँ १२ वीं या १३ वीं शताब्दी की जान पड़ती हैं।

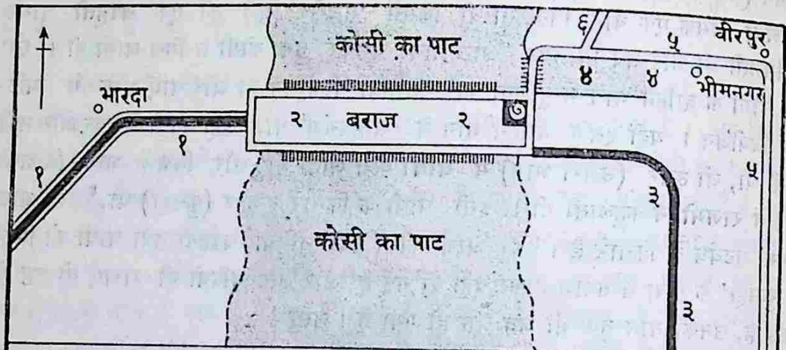
बराज : यह पहले कहा गया है कि 'भारदा' और 'भीमनगर' के मध्य भाग में भारत की केंद्रीय सरकार ने कोसी नदी में बराज, नहर तथा तटबंध बनाने की स्वीकृति सन् १९५३ ई० के दिसंबर मास में दी थी और नेपाल-सरकार ने सन् १९५४ ई० के अप्रैल मास में। फलतः बराज का प्राथमिक कार्य १४ जनवरी, सन् १९५५ ई० को आरंभ हुआ। सबसे पहले लोहा, सीमेंट, पत्थर आदि सामानों की ढुलाई के लिए 'बथनाहा' (पूर्णिया जिले का एक रेलवे स्टेशन) से वीरपुर और भीमनगर तक छोटी रेल की २७ मील लंबी पटरियाँ बिछाई गईं और फिर इसी बथनाहा से मोटरों तथा ट्रकों के चलने योग्य ७६ मील लंबी एक नई पक्की सड़क भी तैयार की गई, जो बलुआ, भवानीपुर, वीरपुर, भीमनगर, चतरा एवं धरान तक ले जाई गई। इस प्राथमिक कार्य के संपन्न हो जाने पर नेपाल के तत्कालीन महाराज स्वर्गीय महेन्द्र के हाथों से बराज की नींव ३० अप्रैल, १९५९ ई० को डाली गई और इस समारोह में भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री पं० नेहरू भी सम्मिलित हुए थे। बराज का कार्य लगभग चार वर्षों में पूरा हो गया और सन् १९६३ ई० के ३१ मार्च को कोसी की धारा मोड़कर बराज के विवर-द्वारों से बहा दी गई। किंतु, बराज के द्वारा कोसी-धारा के बहाने का विधिवत् उद्घाटन-समारोह तो पूरे दो वर्ष, २४ दिनों बाद, २४ अप्रैल १९६५ ई० को, नेपाल के महाराज

महेन्द्र के हाथों ही संपन्न हुआ। इस उद्घाटन-समारोह में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री भी उपस्थित थे। यहाँ इस बात की जानकारी आवश्यक है कि बुकानन के समय (सन् १८०६-१० ई० में) कोसी वीरपुर से होकर बहती थी, और इसकी दाहिनी ओर से **नलिया** नामक एक धारा निकलती थी, जिसमें 'सप्तरी' जिले की एक **बरहती** नामक नदी मिलती थी और तब 'नलिया' आठ मील चलकर पुनः कोसी से मिल जाती थी। उस समय कोसी के दाहिने भाग में पूर्णिया का 'डिभिया' डिवीजन था और बाएँ भाग में 'मटि-यारी' डिवीजन। यहीं इसके दाहिने भाग में 'साहबगंज' था, जहाँ कोसी में एक और नदी मिलती थी, जो ऊपर (उत्तरी भाग) में **घाघी** कही जाती थी और निचले भाग (दक्षिणी भाग) में **राजमोहन** कहलाती थी। इसी घाघी के किनारे कुशहर (कुसहा) था,[१] जो आज पश्चिमी तटबंध के किनारे है। किंतु आज 'कोसी नदी' नलिया, बरहती तथा घाघी को मिटा कर 'कुसहा' के पास से बराज होकर बहा दी गई है और उक्त नदियों की धाराएँ तो नष्ट हो ही गई हैं, उनका नाम तक भी अब लुप्त हो गया है। अस्तु !

केवल कोसी-बराज के निर्माण में संशोधित व्यय के अनुसार २३.६२ करोड़ रुपये लगे हैं। बराज के उत्तर तथा ऊपरी भाग में जो जलागार बन गया है, यह २३,८५८ स्क्वायर मील भूमि का पानी समेटता है और इसका विस्तार १६ वर्गमील में है। सन् १९५४ ई० में अत्यंत भयानक बाढ़ कोसी में आई थी, जिसका प्रतिक्षण जल-निस्राव ८,५५००० (आठ लाख पचपन हजार) घन फुट था। अतः, विशेषज्ञों ने बाढ़ के बहाव की विभीषिका के अधिकतम उग्र रूप का जो अंदाज लगाया है, तदनुसार जल-निस्सरण की गति प्रति सेकंड ९,५०००० (साढ़े नौ लाख) घन फुट है। अतः, प्रतिक्षण साढ़े नौ लाख घन फुट जल-निस्सरण के योग्य बराज में ५६ जल-द्वार बनाये गये हैं, जिनमें से ४६ का विवर ६०×२१ फीट के और १० का विवर-द्वार ६०×२६ फीट व्यास के हैं। बराज का सेतु ३,७७० फीट लंबा है। बराज से संबद्ध पूर्व में जो मिट्टी का बाँध बना है, वह ६,२१८ फीट लंबा है और पश्चिम में जो मिट्टी का बाँध है, उसकी लंबाई १२,२०० फीट है। पश्चिमवाले मृतिका-बाँध पर पक्की सड़क बनी है, जो भारदा के तट-बंध से बराज को जोड़ती है और पश्चिम से पूर्व की ओर बराज के ऊपर से होते भीमनगर तथा वीरपुर को जाती है। दोनों ओर के मृत्तिका-बाँधों के साथ बराज की लंबाई चार मील है। नदी के धरातल से बराज के ऊपर की पक्की सड़क की ऊँचाई २२५ फीट है। बराज की सड़क २२.६ फुट चौड़ी है, जिसमें एक ओर ४.९ फीट का पैदल चलनेवाला पक्का मार्ग भी सम्मिलित है। पूरे बाँध का शीर्ष-तल २६० फीट ऊँचा है; किंतु सेतु-मार्ग के ऊपर लोहे की जो शहतीरें लगाई गई हैं, उनकी ऊँचाई २९४ फीट है। बराज के पूर्वी छोर पर उसके सटे वह नियंत्रण-गृह बना है, जो बराज और नहर के जल-निःस्रवण का नियंत्रण करता है तथा निरंतर नदी-जल और नहर-जल का लेखा-जोखा रखता है। इस नियंत्रण-गृह के कटि-प्रदेश तक कोसी की धारा निरंतर टक्कर मारती रहती है, जिसके दो-मंजिले बरामदे पर खड़ा होकर जब हम उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाते हैं, तब लहराता समुद्र

१. देखिए—बुकानन का पूर्णिया-रिपोर्ट, पृ० १६।

आकाश से सटता दिखाई पड़ता है और उसी के क्षितिज में वेल्का-पर्वतमाला का खड़ा शिखर हमारे मन और आँखों को अपनी ओर वरवस खींचता है। बाईं ओर बराज से टकराती एवं



१. पश्चिमी तटबन्ध और सड़क
२. बराज
३. पूर्वी तटबन्ध
४. पूर्वी नहर
५. वीरपुर-सड़क
६. चतरा-सड़क
७. नियन्त्रण-कक्ष एवं कार्यालय

जल-द्वारों से निकलती हाहाकार करती तरंगें तथा सामने में नहर के विवर-मुखों से बाहर आकर मचलती-उछलती जल-धाराएँ वरुण देव के अमित एवं अपार ऐश्वर्य का प्रदर्शन करती हैं। इस नियंत्रण-गृह में कोसी तथा वराज-संवंधी जानकारी के कई मानचित्र टँगे हैं। मैं जब सन् १९७२ ई० की १५ जुलाई को पूर्वाह्‌ण १० बजे, यहाँ पहुँचा, तव उस समय वोर्ड पर अंकित था कि आज भोर के आठ वजे वराज के विवर-द्वारों से कोसी नदी प्रति सेकेंड ८४,४०० घन-फीट जल-निस्सरण कर रही है और पूर्वी मुख्य नहर प्रति सेकेंड ७,५०० घन-फीट जल निकाल रही है। इस वराज के वनाने में १.५१ लाख टन कोयले, ३.६१ लाख टन सीमेंट एवं ३७ हजार टन लोहा एवं इस्पात व्यवहृत किये गये हैं।

पूर्वी मुख्य नहर : सहरसा तथा पूर्णिया जिलों में बहनेवाली कोसी की पूर्वी नहर वराज के नियंत्रण-गृह के सटे दाहिनी ओर तथा उसके सामने से निकाली गई है। अर्थात् नियंत्रण-गृह वराज के पूर्वी छोर पर तथा नहर के निकास-द्वार के मध्य कोने में बना है। इन सबकी स्थिति ऊपरवाले रेखा-चित्र में देख सकते हैं।

कोसी की यह पूर्वी मुख्य नहर सात जल-विवर-द्वारों द्वारा बहाई गई है। इसका प्रत्येक विवर-द्वार ४० फीट चौड़ा है। यह नहर अपने उद्गम-स्थान पर ३६० फीट चौड़ी है; किंतु आगे इसकी धारा ४० फीट वाले जल-मार्ग से वहाई गई है। इस पूर्वी मुख्य नहर की लंबाई २७ मील है, जिसमें से पाँच वड़ी शाखा-नहरें निकाली गई हैं। फिर, इन पाँचों नहरों से छोटी-बड़ी बहुत-सी नहरें निकली हैं। यदि पूर्वी मुख्य नहर के साथ इनके द्वारा बहाई गई सभी नहरों की लंबाई नापी जाय, तो कुल मिलाकर १,८८८ मील लंबी होगी। मुख्य नहर के सातों जल-द्वारों की क्षमता प्रतिक्षण १७,२५० घन फीट जल निकालने की है। यह १८'३३

लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करने का सामर्थ्य रखती है। इन सारी नहरों पर सरकार ने २१·०७ करोड़ रुपये व्यय किए हैं। नहर का निर्माण सन् १९६२ ई० में आरंभ हुआ था और सन् १९६५ ई० तक पूरा कर लिया गया था।

तट-बंध : प्रलयकारिणी कोसी नदी की मुख्य समस्या यह नहीं थी कि इसमें बराज लगाकर जलागार बनाया जाय और उससे कृषि की सिंचाई के लिए नहरें निकाली जायँ। इसकी सबसे विपत्ति-मूलक समस्या यह थी कि किस प्रकार इसकी उच्छृंखलता को नियंत्रित करके एक सीमित क्षेत्र में इसे बहाया जाए; क्योंकि सिर्फ १५० वर्षों के भीतर यह पश्चिम की ओर ७० मील हटती आई है और इतने ही मील लंबे चौड़े भू-भाग के गाँवों और खेतों को इसने उजाड़कर बंजर बना दिया है, जिससे अपार धन-जन की हानि हुई है। इसकी ऐसी गति-विधि का कहीं ओर-छोर नहीं था; क्योंकि इसके द्वारा निर्मित विभिन्न नदी-धाराओं का इतिहास बतलाता है कि हजारों वर्षों से इसका यही रवैया रहा है और सहरसा, पूर्णिया, उत्तरी भागलपुर तथा पश्चिमी बंगाल के कुछ जिलों में निरंतर पश्चिम से पूरब और पूरब से पश्चिम की ओर चक्कर काटती रही है और इतनी दूरी के भू-भाग के लिए सर्वसंहारिणी नदी बनी रही है। अतः, इसकी भयानक उच्छृंखलता को नियंत्रित करने के लिए इसमें एक बराज बनाना तथा इसके दोनों ओर एक लंबे क्षेत्र में तट-बंध लगाना सबसे आवश्यक और प्राथमिक कार्य था। इस योजना से विशेष लाभ उठा लेने के निमित्त बराज के दोनों ओर नहरें निकालने तथा विद्युत् प्राप्त कर लेने की योजना भी स्वीकृत कर ली गई।

पश्चिमी और पूर्वी तट-बंध का कार्य बराज-निर्माण के साथ ही सन् १९५५ ई० में आरंभ हुआ और दोनों ओर ७५-७५ मील लंबा मिट्टी का तट-बंध सन् १९५९ ई० में पूरा कर लिया गया। उक्त तट-बंधों के निर्माण में 'भारत-सेवक समाज' तथा ग्राम-पंचायतों ने श्रमदान करके पूरा सहयोग दिया था। इसके पश्चात् तट-बंधों के दक्षिणी छोर पर इनको और लंबा करने की आवश्यकता समझी गई, जिससे पश्चिमी तट-बंध में २½ मील की वृद्धि की गई और पूर्वी तट बंध में १६ मील की। यद्यपि कोसी को नियंत्रित करने में तट-बंधों का श्रेय अधिक है; फिर भी इसके निर्माण में अन्य कार्यों की अपेक्षा अल्प व्यय हुआ है—मात्र ९.८० करोड़ रुपये, जब कि बराज बनाने में २३·६२ करोड़ और नहरों के निर्माण में २१·०७ करोड़ की राशि व्यय की गई! दोनों ओर के तट-बंधों के अंतराल की दूरी ३ मील से १० मील तक की है। इन तट-बंधों के निर्माण में ८० करोड़ घन-फुट मिट्टी का कार्य हुआ है और इनके निर्माण से आठ हजार वर्ग मील की उर्वर भूमि कोसी की विनाशकारी बाढ़ से बचाई जा सकी है। किंतु, तट-बंधों के लिए होनेवाला यह व्यय दोनों किनारों के मूल बाँध का है। पूर्वी तट-बंध में भीमनगर के दक्षिण १० किलो मीटर से ३० किलो मीटर तक जो ठोकर (बोल्डर स्पर) बाँध स्थान-स्थान पर लगाए गए हैं, तथा पश्चिमी तट-बंध में कुनौली से निर्मली तक जो ठोकर बाँध के पोस्ते बनाये गए हैं, उनका व्यय उपर्युक्त व्यय में सम्मिलित नहीं है। इसी प्रकार, पूर्वी तट-बंध की १६ किलो मीटर की दूरी पर, जहाँ गोपालपुर नामक गाँव है, कोसी की बाढ़ ने जब हमला किया, तब उसके बचाव के लिए वहाँ एक सवा मील का गोलाकार मिट्टी का

ठोकर बाँध बनाया गया, उसका भी व्यय उक्त व्यय में सम्मिलित नहीं है। इस प्रकार, कोसी-योजना का व्यय कभी सीमित नहीं किया जा सकता है। नहरों और तट-बंधों की रक्षा के लिए इस योजना में निरंतर कार्य चलता रहता है और प्रतिवर्ष लाखों रुपये के व्यय की वृद्धि इसमें होती जा रही है और हमेशा होती ही जाएगी।

पश्चिमी तट-बंध, बराज के पश्चिमी किनारे पर स्थित 'भारदा' से आरंभ होता है। हालाँकि इसके उत्तर, जहाँ से कोसी का पहाड़ी क्षेत्र समाप्त होता है, फतेहपुर के पास से ही पश्चिमी तट-बंध शुरू होता है; किंतु मूल स्थान 'भारदा' ही माना गया है और यहीं से किलो मीटर का माप-संकेत तट-बंध पर अंकित किया गया है। भारदा से पश्चिमी तट-बंध दक्षिण दिशा में कुशहा और डलवा होते चलता है और १५$\frac{1}{4}$ किलो मीटर पर स्थित कुनौली तक नेपाल-राज्य की भूमि में आता है। कुनौली सहरसा जिले में है और तट-बंध भी यहाँ सहरसा जिले में घुसता है। कुनौली के दक्षिण तट-बंध के किनारे ही सहरसा जिले के कमलपुर तथा हरपुर गाँव हैं, जहाँ से तट-बंध नैऋत्य कोण में झुककर डगमरा आता है। यह वही डगमरा है, जिसके संबंध में चर्चा की जाती है कि यहाँ भी बराज बनाकर पश्चिमी नहर निकाली जाय। डगमरा के बाद तट-बंध बिलकुल नैऋत्य कोण में मुड़कर दरभंगा जिले के भीतर घुसता है, जिसके पूर्व में नरेन्द्रपुर गाँव स्थित है। तट-बंध के दाहिने किनारे ठेहो, चिटिही तथा धरहरा गाँव दरभंगा जिले के हैं। धरहरा के सामने ही तट-बंध के भीतर 'महादेव मठ' है, जिसे 'असुरगढ़' भी कहा जाता है। डगमरा के पास ही 'त्रियुगा' नदी तटबंध के २२.६ किलो मीटर पर उसके भीतर घुस आती है और महादेव-मठ में ही अपनी दाहिनी भुजा को भी समेटती है। इस महादेव मठ के पुरातात्त्विक महत्त्व की चर्चा 'तिलयुगा' नदी के प्रसंग में की गई है। तट-बंध के २४वें किलो मीटर पर धरहरा के सामने एक दोहरा तट-बंध भी बनाया गया है, जो 'महादेव मठ रिंग बाँध' कहलाता है। फिर, आगे तट-बंध के दाहिने किनारे दरभंगा जिले के बाजूबंद, अमचौरी, बनगावाँ और भुतहा गाँव मिलते हैं और तब यह पश्चिमी तट-बंध निर्मली तक आता है। इस तट-बंध के भीतर नरेन्द्रपुर, मनही, डिघिया, महादेवमठ, डोमहन, माहुर, नरही, डुमरा, हरदुआर, लोकही, लोकहा, झुकती तथा पिपराही गाँव स्थित हैं। उक्त नरही के पश्चिम तथा बाजूबंद के पूर्व, तटबंध के ३२.६ किलो मीटर की दूरी पर, 'पाँची' नदी तट-बंध के भीतर प्रवेश करके तिलयुगा से संगम करती है। **पाँची** दरभंगा जिले के फुलपरास थाने के पूर्वोत्तर कोण में तथा 'तिलयुगा' नदी के पश्चिम में, जिले के भीतर घुसती है और 'अन्हरामठ' के पश्चिम से मखनहा, मतही, बाजूबंद, नरही और माहुर होकर बहती हुई तिलयुगा से संगम करती है। संगम-स्थान पर इसके बाएँ किनारे माहुर है और दाहिने किनारे 'लोकही'। फिर, तट-बंध के ४२ किलो मीटर पर 'भुतहा' के पास '**भुतही**' नदी की पूर्वी धारा घुसती है, और निर्मली के उत्तर में 'पिपराही' के पास तिलयुगा से संगम करती है। इसी के दक्षिण निर्मली है, जो कोसी के बराज-स्थान से आरंभ होनेवाले तट-बंध के नैऋत्य कोण की ओर ४२वें किलो मीटर पर स्थित है। इसी निर्मली के पूरब में 'तिलयुगा' नदी आज-कल कोसी से संगम करती है। निर्मली पूर्वोत्तर रेलवे की उस

शाखा का अंतिम स्टेशन है, जो दरभंगा से सकरी तथा झंझारपुर होते कोसी के तट-भाग तक जाती है।

निर्मली के नैऋत्य कोण में 'घोघरडीहा' रेलवे-स्टेशन है, जो ८½ किलो मीटर दूर है। आज-कल यहीं पर 'मध्य वलान' और 'भुतही वलान' का संगम होता है और यह सम्मिलित धार 'वलान' के नाम से वहीं 'किशन पट्टी' गाँव के पास तट-वंध में प्रवेश कर उसके किनारे-किनारे 'तरडीहा' तक आती है और यहीं 'कोसी' से मिल जाती है। 'तरडीहा' किशनपट्टी से आरंभ होनेवाले तट-वंध के १० वें किलो मीटर पर अवस्थित है! यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि निर्मली से 'घोघरडीहा' स्टेशन के पास के 'किशनपट्टी' गाँव तक तट-वंध नहीं है। इतनी दूर तक रेलवे-लाइन ही तट-वंध का काम करती है। हाँ, कोसी-योजना की ओर से निर्मली से 'घोघरडीहा' तक एक नई, ऊँची और पक्की सड़क वनाने की योजना है। अतः, 'वलान' नदी को सम्मिलित कर के 'घोघरडीहा' से दूसरा तट-वंध आरंभ किया गया है। यह तट-वंध किशनपट्टी से आरंभ होता है और १० किलो मीटर दक्षिण चलकर तरडीहा पहुँचता है, जहाँ भुतही-वलान और वलान की सम्मिलित धाराएँ कोसी में संगम करती हैं। इतनी दूर तक तट-वंध के भीतर, यानी पूर्व भाग में, दाववाट, निगम तथा सरौती गाँव मिलते हैं। ये सभी गाँव दरभंगा जिले की पूर्वी सीमा के हैं। तरडीहा के आगे यह तट-वंध थोड़ी दूर के लिए सहरसा जिले में प्रवेश करता है और भलुआही तथा कुसमउल के पूर्व से और मरौना के पश्चिम से होते फिर दरभंगा जिले के मधेपुर थाने के रूपौली एवं चुन्नी गाँवों के पूर्व में आ जाता है। इसके आगे यह 'भीठ भगवानपुर' के पूरब से 'भेजा' गाँव को आता है, जो तट-वंध के पश्चिमी किनारे है। इसके पड़ोस में दरभंगा जिले के पूर्वी छोर की द्वालख, टेंगरहा, भवानीपुर, गढ़गाँव आदि वस्तियाँ कोसी-तटवंध के घेरे में हैं। भेजा से थोड़ा अग्निकोण में झुककर दक्षिण चलता हुआ यह तट-वंध 'बलथी' तथा 'नीमा' गाँवों को आता है, जो इसके पश्चिमी किनारे पर स्थित हैं। इस भाग में टेंगराहा और भरगाँव नामक ग्राम तट-वंध की गोदी में आ जाते हैं। इसी के पड़ोस में 'बकुनिया' ग्राम भी तटवंध के ३३ वें किलो मीटर के पास भीतर में है। इसी के पास दोहथा ग्राम के पूरब में पहले झंझारपुर वाली 'वलान' का, जो अब कमला और वलान की संयुक्त धारा हो गई है, तिलयुगा से संगम होता था। इसके आगे यह तट-वंध सहरसा और दरभंगा जिले की सीमा-रेखा के पास से आगे बढ़ता है और तरवारा, भभउल और जमालपुर होते खैंसा आता है। ये सभी गाँव तट-वंध के दाहिने किनारे स्थित हैं। इनके अतिरिक्त डंका, ततरी, भंडरिया, कंदवारा तथा विरदीपुर आदि गाँव तट-वंध के वाम पार्श्व में उसके भीतर ही हैं। इसके आगे तट-बंध सहरसा जिले की सीमा में ४५वें मिलो मीटर पर घुसता है। यहाँ इसके दाहिने किनारे 'गुरौल' गाँव है। यहाँ यह चटनिया, तेलवा और वरियाही गाँवों को क्रोड में लेते हुए भनथी, पंचभिंडा एवं घोघेपुर के पास पहुँचकर ५४ किलो मीटर पर समाप्त हो जाता है। इसी के वाद ५४.३ किलो मीटर पर आज-कल 'कमला-वलान' कोसी से संगम करने लगी है। भारदा से घोघेपुर तक और बीच में निर्मली से घोघरडीहा तक रेलवे-लाइन को सम्मिलित कर लेने पर तट-वंध की पूरी लंबाई ७७¾ मील होती है। ऊपर में कोसी की धारा को तिलयुगा तथा भुतही-वलान से मिलने नहीं

दिया जाता है और इसके लिए बड़े ही मजबूत और लंबे-लंबे पोस्तानुमा बाँध जगह-जगह लगाए गए हैं; और पश्चिमी तट-बंध तक कोसी को नहीं पहुँचने दिया जाता है; पर घोघरडीहा से दक्षिण तट-बंध के १२वें किलो मीटर से कोसी की एक बड़ी धारा तट-बंध से सटकर बहती है, जो 'कमला' के संगम तक चलती जाती है। आज-कल कोसी नदी की सबसे ज्यादा चौड़ाई पश्चिमी तट-बंध पर घोघरडीहा से तरडीहा तक और इससे सामने पूर्वी तट-बंध के ५०वें किलो मीटर से ६०वें किलो मीटर तक है। बराज से आरंभ करके पश्चिमी तट-बंध के कमला-जीवछ-संगम तक तथा पूर्वी तट-बंध में घेमुरा नदी के संगम तक कोसी की धारा में सर्वत्र बड़े-बड़े द्वीप तथा बालू के टीले एवं लगभग छोटे-बड़े ३०० गाँव बसे हैं। ये गाँव भयानक बाढ़ की अनेक यातनाएँ आज भी सहते हैं; पर अपनी जमीन-जायदाद तथा जन्म-स्थान के लोभ तथा प्रेम के कारण नदी-गर्भ के बाहर बसने के लिए तैयार नहीं हैं।

पहले पूर्वी तट-बंध के संबंध में कहा गया है कि यह ६१ मील लंबा है और भीमनगर से सहरसा जिले के प्रायः दक्षिणी छोर (घेमुरा-संगम) तक जाता है। चतरा के पास के पर्वतीय क्षेत्र से निकलने के बाद कोसी नदी परम स्वच्छंद हो जाती थी और बुकानन ने तो सन् १८०९-१० ई० में ऐसा सुना था कि यह वहाँ से पूर्व की ओर बहती हुई ब्रह्मपुत्र से मिलती थी। अतः, भारदा और भीमनगर के मध्य जब कोसी में बराज बनाने की योजना बनी, तब यह भय स्वाभाविक हो गया कि कोसी, बराज के ऊपर और चतरा के नीचे ही, पूर्व की ओर अपनी धारा फोड़ लेगी और अधिक नहीं तो 'पनार' नदी की धारा तक तो दौड़ जायगी ही। ऐसी अवस्था में कोसी-योजना बिलकुल ही व्यर्थ हो जाएगी। अतः, चतरा से भीमनगर तक लगभग २५ मील में ऐसा पक्का तट-बंध बनाया गया, जो पीच बनकर सड़क के काम में आने लगा है। बराज के सामने पूर्वभाग में भीमनगर है, जो सहरसा जिले में भारतीय ग्राम है। यहाँ से पूर्वी तट-बंध दो मील दक्षिण चलकर 'शिवनगर' ग्राम के पास से नैऋत्य कोण में बढ़ता है। जिस प्राचीन 'वीर बाँध' की चर्चा पहले की गई है, वह बाँध इसी स्थान पर बनाया गया था, जो उस समय की कोसी-धारा के पश्चिमी किनारे था। आधुनिक तट-बंध के पाँचवें किलो मीटर तक 'वीर बाँध' का कुछ अवशेष अबतक भी देखा जा सकता है। किंतु, कोसी की हल-चल देखकर इंजीनियरों ने अब एक दूसरी योजना बनाई है कि वर्तमान पूर्वी तट-बंध के नवें किलो मीटर से १३½ वें किलो मीटर तक एक दूसरा तट-बंध बनाया जाएगा और पूर्व समय में बने तट-बंध को बेकार समझा जाएगा। इस नए तट-बंध के बन जाने पर यह तट-बंध पूरे तौर पर नैऋत्य कोण में चलता दिखाई नहीं पड़ेगा। अस्तु !

उक्त शिवनगर से नैऋत्य कोण में चलनेवाला तट-बंध क्रमशः भगवानपुर, पिपराही पट्टी, पिपराही गोर और नोनपारा होते भपटियाही आता है। दुहरा तट-बंध जो बनने वाला है, वह शिवनगर से इसी नोनपारा तक आएगा। 'नोन पारा' तट-बंध के पूर्वी किनारे और तट-बंध के ३० वें किलो मीटर पर अवस्थित है। इसी प्रकार, भपटियाही[1] बत्तीसवें

१. कोसी जब भपटियाही से पूर्व में बहती थी, तब दरभंगा से सकरी और झंझारपुर होते जो रेल-लाइन निर्मली आती थी, वह पहले इस भपटियाही तक चलती थी।

किलो मीटर पर है । भपटियाही के बाद तट-बंध के किनारे 'गढ़िया' है, जहाँ भपटियाही का रेलवे-स्टेशन पहले था । यह स्मरणीय है कि बराज के दक्षिण आधुनिक कोसी को 'बैंती' और 'धेमुरा' की धाराओं से ही बहाया गया है । आजकल कोसी अपने पश्चिमी तटबंध की ओर बैंती-धार से बहती है और पूर्वी तट-बंध की ओर 'धेमुरा' की धारा से । अतः, बराज-स्थान से कोढ़ली तथा नानपारा तक धेमुरा की पुरानी धार से ही कोसी बह रही है ।

भपटियाही और गढ़िया के पश्चात् यह तट-बंध सरैगढ़, चाँद पिपरा, ठढ़बिटिया, किशनपुर, महुआ और मल्हार होते सुपौल के पश्चिमी भाग में आता है। सुपौल नगर सहरसा जिले का उपमंडल है और बराज-केंद्र से ६१ किलो मीटर दक्षिण में है। यहाँ से तट-बंध थोड़ा और नैऋत्य कोण में झुकता है और बसिठी और तेलवा नामक गाँवों को पहुंचता है । तेलवा के बाद यह पूर्वी तट-बंध थोड़ा दक्षिण दिशा में मुड़ता है और विजयपुर, बारा, डुमरा और हेमपुर नामक गाँवों के पश्चिमी भाग से होते नौहट्टा एवं मोहनपुर के पश्चिम में आता है । विजयपुर और बारा गाँव तट-बंध के ७४वें एवं ७५वें किलो मीटर पर स्थित हैं। यहीं से तट-बंध सहरसा अनुमंडल में प्रवेश करता है । मोहनपुर के बाद तट-बंध बिलकुल दक्षिण दिशा की सीध में हो जाता है और धरहरा, चंद्रायन, सरउनी, पश्तवार तथा नागर पहुँचता है । तट-बंध के ८१वें किलो मीटर पर तट-बंध के भीतर कोसी की 'परासबना' नामक एक भूमि-खंड प्रसिद्ध है । इसके आगे ८३वें किलो मीटर पर यह तट-बंध अग्नि कोण में होकर चलने लगता है । इसी भाग में पश्तवार और नागर गाँव हैं। नागर के पश्चिम से होता हुआ तट-बंध प्रसिद्ध 'महिषी' गाँव से कुछ दूर पश्चिम आता है और वहाँ से 'नहरवा' होकर मैनागाँव एवं कोपरिया के पास समाप्त हो जाता है । तट-बंध 'घेमुरा'-कोसी-संगम के ऊपर में ही समाप्त होता है । ऊपर जिन गाँवों के नामों का उल्लेख हुआ है, प्रायः सभी गाँव तट-बंध के वाम पार्श्व (पूर्व) में स्थित हैं । पूर्वी तट-बंध की लंबाई ६१ मील है । इस पूर्वी तट-बंध में लगभग छोटे-बड़े ८८ पोस्तानुमा ठोकर-बाँध बनाए गए हैं, जो तट-बंध की सुरक्षा करने में बहुत अधिक सहायक हैं ।

उक्त दोनों तटबंधों के मध्य कोसी की कई धाराएँ हैं और उन्हीं के मध्य यत्र-तत्र अनेक भूमि-खंड, बालू के लंबे टीले तथा कई दलदल हैं। कितने और किस प्रकार के भूमि-खंड हैं, इसका अनुमान इसीसे आप लगा सकते हैं कि इतनी दूरी के तट-बंधों के मध्य लगभग ३०० ग्राम अब भी बसे हुए हैं। तट-बंध के बाद इसके दाहिने किनारे घोघरडीहा से लगभग ५५वें किलो मीटर पर कमला-जीवछ का संगम है और बाईं ओर तट-बंध के नीचे घेमुरा नदी कोसी में संगम करती है। इसी घेमुरा-संगम से 'घघरी' नदी पहले आरंभ होती थी, जो अब वही मुख्य कोसी की धारा बन गई है। पहले घघरी यहाँ से आगे बढ़कर कोसी की अन्य उपधाराओं को समेटती तथा चौथम के निकट से गुजरती एवं भागलपुर तथा सहरसा जिलों की सीमा बनती कुरसेला के पास मुख्य कोसी से संगम करती थी। किंतु, अब तो 'घघरी' के जन्म-स्थान पर ही कोसी ने कब्जा कर लिया है और सर्वत्र घघरी-धार को ही अपना प्रवाह-मार्ग बना लिया है । इस घघरी की दयनीयता की चर्चा पहले भी मैंने की है ।

घघरी की धारा पर आधिपत्य तथा गंगा-गमन :

अब कोसी नदी मुँगेर जिले में प्रवेश करती है और अलौली थाने के क्षेत्र को अपने दाहिने भाग में छोड़ती तथा 'सिमरी बख्तियारपुर थाने की भूमि से प्राचीन 'घघरी' की धारा से बहती कुछ दक्षिण आती है और फिर पूर्व की ओर मुड़कर बड़ियाघाट तथा धमहरा रेलवे-स्टेशनों के मध्य से मानसी-सहरसा-रेल-लाइन को पार करती है। इसके बाद यह उत्तरी मुँगेर के चौथम थाने में घुसकर 'चौथम' के उत्तर से ही बहती है और यहीं अपने बाएँ बाजू में सहरसा जिले की अपनी कई उपधाराओं का जल ग्रहण करके अग्नि कोण में झुकती है। किंतु, किसी काल में 'घघरी' कोसी की छाड़न-धाराओं को ग्रहण करके चौथम से लगभग ६-७ मील अग्नि कोण में 'बालतारा' ग्राम के पास से दक्षिण की ओर गिरकर फिर अग्नि कोण में मुड़ती थी और कोल्ला, देवथा तथा भिरही गाँव के पास से पूर्व की ओर **बूढ़ी** एवं **सोनेह** धाराओं से मिलकर बहती हुई बीहपुर के पास कोसी की '**भरही**' धार को साथ में लेकर सीधे भागलपुर के सामने गंगा में गिरती थी। इसीलिए मानचित्र में इस धारा का नाम '**बूढ़ी**' अंकित है। यहाँ कोसी और घघरी का संयुक्त संगम था, जिसका चिह्न आज भी इस भाग में दिखाई पड़ता है। इसी संगम के कारण 'राष्ट्रीय प्रशस्त राजमार्ग' के बीहपुर चौक से महेश-खूँट तक, अर्थात् २१ मील तक आज तक भी कहीं गाँव नहीं दीख पड़ते हैं। भागलपुर के सामने घघरी-कोसी-संगम के कारण ही गंगा के किनारे 'चंपा' नगरी बसाई गई थी, जिससे हिमालय के साथ कोसी के माध्यम से चंपा का यातायात बना रहता था। लगता है, ऋष्यश्रृंग ऋषि कोसी के इसी मार्ग द्वारा सीधे नाव से चंपा आए थे, जिन्हें रोमपाद की वेश्याएँ विभांडक-आश्रम से ले आई थीं। संभव है, कोसी उस समय '**भरही**' की धारा से बहती हो, जिसका संगम आज भी बीहपुर के उत्तर में कोसी के मुख्य प्रवाह से होता है, जो पहले यहाँ 'घघरी' से होता था। इसी बूढ़ी के किनारे बीहपुर के पास '**भोजेश्वरनाथ**' महादेव का मंदिर था, जहाँ १९वीं शताब्दी के आरंभ में दसनाभी साधु रहते थे। भागलपुर के सामने गंगा के बाएँ किनारे शिवगंज नामक स्थान है, जहाँ कोसी-संगम के कारण ही कार्तिक, माघ और वैशाख पूर्णिमा को गंगा-स्नान का मेला लगता था और प्रत्येक समय में २५ से ३० हजार तक स्नानार्थी शिवगंज में एकत्र होते थे। बुकानन ने इस मेले को अपनी आँखों से देखा था।[1] अस्तु !

चौथम के पूरब अपनी कई छाड़न धाराओं को ग्रहण करने के बाद कोसी आज-कल बालतारा से पूरब की ओर घघरी-धारा से ही चलती है और गंगा के उत्तर भागवाले भागलपुर जिले में, नारायणपुर रेलवे-स्टेशन (बरौनी-कटिहार लाइन) के उत्तर, प्रवेश कर जाती है। कोसी के इस क्षेत्र का विस्तृत वर्णन मैंने पहले ही उस 'घघरी' के प्रसंग में कर दिया है। किंतु इस बात का ध्यान आवश्यक है कि चौथम के बाद से ही कोसी-गंगा-संगम मनिहारी तक घघरी और कोसी का झील-क्षेत्र है, जिसकी लंबाई लगभग ७० मील है। केवल बिहार में कोसी नदी ने इस ७० मील की दूरी में अपना गंगा-संगम रखा है, जिसका प्राचीन

१. फ्रांसिस बुकानन की भागलपुर-वाली रिपोर्ट—१८१०-११, पृ०-८२ ।

स्मारक महेशखूँट से कुरसेला तक झील-क्षेत्र आज भी बना हुआ है। इसी झील-क्षेत्र से आज भी कोसी नदी घघरी की धारा के साथ मिलकर वहने लगी है।

भागलपुर जिले में कोसी के प्रवेश करने पर तुरत ही इसके बायें भाग में कोसी की ही छाड़न-नदी 'भरही' मिलती है, जहाँ से चार मील पश्चिम सहरसा जिले के 'किशनपुर रतवारा' नामक गाँव है। कोसी की यह उपधारा भरही, वीरपुर के पश्चिम वसंतपुर से अलग होकर दक्षिण चलती थी; किंतु आज भी यह श्रीपुर, भवानीपुर, कालिकापुर होते प्रतापगंज तथा मुरलीगंज आती है। मुरलीगंज में इसकी दो धाराएँ होती हैं, जिनमें से पूर्वी धार 'भरही' है। यह 'भरही' विशुनपुर-अमौना और नयानगर होते आलमगंज थाने में आती है और यहाँ किशनपुर-रतवारा के पूर्व कोसी से संगम कर जाती है। यह संगम उक्त गाँव से सीधे पूर्व में नहीं है, बल्कि थोड़ा अग्नि कोण में झुकता हुआ पड़ता है। इस संगम के वाद कोसी जब थोड़ी दूर और पूरब बढ़ती है, तब इसमें 'त्रिमुहानी' नामक प्रसिद्ध घाट मिलता है। इसी घाट पर 'बीहपुर' से उत्तर की ओर जो मार्ग सहरसा जिले के मधेपुरा तक जाता है, वह इसी त्रिमुहानी घाट पर कोसी को पार करता है। बीहपुर का संस्कृत नाम 'वाहपुर' होना चाहिए, जो कोसी के वहाव पर वसा था। बुकानन ने इसका नाम 'बीहीपुर' लिखा है। इस भाग में आज कोसी सहरसा और भागलपुर जिले की सीमा-रेखा बनकर चलती है। इसके उत्तरी तट-भाग में सहरसा जिले का किशनगंज थाने का क्षेत्र है और नदी के दाहिने भाग (दक्षिण) में भागलपुर जिले के बीहपुर और नौगछिया थानों के क्षेत्र हैं। पहले जब 'घघरी' नदी इस धारा से बहती थी, तब उसकी दो धाराएँ इस भाग में हो जाती थीं, जिनमें से दक्षिणी धारा 'तिलयुगा' कहलाती थी और उत्तरी धारा का नाम 'घघरी' होता था। भागलपुर जिले में प्रवेश करने के पहले ही ये दोनों धाराएँ परस्पर अलग होती थीं और नौगछिया से चार मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में स्थित 'शिवकुंड' के पास पुनः मिल जाती थीं। यह शिवकुंड 'खरीक' रेलवे-स्टेशन से डेढ़ मील उत्तर में है। पहले यह 'शिवकुंड' पवित्र और तीर्थस्थल था; किंतु अब तो कोसी ने इन दोनों धाराओं को प्रायः एकाकार कर दिया है। शिवकुंड के आगे कोसी के दाहिने तट की ओर दादपुर, प्रतापनगर, वैसी जहाँगीरपुर तथा साधोपुर गाँव बसे हुए मिलते हैं। प्रथम दो गाँव नौगछिया थाने के हैं और अंतिम दोनों गाँव गोपालपुर थाने में पड़ते हैं। वैसी-जहाँगीरपुर के उत्तर कोसी के वाम पार्श्व में पूर्णिया जिला आरंभ हो जाता है, जो 'वमदहा' थाने में पड़ता है। इस क्षेत्र में 'बिजई' और 'भौआ परवल' नामक गाँव कोसी के किनारे हैं और यह संपूर्ण भाग भी कोसी का झील-क्षेत्र है। भौआ परवल गाँव तो कोसी के उस संगम पर बसा है, जहाँ सन् १८४० से १८७० ई० तक उत्तर दिशा से आकर कोसी नदी 'घघरी' नदी से संगम करती थी। इस धारा को बुकानन ने 'दाउस' कहा है और इसी को उसने पूर्णिया और तिरहुत की सीमा माना है, जो आज भी यह सहरसा और पूर्णिया जिलों की सीमा-रेखा है।

'भौआ परबल' से पहले घघरी नदी कोसी के संगम-प्रवाह के कारण दक्षिण की ओर मुड़ जाती थी। यह मोड़ बराबर बना रहा। अतः, आज भी जब कोसी घघरी की धारा से मिलकर वह रही है, तब भी कोसी उसी प्रकार यहाँ दक्षिण की ओर मोड़ लेती है और बहुत

बड़ा एक चौर बनाती है। आज कल हम 'कुरसेला' के पास जब रेल-मार्ग से अथवा 'राष्ट्रीय उच्च पथ' होकर एक पुल-द्वारा कोसी को पार करते हैं, तब कोसी के इस घुमाव को तथा चौर को देखते हैं। इसी घुमाव के पास 'राष्ट्रीय उच्च पथ' का पुल कोसी पर बना है और जिसके पूर्व में रेल-पुल भी है। यह राष्ट्रीय उच्च पथ का पुल आज से सिर्फ १४-१५ वर्ष पहले बना है। इसके पहले पूर्णिया से पटना के लिए यातायात का एक मात्र साधन रेलवे ही था, जो कोसी की बाढ़ के कारण बरसात में प्रायः बंद हो जाता था।

कुरसेला में रेलवे का स्टेशन और एक छोटा बाजार भी है और यातायात की दृष्टि से इसकी भौगोलिक स्थिति बहुत अच्छी है। कुरसेला के पास कोसी थोड़ा उत्तर की ओर मुड़ कर गंगा से संगम करती है, जिसके मध्य में एक बहुत बड़ा द्वीप है, जो 'गोबराही दियारा' कहलता है। यहाँ कोसी के बायें भाग में 'मुरादपुर' नामक स्थान है। कोसी-संगम के बाएँ भाग में पूरब की ओर 'काढ़ा गोला' और उसके पूर्व 'कांत नगर' है। यह 'कांत नगर' कभी बहुत बड़ा व्यापार-केंद्र था और दूर-दूर से आनेवाली नौकाओं का पुराना जंक्शन था। यहीं संगम के दाहिने किनारे, गंगा के दक्षिणी भाग में, भागलपुर जिले का जरलाही घाट है, जहाँ से नाव पर गंगा पार करके लोग संगम के उत्तरी भाग में कुरसेला जाते हैं। जरलाहीघाट से उत्तर-पूर्व भाग में भागलपुर जिले का ही 'कढ़ा घाट' है, जहाँ से यात्री नावों के द्वारा संगम-क्षेत्र को पार करके काढ़ा गोला अथवा कांतनगर जाते हैं और वहाँ से 'कटिहार' तथा पूर्णिया पहुँचते हैं। कौशिकी की तिब्बत की भूमि से आरंभ करके गंगा-संगम तक की यही कहानी है। इसे पूरी कहानी नहीं कह सकते; क्योंकि जीवन-वृत्तांत के अनेक परिच्छेदों की तरह इसकी अनेक धाराएँ लुप्त हो गई हैं या गौण पड़ गई हैं। कोसी के वे सभी परिच्छेद पुरानी पांडुलिपियों की तरह जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं और कुछ तो नष्ट हो गए हैं तथा जिनके धुँधले, घिसे, बिखरे अक्षरों को किसी प्रकार जोड़-जाड़ कर अनुसंधान या अध्ययन किया जा सकता है, उनका वृत्तांत बहुत बड़ा है। हाँ, उनमें से कुछ का अध्ययन हम आगे करेंगे।

ऊपर जिस संगम की हमने चर्चा की है, उसमें गंगा की जो आज उत्तरी धारा है, वह पहले कोसी की ही धारा थी। उस समय गंगा नदी अपने दाहिने भाग में स्थित 'बटेश्वर नाथ' पहाड़ी के उत्तर में स्थित 'सुखुनगर' गाँव के पश्चिम से उत्तर जाती थी तथा दयालपुर गाँव के पश्चिम से ही, पूर्व की ओर धारा बनाती हुई बुद्धूचक पहुँचती थी। यहाँ से फिर अग्नि कोण में और पुनः दक्षिण में चलकर 'मोहनपुर गउघट्टा' एवं 'पीरपैंती' पहुँचती थी। उस समय गंगा-कोसी का संगम पूर्णिया के मनिहारी के अग्नि कोण में तथा संथाल परगना के 'सकरी गली' नामक स्थान के पास होता था और कोसी तब 'काली कोसी' के धारा-मार्ग से बहती थी। इधर कुरसेला के पास से 'घघरी' एक उपधारा बनाती थी, जो **कोसी प्रसाद** कहलाती थी। इसी 'कोसी प्रसाद' के तट पर 'काढ़ा गोला' तथा 'कांतनगर' बसा था और यही धारा मनिहारी के पूरब में काली-कोसी से मिलकर गंगा से संगम करती थी।

कोसी की छाड़न-धाराएँ

पहले कई बार कहा गया है कि कोसी नदी अपने हजारों वर्षों के जीवन-काल में, पश्चिम में तिलयुगा नदी से आरम्भ करके पूर्व में पूर्णिया की सउरा-धार तक और गंगा की ओर, अपने निचले भाग में, पश्चिम में गोगरी या महेशखूँट से आरम्भ करके पूर्व में मालदह तथा पद्मा नदी तक अनेक बार गई और आई है। इस सम्बन्ध में कोसी के सारे अव-शेष-चिह्नों का जब हम मनोयोग-पूर्वक अनुसन्धान करते हैं, तब वे अवशेष मेरे कथन की पुष्टि में प्रमाण उपस्थित करते है। हाँ, इस लोक-किंवदन्ती का आज कोई चिह्न हमें नहीं मिलता, जिसमें कहा जाता है कि कोसी नदी चतरा के नीचे से ही पूर्व की ओर बहती हुई 'ब्रह्मपुत्र' नदी से जा मिलती थी। मेरे कथन की पुष्टि इस बात से भी होती है कि जिस समय कोसी नदी पूरब में सउरा-धारा अथवा काली कोसी की धारा से मिलकर बह रही थी, उस समय भी कोसी की अनेक छाड़न-धाराएँ सहरसा जिले में वर्त्तमान थीं।

कोसी की छाड़न-धाराओं में बैंती, धेमुरा, तिलावे, चिलौनी, सुरसर, हइया, लच्छा आदि नदियाँ प्रसिद्ध हैं। १२ वीं शती में जब कोसी के पश्चिमी किनारे 'वीर बाँध' नामक तट-बंध बनाया गया था, तब भी कोसी तिलावे अथवा चिलौनी-धार से मिलकर बह रही थी, जिससे फतेहपुर से सुपौल तक यह तट-बंध बनाया गया था। इसी तट-बंध के बाद कोसी पूर्व दिशा की ओर बढ़ती गई और सउरा-धार तक जा पहुँची। महाभारत के रचनाकाल में तो ऐसा लगता है कि उस समय कोसी उत्तरी भागलपुर के सामने शिवगंज में गंगा से संगम करती थी, जिसके सामने बीहपुर है। इस धारा का नाम **बूढ़ी** था, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। चंपा के अधिपति रोमपाद की वेश्याएँ ऋष्यश्रृंग ऋषि को चतरा के आस-पास से कोसी नदी के इसी प्रवाह द्वारा नाव पर चढ़ाकर चम्पा नगरी में ले आई होंगी। लोक-कथा के अनुसार यदि सहरसा जिले के 'सिंहेश्वर-स्थान' में श्रृंगी ऋषि का आश्रम था, तब तो निश्चय ही उस समय कोसी नदी सिंहेश्वर-स्थान के पास से बहती थी और 'भरही' धार से बहकर चम्पा के सामने मेल करती होगी। इसके अतिरिक्त भूतत्त्व-विशारदों का कहना है कि सम्पूर्ण सहरसा और पूर्णिया के आधे से अधिक भाग की भूमि कोसी नदी की देन है, तब तो यह निश्चित ही है कि कोसी अनेक बार पश्चिम से पूर्व की ओर गई और अनेक बार पूर्व से पश्चिम की ओर आई है।

बैंती और धेमुरा :

किसी काल में कोसी जब 'भीमनगर' में आती थी, तब यह 'बैंती' और 'धेमुरा' की धाराओं से मिलकर बहती दक्षिण चली जाती थी। किन्तु, कुछ काल बाद जब यह पूरब दिशा

में हट गई, तब 'बैंती' और 'घेमुरा' की धाराएँ उसके अवशेष के रूप में रह गई' और कोसी की मुख्य धारा से बिलकुल कट गई थीं। मुख्य धारा से कट जाने पर इनका नाम 'बैंती' और 'घेमुरा' पड़ा था।

आज-कल कोसी नदी जिस धारा-मार्ग द्वारा बराज के पास से बह रही है, उसी धारा-मार्ग से किसी काल में यह बह रही थी और सहरसा जिले की उत्तरी सीमा पर पहुंच कर दो भागों में बँटती थी। पश्चिम की ओर से चलने वाली धारा 'बैंती' कहलाती थी, और पूर्व की ओर से चलनेवाली 'घेमुरा'। बैंती की मैंने पहले ही चर्चा कर दी है (पृ० ३३६) और आज-कल तटबंध के भीतर कोसी नदी की पश्चिमी धारा इसी बैंती-धारा के साथ मिलकर बह रही है। सहरसा की उत्तरी सीमा पर बिलन्दी गाँव के पास 'घेमुरा' अपना अलग प्रवाह बनाती थी। यहाँ से जब वह ददिण की ओर बढ़ती थी, तब इसके वाएँ तट पर 'परसाही' ग्राम खड़ा मिलता था। यहाँ से यह थोड़ा नैऋत्य कोण में झुककर दक्षिण चलती थी, तब यह क्रमशः कोढ़ली, नानपारा, सदानंदपुर, बिशुनपुर, भपटियाही और 'गढ़िया' पहुँचती थी। किंतु, अब इतना जान लेना आवश्यक है कि लगभग 'नानपारा' तक आजकल कोसी का पूर्वी प्रवाह, जो पूर्वी तट-बंध के पास से बहता है, इसी घेमुरा-धार से मिलकर बहने लगा है और कम-से-कम 'नानपारा' तक तो घेमुरा का अस्तित्व समाप्त ही हो गया है। घेमुरा का अस्तित्व पुनः 'सदानंदपुर' के पास पूर्वी तट-बन्ध के पूरब से आरंभ होता है। अतः, यह कहना ठीक होगा कि 'घेमुरा' नदी नानपारा तथा सदानंदपुर से चलकर बिशुनपुर और भपटियाही होते 'गढ़िया' पहुँचती है।

कोसी जिस समय 'गढ़िया' से पूर्व की ओर बढ़ती थी, उस समय दरभंगा जिले से सकरी और झंझारपुर होकर निर्मली तक आनेवाली वर्त्तमान रेल-लाइन गढ़िया तक आती थी और 'भपटियाही' रेलवे स्टेशन 'गढ़िया' में ही था। अब यहीं से 'घेमुरा' दक्षिण चलती है, और आगे बढ़कर अपने बाएँ किनारे सुखासन गाँव को देखती है। यह गाँव अपने ध्वंसावशेष के कारण प्राचीन स्थान लगता है। इसके आगे बाएँ तट पर ही फुलवारा ग्राम है और घेमुरा यहाँ से क्रमशः मलार, अभवार, केवटा पट्टी तथा कोरैया गाँवों की बगल से गुजरती है। ये सभी ग्राम 'घेमुरा' के दाहिने किनारे हैं। यहाँ केवटा पट्टी से ही घेमुरा नैऋत्य कोण में अपना मार्ग बनाती है। किशनपुर थाने के पूर्व में स्थित 'कोरैया' ग्राम से दक्षिण बढ़ने पर इसके किनारे पुनः राजपुर, बेलड्ढा एवं चैनसिंह पट्टी गाँव हैं। इसी अंतिम ग्राम के पास 'घेमुरा' दो धाराओं में बँटती है और अपने दोनों भुजाओं से 'सुपौल' नगर को घेरती है। पश्चिमी धार जब सुपौल के दक्षिण भाग में आती है, तब वह दो भागों में विभक्त हो जाती है। इनमें से पूर्वी धार थोड़ी दूर दक्षिण चलकर 'मल्हानी' गाँव के पास अपनी उस धारा से मिल जाती है, जो धारा चैनसिंह पट्टी से अलग होकर और सुपौल नगर के पूर्व भाग से दक्षिण में आती है। फिर यही धारा अपना 'घेमुरा' नाम ढोती रह जाती है। सुपौल के पश्चिम से होकर दक्षिण में आने पर जो दो धाराएँ होती हैं; उनमें से पश्चिमी धारा का नाम **'पुरइन'** हो जाता है। किन्तु, यही पुरइन धार वस्तुतः पुरानी धार मानी जाती है; क्योंकि इसके तट पर कई प्राचीन ऐतिहासिक स्थान बसे थे!

पुरइन :

सुपौल नगर के दक्षिण में 'करनपुर' नामक गाँव के पास से यह **पुरइन-धार** अलग होती है। करनपुर का भग्नावशिष्ट टीला हजारों वर्ष पूर्व का माना जाता है और चम्पानगर, सुलतानगंज तथा मुंगेर के ध्वंसावशेषों की तरह इसे भी कर्ण का गढ़ कहा जाता है। अभी तक इस टीले की खुदाई नहीं हुई है। अपने उद्गम-स्थान से पुरइन-धार दक्षिण चलकर सुखुपुर, कासिमपुर तथा पंडुहा नामक गाँवों को आती है। इसी पंडुहा के पश्चिम तथा पुरइन-धार के दाहिने भाग में 'वारा' नामक गाँव है, जहाँ प्राचीन किले का अवशेष है। इसे '**कोषगढ़**' भी कहते हैं। कहा जाता है कि **कोइल खाँ** नामक स्थानीय जमींदार का यह किला था, जिसे औरंगजेब ने मरवा डाला था और उसके किले को भी ध्वस्त करवा दिया था। पंडुहा के बाद 'पुरइन' क्रमशः डुमरा, कदलीपट्टी, हेमपुर तथा नौहट्टा आती है। यह नौहट्टा भी सहरसा जिले का प्राचीन और प्रसिद्ध गाँव है। सन् १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार, यहाँ की आबादी ८,१३० थी, जिसमें १५% की वृद्धि अब तक हो चुकी होगी। मानसी-सुपौल-रेलपथ के 'पचगछिया' नामक स्टेशन (उत्तरी भागलपुर के पचगछिया से भिन्न) से यह सात मील पश्चिम तथा पुरइन के पूर्वी (बाएँ) तट पर स्थित है। यह मुगल-कालीन गाँव माना जाता है। इतना ध्यान रहे कि यह पुरइन-धार प्रायः सर्वत्र कोसी-तटबन्ध के पूर्वी किनारे से चलती है और नौहट्टा गाँव इस तट-बंध के किनारे में ही है। नौहट्टा का प्राचीन शिवमंदिर ८० फीट ऊँचा है, जो सन् १९३४ ई० के भूकंप में ध्वस्त हो गया था। बाद में श्रीनगर इस्टेट के राजा श्रीनंदसिंह ने इसकी मरम्मत करवाई थी। यहाँ के ४० फीट ऊँचे प्राचीन मिट्टी के टीले को **बहादुर माधोसिंह** कहा जाता है। माधोसिंह 'लदरीघाट' के एक युद्ध में मारे गये थे, जिनका स्मारक नौहट्टा के हिन्दू और मुसलमान—दोनों ने सम्मिलित रूप से तैयार किया था। नौहट्टा के पश्चात् पुरइन नदी क्रमशः मोहनपुर, धरहरा, चंद्रायन, सरौनी, तेलाढ़, पश्तवार, नागर आदि गाँवों के निकट से बहती 'महिषी' आती है। यह वही महिषी है, जिसके संबंध में कहा जाता है कि इसका नाम 'माहिष्मती' था, जहाँ के प्रसिद्ध विद्वान् **मंडन मिश्र** थे। कहानी है कि शंकराचार्य जब शास्त्रार्थ करने माहिष्मती आये, तब गाँव के बाहर किसी पनिहारिन से उन्होंने मंडन मिश्र के घर का पता पूछा। उनके प्रश्न का उत्तर 'महिषी' गाँव की पनिहारिन ने निम्नलिखित पंक्तियों में दिया :

जगद् ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तर-सन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डन मिश्र-धाम॥

अर्थात्—"जिसके द्वार पर पिंजड़े की सारिकाएँ 'जगत् सत्य है या जगत् अनित्य है, यह बात बोलती रहती हैं, उसी द्वार को मंडन मिश्र का निवास जान लेना।" कहा जाता है कि मंडन मिश्र की पत्नी 'भारती' इन दोनों विद्वानों के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनी थी और जब उसने अपने पति को शंकराचार्य से परास्त होते देखा, तब स्वयं शंकराचार्य को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा और काम-शास्त्र के विषय में प्रश्न करके उसने शंकराचार्य को परास्त कर दिया था। किन्तु, शंकराचार्य से जिस मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ हुआ था, वह मंडन मिश्र इस

'महिषी' ग्राम के निवासी थे या मध्य प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी 'माहिष्मती' के थे; इसका निर्णय करना कठिन है। किन्तु, यह महिषी भी निश्चय ही अति प्राचीन तथा प्रसिद्ध ग्राम है, इसमें कतई संदेह नहीं है। क्योंकि, यहाँ की **उग्रतारा** नामक देवी की प्रस्तर-मूर्त्ति बहुत पुरानी और अति प्रसिद्ध है। कहा तो यह जाता है कि लगभग ग्यारह सौ पचीस वर्ष पूर्व किसी वसिष्ठ नामक ऋषि ने इस मूर्त्ति की स्थापना की थी। 'उग्रतारा' बौद्धों की देवी हैं, अतः मेरा अनुमान है कि पाल राजाओं के काल में किसी बौद्ध भक्त ने इस उग्रतारा-मूर्त्ति की स्थापना की होगी। यहाँ उग्रतारा मूर्त्ति के होने से अनुमान होता है कि इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का अथवा बौद्ध धर्म के अनुयायी राजा का कभी प्रावल्य रहा था।

उक्त 'पुरइन-धार' जब उक्त महिषी के दक्षिण 'नहरथा' ग्राम को आती है, तब यह अपनी उस घेमुरा-धार से मिल जाती है, जो 'घेमुरा' सुपौल के उत्तर चैनसिंहपट्टी में अलग होती है और सुपौल नगर के पूर्व भाग से बहकर तथा उसके दक्षिण आकर पुरइन की पूर्वी धार को समेटकर 'घेमुरा' नाम से ही आगे बढ़ती है। यह 'घेमुरा' सुपौल-नगर के अग्नि कोण में आकर बाल्हा तथा परशुराम-परसौनी ग्रामों के मध्य से दक्षिण की ओर बहती तथा एक बड़े चौर से गुजरती 'दुधा' नामक गाँव के निकट से होकर गंदौल एवं पटोरी गाँवों को आती है। यहाँ से यह पश्चिमाभिमुखी होकर 'अमौली' ग्राम के पूरब भाग से ही दक्षिण मुड़ती है तथा फिर एक बड़े चौर से बहती हुई कंदाहा तथा देवन-गोपाल गाँवों के मध्य में आती है। यह कंदाहा भी प्राचीन और ऐतिहासिक ग्राम है, जो 'घेमुरा-धार' के पश्चिमी तट पर (दाहिनी ओर) है। 'देवन' गाँव कंदाहा के सामने नदी के पूर्वी किनारे में स्थित है। इसी 'देवन-वन' के संबंध में किंवदंती है कि कोसी नदी **देवन** नामक ऋषि की कन्या थी। एक दिन ऋषि की पूजा-सामग्री में कौशिकी के शिर का बाल पड़ गया था, जिससे क्रुद्ध होकर ऋषि ने अपनी कन्या को शाप दे दिया कि तू नदी बन जा। उसी समय से वह कन्या **कौशिकी** नामक नदी बन गई। जो हो, पर यह 'देवन वन' निश्चय ही कोई ऋषि-आश्रम था। उक्त दोनों गाँवों के मध्य से बहती घेमुरा 'झिटकी' ग्राम को आती है, जहाँ दरभंगा जिले के मधेपुर से 'बनगाँव' आनेवाला मार्ग 'घेमुरा' को पार करता है। इसी घाट के पूरब में सहरसा जिले का एक विख्यात ग्राम 'बनगाँव' है। इस गाँव के नैऋत्य कोण में पूर्व कथित 'महिषी' है और इन्हीं दोनों ग्रामों के मध्य से 'घेमुरा' नदी की धारा दक्षिण की ओर बहती है।

बनगाँव पौराणिक तथा ऐतिहासिक ग्राम है और मेरे विचार से तो **अंगुतराप** का यही **'आपण'** निगम है, जिसकी चर्चा 'मज्झिमनिकाय' (२,१,४) तथा महावग्गो (६,५,२,१५) में है। इस निकायग्रंथ में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध एक बार चर्या करते हुए अंग देश के 'भद्दिया' से चलकर अंगुत्तराप के 'आपण' निगम में गये। भद्दिया का अवशेष आज-कल के भागलपुर जिले का 'भितिया' गाँव है, जो मुंगेर के तारापुर से थोड़ा अग्नि कोण में झुककर दक्षिण दिशा में बारह मील दूर है और बेलहर से सीधे पूर्व में ७ मील पर है। भद्दिया से चलकर भगवान् बुद्ध ने अपने १२०० शिष्यों के साथ तारापुर से पूर्व भाग से ही शंभुगंज होते हुए 'सुलतान गंज' में गंगा को पार किया होगा और तब ये उत्तरी मुंगेर जिले के 'चौथम' स्थान से होते आपण निगम (बनगाँव) पहुँचे होंगे। आपण निगम बनगाँव ही था, अपने इस

कथन की पुष्टि में मैं कहना चाहूँगा कि गंगा के दक्षिण भाग में अंग देश की पश्चिमी सीमा किऊल नदी की धारा थी, जो लखीसराय से सूर्यगढ़ा तक विस्तृत थी। किऊल नदी का पश्चिमी भाग 'क्रिमिला विषय' में था, जो मगध के क्षेत्र में आ गया था। इसी के सामने गंगा के बाएँ (उत्तरी) भाग में वलिया-लखमिनिया के साथ खगड़िया का भाग तथा इसके उत्तर, जीवछ-कमला, तिलयुगा और करेह नदी के संगम से पूर्व का भाग ही अंगुत्तराप था। कमला-बागमती तथा तिलयुगा के संगम के पश्चिम में तथा बूढ़ी गंडक के गंगा-संगम के पश्चिम में मिथिला या तीरभुक्ति प्रदेश था। इस प्रकार, अंगुत्तराप में उत्तरी मुँगेर जिले का पूर्वी भाग तथा सहरसा जिले के ही भाग आते हैं, अर्थात् घघरी नदी और कौशिकी की धाराओंवाले भू-भाग 'अंगुत्तराप' कहलाते थे, जो सर्वदा जल से भरे रहते थे। इस भाग में प्रसिद्ध 'आपण' निगम वनगाँव को छोड़कर दूसरा कोई स्थान नहीं हो सकता है। दूसरी बात यह है कि आपण निगम में 'पोत्तलीय' नामक एक प्रसिद्ध गृहस्थ था, जो भगवान् बुद्ध से दीक्षित हुआ था। इसी 'आपण निगम' के निकट 'केणिय' नामक एक जटिल का निवास था, जिसने मैरेय तैयार करके बुद्ध-संघ को समर्पित किया था और तभी से बुद्ध ने मैरेय-पान की छूट संघ के लिए दे दी थी। इसने बौद्ध-संघ के १२०० भिक्षुओं को अपने यहाँ भोजन पर बुलाया था। मेरा निश्चित मत है कि 'वनगाँव' से डेढ़ मील पश्चिमोत्तर कोण में स्थित 'कंदाहा' ग्राम केणिय-ग्राम था, जो 'केणियवाह' कहलाता था और कंदाहा उसी 'केणियवाह' का अपभ्रंश है। इसी प्रकार, 'सुत्तनिपात' नामक ग्रंथ के 'सेल-सुत्त'—३३ में भी 'आपण-निगम' की चर्चा है। आपण निगम के समीप का निवासी 'सेल' नामक ब्राह्मण उस समय 'केणियवाह' में पहुँचा था, जिस समय बुद्ध अपने शिष्यों के साथ केणिय जटिल के द्वार पर भोजन के लिए गये थे। यह 'सेल' ब्राह्मण भी 'सिहउल' ग्राम का होगा, जो कंदाहा से तीन मील उत्तर में है। 'सिहउल' नाम 'सेल-कूट' का अपभ्रंश लगता है। इस यात्रा-क्रम में भगवान् बुद्ध 'आपण-निगम' के पास 'जाति-वन' नामक स्थान में ठहरे थे। यही 'जातिवन' आज 'देवन-वन' के नाम से विख्यात है, जो बाद में देवों का वन कहलाया। यह 'देवन-वन' कंदाहा के सटे पूर्व में है और वनगाँव (आपण-निगम) से सिर्फ एक मील उत्तर में वर्त्तमान है। यही कारण था कि वनगाँव (आपण-निगम) बुद्ध के काल से ही प्रसिद्ध स्थान था, जो पाल-राजाओं के शासन-काल तक रहा और आज भी समस्त उत्तर बिहार में यह ग्राम प्रसिद्ध बना हुआ है। यह सर्वदा बौद्ध क्षेत्र रहा है, इसीलिए 'महिषी' ग्राम में किसी बौद्ध भक्त ने 'उग्रतारा' मूर्त्ति की स्थापना की थी। अपनी प्राचीन संस्कृति के कारण ही 'वनगाँव' विग्रहाल (तृतीय) के उस ताम्रपत्र को अपनी भूमि में सँजोये रहा, जो ताम्रपत्र 'कंचनपुर' के स्कंधावार से जारी किया गया था और जिसकी लंबाई १३·४'', चौड़ाई १२·२'' तथा मुटाई १·५'' इंच है एवं वजन ४२५ तोला, अर्थात् ५ सेर ५ छटाँक है। यह ताम्र-शासन विग्रहपाल तृतीय ने अपने शासन के १७ वें वर्ष में जारी किया था। इस ताम्र-पत्र की पूरी पंक्तियों को मैं उद्धृत नहीं करूँगा; पर उस अंश को उद्धृत करना अवश्य चाहूँगा, जिसमें पाल-राजाओं के पूर्व पुरुष गोपाल को भगवान् बुद्ध के रूप में वंदना की गई है और ताम्रपत्र की ३७वीं पंक्ति में 'बुद्धभट्टारकमुद्दिश्य' यह वाक्य भी उट्टंकित है। गोपाल की वंदना वाली पंक्तियाँ इस प्रकार है :

मैत्रीं कारुण्यरत्न-प्रमुदितहृदयः प्रेयसीं सन्दधानः
सम्यक् सम्बोधिविद्यासरिदमलजलक्षालितो जानुपङ्कः ।
जित्वा यः कामकारि-प्रभवमभिभवं शाश्वतीं प्राप शान्तिं
स श्रीमान् लोकनाथो जयति दशबलो यश्च गोपालदेवः ॥

अब आप समझ सकते हैं कि यह ताम्र-पत्र जिस क्षेत्र में जारी किया गया था और आज तक यह जहाँ पड़ा था, वह भाग निश्चय ही एक प्रसिद्ध बौद्ध-क्षेत्र था । अतः, अंगुत्तराप-प्रदेश का 'आपण' निगम 'वनगाँव' के अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान नहीं हो सकता, जहाँ स्वयं बुद्ध चारिका करते हुए गये थे । महिषी की उग्रतारा-मूर्त्ति विग्रहपाल के समय में ही प्रतिष्ठित हुई, ऐसा मेरा अनुमान है । आज विहार प्रदेश में जितने भी प्राचीन और वड़े ग्राम हैं, उनमें 'वनगाँव' अन्यतम है । यह वड़े-वड़े सिद्ध-संतों, विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों की जन्म-भूमि वनने का गौरव प्राप्त कर चुका है ।

धेमुरा नदी इसी वनगाँव के पश्चिम से वहकर 'महिषी' के दक्षिण में आती है और 'नहरथा' गाँव के पास अपनी दाहिनी भुजा 'पुरइन' को समेट कर तुरत दक्षिण दिशा में कोसी की आधुनिक धारा से मिल जाती है । इसी स्थान पर कोसी नदी भी अपने तट-बंधों को लाँघकर वाहर आती है । किंतु, सन् १९६१-६२ ई० के समय तो यही धेमुरा नदी ही मुख्य कोसी नदी वन गई थी । उसके पहले यह 'धेमुरा' नहरथा गाँव के वाद तिलयुगा की एक उपधारा '**गोही**' नदी से मिलती थी और तव उसको लेकर मुँगेर की सीमा पर तिलयुगा तथा करेह-कमला की संयुक्त धाराओं से सम्मिलित होकर आगे 'घघरी' नदी के रूप में प्रकट होती थी । किंतु, अव तो इस भाग में न तो तिलयुगा है, न गोही और न वागमती अथवा न कमला का ही कहीं नाम है । अव तो एकमात्र 'कोसी' का ही पूरा साम्राज्य है ।

तिलावह :

'तिलावह' और 'परवाने' नामक नदियों का उद्गम-स्थान एक है और यह कोई नहीं कह सकता कि इनमें कौन मुख्य है और कौन उपशाखा । कुछ सौ वर्ष पहले कोसी मुख्य रूप से तिलावह और परवाने—इन दो नदियों की धाराओं से मिलकर वह रही थी; किंतु जब वह पूर्व दिशा की ओर बढ़ गई, तव ये दोनों धाराएँ स्वतंत्र होकर अपने-अपने नाम से अभिहित हुई थीं । किंतु, फिर इधर जब कोसी पश्चिम की ओर आई, तव सन् १९२२ से १९३७ ई० तक इन्हीं दोनों धाराओं से वहती रही ।

कोसी नदी भीमनगर से दक्षिण चलकर 'शिवनगर' गाँव को आती थी और यहीं दो भागों में वँट जाती थी । यहाँ की पूर्वी धारा से **वैवाह** (धसान) और **चिलौनी** नामक नदियाँ वनती हैं और पश्चिमी धारा से **परवाने, तिलावह, वरहरी** और **सोनेह** नामक चार सरिताएँ अपना स्वरूप ग्रहण करती हैं । पश्चिमी प्रवाह शिवनगर से दक्षिण चलकर रतनपुर-वैसी ग्राम को आता है और वहाँ से थोड़ा नैऋत्य कोण में झुकता है । उसके वाद इसमें दो धाराएँ वनती हैं, जिनमें पश्चिमी धारा 'तिलावह' और पूर्वी धारा 'परवाने' कहलाती है । स्थानीय लोग परवाने को **पंडुआ** भी कहते हैं और कुछ विद्वान् इसे '**पीतवहा**' की संज्ञा भी देते हैं ।

यहाँ तिलावह के पूर्व भाग में 'निःशंकपुर' परगना है, जिसकी पश्चिमी सीमा 'तिलावह' की धारा है। निःशंकपुर उस समय वसा होगा, जिस समय गौड़ के शासक वल्लालसेन ने मिथिला के अधिपति नान्यदेव पर विजय प्राप्त की थी। इस विजय के उपलक्ष्य में वल्लालसेन को उसके पिता ने 'निःशंक-शंकर' की उपाधि से विभूषित किया था। इसी उपाधि के स्मारक-रूप में वल्लाल सेन ने गौड़ की पश्चिमी सीमा पर 'निःशंकपुर' नामक गाँव वसाया था, जहाँ उसके कर्मचारियों का निवास था। निश्चय ही, उस समय कोसी 'तिलावह' की ही धारा से बहती थी, जिसके पश्चिम में हरिसिंह देव के मंत्री वीरेश्वर ने 'वीर-वाँध' वँधवाया था।

तिलावह की धार जहाँ से अलग होती है, वहाँ से पश्चिम में 'वसौनीपट्टी' नामक गाँव है और वहीं पूर्व में 'वैसी' गाँव वसा है। वैसी में प्राचीन किले का ध्वंसावशेष है। तिलावह यहाँ से नैऋत्य कोण में चलती है, जहाँ इसके दाहिने किनारे 'करजैन' गाँव स्थित है। करजैन से लगभग दो मील दक्षिण बढ़ने पर इसके वाएँ भाग में 'पदुमनगर' ओर यहाँ से नैऋत्य कोण में लगभग दो ही मील दूर पर तिलावह के दाहिने तट की ओर 'मोतीपुर' है। कोसी नदी जब आज की धारा से नहीं वहती थी, तव कुनौली या डगमरा से जो मार्ग अग्नि-कोण में चलता हुआ प्रतापपुर तथा भवानीपुर जाता था, वह इसी 'मोतीपुर' में 'तिलावह' को पार करता था। मोतीपुर से तिलावह नैऋत्य कोण की ओर वहती है और क्रमशः नोरहा, परसरमा, धरमपट्टी एवं सिमराही गाँवों को पहुँचती है। धरमपट्टी इसके दाहिने तट पर और सिमराही वाएँ तट पर पूर्व में स्थित हैं। यहाँ भी वह मार्ग तिलावह को पार करता है, जो पहले निर्मली से पूर्व की ओर चलता था और प्रतापपुर तथा भवानीपुर को जाता था। सिमराही के वाद इसके किनारे रामपुर, गँभरिया तथा 'सैत' नामक गाँव मिलते हैं। यहाँ से दक्षिण 'सत कोदरिया' गाँव है, जहाँ से 'तिलावह' नदी पश्चिम दिशा में थोड़ी झुकती हुई नैऋत्य कोण में चल कर 'वरहट' गाँव को आती है। यहाँ इसके दाहिने किनारे की ओर 'सिगियावाँ' गाँव दिखाई पड़ता है। 'वरहट' से तिलावह सीधे दक्षिण दिशा में बढ़ती है और तब अपने वाएँ भाग में 'परसा' ग्राम को और वहाँ से थोड़ा और दक्षिण वढ़ने पर अपने दाहिने भाग में 'वेलोखर' ग्राम को देखती है। यहाँ से लगभग दो मील दक्षिण इसके दाहिने तट पर स्थित 'थुम्हा' गाँव मिलता है। इसी 'थुम्हा' में सुपौल से पूर्व की ओर 'पिपरा' जाने वाली सड़क तिलावह को पार करती है। थुम्हा में प्रत्येक सप्ताह सार्वजनिक बाजार लगता है और एक सरकारी बाजार भी है। थुम्हा से दक्षिण बढ़ने पर तिलावह की बाईं ओर 'बसहा' ग्राम और थोड़ी दूर दक्षिण बढ़ने पर इसकी दाहिनी ओर तुलापट्टी एवं रामनगर नामक गाँव स्थित हैं। इसी रामपुर के अग्नि कोण में और तिलावह के वाम पार्श्व में 'वभनी भोलवा' नामक गाँव है। सर्वसाधारण में इसका दूसरा नाम 'भववाबा स्थान' प्रचलित है। भववावा का जन्म इसी स्थान में हुआ था, जो आगे चलकर प्रसिद्ध समाज-सेवी हुए। उनकी मृत्यु शाहजहाँ के शासन-काल में आज से लगभग ३५० वर्ष पूर्व हुई थी। उनका स्मारक 'वभनी भोलवा' गाँव में बना था, जो आज भी है।

तिलावह नदी 'बभनी भोलवा' से थोड़ा नैऋत्य कोण में झुककर चलती है और सुपौल से सिंहेश्वर स्थान जानेवाले मार्ग पर अवस्थित 'गँभरिया' नामक गाँव को आती है, जो इसके बाएँ किनारे बसा है। इसी गँभरिया गाँव के 'महाराज सोनथ' थे, जिनका दो सौ वर्ष पुराना स्मारक इस गाँव में है। सोनथ महाराज एक प्रसिद्ध धार्मिक एवं समाज-सेवी पुरुष थे। यहाँ से तिलावह सीधे नैऋत्य कोण में बहती है और मकुना तथा रकेया पट्टी नामक गाँवों को आती है। यहाँ तिलावह की धार से दो-ढाई मील पश्चिम 'बरुआरी' ग्राम है, जहाँ के शिव-लिंग के संबंध में कहा जाता है कि इसकी स्थापना कपिलमुनि ने की थी। इस शिवलिंग पर प्राचीन लिपि में कुछ लिखा भी है, जो घिस जाने के कारण पढ़ा नहीं जा सकता है।

रकेया पट्टी से तिलावह दक्षिण की ओर चलती है और 'भतरहा' गाँव के सटे पश्चिम आकर दक्षिण की ओर दौड़ती है। यहाँ इसके दाहिने भाग में पँचगछिया रेलवे स्टेशन दिखाई पड़ता है, जो मानसी-सुपौल-रेल-लाइन का स्टेशन है और जिसकी चर्चा 'धेमुरा' के प्रसंग में भी आई है। यहाँ से तिलावह दक्षिण की ओर चलकर बिशुनपुर गाँव के पूर्वी भाग में आती है, तो थोड़ी दूर के लिए अग्नि कोण में झुकती है और 'वरदहा' गाँव से जा टकराती है। 'वरदहा' इसके बाएँ तट पर स्थित है। यहाँ से दक्षिण चलने पर और 'पलुआहा' नामक ग्राम के पहुँचने के पहले ही उक्त रेल-लाइन 'तिलावह' को पार करती है, जो सहरसा से मधेपुरा और मुरलीगंज होते हुए पूर्णिया को जाती है। यह रेल-पुल सहरसा नगर से सिर्फ डेढ़-दो मील उत्तर-पूर्व कोण में है। 'पलुआहा' ग्राम 'तिलावह' के दाहिने किनारे तथा सहरसा-मधेपुरा-सड़क पर स्थित है। यहाँ से तिलावह नैऋत्य कोण में दौड़ती हुई सोलिंदाबाद गाँव के पूर्व आती है और मानसी से उत्तर की ओर सहरसा जानेवाली रेल-लाइन से सट जाती है। सोलिंदा-बाद गाँव सहरसा शहर के समीप ही दक्षिण में है। यहाँ से दक्षिण चलने पर क्रमशः इसके किनारे बमसेन, सहुरिया, मोहनपुर तथा बलुआहा ग्राम अगल-बगल में स्थित मिलते हैं। इसके बाद दक्षिण में तिलावह के दाहिने किनारे अमरपुर गाँव है और इसी गाँव के पश्चिम में सोनबरसा कचहरी रेलवे स्टेशन है। अमरपुर से तिलावह पहले नैऋत्य कोण में मुड़ती है और फिर अग्नि कोण में चलती हुई 'रामपुर' पहुँचती है, जो नदी के वाम पार्श्व में है और जहाँ एक ऊँचा भग्न टीला है। यह रामपुर मुँगेर जिले की सीमा पर है और सिमरी-बख्तियारपुर से ५ मील उत्तर में है। इस गाँव के दक्षिण में आकर तिलावह पूर्वोत्तर कोण में अपनी धारा को ऐंठती है और मुँगेर-सहरसा जिलों की सीमा बनती हुई 'बंसीरउता' गाँव के दक्षिण में आकर उससे सट जाती है। इसी 'बंसीरउता' में एक बार जमीन की खुदाई से कुछ प्राचीन प्रस्तर-मूर्त्तियाँ मिली थीं, जो २००० वर्ष पूर्व की बनी बतलाई गई थीं। इसी स्थान पर एक छोटी नदी 'सोनेह' इसमें प्रवेश करती है। इसके बाद 'तिलावह' मुँगेर और सहरसा जिलों की सीमा बनती अग्नि कोण में चलती है और 'लगमापट्टी' नामक गाँव के दक्षिण भाग में आकर अपनी भगिनी नदी 'परवाने' से संगम करती है। यह संगम उत्तरी मुँगेर जिले के भटौनी गाँव के उत्तर में है। परवाने से संयुक्त होकर तिलावह नदी उत्तरी मुँगेर जिले की पूर्वोत्तर सीमा के सिमरी-बख्तियारपुर थाने में घुसती है और चौथम थाने में पहुँचकर कोसी से संगम करती है, जो पहले यहाँ 'घघरी' नदी से संगम करती थी।

सोनेह :

सोनेह कोई बड़ी नदी नहीं है। यह 'परवाने' नदी की टूटी हुई धार है। आज यह सिंहेश्वर स्थान के नैऋत्य कोण में स्थित दलदली चौर से प्रवाहित होती है। इसके उद्गम-स्थान के पश्चिम 'रतनपुरा' और उत्तर में 'बराही' गाँव हैं। सोनेह भी अपने उद्गम से दक्षिण दिशा में ही चलती है और आगे बढ़ने पर इसकी दाहिनी ओर भेलवा और बाईं ओर (पूर्व में) गोढ़ियारी गाँव दीख पड़ते हैं। भेलवा ग्राम बहुत प्राचीन जान पड़ता है। गाँव का प्राचीन टीला, पुराने वृक्षों तथा झाड़ी-झुरमुटों से आच्छादित है। पुरातात्त्विकों का खयाल है कि यह भग्नावशेष कम-से-कम एक हजार वर्ष प्राचीन है। ऐसा अनुमान इसकी खुदाई में मिली प्राचीन ईंटों को देखकर किया गया था। भेलवा आज मधेपुरा-अंचल का गाँव है।

सोनेह नदी भेलवा से जब दक्षिण की ओर ही चलती है, तब लगभग दो मील बढ़ने पर इसके बाएँ किनारे 'भवन टिकठी' नामक गाँव मिलता है। यह गाँव मधेपुरा से पश्चिम तीन मील दूर है। 'सोनेह' जब भवनटिकठी के दक्षिण में स्थित मटियाही गाँव पहुँचती है, तब यहाँ इसे सहरसा-पूर्णिया रेल-लाइन के पुल के नीचे से सरकना पड़ता है। साथ ही सहरसा-मधेपुरा-सड़क भी इसी मटियाही में 'सोनेह' के ऊपर से पार करती है। फिर, इसी गाँव के पूर्वोत्तर कोण में 'परवाने' नदी की एक उपधारा सोनेह से संगम करती है, जो मधेपुरा नगर के पश्चिम में उससे (परवाने से) फूटती है। इसी संगम पर सदर और मधेपुरा अनुमंडलों की सीमा भी सटती है। इस संगम-स्थल से तथा मटियाही गाँव से सोनेह थोड़ा-सा नैऋत्य कोण में झुकती है और फिर जब दक्षिण दिशा में बढ़ती है, तब इसके दाहिने किनारे 'लछमिनिया' गाँव मिलता है, जहाँ से दक्षिण चलकर यह दो धाराओं में विभक्त हो जाती है। पूर्वी धार सहुरिया, सिलेत और करहिया गाँवों से होते 'परवाने' नदी से मिल जाती है। यह मिलन 'भवटिया' से तीन मील उत्तर में होता है। किंतु, पश्चिमी धार 'सोनेह' नाम से ही 'सौर-बाजार' को आती है। सौरबाजार सदर अनुमंडल का एक प्रसिद्ध अंचल-केंद्र है, जिसमें ७१ गाँव पड़ते हैं। सन् १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार इस अंचल की कुल आबादी १०,२३० थी। सौर बाजार में प्राचीन भग्नावशेष भी दीख पड़ते हैं। यह सोनेह नदी के पश्चिम भाग में स्थित है। यहाँ से सोनेह जब दक्षिण की ओर बढ़ती है, तब इसके बाएँ तट पर 'कचरदाऊँ' तथा दाहिने तट पर भवानीपुर ग्राम स्थित मिलते हैं। यहीं इसके पश्चिमी भाग में 'मउरा' गाँव है, जहाँ के मंदिर में दुर्गा की एक तेजस्विनी प्राचीन मूर्त्ति है और वहाँ अन्य कई देव-देवियों की भी प्रस्तर-प्रतिमाएँ हैं। मंदिर का निर्माण मुस्लिम-शासनकाल में हुआ था, ऐसा अनुमान मंदिर की बनावट से किया जाता है। भवानीपुर से सोनेह दक्षिण दिशा में चलकर पूर्वोक्त 'बंसी रउता' ग्रामआती है और नैऋत्य कोण में मुड़कर पूर्वोक्त 'तिलावह' नदी में प्रवेश कर जाती है।

परवाने :

परवाने का दूसरा नाम 'पंडुआ' तथा 'पीतवाहा' भी है। इसके मूल उद्गम के संबंध में 'तिलावह' के प्रसंग में कहा गया है कि 'भीमनगर' से दक्षिण 'शिवनगर' गाँव के पास कोसी दो भागों में बँटती थी, जिनमें से पश्चिमी धार 'रतनपुर—बैंसी' गाँव के पास फिर दो

भागों में विभक्त होती है और इसी की पूर्वी धारा का नाम 'परवाने' है। अतः, परवाने का उद्गम-स्थल 'रतनपुर—वैसी' ही माना जायगा। 'वैसी' का नाम 'वसौनपट्टी' भी है, जो रतनपुर के निकट दक्षिण में है।

पहले 'परवाने' सहरसा जिले की प्रसिद्ध नदी थी और पुराकाल में कोसी इस धारा से तो वहती ही थी; पर इधर सन् १९२२ ई० के बाद भी यह 'परवाने' तथा 'तिलावह' के प्रवाह से मिलकर बही है। वैसी-वसौनीपट्टी से जब यह तिलावह से अलग होकर स्वतंत्र नदी के रूप में दक्षिण की ओर चलती है, तब इसके दाहिने भाग में 'पदुमनगर' गाँव मिलता है, जो तिलावह के बायें भाग में स्थित है। इसके आगे परवाने के वाम पार्श्व में 'बउराहा' नामक गाँव है, जो पदुमनगर से दो मील दूर अग्निकोण में है। बउराहा ग्राम के पश्चिम-भाग से दक्षिण की ओर गुजरती 'परवाने' बिशुनपुर-दौलत पहुँचती है, जहाँ यह फिर दो भागों में विभक्त हो जाती है। इनमें से पूर्वी धार 'हरिपुर' नामक गाँव के पास उस **वैंवाह** (धसान) नदी से मिल जाती है, जो 'वैंवाह' पूर्वकथित 'शिवनगर' गाँव के पास से तिलावह और परवाने के संयुक्त मूल स्रोत से अलग होती है। किंतु, परवाने की पश्चिमी या दाहिनी शाखा अपने नाम से ही नैऋत्यकोण से झुककर बहती हुई 'इमामगंज' गाँव को आती है। यहाँ से दक्षिण परवाने नदी जब राम-विशुनपुर तथा राघोपुर गाँव के पास जाती है, तव यह अपनी बिछुड़ी हुई धार से मिलते-मिलते भी नहीं मिल पाती है। रामविशुनपुर गाँव दोनों धाराओं के मध्य में स्थित है और परवाने के बाएँ किनारे है; किंतु 'राघोपुर' गाँव इसकी दाहिनी ओर खड़ा दीख पड़ता है। दोनों गाँव प्राचीन ग्राम हैं और दोनों में ध्वंसावशेष के चिह्न वर्त्तमान हैं। एक बार रामविशुनपुर के टीले से एक ऐसा मृत्पात्र मिला था, जिसमें कई प्रकार की वस्तुएँ थीं। स्थानीय लोगों का कहना है कि टीले के भीतर आज भी अनेक प्राचीन वस्तुएँ वर्त्तमान हैं। राघोपुर का टीला भी उतना ही प्राचीन लगता है। यह गाँव उस मुख्य मार्ग पर है, जहाँ से होकर सुपौल से भीमनगर जानेवाली पक्की सड़क गुजरती है। राघोपुर से दक्षिण चलने पर 'परवाने' धरहरा गाँव से पूर्व की ओर पहुँचती है। धरहरा में भी प्राचीन किले का ध्वंसावशेष है, जिसके संबंध में किंवदंती है कि राजा कर्ण ने इस किले को बनवाया था। इस टीले से भी अति प्राचीन ईंटें और पत्थर के टुकड़े पाये गए हैं और अब भी टीले की ऊँचाई बहुत है। इस स्थान से दक्षिण बहती हुई परवाने नदी डुमरी, लालपुर और बनगायपट्टी गाँवों को पहुँचती है। लालपुर के दक्षिण से यह नैऋत्य कोण में मुड़ती है और पिपरा गाँव के निकट पश्चिम में आती है। पिपरा में अंचल-कार्यालय तथा कोसी-बराज का अनुमंडलीय कार्यालय भी है, जो एक पक्की सड़क द्वारा बराज से जुड़ा है। यहाँ तारा देवी का एक अति प्राचीन मंदिर है, जो जीर्ण हो गया है। प्रतिवर्ष विजया दशमी के अवसर पर यहाँ एक बड़ा मेला भी लगता है, और एक बड़ी संख्या में लोग देवी के दर्शन और पूजन करते हैं। सुपौल से पिपरा जानेवाली सड़क इसके निकट पश्चिम में परवाने को एक पुल द्वारा पार करती है। यहाँ से फिर दक्षिण दिशा में चलती हुई परवाने अमाहा, विशुनपुर तथा कन्हुआ गरियारी पहुँचती है, जहाँ से यह टेढ़ी-मेढ़ी चलती हुई मानपुर गाँव को आती है और तब पिपराही पहुँचती है। पिपराही से

पश्चिम और परवाने के दाहिने किनारे 'औराही' गाँव दीखता है, जो प्राचीन ध्वंसावशेष से युक्त है। यहाँ से दक्षिण चलकर जब यह 'रूपौली' गाँव को आती है और इसके दक्षिण जाकर जब अग्निकोण में झुक कर बहने लगती है, तब रामपट्टी गाँव के पास इससे **'बरहरी'** और **'बंवाह'** नामक धाराएँ आ मिलती हैं। बैंवाह को ही वसान भी कहते हैं और इसका भी वही मूल स्रोत पहले भीमनगर तथा शिवनगर तक था, जो 'परवाने' तथा 'तिलावह' का था। परवाने और बैंवाह का यह संगम सिंहेश्वर स्थान तथा गौरीपुर नामक गाँव से उत्तर में थोड़ी ही दूर पर है। बैंवाह का अपना एक अलग अस्तित्व है; पर 'बरहरी' एक स्रोतस्विनी है, जिसकी चर्चा यहाँ अपेक्षित है।

पिपरा गाँव के पास उसके अग्निकोण में स्थित दलदली चौर से **'बरहरी'** की एक धारा प्रवाहित होती है। यह **'बरहरी'** की मूल धारा न होकर परवाने की उपधारा है, जो अब लुप्त हो चुकी है। उक्त चौर से प्रवाहित होकर बरहरी धारा परवाने के समानांतर दक्षिण की ओर चलती है और अमाहा, राजपुर, रामपुर, मानपुर, पिपराही और रूपौली गाँवों को आती है। पिपराही और रूपौली—ये दोनों ग्राम बरहरी और परवाने की सँड़सी में दबे हुए हैं। ये सभी गाँव बरहरी के दाहिने भाग में बसे हैं और इसके पूरे प्रवाह के वामपार्श्व में थोड़े-से ग्राम हैं, जिनमें से डंडाही, चंपानगर, बैरवना आदि प्रमुख हैं।

परवाने नदी रामपट्टी में उक्त 'बरहरी' और 'बैंवाह' के जल-भांडार को ग्रहण करके प्रसिद्ध तीर्थस्थल **'सिंहेश्वर स्थान'** को पहुँचती है। यह बिहार-प्रदेश का ही नहीं, बल्कि समस्त उत्तर भारत का एक पवित्र तीर्थ-स्थान है, जो मधेपुरा नगर से चार मील उत्तर में बसा है। शिवरात्रि के अवसर पर हरिहर-क्षेत्र (गंगा-गंडकी का संगम, सोनपुर) के मेले की तरह यहाँ भी हाथियों, घोड़ों तथा अन्य प्रकार के मवेशियों का मेला लगता है, जिसमें लाखों नर-नारी सम्मिलित होते हैं। स्थानीय लोगों का कहना है कि वर्त्तमान शिवलिंग पर्वत-जैसे ऊँचे और विस्तृत टीले पर था, जिसे कोसी नदी (जब परवाने की धारा से बहती थी) ने धो-पोंछ कर बराबर कर दिया है। अब तो शिवलिंग मंदिर के भीतर एक गढ़े में प्रतिष्ठित है। यह मंदिर गौरीपुर में है, जिसकी ईंटें बहुत ही प्राचीन हैं। लोक-धारणा है कि मंदिर को किसी काल में स्वयं विष्णु ने बनाया था। इस पवित्र स्थान के संबंध में कुछ लोगों का यह भी कहना है कि भगवान् शिव के तीन सींगों में विष्णु-द्वारा स्थापित शिवलिंग यही है, जिससे इस स्थान का नाम 'शृंगेश्वर' पड़ा। दूसरी किंवदंती है कि विभांडक के तपस्विपुत्र ऋष्यशृंग ऋषि का यह आश्रम है, जो कोसी के तट पर था और यहीं से अंग-देश के अधिपति रोमपाद ऋष्यशृंग को नाव पर चढ़वाकर 'चंपानगरी' लिवा लाये थे। इस प्रसंग की चर्चा पहले भी विशद रूप से की जा चुकी है।[१] यह भी कहा जाता है कि पाँचों पांडव भी अपनी तीर्थ-यात्रा में यहाँ आये थे। इन सारी बातों के संबंध में प्रामाणिकता के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ये बातें अतिशय प्राचीन हैं। साथ ही कोसी नदी का प्रामाणिक धारा-मार्ग भी

---

१. देखिए—पुस्तक का पृ० ३४६-४७।

इंच-इंच भूमि पर बदलता रहा है। किंतु, इस बात में किसी का भी मत-द्वैध नहीं हो सकता कि सिंहेश्वर-स्थान पौराणिक काल से ही अतिप्राचीन और परम पवित्र स्थल रहा है। यही कारण है कि मिथिला-माहात्म्य में मिथिला-क्षेत्र की परिक्रमा सिंहेश्वर-स्थान से ही आरंभ करने को कहा गया है। इससे इतना आभास अवश्य मिलता है कि मिथिला की पूर्वी सीमा किसी काल में सिंहेश्वर स्थान तक थी। यहाँ 'परवाने' और 'बैंवाह' के संगम पर पक्का घाट भी बना है। बरसात में घाट की ओर जब पानी ऊँचा उठ जाता है, तब भक्तलोग मंदिर के दक्षिणी-द्वार से प्रवेश करते हैं।

सिंहेश्वर स्थान से परवाने नदी दक्षिण की ओर ही चलती है और 'जोतनार' गाँव के पश्चिम में आती है। जोतनार, लगता है, **'जातिस्मर'** तीर्थ है, जिसके ह्रद में स्नान करने से बहुत बड़ा पुण्य प्राप्त होता है। बुकानन ने भी 'जोतनरहरि' नामक एक तीर्थ की चर्चा अपनी पूर्णिया-रिपोर्ट में की है, किंतु उसने इसे मनिहारी के नैऋत्य कोण में कोसी-गंगा-संगम पर बतलाया है। बुकानन इसे बहुत बड़ा तीर्थ बतलाता है। यहाँ से 'परवाने' अपने पूर्व-भाग में बहनेवाली नदी 'चिलौनी' की बगल से गुजरने लगती है। यह जोतनार से दक्षिण चलकर मधेपुरा नगर के पश्चिम-उत्तर कोण में पहुँचती है और प्रायः तीन शाखाओं में बँट जाती है। नैऋत्य कोण में चलने वाली शाखा 'मटियाही' गाँव के पास उस **'सोनेह'** में जल डालती है, जो 'सोनेह' सिंहेश्वर-स्थान के दल-दल-युक्त चौर से चलती है और जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। इसकी पूर्वी शाखा अग्निकोण में बढ़कर चिलौनी धार से मिल जाती है; किंतु मध्य भाग की पतली शाखा 'भिथरी' रेलवे-स्टेशन (मानसी-सहरसा लाइन) के पास से दक्षिण की ओर चलती हुई 'गोंठखोपती' गांव के पास कोसी की चिलौनी नामक धारा से मिल जाती है। परवाने, पंडुआ तथा पीतवाहा की इतनी ही कहानी है।

कोसी की चिलौनी-धार :

चिलौनी के उद्गम का मूल भाग भी वही है, जो तिलावह तथा परवाने का है। कोसी शिवनगर में आकर जहाँ दो भागों में बँटती है, उनमें पूर्वी धार से 'चिलौनी' और बैंवाह (धसान) नामक नदियाँ बनती हैं। यह पूर्वी धार शिवनगर से दक्षिण एक मील चलकर दो बाहुओं का क्रोड बनाती है और फिर परस्पर मिलकर 'रतनपुर' तथा 'रामपुर' गाँवों को आती है। यहाँ यह 'बैंसी' गाँव के पूरब से ही 'बरमोतर' नामक गाँव को पहुँचती है, जिसके पूर्व-भाग में **'बलुआ'** ग्राम है। यह वही बलुआ है, जहाँ के निवासी केंद्रीय सरकार के प्रतिष्ठा-प्राप्त और विशिष्ट मंत्री **श्री ललितनारायण मिश्र** हैं। मिश्र ने आजादी की लड़ाई में पूरा योगदान किया था। इतना जान लेना आवश्यक है कि यह नदी अब इन भागों में प्रायः समाप्त हो गई है और सर्वत्र इसकी धारा में कृषि-कार्य होने लगा है। 'बरमोत्तर' से दक्षिण चलने पर इसके दाहिने किनारे परमानंद-पुर, सितुहर तथा सिरिपुर नामक गाँव दीख पड़ते हैं। फिर, सिरिपुर से यह कोसी-धार नैऋत्य-कोण में मुड़ती है और चिलौनी गाँव के निकट पश्चिम में आती है। इसी चिलौनी के पास से बहने के कारण कोसी की यह धार 'चिलौनी' नाम से अभिहित होती है। चिलौनी गाँव के दक्षिण में इस धारा के किनारे दीवान-गंज तथा

हरिपुर गाँव भी हैं। इसी हरिपुर में परवाने की वह शाखा चिलौनी-धार में आकर मिलती है, जो 'विशुनपुर दौलत' गाँव के पास से फूटती है। फिर, हरिपुर के दक्षिण नदी के दाहिने तट पर 'हुलास' गाँव है, जहाँ प्राचीन किले के दो ध्वंसावशेष हैं। इसके दक्षिण चलने पर यह लउकाहा तथा थाल्हा नामक ग्रामों को आती है। थाल्हा में ही चिलौनी दो धाराओं में बँटती है। इनमें से पश्चिमी प्रवाह का नाम बैवाह (धसान) है, जो सिंहेश्वर स्थान के निकट उत्तर 'बरहरी' नामक सरिता को ग्रहण करके पूर्ववर्णित 'परवाने' धार से मिल जाती है। बैवाह की धारा थाल्हा से नैऋत्य कोण में चलती 'दुवियाही' गाँव आती है। किंवदंती है कि दुवियाही में दुर्वासा ऋषि का आश्रम था। बैवाह दुवियाही से दक्षिण की ओर चलकर क्रमशः करहरवा, पथरा गोड़ई, भउरा तथा जागुर गाँवों को प्रक्षालित करती हुई वहती है। इनमें से करहरवा तथा जागुर नदी के बाएँ किनारे और पथरागोड़ई और भउरा दाहिने किनारे बसे हैं। जागुर से दक्षिण की ओर बढ़कर तथा बभनगाँवाँ और महेसुवा होते एक बड़े चौर से गुजरती है तथा अपने दाहिने भाग में बरहरी, चंपानगर, बंरवना गाँवों को निहारती 'भुरहावे' गाँव के नैऋत्य-कोण में 'बरहरी' नदी को समेटती है। इसके बाद दक्षिण की ओर चलकर 'रामपट्टी' नामक गाँव को पहुँचती है, जहाँ यह परवाने की धार से मिल जाती है।

किंतु, पूर्वोक्त थाल्हा गाँव के पास चिलौनी की जो पूर्वी धार रह जाती है, वह थाल्हा-गढ़िया गाँव के पूर्व में आकर दक्षिण की ओर चलती लहरनियाँ गाँव के पश्चिम में आती है। इसके बाद यह चौरनुमा और निर्जन एक बड़े मैदान से गुजरती हुई त्रिवेणीगंज पहुँचती है, जो पाट का एक प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र है। यह इसी नाम के अंचल का केंद्र स्थान है और यहाँ रामनवमी के अवसर पर बड़ा मेला लगता है। इस नगर के 'उपरखा' नामक स्थान में प्राचीन किले का ध्वंसावशेष भी है, जिससे ज्ञात होता है कि यह एक बहुत प्राचीन स्थान है। इसके दक्षिण भी चिलौनी-धार एक चौरवाले बड़े भाग से बहती हुई 'कुसहा' के निकट पश्चिम में आती है। कुसहा नामक तीन स्थान हैं। एक तो त्रिवेणी-संगम और चतरा के बीच में, दूसरा भारदा के निकट दक्षिण-पश्चिमी तट-बंध के किनारे, जहाँ पहले 'घाघी' नदी थी और तीसरा इस चिलौनी-धार के किनारे। तीनों स्थान कौशिकवाह (कौशिकह्लद) होने का दावा करते हैं और अपने को विश्वामित्र ऋषि से संबद्ध मानते हैं। उक्त थाल्हा गाँव के दक्षिण से आरंभ करके 'मधेपुरा' तक कौशिकी नदी द्वारा निर्मित प्राचीन झील का चिह्न दिखाई पड़ता है, जिसे कभी कोसी नदी ने वीरान कर दिया है।

'कुसहा' के पास तथा कोसी की इस धारा से एक मील पश्चिम तथा त्रिवेणीगंज से डेढ़ मील नैऋत्य कोण में 'लटौना' ग्राम है। इसकी आबादी सन् १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार ६५३५ थी। यहाँ एक पुराना कैथोलिक चर्च है, जो संपूर्ण जिले में ईसाई संप्रदाय का केंद्र है। फिर कुसहा के दक्षिण भी चिलौनी-धार एक चौर से ही बढ़ती है, जिसके मध्य में 'शंकरपुर' नामक गाँव बसा है। यहाँ एक प्राचीन टीले के ऊपर पीपल का वृक्ष है, जिसके नीचे 'चंपावती' देवी की पुरानी मूर्त्ति है। इधर इस देवी की बड़ी प्रतिष्ठा है। इस 'चंपावती'

देवी के नाम से ज्ञात होता है कि यह भूभाग भी 'शक्ति-संगम-तंत्र' तथा 'महाभारत' के चंपकारण्य क्षेत्र में अवस्थित था। इस शंकरपुर से कोसी की यह चिलौनी-धार नैऋत्य-कोण में बढ़कर 'लालपुर' आती है। यह गाँव सिर्फ दो सौ वर्ष पुराना है, जिसे 'भतुदास' नामक किसी व्यक्ति ने बसाया था। यहाँ से दक्षिण चलने पर नदी के दाहिने किनारे 'सारोपट्टी' गाँव मिलता है, जिसके निकट दक्षिण में सिंहेश्वर-स्थान का 'गौरीपुर' है। यहाँ सिंहेश्वर-स्थान-मंदिर के पास से चिलौनी दो भागों में बँट कर दक्षिण की ओर समानांतर चलती 'मधेपुरा' आती है। उक्त गौरीपुर के दक्षिण-पूर्वी धारा के किनारे 'रामपुर' नामक एक गाँव है, जहाँ दो सौ वर्ष पुराना एक ब्रह्म-स्थान है। पूर्व-कथित जोतनार नामक गाँव पश्चिमी धारा के किनारे वर्त्तमान है।

यह चिलौनी मधेपुरा नगर के पूर्वी भाग से दक्षिण आती है और तब नैऋत्य-कोण में मुड़कर क्रमशः 'सुखासन उतरवारी' तथा 'सुखासन दखिनवारी' नामक गाँवों को पहुँचती है। इसके बाद यह 'गोंठखोपती' आती है, जहाँ परवाने से मिलकर एक बड़ा-सा द्वीप बनाती है, जिस पर प्राचीन गाँव 'काँप' बसा है। यह गाँव उत्तरी मुंगेर जिले की सीमा से सिर्फ दो मील पर है। काँप-द्वीप के पूर्वी किनारे की धारा के वाम-पार्श्व में 'कपसिया' ग्राम है और द्वीप के पश्चिमी किनारे की धारा के दक्षिण-पार्श्व में 'सिलौत' गाँव अवस्थित है। सिलौत के दक्षिण इस धारा के किनारे 'करहिया' तथा 'कचरा' गाँव हैं, जिनके दक्षिण इस धारा के मुहाने पर ही 'सुहथ' और 'भवटिया' पड़ते हैं। 'काँप' के पहले विभक्त होनेवाली इसकी दोनों धाराएँ 'भवटिया' में पुनः परस्पर मिल जाती हैं, जिससे उसके दक्षिण बहुत बड़ा एक ह्रद बनता है। यहाँ पहले की तिलावह, सोनेह तथा परवाने नदियों की संयुक्त धारा के पूर्व तथा इस ह्रद के पश्चिम—दोनों की गाँस में 'लगमापट्टी' गाँव है, जिसके पूर्व में शाहपुर गाँव भी स्थित है। यह मुहानेवाले ह्रद के पूर्वी भाग में पड़ता है। लगमापट्टी और शाहपुर—ये दोनों गाँव सहरसा जिले की दक्षिण-सीमा के अंतिम गाँव हैं। लगमापट्टी में ही इस चिलौनी नामक धार के साथ तिलावह, सोनेह तथा परवाने की संयुक्त धारा संगम करती है। यह संगम-स्थल उत्तरी मुंगेर जिले के 'सिमरी बख्तियारपुर' के पूर्व में थोड़ा उत्तर की ओर हटकर पड़ता है। इस संगम के निकट ही उत्तर मुंगेर जिले का 'भटौनी' नामक ग्राम है।

उत्तरी मुंगेर जिले के पूर्वोत्तर सीमा पर स्थित 'भटौनी' के पास जब उपर्युक्त कोसी-धाराएँ संगम करती हैं, तब फिर ये दो भागों में कोसी नाम से बँटती हैं। लगता है, जैसे दोनों नदियाँ एक-दूसरी को भेदती हुई आर-पार हो जाती हैं। इनमें से बाईं (पूर्वी) धारा ठीक मुंगेर जिले और सहरसा जिले की सीमा बनती 'तिलावह' के नाम से अग्नि-कोण में चलती हुई 'माली' के नैऋत्य कोण में आती है, जहाँ कोसी की धारा से संगम करती है। यह संगम सहरसा जिले के 'पदुमपुर' गाँव के दक्षिण तथा मुंगेर के उक्त माली गाँव के नैऋत्य-कोण में पड़ता है। तिलावह नामक यह धार जब लगमापट्टी और भटौनी के मध्य भाग से दोनों जिलों की सीमारेखा बनती अग्नि-कोण में चलती है, तब इसके बाएँ तट पर क्रमशः शाहमउरा, सोह एवं सोनबरसा नामक गाँव अवस्थित मिलते हैं। शाहमउरा में दुर्गा देवी की एक अतिशय

प्राचीन मूर्त्ति है, जो एक बहुत पुराने मंदिर में स्थापित है। मंदिर में अन्य देवी-देवताओं की भी प्राचीन प्रस्तर-प्रतिमाएँ वर्त्तमान हैं। मंदिर बहुत ही जराजीर्ण हो गया है और ३५० वर्ष पुराना बतलाया जाता है। इसी प्रकार, 'सोह' नामक गाँव में भी 'माधव बाबा' नामक किसी संत का स्मारक है। किंवदंती है कि 'माधव बाबा' का सर एक दंगे में आततायियों ने काट लिया था। वह कटा सर तो 'सोह' में रह गया; पर उनका धड़ यहाँ से १८ मील दूर चला गया। उनका 'सर' जहाँ पड़ा था, वहीं ग्रामवालों ने उनका स्मारक तैयार किया। इसके बाद 'सोनबरसा' तो जिले का मुख्य गाँव है, जहाँ क्षत्रिय जाति का एक राजपरिवार था और जिसके वंशज आज भी वर्त्तमान हैं। यह विकास-अंचल का एक मुख्यालय भी है। सोनबरसा का प्राचीन नाम 'शोणवर्ष' है। सोनेह नदी का नाम 'शोण-वाह' तथा तिलावह का नाम 'तैलवाह' था। इस 'तिलावह' प्रवाह के बाएँ किनारे और 'सोनबरसा' के समीप ही 'बेहट' नामक गाँव है, जो पुरातात्त्विक ध्वंसावशेष से युक्त है। स्थानीय लोग इसे शुद्ध नाम देकर 'विराटपुर' कहते हैं! किंतु, इसका शुद्ध रूप 'वीरहट्ट' होना चाहिए। बेहट में भी चंडी का एक प्राचीन मंदिर है। भागलपुर, सहरसा तथा मुँगेर जिलों के नर-नारी बड़ी संख्या में चंडी के दर्शन-पूजन के लिए यहाँ आते रहते हैं। इसके बाद 'तिलावह' के बाएँ किनारे ही 'पदुमपुर' गाँव है। तिलावह-धार जब इस पदुमपुर के दक्षिण-भाग में आती है, तब बेहट और पदुमपुर के पूर्वी भाग से बहकर आनेवाली कोसी की 'लोरम' नामक धारा इससे संगम करती है, जिसके अग्नि-कोण में मुँगेर जिले का 'माली' गाँव अवस्थित है। यह संगम 'सोनबरसा' से तीन मील अग्नि-कोण में पड़ता है। संगम के बाद 'तिलावह' और 'लोरम' की संयुक्त धारा उत्तरी मुँगेर जिले के सिमरी-बख्तियारपुर तथा चौथम थाने की सीमा पर प्रवेश करके मुँगेर जिले में घुसती है और एक बड़े चौर से गुजरती तथा 'किंगरी' नामक गाँव से होती 'सिंगरसनवा' गाँव के पूर्व उस धारा से मिल जाती है, जो 'भटौनी' तथा 'लगमापट्टी' के संगम के पास से अलग होकर **'कटना'** नाम से मुँगेर जिले में घुसती हुई दक्षिण में चलती है।

यह पहले कहा गया है कि लगमापट्टी तथा भटौनी के पास तिलावह, सोनेह और परवाने नदियों की संयुक्त धारा के साथ **'चिलौनी'** संगम करती है और फिर दोनों एक दूसरी का भेदन करती हुई दो धाराओं में बँट जाती हैं, जिनमें से अग्निकोण में चलने वाली धारा 'तिलावह' के नाम से बहती है, जिसकी चर्चा अभी ऊपर में की गई है। किंतु, दूसरी धारा जो दाहिनी तथा पश्चिमी धारा है, वह **'कटना'** नाम से मुँगेर जिले के 'भटौनी' गाँव के पश्चिम सिमरी-बख्तियारपुर थाने में घुसती है। 'कटना' का यह प्रवेश सिमरी-बख्तियारपुर से ६ मील पूर्व में थोड़ा उत्तर की ओर झुकते हुए पड़ता है। यह कटना भटौनी से नैऋत्य-कोण में चलकर 'महरस' आती है और वहाँ से अग्नि-कोण में चलकर 'खोरसा' गाँव को पवित्र करती है। फिर यहाँ से भी यह अग्नि-कोण में दौड़ती लालपुर आती है, जो इसके पूर्वी किनारे बसा है। फिर 'कटना' लालपुर से दक्षिण चलती है और 'सहुरिया' गाव के निकट से 'जमालनगर' पहुँचती है। यहाँ से यह एक बड़े चौर से दक्षिण की ओर चलती है और चौथम थाने के 'सिंगरसनवाँ' ग्राम के पास पूर्व-कथित तिलावह तथा लोरमवाली संयुक्त धारा से मिल

जाती है। यह संयुक्त धारा सिर्फ दो मील अग्नि-कोण में बहकर पहले 'घघरी' से मिलती थी, जो अब कोसी की महाधार से मिलने लगी है।

सुरसर-धार :

यह सुरसर-धार भी पूर्ववर्णित नदियों की तरह 'कोसी' की ही छाड़न-धारा है, जिससे होकर कोसी सन् १८९२ से १९१० ई० तक बहती थी। उस समय कोसी नेपाल के दक्षिणी तराई-भाग में ही दो धाराओं में बँटती थी। उनमें से पश्चिमी धारा कुछ मंद थी, जो नानपारा, भवटियाही तथा सुपौल होकर बहती थी; किंतु पूर्वी धारा-मार्ग वीरपुर के समीप में स्थित फतेहपुर तथा वसंतपुर के पश्चिम से एवं रघुनाथपुर के पूरब से ही दक्षिण दिशा में चलता था। इस क्रम में कोसी की यह सुरसर-धार सिरिपुर तथा निर्मली गाँव को आती थी। कोसी-बराज का प्रसिद्ध और मुख्य केंद्र जिस निर्मली में है, वह सहरसाजिले के पश्चिोत्तर भाग में स्थित है और रेलवे-स्टेशन है। सुरसर-धार के किनारे का यह निर्मली गाँव उससे भिन्न तथा जिले के पूर्वोत्तर भाग में स्थित है। यह धार इस निर्मली से जब साढ़े तीन मील दक्षिण चलती है, तब इसके बाएँ तट पर 'लछमिनिया' गाँव मिलता है। इसके बाद यह क्रमशः गोविंदपुर तथा कालिकापुर पहुँचती है। कालिकापुर में यह सुरसर-धार दो भुजाएँ निकालती है और दोनों दक्षिण में दो मील बढ़कर प्रतापगंज तथा भवानीपुर के पास मिल जाती हैं। प्रतापगंज में इस अंचल का मुख्यालय है और पटुए का व्यापार-केंद्र भी है। मुरलीगंज जानेवाली नहर प्रतापगंज में ही मुख्य नहर से निकाली गई है।

भवानीपुर गाँव के दक्षिण सुरसर-धार के चलने पर उसके वामपार्श्व में 'लालगंज' और दक्षिण पार्श्व में 'भरतपुर' और 'परसा-वीरबल' गाँव मिलते हैं। इसके बाद सुरसर-धार एक लंबे मैदान से चलती और छातापुर के पश्चिमी भाग से दक्षिण की ओर दौड़ती लक्ष्मीपुर तथा खूटी गाँवों को पहुँचती है। इसी 'खूटी' में कामदेव नामक एक संत का मठ है, जिसकी दीवार भूसे, मिट्टी और बाँस की कमचियों से बनी थी। इस मठ को वहाँवाले १७० वर्ष पुराना बतलाते हैं। यहाँ से सुरसर-धार नैऋत्य-कोण में कुछ झुकती दक्षिण चलती हुई अपने बाएँ किनारे में 'गौरिया' एवं 'पिलवाहा' को निहारती 'लछमिनिया' पहुँचती है। यह लछमिनिया पूर्व कथित 'लछमिनिया' से भिन्न गाँव है। त्रिवेणीगंज से जो मार्ग पूर्व की ओर चलता कोरियापट्टी तथा हीरापट्टी पहुंचता है, वह सुरसर-धार को 'लछमिनिया' के निकट ही उसके उत्तर में पार करता है। यहाँ फिर यह दो धाराओं में बँट कर एक द्वीप बनाती है, जिस द्वीप के पूर्वी भाग में महुलिया गाँव और द्वीप के पश्चिमी भाग में 'कुसहा' गाँव है। यह चौथा कुसहा है। इसके बाद सुरसर इस जिले के सबसे बड़े निर्जन चौर से दक्षिण दिशा की ओर गुजरती है और इस प्रकार की ११ मीलवाली चौर में लगभग ६ मील पर इसे फिर 'सिरिपुर' नामक एक प्रसिद्ध गाँव मिलता है, जो पूर्वकथित 'सिरिपुर' से भिन्न है। इसे 'सिरिपुर-मिलकी' भी कहा जाता है। जमीन से प्राप्त प्राचीन अवशेषों के लिए सहरसा जिले का यह एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ जमीन के भीतर से जो प्राचीन चीजें मिली थीं; उनमें हाथी की एक ताम्रमूर्त्ति के साथ दो ऐसे बरतन मिले थे, जिनमें चित्ती कौड़ियाँ भरी हुई थीं। पत्थर की एक ऐसी कुर्सी भी मिली थी, जिसका २० क्युबिक फीट बाहरी परिमाण था और ११ क्युबिक

फ़ीट उसकी गोद थी। इसी के साथ पार्वती की एक अतिशय सुन्दर और छोटी मूर्त्ति भी मिली थी। ये सभी वस्तुएँ 'सीनवरसा' के जमींदार साहव ले गए थे। उस समय की खुदाई में एक बरतन में, भस्म और नीले रंग की हड्डी भी प्राप्त हुई थी। किंतु हड्डी को जैसे ही हाथ से उठाया गया कि वह राख होकर विखर गई। स्थानीय लोगों का कहना है कि यहाँ अनेक धीर-वीर पुरुष हो चुके हैं।

सिरिपुर में एक वहुत वड़ा जलाशय भी है, जिसे लोग 'घोर-दौर पोखर' कहते हैं। कहा जाता है कि पहले पोखरे के भिंड पर घोड़ों की दौड़ होती थी। जलाशय के भिंड से एक वार तीन घुड़सवारों तथा तीन क्षत्रधारी देवताओं के मृण्मय खिलौने भी मिले थे। यह कुमार खंड-अंचल का गाँव है और निश्चय ही कोई प्रसिद्ध प्राचीन स्थान है। मेरा खयाल है कि 'महाभारत' के कुमारतीर्थ के 'वीराश्रम' को इसी 'सिरिपुर' में होना चाहिए। इस 'सिरिपुर' से चार मील दक्षिण जब यह सुरसर-धार बढ़ती है, तव इसके बाएँ किनारे 'विशुनपुर कोरलाही' नामक गाँव मिलता है, जहाँ सिंहेश्वर स्थान से पूर्व की ओर 'केवटगावाँ' जाने-वाला मार्ग सुरसर-धार को पार करता है। इस कोरलाही घाट से दक्षिण बढ़ने पर नदी के पूर्वी तट पर 'लक्ष्मीपुर' गाँव मिलता है, जहाँ एक अति प्रसिद्ध चंडीस्थान है। यह मुरली-गंज स्टेशन से सिर्फ दो मील पश्चिमोत्तरकोण में स्थित है। विजयादशमी के अवसर पर प्रति वर्ष यहाँ मेला लगता है। यह जिले का प्रसिद्ध और पवित्र स्थान है। इस चंडी-स्थान में और भी प्राचीन मूर्त्तियाँ विद्यमान हैं। इसके दक्षिण बढ़ने पर कोसी की यह सुरसर-धार 'रामपुर' गाँव को आती है, जो गाँव मुरलीगंज के अतिनिकट पश्चिम में वर्त्तमान है। कोसी की भयानक वाढ़ों के कारण इस रामपुर को अनेक वार अपना स्थान-परिवर्त्तन करना पड़ा है। इसी रामपुर में सुरसर दो धाराओं में बँटती है, जिनमें से पश्चिमी (दाहिनी) धारा का नाम **लोरम** हो जाता है और पूर्वी (बाँई) धारा सुरसर नाम से ही आगे बढ़ती है। यह 'सुरसर' भी आगे जाकर दो भागों में विभक्त हो गई है। इनमें से एक धारा '**मरही**' कहलाती है और दूसरी 'कोसी-धार' के नाम से चलती है। पहले मैं '**लोरम**' नामक पश्चिमी धारा का ही यहाँ वर्णन करूँगा।

यह अभी कहा गया है कि रामपुर में सुरसर-धार दो भागों में विभक्त हो जाती है, जिनमें से पश्चिमी धार 'लोरम' नाम से नैर्ऋत्य-कोण में पूर्वी धारा के समानांतर १२-१३ मील तक बहकर 'बड़गाँव' तक आती है। रामपुर से नैर्ऋत्य कोण में चलने पर 'लोरम' धारा के दाहिने किनारे पोखराम, परमानपुर, खरी, रस्ना, पहाड़पुर, दुर्गापुर, बरसाम तथा वड़गाँव नामक बस्तियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार इसके वाम पार्श्व में दीनापट्टी, विंद्रावन, सखुआ, कलटहा तथा बिशुनपुर नामक गाँव हैं, जो पूर्ववाहिनी सुरसर-धारा के दाहिने भाग में पड़ते हैं।

वड़गाँव के पास लोरम अपनी भगिनी नदी की दाहिनी भुजा को चूमती है और नैर्ऋत्य-कोण की ओर आगे बढ़कर 'बलिया एक दुआरी' नामक गाँव को आती है। यहाँ से जब यह थोड़ा और पश्चिम दिशा की ओर अपनी धारा को तानती है, तब इसके दाहिने

भाग में 'ननौती' और 'जम्हरा' गाँव प्राप्त होते हैं। इसी 'जम्हरा' के आसन्न उत्तर 'गाजी पैता' नामक एक गाँव है, जहाँ का चंडी-मंदिर १५०० वर्ष पूर्व का गुप्तकालीन बतलाया जाता है। मंदिर प्रस्तर-खंडों तथा शहतीरों से बना है, जो देखने में वस्तुतः बहुत प्राचीन लगता है। पत्थरों पर कुछ लिखावट भी दीख पड़ी, जो अब पढ़ी नहीं जा सकती है। जम्हरा के बाद ही दक्षिण की ओर बहकर 'लोरम' नदी बेहट (वीरहट्ट) आती है। बेहट के सटे दक्षिण 'दड़ड़' नामक गाँव है और इसी के पास 'पदुमपुर' भी है। वस्तुतः, ये तीनों ग्राम 'लोरम' नदी के मुहाने पर हैं। पदुमपुर गाँव मुँगेर और सहरसा जिले की सीमा पर है, जहाँ लोरम नदी 'सोनबरसा' से अग्निकोण में बहकर आनेवाली 'तिलावह' धार से संगम करती है। इसके बाद इसकी कहानी चिलौनी-धार के प्रसंग के अंतिम अंश में द्रष्टव्य है।

'मुरलीगंज' के आसन्न पश्चिम में स्थित 'रामपुर' में 'लोरम-धार' को विलग करके सुरसर-धार 'लोरम' के समानांतर ही थोड़ा नैर्ऋत्य-कोण में झुकती दक्षिण चलती है। इसके दाहिने किनारे, बड़गाँव के समीप तक वे ही गाँव (दीनापट्टी-विंद्रावन आदि) स्थित हैं, जो लोरम-धार के बायें किनारे हैं। किंतु, इसके बाएँ भाग में विशुनपुर के सामने 'बभनगावाँ' और 'अरार' नामक गाँव बसे हैं और अरार से तीन मील दूर नैर्ऋत्यकोण में बाएँ किनारे ही 'बसबारी' ग्राम है। अरार गाँव मधेपुरा नगर से १२ मील दूर अग्नि कोण में तथा मुरलीगंज से लगभग १० मील दूर नैर्ऋत्य-कोण में है। यहाँ प्रतिवर्ष माघी-पूर्णिमा को मेला लगता है और १५ दिनों तक रहता है। यह बीहपुर से मधेपुरा जानेवाले मार्ग पर अवस्थित है।

सुरसर-धार 'बसबारी गाँव' के जब दक्षिणी किनारे आती है, तब फिर यह दो धाराओं में बंटती है। ये दोनों धाराएँ लगभग आध मील का एक टापू बनाती हैं और 'झाझरी' गाँव के पास दो ओठों की तरह सटकर फिर अलग हो जाती हैं। इनमें सीधे दक्षिण चलनेवाली पूर्वी धार **भरही** नाम से विख्यात होती है और नैर्ऋत्य-कोण में चलनेवाली धार 'सुरसर' नाम से अथवा 'कोसी-धार' के नाम से बढ़ती है। इस प्रकार, आपने देखा कि रामपुर (मुरलीगंज) के बाद सुरसर-धार तीन भागों में बँट जाती है। नैर्ऋत्य-कोण में चलनेवाली यह कोसी-धार बसबारी गाँव के पास से विलग होकर एक मैदान से गुजरती है और लगभग पाँच मील चलकर मधेपुरा गाँव को आती है, जो इसके दाहिने किनारे बसा है और प्रसिद्ध मधेपुरा नगर से भिन्न है। यहाँ इसके बाएँ किनारे 'बेलहट' गाँव है। यहाँ से नैर्ऋत्य-कोण में चलने पर इसके दाहिने किनारे 'अगमा' मिलता है, जहाँ से एक मील दूर अग्नि-कोण में और नदी के बाएँ भाग में 'पमना' बसा है। इसके आगे दाहिने तट पर 'पचरसी' है, जो चौंसा-अंचल के 'पचरसी' से भिन्न है। पचरसी से यह 'कोसी धार' दक्षिण दिशा में चलती है और तब इसके दाहिने भाग में 'मैना' और उसी के सामने बाएँ भाग में 'मउरा' गाँव मिलते हैं। सोनबरसा से अग्निकोण में चलता हुआ जो मार्ग 'आलम नगर' जाता है, वह 'मउरा' गाँव में ही इस धारा को पार करता है। मउरा घाट के बाद यह कोसी-धार नैर्ऋत्य-कोण में बहकर 'कस्नागढ़' गाँव को पहुँचती है और यहीं यह

उत्तरी मुँगेर जिले के चौथम थाने में प्रवेश कर जाती है। यह 'कस्नागढ़' सहरसा जिले के दक्षिणी छोर का अंतिम गाँव है।

कोसी का यह प्रवाह जब मुँगेर जिले के चौथम थाने में प्रवेश करता है, तब कुछ दूर तक एक निर्जन चौर से नैऋत्य-कोण में चलता है और 'पीरनगरा' गाँव को पहुँचता है। इसके बाद इसी कोण में बहता 'गौसा' गाँव को आता है, जहाँ से दक्षिण बढ़कर आजकल कोसी की महाधारा में प्रवेश कर जाता है। किंतु, यह कोसी-धार पहले गौंसा से डेढ़ मील दक्षिण जाकर 'घघरी' नदी में समाहित होती थी, जिस 'घघरी' पर आज कोसी का अधिकार है। यह संगम 'चौथम' से दो मील दूर पूर्वोत्तर कोण में है और मुहाने पर 'अग्राहन' नामक गाँव बसा हुआ है।

बसवारी गाँव से दक्षिण चलनेवाली सुरसर-धार का नाम **'भरही'** है। भरही-धार 'झांझरी' गाँव के पास अपनी पश्चिमी भुजा से सटती-सटती-सी अलग हो जाती है और तत्पश्चात् थोड़ा अग्निकोण में झुककर दक्षिण में चलती है। इस क्रम में जब यह आगे बढ़ती है, तब इसके वाम पार्श्व में 'बसनोडीह' गाँव मिलता है और फिर इसी किनारे आगे में 'सारनपुर' गाँव भी है। यहाँ से दक्षिण, किंतु 'भरही' के दाहिने तट की ओर 'बिशुनपुर-अमौना' है और यहाँ से एक मील दूर अग्निकोण में, नदी के बाएँ किनारे पर ही, नया नगर है। नया नगर की दुर्गा देवी बहुत विख्यात हैं और मंदिर भी प्राचीन है। यहाँ सप्ताह में दो दिन सोमवार-शुक्रवार को मेला लगता है और दुर्गा-भक्तों की भीड़ इकट्ठी होती है। नया नगर से पश्चिम 'भरही' के दाहिने किनारे 'सिंगरपुर' गाँव है। इसके दक्षिण बाएँ तट पर 'साहबपुर' है, जहाँ प्राचीन भग्नावशेष वर्त्तमान है। यहाँ से दक्षिण नदी के किनारे अकरवा, मुजफ्फरपुर, मइसलका, बस-नवादा आदि गाँव हैं। इनमें अंतिम गाँव 'भरही' के दाहिने किनारे है, शेष सभी बाएँ तट की ओर हैं। किशन-गंज थाने के उक्त 'अक्रवा' गाँव के निकट से 'भरही' निकल कर 'आलमनगर' थाने की सीमा में आ जाती है। यह फिर दक्षिण में ही चलती हुई क्रमशः बरहौना, बरगौन, परैल, गंगापुर, मुरउल आदि गाँवों से होती सहरसा जिले की दक्षिण सीमा पर कोसी की धारा में समा जाती है, जो पहले यहीं 'घघरी' में मिलती थी। अभी तक और इसके पूर्व कोसी की जितनी छाड़न-धाराओं का उल्लेख किया गया है, वे सब धाराएँ मुँगेर जिले में आकर आज कोसी से मिलती हैं और पहले भी ये सब मुँगेर जिले में ही 'घघरी' से मिलती थीं। किंतु, यह 'भरही-धार' सहरसा की सीमा पर ही घघरी से मिलती थी और आज वहीं कोसी से मिल रही है। इस संगम के दक्षिण भागलपुर जिले का झंडापुर, बीहपुर तथा बीहपुर चौक पड़ता है।

हइया अथवा हहा-धार :

किसी काल में कोसी नदी नेपाल की तराई से निकलकर वीरपुर और हनुमाननगर के पूर्वी भाग से बहकर दक्षिण आती थी; किंतु इधर सन् १८४० ई० से १८७३ ई० तक भी यह वीरपुर के पूर्व से ही बहती रही थी। राजस्व-सर्वेक्षण के द्वारा सन् १६४० ई० में इस भाग का जो मानचित्र तैयार हुआ था, उसमें कोसी की मुख्य धारा 'हइयाधार' से ही

दिखलाई गई है। उस समय वीरपुर के पास कोसी अपनी धाराओं को मानों चलनी से फौव्वारे की तरह निकालकर बिहार-प्रदेश में भेजती थी। ये धाराएँ एक प्रवाह के रूप में न होकर भी अलग-अलग नहीं थीं। उस समय कोसी का बिहार-प्रदेश में प्रवेश करने का स्थल पूर्णिया जिले के पश्चिमोत्तर-कोण का वह भाग था, जो पूर्णिया के नक्शे में गिरि-शिखर-सा पतला और नुकीला है। यह स्थल १० मील तक एक खूँटी-सा तना है, जिसके शीर्ष पर 'वेलो', कटिभाग में 'डोमबना' और गुल्फ-प्रदेश में 'घुरना' नामक गाँव बसे हुए हैं। इन तीनों गाँवों को कोसी नदी तब अपनी झरना-धारों से नहलाती दक्षिण की ओर वैसे ही लटकती थी—जैसे वर्षाऋतु में बादलों की सूँड़ जमीन पर लटकती है। इस शिखरनुमा क्षेत्र के बिलकुल पाद-मूल में पूर्णिया जिले के 'पथराहा' तथा 'भवानीपुर' गाँव स्थित हैं। इसके पूर्व-भाग से भी कोसी की एक धारा तब दक्षिण की ओर आती थी। जिले का यह शिखर-नुमा भाग वस्तुतः अमरोसी, नवावगंज तथा अचरा गाँवों के पास से ऊपर की ओर उठता है। इसी नुकीली भूमि के पश्चिमी भाग से उस समय कोसी नदी झरती थी, जिसके अवशेष आज भी यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। कोसी के इसी स्रोत का नाम 'हइया' या 'हहाधार' है।

उक्त कोसी-प्रवाह को बुकानन ने **'दाउस'** नदी का नाम दिया है। यह दाउस-धार अचरा और हनुमाननगर से दक्षिण चलकर 'नरपतगंज' आती थी और नाथपुर गाँव के पश्चिम से होते 'वरहरा' के पश्चिम पहुँचती थी। बरहरा के बाद कोसी फतेहपुर, कचगाँव, वेलसंडी, सिरिसिया कलाँ एवं गँभरिया नामक गाँवों को क्रमशः आती थी। इतनी दूर तक कोसी के इस प्रवाह के बाएँ भाग में सहरसा जिले के बीरपुर, प्रतापगंज तथा छातापुर की सीमा शुरू होती है। फतेहपुर के दक्षिण 'दाउस' की धारा विलकुल सहरसा जिले में घुसकर बहती हुई दक्षिण की ओर जाती है। किंतु इसकी एक शाखा पूर्णिया जिले की सीमा से सट कर दक्षिण की ओर आती है और 'बिसरिया' गाँव के पश्चिम फिर संयुक्त हो जाती है। इसी धारा का नाम इधर हाल तक 'हहा-धार' था। गँभरिया के बाद कोसी की यह दाउस-धार दक्षिण की ओर चलती खजुरी, नवलगंज, मानपुर और 'बिसरिया' गाँवों को क्रमशः पहुँचती है। बिसरिया के दक्षिण पूर्णिया जिले के एकराहा और रजुआडीह गाँव दाउस धार के पूर्वी किनारे में मिलते हैं। इन्हीं गाँवों के सामने नदी के पश्चिमी किनारे, 'चांदपुरभागा' नाम का गाँव है। इस नाम के इधर दो ग्राम है। एक तो यही है, दूसरा इससे डेढ़ मील दक्षिण, दाउस की दो धाराओं के मध्य में फैला हुआ है। उपर्युक्त और प्रथम 'चांदपुरभागा' गाँव के सामने, पश्चिम में स्थित, सहरसा जिले का मुरलीगंज स्टेशन है। मुरलीगंज से पूर्व की ओर पूर्णिया जानेवाला मार्ग 'चांदपुरभागा' में ही दाउस धार अथवा हइया धार को पार करता है। इसी के आसन्न दक्षिण में मधेपुरा से पूर्णिया जानेवाली रेल-लाइन इस नदी को लाँघती है।

चांदपुरभागा से दक्षिण चलने पर दाउस धार के पूर्वी किनारे पूर्णिया जिले के रूपौली, दिवरवनी, कमालपुर, गौरीपुर आदि गाँव दिखाई पड़ते हैं। इसी गौरीपुर के दक्षिण वनमनखी से बिहारी-गंज तक जानेवाली रेल-लाइन का स्टेशन 'रघुवंशनगर' दाउस या हइया

नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित मिलता है। यह शाखा-लाइन रघुवंशनगर स्टेशन के नैऋत्य कोण में इस नदी को पार करती है। इस रेलवे पुल से लगभग ६ मील दक्षिण की ओर बहने पर दाउस-धार के पूर्व भाग में 'चंदेलीकरमचंद' नामक भग्नावशेष-युक्त प्राचीन ग्राम अवस्थित है, जिससे दो मील दक्षिण में, नदी के पूर्वी किनारे ही, अकबरपुर गाँव भी है। इस अकबरपुर के ठीक सामने 'दाउसधार' के पश्चिमी किनारे सहरसा जिले का 'पुरैनी' नामक गाँव बसा है, जहाँ के घाट से एक मार्ग पूर्व की ओर अकबरपुर तथा यहाँ से पूर्वोत्तर चलकर 'भवानीपुर राजधन' को जाता है। अकबरपुर से दक्षिण चलने पर इस हइया धार के पूर्वी तट की ओर डुमरा और उससे चार मील दक्षिण, उसी किनारे 'लक्ष्मीपुर-गिरधर' नामक गाँव स्थित है। इस भाग में यह दाउस या हइया धार नदी बिहारीगंज के पास से ही सहरसा जिले के भीतर, किंतु बिलकुल पूर्वी सीमा पर, बहती है। कोसी को इस धारा की सहायिका **कोदई, गुलेलाधार, हहा** तथा **बलुआधार** नामक छाड़न-नदियाँ हैं। इसमें हहा धार ही पुरानी धार है, जो दाउस धार से अलग होकर अपना कुछ पानी इस दाउस-धार में डालती है और कुछ कोदई और गुलेलाधार में। कोदई और गुलेलाधार ही मिलकर तथा नीचे में जाकर '**बलुआ-धार**' कहलाती हैं। इन छाड़न-नदियों के संबंध में आगे चर्चा की जायगी।

लक्ष्मीपुर-गिरधर के दक्षिण दाउस नदी के पूर्व-भाग में पूर्णिया जिले के धमदाहा थाने का 'पिपरा' नामक गाँव है, जो इस प्रवाह के किनारे पूर्णिया जिले का अंतिम गाँव है। उपर्युक्त रघुवंशनगर के सामने दाउस-धार का दाहिना किनारा सहरसा जिले के किशनगंज थाने के क्षेत्र में पड़ता है। इसलिए, पिपरा के बाद यह दाउस-धार बिलकुल पूर्णिया की सीमा छोड़कर सहरसा जिले के किशनगंज थाने की भूमि में घुसती है और तुरत बाहर निकलकर पूर्णिया जिले की पश्चिमोत्तर-कोण की सीमा से ८ मील पश्चिम कोसी की धारा से मिल जाती है। यह पहले वर्त्तमान संगम से पश्चिम, खरीक रेलवे-स्टेशन के उत्तर और शिवकुंड के पूरब, 'घघरी' नदी से मिलती थी। किंतु, अब इसकी एक पतली धारा पुराने संगम-स्थल से पूर्व में हटकर कोसी में समागम करती है। एक बात यहाँ कहना आवश्यक है कि कोसी की यह हइयाधार एक समय (सन् १८७३ ई० तक) कोसी की ऐसी मुख्य धारा थी, जो तिरहुत और पूर्णिया का सीमा-निर्द्धारण करती थी, वह अब प्रायः लुप्त-सी हो गई है। किंतु, यत्र-तत्र इसकी दलदली झील और मृतप्राय रेखा अब भी बनी हुई है। इसी की उपधाराओं में कोदई, हहा तथा गुलेलाधार भी थीं, जो अब बिलकुल समाप्त-प्राय-सी हो गई हैं।

हमने इस हइयाधार की चर्चा में हहा, कोदई, गुलेलाधार तथा बलुआधार के नाम लिए हैं। इनमें **हहाधार** कोई अलग नदी नहीं है, यह मुख्य कोसी की ही धारा थी। स्पष्ट है कि जिस धारा को बुकानन ने 'दाउस' कहा था, और जो उसके समय कोसी की एक छाड़न-धारा थी, वही बाद में (सन् १८४० ई० के बाद) कोसी की मुख्य धारा बन गई और हइया अथवा हहा धार के नाम से विख्यात हुई। जिस हइया या दाउस-धारा की चर्चा हमने इसके पहले की है, उसी की बाईं कोख से 'हहा' नामक धारा जानकीनगर के पश्चिमी भाग से तथा मधेपुरा-पूर्णिया रेल-लाइन के सटे उत्तर से अलग होती थी। सन्

१८४० से १८५५ ई० तक इसी धारा से कोसी बहती थी, जो बाद में दाउस-धारा से बहने लगी। यह पूर्व-कथित दाउस धार के समानान्तर दक्षिण की ओर चलती थी। इस प्रयाण-क्रम में सर्वप्रथम यह मधेपुरा-पूर्णिया रेललाइन को पार करती थी और तब रूपौली, भंगाटोला, बिठैली-बनपत, कमालपुर, गौरीपुर आदि गाँवों के पश्चिम से होते हुए, लगभग १२ मील दक्षिण तक, आकर बनमनखी-बिहारीगंज-रेल-लाइन को, रघुवंशनगर रेलवे स्टेशन के पश्चिम में ही लाँघ जाती थी। इसके बाद जब लगभग ६ मील दक्षिण बढ़ती थी, तब देवरी गाँव के नैऋत्य-कोण में तथा 'भतसरा' गाँव से एक मील उत्तर 'कोदई' नामक नदी को अपने में समाहित करके भतसारा तथा चंदैली-करमचंद को आ जाती थी।

कोदई नदी जानकीनगर के उत्तर स्थित उस दलदली चौर से निकलती थी, जो कभी कोसी की हहाधार की ही झील थी। इस चौर के उत्तर में राजूडीह, पिपरा तथा बिशुनपुर गाँव आज भी हैं। कोदई नदी अपने उद्गम-स्थान में बहकर जानकी नगर के पूर्व से तथा बिंद्रावन एवं मधुवन गाँवों के पश्चिम से दक्षिण की ओर चलती थी। यह वही जानकी नगर है, जिसके मिल की चिमनी के शिखर-भाग को कोसी के भरना ने चार ही वर्ष में ढक दिया था। कोदई जानकी नगर रेलवे स्टेशन (मधेपुरा-पूर्णिया शाखा) के पश्चिम में ही रेल-लाइन को पार करके जब दक्षिण में चार मील बढती थी, तब इसे लदुगढ़ नामक गाँव मिलता था। उसके बाद दक्षिण आकर पश्चिम मुड़ती थी और फिर नैऋत्य-कोण में बढ़कर दक्षिण-दिशा में बहती थी। कोदई की यह धारा इस भाग में बनमनखी-बिहारीगंज-रेल-लाइन के 'भटोहर' रेलवे स्टेशन तथा बरहरी गाँव के पश्चिम से बहती हुई इस रेललाइन को पार करती थी और तब दो मील दक्षिण चलकर 'हनुमाननगर-चकिया' गाँव को आती थी। यहाँ से लगभग चार मील दक्षिण जाकर 'कोदई' बिसहरिया गोत गाँव के पूरब से बहती हुई नैऋत्य-कोण में मुड़कर 'हहाधार' से मिल जाती थी। इसके बाद यह संयुक्त धारा दक्षिण की ओर चलकर 'चंदैली-करमचंद' पहुँचती थी।

चंदैली-करमचंद के दक्षिण बसंतपुर में हहा धार पूर्व दिशा में मुड़ती थी और तुरत पूर्व में बढ़कर 'गुलेलाधार' नामक कोसी की उपशाखा को अपनेमें समाहित कर दक्षिण बढ़ती थी और 'सोनुआ' गाँव के अग्नि-कोण में दाउस-धार की एक छोटी उपशाखा को भी ग्रहण कर लेती थी।

गुलेला-धार का प्राचीन नाम **'नागर'** था। यह नाम उस समय था, जब सन् १८०९-१० ई० में बुकानन पूर्णिया जिले का सर्वांगीण विवरण तैयार कर रहा था। नागर नदी धरहरा थाने के 'नवाबगंज' के उतरी भाग में स्थित एक दलदली चौर से निकलती थी और गुलेला धार से बहती हुई 'धमदाहा' के दक्षिण में **'हिरन'** नामक नदी से मिलती थी, यह हिरन उस समय के 'दिमिया' डिवीजन में स्थित भवानीपुर के उत्तर से निकलकर कोसी-धार के पश्चिम से समानान्तर बहती हुई पूर्णिया-जिले के दक्षिणी छोर पर स्थित 'भउवा-परबल' गाँव तक बहती आती थी और अंत में कुरसैला के समीप कोसी के मुहाने पर मिलती थी। किंतु, 'धमदाहा' के पूर्व से बहनेवाला कोसी का मुख्य प्रवाह जब पश्चिम की ओर

खिसक गया, तब इसने 'हिरन' और 'नागर' को धो-पोंछ कर कोदई, हहा, गुलेला आदि धाराओं के रूप में इनका नये सिरे से निर्माण किया। नागर का नाम तो मिट गया, पर उस के धारा-मार्ग का जो अवशेष रह गया था, वही गुलेलाधार के नाम से ख्यात हुआ था। किंतु, पश्चिम की ओर हटनेवाली कोसी ने धरहरा के पश्चिम में स्थित 'रामनगर मिलकी' नामक गाँव के समीप से अग्निकोण में 'नागर' से एक और धारा प्रवाहित की, जो आगे चलकर दक्षिण-दिशा में दौड़ी और 'धमदाहा' के अग्नि-कोण में लच्छाधार वाली कोसी से जा मिली। फिर, 'नागर' का जो पुराना मार्ग रह गया, उसी का नाम गुलेलाधार पड़ गया। इस प्रकार, धरहरा के नैऋत्य-कोण से और बनमनखी से कुछ दूर पश्चिमी भाग से तथा पूर्णिया-मधेपुरा-रेललाइन के सटे उत्तर से अपना एक बड़ा प्रवाह लच्छा-धार की ओर भेजकर यह 'गुलेला धार' जानकी नगर रेलवे स्टेशन के पूर्व भाग में, रेल लाइन को पार कर नैऋत्य कोण में बहती हुई 'रामपुर तिलक' गाँव को आती थी, जहाँ से यह पुनः पश्चिम की ओर मुड़ कर दक्षिणाभिमुखी होती थी। इस क्रम में यह बनमनखी-बिहारीगंज रेल-शाखा के 'अवराही'-स्टेशन के पश्चिम रेल-मार्ग को पार करती थी, तदनन्तर दो मील आगे बढ़कर 'हलायु' गाँव को तथा थोड़ा और आगे बढ़कर 'हड़ाही' गाँव को आती थी। हड़ाही से तीन मील दक्षिण 'ठाढ़ी' गाँव है, जो गुलेला-धार के पश्चिम में था। यहाँ से यह दक्षिण में ही चलती नीरपुर एवं विशुनपट्टी गाँवों को आती थी और तब नैऋत्य-कोण में मुड़कर क्रमशः 'देवरी' के पूर्व में तथा 'पतराहा' गाँव के पश्चिम में पहुँचती थी। इसके पश्चात् देवरी से दक्षिण बढ़ती थी और 'चंदैली करमचंद' गाँव के पूर्व से ही 'चितामन उस्कावरी' गाँव को छूती थी, जहाँ से नैऋत्य-कोण में मुड़कर उस पूर्वोक्त 'हहा धार' में प्रवेश कर जाती थी, जिस हहा ने इसके पहले 'कोदई धार' को भी समेट लिया था।

अब हहा-धार एक खासी अच्छी नदी बनकर 'रायपुर' गाँव को आती थी। यह रायपुर गाँव अकबरपुर गाँव से एक मील अग्नि-कोण में तथा 'रूपौली' से पाँच मील पश्चिमोत्तर कोण में स्थित है। इस रायपुर से दक्षिण में आकर 'हहाधार' दो भागों में बँटकर एक छोटा-सा द्वीप बनाती थी, जिसमें बहुती, बहदुरा एवं लक्ष्मीपुर-गिरधर नामक गाँव बसे हुए हैं। यहाँ 'हहा' की दाहिनी भुजा का नाम 'बलुआ-धार' था, जो लक्ष्मीपुर-गिरधर को घेरती 'भिखना' नामक गाँव के पूरब में आती है। फिर हहा की बाईं भुजा (पूर्वी धार) आगे की ओर बहती एवं बहदुरा गाँव को पूर्व से घेरती भिखना गाँव के पूरब आकर पुनः 'बलुआ धार' से मिल जाती है। **बलुआधार** का यह क्षेत्र पूर्णिया जिले के बिलकुल दक्षिण-पश्चिम कोण में है, जिसके दक्षिण आज महा कोसी की धारा बह रही है। इधर इसका नाम बलुआ धार ही रह जाता है और 'भिखना' से यह बलुआ धार अग्नि कोण में चलकर बैरिया और बलिया गाँवों के मध्यभाग से बहती लगभग ६ मील चलकर 'भउवा-परबल' नामक गाँव को आ जाती थी। यहीं यह पहले 'लच्छा धार' बाली कोसी से 'कुरसैला' के पश्चिम में मिलती थी, जिसका खँड़हर आज भी देखा जाता है। संप्रति, हहाधार, कोदई और गुलेला-धार का नामोनिशान मिट चुका है; किंतु 'बलुआ धार' का थोड़ा अवशेष अब भी शेष है।

लच्छा धार :

आज से लगभग १६५ वर्ष पूर्व, सन् १८०९ और सन् १८१० ई० में, बुकानन जब पूर्णिया जिले का सर्वेक्षण-विवरण तैयार कर रहा था, तब कोसी का मुख्य प्रवाह इसी 'लच्छा-धार' से एकमेक होकर बह रहा था। सन् १८०७ से १८३९ ई० तक इसी धारा-मार्ग से कोसी निरंतर बहती रही। बुकानन ने कहीं लच्छ-धार का नाम नहीं लिया है। हाँ, जब कोसी नदी इस प्रवाह से हटकर पश्चिम की ओर चली गई, तब बुकानन के समय के मुख्य कोसी-प्रवाह का ही नाम कालांतर में लच्छा धार पड़ा, जिसका उल्लेख सर्वे-विभाग ने अपने सन् १९४० ई० में तैयार किये गए पूर्णिया के मानचित्र में किया है।

उपर्युक्त कोसी-प्रवाह की 'लच्छा धार' नीचे की ओर प्रायः मिट चुकी है और पूर्णिया जिले की उपजाऊ जमीन बन चुकी है। फिर भी, यत्र-तत्र इसके अवशिष्ट भाग दीख पड़ते हैं, जिनसे इसके उद्गम प्रवाहशीलता के दिन याद आ जाते हैं। यह पहले कहा गया है कि कोसी कभी वीरपुर और हनुमाननगर के पूर्वी भाग से बहती नरपतगंज के पश्चिम में आती थी और फिर सहरसा और पूर्णिया की सीमा बनकर बहती थी। किंतु १८०७ से १८३९ ई० तक यह नरपतगंज के उत्तर में हो अग्निकोण की ओर झुकती हुई दो धाराओं में बँट जाती थी और ये दोनों धाराएँ नरपतगंज के पूरब से ही फतेहपुर और कोस्कापुर आती थी। इन दोनों धाराओं का अवशेष आज भी है और कोस्कापुर दोनों धाराओं के पूरब में है। इस फतेहपुर में फिर दोनों धाराएँ परस्पर मिल जाती हैं, जहाँ पश्चिमोत्तर-कोण से कोसी का एक प्रवाह इसमें मिलता है। यह मिलन नरपतगंज से सात मील दक्षिण और 'फारबिस-गंज' से १२ मील पश्चिम में पड़ता है। ये धाराएँ अन्य ऋतुओं में सूखी रहती हैं, पर वर्षा ऋतु में आज भी बहती हुई दिखाई देती हैं। यहीं से लच्छाधार अग्निकोण में निकल कर दक्षिण चलती है।

कोसी की यह लच्छा धार फतेहपुर से अग्नि-कोण में जब लगभग सात मील आगे बढ़ती है, तब 'सिमरबनी' नामक गाँव इसके पूर्वी भाग में मिलता है। सिमरबनी में एक मेला लगता है, जिससे यह कोई प्राचीन धार्मिक स्थान जान पड़ता है। बुकानन का 'सतमी-घाट' इसी सिमरबनी में था। यह फारबिसगंज से लगभग १० मील दूर नैऋत्यकोण में और रानीगंज से कुछ पश्चिमोत्तर-कोण में झुककर दस मील दूर उत्तर-दिशा में स्थित है। यहाँ उत्तर से आनेवाली एक और नदी लच्छा धार से संगम करती है, जिसको बुकानन ने बूढ़ी कोसी कहा है। यह 'बूढ़ी कोसी' वही नदी है, जिससे आगे चलकर सउरा तथा काली-कोसी निकलती थी और तब कोसी का मुख्य प्रवाह 'सउरा' तथा 'काली कोसी' की धारा से संबद्ध होकर चलता था। कोसी के पश्चिम हटने पर काली कोसी तथा सउरा का प्रवाह इससे विच्छिन्न हो गया और तब ऊपर में बनी नई धारा 'सिमरबनी' में आकर लच्छा-धार से मिलने लगी। इसी सिमरबनी में लच्छा धार नरपतगंज थाने की सीमा से निकल-कर रानीगंज थाने की भूमि में प्रवेश कर जाती है।

बुकानन-द्वारा अभिहित यह 'बूढ़ी कोसी' पूर्णिया जिले के बिलकुल उत्तर-पश्चिम-कोने पर स्थित 'पथराहा' ग्राम के पास मोरंग-प्रदेश से निकलनेवाली **गेरया** नदी को ग्रहण कर दक्षिण में चलती तथा तपे नवाबगंज होती एवं लच्छाधार के सामानांतर बहती 'बघुआ देवीगंज' आती है। यह देवीगंज बूढ़ी कोसी के पूर्वी किनारे बसा है। इसके बाद लच्छाधार पथराहा के पश्चिम से ही कोस्कापुर एवं फरही गाँवों के मध्य में पहुँचती है। जहाँ यह दो धाराओं में बँटती है। कोस्कापुर इसकी पश्चिमी धारा के पश्चिमी किनारे और फरही पूर्वी धारा के पूर्वी किनारे में हैं। 'बूढ़ी कोसी' भी यहाँ से दो धाराओं में विभक्त होकर विशुनपुर एवं सिमरबनी आती है, जहाँ यह 'लच्छाधार' में प्रवेश कर जाती है। सिमरबनी के पास ही 'जयनगर' तथा 'शंकरपुर' नामक गाँव हैं। इन गाँवों के पास लच्छाधार कई भागों में बँट जाती है और यहाँ से पाँच मील दक्षिण चलकर 'रघुनाथपुर' के पूरब तथा 'जगता' नामक गाँव के पश्चिम प्रायः सभी विभक्त धाराएँ परस्पर मिल जाती हैं। १८ वीं शती में कोसी नदी सिमरबनी में कई धाराएँ बनाकर पूर्णिया नगर के पूर्व तक बहती थी। 'जगता' के आगे एक बड़े चौरनुमा मैदान से लच्छा धार गुजरती हुई रानीगंज के पश्चिम तथा 'मनुला' गाँव के पूर्व में आती है। रानीगंज बाजार अररिया से लगभग १६ मील पश्चिम में है और यह अररिया थाने का मुख्य केंद्र भी है। रानीगंज से दक्षिण दिशा में चलकर यह एक दूसरे 'कोस्कापुर' के पश्चिम में आती है। पहले, जिस 'कोस्कापुर' की चर्चा की गई है, वह नरपतगंज से ७ मील दूर अग्निकोण में है और यह वहाँ से अग्निकोण में ही २५ मील दूर पर अवस्थित है तथा रानीगंज से चार मील सीधे दक्षिण में है। तत्स्थानीय लोग कोस्कापुर को 'कौशिकपुर' का अपभ्रंश मानते हैं। यहाँ एक अतिशय प्राचीन पुरातात्विक टोला भी है। यहाँ से पाँच मील और दक्षिण चलने पर जब लच्छाधार अररिया-अनुमंडल एवं सदर अनुमंडल की सीमा पर आती है, तब इसमें **'इरनधार'** और **'अइनिया धार'** नामक दो टूटी-छूटी उपशाखा-नदियाँ आगे-पीछे होकर संगम करती हैं। 'इरन' नदी निश्चय ही बुकानन की **हिरन** है, जो सीधे दक्षिण न जाकर बाद में अग्नि-कोण में मुड़ गई थी। धमदाहा से सटे पश्चिम-भाग से कोसी की एक पुरानी धारा दक्षिण तथा नैऋत्य-कोण में बहती 'भवानीपुर-राजकन' तक जाती थी, वह भी इसी 'हिरन' नदी का ही स्मारक है। 'अइनिया धार' सन् १८३९ ई० के बाद बनी, जब कोसी पश्चिम की ओर खिसकी और खिसकते-खिसकते इस धार के पश्चिम चली गई।

इरन और अइनिया—दोनों रानीगंज से दस मील दूर नैऋत्य-कोण में 'खजुरी' गाँव के उत्तर भाग में स्थित एक बड़े दलदली चौर से निकलती थी। इस चौर को कोसी की भू-भेदिनी धारा ने १९ वीं शती के प्रथमार्द्ध के द्वितीय चरण में खोदकर बनाया था, उक्त इरन धार 'सकेला' एवं 'परसाहाट' से होते अग्निकोण में बहती हुई लच्छाधार से संगम करती थी और अइनिया धार भी खजुरी, बिसरियापट्टी, भगवान कामथ, लक्ष्मीपुर और बरमोत्तरा होते रसाढ़ आती थी और पूर्वाभिमुखी होकर लच्छाधार से मिल जाती थी। 'इरन धार' अररिया-अनुमंडल की सीमा में ही संगम करती थी; पर 'अइनिया' अररिया की सीमा पार करके सदर अनुमंडल

में प्रवेश करने के बाद संगम करती थी। उक्त रसाढ़ गाँव सदर अनुमंडल के 'धरहरा' थाने का ग्राम है। रसाढ़ से 'लच्छा धार' सीधे दक्षिण में चलकर थोड़ी देर के लिए अग्नि-कोण में मुड़ती थी और फिर दक्षिण में प्रयाण कर 'हैदरनगर' एवं 'कोसी सरंदस्तूर' के पूर्व भाग से होते 'बनमनखी' और 'सरसी' नामक रेलवे-स्टेशनों के मध्य में आती थी। यहाँ इसके पश्चिम में 'बनमनखी' स्टेशन और पूर्व में 'सरसी' नामक स्टेशन हैं। यहीं **फरैनी** नामक नदी लच्छा धार के बाएँ भाग में प्रवेश करती है, जो उत्तर से रानीगंज तथा कमला-बलुआ होकर दक्षिण की ओर आती है। अब यहाँ यथाप्रसंग 'फरैनी' का विवरण प्रस्तुत किया जाएगा, उसके बाद पुनः पूर्वागत क्रम से 'लच्छाधार' की चर्चा उपन्यस्त होगी।

फरैनी की मूल धारा उस नदी में है, जिस नदी को बुकानन ने (पूर्णिया-रिपोर्ट पृ० २३) **'कजला'** कहा है और उसका उत्स **'गेरुया'** नदी के पूर्व भागवाले मोरंग में बतलाया है। किंतु काल-क्रम से 'कजला' की ऊपरी धारा समाप्त हो गई है। यह 'कजला' नीचे में जाकर 'कमला' कहलाती थी और काली कोसी से मिलती थी। इसकी टूटी धारा रानीगंज के पूर्व-भाग से वहती है और अब **'कमताहा'** कहलाती है। ऊपर में 'इसी कजला' का जो शेष अंश 'कमताहा' से विच्छिन्न हो गया है, उसी का नाम आज **'गोरो भगड़'** है। इसी प्रकार **'चकर दाहा'** नामक नदी पहले उक्त 'कमला' की पूर्वी शाखा थी। बुकानन ने इस पूर्वी शाखा को **'नीतिया धार'** नाम बतलाया है और इसमें 'परमार' की एक उपशाखा भी मटियारी के पश्चिम से आकर मिलती थी, ऐसा भी उसने पृ० २३ पर ही लिखा है। 'नीतिया' नदी नेपाल के धरान की पहाड़ी से निकलती है और धरान के पश्चिम से बहती 'नवाब-गंज वोगैरह' तथा भोंधरा के पास पूर्णिया जिले में प्रवेश करती है। इस प्रकार 'गोरोभगड़' और 'चकरदाहा' की संयुक्त धारा को ही **'फरैनी'** नदी कहा जाता है।

गोरो भगड़ की धारा 'तपे नवाबगंज' के दक्षिण में स्थित 'डुमरी' गाँव के पास से दक्षिण चलती है और 'खगरा' तथा दरगाहीगंज होते एवं बघुआ देवीगंज के पूरब से कंधैली आती है। कंधैली इसके पूर्वी किनारे पर है, जहाँ से फिर यह दक्षिण की ओर चलती गढ़गाँवा तथा बरियारपुर गाँवों के पूरब से 'अराह' पहुँचती है। फिर, 'अराह' से आगे चलती हुई जब यह 'गंजबाग' से डेढ़ मील दूर अग्नि-कोण में पहुँचती है, तब यह यहीं 'चकरदाहा' नामक नदी से मिल जाती है। संप्रति, 'गोरो भगड़' की यह धारा लग-भग १६ से १८ मील तक बनी है, जो पहले काली कोसी की मुख्य सहायक नदी 'कजला' कहलाती थी। वस्तुतः ये सभी कोसी की ही उस समय की उपशाखाएँ हैं जिस, समय कोसी नेपाल की तराई में वर्त्तमान धारा के पूर्व से धारा बनाकर बह रही थी और चतरा से सीधे दक्षिण चलती थी।

दूसरी नदी चकरदाहा, जो पहले 'कजला' की ही 'नीतिया धार' कहलाती थी, पूर्वोक्त डुमरी से डेढ़ मील पूर्व से अग्नि-कोण में चलती है और 'बढ़पारा' गाँव के पूर्व भाग से ही बहती जब 'मटियारी' से डेढ़ मील पश्चिम में आती है, तब भारतीय सीमा स्थित नवाबगंज वोगैरह

तथा भोंधरा नामक प्राचीन गाँवों से होकर अग्निकोण में आनेवाला एक स्रोत 'चकरदाहा' में मिलता है। यह स्रोत 'श्यामनगर' तथा 'बथनाहा' रेलवे-स्टेशन के पश्चिम से ही मटियारी के पश्चिम में स्थित 'परासी' ग्राम को आता है, जहाँ पश्चिमाभिमुख बनकर 'चकरदाहा' नदी में मिल जाता है। इसके बाद 'चकरदाहा' थोड़ा अग्निकोण की ओर झुकती फारबिसगंज से जब दो मील पश्चिम की ओर आती है, तब बिलकुल दक्षिण-दिशा में बहने लगती है। इस क्रम में यह फार्बिसगंज-सैफगंज सड़क के सामानांतर दक्षिण में चलती हुई सैफगंज-देवीगंज-मार्ग को पार करके 'घीववा' तथा 'अराह' के पूर्व भाग तथा सैफगंज के पश्चिम भाग से दक्षिण की ओर चलती लक्ष्मीपुर पहुँचती है। लक्ष्मीपुर चकरदाहा के बिलकुल पूर्वी तट पर बसा है। १८ वीं शती के प्रारंभ में कोसी की एक धारा इसी लक्ष्मीपुर से पूर्व की ओर निकलती थी और आगे बढ़कर बूढ़ी कोसी के नाम से पूर्णिया-अररिया रेल-मार्ग के किनारे से बहती दक्षिण चलती थी और जलालगढ़ तथा कसबा होते पूर्णिया के पूरब से बहती थी। इसी लक्ष्मीपुर से एक मील दक्षिण आकर 'चकरदाहा' की धारा गोरोभगड़ से संगम करती है। इस प्रकार, चकरदाहा का अपना प्रवाह लगभग १६ मील का है।

'फरैनी' फार्बिसगंज थाने की सीमा से झटिति निकलकर रानीगंज थाने की सीमा में घुसती है और जगता एवं खराही के पूर्व भाग से बहती लगभग ६ मील दक्षिण में चलकर रानीगंज पहुँच जाती है। सहरसा जिले के मधेपुरा से अररिया जानेवाली सड़क तथा फार्बिसगंज से दक्षिण दिशा में चलकर रानीगंज आनेवाली सड़क—दोनों में ही रानीगंज, फरैनी को पार करती हैं। रानीगंज से फरैनी धार रानीगंज-चंपानगर-मार्ग के सामानांतर कुछ अग्निकोण में झुकती दक्षिण चलती है और बकुलाहा गाँव के पूर्व से तथा 'बढ़रा' के पश्चिम से सीधे दक्षिण की ओर बहती 'कालाबलुआ' के पश्चिमोत्तर कोण में आ जाती है, जहाँ 'लच्छा धार' की एक छोटी उपशाखा का पानी ग्रहण करती है। यह उपशाखा सिर्फ तीन मील की है और 'कोस्कापुर' नामक गाँव से होती अग्नि कोण में बहकर आती है। काला बलुआ से सिर्फ डेढ़ मील दक्षिण आकर 'फरैनी धार अररिया-अनुमंडल को पार करके सदर अनुमंडल के धरहारा थाने में आ जाती है। बलुआ कचहरी तथा रघुनाथपुर नामक गाँवों से डेढ़ मील पश्चिम से ही बहती हुई 'फरैनी' दक्षिण की ओर चलती अपने लच्छा धार के उस संगम पर पहुँचती है, जिसकी चर्चा मैंने पहले की है और जो सरसी रेलवे-स्टेशन तथा बनमनखी स्टेशनों के माध्य भाग में पड़ता है। काला बलुआ से अपने संगम तक 'फरैनी' को सात मील का मार्ग तय करना पड़ता है, जो एक जनहीन कृषि भूमिवाले मैदान से गुजरती है और तत्पश्चात् लच्छा धार से मिल जाती है।

पूर्णिया-बनमनखी-रेल लाइन के सरसी और बनमनखी स्टेशनों के मध्य लाइन के सटे उत्तर फरैनी-धार को ग्रहण करके लच्छा धार रेल-लाइन के नीचे से पार करती है और ढाई मील दक्षिण में बढ़कर धरहरा थाने को पार करके 'धमदाहा' थाने की भूमि में आ जाती है। इस थाने में इसे एक बहुत बड़े मैदान से गुजरना पड़ता है तथा मोगलिया पुरंदहा एवं चंपावती नामक गाँवों के बीच से यह दक्षिण की ओर निकलती है। इनमें पहला

गाँव लच्छाधार से दो मील पश्चिम ओर दूसरा गाँव भी प्रायः इतनी ही दूर पूरब में है। आगे 'डोमैली' गाँव भी इस धारा के पूर्व भाग में दीख पड़ता है। इसके बाद कोसी की यह लच्छा-धार धमदाहा नगर के पूरब डेढ़ मील पर आ जाती है। यहीं इस नदी को धमदाहा-पूर्णिया मार्ग पार करता है। इसी मार्ग पर लच्छा धार से डेढ़-दो मील पूरब 'रूपसपुर चँदवा' नामक गाँव है, जहाँ के निवासी डॉ० लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' (अब स्वर्गीय) हिंदी भाषा और साहित्य के विख्यात विद्वान हैं। ये पूर्णिया जिला परिषद् के अध्यक्ष, विहार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष, बिहार प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष और बिहार विधानसभा के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। केंद्रीय सरकार ने बिहार में जब-'बिहार-हिंदी-ग्रंथ-अकादमी' की स्थापना की, तब प्रथम-प्रथम उसके अध्यक्ष ये ही बनाये गए। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्-जैसे विख्यात अनुसंधान-संस्थान की स्थापना का सारा श्रेय भी इन्हीं को ही है। पूर्णिया नगर में प्रसिद्ध सांस्कृतिक संस्था 'कला-भवन' को इन्होंने ही स्थापित किया है। ये कई मानक पुस्तकों के लेखक भी हैं। इनका जन्म-ग्राम 'रूपसपुर' लच्छा धार और लबरी धार—इन दो नदियों के ठीक मध्य में धमदाहा-पूर्णिया-मार्ग पर बसा है।

उक्त मार्गवाले पुल के पास से जब लच्छाधार दो मील दक्षिण बढ़ती है, तब उसके दाहिने भाग में कोसी की एक छाड़न-धार संगम करती है। इस छाड़न-धार का ऊपरी हिस्सा बुकानन-कालीन **'नागर'** नामक नदी का धारा-मार्ग है। यह वही नागर है, जो 'हिरन' से धमदाहा के दक्षिण में मिलती थी। इसी धार से निकल कर **'गुलेलाधार'** प्रवाहित होती है, जिसका उल्लेख **'हहा-धार'** के प्रसंग में हो चुका है। गुलेलाधार जानकी नगर-स्टेशन के पूरब जिस धारा से निकल कर नैऋत्य कोण में झुककर दक्षिण चलती है, उसी धारा की दूसरी भुजा अग्नि-कोण में झुककर दक्षिण बहती है। उस धारा की यही भुजा जब 'धरहरा' थाने की सीमा पार करके 'धमदाहा' में प्रवेश करती है, तब अँगरेजी के एम (m) वर्ण की आकृति में अपनी लटें सँवारती है। यहाँ इस धारा के पश्चिम लौकही, नैऋत्य कोण में 'निपनिया', पूरब में 'निपनिया मिलिक' तथा उत्तर में 'गंगैली' गाँव बसे हैं। इसके पश्चात् निपनिया के चौर से गुजर कर तथा पूर्व कथित मोगलिया पुरंदहा के पूर्व से बहती हुई एवं लच्छा धार तथा धमदाहा नगर के मध्य भाग से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती आगे लच्छा धार से संगम करती है। यह कोसी-धार के नाम से ही अभिहित होती है।

उक्त कोसी-धार को ग्रहण करके लच्छा धार जब दक्षिण चलती है, तब इसके दाहिने किनारे 'वँसी पुरंदहा' नामक गाँव मिलता है और इसके बाद यह 'कुवारी' नामक गाँव को आती है। यहाँ यह पूर्णिया जानेवाले एक दूसरे मार्ग को पार करती है और अग्नि-कोण में मुड़कर दो धाराएँ बनाती है। इनमें से पूर्वी धार बुकानन कालीन **बरहण्डी** नदी की धार है। बरहण्डी भी दो धाराओं में बहती थी, जिनका नाम **'मरा बरहण्डी'** तथा **'बरहण्डी'** था। लच्छा धार की यह पूर्वी धारा बरहण्डी-धार का अनुसरण करती है। ये दोनों धाराएँ समानांतर रूप से सात-आठ मील दक्षिण पृथक्-पृथक् चलकर पुनः परस्पर मिल जाती हैं। दोनों धाराओं के मध्य में माली तथा गोविंदपुर गाँव बसे हैं। गोविंदपुर प्राचीन

ग्राम है और माली से चार मील दक्षिण में बसा है। यह पूर्वी धार के बिलकुल दाहिने तट पर है। दोनों धाराओं के मिलन-स्थल से डेढ़ मील दक्षिण 'पोठिया' गांव है, जिसके उत्तर भाग से ही लच्छा धार नैऋत्य कोण में मुड़ जाती है तथा 'पीरहा' के अग्नि कोण में रुपौली-पोठिया मार्ग को पार करके 'धूसर टीकापट्टी' तथा 'चांदपुर' को पहुंचती है। दोनों गांव इसके बिलकुल दाहिने किनारे हैं। यहाँ से दो मील दक्षिण चलती नाजिरगंज चकिया के पश्चिम से नवाबगंज आती है और वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और तब 'कोसी-सिमरा' गाँव को आती है। यह गांव कुरसेला रेलवे-स्टेशन से पश्चिमोत्तर कोण में स्थित है। यहाँ से दक्षिण मुड़कर लच्छा धार 'भउवा परबल' पहुंचती है, जहाँ इसमें पूर्व कथित 'बलुआ-धार' संगम करती है। यहीं कुरसेला-स्टेशन के पश्चिम कोसी की लच्छा धार पहले 'घघरी' नदी से संगम करती थी। किंतु, आज तो इस लच्छा धार की कहानी कहानी ही बन गई है। 'कोसी सिमरा' और 'भबुआ-परबल' के पास इस कोसी-धार के क्षीण-हीन रूप आज भी दीख पड़ते हैं; पर धमदाहा के दक्षिण भाग में यह प्रायः सर्वत्र सिलपट-सी हो गई है और अब तो इसके धारा-मार्ग में प्रचुर और उन्नत कृषि हो रही है।

लबरी बनाम बरहण्डी :

इस लबरी नदी की धारा भी अब समाप्त प्राय है और यह भी कृषि-योग्य उर्वर भूमि बन गई है। लबरी भी कोई अलग नदी नहीं है। कोसी की मुख्य धारा जिस समय कम-से-कम सन् १८१० ई० तक पूर्व-कथित लच्छाधार से संपृक्त होकर वह रही थी, उस समय के बाद लच्छा-धार की एक शाखा, फरैनी-संगम के पास से अलग होकर बही थी, जो कालक्रम से विछिन्न हो गई। इसी धारा का नाम 'लबरी धार' है। यह पूर्वकथित लच्छाधार के पूरब से उसके समानांतर दक्षिण की ओर बहती हुई बुकानन के समय की 'बरहण्डी' नदी की धार पकड़ लेती थी और काढ़ागोला स्टेशन के पश्चिम से ही काढ़ागोला घाट के पास जाकर गंगा नदी के 'कोसी-प्रसाद' नामक धार में प्रवेश कर जाती थी। बुकानन का मत है कि 'बरहण्डी' अंत में नैऋत्य कोण में झुककर कोसी के मुख्य धारा से कुरसेला के उत्तर में मिलती थी, पर वस्तुस्थिति यह है कि लबरी धार 'बरहण्डी' को ढकेल कर अग्नि-कोण की ओर काढ़ागोला घाट तक ले गई थी।

लबरी धार, सरसी स्टेशन के पश्चिम-स्थित चौर से प्रवाहित होकर 'धमदाहा' थाने की सीमा में प्रवेश करती है और दक्षिण की ओर चलने पर इसके दाहिने किनारे बेलागोविंद तथा बेला चंपावती गाँव दिखाई देते हैं। बेला चंपावती से दो मील दक्षिण चंपावती गांव है, और यह भी इसके दाहिने किनारे ही एक मील दूर है। इसी के सामने लबरी धार की बाईं ओर (पूर्व में) चिकनी गांव है और इसकी दूरी भी तट से एक मील की है। इन दोनों गांवों के मध्य से लबरी-धार सीधे दक्षिण की ओर एक ग्राम-विहीन मैदान से बहती है, जिसके पश्चिम-भाग में डोमैनी और उसके दक्षिण 'डोकैहा' गांव दिखाई पड़ते हैं। इसके पश्चात् यह 'रंगपुरा' ग्राम को आती है, जो इसके पूर्वी किनारे बसा है। रंगपुरा के उत्तर तथा डोकैहा के दक्षिण धमदाहा से पूर्णिया जानेवाली सड़क इस लबरी-धार को पार

करती है। इसी रंगपुरा के पश्चिम में हिंदी के विख्यात विद्वान् डॉ० सुधांशु का 'रूपसपुर' ग्राम वसा है, जो 'लबरी-धार के पश्चिम में है, जिसकी चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त, धमदाहा-पूर्णिया-मार्ग पर ही लबरी-धार से तीन मील पूर्वोत्तर भाग में 'वीरनगर, नामक प्राचीन ऐतिहासिक ग्राम है, जहाँ औरंगजेब के शासन-काल में 'वीरशाह' नामक राजा था। इसने औरंगजेबी शासन के विरुद्ध विद्रोह किया था। पिता के मरणोत्तर वीरशाह के पुत्र दुर्जन शाह भी उसी रास्ते पर चलता रहा, जिसे सर करने के लिए औरंगजेब ने अपने एक सूबेदार सैफ खाँ को भेजा था। सैफ खाँ ने दुर्जनशाह को हराकर उसका शासन समाप्त कर दिया, साथ ही मोरंग के विद्रोहियों को भी कुचल दिया था। इसी सैफ खाँ ने अपने नाम पर पूर्णिया जिले में दो 'सैफगंज' नामक गाँव बसाये थे, जिनमें एक तो 'कटिहार' है और दूसरा फार्विसगंज से आठ मील दक्षिण में है, जिसका उल्लेख हम नदियों के धारा-क्रम में कई बार कर चुके हैं ! कटिहार का निर्माण सैफगंज के स्थान पर किया गया है।

उक्त रंगपुरा से लबरी धार के चार मील दक्षिण आने पर इसके दाहिने किनारे हसेली नामक गाँव मिलता है। यहाँ से तीन मील दक्षिण बढ़ने पर 'लबरी' के बाएँ तट पर 'मोरसंदा' अवस्थित है, जहाँ कुरसेला से पूर्णिया जानेवाला एक मार्ग 'लवरी धार' को पार करता है। यह मार्ग कुरसेला से नाजिरगंज, पोठिया, फल्का आदि स्थानों से होता हुआ पूर्वोत्तर-कोण की ओर पूर्णिया जाता है। लवरी धार मोरसंदा से दक्षिण चलकर 'निसुंदरा' आती है, जिसके पश्चिम में 'फल्का' है। फल्का प्राचीन ग्राम है और यहाँ एक अच्छा बाजार लगता है। इसी 'फल्का' के दक्षिण से और 'महम्मद नगर' के पश्चिम से पहले बुकानन-कालीन 'बरहण्डी' नदी बहती थी, जिसका कुछ अवशेष हाल तक था, जिसका पानी दक्षिण में जाकर 'लबरी धार' से मिलता था।

'लबरी धार' निसुंदरा से दक्षिण तथा फल्का-बाजार से अग्निकोण में आकर अपनी धारा बहाती है और 'महम्मद नगर' गाँव के पूरब आकर एकाएक नैऋत्य कोण में मुड़कर 'मोनजान' गाँव को पहुंचती है। इसी 'मोनजान' के अग्निकोण में प्राचीन बरहण्डी की अवशेष-धारा अपना बरसाती पानी लबरी में डालती है। यहाँ से दक्षिण चलकर लबरी धार 'छोहर' और 'पवई' ग्रामों के मध्य से बहती 'लक्ष्मीपुर' तथा 'बरारी' आती है। इसी बरारी में काढ़ागोला रेलवे-स्टेशन है। यह राष्ट्रीय उच्चपथ पर भी है। छोहर इस नदी के पश्चिम में और पवई पूर्व में पड़ता है। लक्ष्मीपुर के दक्षिण-पश्चिम-कोण में तथा बरारी के पश्चिमोत्तर-कोण में पुरानी बरहण्डी से मिलती है और बरारी के पश्चिम से जब यह नैऋत्य कोण में मुड़ती है, तब अपना 'लबरी' नाम छोड़कर 'बरहण्डी' नाम धारण करती है। बरारी से लगभग साढ़े तीन मील नैऋत्य कोण में चलकर 'बरहण्डी' मघैली एवं गुरुमैला गाँव के बीच पहुँचती है। मघैली के अग्नि-कोण में और गुरुमैला के पश्चिमोत्तर कोण में आकर 'बरहण्डी नदी' दक्षिण दिशा में मुँह कर लेती है और 'संतोखपुर' के सटे पश्चिम कटिहार-रेल-लाइन को पार करके जब डेढ़ मील दक्षिण जाती है, तब अग्नि-कोण में दौड़कर 'जवनिया' गाँव के किनारे से होती तथा पूर्व की ओर बहती 'काढ़ा गोलाघाट'

नामक स्थान को आ जाती है और यहीं यह कोसी-गंगा-संगम में समाहित हो जाती है। इसी संगम से डेढ़ मील पूर्वोत्तर-भाग में 'कान्ननगर' स्थान है, जो कभी नौका द्वारा व्यापार करने का प्रमुख केंद्र था। यहाँ से व्यापारिक नौकाएँ उत्तर में पूर्णिया, कसवा, रानीगंज तथा पश्चिम में पटना और पूर्व में ढाका (अब बंगला देश की राजधानी) तक जाती थीं। उस समय गंगा-कोसी-संगम की धारा 'कांतनगर' के सन्निकट **कोसी-प्रसाद** के नाम से बहती थी।

काली कोसी :

संप्रति 'काली कोसी' का उद्‌गम-स्थान पूर्वचर्चित 'सैफगंज' के दक्षिण-स्थित लक्ष्मीपुर गाँव के चौर में है। यह स्थान फार्विसगंज से ११ मील दक्षिण में, अररिया से १५ मील पश्चिमोत्तर-कोण में, रानीगंज से सात मील सीधे उत्तर में और 'गंजबाग' से सिर्फ दो मील दूर पूर्व में पड़ता है। वस्तुतः, काली कोसी की यह धारा बुकानन के समय की कजला या **कमला** की धारा है, जो बाद में **'कमताहा'** कहलाने लगी। 'कमताहा' नाम सन् १९४५ ई० तक के बने सर्वे-विभाग के नक्शे में अंकित मिलता है। मोरंग की **'गेरया'** और 'कजला' नदी उस समय की कोसी की टूटी धाराएँ हैं, जिस समय वह चतरा से आठ मील नीचे आकर तथा बेल्का पहाड़ी के क्षेत्र को पार करके अग्नि-कोण की ओर झुककर प्रवाहित होती थी तथा कजला और गेरया की धारा से मिलकर बहती हुई 'नवाबगंज वगैरह' तथा 'भौंवरा' के पास पूर्णिया जिले में प्रवेश करती थी। यह बात बहुत पुरानी है। किंतु, कजला और गेरया जब कोसी-धार से विच्छिन्न होकर बिलकुल स्वतंत्र नदी बन गई, तब भी (१८ वीं शती में) कोसी नदी 'सउरा' तथा काली-कोसी की धाराओं से संपृक्त होकर बह रही थी। इस स्थिति में उक्त सैफगंज के दक्षिण से उद्‌गत धारा, जो वस्तुतः कजला या कमला की टूटी धार है, रानीगंज में काली-कोसी से मिलती थी।

अठारवीं शती के पूर्वार्द्ध में कोसी नदी वीरपुर (सहरसा) के उत्तर में तथा उसके पूर्व भाग से बहती थी और पूर्णिया जिले के 'वेला' गाँव के पूर्व से होती हुई 'डोमबना' आती थी। फिर, डोमबना के पूर्व से दक्षिण चलने पर 'घुरुआ' गाँव को भी अपने दाहिने भाग में देखती पथराहा, भवानीपुर तथा भदवार के पश्चिम से हनुमान नगर को आ जाती थी। ये सभी गाँव पूर्णिया जिले के नरपतगंज थाने के उत्तरी भाग में स्थित हैं। इसी हनुमानगर से कोसी अग्निकोण में झुकती थी और उक्त 'गेरया' नदी को आत्मसात् करती थी। इसके पश्चात् यह 'बूढ़ी कोसी' की धार से मिलकर बहती 'बधुआ देवीगंज' के पश्चिम से 'फरही' आती थी और तामगंज, गधगावाँ होते बरियारपुर के पूरब में 'कजला' नदी को साथ लेकर 'अरार' के पास से 'सैफगंज' के दक्षिण आधुनिक काली-कोसी की धारा पकड़ कर बहती थी। जिस समय कोसी का मुख्य प्रवाह काली-कोसी की उपर्युक्त धारा के साथ पूर्णिया होकर बह रहा था, उस समय भी कोसी की कई गौण धाराएँ थीं; जिनसे होकर वर्षाकालीन जल गंगा में गिरता था। उस समय इसकी गौण धाराओं में सउरा, लबरी और लच्छा धार अधिक ख्यात थीं। किंतु, उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण में, अर्थात् बुकानन के

काल में कोसी पश्चिम की ओर हट गई और लच्छाधार से मिलकर बहने लगी। उस समय की 'काली कोसी' की प्रवाह-स्थिति यथाविवृत रूप में आगे द्रष्टव्य है।

काली-कोसी पूर्वोक्त बूढ़ी कोसी की धारा के साथ मिलकर बघुआ देवीगंज और पथराहा के पश्चिम तथा कोस्कापुर के पूरब से बिशुनपुर को आती थी और तब सिमरबनी के पश्चिम में पहुँचती थी। वहाँ शंकरपुर के सन्निकट पश्चिम की ओर अधिकांशत: अग्नि-कोण में मुड़ती थी और 'जगता' गाँव के उत्तर में पूर्वकथित 'फरैनी धार' से मिलती थी। यह स्थान सिमरबनी से ६ मील दूर अग्निकोण में, गंजबाग से ३ मील दूर दक्षिण में तथा जगता गाँव से एक मील दूर उत्तर में था। यहाँ से काली-कोसी को पकड़कर 'जगता' के पूरब तथा 'बिस्तरा' गाँव के पश्चिम से फरैनी धार बहती रानीगंज पहुँचती थी। फिर, रानी-गंज से फरैनी धार को पकड़कर बहती काला बलुआ आती थी और यहाँ से फिर आगे बढ़कर तथा बलुआ कचहरी के पश्चिम से ही कुछ दूर जाकर अग्नि-कोण में मुड़ती थी और चंपानगर के पास में वर्तमान कमताहा-धार, जो आजकल काली-कोसी कहलाती है, से मिल जाती थी। चंपानगर के पश्चिमोत्तर-कोण में स्थित 'बहेड़ा' गाँव इसी काली-कोसी की दलदली चौर में बसा है। बुकानन के समय में इस चौर का नाम 'खात्ता' था, जिसमें 'सउरा' नदी की एक शाखा गिरती थी। इसके बाद तो महा कोसी आज की काली-कोसी कहलाने वाली धारा को पकड़कर बहती हुई पूर्णिया होकर दक्षिण की ओर निकलती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक काली कोसी की यही धारा स्पष्ट रूप से परिलक्षित थी। किंतु, आज जो काली-कोसी की धारा रह गई है, उसका विशद विवरण यहाँ जान लेना अप्रासंगिक न होगा।

सैफगंज के दक्षिण लक्ष्मीपुर गाँव में काली-कोसी का उद्गम-स्थान है। काली-कोसी पहले 'कजला' या 'कमला' की धारा थी, जो कालक्रम से उससे विच्छिन्न हो गई। यह काली-कोसी अपने उद्गम से दक्षिण में चलकर मिरजापुर के पश्चिम से तथा महाचंडी गाँव के पूरब से दक्षिण की ओर रानीगंज थाने में घुसती है। यहाँ से भी यह दक्षिण में चलती है और राघोपुर के पश्चिम से होते हुए 'विस्तरा' गाँव के पूर्व से 'बेलगाछी' गाँव को आती है और तब रानीगंज पहुँचती है। रानीगंज के पश्चिम फरैनी-धार बहती है। फरैनी पहले भी काली-कोसी की ही धारा थी और पूरब दिशा में आज भी यह काली-कोसी की ही धारा है। इसे इस क्षेत्र में 'कमताहा' नदी कहते हैं। रानीगंज पूर्णिया जिले के व्यापारिक केंद्रों में एक है, जहाँ पहले गंगा नदी से व्यापारिक नावें यहाँ पहुँचती और पुन: यहाँ से प्रस्थित होती थीं। आज रानीगंज नगर बैरबना, मीरगंज और रानीगंज इन तीन गाँवों से बना एक शहर है। इस रानीगंज से कमताहा (काली-कोसी) अग्निकोण में बहती 'इंदरपुर' गाँव को आती है और तब बड़हरा के पूर्व से होती तथा दक्षिण दिशा में चलती हुई जब चार मील बह लेती है, तब अग्निकोण में मुड़कर एक स्थानीय स्रोत को ग्रहण करती है, जो उत्तर से सीधे दक्षिण आता है। यहाँ तक यह 'कमताहा' नदी फरैनी धार के समानांतर अग्नि कोण में झुकती हुई दक्षिण की ओर आती है। यहाँ से आगे जब चार मील दक्षिण चलती है, तब कोहबरा-विसुनपुर गाँव को पहुँचती है। इसी कोहबरा-बिसुनपुर में काली-कोसी अररिया-अनुमंडल

से निकलकर सदर (पूर्णिया) अनुमंडल में प्रवेश करती है और पूर्व दिशा में कुछ अधिक झुकती अग्निकोण में चलती है। इस दिशा में जब ढाई मील बढ़ती है, तब प्राचीन ग्राम 'सिंघिया' से डेढ़ मील पश्चिम में आ जाती है। यहाँ से यह दक्षिण चलती है और कोहबरा उर्फ रामनगर गाँव के पूर्व से होकर चंपानगर पहुँच जाती है। इसी रामनगर के पूरब में, काली-कोसी में पहले 'सउरा' की एक धारा आकर मिलती थी, जिसका चिह्न आज तक वर्तमान है। बुकानन के समय में वास्तविक काली-कोसी, जो पुरैनी धार से बहकर आती थी, यहीं इस काली-कोसी से संगम करती थी। इस संगम का नाम उस समय 'खत्ता' कहलाता था, जिसका अर्थ होता है—गहरी-चौड़ी झील। इसी संगम-स्थान पर 'चंपानगर' बसा है, जो बनैली इस्टेट का एक भागीदार है।

चम्पानगर से काली-कोसी दक्षिण की ओर निकलती है और धीरे-धीरे अग्निकोण की ओर मुड़ती हुई मोगलाहा आती है और तब आगे बढ़कर रामपुर नामक गाँव के पूर्व में पहुंचती है। सउरा धार की जो शाखा चंपानगर के खत्ते में गिरती थी, वह कालक्रम से दक्षिण मुड़कर रामपुर के पूर्व में आकर काली-कोसी से मिलने लगी थी और आज तो वह भी लुप्त हो गई है; किंतु उसका धारा-चिह्न आज भी देखा जाता है। फिर, रामपुर से अग्नि कोण में चलती काली-कोसी जब 'डँगराहा' के पश्चिम पहुंचती है, तब दक्षिण दिशा में मुड़कर 'कीर्त्यानंद नगर' रेलवे स्टेशन के पास आती है। यह पूर्णिया-मधेपुरा-रेलवे का, पूर्णिया स्टेशन के पश्चिम, दूसरा स्टेशन है। सन् १६१० ई० (बुकानन के समय भी) में इसी कीर्त्यानंद-नगर रेलवे स्टेशन के उपरी क्षेत्र से काली-कोसी दो धाराओं में विभक्त होती थी, जिसकी पूर्वी धारा पूर्णिया नगर के पश्चिम-दक्षिण कोण में आती थी और अब्दुल्ला नगर के पश्चिम सउरा धार से मिलती थी; किंतु पश्चिमी धारा काझा, वीरनगर तथा अलीनगर के पूरब से होते 'रउतारा' रेलवे-स्टेशन के पास सउरा-धार से संयुक्त हो जाती थी। 'रउतारा' रेलवे स्टेशन कटिहार तथा पूर्णिया के बीच में पड़ता है। आज इस पश्चिमी धारा का चिह्न भी मिट गया है। किंतु, आज जिस धारा का अवशेष दीख पड़ता है, वह पूर्णिया नगर के खजांची हाट स्थान के पश्चिम से दक्षिण की ओर निकल कर 'गोआसी' के पूर्व तथा दक्षिण भाग से होते हुए अलीनगर पहुँचता है और वहाँ से भी डेढ़मील दक्षिण बढ़कर पूर्व की ओर मुँह करता है और इस दिशा में ढाई मील चलकर दक्षिण मुड़ जाता है। यह घुमाव 'लालगनी' के दक्षिण में होता है और वहाँ से सउरा-धार के समानांतर तथा उसके दाहिने किनारे से चलता पीरगंज के दक्षिण में 'सउराधार' को आत्मसात् कर लेता है। इस अवशेष में काली-कोसी की उस दाहिनी शाखा का भी अवशेष सम्मिलित है, जो कीर्त्यानंद नगर स्टेशन से दो धाराओं में विभक्त होकर पश्चिमी धारा बनती थी। काली-कोसी का एक खँडहर आधुनिक पूर्णिया नगर के उत्तर-भाग में भी दीख पड़ता है। यह धारा सउरा नदी से नई पूर्णिया और पुरानी पूर्णिया के मध्य में मिलती थी और इसी की एक धारा नई पूर्णिया के पूरब से चलकर 'लालगंज' स्थान के दक्षिण में सउरा से मिलती थी। किंतु, आज ये सभी धाराएँ प्रायः समाप्त हो गई हैं।

काली-कोसी अपने उद्गम स्थान से पूर्णिया नगर तक रानीगंज-पूर्णिया-मार्ग के पूर्वी किनारे से होते हुए उसके सामानांतर आती है। रानीगंज के उत्तर इसकी जो 'कमताहा' नामक धार है, वह भी रानीगंज-फारबिसगंज-मार्ग के पूर्व भाग से उसके सामानांतर दक्षिण की ओर बहती है। किंतु, आज से ८०-८५ वर्ष पूर्व काली-कोसी पूर्णिया नगर के पास तथा इसके दक्षिण 'सउरा धार' से नहीं मिलती थी; बल्कि यह पूर्णिया के पश्चिम से होकर वीरनगर और हीराधार गाँवों से होते 'चथरियापीर' (कोढा से पाँच मील उत्तर) आती थी और **'तिनपनिया'** नामक कोसी-धार से मिलकर बहती 'कांतनगर' के पास गंगा से मिलती थी। बाद में यही तिनपनिया-धार सदलपुर के पश्चिम से और खिरिया के पूरब से बहती कोढ़ा-कटिहार सड़क पर आने लगी और यहाँ से नैऋत्य कोण में मुड़कर नकीपुर के पश्चिम से तथा बड़गाँव के पूरब से अग्निकोण में बहने लगी। यह अब 'कटिहार' के नैऋत्य कोण में एवं दुर्गापुर तथा आजमपुर शंकर ग्राम के पूरब काली-कोसी में गिरने लगी है। आज काली-कोसी की इस तिनपनिया धार का थोड़ा अवशेष इस निचले क्षेत्र में ही शेष रह गया है। सउरा-संगम के बाद 'काली-कोसी का शेष प्रसंग आगे लिखा जाएगा।

सउरा धार :

कोसी की जितनी मुख्य छाड़न-धाराएँ हैं, उन सब का विवरण प्रस्तुत किया गया। अब केवल एक ही छाड़न-धारा बच जाती है, जिसे 'सउरा' कहा जाता है। अठारहवीं शती के प्रथम चरण में कोसी नदी इसी सउरा-धार से बहती थी। यह सउरा-धार अभी तक भी दीख पड़तो है। इस सउरा धार से और पूर्व की ओर हट कर कोसी की एक दूसरी धारा भी बह रही थी। यही धारा 'कटिहार' के अग्निकोण में आठ मील दूर जाकर पूरब मुड़ती थी तथा **'फुलहर'** (बुकानन की घोघा) नदी से मिलकर **'कालिंदी'** में पहुँचती थी और इस प्रकार कोसी का कुछ पानी तो सकरी गली (संथाल परगना) के सामने गंगा में मिलता था और कुछ और दक्षिण बढ़ता था तथा छोटी भागीरथी से मिलकर 'पद्मा' की उद्गम-धारा में जा समाता था। कोसी के इस धारा-मार्ग का विवरण प्रस्तुत करने के बाद हम आधुनिक 'सउराधार' का वर्णन उपस्थित करेंगे।

हम यहाँ कोसी के जिस धारा-मार्ग का उल्लेख कर रहे हैं, वह भी उस समय **सोंअरा** ही कहलाती थी, जिसे कुछ लोग **समराधार** और कुछ लोग **सउरा-धार** कहते थे। बुकानन ने इसे भी 'बूढ़ी कोसी' कहा है। कोसी की यह धारा बूढ़ी कोसी की धारा से, पूर्णिया जिले के बिलकुल पश्चिमोत्तर-कोण में स्थित देवीगंज के पश्चिम से चलती तथा फरही के दक्षिण आकर तामगंज के पास से अग्निकोण में मुड़ती थी और 'गधगावाँ' के अग्नि-कोण में गोरोभगड़ (कजला) धार को समेटकर गंजबाग के उत्तर आ जाती थी। यहीं, यह कजला की पूर्वी धार को, जिसमें नेपाल की **नीतिया** नदी और **'परमान'** (बुकानन की पोंयार) नदी की एक शाखा भी गिरती थी, ग्रहण करके पूर्व की ओर मुड़ती थी और 'जिरवा' ग्राम को चली आती थी। यह जहाँ पूर्व की ओर मोड़ लेती थी, वह स्थान

'सैफगंज के दक्षिण में था और यहीं से काली-कोसी की ऊपरी धार **'कमताहा'** का उद्गम होता है। 'जिरवा' के दक्षिण में कोसी की इसी सउरा-धार से कालांतर में **दुलारदेई** नदी का उद्गम हुआ। मगर, कोसी की यह 'सउरा धार' जिरवा से भी पूरब बढ़ती थी और 'शंकरपुर' तथा 'हिंगना' गाँव के पास से अग्नि-कोण में मुड़ती थी, जहाँ से वर्त्तमान 'सउरा-धार' का उद्गम-चिह्न दिखाई पड़ता है। ये शंकरपुर तथा हिंगना गाँव 'अररिया' से नौ मील पश्चिम में पड़ते हैं और फारबिसगंज से ग्यारह मील दक्षिण में। यहाँ से प्राचीन सउरा नदी आधुनिक सउरा नदी की ही धारा से सिर्फ नौ मील अग्निकोण में उस स्थान तक बहती थी, जिसके उत्तर में चंदरदई, पूरब में कमलदह एवं पश्चिम में मिरजापुर गाँव हैं। इसी सउरा-धार के किनारे 'चंदरदेई' में मेला लगता था। यह स्थान कुशियार गाँव रेलवे-स्टेशन से पाँच मील पश्चिमोत्तर-कोण में तथा अररिया से छह-सात मील नैऋत्य कोण में अवस्थित है। कमलदह के बाद प्राचीन 'सउरा धार' वर्त्तमान सउरा धार का मार्ग छोड़ देती थी और पूरब की ओर भुकती हुई 'कुशियार गाँव' के पास पहुँचकर अद्यतन पूर्णिया-अररिया-रेलमार्ग के किनारे से चलने लगती थी। अब भी इस क्षेत्र में रेलमार्ग के पार्श्व में यत्र-तत्र इस प्राचीन सउराधार के चिह्न विद्यमान हैं। इस धारा को भी बुकानन ने **'बूढ़ी कोसी'** कहा है। रेल-मार्ग के सटे पूर्व से चलनेवाली यह धारा अपने पश्चिमी तटवर्त्ती कुशियार गाँव, लोदीपुर, सफुल्लाह टोला, गेहुमा, जलालगढ़, गढ़ बनैली ग्राम होते हुए कसबा पहुँचती थी। कसबा में आकर यह अपनी एक छोटी धारा नैऋत्यकोण में निकालकर सउरा-धार में डालती थी, जिसे बुकानन ने **गरगद** नदी कहा है और बताया है कि इसमें, बरसात में, २०० मन बोझा ढोनेवाली नावें आती-जाती थी। किंतु, बुकानन के कुछ पहले बूढ़ी कोसी की धारा कसबा से भी अग्निकोण में चलती थी, जो प्राचीन पूर्णिया नगर के पूरब में स्थित विश्वासपुर तथा मथउर गाँवों को आती थी। पूर्णिया नगर के पूरब तथा उक्त दोनों गाँवों के पश्चिम में जो बहुत बड़ा चौरनुमा क्षेत्र है, वह प्राचीन सउराधार (बूढ़ी कोसी) का ही बनाया हुआ ह्रदहै। आज इसी चौर-मैदान से आसाम जानेवाला राष्ट्रीय-उच्च राजपथ गुजरता हुआ किशनगंज जाता है।

उक्त विश्वासपुर तथा मथउर गाँवों से पुनः बूढ़ी कोसी दो धाराओं में बँट जाती थी, जिसकी दाहिनी और पश्चिमी शाखा का नाम **भिसना** था और पूर्वी तथा बाईं शाखा **कमलेश्वरी** नाम से पुकारी जाती थी। भिसना-धार विश्वासपुर से नैऋत्य कोण में चलकर लल्हीलू, डगरुआ, बगुलाबारी, महराजपुर, भटौरिया, ददउर और रामपुर होते, सदर अनु-मंडल पार करके कटिहार-अनुमंडल में 'प्रयागदह' के पास प्रवेश करती थी। इसी प्रयागदह से आगे भिसनाधार का अवशेष अब भी मिलता है। इसके बाद भी यह बैरपुर तथा जगरनाथपुर के बीच से नैऋत्य कोण में चलती 'चानपी' गाँव के दक्षिण आती है और यहीं पश्चिम दिशा में मुँह करके कटिहार-पूर्णिया-रेल-लाइन को पार करती है। भिसना के ऊपर रेलवे का यह पुल चानपी और रामपुर गाँवों के मध्य में बना है, जो कटिहार स्टेशन से ७ मील उत्तर में है और 'रउतारा' से चार मील दक्षिण में। पूर्णिया-कटिहार रेल-लाइन को

पार करके 'भिसना नदी' लाइन के पश्चिमी भाग में आती है और पहले दक्षिण और तब नैऋत्य कोण में बहकर 'दालन' नामक गाँव के पश्चिम काली कोसी और सउरा की संयुक्त धारा में मिल जाती है। यह संगम 'सिमरिया' ग्राम से सिर्फ दो मील पूर्वोत्तर-कोण में है।

बूढ़ी कोसी की पूर्वी धारा, जिसे 'कमलेश्वरी' कहा गया है, पूर्णिया के पूर्व में स्थित विश्वासपुर से सीधे दक्षिण चलती थी, और एक सोता इसमें आकर मिलता था। यह सोता पनार नदी का विच्छिन्न स्रोत प्रतीत होता है और डकैली ग्राम से दक्षिण चलता है। इस स्रोत को ग्रहण करके बूढ़ी कोसी 'कमला' कहलाने वाली धारा से चांनपी और मसलवारी के मध्य से बहती 'दनसर' तथा कल्याणपुर को आती थी। पूर्व-कथित भिसना-धार जिस 'चानपी' के पास कटिहार-पूर्णिया-रेल-लाईन को पार करती है, उससे बहुत दूर यह 'चानपी' है, जो 'कमलेश्वरी' के बाएँ भाग में है। इसी के सामने कमलेश्वरी के दाएँ भाग (पश्चिम में) 'महालबारी' गाँव स्थित है। दनसर और कल्याणपुर दोनों इसके दाहिने भाग में हैं। कल्याणपुर के दक्षिण बहने पर इसके दाहिने किनारे क्रमशः बरहमपुर, खनुआ तथा ढ़ेरवा गाँव और बाएँ किनारे क्रमशः सहवा, महेशपुर, मझवा, उफरैल एवं सगुनिया गाँव मिलते हैं। उक्त मझवा के पश्चिम में यह 'कमलेश्वरी' पूर्णिया से अग्निकोण की ओर चाँदपुर हाट जानेवाली सड़क को पार करती है और यहीं यह कटिहार अनुमंडल में घुसती भी है। सगुनिया के दक्षिण में आकर 'कमलेश्वरी' उत्तर और फिर पश्चिमोत्तर तथा पुनः दक्षिण की ओर मुड़ती है, जिसके प्रायद्वीप में 'भरीडीह' नामक गाँव बसा है, जो 'कदवा' से छह मील पश्चिम में तथा 'महभदिया' से दो मील पूर्व में है। यहाँ से कमलेश्वरी नैऋत्य कोण में चलकर 'महमदिया' के दक्षिण आती है और यहाँ से भी दक्षिण की ओर ही चलकर 'रतनी छोटकी' तथा 'देवखंड' पहुँचती है। ये दोनों ग्राम इसके दाहिने किनारे हैं और यहीं बाएँ किनारे 'सौरिया' ग्राम है। यहाँ से भी दक्षिण चलकर कमलेश्वरी धार क्रमशः शंकरपुर एवं कटिहार गाँव के पूर्व में आती है। वर्त्तमान कटिहार जंकशन सैफगंज एवं मिरचाई गाँवों को निमूंलित कर उनकी भूमि पर बना है, जहाँ से यह कटिहार गाँव किंचित् उत्तर की ओर झुकता हुआ चार मील पूर्व में है और बारसोई जानेवाली रेल-लाइन के बिल्कुल किनारे में है। कटिहार गाँव कमलेश्वरी धार के दाहिने और खैरा ग्राम बाएँ भाग में दीख पड़ते हैं। कमलेश्वरी इन्हीं दोनों गाँवों के बीच से होकर कटिहार-बारसोई रेलवे-लाइन के नीचे से गुजरती है और मघेपुर गाँव से होते 'पनार' नदी (पूर्व नाम रतोया) की एक शाखा से मिल जाती है। दोनों के मिलन के बाद इस धारा का नाम **'मनाइन'** हो जाता है। यह धारा दक्षिण जाकर मनशाही के पूर्व बहुत बड़ी झील बनाती है और उसके आगे जाकर दो धाराओं में बँटकर बलिया धार तथा **कनखर** कहलाती है। फिर, **फुलहर** और उसके आगे **घोघा** से मिलकर **कालिन्द्री** में पानी डालती है और फिर कालिन्द्री के साथ पद्मा नदी तक दौड़ लगाती है। इस प्रकार, कोसी के पूर्व भाग की अंतिम धारा यही बूढ़ी कोसी है, जिससे पूर्वोक्त लवरी धार, काली-कोसी, दुलारदेई, सउरा आदि धाराएँ बनती थीं। जिस समय कोसी इस बूढ़ी कोसी की धारा या सउरा धार पकड़कर

बहती थी, उस समय लच्छा-धार से पूरब दिशा में बहनेवाली सभी उक्त धाराओं-द्वारा अपना जल फैलाकर गंगा में भेजती थी और उस समय कोसी का मुहाना पूर्णिया के काढ़ागोला घाट तथा कांतनगर से आरंभ करके पूर्व तथा दक्षिण में पद्मा-धार तक की दूरी में विस्तृत था।

कोसी की इस प्राचीन 'सउरा-धार' के विवेचन करने के पश्चात् अब हम वर्त्तमान सउरा-धार का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। पूर्णिया जिले की सउरा नदी, जिसे बुकानन ने 'सरा' और **'सौंमरा'** कहा है, कोसी की अंतिम पूर्वी धारा रही है, जो बादशाह अकबर के शासन के समय में 'मनीहारी घाट' के पूरब गंगा से संगम करती थी। इस संगम के सामने गंगा के दाहिने किनारे सकरी गली (संथाल परगना) है। किंतु, इसके ये मानी कभी नहीं कि उस समय कोसी की एक मात्र धारा 'सउरा' ही थी। कोसी एक धारा में कभी नहीं बही, वह सर्वदा कई धारों में बँटकर गंगा-संगम करती रही है, जिनमें एक धारा मुख्य हुआ करती थी। जब इसकी 'सउरा-धार' मुख्य थी, तब भी 'कोसी' काली-कोसी, लवरी, वरहंडी, तिनपनियाँ तथा लच्छा धार के द्वारा अपना अगाध जल-भंडार गंगा में भेजती थी। आज जब कोसी नदी दो तटबंधों के भीतर कस दी गई है, तब भी एक धारा में न बहकर वह उसी के भीतर कई धाराएँ बनाकर बह रही है।

महाभारत काल में कोसी की धारा प्रमाणतः सहरसा जिले से होकर बहती थी और वह भागलपुर के सामने बीहपुर से कुरसेला तक गंगा से संगम करती थी। किंतु, 'पद्मपुराण' के स्वर्ग-खंड के निर्माण के समय कोसी की एक धारा **सकृन्नदी** बन गई थी। 'सकृत्' यही 'सउरा धार' है। क्योंकि, 'पद्मपुराण' अपने स्वर्ग-खंड में यत्र-तत्र न्यूनाधिक परिवर्त्तन के साथ 'महाभारत' के वन-पर्व वाले तीर्थों का ही उल्लेख करता है। उसने पूर्व देश के तीर्थों की गणना के क्रम में वन-पर्व (८४। १५६) की 'प्राङ्‌नदी' (पनार) के स्थान पर सकृत्रदी का उल्लेख निम्नांकित रूप में किया है :

सकृन्नदीं समासाद्य कृतार्थी भवति द्विजः।
सर्वपाप-विशुद्धात्मा स्वर्गलोकञ्च गच्छति॥

—पद्म पु०, स्व० ख०, ३८। ६८।

'पनार' की एक धारा 'सउरा' में मिलकर बहती थी, अतः बहुत संभव है कि 'पद्म-पुराण' की रचना के समय दोनों एक होकर बहती हों। अस्तु, आधुनिक काल में सउरा नदी का उद्गम-स्थान रानीगंज थाने के पूर्वोत्तर-कोण में, अररिया रेलवे-स्टेशन से सिर्फ चार मील पश्चिम, हिंगना गाँव के अग्निकोण में और परमानंदपुर गांव के पूर्व-भाग में वर्त्तमान है तथा इसके पूर्व में 'कदवा' गाँव बसा है। 'सउरा' अपने उद्गम से सीधे अग्नि-कोण में चलती है और तीन मील चलकर यह 'छतिऔना' तथा 'रूपौली' गाँवों के मध्य में आती है, जहाँ रानीगंज और अररिया-सड़क 'सउरा' को लाँघती है। छतिऔना ग्राम इसके दाहिने किनारे और रूपौली बाएँ किनारे (पूर्व भाग) में अवस्थित हैं। इसके आगे 'सउरा' के दाहिने भाग में ही विनोदपुर तथा मिरजापुर गाँव मिलते हैं। इसी मिरजा

पुर के अग्निकोण तक 'बूढ़ी कोसी' इस 'सउरा-धारा' से मिलकर बहती थी। इसके बाद वह अग्नि-कोण में बढ़कर 'कुशियार गाँव' के पूरब से पूर्णिया-अररिया-रेल-मार्ग के सटे पूरब से दक्षिण चलती 'कसवा' जाती थी, जिसका विवरण पहले दिया गया है। किंतु वर्त्तमान 'सउरा' मिरजापुर से अग्नि-कोण में मुड़कर तथा रानीगंज थाने से निकल कर अररिया थाने में घुसती है और 'वनगाँवाँ' नामक गांव को आती है। यहाँ से डेढ़ मोल दक्षिण बढ़कर पश्चिम को ओर मुड़ती है और फिर रानीगंज थाने में प्रवेश करके दक्षिणाभिमुख होती है, जहाँ से पुनः पश्चिमाभिमुखो बनकर रानीगंज में ही घुसती है। वहाँ उस धारा के दक्षिण अररिया थाने का देवरिया ग्राम है, जिसकी पुरानी जमीन इतनी ऊँची है कि सउरा-धार दक्षिण न बहकर पश्चिम की ओर वहने के लिए वाघ्य हो जाती है। रानीगंज में इस स्थान पर प्रवेश करने के बाद दो मील दक्षिण चलकर 'सउरा-धार' 'दुलारदेई' नामक नदी को अपने में समाहित करती है।

दुलारदेई भी प्राचीन 'बूढ़ी कोसी' के द्वारा निर्मित तथा कालांतर में परित्यक्त नदी है, जो 'जिरवा' गाँव के पास की दलदली से निकलती है। यह जिरवा ग्राम फार्विसगंज थाने के दक्षिणी सीमांचल पर बसा है। यह सैफगंज से चार मील दूर अग्निकोण में स्थित है। यह भी अपने उद्गम-स्थान से अग्निकोण में चलती है और तत्क्षण रानीगंज थाने में प्रवेश करके दाहिने किनारे 'बिसुनपुर' नामक गाँव को देखती है। इसके बाद यह एक बड़ी चौर-भूमि में लगभग चार मील तक चलती है और पचेरा तथा लक्ष्मीपुर गाँवों के मध्य से गुजरती तथा कजरा गाँव को अपने दाहिने भाग में छोड़ती प्राचीन ग्राम 'गिधवास' को आती है। गिधवास इसके बाएँ किनारे तथा 'रंगा' गाँव दाहिने किनारे हैं। इसी रंगा और गिधवास के मध्य भाग में रानीगंज को अररिया से जोड़नेवाला पक्का मार्ग 'दुलारदेई' को पार करता है। इस मार्ग से दुलारदेई रानीगंज थाने में सीधे अग्निकोण की ओर लगभग दस मील मार्ग तय करके 'सैदपुर' गाँव के पूरब 'सउरा धार' में समा जाती है। इतनी दूरी में दुलारदेई के दाहिने भाग में चौरनुमा क्षेत्र है, जिधर ग्राम बिरल हैं। जो ग्राम हैं, उनमें गुनवंती, राजबैली, मोहनी, घघरी और करंकिया उल्लेख्य हैं। करंकिया के ही दक्षिण में सैदपुर है। किंतु, दुलारदेई के बाएँ किनारे आबादी घनी है, जिसमें उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः महेसवली, सकरैली, हरपुर और करहिया ग्राम दीख पड़ते हैं।

सैदपुर के पूरब उक्त दुलारदेई को आत्मसात् करके 'सउरा' पुनः अग्निकोण में महाराजगंज तथा कसबा थाने की सीमा-रेखा बनती दक्षिण में बहने लगती है। महराजगंज थाना का क्षेत्र दुलारदेई के दाहिने भाग में और कसवा थाने का क्षेत्र बाएँ भाग में पड़ता है। सैदपुर के पास दुलारदेई-संगम से सउरा नदी सर्वप्रथम दक्षिण में चलती है और तब अररिया-अनुमंडल को सीमा तक, लगभग दो मील, अग्निकोण में बहती है। इसके पश्चात् यह सदर अनुमंडल में प्रवेश करके कसबा एवं महराजगंज की सीमा बनाती हुई बहने लगती है। सदर अनुमंडल में प्रवेश करने पर इसके बाएँ भाग में 'दिमिया' और थोड़ा अधिक दक्षिण जाने पर दाहिने भाग में 'खोखा' गाँव मिलते हैं। इसके बाद यह बाएँ

भाग में भरैली तथा दाहिने किनारे एक दूसरे 'खोखा' ग्राम को निहारती 'श्रीनगर' ग्राम के पूरब आती है। यहीं इसके वाम-तट पर 'बनैली' बसा है। गढ़बनैली एक दूसरा ग्राम है, जो पूर्णिया-अररिया-रेल-मार्ग पर स्थित है और रेलवे का स्टेशन भी है। सउरा-तट का 'बनैली' उससे भिन्न है। श्रीनगर इस्टेट गढ़बनैली इस्टेट का ही एक भागीदार है। श्रीनगर से तीन मील दक्षिण सउरा के दाएँ में 'मनकोल' गाँव है और बनैली से दक्षिण उतनी ही दूर, सउरा के बाएँ भाग में, सधौली ग्राम स्थित है। मनकोल से एक मील दक्षिण तक और उत्तर में श्रीनगर तक, लगभग चार मील में, सउरा बड़ी चौड़ी धारा बनाती है, जो आज प्रायः दलदली भूमि बन गई है। यह इस दलदली चौर से अग्निकोण में मुड़ती है। यहाँ से आगे बढ़ने पर इसके बाएँ भाग में सधौलीखुर्द और दाएँ भाग में 'गढ़िया' ग्राम मिलते हैं। इन दोनों ग्रामों को अपने दोनों भागों में छोड़ती तथा 'कमालपुर' होते हुए 'बेलउना' आती है। बेलउना पूर्णिया नगर से सीधे उत्तर छह मील की दूरी पर है। कसबा से एक सड़क पश्चिम चलती है, जो टीकापुर और इसी बेलउना से गुजरकर 'भुनी' आती है, जहाँ वह पूर्णिया से सीधे पश्चिमोत्तर-कोण में चलकर 'सैफगंज' जानेवाली सड़क में मिल जाती है। इसी 'बेलउना' में उत्तर से दक्षिण की ओर आनेवाला एक स्रोत सउरा में गिरता है। यह स्रोत 'संदलपुर' तथा 'बघुआ' नामक गाँवों से उद्गत होता है। 'बघुआ' गाँव पूर्वकथित तथा सउरा के वाम पार्श्व में स्थित 'दिमिया' गाँव से दो मील पूर्व में है और पूर्णिया-अररिया-रेलमार्ग पर स्थित 'सैफुल्लाह टोला' गाँव से साढ़े तीन मील पश्चिम में है। यह स्रोत लगभग १० मील तक बहता है और सउरा धार के पूरब में तथा पूर्णिया-अररिया-रेल-मार्ग के पश्चिम में पड़ता है। मेरा निश्चित मत है कि यह स्रोत उस बूढ़ी कोसी द्वारा निर्मित है, जो पहले कुशियार गाँव से जलालगढ़ होते दक्षिण की ओर कसबा तथा पूर्णिया तक रेल-मार्ग की बगल से बहती थी।

बेलउना में उक्त स्रोत का जल लेकर 'सउरा' नदी दक्षिण की ओर चलती है और इसे दो मील पर 'जोंकाजाल मरई' गाँव मिलता है; जहाँ से यह पश्चिम आधा मील मुड़कर 'उचेपुर' गाँव को आती है। यहाँ से यह अग्नि-कोण में बहने लगती है और अपने दाहिने भाग में रिकाबगंज को छोड़ती तथा मिरजापुर और महाराजगंज के मध्य से बहती पूर्णिया सिटी आ जाती है। मिरजापुर सउरा धार के बाएँ भाग में और महाराजगंज दाहिने भाग में है। पूर्णिया सिटी से एक मील पश्चिम महाराजगंज है, जो आधुनिक पूर्णिया नगर के उत्तर में है। किंतु, मिरजापुर गाँव पूर्णिया सिटी से डेढ़ मील दूर पश्चिमोत्तर-कोण में स्थित है। सउरा नदी पूर्णिया सिटी के पश्चिम और दक्षिण से आधुनिक पूर्णिया नगर के पूर्व में पहुँच कर पुनः दक्षिण की ओर बहने लगती है। पुराने और नये नगर को मिलानेवाली सड़क प्राचीन पूर्णिया के दक्षिणी किनारे सउरा धार को पार करती है और यहीं पूर्णिया से सहरसा जिले को जोड़नेवाला रेल मार्ग भी सउरा को लाँघता है। पूर्णिया का प्रसिद्ध गुलाबबाग-मेला इसी जगह सउरा-धार के बाएँ भाग में लगता है, जो ठीक गंगा-आसाम-राष्ट्रीय उच्च

राजपथ पर स्थित है। यह मेला पूर्णिया सिटी से सिर्फ एक मील दक्षिण में तथा आधुनिक पूर्णिया नगर से भी प्रायः इतनी ही दूर पूर्व में लगता है।

पूर्णिया सिटी प्राचीन नगर है, जिसने १४ वीं शती में मुस्लिम शासन-काल में नगर का रूप ग्रहण किया है; किंतु सउरा धार के पश्चिम में स्थित आधुनिक पूर्णिया नगर अंगरेजों के शासन-काल में बसा है। ऐतिहासिकों के अनुसार, अतिप्राचीन 'पौंड्र' जनपद के नाम पर पूर्णिया का नामकरण हुआ है, जिसे 'पुंड्रवर्द्धन' भी कहा जाता है, और जिसका विस्तार-क्षेत्र पूर्णिया और दिनाजपुर जिले तक था। पूर्णिया जिले में अभी तक जितने पुरावशेष मिले हैं, उनमें 'धरहरा' का मानिकस्तंभ सबसे प्राचीन माना जाता है। किंतु, पूर्णिया जिले में मुस्लिम-शासन बंगाल की ओर से आया और पूर्णिया के नवाबों के पुरखों का संबंध 'दिनाजपुर' से बतलाया गया है। अतः, मुस्लिमों का प्रभुत्व इस जिले में पूर्वोत्तर-भाग से प्रविष्ट हुआ है। हाँ, मुगलों के शासनकाल में शासन-केंद्र पूर्णिया सिटी में स्थापित हुआ। मुगल-बादशाहों की ओर से यहाँ जिन सूबेदारों की नियुक्ति की गई, उनको नवाब का खिताब भी दिया गया। सबसे पहला नवाब अख्तियार खाँ था, जिसने पूर्णिया में संगठित और सुदृढ़ शासन कायम किया। इसके उतराधिकारी का नाम अब्दुला खाँ था, जो सन् १६८० ई० में वर्तमान था। किंतु, शाहजहाँ के अन्तिम समय में पूर्णिया जिले में नवाबों की संख्या बढ़ गई और उनका क्षेत्र भी अलग-अलग हो गया। बाद में पूर्णिया के कई नवाब स्वतंत्र हो जाने के लिए कशमकश करने लगे थे, जिन्हें सैफ खाँ ने पराजित करके औरंगजेब के अधीन किया था। किंतु, औरंगजेब की शक्ति क्षीण होते ही पूर्णिया जिला फिर गौड़-शासन के अधीन हो गया था, जिस कारण बाद में यह अँगरेजों के शासन में सुलभतया आ गया।

पूर्णिया नगर से सउरा नदी दक्षिण चलती है और गुलाबबाग होते बिलौटी, गोपालगंज एवं अब्दुल्ला नगर को आती है। इसी बिलौटी के पश्चिम में पूर्णिया से कदवा जानेवाला मार्ग सउरा-धार को पार करता है। इस मार्ग पर निर्मित सउरा-पुल से लगभग तीन मील दक्षिण 'लालगंज' गांव है, जो सउरा-धार के दाहिने किनारे बसा है। इस भाग में 'सउरा' के बाएँ भाग से पूर्णिया-कटिहार-रेल लाइन चलती है और इस रेलवे के 'रानी पतरा' स्टेशन से पश्चिम में स्थित 'रानीगंज' गांव 'सउरा' के वाम-पार्श्व में पड़ता है। इसके बाद दक्षिण में चलती यह बिलोरिया तथा दीवानगंज गाँवों को आती है। ये दोनों गांव नदी के पूर्वी तट-प्रदेश में अवस्थित हैं। इसीके आगे दक्षिण में सउरा नदी 'कुम्हरा' गांव के पास 'काली-कोसी' से संगम करती है, जिसके आगे 'सउरा' नाम की प्रधानता समाप्त हो जाती है और काली-कोसी नाम ही ख्यात हो जाता है। इसी संगम के दक्षिण यह संयुक्त धारा पूर्णिया सदर अनुमंडल को पार करके कटिहार-अनुमंडल में प्रवेश करती है। पहले काली कोसी की कहानी छोड़कर हम 'सउरा धारा' की कथा पर आ गये थे। अब फिर काली कोसी का आगेवाला विवरण पढ़िए।

काली-कोसी कहलानेवाली यह संयुक्त धारा कटिहार-अनुमंडल में प्रवेश करने के बाद जब दक्षिण की ओर बढ़ती है, तब नदी के पूर्व-भाग में पूर्णिया-कटिहार-रेल-लाइन का

'रतौरा' नामक रेलवे स्टेशन दीख पड़ता है और यहीं नदी के वाम-तट की ओर 'चंदवा' गाँव मिलता है। चंदवा के दक्षिण जब लगभग पाँच मील 'काली-कोसी' बढ़ती है, तब इसके वाम पार्श्व में 'चानपी' गाँव के पास प्राचीन बूढ़ी कोसी की क्षीण-हीन धारा **'मिसना'** संगम करती है, जिसका उल्लेख पहले किया गया है। इस संगम के पश्चात् काली-कोसी नैऋत्य कोण में मुड़ जाती है और सिमरिया (कोलासी) गाँव के पास से 'मधुरा' गाँव को आती है, जो कटिहार-रेलवे जंक्शन के पश्चिम में बसा है। यहाँ से यह 'काली-कोसी' अग्नि-कोण की ओर उन्मुख होकर बरौनी-कटिहार-रेल लाइन को लाँघती है और उसके दक्षिण में आकर 'तिनपनिया' नदी को आत्मसात् करती है। यह तिनपनिया किसी काल में काली-कोसी की ही उपशाखा थी। इस तिनपनिया के उद्‌गम तथा मिलन का विवरण भी पहले ही उपस्थित किया गया है।

उक्त 'तिनपनिया' को आत्मसात् करके काली कोसी 'साहेबनगर' के पश्चिम से दक्षिण चलती है और 'मरगंगा' की धारा में मिलती है, जो काढ़ा गोलाघाट के उत्तर-पूर्व भाग में पड़ता है। अब यह धारा वर्षा ऋतु में ही गंगा से संगम करती है, अन्य दिनों में तो यह गंगा में पहुँच भी नहीं पाती है। इसी 'काली-कोसी' के संगम पर 'कांत नगर' बसा है, जिसकी चहल-पहल अब मिट चुकी है।

इस प्रकार पूर्वकथित सहरसा जिले की 'घेमुरा' नदी से आरंभ करके पूर्णिया जिले की काली कोसी, सउरा, तथा बूढ़ी कोसी तक का विपुल विस्तृत क्षेत्र एकमात्र 'कोसी' नदी की ही लीलारूपी सृष्टि-रचना है, जिसकी चर्चा अब तक की गई है। इसके आगे 'महा-नंदा' नदी का साम्राज्य-वर्णन किया जाएगा। इस नदी के भी अनेक सहायक अंग हैं और पहले उन्हीं अंगों का उल्लेख यहाँ प्रस्तुत करना मेरा अभीष्ट है।

●

पनार

पश्चिम में तिलयुगा नदी के क्षेत्र से आरंभ करके पूर्व में बूढ़ी कोसी तथा 'सउरा-वार' तक, लगभग ७५ मील में, कोसी नदी का साम्राज्य है, जिसका उल्लेख किया गया। इसके आगे पूर्व में अब महानंदा का राज्य-क्षेत्र है। महानंदा के राज्य को समृद्ध करने में जिन नदियों ने हाथ बँटाया है, उनमें पनार, बकरा, रतुआ, कवल, कंकई, मेची आदि मुख्य हैं। ये सभी पूर्णिया जिले की नदियाँ हैं, जो महानंदा के दाहिने भाग पश्चिम में अवस्थित हैं और महानंदा के दाएँ किनारे को भरती हैं। महानंदा के बाएँ भाग को भरनेवाली मुख्य नदी 'दाउक' है, जो दो धाराओं में बँटकर महानंदा को समृद्ध करती है। इसकी पूर्वी धारा 'रमजान' तथा 'सुधानो' नाम से पश्चिम बंगाल की सीमा के भीतर से होती, पुनः पूर्णिया जिले में आकर महानंदा में गिरती है। महानंदा पूर्णिया जिले के पूर्व भाग की नदी है, उसकी सहायक नदियों में सबसे पश्चिम भाग की नदी 'पनार' है, अतः महानंदा-साम्राज्य की कथा 'पनार' से ही आरंभ की जा रही है।

पनार का प्राचीन उल्लेख :

पनार अपने अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न नामों से पुकारी जाती है और कहीं **'परमान'**, कहीं **'परमौ'**, कहीं **कदवा**, कहीं **रीगा**, कहीं **कंकर**, कहीं **फुलहर** और सबसे अंत में **'गंगाजुरी'** कहलाती है। प्राचीन वाङ्मय की उत्तर बिहार की कुछ ख्यात नदियों की तरह 'पनार' की चर्चा भी प्रायः नहीं मिलती है; किंतु 'महाभारत' में जिस 'प्राङ्नदी' की चर्चा है, वह निश्चित रूप से 'पनार' नदी ही है। क्योंकि पूर्वदेश के तीर्थों के वर्णन-प्रसंग में 'कोकामुख' (कोसी का वराह-क्षेत्र) के बाद इसी प्राङ्नदी-तीर्थ की यात्रा के महत्त्व का उल्लेख मिलता है :

कोकामुखमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी यतव्रतः ।
जातिस्मरत्वमाप्नोति दृष्टमेतत्पुरातनैः ॥
प्राङ्नदीञ्च समासाद्य कृतात्मा भवति द्विजः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा शक्रलोकञ्च गच्छति ॥

—महाभारत, वनपर्व, ८४।१५८-१५९

डॉ० बुकानन ने अपनी पूर्णिया-रिपोर्ट में 'पनार' का नाम 'पङ्गरोयान' (Pangroyan) लिखा है, जो 'प्राङ्नदी' तथा 'पनार' का ही विकसित रूप है। किंतु, 'पद्म पुराण' (स्वर्ग-खंड, ३८।६८) 'प्राङ्नदी' के स्थान पर 'सक्रुन्नदी' की चर्चा करता है, जो

बुकानन की 'सौंरा' और आधुनिक 'सउरा' नदी है, जिसमें, बुकानन के काल तक, 'पनार' का पानी आता था। इस बात का उल्लेख पहले कर दिया गया है।

पनार का उद्‌गम तथा प्रवाह-मार्ग :

'पनार का उद्‌गम-स्थान 'वराह-क्षेत्र' के पूर्व नेपाल देश के 'सुनसरी' जिले में है, जहाँ से दक्षिण चलकर यह भारत के क्षेत्र में, पूर्णिया जिले के 'जोगबनी' नामक स्थान के पश्चिम में, प्रवेश करती है और वहाँ से अग्निकोण में चलती हुई 'सोनपुरा' के उत्तर में पूर्व की तरफ मुड़ जाती है। यहीं पर महेश्वरी (जोगवनी स्टेशन) के पूर्व में प्रवेश करने वाले एक नदी-स्रोत को ग्रहण करके तथा जोगवनी से तीन मील दक्षिण रेल लाइन को पार करके अग्निकोण में चलती 'डुमरिया और पिपरा' गाँवों के मध्य में आती है। बुकानन के समय में यह डुमरिया के उत्तर से दक्षिण चलती थी और 'हँसकोसा' गाँव को दाहिने (दक्षिण) भाग से घेरती पूर्व में मुड़ती थी; किंतु अब इसका प्रधान-प्रवाह सीधे अग्निकोण में चलता है और पिपरा गाँव को अपने बाएँ तट से रगड़ता अग्निकोण में निकलता है। डुमरिया गाँव बथनाहा रेलवे स्टेशन से दो मील तथा पिपरा चार मील पूरब दिशा में है। अब पनार नदी 'पिपरा' से दो धाराओं में बँटती है और परस्पर सटी दो लंबी भुजाओं की तरह अग्निकोण में समानांतर आठ मील चलकर 'अमरहा' गाँव से दो मील पूर्व में पुनः मिल जाती है। बुकानन के अनुसार, पनार की दो धाराओं में दाहिनी धारा 'पोतरी' गाँव के उत्तर में ही अपनी मुख्य धारा को, जो अब प्रायः नष्ट हो गई है, समेट लेती है। उधर इसकी वाईं भुजा बाघमारा गाँव को अपने दाहिने किनारे निहारती चलती है और अमराहा के पास दाहिनी भुजा से मिलती है। बाघमारा गाँव पनार की दोनों धाराओं के मध्य में बसा है। यहाँ दाहिनी भुजा जब पिपरा से ढाई मील आगे बढ़ती है, तभी **'सौंता'** नदी इसमें गिरती है, जो जोगबनी रेलवे स्टेशन के पूर्व भाग में पूर्णिया में प्रवेश करके अग्निकोण में आती है। इस भाग में 'पनार' का नाम स्थानीय लोगों के उच्चारण-दोष के कारण 'परमान' हो गया है।

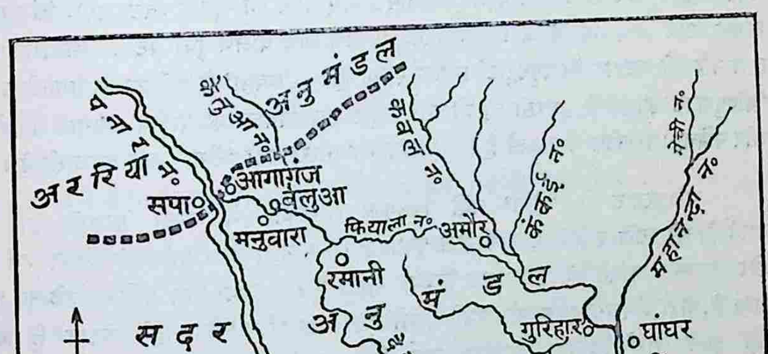
दोनों भुजाओं के मिलने के बाद भी 'पनार' अग्निकोण में ही बढ़ती है और अपने दाहिने भाग में समउल, घोड़ाघाट तथा रमई नामक गाँवों को छोड़ती हुई रमई से ढाई मील दूर अग्निकोण में आती है, जहाँ से २ मील दक्षिण में 'बलुआ' गाँव है। इसी स्थान पर **'रेजई'** तथा **'बहेलिया'** नामक दो छोटी नदियाँ सम्मिलित होकर 'पनार' में गिरती हैं। ये दोनों नेपाल की तराई से आती हैं, जिनमें रेजई 'कुसम्हा' के पूर्व तथा कुल-हरिया जगीर के पास फारबिसगंज थाने में घुसती है और 'परासी' गाँव होकर अग्निकोण में मुड़ती है। इस क्रम में 'रेजई' की धारा सिनवारी गाँव होते बीरवन के पश्चिम से 'पकरी' आती है, जहाँ बहेलिया नदी से मिलती है। यह संगम 'पकरी' गाँव के दक्षिण में होता है। बहेलिया नदी 'मधुबनी' गाँव के पास दो धाराओं में बँटकर पूर्णिया जिले में प्रवेश करती है और दोनों भुजाएँ समानांतर दक्षिण में लगभग ६-७ मील चलकर 'बीरबन' गाँव के

पूरब में परस्पर मिल जाती हैं। वहाँ से चिकनी तथा पकरीगांवा से होते इनके दक्षिण में रेंजई से मिल जाती है। इस मिलन के बाद रेजई और बहेलिया की सम्मिलित धार लगभग ढाई मील चलकर 'पनार' में प्रवेश करती है।

अब पनार नदी सौंता, रेजई और बहेलिया—इन तीन नदियों का जल ग्रहण करके सीधे अग्निकोण में चलती है और पाँच मील चलकर 'महिसकोल' गाँव के पास आती है। यह महिसकोल गाँव 'अररिया' से पाँच मील उत्तर में है तथा पूर्णिया-जोगबनी-रेलवे लाइन के 'सिमरहा' रेलवे-स्टेशन से थोड़ा पश्चिमोत्तर-कोण में भुककर पाँच ही मील दूर पूरब दिशा में अवस्थित है। इस भाग में पनारधार को बुकानन ने **मलंदरा** नाम दिया है। इसी स्थान पर महिसकोल के पास **बकरा** नदी की पुरानी धारा पनार से संगम करती है। बकरा की यह पुरानी धारा 'बुकानन' के समय (सन् १८१० ई०) तक मुख्य धारा थी, जो अब पूरब हट गई और अररिया थाने में न गिर करके बहुत नीचे तक जाती है और अमौर थाने में पहुंच कर 'पनार' से मिलती है। महिसकोल में बकरा की जो पुरानी धार मिलती है, वह पूर्णिया जिले के उत्तरी सीमा पर स्थित 'कुआरी' गाँव के पास आती है और दक्षिण में बहती हुई कुरसकांटा, शंकरपुर, लक्ष्मीपुर, भोरहा तथा तारावारी गाँव से गुजरती 'सगुना' गाँव पहुँचती है। सगुना से एक मील उत्तर यह आधुनिक बकरा की एक शाखा का पानी भी ग्रहण करती है और तब सगुना आती है। यहाँ से डेढ़ मील दक्षिण आकर पुरानी 'बकरा' अग्निकोण में दो मील चलकर 'चाँड़ारी' गाँव के पश्चिम पहुँचती है, जहाँ से नैर्ऋत्य कोण में मुड़कर 'महिसकोल' गाँव के अग्निकोण में पनार से मिल जाती है। इसी बकरा के संबंध में बुकानन ने लिखा है कि बकरा नदी मलंदरा में संगम करती है। पुरानी बकरा का यह स्रोत स्वतंत्र रूप से लगभग १४ मील बहने के बाद 'पनार' से संगम करता है। इस संगम के ऊपरी भाग में पनार नदी **'परमान'** कहलाती है और बकरा संगम के बाद इसका नाम **'कदवा'** हो जाता है।

बुकानन के समय पनार बकरा को सम्मिलित करके अग्निकोण में चलकर 'बोची' गाँव को आती थी। उस समय 'बोची एक व्यापारिक केंद्र था। बोची के बाद पनार दक्षिण चलती थी और रानीपुर-मोहनपुर गाँवों से होते अररिया आती थी; किंतु आज महिसकोल गाँव के बाद ही 'पनार' नदी सीधे दक्षिण चलती है और 'बँसवारी' गाँव को आती है, जहाँ फारबिसगंज से अग्निकोण में चलकर ओररिया गाँव को पहुँचने वाला मार्ग 'पनार' को पार करता है। ओररिया गाँव अररिया शहर से तीन मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित है, जहाँ से चारों दिशाओं में सड़कें जाती हैं। बँसबारी से दो मील दक्षिण बढ़कर 'कदवा' नाम से अभिहित होनेवाली 'पनार' अग्निकोण की ओर एक बड़े चौरनुमा क्षेत्र से गुजरती है और अररिया नगर में स्थित जेल तथा अस्पताल के पूर्व में आती है और अग्निकोण में ही बहती 'सूरजपुर' गाँव को पहुँचती हैं। किसी काल में यह 'अररिया' नगर के पश्चिम से बहती थी, जिसका चिह्न आज भी देखा जा सकता है। सूरजपुर

इस नदी के वाम पार्श्व में (पूर्वी तट पर) बसा है। सूरजपुर से पनार ईषत् दाहिनी ओर झुककर अग्निकोण में बहने लगती है और बेलवा पहुंचती है। बेलवा से दक्षिण बढ़ने पर इसके दाहिने किनारे उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः मझगवाँ, दियरी तथा मल्हरिया और बाएँ तट पर क्रमशः मझाली, घोरमार, प्रसादपुर एवं चैनपुर गांव मिलते हैं। पूर्णिया से कसबा होते जो सड़क बहादुरगंज जाती है, वह मल्हरिया और चैनपुर में ही 'पनार' को पार करती है। मल्हरिया के बाद यह एक दूसरे मझगवाँ गाँव को आती है और फिर 'सपा' ग्राम को पहुँचती है। इसी 'सपा' के पास 'पनार' अररिया-अनुमंडल को पार करके सदर (पूर्णिया) अनुमंडल में प्रवेश करती है। यहीं यह दो भागों में भी बँटती है, जिनमें पूर्व वाली धार 'बकरा' से मिलती है। यह बकरा कतुवा धार भी कहलाती है। इसके बाद इसका नाम '**फियाला**' हो जाता है और यह थोड़ी दूर बाद ही दो धाराएँ बनाती हैं; जिनमें से पूर्वी धार 'अमौर' के पास कंकई से मिलकर 'महानंदा' में जा गिरती है और पश्चिमी (दाहिनी धार) नीचे में जाकर '**देवनी**' कहलाने लगती है। बुकानन ने इसका '**देवनोई**' कहा है। इन धाराओं के विवरण का उल्लेख आगे किया जायगा। किंतु 'सपा' के पास पनार की जो दाहिनी धारा बनती है और सदर अनुमंडल में प्रवेश करती है, वही धारा 'पनार' की मुख्य धारा कहलाती है। बुकानन के समय (सन् १८०९-१० ई०) में पनार की केवल यही दाहिनी धारा एक मात्र धारा थी और 'सपा' के पास यह दो धाराओं में नहीं बँटती थी। निम्नांकित रेखाओं में इसके आधुनिक प्रवाह-मार्ग द्रष्टव्य हैं—



पनार की पश्चिमी और मुख्यधारा 'कसबा' थाने में प्रथम दो मीलों तक दक्षिण की ओर बहती है और तब अग्निकोण में झुकती हुई क्रमशः एकम्बा, ढाठघाई, कुंडाले तथा

खमेला गाँवों को आती है और यहाँ से दक्षिण बहकर 'बरसीली' गाँव को पहुँचती है। यह 'बरसीली' गाँव कसबा से पाँच मील दूर पूर्वोत्तर-कोण में स्थित है। कसबा से अमौर जानेवाला मार्ग 'बरसीली' में ही पनार की इस धार को पार करता है। इसके पश्चात् पनार नदी उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः विसुनपुर, बसदह, महेशखूँट होते 'डकैली' और तब वेलागाछी' ग्राम को पहुँचती है। इसमें 'बसदह' के बाद थोड़ा अग्निकोण में झुकती वेलागाछी आती है। डकैली इसके दाहिने किनारे है, जहाँ से एक सोता दक्षिण में चलता है। यह स्रोत पहले कथित 'बूढ़ी कोसी' से मिलता था और 'कमल' अथवा 'कमलेश्वरी' धार के नाम से दक्षिण में बहता था। बूढ़ी कोसी तो मिट गई है; पर 'कमल' धार आज भी वर्त्तमान है। इस 'कमलेश्वरी' धार की चर्चा पहले की गई है।

वेलागाछी प्राचीन और प्रसिद्ध ग्राम है। यहीं पूर्णिया से आसाम की ओर जाने वाला 'राष्ट्रीय उच्च पथ' पनार नदी को पार करता है। वेलागाछी ग्राम पूर्णिया से थोड़ा पूर्वोत्तर कोण में झुकता पूर्व की ओर दस-ग्यारह मील दूर है। वेलागाछी से भी पनार नदी अग्निकोण की ओर झुकती चलती है और बभनपुरा, दसपातर एवं लक्ष्मीपुर आती है। लक्ष्मीपुर के सामने पश्चिम में तथा पनार के दाहिने भाग में 'चाँपी' नामक ग्राम है, जो अपने भग्नावशेष के कारण बहुत ही प्राचीन ग्राम लगता है। यह चाँपी ग्राम 'कमलेश्वरी' के बाएँ भाग में भी पड़ता है। यहाँ से आगे बढ़ने पर 'पनार' नदी के दाहिने भाग में 'पिपरा' ग्राम और थोड़ा आगे दक्षिण जाने पर बाएँ भाग में (पूर्वी तट पर) 'कंवरिया' नामक ग्राम बसे मिलते हैं। कंवरिया से पाँच मील दक्षिण पूर्वी तट पर 'गेथौरा' ग्राम तथा पश्चिमी तट पर 'चांदपुरहाट' प्रसिद्ध स्थान हैं। 'कदवा' से पूर्णिया जानेवाली सड़क 'चाँदपुरहाट' होकर ही गुजरती है, जो चाँदपुरहाट तक 'पनार' के दाहिने किनारे से होती और पश्चिमोत्तर-कोण में चलती है। इस भाग में 'पनार' नदी **'रीगा'** नदी कहलाती है।

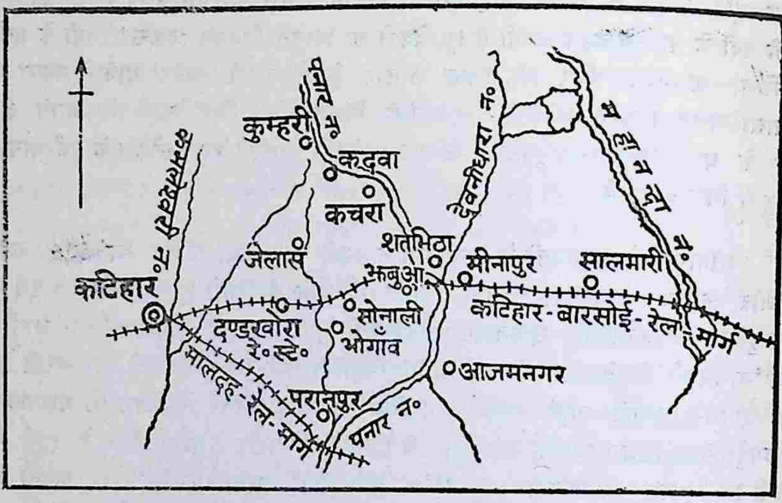
चाँदपुरहाट से 'रीगा' नदी बिलकुल अग्निकोण में चलती 'कुम्हरी' ग्राम को आती है, जो इसके दाहिने भाग में दीख पड़ता है। कुम्हरी से 'रीगा' और अधिक पूर्व की ओर झुककर चलती है और तब 'कदवा' आती है। कदवा ग्राम पूर्णिया जिले का एक थाना है, जहाँ अंचल-विकास का कार्यालय भी है। यह 'रीगा' के दाहिने किनारे है और यहीं इसके बाएँ किनारे 'देवगौर' ग्राम है। कदवा के पूर्वोत्तरकोण में पहुँचकर रीगा (पनार) अपनी धारा को कुछ दाहिनी ओर मोड़कर 'कचरा' ग्राम के पूरब में आती है। यहाँ से फिर थोड़ा अधिक अग्निकोण में झुकती-बहती 'सतभीठा' और तब दक्षिण मुड़कर सोनापुर पहुँचती है। सोनापुर 'पनार' के दाहिने भाग में है और वहीं बाएँ भाग में 'पचगाछी' गाम अवस्थित है। इन दोनों ग्रामों के उत्तर में ही 'पनार' नदी पूर्णिया-बारसोई-रेललाइन को, झउवा स्टेशन के बहुत नजदीक पूर्व में पार करती है और तब सोनपुर एवं पचगाछो पहुंचती है। यहीं पर 'पनार' कटिहार-बारसोई-रेल-लाइन पार करने के पहले ही **'देवनीधार'** नामक अपनी शाखा नदी को आत्मसात् करती है। यह

वही देवनी धार है, जो 'सपा' गाँव के पास पनार से अलग होती है और आगा गाँव होते तथा बलुआ और मनुआरा के मध्य भाग से बहती दो भागों में बँट जाती है। पूर्वी धारा अमौर होते कंकई से मिलकर महानंदा से मिलती है और पश्चिमी धारा दक्षिण की ओर देवनी नदी के नाम से बहने लगती है। देवनी का विस्तृत विवरण 'बकरा' नदी के प्रसंग में लिखा जायगा। फिर भी, इतना ज्ञातव्य है कि देवनी 'अमौर' थाने से बकरा की **फियाला** नामक धारा से बनती है और वहाँ से निकल कर 'बैसी' थाने में आती है। बैसी के बाद 'कटिहार-अनुमंडल' के कदवा थाने में 'झउवा' रेलवे स्टेशन के पूर्व-भाग में पनार से मिल जाती है।

सोनापुर और पचगाछी के मध्य भाग से बहती पनार नदी दक्षिण की ओर बढ़ती है और क्रमशः मसनदपुर, चहतपुर तथा बेलौंदा ग्राम को आती है। बेलौंदा से पूर्व की ओर मुड़कर यह अपनी एक छाड़न को ग्रहण करती है, जो उत्तर से दक्षिण की ओर आती है और 'सालमारी' रेलवे स्टेशन के सटे पूर्व में पूर्णिया-बारसोई-रेल-लाइन को पार करती है। इस छाड़न-धार को ग्रहण करके 'कनहरिया' ग्राम के पश्चिम से दक्षिण की ओर बहती आलमपुर तथा आजमनगर पहुँचती है। ये दोनों ग्राम पनार के बाएँ किनारे (पूर्व में) बसे हैं। आजमनगर कटिहार-अनुमंडल का थाना है। आजमनगर में 'पनार' अपनी एक शाखा अग्निकोण में निकालती है और पाँच मील पूर्णिया जिले में बहकर पश्चिम बंगाल के मालदह जिले के तुलसीहट्टा थाने में प्रवेश कर जाती है। यह पूर्णिया जिले को, आजमनगर थाने के बेलवा ग्राम के अग्निकोण में तथा सिंहपुर एवं राघोपुर ग्रामों के पूर्व में, छोड़ देती है। किंतु, पनार नदी की मुख्य धारा अपनी उपशाखा नदी के उद्गम से नैऋत्य कोण में टेढ़ी-मेढ़ी चाल से चलती गढ़बघुआ, बघरा अराजी, पैकपारा आदि ग्रामों से होती मोसावारी, झिल्लीपाड़ा और तब 'पलसा' आती है। आजमनगर से पलसा सात मील दूर नैऋत्य कोण में है। पलसा ग्राम पनार के बिलकुल बाएँ तट पर स्थित है।

'पलसा' से पनार पश्चिम दिशा में मुड़ती है और 'बतासीमल' गाँव को पहुँचती है। यह ग्राम भी पनार के बाएँ तट पर ही खड़ा है। इस ग्राम को पनार तीन तरफ से घेरती है और तब स्वयं दक्षिण की ओर निकलती है। इस 'बतासीमल' से दो मील नैऋत्य कोण में और परानपुर के अग्निकोण में तथा मैनानगर (बँगरुआ) के उत्तर में पनार नदी अपनी एक छाड़न-धारा को अपने दक्षिण पार्श्व में धारण करती है। यह छाड़न धार कदवा से पश्चिमोत्तर कोण में दो मील दूर पर स्थित 'कुम्हरी' से चलती है। बुकानन के काल (सन् १८१० ई०) में यह धार **रतोया** नाम से नैऋत्य कोण में चलती हुई कमलेश्वरी से तीन मील दूर कटिहार के अग्निकोण में मिलती थी; किंतु कुछ काल बाद इसी से एक धारा कदवा के नैऋत्य कोण में निकली, जो बाद में इससे विच्छिन्न हो गई। यही धार दक्षिण की ओर चलती है और सोनाली स्टेशन (कटिहार-बारसोई-लाइन) के नैऋत्य कोण में रेल-लाइन पार करके सोनाली-परानपुर मार्ग के किनारे-किनारे दक्षिण चलती परानपुर के

अग्निकोण में 'पनार' में मिल जाती है। किंतु, यह धार अब मिटती जा रही है। इन सभी धाराओं का दिग्दर्शन निम्नांकित रेखाओं में किया जा सकता है :



उक्त परानपुर के पास पनार नदी अपने दक्षिण पार्श्व में अपनी छाड़न-धार को ग्रहण करके पूर्व की ओर मुड़ती है और दो मील चलकर फिर दक्षिणाभिमुखी वन जाती है। दक्षिण में चलने पर इसके वाम भाग में 'इमामनगर' गाँव दिखाई पड़ता है, जहाँ से दो मील दक्षिण में बढ़कर 'पनार' कटिहार-मालदह-रेल-लाइन को, गौरीपुर के सटे पश्चिम में तथा 'लेवा' नामक रेलवे स्टेशन से डेढ़ मील पूर्व में, लाँघती है। इसके बाद दक्षिण बहकर दीवानगंज एवं डबरा के मध्य में आती है। दीवानगंज पनार के बाएँ किनारे और डबरा दाहिने किनारे बसा है। दोनों गाँव पूर्णिया जिले के पूर्व-दक्षिण-कोण में मालदह जिले की सीमा पर बसे हुए हैं। डबरा के दक्षिण एक मील दूर पर स्थित लखनपुर के पास 'पनार' प्राचीन नदी कमलेश्वरी, जो 'कनखर' भी कहलाती है, की धार को समेटकर 'फुलहर' नदी के नाम से मालदह जिले के तुलसीहट्टा थाने में प्रवेश कर जाती है। यह 'फुलहर' आगे गंगाजुरी नाम धारण करके कालिंदी (कालिंद्री) से मिल कर महानंदा में जा गिरती है। उक्त 'कनखर' धार प्राचीन कमलेश्वरी नामक नदी का भग्नावशेष है, जिसका वर्णन कमलेश्वरी के प्रसंग में पहले किया गया है।

वकरा

बकरा नदी नेपाल के तराई-क्षेत्र के कुआरी गाँव के पूर्व भाग से तथा गंगी नदी के उद्गम के पश्चिम भाग से उद्गत होती है। यह दक्षिण की ओर ढलती तथा 'विराटनगर' के पूर्व भाग से भारतीय सीमा में पाया नं० ५१ और ५२ के पास दो धाराओं में प्रवेश करती है। उपर्युक्त नदियों की तरह यह भी पूर्णिया जिले के सिकटी एवं फार्बिसगंज थाने की सीमा-संधि पर 'असुर कलाँ खोला' गाँव के पास बिहार में प्रवेश करती है और इन दोनों थानों की सीमा-रेखा बनती दक्षिण की ओर बहती है। सिकटी थाने की भूमि इसके बाएँ भाग में तथा फारबिसगंज थाने की भूमि दाहिने भाग में पड़ती है। असुर कलाँ-खोला गाँव फार्बिसगंज थाने में बकरा की दो भुजाओं की गोद में बसा है। असुर कलाँ-खोला के सामने पूर्व दिशा में तथा बकरा के बाएँ किनारे सिकटी थाने का 'मजरख' गाँव स्थित है। आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व बकरा का धारा-मार्ग बहुत छोटा था और पूर्णिया जिले में लगभग १६-१७ मील बहकर उस पनार में मिल जाता था; जिसे बुकानन ने **मलंदरा** कहा है। किंतु आज इसका स्वतंत्र प्रवाह-मार्ग 'रतोआ' की धारा पकड़ कर लगभग ४० मील लंबा हो गया है।

असुरकलाँ खोला स्थान जोगबनी से १२ मील पूरब और फार्बिसगंज से तेरह मील दूर पूर्वोत्तर-कोण में, भारतीय सीमा का अंतिम गाँव है। सिकटी भी भारतीय सीमा का अंतिम गाँव है और पूर्णिया जिले की बिलकुल उत्तरी सीमा पर स्थित है। इस 'सिकटी' से साढ़े तीन मील थोड़ा पश्चिमोत्तर-कोण में झुकता हुआ 'असुर कलाँ खोला' बसा है। इस गाँव के दोनों बगल (पश्चिम-पूरब) से बकरा नदी की दो भुजाएँ पूर्णिया जिले में घुसती हैं और दो मील दक्षिण आकर परस्पर मिल जाती हैं। एकीभूत होकर कुछ दूर दक्षिण बढ़ने पर इसके बाएँ किनारे 'टेराखुर्द' नामक गाँव मिलता है। टेराखुर्द में भग्न टीले का अवशेष आज भी दीख पड़ता है। इस गाँव के दक्षिण में वह मार्ग बकरा-धार को पार करता है, जो नरपतगंज से पूर्व की ओर चलता है और फार्बिसगंज के उत्तर में स्थित 'मटियारी' से होते पूर्व की ओर ही बढ़ता बहादुरगंज को जाता है। यहाँ से बकरा सीधे दक्षिण की ओर चलती है और थोड़ी दूर के लिए पूर्व की ओर मुड़कर 'कउवाकोह' गाँव के पश्चिम भाग में आती है, जहाँ यह थोड़ी दूर के लिए पूर्व की ओर मुड़ती है। वहीं इसकी वह पुरानी धारा सीधे दक्षिण चलती थी, जो डबरा, ताराबाड़ी, सगुना आदि गाँवों से होते महिसकोल के पास 'पनार' (बुकानन की मलंदरा) से मिल जाती थी। 'पनार' के प्रसंग में

इस धारा की चर्चा पहले की गई है और यह भी कहा गया है कि १५० वर्ष पूर्व बकरा की यही स्थिति थी।

कउवाकोह से 'बकरा' फिर दक्षिण चलती है, जिसे बुकानन ने 'बेरी' कहा है और बताया है कि यह 'रतोया' से संगम करती थी। यह 'वेरी' धार आज बकरा की प्रधान धारा बन गई है और यह क्रमशः बेलहरी, जमुआ, खमगर, जितवारपुर तथा पतेगुआ गाँवों को आती है। वेलहरी के दक्षिण तक यह सिकटी तथा फार्विसगंज थाने की सीमा-रेखा बनती है और उसके बाद अररिया थाने में प्रवेश करती है। उपर्युक्त ग्रामों में प्रथम को छोड़कर शेष सभी गाँव अररिया थाने में पड़ते हैं। टेराखुर्द से पतेगुआ तक बकरा १२ मील का रास्ता तय करती है। पतेगुआ गाँव के अग्निकोण में आकर बकरा धार पूर्व दिशा में ढाई मील प्रयाण करके पुनः दक्षिण की ओर मार्ग बनाती है और 'बनघोरा गाँव को आती है। यह गाँव पलासी थाने में है और यहाँ बकरा सिर्फ एक मील के लिए पलासी थाने में घुसती है। इसके आगे बढ़ कर यह अररिया थाने में आती है और मदनपुर गाँव के पूर्व में 'भीखा' पहुँचती है। यह भीखा भी पलासी थाने का गाँव है। इसी स्थान पर बकरा नदी रतुआ नदी की उस उपशाखा को ग्रहण करती है, जो शाखा रतुआ की दाहिनी भुजा है और सिर्फ चार मील की है और 'बनघोरा' के पूर्वभाग से पलासी थाने की सीमा में बहती दक्षिण आती है। भीखा के पास भी 'बकरा' सिर्फ आध मील के लिए पलासी थाने की भूमि में चलतो है। भीखा के बाद यह पुनः दक्षिण की ओर अररिया थाने में प्रवेश करती है और पोखरिया तथा बगही गाँवों से होते 'तरन' पहुँचती है। ये तीनों गाँव बकरा के दाहिने किनारे स्थित हैं। इसी तरन गाँव के पास इसकी दो भुजाएँ बनती हैं। दाहिनी भुजा 'कामत' गाँव होते अग्निकोण में छह मीलों तक चलती है और बाईं भुजा 'काकन' तथा 'बघदरा' गाँवों से गुजरती ६ मील बहती है। यह बाईं भुजा ऊपर के क्षेत्र में तीन मीलों तक अग्निकोण में चलती है और नीचे तीन मीलों तक दक्षिण में बहती है। इन दोनों भुजाओं के मध्य में 'गँभरिया' गाँव बसा है। अररिया से पूर्व में 'जोकीहाट' जानेवाला मार्ग 'कामत' गाँव के पास इसकी दाहिनी भुजा को और 'काकन' के पास बाईं भुजा को पार करता है। 'बघदहरा' के दक्षिण दोनों भुजाएँ पुनः सम्मिलित हो जाती हैं।

अपनी दोनों भुजाओं के मिलन के पश्चात् बकरा नदी पुनः सिर्फ एक मील के लिए दक्षिण में मुँह करती है। यहीं इसके बाएँ भाग में 'बढ़ुआ' गाँव है, जो 'जोकीहाट' से चार मील दूर नैऋत्य कोण में स्थित है। बढ़ुआ से पुनः बकरा नदी अग्निकोण में दौड़ती है और अपने बाएँ भाग में 'मटियारी' तथा आगे बढ़कर दाहिने भाग में 'उदा' गाँवों को छोड़ती अग्निकोण में ही साढ़े पाँच मीलों तक चलती है। इस भाग में इसका नाम 'कतुआ' हो जाता है। जलालगढ़ से जो मार्ग उत्तर की ओर चलता हुआ 'जोकीहाट' जाता है, यह उदा और मटियारी होकर ही निकलता है तथा इन्हीं दोनों गाँवों के मध्य में 'कतुआ-धार' को

पार करता है। इस प्रकार, 'बढुआ' से साढ़े पाँच मील अग्निकोण में बढ़कर कतुआ पूर्व दिशा में मुड़ती है और तीन मील टेढ़ी-मेढ़ी होकर और दो मील पूर्व में सीधे बहकर अररिया-अनुमंडल और पूर्णिया सदर अनुमंडल की सीमा-संधि पर आ जाती है। इस घुमाव के दाहिने भाग में और दक्षिण दिशा में 'कुरसैल' नामक गाँव है। इस कुरसैल के पूर्वोत्तर-कोण में सीमा-संधि पर पहुँच कर बकरा (कतुआ) नदी दक्षिण की ओर चार मीलों तक इधर-उधर होती दोनों अनुमंडलों की सीमा रेखा बनती है। इन चार मीलों में इसके किनारे कड़िया, पिपरापुरवारी, धुरपैली तथा पंचैली गाँव बसे हैं। उक्त ग्रामों में 'कड़िया' गाँव के पास इस कतुआधार (बकरा) से रतुआ नदी का संगम होता है। रतुआ को आत्मसात् करके बकरा नदी उक्त 'पचैली' के पास बिलकुल पूर्णिया सदर अनुमंडल की सीमा में आ जाती है। रतुआ का विवरण आगे दिया जायगा।

'बकरा' उक्त पचैली ग्राम के पास अररिया-अनुमंडल से बाहर निकल कर सदर (पूर्णिया) अनुमंडल के अमौर थाने के पश्चिमी हिस्से में प्रवेश करती है। अमौर थाने में प्रवेश करने के बाद सर्वप्रथम यह गंगैली, मंगलपुर और पोठिया ग्रामों को पहुँचती है। गंगैली और पोठिया बकरा धार के दाहिने किनारे और मंगलपुर बाएँ किनारे बसे हैं। इसी पोठिया ग्राम से डेढ़ मील दक्षिण में बकरा-धार पनार की उस धार से मिलती है, जो पूर्वकथित 'सपा' ग्राम के पास पनार से निकलकर बाईं भुजा बनती है और जो आगागंज, बलुआ और मनुवारा गाँवों से होते पूर्व में आती है। इसे ही बुकानन ने **फियाला** धारा कहा है। इसका रेखा-चित्र पूर्व के ४३७ पृष्ठ पर अंकित है। पनार की इस बाईं धार से मिलकर बकरा (बुकानन की फियाला) अग्निकोण में मुड़ जाती है और एक मील चलकर दो भागों में विभक्त हो जाती है। यह विभक्तीकरण रमैनी गाँव के उत्तर में तथा बरबट्टा के दक्षिण में होता है। इनमें बाईं धार पूर्व की ओर फियाला नाम से चलती है और दाहिनी धार दक्षिण की ओर चलकर आगे **देवथी** नाम से अग्निकोण में बहने लगती है। पूर्व की ओर बहने वाली बाईं धार (फियाला) काशीपुर, बनगाँव, पारसराय आदि गाँवों से होते 'अमौर' पहुँचती है और अमौर के दक्षिणी भाग से ही पूर्व में जाकर अग्निकोणाभिमुखी होती है और फिर वहाँ से दक्षिण में बहकर वेलागाछी के पूर्व 'कंकई' की धार में मिल जाती है। इस मिलन के बाद दो-तीन मील और बहकर 'कंकई', 'महानंदा' में समा जाती है। किंतु, पचास-साठ वर्ष पहले फियाला की यह धारा 'अमौर' नहीं आती थी; बल्कि 'पारसराय' के पास से ही दक्षिण मुड़ती थी और बसंतपुर के पूर्व में आकर पूर्व और दक्षिण में बहते हुए लढ़िया और बैली गाँवों को पहुँचती थी। अब इसका संबंध अमौरवाली धार से टूट गया है; पर यह छाड़न अब भी वर्तमान है। यह धारा बैली के अग्निकोण में स्थित अमौर थाने से निकलकर 'बैसी' थाने में घुसती है और 'खपरा' तथा 'भतुरिया' आकर फिर पूर्व में मुड़ जाती है। इसके बाद दक्षिण में घूमकर 'मझुआ' गाँव को पहुँचती है। मझुवा में यह फिर दो धाराओं में बँटती है। दाएँ झुककर दक्षिण की ओर चलने वाली

धारा 'हरिनटारे' होकर 'पहड़िया' के पश्चिम में बकरा की दाहिनी धार से मिल जाती है और बाईं धार मझुवा से पूर्व, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं में मुड़ती-वहती 'बैसी' के उत्तर 'छोपार' गाँव को पहुँचती है। छोपार में कंकई की एक उपशाखा इससे मिलती है, जो 'सिमलबनी' के पास 'कंकई' से प्रवाहित होती है। वरसात के दिनों 'कंकई' धार अपना पानी छोपार में इस मार्ग से अधिक मात्रा में उड़ेलती है।

उपर्युक्त विवरण 'बकरा' की उस बाईं धार का है, जो 'रमानी' और 'बरवट्टा' के मध्य अलग हुई है। किंतु, यहाँ जो दाहिनी धारा दक्षिण चलती है, वह देवनी नाम से खमेला तथा बनकोसा ग्रामों को क्रमशः पहुँचती है। खमेला गाँव के पूर्वभाग में आकर देवनी अग्निकोण में बढ़ती है और फिर बनकोरा होते महम्मदपुर के नैऋत्य कोण में आती है। कसबा से पूर्वोत्तर-कोण में अमौर को जानेवाला मार्ग 'देवनी घाट' को इसी महम्मदपुर के निकट पार करता है। इस घाट पर देवनी (बकरा) का बहाव दक्षिणाभिमुखी है, जो आध मील का है। इसके बाद यह अग्निकोण में दौड़ती है और 'इक्रा इस्तमरार' गाँव को आ जाती है। इसी के दक्षिण में यह अमौर थाने को पार कर 'बैसी' थाने में घुसती है और तत्क्षण दो भागों में बँटकर एक बड़ा-सा द्वीप बनाती है। इस द्वीप का विस्तार लगभग पाँच मील का है, जिसके मध्य में 'मल्हरिया' तथा 'हररामपुर' ग्राम बसे हुए हैं। हररामपुर ग्राम तथा इस द्वीप के मध्य से राष्ट्रीय उच्च पथ पूर्णिया से किशनगंज की ओर जाता है। इन्हीं दो प्रवाह-भुजाओं की बाईं भुजा में हररामपुर से एक मील उत्तर तथा 'पहड़िया' ग्राम के पश्चिम अपनी बाईं धार की छाड़न का पानी देवनी (बकरा) ग्रहण करती है, जिसका विवरण अभी-अभी दिया जा चुका हैं। हररामपुर के दक्षिण में दोनों प्रवाह-भुजाएँ फिर परस्पर मिल जाती हैं। किंतु, यह सम्मिलित भुजा मुश्किल से आध मील दक्षिण में बढ़ भी नहीं पाती है कि फिर दो भागों में बिखर जाती है। यह बिखराव 'दोघरिया' गाँव के पास होता है। इन्हीं दो धाराओं में से दाहिनी धारा 'देवनी' नदी कहलाती है। आगे के पृष्ठ में दिये गये मानचित्र में इन धाराओं की रूप-रेखा द्रष्टव्य है।

यों तो देवनी धार का उद्गम पनार की उपशाखा और बकरा के मिलन से रमानी गाँव के पास बननेवाली फिघाला की दाहिनी धारा से होता है। किंतु, अमौर थाने में इसका नाम परमान रहता है। वैसी थाने में जब यह अपनी छाड़न का तथा कंकई-समूह की उपशाखा का जल ले लेती है, तब 'देवनी' कहलाने लगती है, जिसका शुद्ध रूप **'देवनदी'** है और जिसे बुकानन ने **'देवनोई'** कहा है। किंतु, इस देवनी का अपना अलग कोई अस्तित्व नहीं है, यह तो निचले भाग में परिवर्तित वकरा नदी का ही नाम है।

दोघरिया के पास देवनी नदी दो रेखाओं में बँटती है और फिर एक बड़ा-सा द्वीप बनाती है। इन दो धारा-रेखाओं की गोद में दोघरिया, खोकसा, खुटिया तथा बैरिया गाँव बसे हैं। इन दोनों धाराओं में बाईं धार के दाहिने किनारे खुटिया तथा बैरिया ग्राम बसे हैं। इन गाँवों के पूर्वभाग में महानंदा के किनारे तक बहुत बड़ा चौरनुमा मैदान

है, जो सूचित करता है कि इसी भाग में पहले बकरा, रतुआ, कवई तथा कंकई नदियाँ सम्मिलित रूप से महानंदा के दाहिने भाग में संगम करती थीं। किंतु, दोघरिया के पास जो



दाहिनी धारा वनती है, वह चंदर गाँव और गेहुनिया ग्रामों को आकर बिलकुल नैऋत्य कोण में बहती हुई मैंगवाँ के पूरब आती है। यहां से यह पूर्वोत्तर-कोण में बहकर अपनी वाईं भुजा से पुनः मिल जाती है। इस मिलन के पश्चात् यह फिर अग्निकोण में चलकर 'फुलबांसा' ग्राम को पहुंचती है। यहाँ इसके बाएँ भाग में एक चौर-स्रोत आकर मिलता है, जो 'बैसी' के दक्षिण से उद्गमित होकर दक्षिण की ओर ही चलता और 'राष्ट्रीय उच्च

पथ' को पार करता एवं रूपौली ग्राम होते हुए फुलबाँसा आता है। यह स्रोत बुकानन के समय में महानंदा का मुख्य प्रवाह था। इसके बाद देवनी अँगूठी की तरह गोल होकर नियामतपुर के दक्षिण में आती है और कटिहार-अनुमंडल के 'कदवा थाने में प्रवेश करती है। इसी सीमा पर महानंदा नदी अपनी एक उपशाखा नैर्ऋत्य कोण में निकालती है, जिसका आधा पानी सीधे देवनी में आता है और आधा महानंदा की दूसरी और दक्षिण वाली उपशाखा में गिरता है। यहाँ देवनी और महानंदा की उपशाखा—दोनों मिलकर एक बड़े भूमि-भाग को घेरकर टापू बनाती हैं। यहाँ दाहिनी धारा देवनी का है, जिसके दाहिने किनारे चौकी, मिरजादपुर, पड़रिया एवं मझोक गाँव बसे हुए हैं। इसी प्रकार, बाईं धार महानंदा की उपशाखा की है, जिसके बाएँ किनारे खरही, तैयवपुर तथा मझोक (दूसरा मझोक) गाँव है। दोनों धाराओं के मध्य भागवाले टापू में 'सरलिया' गाँव है, जो टापू के दक्षिणी भाग में देवनी नदी के बाएँ किनारे स्थित है। प्रथम 'मझोक' के पास देवनी के दाहिने किनारे रीगा (पनार) की एक टूटी धारा मिलती है। यह छाड़न पश्चिमोत्तर-कोण से अग्निकोण में वहती आती है और पड़रिया गाँव से उत्तर देवनी में मिलती है। किंतु, बुकानन के समय यह रीगा, पनार की एक प्रधान धारा थी और इसी माध्यम से पनार महानंदा में मिलती थी।

महानंदा की उपशाखा और देवनी नदी—दोनों 'रोवरा' गाँव के उत्तर में आध मील दूरी पर मिलती है। यह संगम 'कदवा' से पाँच मील दूर पूर्वोत्तर कोण में होता है। यहाँ से देवनी दक्षिण चलती है और रोवरा आकर पूर्व की ओर जाकर फिर पश्चिम में मुड़ती और अँगूठी बनाती हुई भउनगर तथा शाहपुर गाँवों से होती एवं वक्र चाल से 'शाहनगर दक्षिणी' तथा 'मुरादपुर' के मध्य में आती है। यहाँ मुरादपुर देवनी के दाहिने किनारे है और दक्षिणी शाहनगर बाएँ किनारे। यहाँ से सिर्फ डेढ़ मील दक्षिण चलकर सतभीठा के अग्निकोण में तथा 'झउवा' रेलवे स्टेशन (कटिहार-वारसोई-लाइन) से एक मील पूरब तथा रेलवे लाइन के सटे उत्तर यह देवनी 'रीगा नदी' (पनार) में मिल जाती है। यह मिलन-स्थल 'कदवा' से चार मील दूर अग्निकोण में पड़ता है। इस प्रकार, बकरा, जो डेढ़ सौ वर्ष पूर्व एक छोटी नदी थी, वह रतोया को छोटा करके तथा देवनी को माध्यम बनाकर इतनी बड़ी नदी हो गई है।

ऊपर रमानी और बरवट्टा गाँवों के पार्श्ववर्त्ती जिस देवनी-धार का वर्णन किया गया है, वह बुकानन के समय की **रतोया** और **पनार** की सम्मिलित धाराएँ हैं। फिर, 'बैंसी' के दक्षिण से निकलनेवाली जिस छाड़न नदी का 'फुलबाँसा' के पास संगम दिखाया गया है, वह बुकानन के समय की महानंदा नदी की मुख्य धारा थी। महानंदा की इसी धारा में रतोआ, बकरा तथा पनार—इन तीनों नदियों की वह सम्मिलित धारा 'परिया' और 'मझोक' के पास संगम करती थी, जिसके देवनी के साथ पनार की एक टूटी शाखा के रूप में संगम करने की चर्चा पहले की गई है।

रतुआ या रतोया : यह पहले कहा गया है कि आज से १५० वर्ष पूर्व, बुकानन के समय में रतोया एक बड़ी नदी थी, जिसमें बकरा की बेरी नामक एक उपधारा सम्मिलित होती थी; किंतु आज स्थिति बिलकुल विपरीत है। फिलहाल, बकरा अपनी बेरी नामक उपधारा के द्वारा बड़ी नदी बन गई है और रतोया उसकी सहायक नदी हो गई है। आजकल रतोया दो धाराओं में बँटकर भी, अपनी दोनों धाराओं को 'बकरा' में ही डालती है। पहली धारा मदनपुर के पूरब अररिया और पलासी थानों की सीमा-संधि पर और परमान कहलानेवाली दूसरी धारा पलासी थाने तथा जोकीहाट को लाँघती हुई अमौर थाने के पश्चिमोत्तर-कोण में पहुँचती है और वहाँ अररिया और सदर अनुमंडलों की सीमा-संधि पर बकरा में मिलती है। स्मरणीय है कि यहीं बकरा का नाम 'कतुआ' हो गया है।

रतोया, नेपाल की पूर्वी तराई के रँगेली नामक स्थान के पश्चिम से बिहार के पूर्णिया जिले में उस स्थान पर घुसती है, जहाँ दोनों देशों के पाया नं० ३६ हैं। इसका पूर्णिया-प्रवेश सिकटी और टेढ़गछ थानों के मध्य सीमा-रेखा के रूप में होता है, जिसके साथ ही यह किसनगंज एवं अररिया-अनुमंडलों की भी सीमा का काम करती है। इसके प्रवेश-स्थल के बाएँ किनारे 'भरेहा' गाँव है, जो टेढ़गछ थाने में पड़ता है। इसके बाएँ भाग में डेढ़गछ का और दाहिने भाग में 'सिकटी' का थाना है। इसके प्रवेश-स्थल से 'टेढ़गाछ' गाँव दो मील पूर्व में स्थित है और सिकटी नौ मील पश्चिम में। 'टेढ़गछ' का प्राचीन नाम 'दहिभत' भी मिलता है। चंडेश्वर ठाकुर ने अपने 'कृत्यरत्नाकर' ग्रंथ में 'दधिभत' ग्राम की चर्चा की है, जहाँ हरिसिंह देव के प्रधान मंत्री वीरेश्वर ने एक बड़ा तालाब खुदवाया था। परमेश्वर झा ने 'मिथिला-तत्त्व-विमर्श' नामक पुस्तक में उस 'दधिभत' को दरभंगा जिले के 'पंडौल' के पास स्थित 'दधिभत' गाँव से पहचान की है। मैं इस बात की चर्चा 'कमला' नदी के प्रसंग में पहले कर चुका हूँ (पृ० ३१६); किंतु मेरे विचार से वीरेश्वर ने जिस 'दधिभत' में तालाब खुदवाया था, वह गाँव इस 'टेढ़गछ' को होना चाहिए।

पूर्णिया जिले में प्रवेश करते ही 'रतोया' दक्षिण चलती है और 'वामपुर' गाँव को आती है, जो इसके वाम पार्श्व में बसा है। वामपुर भी प्राचीन ग्राम है, जहाँ से सिर्फ एक मील के लिए पश्चिम दिशा में 'रतोया' बहती है। इसके बाद दक्षिण की ओर और फिर अग्निकोण में थोड़ी दूर बहकर यह 'धवैली' ग्राम आती है और यहाँ डेढ़गछ-पलासी-मार्ग के सहारे बिलकुल नैऋत्य कोण में चलती है और 'बलुआ-जागीर' नामक ग्राम को आती है। इसी 'बलुआ-जागीर' तक रतोया नदी सिकटी तथा टेढ़गछ थानों की सीमा बनती है और यहीं तक यह अररिया और किशनगंज-अनुमंडलों की सीमा का भी काम करती है। बलुआ-जागीर के पास रतोया एकाएक अपने दाहिने भाग की ओर थोड़ा पश्चिमोत्तर-कोण में झुकती हुई पुनः सीधे उत्तर दिशा में एक मील के लिए मुड़ जाती है। यहाँ से यह सिकटी और पलासी थाने की सीमा रेखा बनती है। सिकटी थाने के दक्षिण में पलासी थाने की भूमि

पड़ती है। इस उत्तरी घुमाव के पश्चात् रतोया पग-पग पर अपनी धारा को वक्र बनाती तथा दो-ढाई मील तक बहती एवं नैऋत्य कोण को ओर चलती हुई 'छपनिया' गाँव को पहुँचती है। यहाँ यह सिक्टी और पलासी थानों की सीमा-रेखा का काम छोड़कर बिलकुल पलासी थाने में दक्षिणाभिमुखी बनकर प्रवेश करती है। छपनिया के नैऋत्य कोण में ढाई मील दूर 'धरमगंज-बघुआ' गाँव है, जहाँ प्रतिवर्ष धार्मिक मेला लगता है। इस धरमगंज में रतोया से 'योगजन' नामक नदी की बाईं शाखा मिलती है, जो सिकटी से दक्षिण की ओर बहती हुई आती है। इस संगम के कारण ही धरमगंज तीर्थ स्थान माना जाता है। धरमगंज रतोया के दाहिने भाग में स्थित है। धरमगंज से दो मील दूर अग्निकोण में हसनपुर गाँव इसके वाम पार्श्व में पड़ता है। यह हसनपुर गाँव पलासी से तीन-साढ़े तीन मील उत्तर में है, जहाँ से 'रतोया' पश्चिम की ओर चलती है। पश्चिम में एक-डेढ़ मील चलने के बाद इसमें 'योगजन' नदी की दाहिनी धारा भी मिल जाती है, जिससे 'रतोया' की धारा नैऋत्य कोण में मुड़कर बिरिहट या वीरहट्ट के पूरब में आती है। बिरिहट का पुराना नाम 'तरौना' भी है। बिरिहट गाँव पलासी से तीन मील पश्चिमोत्तर-कोण में स्थित है और यह अररिया थाने में पड़ता है। यहीं **घंघी** नदी रतोया से संगम करती है, जिसे कुछ लोग '**गंगी**' भी कहते हैं।

घंघी भी मोरंग-प्रदेश से चलकर पूर्णिया जिले में नेपाल-भारत-सीमा के पाया नं० ५० के पास प्रवेश करती है, जो 'असुरकलाँ खोला' से तीन मील पूरब है और 'सिकटी' से केवल तीन मील दूर पश्चिमोत्तर-कोण में स्थित है। घंघी पूर्णिया की सीमा में प्रवेश करके सीधे दक्षिण की ओर चलती और 'कुँआ-पोखर' गाँव पहुँचती है। यहाँ से पूरब की ओर से बहती जब छह मील दक्षिण में चल लेती है, तब नरपतगंज से पूरब मटियारी होते बहादुरगंज जानेवाला मार्ग 'घंघी' को पार करता है। यहाँ से घंघी दक्षिण में एक मैदान से बढ़ती है और अपने बाएँ भाग से 'बरदहा' नामक गाँव को छोड़ती 'धेंगरी' पहुँचती है। यहाँ से यह थोड़ा अग्निकोण में झुक कर दक्षिण चलती है और ढाई मील आगे बढ़कर 'सोहदो' आती है, जहाँ 'योगजन' नदी की एक शाखा से मिलती है। इसके बाद सीधे दक्षिण बढ़ती है और ढाई मील चलकर 'बिरिहट' के पूर्व भाग में 'रतोया' से मिल जाती है।

घंघी अथवा गंगी को ग्रहण करने से 'रतोया' की धारा थोड़ी विचलित होती है और लगभग आध मील के लिए पूर्व दिशा में मुड़कर फिर दक्षिणाभिमुखी बन जाती है। इस दिशा में एक ही मील वह पाती है कि दो भागों में बँट जाती है। यह विभक्तीकरण 'पलासी' से डेढ़ मील पश्चिम में तथा 'बिरिहट' से दो मील अग्निकोण में होता है। यहाँ इसकी दाहिनी धारा सीधे दक्षिण चलती है और 'बनघोड़ा' के पूर्व से ही सिर्फ चार मील बहकर मदनपुर के पूरब तथा 'भीखा' के उत्तर 'बकरा' नदी में समा जाती है। किंतु, बाईं धारा पूर्व की ओर चलकर फिर दक्षिण की ओर मुड़ती है और पलासी के पश्चिम से ही अपनी दाहिनी धार के समानांतर बहती हुई 'पुरंदहा' के पश्चिम में आती है। यहाँ से

अग्निकोण में बहती पर्बाखोरी गाँव पहुँचती है, जो इसके बायें तट पर बसा है। यहाँ से जब यह दक्षिण की ओर बढ़ती है, तब इसके दाहिने तट पर 'दूबा' गाँव मिलता है। दूबा से यह अग्निकोण में चलती है और सुखसैना के दक्षिण में ही पलासी थाने की सीमा से बाहर निकल जाती है और वहाँ से 'जोकीहाट' पहुँचती है। जोकीहाट पूर्णिया जिले का एक अच्छा बाजार है। वहाँ एक विश्रामागार तथा एक छोटा अस्पताल भी है। अररिया-बहादुरगंज-मार्ग जोकीहाट में ही रतुआ की इस धारा को पार करता है। फिर, दक्षिण बढ़ने पर जब रतुआ 'खीरदहा' गाँव होते 'दरसना' गाँव के पश्चिम में आती है, तब यहीं पर पूर्णिया से जलालगढ़ होते बहादुरगंज जानेवाला मार्ग भी 'रतुआ' को पार करता है। इसके बाद यह रामगंज पहुँचती है। यह एक प्राचीन ग्राम है और रतुआ-धार के बायें तट पर बसा है। यहाँ से यह बिलकुल अग्निकोण में बहने लगती है और **'परमान'** नदी के नाम से अररिया-अनुमण्डल और पूर्णिया सदर अनुमण्डल की सीमा पर 'मझवा' गाँव को आ जाती है। मझवा सदर अनुमण्डल के अमौर थाने में पड़ता है। यह परमान (रतुआ) के दाहिने तट पर बसा है। मझवा के दक्षिण 'डोलमलपुर' गाँव है। इस गाँव के पश्चिम से तथा दोनों अनुमण्डलों की सीमा को विभाजित करती नैर्ऋत्यकोण में तीन मील तक बहकर 'कड़िया' गाँव के पास, उसके पश्चिम में, दोनों अनुमण्डलों की सीमा पर ही, बकरा (कतुआधार) से मिल जाती है।

●

कवल

पूर्णिया जिले के पूर्वी भाग की नदियों में 'महानंदा' के वाद जलप्रवाह की दृष्टि से, सबसे बड़ी नदी 'कंकई' है, जिसे कुछ लोग 'कनकई' भी कहते हैं। कंकई का विवरण आगे दिया जायगा। यहाँ कंकई की सहायक नदियों में सबसे मुख्य 'कवल' नदी की चर्चा प्रस्तुत करना अनपेक्षित नहीं होगा। कवल नदी आज पूर्णिया जिले में एक स्वतंत्र नदी के रूप में बहती है और प्राय: अपने मुहाने के पास पहुँचकर 'कंकई' में गिरती और महानन्दा से मिल जाती है। बुकानन ने एक छोटी नदी के रूप में 'कवल' का वर्णन किया है, जिसमें 'कृष्णई' का संगम होता था।

कवल का उद्गम नेपाल के तराई-भागवाले चूरे पर्वत से होता है और यह 'झापा' जिले की भूमि से बहती पूर्णिया जिले के किशनगंज-अनुमंडल के 'दिघालवैंक' थाने की भूमि में उस स्थान पर प्रवेश करती है, जो 'लोहरगढ़' से ढाई मील उत्तर की ओर है। यह स्थल 'दिघालवैंक' से पाँच मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में हैं। कवल अपने प्रवेशस्थल से थोड़ा नैर्ऋत्यकोण में झुकती तथा दक्षिण की ओर बहती हुई तीन मील तक बिहार की सीमा (पूर्व की ओर) वनती है। इसकी धारा के दाहिने भाग में तीन मील तक नेपाल की भूमि और बायें भाग में विहार की भूमि पड़ती है। तीन मील तक सीमा-निर्द्धारण के पश्चात् यह 'कंचनवारी' गाँव के उत्तर में तथा लोहरगढ़ के नैर्ऋत्यकोण में, पाया नं० २७ के पास, विलकुल पूर्णिया की भूमि में प्रवेश करती है और इसके पश्चात् दक्षिण दिशा में प्रयाण करती है।

कंचनवारी गाँव के दक्षिण कवल के बायें किनारे 'लोहागढ़' गाँव है, जो पूर्वोक्त 'लोहरगढ़ा' से भिन्न है और दोनों के बीच का फासला दो मील है। इसी लोहागढ़ से कवल नदी 'टेढ़गछ' और बहादुरगंज थानों की सीमा वनकर दक्षिण दिशा की ओर चलती है। टेढ़गछ थाने की भूमि इसके दाहिने भाग में और बहादुरगंज थाने की भूमि बायें भाग में पड़ती है। ये दोनों थाने किशनगंज-अनुमंडल के हैं और अनुमंडल के पश्चिमोत्तर कोण में स्थित हैं।

कवल नदी के लोहागढ़ से तीन मील दक्षिण की ओर बहने पर इसकी धारा के मोड़ के सामने (दक्षिण) भाग में, प्राचीन और भग्न टीलोंवाला गाँव 'बीवीगंज' मिलता है। यहीं पर उत्तर से दक्षिण की ओर आनेवाली एक निर्झरिणी 'कवल' से संगम करती है। बीवीगंज से कवल थोड़ी दूर के लिए पश्चिम मुड़ती है और दक्षिण की ओर टेढ़ी-मेढ़ी चाल से रेंगती 'पत्थरघट्टी' गाँव के पश्चिम में आती है। इसके उत्तर में ही एक और स्रोत को अपने दाहिने भाग में ग्रहण करती है। यह स्रोत 'चिचौरा' ग्राम से दक्षिण चलकर भेलागढ़ी ग्राम होते हुए आता है। पत्थरघट्टी 'कवल' के बायें किनारे बसा है; मगर इससे डेढ़मील दूर और इसके अग्निकोण में बसा दूसरा 'पत्थरघट्टी' गाँव 'पश्चिमी कंकई'

की एक उपशाखा के दाहिने भाग में है। प्रथम 'पत्थरघट्टी' से कवल नदी जब दो मील दक्षिण बढ़ती है, तब इसके दाहिने भाग में 'मौअन' ग्राम मिलता है। बहादुरगंज से उत्तर-पश्चिम कोण की ओर 'टेढ़गछ' जानेवाला मार्ग इसी 'मौअन' में 'कवल नदी' को पार करता है। यहाँ से 'कवल' अग्निकोण में बहती हुई दक्षिण की ओर चलती है। इस प्रयाण-क्रम में यह टेढ़गछ और बहादुरगंज थाने की सीमा-रेखा का काम छोड़कर टेढ़गछ थाने की भूमि में प्रवेश करती है तथा सिरिनिया ग्राम के अग्निकोण में एवं 'बलुआ डांगी' के नैर्ऋत्यकोण में पश्चिमी 'कंकई' की उपशाखा-धार को ग्रहण करती है। पश्चिमी कंकई के दाहिने भाग की यह उपधारा बहादुरगंज थाने के उत्तरी छोर पर स्थित लक्ष्मीपुर गाँव के पास से निकलती है, जो पूर्वोक्त 'लोहागढ़' से डेढ़ मील पूर्व दिशा में अवस्थित है। यह अपने उद्गम-स्थान से सीधे नैर्ऋत्यकोण में चलती है और दखिनवारी पत्थरघट्टी, कुढ़ैली तथा बलुआडांगी गाँवों से होते टेढ़गछ थाने में घुसकर 'कवल' के वाम पार्श्व में संगम करती है। इस उपधारा का प्रवाह-मार्ग सिर्फ छह मील का है। बुकानन इसको 'खर्रा' कहता है, जो वस्तुतः नेपाल के तराई-भाग से चलती है और देवगिरजा गाँव के पश्चिम में आजकल पश्चिम कंकई से मिल जाती है। यही पहले 'कंकई' की उपरिवर्णित उपधारा से मिलकर 'कवल' से जा मिलती थी।

उक्त संगम के बाद 'कवल' (बुकानन की कमल) दक्षिण में चलती हुई पुनः उक्त दोनों थानों (टेढ़गछ और बहादुरगंज) की सीमा का काम करने लगती है और तब 'महेशवथना' गाँव आती है। यहाँ से थोड़ी दूर पश्चिम मुड़कर फिर दक्षिण दिशा की ओर प्रयाण कर जाती है। इस क्रम में 'कवल' बभनटोला तथा मीनापुर गाँवों को पहुँचती है। मीनापुर से एक मील दक्षिण, 'टेढ़गछ' थाने के दक्षिणी छोर तक 'कवल' नदी 'टेढ़गछ' और 'बहादुरगंज' थानों की सीमा बनती हुई बहादुरगंज थाने की भूमि में घुस आती है और 'बोचागरी' गाँव होते 'कठलबारी' आ जाती है। यहाँ 'कवल' अकस्मात् पश्चिम की ओर मुड़कर मुसलडंगा गाँव के दक्षिण में पहुँच जाती है। किंतु, कुछ दशाब्दी पूर्व 'कवल' कठलबारी से पश्चिम नहीं मुड़ती थी, बल्कि वहीं से सीधे दक्षिण चलती थी और हल्दी खोरा, पोखरिया, विशुनपुर, सेहेगाँव, बाहखोल, अंधउर, मकराहा, मालीगाँव मिरजापुर आदि गाँवों से होते पश्चिमी कंकई में जा मिलती थी। इसकी टूटी धारा आज भी वर्त्तमान है। पर अब यह कठलवारी से पश्चिम मुड़कर मुसलडंगा आती है। मुसलडंगा गाँव 'कवल' नदी के दाहिने किनारे उत्तरी तट पर बसा है। यहाँ से यह थोड़ा नैर्ऋत्यकोण में झुकती हुई दक्षिण की ओर चलती है और 'लटोर' गाँव होते 'गोसाईंपुर' आ जाती है। गोसाईंपुर गाँव अररिया-अनुमंडल के पलासी थाने के पूर्व-दक्षिण कोण का अन्तिम गाँव है यहाँ 'कवल' के बायें किनारे लटोर, हल्दीखोरा और पोखरिया गाँव स्थित हैं, जो किशनगंज-अनुमंडल के बहादुरगंज थाने में पड़ते हैं। इसी गोसाईंपुर में कवल नदी अररिया और किशनगंज-अनुमंडलों की सीमा पर पहुँचती है और इसी स्थान पर 'कृष्णई' और 'नोनसारी' नदियों की संयुक्त धारा 'कवल' से संगम करती है। यह संगम-स्थान

'पलासी' से साढ़े आठ मील दूर अग्निकोण में तथा 'बहादुरगंज' से भी साढ़े आठ मील की ही दूरी पर नैर्ऋत्यकोण में है।

नोनसारी और कृष्णई : ये दोनों नदियाँ नेपाल के तराई-प्रदेश से दक्षिण की ओर बढ़ती हुई पूर्णिया जिले में घुसती हैं। नोनसारी 'टेढ़गछ' के सटे पश्चिम में सीमा-निर्देशक पाया नं० ३७ के पास प्रवेश करती है और 'कृष्णई' नदी टेढ़गछ के पूरब में पाया न० ३३ के पास। दोनों समानान्तर रूप से दक्षिण में बहती हैं। नोनसारी और कृष्णई स्वतंत्र रूप से क्रमशः जब नौ मील तथा ग्यारह मील दक्षिण में बहकर आती हैं, तब दोनों 'मलदोआर' के पूर्व तथा 'तेघरिया' के पश्चिम में एवं अररिया तथा किशनगंज-अनुमण्डलों की सीमा पर परस्पर मिल जाती हैं। नोनसारी के किनारे, उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः टेढ़गछ, फुलवारी, पोखरिया, लोधाबारी, हवाखोई खुर्द, महादेव खोल तथा मलदोआर गाँव स्थित हैं। फिर, कृष्णई के तट पर उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः खनियाटोली, हटगाँव, पिपरा, पचगाछी, खर्रा वेलवारी, खैरा, खैराकाश्त, खर्रा-सुहिया, चिल्हनिया, सुहिया तथा देवरी खास नामक गाँव स्थित हैं। ये सभी गाँव टेढ़गछ थाने के हैं और दोनों नदियाँ परस्पर मिलन तक इसी थाने में वहती हैं।

किशनगंज और अररिया-अनुमण्डलों की सीमा पर तथा टेढ़गछ और पलासी थानों की सीमा पर 'मलदोआर' के पास कृष्णई और नोनसारी परस्पर मिलकर नोनसारी नदी के नाम से दक्षिण की ओर, थोड़ा अग्निकोण में झुकती हुई, बहने लगती है। इस प्रयाण में 'नोनसारी' नदी अररिया एवं किशनगंज-अनुमण्डलों की तथा पलासी एवं वहादुर-गंज थानों की भी सीमा वनकर बहती हुई दुर्गापुर और हरिबासा, गाँवों के पश्चिम से काशीपुर तथा मुसलडंगा गाँवों के मध्य आती है। यहाँ से दक्षिण वढ़कर गोसाईंपुर पहुँचती और यहीं 'कवल' नदी में प्रवेश कर जाती है। इस एकीभूत धारा के मार्ग की दूरी सिर्फ पाँच मील की है।

गोसाईंपुर में 'कवल' नदी 'नोनसारी' को आत्मसात् करके जैसे ही दक्षिण की ओर बढ़ती है, वैसे ही जोकीहाट से पूर्वोत्तरकोण में चलनेवाला तथा बहादुरगंज को जाने वाला मार्ग 'कवल' नदी को 'मझकुरी' गाँव के पास पार करता है। यहाँ तक यह पूर्णिया जिले में २५ मील तक रास्ता तय कर लेती है। मझकुरी से 'कवल' नदी थोड़ा इधर-उधर मुड़ती सीधे दक्षिण चलती है। गोसाईंपुर से ही यह अररिया और किशनगंज-अनु-मण्डलों की सीमा-रेखा का काम करने लगती है और तब 'मझकुरी' होते 'सिसवा' तथा 'असियानी' गाँवों के मध्य आती है। सिसवा 'कवल' के दाहिने किनारे पश्चिमी तट पर स्थित है, जो अररिया-अनुमण्डल का गाँव है और असियानी गाँव कवल के बायें किनारे पूर्वी तट पर बसा है, जो सदर अनुमण्डल के 'अमौर' थाने में पड़ता है। इसी असियानी के उत्तर से किशनगंज-अनुमण्डल की सीमा-रेखा पूर्व की ओर चलती है। असियानी के उत्तर 'सिरार' गाँव है, जो किशनगंज-अनुमण्डल में पड़ता है। इस प्रकार यहाँ तीनों अनुमण्डलों

की सीमा-संधि कवल नदी के तट पर होती है। मझकुरी से असियानी तक 'कवल' का धारा-मार्ग छह मील का है। अररिया-अनुमण्डल के 'सिसवा' गाँव से पूर्णिया सदर अनुमण्डल का 'असियानी' गाँव एक मील दूर पूर्वोत्तर कोण में पड़ता है। 'सिसवा' के पास कवल नदी दो धाराओं में बँटती है। बाईं धारा सिसवा के सामने से पूर्व की ओर निकलकर उत्तर की ओर मुड़ती है और 'असियानी' के दायें पहुँचकर दक्षिण दिशा की ओर बढ़ती हुई, पूर्व की ओर चल पड़ती है। किन्तु, दाहिनी धारा अररिया और पूर्णिया सदर अनुमण्डलों की सीमा-रेखा बनती नैर्ऋत्यकोण में चलती और 'मेहदी-नगर' गाँव के पश्चिम में अपने दाहिने भाग में एक छोटी-सी नदी का जल आत्मसात् करती है। यह छोटी नदी पलासी के उत्तर में स्थित 'कनखुदिया' गाँव के दलदल से चलती है और अग्निकोण में बहती हुई आती है। यह कभी 'रतुआ' का धारा-मार्ग थी। मेहदी नगर के नैर्ऋत्यकोण में आकर यह एक कुत्ते की आकृति का टापू बनाती है और यहीं तक 'कवल' पूर्णिया सदर और अररिया-अनुमण्डलों की सीमा का काम करती है। कुत्तानुमा टापू का अगला पैर और मुँह पश्चिम की ओर अनुमण्डलों की सीमा पर होते हैं और पिछला पैर अग्निकोण में 'परसादपुर' गाँव तक लटक आता है। 'कवल' सिसवा से नैर्ऋत्यकोण में मात्र दो मील तक बहकर सीमा-रेखा बनती है। यहाँ 'कवल' नदी रतोया की परमान धारा से सटती-सटती-सी होकर भी मिलती नहीं है। यहाँ से यह दक्षिण दिशा में मुँह करती है और पूर्णिया सदर अनुमण्डल में प्रवेश करके 'परसादपुर' तथा 'डोलमलपुर' के बीच से दक्षिण निकल आती है। यहाँ से यह अग्निकोण में स्थित अमौर थाने की ओर चलती है और अपनी धारा को ऐंठती तथा 'जगदई' गाँव को अपने बायें भाग में निहारती उसके अग्निकोण में आकर दो धाराओं में बँट जाती है। यहाँ यह पश्चिमोत्तर कोण से अग्निकोण की ओर तीन मील लम्बा एक द्वीप बनाती है, जिसके मध्य 'रामपुर' गाँव बसा है। यहाँ दाहिनी भुजा के दाहिने भाग में 'चन्नी' तथा 'राठूर' गाँव हैं और बाईं भुजा के बायें भाग में 'रउता' नामक प्राचीन गाँव दीख पड़ता है। 'रउता' के दक्षिण में दोनों भुजाएँ मिल जाती हैं और अग्निकोण मे बहती 'धरीक करनपुर' गाँव को आती हैं, तत्पश्चात् 'पठान टोली' गाँव को पहुँचती है। पठानटोली गाँव 'अमौर' से डेढ़ मील उत्तर में बसा है। यह नदी पठान-टोली के पूर्वोत्तर कोण में अपनी धारा को अंकुशनुमा बनाकर अग्निकोण की ओर भेजती है, जहाँ वह पश्चिमी कंकई की धारा से मिल जाती है, जिसमें पहले से ही सिसवा के पास से अलग होनेवाली इसकी पूर्वी धारा भी मिली होती है।

उपर्युक्त 'सिसवा' के पास 'कवल' की जो बाईं धारा अलग होकर पूर्व दिशा में चलती है, वह उत्तर की ओर मुड़कर 'असियानी' गाँव तक जाती है। यहाँ यह 'असियानी' के दक्खिन और उफरैल गाँव के उत्तर से पूर्व की ओर निकलती है तथा धोबिनिया गाँव के पश्चिम में ही अपनी उस छाड़न-धार को ग्रहण करती है, जो कठलबारी के दक्खिन से और हल्दी खोरा के उत्तर से दक्खिन की ओर अन्धउर, माली गाँव, मिरजापुर आदि गाँवों से होती हुई आती है, जिसका निर्देश पहले किया जा चुका है। इस संगम के पूरब में धारा

की बाईं ओर धोबिनिया गाँव है। यहाँ से 'कवल' की यह धार दक्षिण दिशा में बहती मीरगंज-फतेहपुर तथा निकन्दाहा गाँवों के पास-पड़ोस से होती 'बैसा' गाँव को आती है। इसी 'बैसा' के पास 'कसवा' से लखना होते पूर्वोत्तर कोण में स्थित बहादुरगंज जानेवाला मार्ग 'कवल' की इस धारा को पार करता है। इस घाट के सटे पूर्व में तथा 'बैसा' के सटे उत्तर में 'कवल' की यह पूर्वी धार 'पश्चिमी कंकई' की उस धारा में समाहित हो जाती है, जो बहादुरगंज के पश्चिम भाग से दक्षिण की ओर बहती हुई आती है। 'कवल' की इस धारा का संगम-स्थान 'अमौर' से छह मील उत्तर में है।

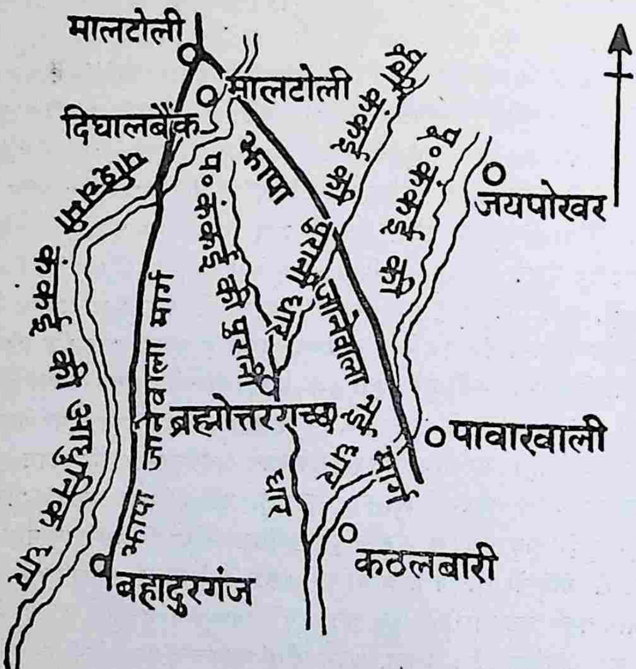
कंकई

नेपाल के पूर्वी भाग में स्थित 'मेची'-अंचल के 'इलाम' जिले के बिलकुल पूर्वोत्तर कोण की ऊँची पहाड़ी भूमि से दक्षिण की ओर ढलती हुई 'कंकई' प्रवाहित होती है। वहाँ से दक्षिण की ओर ही चलती हुई 'इलाम' नगर के पूर्व भाग से जब और कुछ दक्षिण की ओर आती है, तब चूरे पहाड़ की घाटी से पश्चिम की ओर बहकर पुनः अग्नि कोण में दौड़ती है। किन्तु तराई-भाग के 'झापा' जिले में आने पर यह फिर दक्षिण-वाहिनी बन जाती है। इसके बाद यह भारत की भूमि में, बिहार के पूर्णिया जिले में, दो भागों में विभक्त होकर प्रवेश करती है। इसकी पूर्वी और बाईं शाखा 'जिया पोखर' गाँव के उत्तर तथा भारत और नेपाल की सीमा के पाया नं० १४ के पास प्रवेश करती है तथा दिघाल बैंक और ठाकुरगंज थानों की सीमा निर्धारित करती हुई बहती है। किन्तु, पश्चिमी शाखा दिघाल बैंक के उत्तर पाया नं० १८ और १९ के मध्यभाग में 'पचगछी' गाँव के पास प्रवेश करती है। इसे पश्चिमी कंकई कहते हैं। यह आज से १५० वर्ष पहले यानी बुकानन के काल में दिघाल बैंक से किंचित् अग्नि कोण में झुककर 'मालटोली' गाँव होते आजकल की 'सैरी' धार से मिलकर बहती हुई बहादुरगंज से ४ मील दूर पूर्वोत्तर कोण में 'बघोन' गाँव के पूरब तथा 'कठलबारी' गाँव के पश्चिम में अपनी पूर्वी शाखा (कंकई) से संगम करती थी। कवल नदी के किनारे वाले 'कठलबारी' से यह 'कठलब्बारी' भिन्न गाँव है और दोनों में लगभग १० मील का अंतराल है। किन्तु, आज 'सैरी' का प्रवाह कंकई से विच्छिन्न हो गया है, और उसका उद्गम अब 'मालटोली' के दक्षिण भाग के चौर में रह गया है।

कंकई की पश्चिमी शाखा पूर्णिया जिले में जहाँ प्रवेश करती है, वहाँ इसके दाहिने 'मालटोली' और बायें किनारे 'पचगछी' गाँव दिखाई पड़ते हैं। दोनों के मध्यभाग से बहती पश्चिमी कंकई 'दिघाल बैंक' आती है। मालटोली के पास दो मार्गों का परस्पर मेल होता है, जिनमें एक तो बहादुरगंज से थोड़ा पूर्वोत्तर कोण में झुकता उत्तर दिशा में चलकर आता है और दूसरा पूर्वी कंकई के किनारे स्थित 'पवाखाली' से थोड़ा पश्चिमोत्तर कोण में झुककर उत्तर दिशा में ही बढ़ता है। तत्पश्चात् पश्चिमी कंकई की धारा को मालटोली में ही लाँघकर बहादुरगंज वाले मार्ग से मिल जाता है। इसके बाद यह यहाँ से उत्तर की ओर नेपाल के 'झापा' नगर को जाता है।

पश्चिमी कंकई के दाहिने तट पर दिघाल बैंक है, जहाँ से कंकई दक्षिण में एक दूसरे 'मालटोली' गाँव को आती है। इसके प्रवेश-स्थल के पास का मालटोली गाँव कंकई के दाहिने भाग में तथा दिघाल बैंक से दो मील उत्तर में है और यह मालटोली कंकई के बायें किनारे तथा दिघाल बैंक से दो मील दक्षिण में है। इसी दक्षिणी 'मालटोली' से यह धार पहले सीधे दक्षिण चलती थी और कंकई की पूर्वी धार से 'ब्रह्मोत्तरगछ' के पास मिलकर 'सैरी' धार के साथ बहती थी। उस समय न तो पश्चिमी कंकई की धारा बहादुरगंज के

पश्चिम से बहती थी और न पूर्वी कंकई 'पवाखाली' से होकर बहती थी। इसकी प्रवाह-प्रणाली निम्नांकित मानचित्र में द्रष्टव्य है।



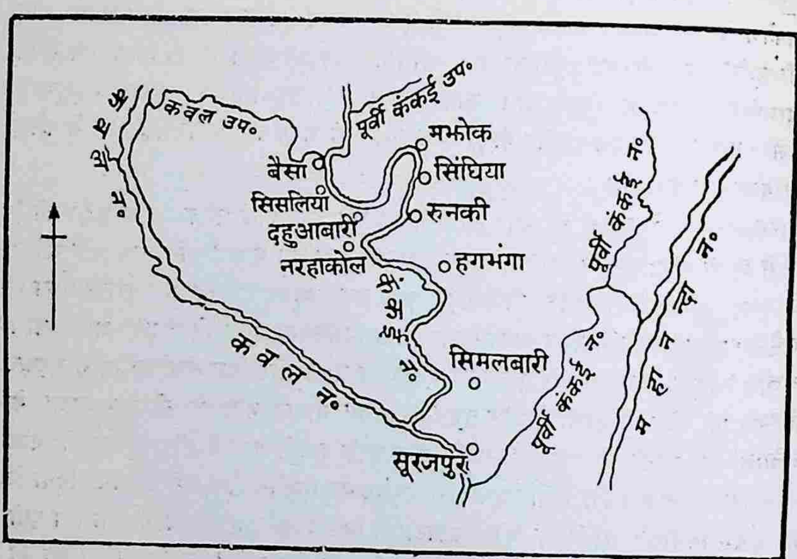
कुछ शती पहले पश्चिमी कंकई की धारा भी दिघाल बैंक से दो-भागों में बँटती थी, जिनमें एक नैर्ऋत्यकोण में चलकर पश्चिम स्थित आधुनिक मार्ग को थोड़ी दूर पर ही पकड़ लेती थी और दूसरी धारा दक्षिण चलकर दक्षिणी मालटोली होते पूर्वी कंकई धार से ब्रह्मोत्तरगछ में मिल जाती थी। किंतु, आज एक मात्र दिघाल बैंक से दक्षिण चलकर यह मालटोली आती है और वहाँ से पश्चिम मुड़कर फिर नैर्ऋत्यकोण में बहती 'बोयलदहा' के उत्तर में पहुँचती है। यहाँ यह बोयलदहा और शतकुआँ गाँवों के मध्यभाग से बहती अपने दायें तट पर स्थित 'देवगिरजा' आती है। यहाँ से फिर नैर्ऋत्यकोण में बहकर 'लक्ष्मीपुर' के पूर्व में पहुँचती है। इसी लक्ष्मीपुर के पास उत्तर से दक्षिण की ओर बहती तथा 'सिंघीमारी' गाँव के पास से गुजरती **'खर्रा'** नामक निर्झरिणी इस कंकई धार से संगम करती है; किंतु वहीं पर तुरत ही कंकई उस खर्रा को अपनी दाईं कोख की ओर से बाहर निकाल देती है। यह धार आगे जाकर 'बलुआडाँगी' के पास 'कवल' नदी में गिर जाती है। 'कवल' के विवरण में इसकी चर्चा की गई है। खर्रा की धार को निकालकर पश्चिमी कंकई लक्ष्मीपुर के पास से थोड़ा अग्निकोण में झुकती हुई दक्षिण दिशा में चलती है और 'मुस्तफागंज' पहुँचती है। मुस्तफागंज उस मार्ग के पश्चिम किनारे बसा है,

जो बहादुरगंज से दिघाल बैंक को जाता है। यह मुस्तफागंज बहादुरगंज से सात मील उत्तर और दिघाल बैंक से नौ मील दक्षिण में प्रस्तुत कंकई नदी के बायें किनारे है। यहाँ से कंकई नदी उक्त मार्ग के समानान्तर दक्षिण की ओर चलती है तथा 'भाटाबारी' एवं 'बिरना' गाँवों के मध्य से बहती 'फुलवारी घाट' आती है। फुलवारी बहादुरगंज से तीन मील उत्तर थोड़ा पश्चिमोत्तरकोण में झुककर, बसा हुआ है। यहाँ से कंकई थोड़ा-सा नैऋर्त्यकोण में झुककर दक्षिण की ओर बहती है और फिर 'बहादुरगंज' के पश्चिम भाग से ही बहती हुई 'वीरपुर' नामक एक प्राचीन गाँव को आती है, जो बहादुरगंज से दो मील दूर नैऋर्त्यकोण में स्थित है। जोकीहाट से पूर्वोत्तरकोण में चलकर बहादुरगंज आनेवाली सड़क का पुल इसी वीरपुर में कंकई के ऊपर बना है, जिसके नीचे से कंकई दक्षिण दिशा में बहती है।

वीरपुर से दक्षिण की ओर चार मील बहती हुई कंकई 'सोनथ' गाँव को आती है और वहाँ से दो मील दक्षिण चलकर 'भागपुनास' पहुँचती है। पहले 'भागपुनास' के दक्षिण जाकर तथा दक्षिण की ओर ही थोड़ी दूर तक बहकर अपनी उस पुरानी धारा से मिलती थी, जो बहादुरगंज के पूरब से बहकर तथा 'कारिजन' गाँव होते हुए आती थी। किंतु, अब यह 'भागपुनाश' से एक मील दक्षिण से आती और फिर नैऋर्त्यकोण में मुड़कर पुन: दक्षिण की ओर ही बहती है और तब 'हरिभासा' नामक गाँव से होते 'बरबटा' के पूरब भाग में आती है। यहाँ 'बरबटा' गाँव इसके दाहिने भाग में और 'चूनामारी' गाँव बायें भाग में स्थित हैं। इन दोनों के बीच से बहकर यह नैऋर्त्यकोण एवं पश्चिम दिशा में मुड़कर 'मोसानगाँव' आती है, जो 'बरबटा' से सिर्फ आध मील दक्षिण में बसा है। इसी 'मोसान गाँव' के दक्षिण में यह बहादुरगंज थाने की तथा 'किसनगंज' अनुमंडल की सीमा को लांघकर पूर्णिया सदर अनुमंडल के 'अमौर' थाने में प्रवेश कर जाती है। तदनंतर मुश्किल से यह दो मील स्वतंत्र रूप से बह पाती है कि 'दोमोहानी' नामक गाँव के पास पूर्वी कंकई की एक उपधारा से मिल जाती है और वहाँ से दक्षिण और पश्चिम की ओर बहकर 'बैसा' के पास 'कवल' नदी की उस उपधारा को भी ग्रहण करती है, जो सिसवा तथा 'असियानी' गाँवों के पास से पूरब की ओर चलकर आती है। कवल की इस उपधारा का विवरण हम पहले दे चुके हैं।

यह पश्चिमी कंकई 'बैसा' गाँव तक पूर्वी कंकई की एक उपधारा को, जिसमें बहादुरगंज से बहकर आनेवाली कंकई की छाड़न नदी 'लोन सबरी' भी मिली होती है, ग्रहण कर तथा 'बैसा' के पास 'कवल' की धारा को भी साथ लेकर परिपुष्ट बन जाती है और तब दक्षिण में प्रयाण करती है। इस क्रम में यह अपने दाहिने भाग में सिसलिया गाँव को निहारती 'दहुआबारी' नामक गाँव तक पहुँचती है। यहाँ इसकी धारा की मोड़ अतिशय विचित्र है। यह 'सिसलिया' के सामने से ही अग्निकोण में मुड़ने लगती है और दहुआबारी के पूरब में आकर एकाएक उत्तर दिशा की ओर घूम जाती है और तब 'मझोक' गाँव जा पहुँचती है। यहाँ से फिर यह एकाएक दक्षिण दिशा में जा गिरती है और

सिंधिया गाँव को बायें किनारे छोड़ती 'रुनकी' के पश्चिम भाग में आती है। फिर यह नैर्ऋत्यकोण में मुड़ती है और एक बड़ा-सा अंकुश बनाती है। इस अंकुश के मध्य में 'नरहाकोल' गाँव बसा है। इसके बाद यह पूरब की ओर निकलती है। इसकी ऐसी स्थिति को आप इस पृष्ठ के रेखाचित्र में देख सकते हैं।



नरहाकोल के अंकुश से कंकई पूर्व की ओर निकलती है और अपने बायें भाग में 'हगभंगा' गाँव को छोड़ती दक्षिण की ओर, और फिर नैर्ऋत्यकोण में तथा पुनः अग्निकोण में चलती सिमलवारी के पश्चिम पहुँचती है। यहाँ से यह थोड़ा नैर्ऋत्यकोण में मुड़कर 'कवल' नदी को आत्मसात् करती है और फिर अग्निकोण में झुककर 'सूरजपुर' गाँव को चली आती है। सूरजपुर में यह दक्षिण की ओर मुड़ती है और तुरत पूर्वी कंकई की धारा में समा जाती है।

कंकई का पूर्वी प्रवाह :

यह पहले ही कहा गया है कि नेपाल के तराई भाग में ही कंकई दो धाराओं में बँटकर भारत-भूमि के पूर्णिया जिले में प्रवेश करती है। इनमें पश्चिमी धारा का वर्णन अभी किया गया। पूर्ववर्णित पश्चिमी धारा जहाँ प्रवेश करती है, उससे छह मील दूर अग्निकोण में तथा 'गरभाडेंगा' गाँव के पूर्व में बहती एवं दिघाल बैंक और ठाकुरगंज—इन दो थानों की सीमा-रेखा बनती हुई पूर्वी 'कंकई' नदी पूर्णिया जिले में घुसती है। पूर्वी कंकई का यह प्रवेश स्थल 'जिया पोखर' गाँव से डेढ़ मील उत्तर तथा दिघाल बैंक से पाँच मील दूर किंचित् अग्निकोण की ओर पूर्व में, फिर बहादुरगंज से १५ मील दूर

पूर्वोत्तर कोण की ओर अभिमुख उत्तर में और ठाकुरगंज से ११ मील दूर थोड़ा नैर्ऋत्यकोण में झुका हुआ पश्चिम में स्थित है। पूर्वी कंकई अपने प्रवेश स्थान से सिर्फ डेढ़ मील तक दिघाल बैंक और ठाकुरगंज थानों की सीमा बनती 'जियापोखर' आती है और यहाँ से पश्चिमोत्तर कोण में मुड़कर दिघाल बैंक थाने में घुस जाती है। यहाँ यह 'दीघीबाड़ी' नामक गाँव को छूना चाहती है; पर दक्षिण दिशा में ढलकर अग्निकोणवाहिनी बन जाती है। अग्निकोणवाहिनी बनने पर यह फिर ठाकुरगंज और दिघाल बैंक थानों का सीमांकन करने लगती है और तब 'बंदरझूला' गाँव को पहुँचती है। बंदरझूला में यात्रियों के लिए एक 'विश्रामागार' भी बना है। यह 'जियापोखर' से सीधे डेढ़ मील दक्षिण में पड़ता है। यहाँ से कंकई टेढ़ी-मेढ़ी चलती दक्षिण में बहने लगती है और तीन मील चलकर 'पावाखाली' स्थान को आती है। बहादुरगंज से पूर्वोत्तर कोण में चलकर ठाकुरगंज पहुँचनेवाला मार्ग 'पावाखाली' में ही कंकई की धारा को पार करता है। पावाखाली से यह जैसे ही नैर्ऋत्य कोण में प्रयाण करती है, वैसे ही एक दूसरा मार्ग भी इसे लाँघता है, जो मार्ग किशनगंज से सीधे उत्तर में चलकर मेहरगंज होते दिघाल बैंक को जाता है। यह घाट 'कुहिया' गाँव के पास है। इस घाट से भी कंकई नैर्ऋत्यकोण में ही बढ़ती है और आगे अपने दायें भाग में 'दुलाली' को तथा इससे थोड़ी दूर दक्षिण में अपने बायें भाग में 'कठलबारी' को निहारती है। इसी 'कठलबारी' के पास, उसके पश्चिम में, यह पश्चिमी कंकई की पुरानी धार और उससे मिलनेवाली अपनी छाड़न नदी 'सैरी' को ग्रहण करती है।

सैरी कोई भिन्न नदी नहीं है। पूर्वी कंकई कभी इसी सैरी की धारा के माध्यम से अपने मुख्य प्रवाह को बहाती थी। यह पूर्वी कंकई से नेपाल की तराई में ही विच्छिन्न होकर दिघाल बैंक थाने के 'डोरिया' गाँव के पास पूर्णिया जिले में आती है और आध मील चलकर दो भागों में विभक्त हो जाती है। पूर्वी धारा दक्षिण चलकर पूर्वोक्त 'गरमाडेंगा' गाँव आती है और वहाँ से पूर्व की ओर मुड़कर तुरत 'पूर्वी कंकई' की मुख्य धारा में समा जाती है। किंतु, पश्चिम से दाहिनी धार कामत, सतमेरी तथा हुवलीडेंगा गाँवों से होती जब चार मील और दक्षिण आती है, तब 'ब्रह्मोत्तरगच्छ' गाँव के पास पश्चिमी कंकई की एक छोड़ी हुई धारा को ग्रहण करती है, जिससे पहले कभी 'पश्चिमी कंकई' बहती थी। 'ब्रह्मोत्तरगच्छ' से ऊपर सैरी नदी लगभग चार मील तक 'दिघाल बैंक' और 'बहादुरगंज' थानों की सीमारेखा भी बनती है। 'ब्रह्मोत्तरगच्छ' के बाद यह दक्षिण दिशा में बहती हुई एक बड़े मैदान से गुजरती है और अपने बायें किनारे इकरा मिलिक, इकरा, सिंघिया, दुलाली आदि गाँवों को छोड़ती 'कोराट बनगाँव' पहुँचती है। कोराट बनगाँव इसके दाहिने तट पर बसा है और यहीं से यह अग्निकोण में मुड़कर 'पूर्वी कंकई' की धारा में समाहित हो जाती है। यह पहले ही कहा गया है कि 'सैरी' का यह संगम 'कठलबारी' गाँव के पश्चिम में है। यह संगम 'पावाखाली' से पाँच मील दूर नैर्ऋत्यकोण में और बहादुरगंज से चार मील दूर पूर्वोत्तर कोण में पड़ता है।

अपनी सैरी धारा को आत्मसात् करके पूर्वी कंकई थोड़ा-सा अग्निकोण में झुक करके

दक्षिण दिशा में चलती है और मोहिउद्दीनपुर गाँव से सटती हुई मेहरगंज के पश्चिम में आती है। यहाँ इसके दाहिने तट पर 'अलतावारी' नामक गाँव स्थित है। यहाँ कंकई अपने को दो धाराओं में बाँट देती है और दोनों भुजाओं को फैलाकर लगभग आठ मील की भूमि की एक गोद बनाती है। यह क्रोड-भूमि ईषत् नैर्ऋत्यकोण में झुकती हुई दक्षिण की ओर फैली है। कंकई की इस गोद में तेघरिया, कन्हैयावारी, रोहिया, काशीवारी तथा बोयलदह गाँव बसे हुए हैं। इनमें काशीवारी बहुत ही प्राचीन ग्राम लगता है; क्योंकि यहाँ कई भग्नावशेष टीले हैं। एक डाकघर भी है। कंकई का यह क्षेत्र बहादुरगंज से छह मील दूर अग्निकोण में तथा किशनगंज से आठ मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में पड़ता है। इसी जगह 'अनारकली' गाँव है, जहाँ कंकई की दोनों भुजाएँ पुनः मिल जाती हैं। इसी के पूरब दो मील दूर 'नजरपुर' गाँव है। कुछ शती पूर्व कंकई की पूर्वी भुजा 'अनारकली' में पहुँचकर मिलन नहीं करती थी; बल्कि वह अग्निकोण में मुड़कर नजरपुर तथा कमलपुर होते भवानीगंज गाँव के पूर्व भाग में तथा 'दोपोखरिया' गाँव के अग्निकोण में 'महानंदा' के दाहिने भाग में गिर जाती थी। आज भी इस धारा-मिलन का चिह्न दृष्टिगोचर होता है।

कंकई की दोनों भुजाएँ 'अनारकली' के पास मिलकर मुश्किल से एक मील बहती हैं कि फिर कंकई दो भागों में विभक्त हो जाती है। पश्चिमी धारा नैर्ऋत्यकोण में थोड़ी दूर बहकर पश्चिमी कंकई की धार से मिलती है और पूर्वी धारा दक्षिण की ओर बहती हुई बहुत दूर सूरजपुर के पास जाकर पश्चिमी कंकई से संगम करती है। यहाँ उपर्युक्त पश्चिमी धारा जब नैर्ऋत्यकोण में चलती है, तब 'भेभरा' गाँव को अपने दाहिने भाग में छोड़ती 'चूनामारी' गाँव के अग्निकोण में आती है, जहाँ यह अपनी एक प्राचीन छाड़न को ग्रहण करती है। इस छाड़न नदी का नाम '**लोनसवरी**' है और यह बहादुरगंज से चार मील उत्तर में स्थित 'देवटाड़-बिरनिया' गाँव के चौंर से निकलकर दक्षिण की ओर चलती है और बहादुरगंज के सटे पूर्व भाग में आती है। यहाँ से यह बहुत थोड़ा नैर्ऋत्यकोण में झुककर दक्षिण में प्रयाण करती है और सोनदिग्घी, चोरकट्टा, कुढ़ैला, बरीजन, दुर्गापुर, वरीजन-पोठीमारी, जागीर, सराय, झाँटीवारी, रसूलगंज आदि गाँवों के पास से गुजरती 'चूनामारी' के सटे अग्निकोण में पूर्वी कंकई की पश्चिमी धार में मिल जाती है। इस छाड़न नदी 'लोनसवरी' की लंबाई सिर्फ १६ मील है। यह बिलकुल ही बरसाती नदी है।

कंकई की पश्चिमी धारा चूनामारी में उपर्युक्त लोनसवरी को समेट कर लगभग दो मील दक्षिण की ओर बहती हुई किशनगंज-अनुमंडल की दक्षिणी सीमा को छूती है और वहाँ से एक मील तक नैर्ऋत्यकोण में बहती हुई किशनगंज तथा पूर्णिया सदर अनुमंडल की सीमा-रेखा बनती है। इस सीमा-संधि पर नदी की धारा के दाहिने किनारे किशनगंज-अनुमंडल के बहादुरगंज थाने का गाँव 'भगल' है और यहीं इसके बायें कछार पर पूर्णिया सदर अनुमंडल के 'अमौर' थाने का 'सोनपुर' गाँव बसा है। यहीं 'भगल' गाँव से एक मील दक्षिण में पूर्वी कंकई की यह पश्चिमी धारा सदर अनुमंडल के 'अमौर' थाने की सीमा में घुसती है और एक ही मील दक्षिण में बहकर 'महशैल' गाँव को आती है। महशैल इसके

बायें किनारे दक्षिण में बसा है; क्योंकि यहाँ यह पश्चिम में मुड़ जाती है। महशौल से यह सिर्फ आध मील पश्चिम दिशा में बहकर पश्चिमी कंकई की धारा में प्रवेश कर जाती है। इस संगम के सटे पश्चिम में 'दोमुहानी' गाँव बसा है, जो दो नदियों के मुहाने पर बसने के कारण इस नाम से अभिहित होता है। इसके बाद इसकी कहानी पश्चिमी कंकई की कहानी बन जाती है, जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है।

किंतु, 'भेभरा' गाँव के पूरब और 'फुलवारी' गाँव के उत्तर इस पूर्वी कंकई की जो पूर्वी धारा दक्षिण की ओर चलती है, वह फुलवारी होते 'हिम्मतनगर' आती है और तब 'सुंदर पूँछी' गाँव के उत्तर में पहुँचती है। यहाँ यह पश्चिमोत्तर कोण में मुड़कर एक मुंदरी-सी आकृति बनाती है और तब 'नरंगा' गाँव को पहुँचती है। नरंगा से यह फिर दक्षिण में मुड़ती है और डेढ़ मील चलकर 'शाहपुर-इस्तमरार' गाँव के अग्निकोण में किशनगंज-अनुमंडल को लाँघकर पूर्णिया सदर अनुमंडल की सीमा में घुस आती है। सदर अनुमंडल में जहाँ घुसती है, वहाँ अमौर थाने का कौझिया गाँव बसा है। कौझिया के दक्षिण इसके बायें तट पर 'औलाई' है, जहाँ से एक मील दूर दक्षिण में जाकर यह फिर दो धार बनाती है। पूर्व की धारा बहुत छोटी है, जो थोड़ा अग्निकोण में झुकती पूर्व की ओर बहती है और डेढ़ मील तक स्वतंत्र रूप से बहकर 'जैरामपुर' गाँव के पूर्वोत्तर कोण में महानंदा नदी में समा जाती है। किंतु, इसकी मुख्य और बड़ी धारा दक्षिण की ओर निकलकर नैर्ऋत्यकोण में और तब पश्चिम दिशा में मुड़कर एक बड़े चौरनुमा मैदान से होती 'रुनकी' तथा 'फुलवारी' गाँव के मध्य में आती है। रुनकी गाँव पश्चिमी कंकई के पूर्व में तथा प्रस्तुत पूर्वी कंकई के पश्चिम में बसा है। इस क्षेत्र में पूर्वी कंकई पग-पग पर अपनी चाल को वक्र बनाती हुई पूर्व दिशा में आती है और फिर उसी कुटिल गति से दक्षिण में चलती 'हगभंगा' गाँव के पूर्व में पहुँचती है। हगभंगा भी पश्चिमी कंकई के पूर्वी किनारे और इस पूर्वी कंकई के पश्चिमी कछार पर बसा हुआ है। हगभंगा के पूरब से ही कंकई की यह धार दक्षिण की ओर निकलती है और तब 'सिमलबारी' के पूर्व में आती है। सिमलबारी भी दोनों कंकई नदियों की सँड़सी में बसा हुआ है। इसके पश्चात् पूर्वी कंकई पूर्ववर्णित 'सूरजपुर' के पूरब में पहुँचती है और यहीं पश्चिम दिशा में मुड़कर पश्चिमी कंकई की धारा को ग्रहण करती है। सूरजपुर इन दोनों नदियों के संगम पर उत्तर की ओर बसा है, जिसके पश्चिम में पश्चिमी कंकई की धारा है और पूरब में पूर्वी कंकई की। इस संगम से 'अमौर' दो मील पश्चिम में है, जहाँ पुलिस-स्टेशन भी है।

उक्त संगम तक 'कवल' नदी की दोनों धाराओं को लेकर पश्चिमी कंकई पूर्वी कंकई की धारा से मिल जाती है। अब पूर्ण रूप से कंकई प्रौढ बनकर उक्त संगम से पश्चिम में मुड़ती है अमौर के पास यह **कतुआ धार** की उस पूर्वी भुजा से सटती-सी बहती है, जो कतुआ या बकरा नदी की एक शाखा है और जिसमें 'बैसा' गाँव के पास से निकलनेवाली पनार नदी की भी एक शाखा मिली होती है। इसका नाम बुकानन ने 'फियाला' लिखा है। किंतु, फियाला को यहाँ कंकई ग्रहण नहीं करती, बल्कि दोनों नदियाँ तुरत ही अपना-अपना

मुंह फेर लेती है। अमौर के पूर्व से कंकई अग्निकोण में दौड़ती है और 'भाग ताहिर' गाँव को अपने दाहिने भाग में निहारती 'बैसी' और 'अमौर' थानों की सीमा पर पहुँचती है। यहीं अब यह नैर्ऋत्यकोण में मुड़कर उपर्युक्त 'फियाला' की धार को भी समेटती है। कंकई और फियाला की धाराओं की गाँस में 'भाग ताहिर' और 'खेमिया' गाँव स्थित हैं। दोनों के संगम के अग्निकोण में बैसी थाने का 'तारावाड़ी' गाँव है। यहाँ 'फियाला' को आत्मसात् करके कंकई 'बैसी' थाने में प्रवेश करती है और फिर अग्निकोण में बहकर 'सिमलबारी' गाँव को आती है। सिमलबारी में इसकी एक पतली धारा फूटती है, जो नैर्ऋत्यकोण में बहकर 'देवनी' से मिलती है और एक मील पूर्व में बहकर 'महानंदा' से मिल जाती है। यहाँ कंकई के दाहिने भाग में दक्षिण की ओर 'गुरिहार' गाँव बसा है। यह संगम 'बैसी' से दो मील दूर पूर्वोत्तर कोण में है।

महानंदा

महानंदा सिक्किम-राज्य के दक्षिणी भाग से प्रवाहित होकर पश्चिम बंगाल के 'करसियांग' नगर के पड़ोस से दक्षिण की ओर आती है। पहले यह बंगाल के फाँसीदेवा और राजगंज थानों की सीमा बनती हुई पूर्णिया जिले के बिलकुल उत्तर-पूर्व कोण में 'बांसगांव किसमत' स्थान के पूर्व में दक्षिणाभिमुखी होकर प्रवेश करती थी और पूर्णिया तथा जलपाईगुड़ी जिलों की सीमा बनकर बहती थी। इस प्रकार, छह मील बहने के बाद पश्चिमाभिमुखी बनकर डाँगपारा गाँव के पूर्वोत्तरकोण में आकर पूर्णिया जिले में प्रवेश कर जाती थी और बुधरूगांव नामक स्थान से होते वक्रगति से नैऋर्त्यकोण में चलकर ठाकुरगंज थाने में आ जाती थी। अब भी इसका प्रवाह इसी स्थिति में है; किंतु अब चूँकि ठाकुरगंज थाने का पूर्वोत्तर भाग बंगाल में चला गया है; इसलिए अब चितलघट्टा तक का, १२ मील का, महानंदा-प्रवाह पश्चिम बंगाल की सीमा में चला गया है। अब महानंदा का प्रवाह ठाकुरगंज से छह मील पूरब में 'दुबा नोची' गाँव के पूर्वोत्तर कोण में पूर्णिया जिले में प्रवेश करता और नैऋर्त्यकोण की ओर बहता है।

नंदा-महानंदा का प्राचीन साहित्य और पहचान :

नंदा और महानंदा का उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है; पर हमारे अति प्राचीन ग्रंथ 'महाभारत' में नंदा और अपरनंदा की चर्चा है। महानंदा का ही नाम 'अपरनंदा' है। महाभारत के आदि पर्व के २१४वें अध्याय के सातवें श्लोक में—**नन्दामपरनन्दाञ्च कौशिकीञ्च यशस्विनीम्** पाठ है, जिससे स्पष्ट है कि कौशिकी के पड़ोस में ये नदियाँ थीं और आज भी वर्त्तमान हैं। फिर, जब पांडवों ने तीर्थ-यात्रा की, तब वे 'नंदा' और 'अपरनंदा' नदियों के तटवर्त्ती तीर्थ में भी गये थे :

ततः प्रयातः कौन्तेयः क्रमेण भरतर्षभ !
नन्दामपरनन्दाञ्च नद्यौ पापभयापहे ॥[१]

महाभारत के इस स्थल पर, इन नदियों के क्षेत्र में, अनामय 'हेमकूट' पर्वत की श्रेणी में 'ऋषभकूट' पर्वत का उल्लेख मिलता है, जहाँ मेघों के झकोरों तथा हिमपात का वर्णन किया गया है। इसी के साथ यह भी कहा गया है कि ऋषभकूट पर जो स्वाध्याय-घोष होता है, वह केवल सुना जा सकता है, देखा नहीं जा सकता। वहाँ प्रतिदिन दोनों संध्याओं में अग्नि के दर्शन होते हैं और मक्खियों-मच्छड़ों का प्राचुर्य है। ऐसा सुना जाता है कि वहाँ नंदा के तट पर एक बार बहुत-से देवता एकत्र हुए थे, जिनके दर्शनों के लिए भीड़ लग गई थी :

---

१. महाभारत, वनपर्व, अध्या० ११०/१।

नन्दां त्वभिगता देवाः पुरा राजन्निति श्रुतिः।
अन्वपद्यन्त सहसा पुरुषाः देवदर्शनाः ।।[१]

इसी के साथ यह भी कहा गया है कि जब पांडव अपनी तीर्थयात्रा के क्रम में नंदा के तट गये थे, तब उनलोगों ने उन देवताओं द्वारा प्रतिष्ठित किये गये यज्ञयूपों के चिह्न देखे थे, जिन्हें लोमश ऋषि ने बतलाया था :

इह देवा स्तदा सर्वे यज्ञानाजह्रुरुत्तमान् ।
तेषामेतानि लिङ्गानि दृश्यन्तेऽद्यापि भारत ।।[२]

इसके पश्चात् लोमशऋषि ने कहा : ऐसे विशिष्ट धार्मिक नदी में स्नान करने से पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, अतः हे युधिष्ठिर, भाइयों के साथ नंदा में अभिषेक करके कौशिकी के लिए प्रयाण करोगे :

इहाप्लुतानां कौन्तेय सद्यः पाप्माभिहन्यते ।
कुरु श्रेष्ठाभिषेकं वै तस्मात् कुरु सहानुजः ।।
ततो नन्दाप्लुतांगस्त्वं कौशिकीमभियास्यसि ।[३]

किंतु, महाभारत में ही अनुशासनपर्व के २५वें अध्याय में 'नंदा' और 'अपरनंदा' नाम से इन नदियों का अभिधान नहीं है; बल्कि वहाँ स्पष्ट रूप से 'नंदा' और 'महानंदा' नाम ही दिया गया है :

पुनरावर्त्त नन्दाञ्च महानन्दाञ्च सेव्य वै ।
नन्दने सेव्यते दान्तस्त्वप्सरोभिरहिंसकः ।।[४]

इससे ज्ञात होता है कि बुधरु गाँव के पास महानंदा से मिलनेवाली 'बलासन' नदी महाभारत की नंदा नदी है और आजकल की महानंदा 'महाभारत' की 'अपरनंदा'। वुधरु गाँव सन् १९५६ ई० के पहले पूर्णिया जिले के ठाकुरगंज थाने में था; किंतु आज वह पश्चिम बंगाल में चला गया है। 'बलासन' एक बड़ी नदी है, जिसकी चर्चा आगे की जायगी।

महाभारत के अतिरिक्त 'नंदा' नदी का उल्लेख 'ब्रह्मांड पुराण' में प्राप्त होता है। वहाँ कहा गया है कि देश के पूर्वोत्तर कोण में बहनेवाली नंदा नदी में श्राद्धवेदी है, जो सिद्ध क्षेत्र है। यह स्थान देवताओं-द्वारा सेवित है, जिसे प्राप्त करके मनुष्य पुनरागत नहीं होता। नंदा-वेदी को विरज-क्षेत्र तथा महालय-क्षेत्र की वेदी की तरह पुण्यवती माना गया है :

अनिवर्त्तनं तु नन्दायां वेद्याः प्रागुत्तरा दिशि ।
सिद्धि-क्षेत्रं सुरैर्जुष्टं यत्प्राप्य न निवर्त्तते ।।
विरजे त्वक्षयं श्राद्धं पूर्वमेव महालये ।
नन्दायां विरजे चैव तथैव च महालये ।।[५]

---

१. महाभारत, वनपर्व, अध्या० ११०/१२।
२. महाभारत, वनपर्व, अध्या० ११०/१६।
३. महाभारत, वनपर्व, अध्या० ११०/१९-२०।
४. महाभारत, अनुशा०—२५/४५।
५. ब्रह्मांड, उपोद्घातपाद-३, अध्या० ११ श्लोक ८२ और ८४।

फिर, 'लिंगपुराण' में भी नंदा नदी की चर्चा है, जिससे पूर्णिया जिले के एक भाग पर प्रकाश पड़ता है। श्लोक इस प्रकार हैं :

द्विजाः कनकनन्दायास्तीरे वै प्राचि-दक्षिणे।
वनं द्विजसहस्राढ्यं मृगपक्षिसमाकुलम्॥
तत्रापि सगणः साम्बः क्रीडतेन्द्रियसमे गृहे।
नन्दायाः पश्चिमे तीरे किञ्चिद्वै दक्षिणाश्रिते॥
पुरं रुद्रपुरी नाम नाना प्रासाद-सङ्कुलम्।
तत्रापि शतधा कृत्वा ह्यात्मानं चाम्बया सह॥
क्रीडते सगणः साम्बस्तच्छिवालय-मुच्यते।[1]

इस प्रसंग के २७वें श्लोक से पता चलता है कि कंकई नदी को लिंगपुराण 'कंनकनंदा' कहता है, जिसके दक्षिण-पूर्व कोण में जंगली जानवरों और विविध पक्षियों से व्याप्त एक वन था और वहाँ अपने गणों के साथ साम्व सदाशिव निवास करते थे। अर्थात्, उस स्थान पर साम्ब-शिव की मूर्ति विद्यमान थी और उनके गणों की भी मूर्त्तियाँ थीं। मेरी समझ से यह स्थान '**बरिजन दुर्गापुर**' है, जो बहादुरगंज से ५ मील दक्षिण कंकई की प्राचीन धारा और अब उसकी छाड़न नदी '**लोन सबरी**' के किनारे है। यहाँ अनेक प्राचीन महलों तथा मंदिरों के अवशेष थे, जिनकी चर्चा डॉ० बुकानन ने की थी। वरिजन एक स्थानीय राजा का नाम था, जो राजा 'वेन' का वंशज था। वेन का गढ़ 'वेनुगढ़' में था, जो **कवल** और **नोनसारी** नदियों के मध्य टेढ़गछ थाने में बसा है और बहादुरगंज से सात मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में स्थित है। इसके अतिरिक्त शेष तीन श्लोकों में नंदा के पश्चिम तट पर '**रुद्रपुरी**' नगर की चर्चा है और वहाँ पार्वती के साथ साम्ब-शिव के वास करने की चर्चा की गई है। यह स्थान आजकल का ठाकुरगंज होना चाहिए। क्योंकि रुद्रपुरी को लिंगपुराण नन्दा के पश्चिम भाग में कुछ दक्षिण हटकर बतलाता है। ठाकुरगंज का पुराना नाम 'कनकपुर' भी है। कनकपुर का उल्लेख पूर्णिया जिले के सर्वेवाले नक्शे में भी किया गया है। ठाकुरगंज से होकर दक्षिण की ओर बहनेवाली नदी का नाम 'बूढ़ी गंगा' है और नंदा के पश्चिमी तट की ओर कुछ दक्षिण हटकर ही है। ठाकुरगंज के संबंध में पुरानी किंवदन्ती आज भी है कि यहाँ महाभारत के विख्यात पुरुष 'विराट्' राजा की राजधानी थी और वनवास के समय यहाँ पांडव छिपे हुए थे। किंतु, विद्वानों का कहना है कि विराट् तो मत्स्य देश का था। ठाकुरगंज में उसकी ससुराल थी और उसका साला 'कीचक' था। उसी 'कीचक' की राजधानी 'ठाकुरगंज' में थी। ठाकुरगंज में कभी जमीन के नीचे से एक शिला खंड भी मिला था, जिसे लोग राजमहल का अवशेष बतलाते थे। प्राचीन मकानों के बहुत-से चिह्न भी यहाँ मिले थे। इससे स्पष्ट है कि लिंगपुराण का **नानाप्रासादसंकुल रुद्रपुरी** नामक नगर ठाकुरगंज है, जिसका नाम 'कनकपुर' या 'रुद्रपुर' था। महाभारत का वह उल्लेख पहले ही उद्धृत कर दिया गया है, जिससे पता चलता है कि पांडव तीर्थयात्रा के क्रम में नंदा के तट पर आये थे, अतः ठाकुरगंज में पांडवों का आना निश्चित है।

---

१. लिंगपुराण, पूर्वार्द्ध, अध्या० ५१/२७ से ३० तक।

'ब्रह्माण्डपुराण' केवल नंदा नदी का और लिंगपुराण 'नंदा' तथा 'कनक नंदा' का नाम लेता है; किंतु 'महाभारत' 'नंदा' और 'अपर नंदा' का। अनुशासन-पर्व में तो 'महानंदा' का नाम भी आ गया है। अतः यह निश्चत-सा है कि नंदा और अपर नंदा बिलकुल अगल-बगल की नदियाँ हैं और दोनों के मिलन के बाद उसी का नाम 'महानंदा' हो जाता है। किंतु आज 'अपरनंदा' का नाम ही 'महानंदा' हो गया है और यही 'नंदा' आज 'बलासन' कहलाती है। **बलासन** नदी 'अपरनंदा' में बुधरू गाँव के पास संगम करती है, जो पहले पूर्णिया जिले के ठाकुरगंज थाने में उससे नौ मील दूर पूर्वोत्तर कोण में स्थित है; किंतु आज यह स्थान 'पश्चिम बंगाल' की सीमा में चला गया है। 'बलासन' नदी अपरनंदा के समानांतर सिक्किम के दक्षिणी पहाड़ से निकल कर दक्षिण की ओर चलती है और दार्जिलिंग जिले के 'फाँसीदेवा' इलाके से बहती हुई तथा गोरखों के 'हंक्षोंआर' किले के पास से गुजरती हुई अपने संगम तक आती है। दार्जिलिंग जिले में इसका नाम **'बालकोंआर'** है। बुकानन ने अपनी 'पूर्णिया-रिपोर्ट' के पृ० २९ में लिखा है कि 'बालकोंआर' का ऊपरी भाग महानंदा का ही हिस्सा है, जो महानंदा की दाहिनी भुजा है। अतः 'बालकोंआर' अथवा 'बलासन' ही 'नंदा' और बड़ी धार 'अपरनंदा' है और महाभारत तथा विभिन्न पुराण इन्हीं धाराओं की महिमा गाते हैं।

महानंदा का प्रवाह-पथ :

बलासन को 'बुधरूगाँव' के पास आत्मसात् करके अपरनंदा, 'महानंदा' बन जाती है और इस संगम से तीन मील नैर्ऋत्यकोण में बहकर पूर्णिया जिले के ठाकुरगंज थाने के 'दुबा नोची' गाँव के उत्तर भाग में प्रवेश करती है। अब इसका पूर्णिया जिले में प्रवेश स्थल ठाकुरगंज से छह मील दूर थोड़ा-सा पूर्वोत्तर कोण में झुका हुआ पूर्व दिशा में पड़ता है। पूर्णिया-प्रवेश के पश्चात् 'महानंदा' नैर्ऋत्यकोणवाहिनी ही रहकर 'दुबा नोची' और 'गेलावारी' होते 'पनीघट्टा' आती है। ये तीनों गाँव महानंदा के बायें किनारे हैं। पनीघट्टा के पास महानंदा थोड़ा-सा और पश्चिमी दिशा में मुँह कर लेती है और 'सखुआबाली' गाँव को अपने दाहिने भाग में निहारती उस स्थल पर आती है, जहाँ **चेंगा** नदी इससे संगम करती है। चेंगा-संगम के पास महानंदा एक छोटा-सा अँगुठीनुमा टापू बनाती है और यहीं अपने दाहिने भाग में 'चेंगा' को ग्रहण करती है। चेंगा का संगम ठाकुरगंज से दो मील दूर अग्नि कोण में होता है। यह चेंगा नदी दार्जिलिंग जिले के 'नक्सलवाड़ी'-क्षेत्र से बहकर पूर्णिया जिले में घुसती है और कुकुरबाघी नाम के दो प्राचीन गाँवों को अपने दाहिने भाग में छोड़ती पथरिया ग्राम के अग्निकोण में आती है, जहाँ से यह फिर दक्षिण की ओर चलती है। पथरिया गाँव ठाकुरगंज से चार मील उत्तर में है। यहाँ से थोड़ा दक्षिण की ओर बढ़कर यह बूढीगंगा (गांगी) की एक शाखा को अपने दाहिने भाग में ग्रहण करती और इससे एक मील और दक्षिण बढ़कर अपने बायें भाग में एक दूसरी छोटी सरिता को भी मिला लेती है। यह मिलन ठाकुरगंज से दो मील दूर पूर्वोत्तरकोण में होता है। इसके पश्चात् 'चेंगा' ठीक दो मील और दक्षिण जाकर 'महानंदा' में समा जाती है। चेंगा की धार पूर्णिया जिले के ठाकुरगंज थाने में

सिर्फ नौ मील तक बहती है। इस चेंगासंगम से सिर्फ एक मील नैऋत्य कोण में 'बूढ़ी गंगा' मिलती है, जिसके तट पर ठाकुरगंज बसा है। बूढ़ीगंगा दार्जिलिंग जिले के 'खारीबाड़ी'-क्षेत्र से सीधे दक्षिण की ओर तथा दार्जिलिंग को जानेवाली रेल-लाइन के गलगलिया स्टेशन के पूरब से उसके समानांतर पूर्वी किनारे से बहती हुई ठाकुरगंज आती है और ठाकुरगंज से दो मील दक्षिण में आकर महानंदा में गिरती है। पूर्णिया जिले में इसका प्रवाह कुल आठ मील तक बहता है।

ठाकुरगंज से दो मील दक्षिण 'बूढ़ीगंगा' को आत्मसात् करके महानंदा सीधे दक्षिणाभिमुखी हो जाती है और 'कालियागंज' पहुँचती है। यहीं किशनगंज से आसाम जानेवाली रेल-लाइन का 'तैयबपुर' स्टेशन है, जो महानंदा के बायें किनारे है। यहाँ महानंदा के दाहिने किनारे 'खरना' गाँव है। कालियागंज में रेल पार करने के लिए महानंदा में पुल बना है। इस भाग में महानंदा लगभग ४०० गज चौड़ी है और इसके दोनों कगार बहुत ऊँचे हैं, जिन्हें महानंदा ने कभी प्लावित नहीं किया है, ऐसा लोगों का कहना है। इस भाग में महानंदा भारी बोझ ढोनेवाली नावों के चलने योग्य पानी अपने गर्भ में रखती है। इस भाग में महानंदा का पानी बड़ा ही स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद रहता है। कालियागंज से महानंदा फिर नैऋत्यकोण में ही बहती हुई गुआलटोली तथा हसनपुर गाँवों को आती है। ये दोनों गाँव महानंदा के दाहिने किनारे उसके पश्चिमी तट पर बसे हैं। हसनपुर से यह थोड़ा दक्षिण की ओर झुकती हुई तथा गलगलिया नामक एक दूसरे गाँव के पास से होती 'चोरोगड्डी' गाँव के पश्चिम में पहुँचकर और फिर सीधे नैऋत्यकोण में चलकर 'आरी' गाँव को आती है। यह गाँव इसके दाहिने तट पर है। आरी के पहले ही इसके दाहिने भाग में 'दुधौती' तथा 'सतवौलिया' गाँव दिखाई पड़ते हैं। आरी से जब यह फिर नैऋत्यकोण में प्रयाण करती है, तब इसके दाहिने भाग में 'खरुआमाँ' एवं 'खरुदह' गाँव और बायें भाग में दरिगाँव, अर्राटारी तथा रायपुर गाँव बसे हुए हैं। इस रायपुर के ठीक सामने महानंदा के दाहिने किनारे 'खरुआमाँ' गाँव है, जो पूर्वोक्त 'खरुआमाँ' गाँव से डेढ़ मील दक्षिण में स्थित है। इसी खरुआमाँ से महानंदा जब एक मील दक्षिण में आती है, तब एकाएक पश्चिम दिशा में मुँह करके मेची नदी से संगम करती है। मेची-संगम तक महानंदा पूर्णिया जिले में अपना २१ मील का मार्ग तय कर लेती है।

मेची नेपाल देश की पूर्वी सीमा की आखिरी नदी है, जो नेपाल और पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले की सीमा-रेखा का काम करती है। मेची का उद्गम सिक्किम, नेपाल और दार्जिलिंग इन तीनों की सीमा पर स्थित चूरे पहाड़ में है। यह अपने उद्गम-स्थान से दक्षिण चलती है और इलाम तथा झापा जिले के पूर्वी किनारे से बहती असम जानेवाली रेल-लाइन के गलगलिया स्टेशन के सटे पश्चिम में आती है। यहाँ से सीधे दक्षिण दिशा में बहती तथा पूर्णिया और नेपाल की सीमा-रेखा बनती जब ठाकुरगंज रेलवे-स्टेशन के सामने और उससे सिर्फ दो मील दूर पश्चिम में आती है, तब धीरे-धीरे नैऋत्यकोण की ओर सरकने लगती है। यहाँ तक यह पूर्णिया की सीमा पर नौ मील का मार्ग तय कर लेती है। इस नौ

मील के क्षेत्र में मेची के बायें किनारे पूर्णिया जिले के ठाकुरगंज थाने के गलगलिया, भटगाँव, चुढ़, कुरली कोट आदि स्थान मिलते हैं।

ठाकुरगंज के पश्चिम से नैर्ऋत्यकोण में चलकर दो-ढाई मील और आगे तक मेची नदी नेपाल और पूर्णिया की सीमा बनती है और तब 'पथमारी' गाँव को आती है। बहदुरगंज से जो मार्ग पूर्वोत्तर कोण में चलता है और पावाखाली में कंकई को पार करके गलगलिया एवं भद्रपुर को जाता है, वह पथमारी में ही मेची पार करके उसके पूर्वी तट के सहारे गुजरता हुआ गलगलिया पहुँचता है। इसी पथमारी के पास मेची नदी बहुत थोड़ी दूर के लिए दक्षिण दिशा में मुँह करती है और सीमांकन का काम छोड़कर पूर्णिया जिले में घुस आती है। यहाँ से यह फिर नैर्ऋत्यकोण में बहने लगती है और इसी दिशा में १५ मील बहकर महानंदा से संगम करती है। इस १५ मील के प्रवाह-पथ में इसके दाहिने किनारे उत्तर से दक्षिण की ओर दुल्लीगांव, टटपोवा, गम्भीरगढ़, कुरमनी, रसिया, कठारो, सरायकुरी तथा भउलमारा नामक गाँव स्थित हैं। इसी प्रकार, इसके बायें किनारे उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः हजारीगच्छ, नोनियाटारी, कुंजीमारी, बरचौंदी एवं करुआमाँ गाँव स्थित हैं। करुआमाँ महानंदा के बायें तट पर है। इसके नैर्ऋत्यकोण में मेची और महानंदा का संगम है। उक्त टटपोवा के पास इसके दाहिने किनारे एक और नदी मेची में मिलती है जिसे बुकानन ने **देवयानी** नदी कहा है। देवयानी नदी मेची का ही एक प्रवाह है, जिसका बुकानन के समय मेची से भी बड़ा प्रवाह था और 'टटपोवा' से और दक्षिण जाकर देवयानी एवं मेची का संगम होता था। अपने समय में बुकानन ने देवयानी में जंगली लकड़ियों के बल्लों को बहाकर लाते हुए लोगों को देखा था।

मेहरगांव के पूरब में भउलमारा के दक्षिण में और मोतीहारा गाँव के पश्चिम में मेची नदी को आत्मसात् करके महानंदा बिलकुल दक्षिण दिशा की ओर बहने लगती है। यहाँ यह अपने दाहिने तट पर 'डम्ड' तथा 'पटकोल' गाँवों को देखती तीन मील दक्षिण में आती है और **दाउक** नदी की एक धारा महानंदा के वाम पर्श्व में प्रवेश करती है। बुकानन ने इसका नाम **डंक** (Dangk) लिखा है और उसके समय दाउक (डंक) यहीं महानंदा में मिलती थी; किंतु आज यहाँ दाउक की दाहिनी भुजा मिलती है। उसकी बाईं भुजा तो **रमजान** नदी के नाम से किशनगंज होकर बंगाल की उस सीमा में घुसती है, जो पहले पूर्णिया जिले की भूमि थी। यह बंगाल के आधुनिक क्षेत्र में **सुधानो** कहलाती है और पुनः पूर्णिया की सीमा में प्रवेश करके 'सुधानी' रेलवे स्टेशन के पास महानंदा में मिलती है, जो 'फराबाड़ी' गाँव के पास से अलग होती है। आज दाउक बड़ी नदी बन गई है, अतः इसकी चर्चा स्वतंत्र रूप से आगे की जायगी। यहाँ इतना ही ज्ञातव्य है कि महानंदा के बायें किनारे स्थित 'छोटा सलकी' गाँव के सटे पश्चिम दाउक की दाहिनी भुजा महानंदा से संगम करती है, जो 'बेलवा काशीपुर' के नैर्ऋत्यकोण में है। बेलवा काशीपुर और छोटा सलकी—ये दोनों गाँव दाउक की दाहिनी भुजा के दाहिने तट पर हैं और महानंदा के बायें किनारे में पड़ते हैं। संगम के सामने और महानंदा के दाहिने

किनारे 'चुरना' गांव है।

दाउक की इस धारा के साथ महानंदा फिर नैऋर्त्यकोण में झुककर बहने लगती है और इस क्रम में यह 'करेहुवाड़ी' तथा 'मुजवाड़ी' गांवों को आती है। मुजवाड़ी में ही महानंदा का वह घाट है, जहाँ किशनगंज से बहादुरगंज जानेवाला मार्ग महानंदा को पार करती है। इस घाट के दक्षिण में, नदी के दाहिने भाग में 'बस्ताकोल्हा' एवं 'सिंघिया चकंदरा' नामक गाँव हैं और इन्हीं गाँवों के सामने महानंदा के वायें तट की ओर 'सिमलबारी' है। यह सिमलबारी कंकई-संगम के पासवाले सिमलवारी गाँव से भिन्न है। बस्ताकोल्हा से दो मील दूर नैऋर्त्यकोण में महानंदा में एक छोटा-सा द्वीप है, जहाँ किसी काल में कंकई नदी की एक धारा मिलती थी, जो नजरपुर तथा कनकपुर होते अग्निकोण में आती थी। इसी छोटे द्वीप के दक्षिण महानंदा के दाहिने भाग में 'कुट्टी' नामक स्थान है, जहाँ किशनगंज तथा सदर अनुमंडलों की सीमा मिलती है। कुट्टी से दक्षिण की ओर महानंदा नदी पूर्णिया सदर तथा किशनगंज अनुमंडलों की सीमारेखा वनकर बहती है। इसी कुट्टी के सामने महानंदा के तट से चार मील पूर्व में किशनगंज नगर है, जो दाउक नदी के तट पर है। खगड़ा-राज की कचहरी पहले किशनगंज में थी और उसी से इस नगर की वृद्धि आरंभ हुई थी।

कुट्टी के अग्निकोण में और महानंदा के वायें किनारे 'मक्खीमारा' और उसके दक्षिण में पूर्वीतट पर ही 'फुलवारी' गाँव हैं। इसी मक्खीमारा से तीन मील पूर्व में 'खगड़ा' नामक स्थान है, जहाँ पहले एक बड़े जमींदार का महल था। इससे एक मील पूर्व में पूर्वोत्तर रेलवे का खगड़ा स्टेशन भी है। खगड़ा में पूर्णिया जिले का प्रसिद्ध मवेशियों का मेला लगता है, जिसमें गाय, बैल, भैंस और घोड़ों के साथ हाथी भी बिकते हैं। यह मेला सन् १८८३ ई० से आरंभ हुआ था। खगड़ा-राज का संस्थापक **सैयद खाँ दस्तूर** नामक नवाब था, जिसे अकबर के पिता हुमायूँ वादशाह ने इस क्षेत्र की जागीर दी थी। दस्तूर का नाती **सैयद** जलालुद्दीन खाँ था, जिसको जहाँगीर बादशाह ने राजा की पदवी दी थी और इसी जलालुद्दीन के नाम पर 'जलालगढ़' बसाया गया था। इस राजा के वंशज अभी तक खगड़ा में विद्यमान हैं।

पूर्वोक्त फुलवारी के दक्षिण, उत्तर से दक्षिण की ओर, महानंदा के पूर्वी किनारे बसन्तपुर, कटहलिया और बलिया ग्राम बसे हैं। कटहलिया और बलिया के सामने पश्चिम में महानंदा के दायें किनारे कंकई की एक शाखा जैरामपुर के पास अपना जल डालती है, जो औलाई गाँव के दक्षिण में पूर्वी कंकई से फूटती है। इसकी चर्चा पहले की गई है। इस संगम के पश्चात् महानन्दा के दक्षिण बढ़ने पर इसके दाहिने तट पर भेलाखोआ और खगजना गाँव है और बायें किनारे 'सोहियासानी' तथा 'मटियारी' गाँव बसे हुए हैं। इनमें सोहियासानी पश्चिम बंगाल का ग्राम है। मटियारी से चार मील दक्षिण महानंदा के बायें कछार में 'असुरगढ़' और 'सैदपुर' ये दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्राम हैं, जो आज पश्चिम बंगाल की सीमा में अंतर्भुक्त हो गये हैं। असुरगढ़ उस राष्ट्रीय उच्च पथ पर है,

जो पूर्णिया से दार्जिलिंग को जाता है। यह डेंगराघाट से सात मील उत्तर में स्थित है। असुरगढ़ में एक अति प्राचीन किले का खँड़हर है, जिसका घेरा १२०० गज का है। यह किला १२ फुट ऊँचे एक बड़े और पुराने टीले पर बनाया गया था, जिससे अनुमान होता है कि इस प्राचीन किले के पहले भी यहाँ कोई बड़ा किला था। किले के चारों ओर प्राचीर भी खड़े किये गये थे, जो चौड़े और ऊँचे तथा मिट्टी से बनाये गये थे। प्राचीर के भीतर अलग-अलग वहुत-से मकानों के अवशेष मिले थे। भूमि के नीचे कमरों के चिह्न भी प्राप्त हुए थे। एक किंवदन्ती के अनुसार, महाभारत-कालीन 'कीचक' का यहाँ गढ़ था, जिससे यह असुरगढ़ कहलाता है। किंतु, दूसरी किंवदंती के अनुसार **वेणु बरिजन, असुर, नन्हा** और **कन्हा** — ये सहोदर भाई थे और इस क्षेत्र में इन सबका अलग-अलग किला था। वेणु ने 'वेनूगढ़' नामक किला आज के टेढ़गछ थाने में तथा कवल नदी के पश्चिम भाग में बनवाया था, जिसकी चर्चा पहले भी की गयी है। बरिजन का किला बहादुरगंज से पांच मील दक्षिण, लोनसवरी नदी के किनारे था। इसका उल्लेख भी पहले किया गया है। असुर ने अपना किला इस असुरगढ़ में बनवाया था। किंतु नन्हा-कन्हा के किलों का पता हमें नहीं चला है। यह भी कहा जाता है कि ये पाँचों भाई विक्रमादित्य के समकालीन थे। कालक्रम से उनका राज्य मिट गया और असुरगढ़ भी नष्ट हो गया। वाद में असुरगढ़ के ध्वंसावशेष पर जंगल उग आया। असुर राज्य के भय से कोई हिंदू इस स्थान पर अपना निवास नहीं बनाता था। किंतु एक मुसलमान फकीर ने यहाँ गाय की वलि देकर सर्वप्रथम अपना निवास बनाया और उसी के वंशज वहाँ रहने लगे और वहाँ की जमीन भी उन्होंने दखल कर ली। किंतु, अभी हाल तक अड़ोस-पड़ोस के हिंदू यहाँ असुर देव की पूजा करने आते थे। मुसलमान लोग उस फकीर को चढ़ावा चढ़ाते हैं। किंतु खगड़ा के नवाब के वंशजों के इतिहास से पता चलता है कि जव सौलतगंज ने मुहम्मद जलील से 'जलालगढ़' को छीन लिया, तब खगड़ा-नवाब की नवीं पीढ़ी के नवाव फखरुद्दीन हुसेन ने 'असुरगढ़' में अपना किला बनवाया था। किंतु, पुरातात्त्विकों का कहना है कि फखरुद्दीन हुसेन ने प्राचीन किले के ढूह पर ही अपना किला बनवाया था।

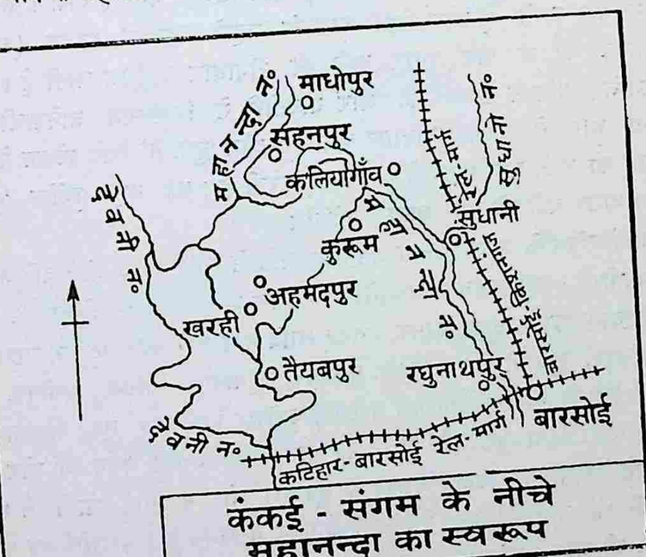
इस असुरगढ़ से दो मील उत्तर 'बभनटोली' गाँव के पास महानन्दा अपने बायें भाग में पतली धारा निकालकर दक्षिण की ओर एक द्वीप बनाती है। इस बभनटोली के सामने महानंदा के दाहिने तट पर 'कनफुटिया' गाँव है। यह द्वीप लगभग ढाई मील का है। बाईं धारा, सैयदपुर से एक मील दूर नैर्ऋत्य कोण में, फिर महानंदा में मिल जाती है। यह धार जहाँ मिलती है, ठीक उसके सामने पश्चिम में महानंदा के दाहिने तट पर 'डमराहा' गाँव बसा हुआ है। महानंदा डमराहा से आध मील दक्षिण नैर्ऋत्यकोण में मुड़कर 'बैसी' थाने की सीमा में प्रवेश करती है। यहाँ अब बंगाल की सीमा महानंदा के गर्भ तक में घुस आई है और इस जगह पूर्वी तट पर स्थित गाँव 'पसियाडांगी' बंगाल का गाँव हो गया है। बैसी थाने में प्रवेश करने पर महानंदा के दाहिने भाग में 'ताराबाड़ी' और बायें भाग में गाँघर या घाँघर नामक मशहूर गाँव है। यहीं घाँघर के सामने पश्चिम में महानंदा के

दाहिने भाग में कई नदियों का जल लेकर 'कंकई' प्रवेश करती है, जिसकी चर्चा हो चुकी है। यह संगम 'सिमलबारी' के पूर्व, गुरिहार के पूर्वोत्तर कोण में और तारावाड़ी के दक्षिण में होता है। ये सभी गाँव महानंदा के दाहिने भाग में और कंकई के मुहाने के किनारे में बसे हुए हैं।

कंकई-संगम के बाद महानंदा का प्रवाह-मार्ग :

कंकई-संगम के बाद महानंदा दक्षिण की ओर चलती है और दाहिने किनारे चंदर गाँव को निहारती और वैसी थाने को अपने पश्चिम में छोड़ती पूर्व दिशा में मुड़ जाती है। किसी काल में यह वैसी के पूर्व से सीधे दक्षिण में चलती थी, और देवनी आदि नदियों की धाराओं को पूर्णिया सदर अनुमंडल और कटिहार अनुमंडलों की सीमा पर आत्मसात् करती थी। आज भी इस धारा का अवशेष दीख पड़ता है। महानंदा वैसी और पानी सदरा के पूर्वोत्तर भाग में मुड़कर फिर दक्षिण में गिरती है और अपनी धारा का एक विचित्र अंकुश बनाती है। यहीं राष्ट्रीय उच्च पथ का डेंगराघाट है, जहाँ महानंदा पर कंकरीट का विशाल पुल बना है। धारा के उत्तरी अंकुश के मुँह पर 'चोंचा' नामक गाँव है, जो सचमुच महानंदा-प्रवाह की चोंच पर बसा हुआ है। यहाँ तक महानंदा पूर्णिया जिले में अपनी ५५ मील तक की प्रवाह-यात्रा पूरी करती है।

चोंचा गाँव से महानंदा जब दक्षिण की ओर चलती है, तब उसके पूर्वी किनारे



कंकई - संगम के नीचे महानन्दा का स्वरूप

एक मील दूर, बारसोई से कर्सियांग जानेवाली रेलवे का 'डलकोढा' नामक स्टेशन मिलता है। यहाँ से जब यह और दक्षिण की ओर चलती है, तब इसके पश्चिम किनारे

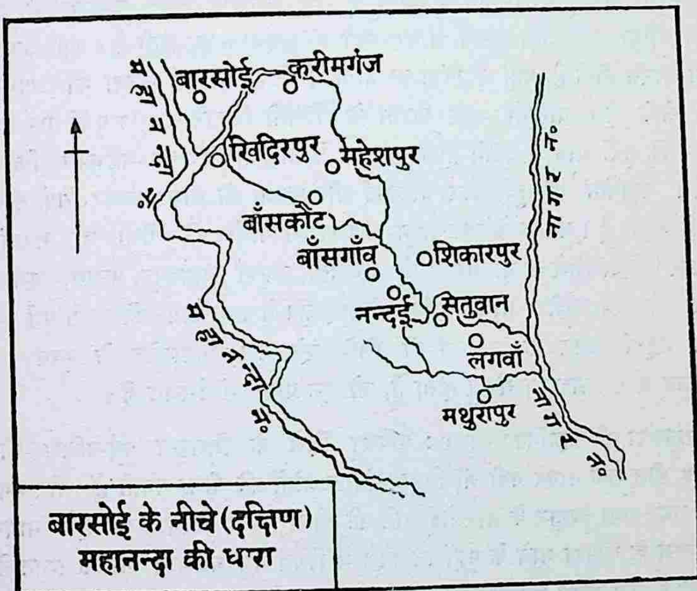
सिरिपुर-मलाहटोली, सहियाना, चटिया एवं वनगाँव नाम के गाँव दिखाई पड़ते हैं। चटिया के सामने पूरब में महानंदा के पूर्वी तट पर नवाबगंज पोखरिया तथा उसी तट पर उसके दक्षिण 'मझवार' वस्ती है। वनगाँव और मझवार के मध्य से महानंदा एक बड़े चौरनुमा मैदान से थोड़ा नैर्ऋत्यकोण में झुक कर बहती है और फिर अग्निकोणवाहिनी बन जाती है, साथ ही 'हवडांग' गाँव के पास सदर अनुमंडल को पार करके क़टिहार-अनुमंडल के माधोपुर गाँव को आ जाती है। माधोपुर के सटे दक्षिण 'सहनपुर गाँव भी है और दोनों महानंदा के पूर्वी तट पर हैं। माधोपुर से ही यह थोड़ी दूर के लिए नैर्ऋत्यकोण में झुकती है और सहनपुर से आध मील दूर आकर अग्निकोण में मुड़ती और फिर तुरत पूर्वोत्तर कोण में मुड़कर उक्त सहनपुर के पूरब में आ जाती है। इसी घुमाव के मध्य में सहनपुर बसा है। इस स्थान पर वननेवाली महानंदा की आकृति पिछले पृष्ठ के मानचित्र में स्पष्ट है :

सहनपुर के नैर्ऋत्यकोण में महानंदा अपनी एक धारा निकालती है, जो पहले एक बड़ी धारा थी। इसी धारा के द्वारा यह देवनी नदी और पनार की रीगा-धार को ग्रहण कर 'आजमनगर' के इलाके से बहती हुई गंगा में मिलती थी। किन्तु, महानंदा की मुख्य धारा सहनपुर के पूरब से अग्निकोण की ओर झुककर बहती हुई तथा अपने बायें भाग में कालिया गाँव को देखती हुई 'सुधानी' रेलवे स्टेशन के पश्चिम में आती है। कलियाँ गाँव के सामने दाहिने किनारे से इसकी एक और धारा फूटती है, जो धारा कुरुम गाँव को बायें तट में छोड़ती अपनी ऊपर वाली धारा के साथ 'खरही' गाँव के दक्षिण तथा 'तैयबपुर' के उत्तर में मिल जाती है और देवनी-धार के सहारे 'झउवा' स्टेशन (कटिहार और बारसोई-लाइन में) के पास पनार नदी की रीगाधार से मिल जाती है। किन्तु, मुख्य महानंदा कालिया गाँव से दक्षिण की ओर बारसोई से किशनगंज जानेवाली रेल-लाइन के पश्चिमी भाग से उसके समानांतर चलती है और 'सुधानी' रेलवे स्टेशन के पश्चिम में सुधानो नदी को अपने वाम पार्श्व में आत्मसात् करती है। यह वही पूर्वोक्त 'सुधानो' है, जिसमें आज दाउक नदी की मुख्य धारा आती है।

सुधानो-संगम के वाद महानंदा अपनी वक्रगति से लगभग १० मील दक्षिण में चलकर 'वारसोई' आती है। उक्त संगम से वारसोई तक इसके दाहिने किनारे सिहरउल, रजवानपुर, पँचरुखी, विद्यानन्दपुर, बधुआ, गंधार, बसंदह आदि गाँव और वायें तट पर उत्तर से दक्षिण की ओर रंगपुर, सुधानी रेलवे स्टेशन, बसतपुर, रहमानपुर, सिंधिया, अलीपुर, रघुनाथपुर (वारसोई घाट) आदि गाँव बसे हुए हैं। बारसोई पूर्वोत्तर रेलवे का एक जंक्शन है, जहाँ से पूर्व की ओर दिनाजपुर और उत्तर की ओर कर्सियांग तथा असम की ओर रेल-लाइन चलती है। यह रेल-लाइन कटिहार जंक्शन से पूर्व की ओर वारसोई जाती है। वारसोई महानंदा नदी के बायें किनारे रेलवे-पुल के पूरब में स्थित है। बारसोई का पुराना नाम मोहनपाड़ा है, जो आज उसका एक भाग बन गया है।

बारसोई घाट से दक्षिण महानंदा के वायें किनारे 'खिदिरपुर' गाँव है, जहाँ महानंदा अपने वामपार्श्व से एक पतली धारा पूर्वोत्तर कोण में निकालती है, जो दो भागों में बँटकर अग्निकोण में चलती है। उत्तर की ओर चलनेवाली धारा वारसोई के पूर्व भाग में स्थित

करीमगंज गाँव के माथे पर पहुंचकर उसके पूर्व भाग से दक्षिण दिशा में ढलती है और अग्निकोण में चलने वाली धारा जब बाँसकोटगाँव से डेढ मील दूर अग्निकोण में पहुँचती है, तब दक्षिण में गिरनेवाली धारा उससे मिल जाती है। दोनों का एकीभूत प्रवाह थोड़ा अग्निकोण की ओर झुकता दक्षिण दिशा में चलता है और अपने दाहिने किनारे बाँस गाँव तथा नंदई गाँवों को तथा बायें किनारे 'शिकारपुर' गाँव को देखता सतुवान गाँव पहुँचता है। सतुवान के पास फिर यह दो धाराओं में बँट जाता है और दोनों धाराएँ पूर्णिया के दक्षिण-पूर्वी कोण की सीमा पर **नागर**' नदी में समा जाती हैं। दोनों भुजाओं के क्रोड में ही 'सतुवान' और 'लगवाँ' गाँव बसे हुए हैं और दाहिनी भुजा मथुरापुर के पूर्व में नगर से मिलती है और मथुरापुर इस भुजा के दाहिने किनारे है। इसकी स्थिति निम्नांकित मानचित्र से अधिक स्पष्ट की जा सकती है, किंतु, अब ये धाराएँ समाप्त हो रही हैं।



बारसोई के नीचे (दक्षिण) महानन्दा की धारा

बारसोई से एक मील दक्षिण खिदिरपुर के पास महानंदा नदी पूर्ववर्णित धार को अग्रसर करके नैर्ऋत्यकोण में मुड़ती है और फिर पूर्व की ओर घूमकर हँसुली की आकृति बनाती हुई आजमनगर तथा बारसोई थानों की सीमा बनती अपनी कुटिल गति से अग्निकोण में दौड़ती है। आजमनगर की भूमि इसके दाहिने किनारे और बारसोई की भूमि बायें किनारे दृष्टिगत होती है। यह जहाँ अपनी धार को हँसुली की आकृति में ढालती है, वहाँ हँसुली के एक छोर पर पूर्वोक्त खिदिरपुर ही है और दूसरे छोर पर 'जल-कुंडार, गाँव हैं। दोनों गाँव बारसोई थाने में और महानंदा के वाम पार्श्व में ही स्थित हैं। हँसुली के बीच नदी के दाहिने किनारे आजमनगर थाने का 'सहजना' गाँव है। फिर, जल-

कुण्डार से यह जैसे ही अपने प्रवाह को दक्षिण में मोड़ती है, वैसे ही इसके बायें तट पर 'खिजिरपुर' गाँव मिलता है। खिजिरपुर के दक्षिण में जाकर यह फिर अग्निकोण में झुकने लगती है और दाहिने किनारे 'महद्दीपाड़ा' गाँव को निहारती 'मालतीपुर' गाँव के दक्षिण में आ जाती है। बारसोई थाने का गाँव मालतीपुर इसके बाये किनारे है। यहाँ से फिर नैऋत्यकोण में और उसके बाद दक्षिण में मुड़कर गायघट्टा के सन्निकट पहुँच जाती है। गायघट्टा इसके दाहिने भाग में आजमनगर थाने का गाँव है। यह आजमनगर से पाँच मील पूरब में बसा है। महानंदा इसी 'गायघट्टा' के पास बंगाल के मालदह जिले के तुलसीहट्टा थाने की सीमा को छूने लगती है। यहाँ से यह पूर्व दिशा की ओर बिहार और बंगाल प्रान्तों की तथा पूर्णिया के बारसोई और बंगाल के तुलसीहट्टा थाने की सीमा बनती हुई वहने लगती है। लगभग पाँच मील तक यह बारसोई और तुलसीहट्टा थानों की सीमा बनती है और उसके बाद जब कुछ और पूर्व में बढ़ती है तब बारसोई तथा मालदह के 'खरबा' थाने की सीमा का काम करती 'नागर' नदी को अंकसात् कर लेती है। जहाँ खरबा थाने की सीमा आरंभ होती है, वहाँ महानंदा दो भागों में बँटकर सम्पूर्ण खरबा को अपनी गोद में डाल लेती है। दाहिनी धार खरबा के पश्चिमी किनारे से और पूर्वी धार नागर में मिलकर उसके पूर्वी भाग से बढ़ती है और खरबा के दक्षिणी सिरे पर पहुँचकर फिर मिल जाती है। महानंदा की पूर्वी धार बारसोई और खरबा की सीमा बनकर सिर्फ तीन मील तक पूर्व में बहती है। बंगाल के तुलसीहट्टा और खरवा थानों की सीमा पर महानंदा के बायें किनारे पूर्णिया जिले के बारसोई थाने के बेलवा, लगवाँ ,अबादपुर, पलास, बलरामपुर, गोविंदपुर और चापाखोर नामक गाँव बसे हुए हैं। ये ग्राम-नाम पश्चिम से पूर्व की ओर जानेवाली महानंदा-धार के क्रम से ही लिखे गये हैं। चापाखोर के पूरब महानंदा की पूर्वी धार और नागर का संगम होता है, जो एक पवित्र तीर्थ-स्थल है।

महानंदा की सहायिका नागर : पूर्णिया जिले के बिलकुल पूर्व-दक्षिण कोण में लगभग १५ मील तक नागर नदी भी बिहार-बंगाल प्रांतों की सीमा बनती है और बंगाल के दिनाजपुर सदर तथा बिहार के बारसोई थाने की सीमा का निर्धारण करती है। नागर नदी पश्चिम बंगाल के चोपरा थाने के पूर्वोत्तर कोण में स्थित 'घिरनी गाँव' नामक स्थान के पास से निकलती है और अपने उद्‌गम-स्थान से छह मील दक्षिण तथा नैर्ऋत्यकोण में चलकर बंगाल और बँगलादेश की सीमा बनकर वहने लगती है। बँगलादेश सन् १९७२ ई० के पहले पूर्वी पाकिस्तान कहलाता था। यहाँ से यह नैर्ऋत्यकोण में और फिर दक्षिण में लगभग ५५ मील तक बहती हुई भारत और बँगला देश की सीमा-रेखा बनती है। इसके बाद यह पूर्णिया जिले के बारसोई थाने के पूर्वोत्तरकोण में उसकी सीमा को छूती है। इसके पश्चात् नागर १५ मील तक पूर्णिया के बारसोई थाने की पूर्वी सीमा पर दक्षिण की ओर बहती महानंदा में प्रवेश कर जाती है। नागर नदी के दाहिने किनारे बारसोई थाने के घोड़ाडीहा, छेतना, सूताटोर, कोढ़ना, विघउरहाट, दोगच्छ, शिकारपुर, दशगाँव, बरियोर, बाजिदपुर आदि ग्राम बसे हुए हैं। उपर्युक्त कोढ़ना और विघउरहाट के मध्य में नागर नदी बारसोई दिनाजपुर-

रेल लाइन के नीचे से निकलती है, जिसके पश्चिम बारसोई थाने में पड़ने वाला 'कचना' रेलवे-स्टेशन है।

महानंदा का यथोक्त पूर्वी धार नागर नदी को समेटकर खरबा थाने की पूर्वी सीमा से दक्षिण की ओर चलती है और उसकी पश्चिमी धार खरबा थाने की पश्चिमी सीमा से होती दक्षिण में समानांतर चलती है। दोनों का मिलन खरवा थाने के दक्षिण सिरे पर होता है। इस प्रकार. महानंदा बंगाल के मालदह जिले में वहकर अपना एक प्रवाह गंगा में डालती है और दूसरे प्रवाह को पद्मा में उड़लेती है। पूर्णिया जिले में महानंदा का प्रवाह-प्रमाण अब लगभग ७५ मील का रह गया है। महानंदा के दाहिने भाग में बलासन, चेंगा, बूढ़ी गंगा, मेची आदि कई नदियों का जल लेकर कंकई और फुलहर तथा वाम भाग में दाउक, सुधानो, नागर, पुण्यभद्रा आदि नदियाँ अपने जल का भारी भाण्डार डालती हैं। अतः महानंदा अत्यंत पुण्यवती और पुराण-प्रसिद्ध नदी है, जिसका कछार भारतीय इतिहास तथा पुरातत्त्व की प्रचुर सामग्री से भरा है।

दाउक

उत्तर विहार की नदियों की वर्णन-शृंखला में अवशिष्ट अंतिम कड़ी दाउक नदी का विवरण यहाँ प्रस्तुत है। पूर्णिया जिले के पूर्वी छोर की भी आखिरी नदी इस दाउक का नाम बुकानन ने डंक (Danqk) लिखा है। दाउक का उद्गम-स्थान ठाकुरगंज से पूरब १८ मील दूर किंचित् पूर्वोत्तर कोण में स्थित 'जीभाकाटा' गाँव के पास है, जो अव बंगाल की सीमा में अंतर्भुक्त है। उद्गम-स्थल के पश्चिम में 'खेचावारी', उत्तर में 'जीभाकाटा' और पूर्व में 'तेलीगछ' गाँव बसे हुए हैं। यह क्षेत्र भी सन् १९५५ ई० के पहले पूर्णिया जिले में ही था, जो अव बंगाल में है। दाउक अपने उद्गमस्थान से चलकर नैर्ऋत्यकोण में १० मील दूर जब 'चोपरा' स्थान के उत्तर में आती है, तब उसके दाहिने भाग में उत्तर से दक्षिण की ओर वहकर आनेवाली **'बेरंग'** नदी अपना जल डालती है। इस क्षेत्र में दाउक और बेरंग— दोनों नदियों के तट खड़े और ऊँचे हैं। बरसात में छोटी नावों के चलने योग्य पानी रहता है और अन्य दिनों में धारा तेज और पानी स्वच्छ रहता है। दाउक नदी बेरंग-संगम से जब आगे आध मील दूर नैर्ऋत्य कोण में आती है, तब असम जानेवाला 'राष्ट्रीय उच्च पथ' दाउक की धारा को लाँघता है। इसके बाद यह नैर्ऋत्यकोण में ही बहती हुई चोपरा से डेढ़ मील दूर पश्चिम में दलुआ गाँव को आ जाती है। दलुआ के पास पश्चिम दिशा में सिर्फ एक मील चलकर उत्तर की ओर मुड़ती हुई यह जागीरगच्छ गाँव को बायें भाग में देखती पूर्णिया तथा बंगाल की सीमा वन जाती है। जागीरगच्छ से डेढ़ मील उत्तर जाकर दाउक अपने दाहिने भाग में उत्तर से आनेवाली एक छोटी नदी को भी आत्मसात् करती है, तत्पश्चात् बंगाल और विहार की सीमा बनती पश्चिम की ओर और डेढ़ मील चलकर 'माँगुरजन' गाँव को आती है। यहाँ पूर्व और उत्तर भाग में बंगाल की भूमि शुरू होती है। माँगुरजन के पास पहुँचकर और पश्चिम में ही चलती हुई 'दाउक' पूर्णतः पूर्णिया की भूमि में घुस आती है और नैर्ऋत्यकोण में धारा को दौड़ाती है। दाउक का पूर्णिया-प्रवेश-स्थल ठाकुरगंज से आठ मील दूर अग्निकोण तथा कलियागंज से सीधे चार मील दूर पूर्व दिशा में है। दाउक अपने पूर्णिया-प्रवेश-स्थल से जब चार मील आगे नैर्ऋत्यकोण में, अपने दाहिने किनारे मिरजापुर तथा बायें किनारे बागरानी गाँवों को निहारती हुई पहुँचती है, तब इसके अग्निकोण में कुशियारी गाँव मिलता है। यहाँ से दाउक फिर पश्चिमोत्तरकोण में बढ़कर एक और अत्यंत छोटी नदी को ग्रहण करती है, जो नैर्ऋत्यकोण में बहती है तथा कालियागंज के पूरब से आकर दाउक से मिल जाती है। इसके बाद दाउक नैर्ऋत्यकोण में बढ़कर पश्चिम की ओर झुकती है और तुरत किशनगंज से असम जानेवाली रेल-लाइन को कालियागंज से दो मील दक्षिण में पार करती है। इसके पश्चात् यह अपनी टेढ़ी-मेढ़ी चाल से महानंदा नदी के बायें भाग से उसके समानांतर नैर्ऋत्यकोण में चलती है तथा अपने बायें भाग में शेखपुरा और पतिलावासा गाँव को निहारती 'बुधरा' गाँव के नैर्ऋत्यकोण में

आती है। यहीं इसके वाम पार्श्व में **बूढ़ी चंगलोई** नदी अपना जल दाउक में डालती है। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व यह 'दाउक' नदी की शाखा थी, जो 'दलुआ' गाँव के पास से नैर्ऋत्यकोण में चलती थी, पर अब यह उससे बिलकुल विच्छिन्न हो गई है। अब यह 'दलुआ' से तीन मील दूर नैर्ऋत्यकोण में स्थित और पूर्णिया जिले के 'फुलरगच्छ' गाँव के पास से चलती है और चिल्हामारी' होते नैर्ऋत्यकोण में बढ़ती दाउक से 'बुधरा' के पास संगम करती है। यह असम जानेवाली रेल-लाइन को 'पोठिया' रेलवे स्टेशन के दक्षिण और 'चिल्हामारी' के नैर्ऋत्यकोण में पार करती है।

चंगलोई-संगम के बाद दाउक दक्षिण में चलती है और डेढ़ मील चलकर 'मरिया' गाँव को पहुँचती है। यह गाँव बंगाल की सीमा पर स्थित 'इस्लामपुर' से तीन मील पश्चिम में है। मरिया से फिर यह पश्चिम में डेढ़ मील चलती है और तब पूर्व में महानंदा की धारा से इसकी दूरी ढाई मील रह जाती है। यहाँ दाउक-धारा के पश्चिम और महानंदा के पूर्वी किनारे 'दरिगाँव' है। इस गाँव का उल्लेख महानंदा के विवरण में किया जा चुका है। इसके बाद दक्षिण की ओर दौड़कर 'सीताझारी' गाँव को आती है। यह गाँव इसके ठीक बायें तट पर बसा हुआ है और 'अर्राबारी' स्थान से तीन मील दूर पूर्व में है। अर्राबारी गांव महानंदा के पूर्वी किनारे पर है। 'सीताझारी' से दो मील नैर्ऋत्यकोण में चलकर 'दाउक नदी 'फराबारी' गाँव को आती है, जो इसके दो-मुहानी धार के सटे उत्तर में स्थित है। इसी फराबारी में 'दाउक' दो धाराओं में बँट जाती है। इनमें पूर्वी धारा 'डमरबारी' गांव के पश्चिम से बहती 'रमजान' नदी बन जाती है तथा कुछ और दक्षिण जाकर **'सुधानो'** कहलाती है; पर दाहिनी धारा पश्चिम की ओर बहकर महानंदा से आध मील दूर पूर्व में उस मार्ग तक पहुँच जाती है, जो किशनगंज से महानंदा के पूर्वी किनारे से कालियागंज को जाता है। यहाँ से दाउक इसी मार्ग के पूर्वी किनारे से दक्षिण की ओर चलती है और अपने बायें किनारे में 'काला सिंघिया' और दाहिने भाग में 'केशोजार' नामक गाँवों को छोड़ती 'धोबिनिया' नामक गाँव के अग्निकोण में आ जाती है। यहीं दाउक नदी किशनगंज थाने में प्रवेश करती है और बड़ी ही कुटिल चाल से छह मील तक नैर्ऋत्यकोण में चलकर बेलवा काशीपुर होते 'छोटा सलकी' गाँव के दक्षिण में आती है और पश्चिम दिशा में मुंह करके महानंदा में प्रविष्ट हो जाती है। 'बेलवा काशीपुर' और 'छोटा सलकी' - ये दोनों गाँव दाउक और महानंदा के मुहाने के उत्तर-पूर्व में दोनों नदियों की गाँस में बसे हुए हैं। सन् १८१० ई० में बुकानन जिस समय पूर्णिया जिले का भौगोलिक विवरण तैयार कर रहा था, उस समय 'दाउक' सम्पूर्ण रूप से 'छोटा सलकी' के पास ही आज की अपनी पश्चिमी धार से 'महानंदा' में प्रवेश करती थी। उस समय इसकी पूर्वी धार नहीं बनी थी और 'रमजान नदी' स्वतंत्र एक नदी थी, जो 'डमलबारी' के उत्तर से निकलकर किशनगंज थाने में प्रवेश करती थी। किंतु, आज 'रमजान' नदी दाउक नदी की ही पूर्वी धार बन गई है।

दाउक की रमजान धार :

पूर्वोक्त फराबारी गाँव के सन्निकट ही, अग्निकोण में 'दाउक' अपनी बाईं तथा पूर्वी

धार को पूर्व दिशा की ओर मोड़ती है और तुरत उसे दक्षिण दिशा में घुमा देती है। दक्षिण में तीन मील चलने के बाद वह 'डमलबारी' के उत्तर में आती है, जहाँ से फिर एक मील के लिए पश्चिम में बहकर पुन: दक्षिण दिशा में चल देती है। दक्षिण में मुश्किल से डेढ़ मील चल पाती है कि किशनगंज थाने की भूमि आ जाती है। यहीं यह पहले के 'रमजान' नदी से मिलती है। अब रमजान का अलग कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। अब दाउक की इस पूर्वी धार का ही नाम 'रमजान' विख्यात हो गया है। किशनगंज के उत्तरी भाग में 'रमजान' अपनी धार को बड़े ही टेढ़े-मेढ़े मार्ग से बहाती है और तीन मील दक्षिण में आकर उसी वक्र गति से पश्चिम में बहकर 'कटमोहान' गाँव को पहुँचती है। कटमोहान से रमजान नदी नैर्ऋत्यकोण में चलती है और अपने दाहिने किनारे 'छगलिया' गाँव को तथा कुछ और नैर्ऋत्यकोण में बढ़कर अपने बायें किनारे 'चौंदी' गाँव को निहारती किशनगंज से तीन मील उत्तर 'बैरगाछी' ग्राम को आ जाती है। बैरगाछी से लगभग ढाई मील दूर नैर्ऋत्यकोण में प्राचीन ग्राम 'सिमलबारी' महानंदा के पूर्वी तट पर दिखाई देता है। बैरगाछी से नैर्ऋत्यकोण में ही चलकर 'रमजान' घोड़ामारा गाँव को आती है, जो किशनगंज से सिर्फ डेढ़ मील दूर सीधे उत्तर दिशा में है। घोड़ामारा से थोड़ी दूर अग्निकोण में बढ़कर यह दक्षिण में प्रयाण करती है और किशनगंज नगर को पहुँच जाती है।

किशनगंज पूर्णिया जिले का विख्यात अनुमंडल है तथा व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है। सन् १९७२ ई० के पहले बँगला देश पर जब पाकिस्तान का शासन था, तब किशनगंज में राजनीतिक हलचल खूब रहती थी। सन् १९७१ ई० के दिसंबर में, भारत और पाकिस्तान के युद्ध के समय तो किशनगंज खासकर भारी हलचल का केंद्र बन गया था और बँगला देश को स्वतंत्र कराने में किशनगंज ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही थी। भारतीय सैनिक किशनगंज से ही बँगला देश में अपनी गति-विधि बढ़ाते थे। पुराकाल में किशनगंज में मुस्लिम-शासन जब अपने उत्कर्ष पर था, तब 'रमजान' नदी की धारा को किशनगंज के चारों ओर बहाकर रक्षा-परिखा बनाई गई थी, जिसका अवशेष आजतक वर्त्तमान है। किशनगंज-अनुमंडल का निर्माण सन् १८४५ ई० में हुआ था और सन् १८८७ ई० से यहाँ नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी) कायम है। किशनगंज का पश्चिमी भाग 'लाइन बाजार' कहलाता है, जहाँ पहले भी सेना की एक छावनी थी। किंतु किशनगंज का मुख्य बाजार कुतुबगंज महल्ले में है, जिसके पास 'रमजान' नदी की धारा बहती है। किशनगंज की कचहरी किशनगंज से चार मील दूर पश्चिमोत्तर कोण में भलियाडंगी स्थान में है, जो महानंदा नदी के पूर्व भाग में पड़ती है। फ्रांसिस बुकानन के समय किशनगंज में शहर की कोई रौनक नहीं थी; फिर भी वहाँ एक मुस्लिम-शासक का निवास था।

रमजान का 'सुधानो' नाम तथा प्रवाह एवं महानंदा से संगम :

किशनगंज रेलवे-स्टेशन के पास पहुँचकर रमजान नदी शहर के पश्चिमी भाग से, रेल-लाइन को पार करके दक्षिण की ओर चलने लगती है। इसी जगह नदी के दाहिने

किनारे किशनगंज का मेला लगता है। दक्षिणाभिमुखी रमजान नदी बंगाल की सीमा में प्रवेशकर दक्षिण में बहने लगती है। इस भाग में इसका नाम 'रमजान' की जगह 'सुधानो' हो जाता है। बंगाल-प्रवेश करने पर 'सुधानो' जब तीन मील दक्षिण और तीन मील नैर्ऋत्यकोण में, यानी कुल ६ मील बहकर आती है, तब इसके दायें भाग में **बिअहकुँअरी** नामक नदी अपना पानी उड़ेलती है। 'बिअह-कुंवरी' नदी महानंदा के पूर्वी किनारे में स्थित किशनगंज थाने के 'बसतपुर' गाँव के पास से चलती है। यह 'बसतपुर' किशनगंज से तीन मील पश्चिम में पड़ता है। अपने उद्गम से दक्षिण दिशा में बहती हुई 'बिअह कुंवरी' तीन मील पर आकर 'हटवा' गाँव के पास बंगाल में घुसती है तथा तीन मील और दक्षिण में बहकर पूर्व दिशा में मुड़ जाती है। पूर्व की ओर दो ही मील बहने के बाद यह 'सुधानो' से संगम करती है। इस 'बिअह कुँवरी' के बाद सुधानो जब पश्चिम बंगाल की भूमि में दक्षिण की ओर सात मील बहती है, तब एक अच्छी खासी नदी **पितनो** इसके बायें भाग में संगम करती है। पितनो नदी के जल-भंडार से 'सुधानो' एक बड़ी नदी का रूप ले लेती है। इसके पश्चात् सुधानो बंगाल की भूमि में नैर्ऋत्यकोण की ओर चार मील बहकर बिहार-बंगाल की सीमा पर 'रानीगंज' के पास आ जाती है। यह रानीगंज गंगा-असम राष्ट्रीय पथ के महानंदावाले पुल से सीधे पूरब में सात मील दूर पर स्थित है। रानीगंज से दो मील नैर्ऋत्यकोण में चलती हुई यह बंगाल-बिहार की सीमा बनती है और 'पंडौल' स्थान के पास फिर पूर्णिया जिले में घुस आती है। यहाँ से डेढ़ मील नैर्ऋत्यकोण में बहकर यह 'चीना पाड़ा' गाँव पहुँचती है, जहाँ थोड़ी दूर के लिए पूरब में चलकर फिर दक्षिण दिशा में बहने लगती है। दक्षिणवाहिनी 'सुधानो' अपने बायें तट में 'सादीपुर' दुल्लहपुर और महीसाल गाँवों को दृष्टिपूत करती 'मोरलबाधा' गाँव को पहुँच जाती है। मोरलबाधा गाँव 'सुधानी' रेलवे-स्टेशन से दो मील उत्तर में है और बारसोई-किशनगंज-रेलपथ से पूरब में पड़ता है। इसी 'मोरलबाधा' गाँव से 'सुधानो' नदी नैर्ऋत्यकोण में चलकर तुरत बारसोई-किशनगंज-रेल-लाइन को पार करके पश्चिम में मुड़ती है और फिर तुरत ही 'महनंदा' नदी में प्रवेश कर जाती है। यह संगम 'सुधानी' रेलवे-स्टेशन के पश्चिम में है। हाँ, रेलवे लाइन पार करने के पहले 'सुधानो' अपनी एक पतली-सी धार अग्निकोण में निकालती थी, जो आगे चलकर खेतों में विलीन हो जाती थी। यह शाखा-धार अब बिलकुल लुप्त-सी हो गई है।

इस प्रकार, दाउक, रमजान और सुधनो नाम से प्रसिद्ध इन तीन नदियों की त्रिधारा के वर्णन-विनियोग के साथ ही उत्तर बिहार की समस्त नदियों की कहानी समाप्त होती है। ये सभी नदियाँ मातृ गंगा की शिराएँ हैं, जो परिच्छेदों की तरह बँटकर गंगा नदी-रूपी ग्रंथ की सहायिका तथा उसके पूरक अंग बनती हैं। इन नदियों का चरित्र-चित्रण गंगा के चरित्र को उदात्त बनाता है और उसकी महत्ता और मर्यादा में चार चाँद लगा देता है। इनकी पुण्य कथा अपने पाठकों के सारे पापों को धो डालती है।

सर्वा नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाश्च भारत !
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाः पापहराः स्मृताः ॥
श्रीमद्रामनरेशजः सहृदयश्चन्द्राह्वमातुः सुतः
यात्रैविद्यकृती व्ययुज्यत कवि र्मात्रा किशोरायुषि ।
गंगाद्याः सरितश्च मातृसदृशा गंगेव माता शुचिः
स्वीकुर्याः जननि स्वपुत्रघटितं वागर्चितं तर्पणम् ॥
दशाब्दतपसोद्भूतं पूतं पुण्यनदीजलैः ।
मातर्जनेश्वरीजानिः सुतोऽर्पयति तृप्यताम् ॥

शुद्धि-पत्रक

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
सन् १९३९ ई०	२०	१८	सन् १५३९ ई०
भविष्यपुण	३०	१	भविष्य पुराण
सनेरुआ	७१	२५	सनेरुजा
कलाशाख्यं	८४	२३	कलशाख्यं
पर्व हअव	९८	१८	पर्वत अव
तीन वंगाली	९९	४-५	तीन पंजावी,वंगाली
चलती है	११५	२	चलता है
आती है।	,,	,,	आता है।
हमरा	१२२	३३	हमारा
विधि	१४३	३२	विविध
हयमेविध	१४३	३३	हयमेध
सन्पन्नि	१७५	४	सम्पन्नि
महम्मद	१८७	२९	महमद्द।
विकशल	२०२	२७	विकराल
विश्वंभर	२०८	१५	विश्वंभरपुर
पविप्तयंति	२१७	१४	पवित्तयंति
पटरवा	२२४	८	पटरखा
भबाः	२५२	२४	भवाः
पर्वतोप्तमात्	२५४	१४	पर्वतोत्तमात्
रुद्रजायो	२५५	२२	रुद्रजापो
मेतत्रिधा	२५५	३२	मेतत्त्रिधा
माहलाखोला	२५७	२९	मठलाखोला
की	२५८	१७	का
घघीरी	२९४	२५	घघरी
यह न केवल	३३८	३	यह केवल
करते हैं।	३६२	५	करती हैं।
प्रदेश	३६४	१७	प्रवेश
रानू ने कोसी	३७६	१५	रानू कोसी
में ही रानीगंज	४१९	१७	रानीगंज में ही
सन् १९१० ई०	४२१	१७	सन् १८१० ई०
बुकानन ने कुछ	४२७	१९	बुकानन के कुछ
देवकी	४४३	२२	देवनी

सहायक ग्रन्थों की अक्षरानुक्रम सूची

१. अंगुत्तर निकाय—प्रकाशक पालि-प्रकाशनमण्डल, नालन्दा
२. अग्नि पुराण—प्रकाशक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
३. अन्हराठाढ़ी का शिलालेख—(दरभंगा); सम्पादक प्रो० राधाकृष्ण चौधरी
४. अमरकोश की रसाल टीका—प्रका० राजकीय ग्रन्थमाला, बंबई
५. अमरकोश की रामाश्रमी टीका— ,, ,, ,,
६. आनन्द रामायण—प्रका० पण्डित पुस्तकालय, काशी
७. ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया—सन् १९११-१२ ई०
८. उत्तरपुराण (जैनग्रन्थ)—
९. उदान (बौद्धग्रन्थ)—
१०. ऋग्वेद संहिता—प्रका० स्वाध्याय मंडल, सतारा
११. ऐतरेय ब्राह्मण-सं० काशीनाथ शास्त्री; प्रका० महादेव चिमणजी आप्टे, आनन्दाश्रम, पूना
१२. औपपातिक सूत्र—प्रका०, सिंधीजैन शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन, बंबई
१३. कालिका पुराण—प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
१४. कीर्त्तिलता—महाकवि विद्यापति
१५. कुमार सम्भवम्—महाकवि कालिदास, प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
१६. कूर्म पुराण—प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
१७. कृत्यरत्नाकर—श्री चण्डेश्वर ठाकुर
१८. कैलास-मानसरोवर—स्वामी प्रणवानन्द, प्रका० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
१९. कोसी—श्री ललितेश्वर प्रसाद मल्लिक
२०. खारवेल का हाथी गुम्फाभिलेख
२१. गंगा लहरी—पण्डितराज जगन्नाथ, प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
२२. गंगासहस्रनाम्—प्रका० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
२३. गर्ग संहिता—प्रका० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
२४. गोरखपुर-गजेटियर—१९०९ ई०
२५. गोविन्दचन्द्र का मनेर-अभिलेख
२६. चम्पारन-जिला-गजेटियर—सन् १९६० ई०
२७. चम्पारन-सर्वे-मानचित्र
२८. जीवितगुप्त का देववरुनार्क शिला-लेख
२९. तपोभूमि—श्री राम गोपाल मिश्र, प्रका० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
३०. तिलोय पण्णति—प्रका० भारतीय विद्या-भवन, बंबई
३१. त्रिस्थली सेतु

३२. दरभंगा-जिला—गजेटियर, सन् १९६४ ई०
३३. दरभंगा-जिला—सर्वे-मानचित्र
३४. दशकुमारचरितम् —महाकवि दण्डी, प्रका० चौखम्बा संस्कृतसीरीज, वाराणसी
३५. दीघ निकाय (परिनिव्वाण सुत्त)—प्रका० नालन्दा पालि प्रतिष्ठान, नालन्दा
३६. दुःखन राम अभिनन्दन ग्रन्थ—सम्पादक, आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा
३७. देवी भागवत पुराण —प्रका० मास्टर खेलाड़ी लाल, कचौड़ी गली, बनारस
३८. नदीघाटी योजनाओं की रिपोर्टें तथा मानचित्र, बिहार-सरकार
३९. नामलिङ्गानुशासनम् (अमर कोश)—प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
४०. नालन्दाम्युजियम की मृत्तिका-मुद्रा
४१. नेपाल का मानचित्र—निर्माता, एन० बी० थापा
४२. नेपाल माहात्म्य—१।१३८
४३. पटना-जिला गजेटियर
४४. पटना-जिला सर्वेमानचित्र
४५. पद्मपुराण—प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
४६. परिषद्-पत्रिका—(वर्ष ६, अंक-३), बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना
४७. पुरुष-परीक्षा—महाकवि विद्यापति, प्रका० लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, विक्रमाब्द १९८४
४८. पूर्णिया-जिला—गजेटियर, सन् १९६३ ई०
४९. पूर्णिया-जिला—सर्वेमानचित्र
५०. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन—सम्पा० डॉ० वासुदेव उपाध्याय, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
५१. फ्रांसिस बुकानन की गया-पटना-रिपोर्ट—१८११ ई०
५२. फ्रांसिस बुकानन की पूर्णिया-रिपोर्ट—१८१० ई०
५३. फ्रांसिस बुकानन की भागलपुर-रिपोर्ट—१८१० ई०
५४. फ्रांसिस बुकानन की शाहाबाद-रिपोर्ट—१८११ ई०
५५. बाबरनामा (हिन्दी)—प्रका० आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, ४९३, मालवीयनगर, इलाहाबाद
५६. बिहारः एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन—श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, प्रका० पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय
५७. बिहार थ्रू दि एजेज—
५८. बौद्धधर्म और बिहार —प्रका० बिहार राष्ट्रभाषापरिषद्, पटना
५९. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण —प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
६०. ब्रह्माण्ड पुराण —प्रका० खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई
६१. भविष्य पुराण —प्रका० खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई
६२. भागलपुर गजेटियर —सन् १९६२ ई०
६३. भूपरिक्रमा —महाकवि विद्यापति, (फोटोस्टाट कॉपी), बिहार राष्ट्रभाषापरिषद्, पटना

६४. भृंगदूत—कवि गंगानन्द
६५. मज्झिम निकाय—प्रका० नालन्दापालि प्रतिष्ठान, नालन्दा
६६. मत्स्य-पुराण —प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
६७. मनुस्मृति—प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
६८. महाभारत—प्रका० गीताप्रेस, गोरखपुर
६९. महाभारत—प्रका० भण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना
७०. महावग्ग (विनयपिटक)—आर्यभूषण प्रेस, शिवनगर, पूना
७१. मार्कण्डेय पुराण—प्रका० सरस्वती प्रेस, कलकत्ता
७२. मिथिला-तत्त्वविमर्श—महामहो० परमेश्वर झा
७३. मुंगेर जिला-गजेटियर—सन् १९६० ई०
७४. मुंगेर जिला—सर्वेमान चित्र
७५. मुजफ्फरपुर जिला-गजेटियर—सन् १९५८ ई०
७६. मुजफ्फरपुर जिला—सर्वेमान चित्र
७७. मेघदूतम्—महाकवि कालिदास, चौखम्बा संस्कृत-सीरीज, वाराणसी
७८. रघुवंशम्— ,, ,, ,, ,, ,,
७९. लिङ्गपुराण—प्रका० खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई
८०. वाप्पभट्ट-सूरिप्रबन्ध—प्रका० हिन्दीजैनपीठ, शान्तिनिकेतन, बंगाल
८१. वराह (वाराह) पुराण—प्रका० खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई
८२. वामनपुराण—प्रका० मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी
८३. वायु पुराण—प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
८४. वाल्मीकीय रामायण—प्रका० गीताप्रेस, गोरखपुर
८५. विवाद-रत्नाकर—(उपसंहारभाग)
८६. विविधतीर्थकल्प—मुनि जिनप्रभवसूरि; प्रका० हिन्दीजैनपीठ, शान्तिनिकेतन, बंगाल
८७. विशुद्धिमग्ग (सील निद्देस-६४)—प्रका० महाबोधिसोसाइटी, सारनाथ, बनारस
८८. विष्णुपुराण—प्रका० गीताप्रेस, गोरखपुर
८९. बृहदारण्यकोपनिषद्—श्रीनारायणस्वामी, प्रका० सार्वदेशिक प्रकाशन, देहली
९०. बृहन्नारदीय पुराण—प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
९१. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति—महामहो० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
९२. शक्तिसंगमतंत्र—भाग ३, प्रका० मास्टर खेलाड़ीलाल एंड सन्स, कचौड़ीगली, बनारस
९३. शतपथब्राह्मण—प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
९४. शिवपुराण—प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
९५. श्रीमद्भागवतमहापुराण—प्रका० गीताप्रेस, गोरखपुर
९६. संग्रामदेव का पंचोभ-शिलालेख—सम्पा० प्रो० राधाकृष्ण चौधरी
९७. सर्वे ऑव इण्डिया रोडमैप—सन् १९६० ई०

९८. **सर्वेमानचित्र इण्डिया**—सन् १९५३ ई०
९९. **सहरसाजिला गजेटियर**—सन् १९६५ ई०
१००. **सहरसा जिला**—सर्वेमानचित्र
१०१. **सारन जिला-गजेटियर**—सन् १९६० ई०
१०२. **सारन जिला**—सर्वेमानचित्र
१०३. **सुत्तनिपात**—प्रका० महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस
१०४. **सेलेक्टेड इन्क्रिप्सन्स ऑव बिहार**—सम्पा० प्रो० राधाकृष्ण चौधरी
१०५. **स्कन्द-पुराण**—प्रका० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
१०६. **स्टडीज इन द ज्योग्राफी ऑव एन्शियेंट एण्ड मेडियेवल इण्डिया**—श्री दिनेशचन्द्र सरकार; प्रका० मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी
१०७. **हरिवंशपुराण**—प्रका० गीताप्रेस, गोरखपुर
१०८. **हर्षचरितम्**—बाणभट्ट; प्रका० मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, कचौड़ीगली, बनारस

●

भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से प्रकाशित

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
के

कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. व्याकरणिक कोटियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन :
डॉ० दीप्ति शर्मा १५.००

२. बिहार का भूगोल : श्री राधाकान्त भारती १७.८०

३. गांधीवाद को विनोबा की देन : डॉ० दशरथ सिंह २५.००

४. उच्च लेखाशास्त्र : डगलस गारबट ६०.००

५. भारत की आर्थिक समस्याएँ ,खण्ड-१ :
१— डॉ० सी० डी० सिंह
२— डॉ० आर० डी० शर्मा ३३.००

६. वैदिक राजनीतिशास्त्र :
डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा १३.५०

७. सफेदपोश : भारतीय मध्यमवर्ग :
डॉ० श्रीनाथ सहाय ७.००

८. स्वास्थ्य एवं जीवाणु-विज्ञान :
श्री कुसुम कुमारी साहा २४.००

९. बँधी व्यवस्थाएँ और खुले मन : मैक्स ग्लकमैन १५.००

१०. ध्वनि-विज्ञान : प्रो० गोलोक बिहारी धल १५.००

११. भारतीय सेना :परा और स्वरूप,खण्ड-२ :
डॉ० अमरनाथ सिन्हा ९.००

१२. इंगलैण्ड की संवैधानिक विधि के सिद्धांत :
प्रो० विष्णु प्रसाद १२.००